

TASLIMA NASRIN KI ATMKATHA MEIN DHARM, PITRISATTA AUR RAJNEETI

A Thesis submitted during (year) **2018** to the University of
Hyderabad in Partial Fulfilment of the Requirement for the Degree of

'DOCTOR OF PHILOSOPHY'

in Hindi, School of Humanities.



Submitted By

POOJA TIWARI

(Registration No. 15HHPH01)

(YEAR- 2018)

Under the Guidance of

Prof. Sachidanand Chaturvedi

Department of Hindi

School of Humanities, University of Hyderabad

P.O. Central University, Gachibowli, Hyderabad - 500046

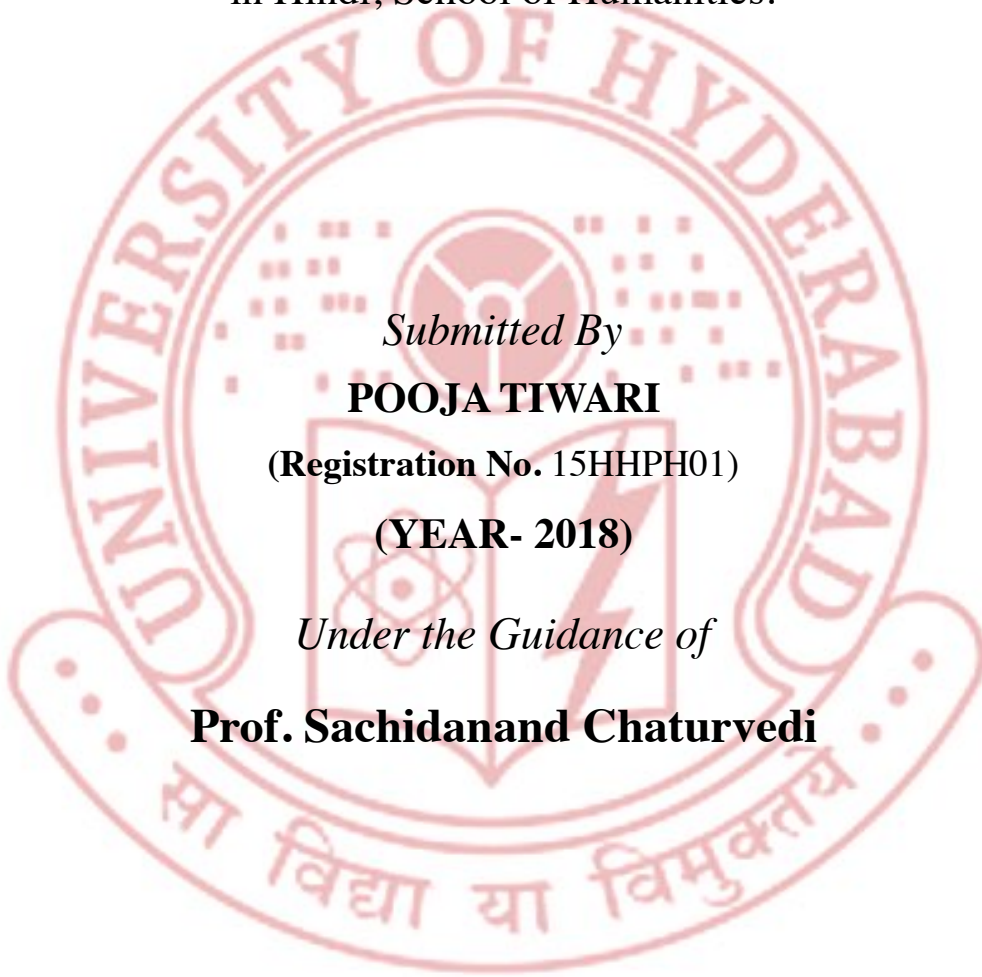
Telangana, India

TASLIMA NASRIN KI ATMKATHA MEIN DHARM, PITRISATTA AUR RAJNEETI

A Thesis submitted during (year) **2018** to the University of
Hyderabad in Partial Fulfilment of the Requirement for the Degree of

'DOCTOR OF PHILOSOPHY'

in Hindi, School of Humanities.



Submitted By

POOJA TIWARI

(Registration No. 15HHPH01)

(YEAR- 2018)

Under the Guidance of

Prof. Sachidanand Chaturvedi

Department of Hindi

School of Humanities, University of Hyderabad

P.O. Central University, Gachibowli, Hyderabad - 500046

Telangana, India

तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म, पितृसत्ता और राजनीति

(हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय की पी.एच.डी (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध)

(वर्ष - 2018)

शोध निर्देशक

प्रो.सच्चिदानंद चतुर्वेदी

विभागाध्यक्ष

प्रो.सच्चिदानंद चतुर्वेदी

शोधार्थी

पूजा तिवारी

(Registration No. 15HHPH01)

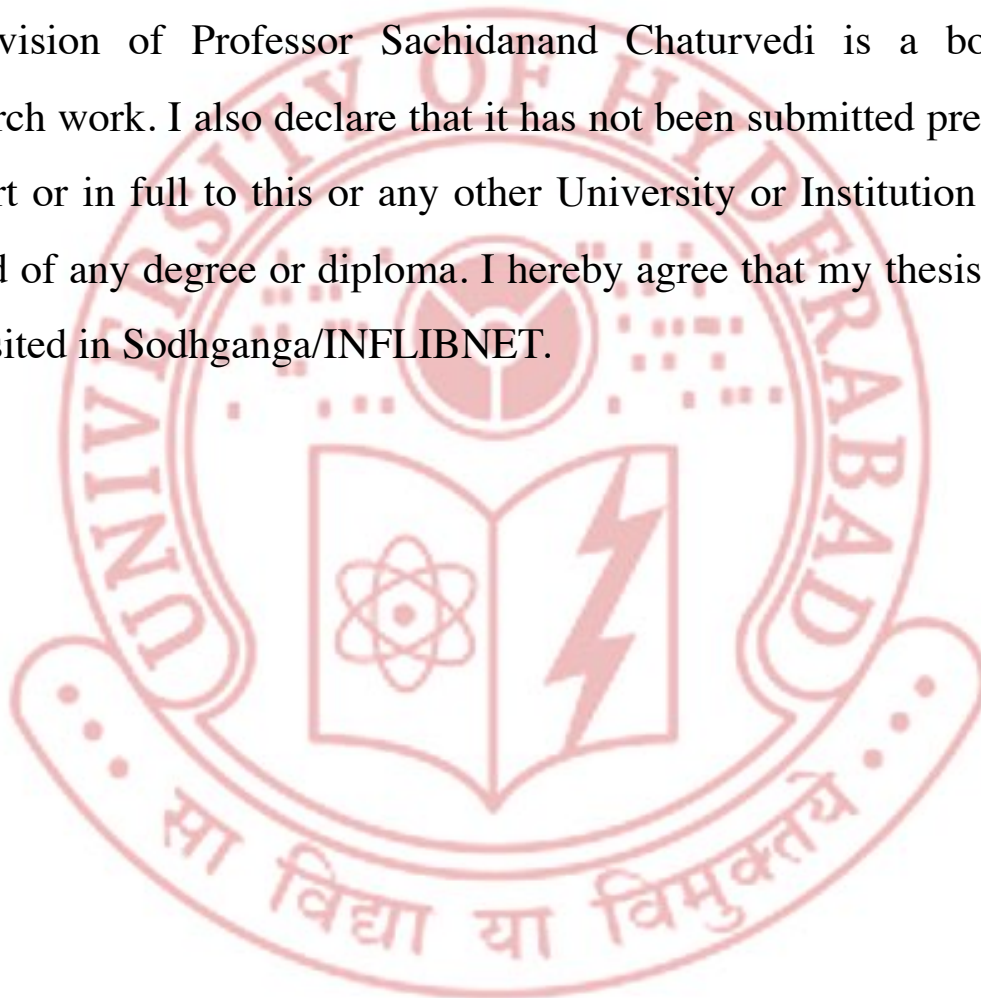
हिंदी विभाग

मानविकी संकाय, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद - 500046

तेलंगाना, भारत

DECLARATION

I, **POOJA TIWARI** (registration no. **15HHPH01**) hereby declare that the thesis entitled '**TASLIMA NASRIN KI ATMKATHA MEIN DHARM, PITRISATTA AUR RAJNEETI**' (तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म, पितृसत्ता और राजनीति) submitted by me under the guidance and supervision of Professor Sachidanand Chaturvedi is a bona-fide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Sodhganga/INFLIBNET.



Signature of Supervisor

(Prof. Sachidanand Chaturvedi)

Date :

Signature of the Student

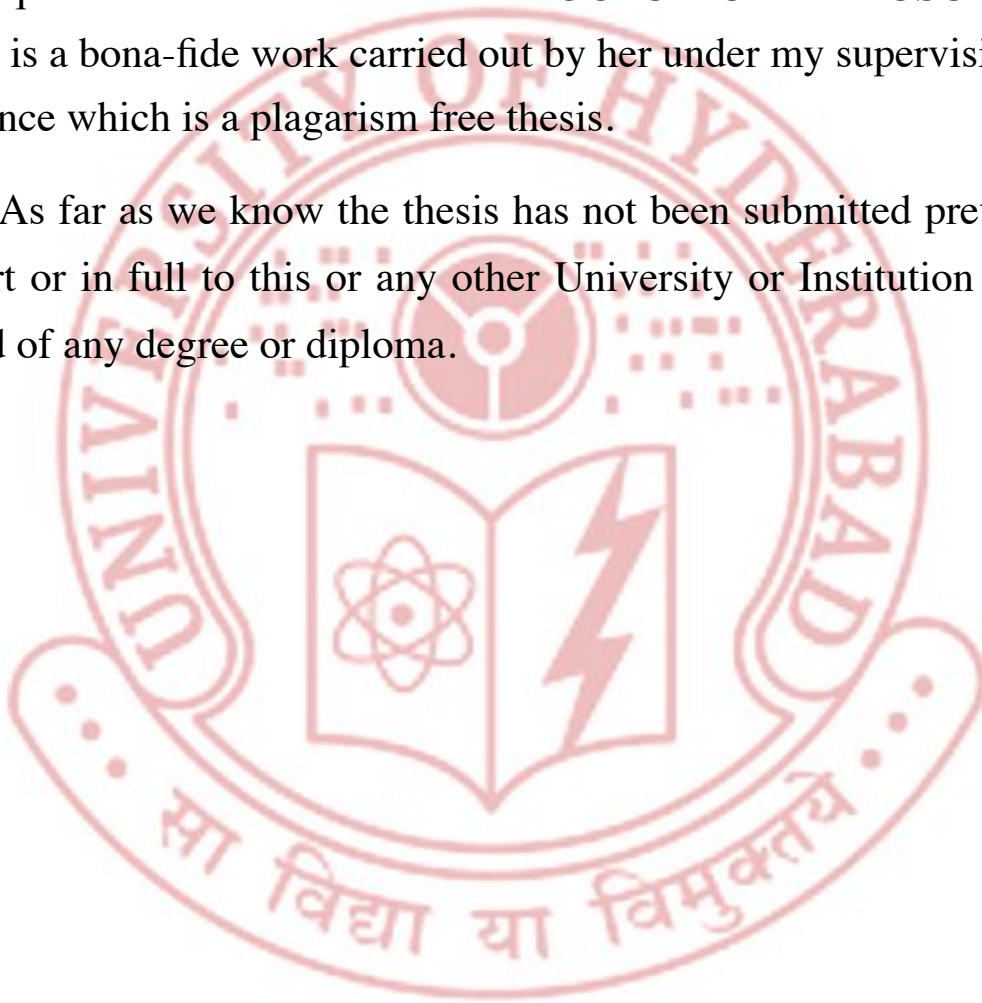
(POOJA TIWARI)

(Registration No. 15HHPH01)

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled '**TASLIMA NASRIN KI ATMKATHA MEIN DHARM, PITRISATTA AUR RAJNEETI**' (तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म, पितृसत्ता और राजनीति) submitted by **POOJA TIWARI** bearing registration no. **15HHPH01** in partial fulfilment of the requirements for the award of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** in Hindi is a bona-fide work carried out by her under my supervision and guidance which is a plagiarism free thesis.

As far as we know the thesis has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.



Signature of the Supervisor

Head of the Department

Dean of the School of Humanities

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled '**TASLIMA NASRIN KI ATMKATHA MEIN DHARM, PITRISATTA AUR RAJNEETI**' (तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म, पितृसत्ता और राजनीति) submitted by **POOJA TIWARI** bearing registration no. **15HHPH01** in partial fulfilment of the requirements for the award of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** in Hindi is a bona-fide work carried out by her under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Parts of this thesis have been :

A. Published research paper in the following publications :

1. Hindi Mein Anudit Atmkatha Ki Parampara aur Taslima Nasrin (Vimal Vimarsh, ISSN No-2348-5884, CHAPTER-1)
2. Taslima Nasrin Ki Atmkatha Mein Chintan Ke Mool Prashan (Unmesh, ISSN No. 2394-2207, CHAPTER-6)

B. Research Paper presented in the following conferences :

1. Samkalik Hindi Sahitya Ka Pariprekhyā : Dasha-Disha (National Seminar-2016, Department of Hindi, Sikkim University, Sikkim)
2. Taslima's Literature : A Brave and Unique Voice of Protest (International Seminar- 2018, Department of English, University of Mumbai)

Further the student has passed the following courses towards fulfilment of coursework requirement for Ph.D. :-

Course Code	Name	Credit	Result
1. 701	Research Methodology	4	Pass
2. 801	Critical Approches to Research	4	Pass
3. 802	Research Paper	4	Pass
4. 826	The Ideological Background of Hindi Literature	4	Pass
5. 827	Practical Review of the Texts	4	Pass

Supervisor
Department of Hindi

Head of the Department
Department of hindi

Dean
School of Humanities

समर्पण

'मोने राखा जेखाने भोय शून्य...जेखाने सोत्त सोब शोब्दो उत्स'

अर्थात् 'जहाँ मन भय से मुक्त हो और जहाँ सत्य स्रोत हो प्रत्येक शब्द का '

- रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि से

उस सत्य आधारित भय शून्य लेखन को समर्पित...

'मोने राखा जेखाने भोय शून्य... जेखाने सोत्त सोब शोब्दो उत्स'
अर्थात् 'जहाँ मन भय से मुक्त हो... जहाँ सत्य स्रोत हो प्रत्येक शब्द का'
- रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि से

उस सत्य आधारित भय शून्य लेखन को समर्पित...

અનુક્રમણિકા

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
प्रस्तावना	i-xii
प्रथम अध्याय : हिंदी में आत्मकथा की परम्परा और तसलीमा नसरीन भूमिका	1-93

1.1 आत्मकथा : उद्भव और विकास

- (क) आत्मकथा का अर्थ एवं परिभाषा
- (ख) आत्मकथा के आवश्यक तत्व
- (ग) आत्मकथा का उद्देश्य एवं प्रयोजन
- (घ) आत्मकथा एवं अन्य विधाओं में प्रकृतिगत भिन्नता
- (च) आत्मकथा की प्रामाणिकता का प्रश्न

1.2 हिंदी में आत्मकथा विधा का विकास : पाश्चात्य प्रभाव या भारतीय परम्परा की देन

- (क) पाश्चात्य प्रभाव
- (ख) भारतीय परम्परा की देन

1.3 हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ और तसलीमा नसरीन : मूल्यांकन

- (क) हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ
- (ख) अनूदित आत्मकथाओं में तसलीमा नसरीन की आत्मकथा : मूल्यांकन

निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय : तसलीमा नसरीन : रचनात्मक व्यक्तित्व भूमिका	94-166

2.1 तसलीमा नसरीन : रचनात्मक व्यक्तित्व

- (क) व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक पक्ष

(ख) रचनात्मक व्यक्तित्व : निर्वासन से पूर्व

(ग) रचनात्मक व्यक्तित्व : निर्वासन के पश्चात्

2.2 रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

2.3 तसलीमा नसरीन के साहित्य की संवेदना : अभिव्यक्ति के प्रमुख विषय

निष्कर्ष

तृतीय अध्याय : तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म का स्वरूप 167-287

भूमिका

3.1 धर्म की संकल्पना : एक परिचय

(क) धर्म की व्युत्पत्ति का कारण

(ख) धर्म की व्युत्पत्ति सम्बन्धी विविध सिद्धान्त

(ग) धर्म का क्रमिक विकास

(घ) धर्म की शाब्दिक व्युत्पत्ति और उसका अर्थ

(च) धर्म की परिभाषा

(छ) धर्म का स्वरूप

(ज) विश्व के विभिन्न धर्म

(झ) धर्म सुधार के प्रयास

(ट) धर्म के लिए साझा प्रयास

3.2 तसलीमा का धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण

(क) धर्म की आलोचना

(ख) धर्म की आलोचना के लिए प्रेरित करने वाले कारक

(ग) धर्म की आलोचना में प्रस्तुत तर्क

निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय : तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में पितृसत्ता भूमिका

288-386

4.1 पितृसत्ता : एक परिचय

- (क) स्त्री और पुरुष की उत्पत्ति सम्बन्धी मत
- (ख) लिंगभेद क्यों और कैसे प्रारम्भ हुआ
- (ग) मातृकुल से पितृकुल तक का सफर
- (घ) पितृसत्ता का परिणाम
- (च) पितृसत्ता के समानांतर एवं पितृसत्ता के विरोध

4.2 तसलीमा की आत्मकथा में पितृसत्ता

- (क) बांग्लादेश में पितृसत्ता का स्वरूप और स्त्रियों की स्थिति
- (ख) तसलीमा की आत्मकथा में पितृसत्ता से शोषित स्त्रियों का जीवन
- (ग) आत्मकथेतर रचनाओं में स्त्रियों का जीवन
- (घ) स्त्रियों के विसंगतिपूर्ण जीवन का कारण
- (च) तसलीमा का स्त्री-विमर्श

निष्कर्ष

पंचम अध्याय : तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में राजनीति भूमिका

387-511

5.1 बांग्लादेश : एक इस्लामिक राष्ट्र बनाम धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक राष्ट्र की राजनीतिक पृष्ठभूमि

- (क) बंगाल प्रान्त से बांग्लादेश तक : राजनीतिक परिदृश्य
- (ख) धर्म और राजनीति का गठजोड़

5.2 तसलीमा के विरुद्ध राजनीति

- (क) निर्वासन का षड्यंत्र और ब्लासफेमी की राजनीति
- (ख) प्रतिबंध की राजनीति
- (ग) उपेक्षा की राजनीति : असाहित्यिकता और अश्लीलता के आरोपों के मध्य उपेक्षित साहित्य
- (घ) साहित्यिक प्रतिद्वंद्विता की शिकार लेखिका

निष्कर्ष

षष्ठ अध्याय : तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म, पितृसत्ता और राजनीति के विकल्प की तलाश : मानवतावाद के रूप में भूमिका

512-551

6.1 मानवतावाद : मनुष्य को मनुष्य स्वीकार करने की अवधारणा

- (क) मानवतावाद का शाब्दिक अर्थ एवं परिभाषा
- (ख) मानवतावादी दर्शन
- (ग) मानवतावादी अवधारणा का क्रमिक विकास
- (घ) मानवतावाद के प्रकार

6.2 मानवतावादी तसलीमा : विकल्प के रूप में मानवतावाद की स्थापना

- (क) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की पक्षधर
- (ख) थियोसेंट्रिक समाज के स्थान पर एन्थ्रोपोसेंट्रिक समाज की स्थापना पर बल
- (ग) धर्मनिरपेक्षता की समर्थक
- (घ) नास्तिकतावादी
- (च) नस्लवाद का विरोध
- (छ) अहैतुक प्रेम, स्त्री-पुरुष समानता और स्वतंत्रता पर बल
- (ज) निर्वासितों और विस्थापितों की पक्षधर
- (झ) मानवतावाद पर आधारित राजनीति की पक्षधर

6.3 मानवतावादी मूल्यों पर आधारित समाज - यूटोपिया या यथार्थ ?

निष्कर्ष

उपसंहार

552-573

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

574-589

परिशिष्ट

1. मानचित्र-1, 2
2. मानचित्र-1, 2, 3
3. तसलीमा नसरीन का जीवन परिचय
4. प्रकाशित शोध आलेख
5. शोध-पत्र प्रस्तुतीकरण प्रमाणपत्र

प्रस्तावना

प्रस्तावना

वस्तुतः जब पुरुष की दृष्टि में स्त्री, 'मनुष्य' के स्तर से उतरकर 'उपभोग की वस्तु' के स्तर तक आ जाए, जब उसे हर रोज अपनी देह को बचाने के लिए जद्दोजहद करनी पड़े, वह घर की चारदीवारी में कैद कर दी जाए, उसकी अपनी कोई पहचान न हो, उसे लगातार एहसास-ए-कमतरी में जीना पड़े, स्त्री के लिए धर्म की बेड़ियों को दिन पर दिन और मजबूत किया जाता रहे, राजनीति अपने उद्देश्यों को भूल कर स्त्री के लिए अभिशाप बन जाय, तो ऐसे में स्त्री का दायित्व क्या है ? वह स्त्री जो समाज के प्रति संवेदनशील है, जो अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर नहीं रह सकती, सिमटना और घुटना छोड़ चुकी है, जो लिखना जानती है, स्वयं भुक्तभोगी है, निश्चित रूप से वह स्त्रियों की दशा देखकर व्याकुल हो उठेगी और स्त्रियों की इस दशा के लिए जो भी ज़िम्मेदार हैं, वह उन सबकी निंदा करेगी और यह सहज है कि वह उन सबसे प्रश्न करे, उनकी मान्यताओं को दरकिनार कर दे ! 'तसलीमा नसरीन' ऐसी ही लेखिका हैं, जिन्होंने समाज की दकियानूसी विचाधाराओं को पूरे यथार्थ के साथ अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया और अपने लेखन के माध्यम से पितृसत्ता, समाज, धर्म और राजनीति को आईना दिखाने का प्रयास किया है।

हालाँकि बांग्लादेशी लेखिका तसलीमा नसरीन का नाम विश्व की शीर्ष स्त्रीवादियों में शामिल किया जाता है, ऐसा इसलिए क्योंकि उन्होंने अपने लेखन से स्त्रीवादी चिंतन को एक नया आयाम दिया है। वे समझौतावादी दृष्टिकोण के स्थान पर स्त्रियों को वह सब कुछ शत-प्रतिशत प्राप्त करते हुए देखना चाहती हैं, जिस पर मनुष्य होने के नाते उनका अधिकार है। इसी अधिकार और सत्ता के लिए अपनी कलम के माध्यम से आवाज़ उठाने वाली इस बांग्लादेशी लेखिका की स्त्री-सम्बन्धी दृष्टि का आलोचनात्मक विश्लेषण करना शोध का लक्ष्य है।

इस शोध के उद्देश्य की पूर्ति के लिए माध्यम बनाया गया है, तसलीमा नसरीन की आत्मकथा को। इसके पीछे कारण यह है कि तसलीमा के मंतव्यों को उनकी रचनाओं को पढ़कर समझा जा

सकता है, किन्तु उन मंतव्यों के पीछे की पृष्ठभूमि को समझने के लिए, तसलीमा जैसी लेखिका बनने के पीछे उत्तरदायी तत्वों और तसलीमा के विभिन्न व्यक्तित्वमूलक पक्षों के साथ उनके विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को समझने के लिए, उनकी आत्मकथा से बेहतर माध्यम और कुछ नहीं हो सकता। इस परिप्रेक्ष्य में तसलीमा की आत्मकथा का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। इसके अतिरिक्त शोध हेतु तसलीमा की आत्मकथा को ही चयनित करने का एक विशेष उद्देश्य है। दरअसल, 'आत्मकथा' साहित्य की वह विधा है, जिसकी रीढ़ है, 'सत्य'। यह सत्य व्यक्तिनिष्ठ होने के साथ वस्तुनिष्ठ भी होता है। आत्मकथा में व्यक्तिगत जीवन के साथ समकालीन जीवन के सन्दर्भ भी सम्मिलित होते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में तसलीमा नसरीन की आत्मकथा का अध्ययन कर उनके समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक सत्तों से परिचित हुआ जा सकता है।

तसलीमा की आत्मकथा केवल एक लेखिका के जीवन का ब्यौरा मात्र नहीं हैं, बल्कि तत्कालीन पितृसत्तात्मक समाज का चेहरा उजागर कर, उसकी कलाई भी खोलती है। समाज, राजनीति और व्यक्ति विशेष पर धर्म के प्रभाव का पर्दाफाश करती है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के साथ-साथ स्त्री पर पड़ने वाले राजनीति के प्रभावों-दुष्प्रभावों को स्पष्ट करती है। धर्म, पितृसत्ता और राजनीति की तिकड़ी के बीच स्त्री, किस तरह पिसती जाती है, इन सब बातों को तसलीमा अपनी आत्मकथा में पर्याप्त उदाहरणों और साक्ष्यों के साथ प्रस्तुत करती हैं। इन्हीं उद्योगों और तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में निहित उद्देश्यों के औचित्य को समझना शोध का उद्देश्य होगा।

तसलीमा ने सात खण्डों में आत्मकथा लिखी। इसके हिंदी संस्करण क्रमशः इस प्रकार हैं - 'मेरे बचपन के दिन', 'उत्ताल हवा', 'द्विखंडित', 'वे अँधेरे दिन', 'मुझे घर ले चलो', 'नहीं कहीं कुछ भी नहीं' एवं 'निर्वासित'। विश्व में आत्मकथा संबंधी लेखन पर दृष्टि डालें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इतनी लम्बी और विस्तृत आत्मकथा संभवतः किसी ने भी नहीं लिखी। अपने अनोखे विचारों के

माध्यम से समाज की आलोचना का बीड़ा अकेले ही उठाने वाली, तसलीमा के धर्म, समाज और राजनीति के विरुद्ध प्रारंभ किये गये इस जिहाद की नब्ज को पकड़ना प्रस्तुत शोध का मुख्य लक्ष्य है।

'अ डिसओबिडिएंट वीमेन' यह वाक्य तसलीमा नसरीन की पहचान का सूत्र वाक्य बन चुका है। इसे उनके प्रशंसक, विरोधी एवं स्वयं तसलीमा भी स्वीकार करती हैं। प्रश्न यह है कि तसलीमा 'नाफ़रमाबदार जीव' क्यों बनी, उन्होंने समाज-नीति क्यों नहीं मानी? स्त्री सम्बन्धी चिंतन में जब भी तसलीमा नसरीन का नाम आता है, यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से समाने आता है कि तसलीमा ने ऐसा क्या लिख दिया या ऐसा क्या कर दिया, जिससे विश्व में उनके इतने विरोधी पैदा हो गये? किन कारणों ने एक लेखिका को समाज के प्रति इतना विद्रोही बना दिया और उन्हें अकेले ही पुरुष, समाज और राष्ट्र से लड़ने को विवश कर दिया? क्यों वह अपना सबकुछ छोड़कर स्त्री के पक्ष में खड़ी हो गई? क्यों पितृसत्ता और धर्म बार-बार उनके विचार के दायरे में कंटक बनते रहे? प्रस्तावित शोध-विषय 'तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म, पितृसत्ता और राजनीति' के अंतर्गत इन्हीं प्रश्नों का उत्तर तलाशने का प्रयास किया गया है।

धार्मिक कट्टरता की जमीन पर उगे सामाजिक मान्यताओं के बियाबान जंगल में अपने अस्तित्व की रोशनी खोज रही 'आधी आबादी' की ओर दुनिया का ध्यान खींचने वाली साहसी बंगाली लेखिका, तसलीमा नसरीन के विचार दिनों-दिन प्रासंगिक हो रहे हैं। अस्तित्व के लिए किए जा रहे उनके संघर्ष से भयभीत होकर उनको अपने ही देश 'बांग्लादेश' से निर्वासित करने वालों ने एक तरह से तसलीमा के विचारों को मान्यता देने का ही काम किया। क्योंकि जिस धार्मिक प्रतिक्रियावादी समाज ने उन पर हिंसक कार्यवाहियाँ कीं और सवाल पूछने वाले को ही मानसिक यातना दी, उसने एक तरह से यह भी साबित कर दिया कि उसके पास तसलीमा के प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है और वह सवालों का जवाब न देकर खुद को बचाने के हिंसक तरीके भी अख्तियार कर सकता है। तसलीमा के लेखन को लेकर प्रगतिशील समाज ने सकारात्मक प्रतिक्रिया दी। दुनिया की

दकियानूसी पितृसत्तात्मक और सड़ी-गली सामाजिक मान्यताओं और रीतियों से छुटकारा पाने की इच्छा रखने वालों ने तसलीमा का भरपूर साथ दिया। नतीजा, विश्व भर में उनके प्रशंसकों की संख्या में लगातार इजाफ़ा हो रहा है।

तसलीमा के लेखन में समाज के लिए वैचारिक ताज़गी के तमाम ऐसे मुद्दे हैं, जिसे कुछ तथाकथित धार्मिक लंबरदारों और नेताओं ने पूरी तरह प्रतिबंधित कर रखा है। उनके लेखन में स्थानीय, विशेषकर एशियाई मुस्लिम समाज की स्त्रियों की दुर्दशा को सामने लाने और उनके पीछे के कारणों की पड़ताल करने का प्रयास किया गया है। उनके लेखन के केंद्र में इस्लाम की तमाम व्याख्याओं के आधार पर स्त्रियों के लिए सीमित किए गए सामाजिक दायरों का वर्णन है। इन्हीं दायरों को तोड़ने के दौरान तसलीमा को मिले अनुभवों ने आत्मकथा का रूप लेकर उनकी लेखनी को और प्रभावी बनाया है।

तसलीमा ने स्त्री-विरोधी समाज से संवाद करने के लिए अपना लेखन शुरू किया। अपने सवालों का जवाब न पाकर वह और भी विद्रोही तेवर के साथ लेखन में जुटी हैं। फिलहाल तसलीमा के लेखन में स्त्री-मुक्ति के तमाम ऐसे सवाल भी शामिल हो चुके हैं, जिन्हें भौगोलिक सीमाओं, सांस्कृतिक मर्यादाओं और भाषाओं के जाल में उलझा कर खत्म कर दिया जाता है। पितृसत्ता, धर्म और राजनीतिक व्यवस्था बार-बार उनके विचारों के विस्तार और अभिव्यक्ति के मार्ग में बाधक बनती रही है। तसलीमा ने इन बाधाओं से निकल आने के लिए अपनी आत्मकथा में क्या मार्ग सुझाया है?, प्रस्तुत शोध प्रबंध यही पड़ताल करता है।

'लज्जा' पुस्तक आने के बाद से ही तसलीमा नसरीन की रचनाओं का विभिन्न भाषाओं के साथ-साथ हिंदी में भी अनुवाद किया गया। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर बहुत से वृत्तचित्र अंग्रेजी, बांग्ला एवं अन्य भाषाओं में निर्मित किये जा चुके हैं। हाल ही में पश्चिम बंगाल की निर्देशक और अभिनेत्री चुरनी गांगुली ने उनके जीवन पर 'निर्वासित' नाम से एक फिल्म भी बनाई है। उन पर देशी

और विदेशी लेखकों ने असंख्य लेख-आलेख लिखे हैं। विश्व के विभिन्न देशों में तसलीमा पर काफ़ी शोध कार्य किये जा चुके हैं। उनकी रचनाओं पर भारत और भारत के बाहर शोध-कार्य हुए हैं। उदाहरण के लिए, भारत में चौधरी चरण सिंह यूनिवर्सिटी, मेरठ¹ और महर्षि दयानंद यूनिवर्सिटी, रोहतक² में अंग्रेजी भाषा में शोध-प्रबंध प्रस्तुत किये जा चुके हैं। शोध के अतिरिक्त तसलीमा के जीवन संघर्ष, उनके विचारों आदि को लेकर कई पुस्तकें अंग्रेजी, हिंदी और अन्य विदेशी भाषाओं में लिखी गयी हैं। जैसे - हिंदी में मोहन कृष्ण बोहरा की 'तसलीमा संघर्ष और साहित्य', कृपाशंकर चौबे की 'नजरबंद तसलीमा' और अंग्रेजी में हनीफा दीन की 'दि क्रिसेंट एंड दि पेन', मिहिर महेश दवे की पुस्तक 'तसलीमा नसरीन : अ कमिटेड ह्यूमेनिस्ट', पीटर प्रिस्किल की 'तसलीमा नसरीन : द डेथ ऑर्डर एंड इट्स बैकग्राउंड' आदि। अब प्रश्न यह उठता है कि इतना सब कुछ लिखे जाने के बाद तसलीमा के संदर्भ में किये जा रहे प्रस्तुत शोध की उपादेयता क्या है ? इसके सम्बन्ध में यह कहूँगी कि एक तो तसलीमा को अनुवाद से इतर, समझने का प्रयास हिंदी में बहुत ही कम लोगों ने किया है और स्त्रीवादी अध्ययन की बात करने वाले भयवश या असहमतिवश तसलीमा के विचारों को उद्धृत करने से बचते रहे हैं। दूसरा, यह शोध इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है कि हिंदी में तसलीमा को लेकर अकादमिक रूप से किया गया, सम्भवतः यह प्रथम शोध कार्य है। इसके अतिरिक्त तसलीमा पर अब तक लिखी गयी जितनी भी पुस्तकों को मैंने पढ़ा उनमें यह पाया कि तसलीमा के साथ हुई दुर्घटनाओं पर अफ़सोस तो सभी ने जताया, कविताओं की प्रशंसा की किन्तु उनके धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण के सम्बन्ध में खुलकर बात करने से बचते रहे हैं। किसी ने उनके धर्म के विरोध या धार्मिक कट्टरता को खत्म करने के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गये तर्कों और प्रमाणों का पुनर्परीक्षण या मूल्यांकन करने का प्रयास नहीं किया। इस शोध प्रबंध में तसलीमा के धर्म के विरोध में दिए गये तर्कों का पर्याप्त साक्ष्यों के आधार पर पुनर्परीक्षण करने का भी प्रयास किया गया है। अंतर्वस्तु के आधार पर कह सकते हैं कि इस शोध-प्रबंध का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है।

यह शोध वस्तुतः एक अंतर्विद्यावर्ती/अंतरानुशासनिक अनुसन्धान है। इस शोध को पूर्ण बनाने के लिए साहित्य के साथ-साथ राजनीति, धर्म-दर्शन, स्त्री-अध्ययन, इतिहास, भूगोल एवं मनोविज्ञान जैसे विषयों को प्रयुक्त किया गया है। इन सभी विषयों का एक साथ प्रयोग कर शोध की वैधता एवं प्रामाणिकता को उच्च स्तर प्रदान करने का प्रयास किया गया है। चूँकि प्रस्तावित शोध-विषय साहित्यिक अनुसन्धान के अंतर्गत आता है, अतः अनुसन्धान के दौरान साहित्यिक अनुसन्धान के विषयानुरूप उपयोगी और अपेक्षित पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। मुख्यतः शोध 'आलोचनात्मक पद्धति' पर आधारित है। आवश्यकतानुरूप समाजशास्त्रीय, ऐतिहासिक, और तुलनात्मक पद्धतियों का भी प्रयोग किया गया है। विभिन्न साहित्यिक समीक्षाओं और पूर्ववर्ती अनुसंधानों तथा आधार ग्रंथों, सहायक ग्रंथों का अध्ययन कर तसलीमा के साक्षात्कारों, मीडिया और इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्रियों से तथ्य संकलन किया गया है। इस दौरान यह ध्यान में रखा गया है कि मूल विषय से भटकाव न हो और मौलिकता बरकरार रहे।

वर्तमान बहुआयामी और अंतर्विद्यावर्ती/अंतरानुशासनिक अनुसन्धान एवं अध्ययन के परिदृश्य में हिंदी अध्ययन एवं अध्यापन के लिए हिंदीतर लेखकों, रचनाकारों के लेखन के अतिरिक्त साहित्येतर विषय का भी महत्व बढ़ रहा है। हिंदी साहित्य के अध्ययन के दौरान संस्कृत, अंग्रेजी, बांग्ला और अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं के साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक और अन्य आलोचनात्मक ग्रन्थों को अपने ज्ञान को समृद्ध करने का माध्यम बनाया जाता रहा है। ऐसे में तसलीमा नसरीन के साहित्य का अध्ययन हिंदी साहित्य को स्त्रीवादी दर्शन और स्त्री-विमर्श के संदर्भ में नयी दृष्टि से परिचित कराने वाला सिद्ध हो सकता है।

इसके अतिरिक्त अपने आप में एक स्कूल (निकाय) की भाँति काम करने वाली तसलीमा विश्व की ऐसी इकलौती लेखिका हैं, जिन्हें अपनी जन्मभूमि से लम्बे समय के लिए निर्वासित रहना पड़ा है। इस शोध के माध्यम से उनके लेखन के स्वरूप और उन परिस्थितियों को समझा जा सकेगा,

जिसकी वजह से एक देश ने इस लेखिका को दर-दर भटकने और जीवन-भर अस्थायित्व और निष्कासन के दंश को झेलने के लिए बाध्य कर दिया। यहाँ तसलीमा के निष्कासन और प्रतिबंध की राजनीतिक पृष्ठभूमि की भी पड़ताल की गयी है। यह हिंदी साहित्य में एक 'मनोविश्लेषणात्मक शोध' के रूप में सम्मिलित किया जा सकेगा, जिसमें न केवल एक लेखिका की लेखन-शैली का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है, बल्कि सरकार और समाज की तत्कालीन परिस्थितियों का भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है, जिसने एक लेखिका को 'विद्रोही लेखिका' बनाया और एक राष्ट्र को 'धर्मसापेक्ष राष्ट्र' और अतार्किक निर्णय लेने वाला राष्ट्र बना दिया।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तावित शोध-प्रबंध 'तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म, पितृसत्ता और राजनीति' को छह अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय 'हिंदी में आत्मकथा की परम्परा और तसलीमा नसरीन' में आत्मकथा विधा के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालने के साथ हिंदी में आत्मकथा लेखन की परम्परा और क्रमिक इतिहास के विषय में विवेचन किया गया है। इसके साथ ही इस अध्याय में अनूदित आत्मकथा की परम्परा में तसलीमा नसरीन की आत्मकथा की भूमिका और स्वरूपगत भिन्नता आदि का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही आत्मकथा की विधा के रूप में उपादेयता और प्रासंगिकता सम्बन्धी चिंतन भी इस अध्याय का हिस्सा है। इसके साथ ही, आत्मकथा के उद्देश्य और प्रयोजन, अन्य विधाओं से भिन्नता, आत्मकथा की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का प्रश्न के अतिरिक्त हिंदी में विभिन्न देशी और विदेशी भाषाओं से अनूदित आत्मकथाओं का विवरण देने के साथ-साथ अनूदित आत्मकथा में बांग्ला से अनूदित तसलीमा की आत्मकथा की महत्ता और विशिष्टता को देखा गया है एवं हिंदी में इस प्रकार की आत्मकथा के अभाव के कारणों का विश्लेषण भी किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'तसलीमा नसरीन : रचनात्मक व्यक्तित्व' में तसलीमा के रचनात्मक जीवन के क्रमिक विकास को उनकी आत्मकथा के आधार पर देखने का प्रयास किया गया है। यह अध्याय

मुख्यतः तसलीमा के रचनात्मक व्यक्तित्व के विकास को एक कथा के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसका उद्देश्य एक लेखिका के निर्माण के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पहलुओं को समझना है। इसमें तसलीमा के रचनात्मक व्यक्तित्व को दो अलग-अलग कालखंडों में विकसित होता हुआ देखा गया है - निर्वासन से पूर्व और निर्वासन के पश्चात्। इसके साथ ही इस अध्याय में तसलीमा की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और उनके साहित्य की संवेदना को समझने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय का शीर्षक है 'तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म'। तसलीमा के भोगे हुए यथार्थ की मूल भावना को समझने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम उन पदों के अर्थ और स्वरूप को समझा जाए, जिसे तसलीमा ने कई बार स्त्री के विकास में ही नहीं बल्कि समाज के विकास में बाधक पाया है। उनमें से एक पद है 'धर्म'। इस अध्याय में सर्वप्रथम 'धर्म' शब्द, उसके स्वरूप और तत्संबंधी अवधारणाओं पर व्यापक चर्चा की गयी है और तत्पश्चात् इस सम्बन्ध में तसलीमा के मत का आलोचनात्मक विवेचन किया गया है। 'धर्म' एक ऐसा मसला है, जिस पर एकमत होना बहुत ही कठिन है। इसका कारण, विश्व में असंख्य धर्मों का अस्तित्व और उन धर्मों की असंख्य व्याख्याएँ एवं तत्संबंधी मान्यताएँ हैं। एक तरफ 'धर्म' मनुष्य को निर्देशित करता है और अलौकिक से संपर्क साधने का माध्यम बनता है, वहीं दूसरी ओर उसकी कई नकारात्मक भूमिका भी दिखाई देती है। धर्म की इस नकारात्मक भूमिका पर बोलने का साहस बहुत कम लोग कर पायें हैं। तसलीमा नसरीन उनमें से एक हैं। इस सम्बन्ध में उनका आत्मकथेतर साहित्य धर्म पर खुलकर प्रहार करता चलता है तो आत्मकथा उन कारणों और उन परिस्थितियों का ब्योरा देती चलती है, जिसके कारण तसलीमा ने धर्म के विरुद्ध कलम चलाई। प्रस्तुत अध्याय में लेखिका के धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया गया है, जो डंके की चोट पर यह घोषणा करती है कि 'धर्म का समूल नाश कर दिया जाना चाहिए'। 'धर्म को मानने का अधिकार है, तो धर्म की आलोचना का अधिकार भी होना चाहिए' इस सूत्र वाक्य के द्वारा तसलीमा ने धर्म का विकल्प खोजने का मार्ग ही तो ढूँढना चाहा है। ऐसे में हवा में लहराती तलवारों और सड़कों पर उतरे लाखों लोगों के तमतमाते

चेहरों को देखकर भी तसलीमा स्वयं के भय को दरकिनार कर किस तरह 'धर्म' को 'भय' के रूप में प्रतिस्थापित कर उससे मुक्ति के अपने संकल्प पर डटी रह सकीं, यह अध्याय उन परिस्थितियों से गुजरने के साथ-साथ तसलीमा के द्वारा धर्म की आलोचना में प्रस्तुत तर्कों का भी तमाम प्रमाणों के आधार पर पुनर्मूल्यांकन करता है।

चतुर्थ अध्याय है 'तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में पितृसत्ता'। तसलीमा के द्वारा स्त्री सम्बन्धी चिंतन के समय प्रयुक्त किये गये पदों में दूसरा महत्वपूर्ण पद है 'पितृसत्ता'। तसलीमा इस पद को स्त्री-अधिकारों और सामाजिक समानता के दायरों को सीमित करने वाले पद के रूप में देखती हैं और इसके लिए वे किसी आन्दोलन का हिस्सा नहीं बनतीं बल्कि अपने जीवन और लेखन के माध्यम से इसका पुरजोर विरोध करती हैं। प्रस्तुत अध्याय में पितृसत्ता और उसके उद्भव के साथ-साथ उससे सम्बंधित विषयों जैसे स्त्री-मुक्ति आन्दोलन एवं स्त्री-विमर्श की भी चर्चा है। साथ ही इस सन्दर्भ में तसलीमा के मंतव्यों को समझने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय में धर्म और पितृसत्ता के गठजोड़ से प्रभावित स्त्री-जीवन का अध्ययन तसलीमा की दृष्टि से करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम पितृसत्ता की अवधारणा को समझने का प्रयास किया गया है। इसके लिए सर्वप्रथम स्त्री और पुरुष के उत्पत्ति सम्बन्धी कुछ मतों - जैसे वैज्ञानिक और परम्परावादी मत को देखा गया है। तत्पश्चात् लिंग भेद किये जाने के कारण और उसके परिणाम के रूप में मातृसत्ता और पितृसत्ता का विकास और इस विकास में बदलती स्त्री और पुरुष की भूमिका को देखा गया है। इस बदलती भूमिका में स्त्रियों का सत्ता से पदस्थापन और उसकी परिणति का विवरण तो है ही इसके साथ ही स्त्रियों के दुःसह्य होते जीवन में सुधार के लिए किये गये प्रयासों जैसे - सामाजिक सुधार आन्दोलन और पितृसत्ता के विरोध में स्त्री विमर्श की स्थापना तक का विवरण है। इन सब विवरणों में तसलीमा की भूमिका को उनके पितृसत्ता विरोधी और स्त्री समर्थक उन विचारों के माध्यम से स्थापित किया गया है, जो उन्होंने आत्मकथा में प्रस्तुत किये हैं। किसी भी स्त्री समर्थक संगठन में भाग न लेने वाली तसलीमा के विचारों ने अकेले ही निकाय की भाँति काम किया है इसलिए इस अध्याय में एक

स्त्री के रूप में उनके और उनके आस-पास की अन्य स्त्रियों के जीवन को देखने के साथ उस स्थिति को समझा गया है, जो उसके लिए उत्तरदायी हैं। तसलीमा इसके लिए पितृसत्ता और धर्म के गठजोड़ को उत्तरदायी मानती हैं। वस्तुतः इस गठजोड़ के पीछे के कारणों को समझे बिना तसलीमा के लेखन के मर्म को समझना मुश्किल है।

पाँचवा अध्याय है 'तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में राजनीति'। यहाँ राजनीति से तात्पर्य राज्य की नीति से तो है इसके साथ ही धर्म और पितृसत्ता को हथियार बना स्त्री के विरुद्ध तैयार किये जाने वाले परिवेश से भी है। प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम उस बंगाल के राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास को देखा गया है, जो कभी अपनी सामासिक संस्कृति के कारण 'गंगारिदई' के नाम से प्रसिद्ध था। वही बंगाल धीरे-धीरे विभाजित होता गया और इस विभाजन का कारण साम्प्रदायिक रहा। बंगाल 'पश्चिम बंगाल' और 'पूर्वी बंगाल' में विभाजित होने के साथ अल्पसंख्यक हिन्दुओं और बहुसंख्यक मुस्लिमों के आधार पर 'पूर्वी पाकिस्तान' और बाद में 'बांग्लादेश' के रूप में स्थापित हुआ। इस पृष्ठभूमि को देखने का कारण यह है कि इससे यह समझ आता है कि बांग्लादेश की नींव ही धर्म और साम्प्रदायिकता के आधार पर पड़ी है। यही कारण है कि समय-समय पर उस देश की नीतियों और सरकार के कार्यों में भी यह दिखाई देने लगता है। इस अध्याय में बांग्लादेश के राजनीतिक इतिहास की पृष्ठभूमि के साथ वर्तमान राजनीतिक विचारधाराओं को देखने का प्रयास किया गया है। इसका उद्देश्य तसलीमा के संदर्भ में निर्मित किये गये राजनीतिक कुचक्र को समझना है। एक लेखिका जो लेखिका होने से पहले एक स्त्री है किस प्रकार देश और समाज की राजनीति का शिकार हुई और किस प्रकार इस राजनीति ने लेखिका के जीवन की दिशा को ही मोड़ दिया, यह इस अध्याय में देखा जा सकता है। राजनीतिक चालों में धर्म को माध्यम बनाया जाना कोई नई बात नहीं है। प्रस्तुत अध्याय धर्म और राजनीति के इस अंतर्संबंध को तसलीमा की आत्मकथा के आधार पर समझने का प्रयास करता है। इस अध्याय में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि राजनीति की शिकार एक स्त्री के लिये क्यों कोई देश अपना नहीं रह जाता। तसलीमा पर प्रतिबन्ध और निर्वासन की राजनीति,

ब्लासफेमी का षड्यंत्र, निर्वासित लेखिका की पीड़ा, उपेक्षा की राजनीति - साहित्यिकता और असाहित्यिकता के बीच फँसा तसलीमा का लेखन - साहित्यिक प्रतिद्वंद्विता की शिकार लेखिका के विरुद्ध की गयी राजनीति जैसे विविध पहलुओं को भी इस अध्याय में समझा गया है। 'राजनीति प्रेरित धर्म' और 'धर्म प्रेरित राजनीति' के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं, इसके सम्बन्ध में तसलीमा की दृष्टि को प्रमुखता से देखने का प्रयास किया गया है।

छठवाँ और अंतिम अध्याय है 'तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म, पितृसत्ता और राजनीति के विकल्प की तलाश : मानवतावाद के रूप में'। तसलीमा नसरीन आत्मकथा और आत्मकथेतर रचनाओं में कई बार धर्म, पितृसत्ता और राजनीति के द्वारा सीमित की गयी स्त्री के लिए उन विकल्पों की ओर संकेत करती हैं, जिससे उनकी मुक्ति सम्भव हो सकती है या उन्हें उनके सीमित दायरों से बाहर निकाला जा सकता है। यहाँ वे विकल्प के रूप में 'मानवतावाद' को स्थापित करती हैं। यह मानवतावाद है - धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद, जिसके तत्व के रूप में सामने आते हैं - धर्म निरपेक्षता, मानवतावादी प्रेम, समाजवाद और लोकतान्त्रिक मूल्य, समानता और स्वतंत्रता आदि। इस अध्याय में मानवतावाद की सैद्धांतिकी के साथ-साथ इस सम्बन्ध में तसलीमा के मंतव्यों को उनकी आत्मकथा और अन्य आत्मकथात्मक अभिव्यक्तियों के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में मानवतावाद के सम्बन्ध में तसलीमा के मत और विकल्प के रूप में उसकी पदस्थापना का मूल्यांकन है। मानवतावाद के विभिन्न रूपों में तसलीमा के मानवतावादी स्वरूप की पहचान के साथ-साथ तसलीमा द्वारा समर्थित मानवतावादी मूल्यों को एक - एक कर प्रस्तुत किया गया है, जिसमें - धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद से लेकर स्वतंत्रता, समानता, फेलोसेंट्रिक समाज के स्थान पर एन्थ्रोपोसेंट्रिक समाज की स्थापना, समाजवाद के रूप में बेहतर राजनीतिक व्यवस्था को विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया जाना आदि का उल्लेख है।

अंततः प्रस्तुत शोध-प्रबंध में अध्ययन एवं सामग्री संकलन से लेकर लेखन प्रक्रिया की समाप्ति तक उन सभी लोगों को धन्यवाद ज्ञापित करना चाहूँगी, जिन्होंने इस कार्य को सफलतापूर्वक पूर्ण करने में महत्वपूर्ण अवदान किया। हिंदी विभाग, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय की आभारी हूँ कि प्रस्तुत विषय पर मुझे शोध करने का अवसर दिया। विषय चयन और आरम्भिक तैयारी के सम्बन्ध में प्रो. गरिमा श्रीवास्तव (जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली) की आभारी हूँ। निरंतर मार्गदर्शन के लिए शोध निर्देशक प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी का आभार प्रकट करती हूँ। परिजनों और मित्रों के सहयोग को नहीं भुलाया जा सकता, जिन्होंने शोध को पूर्ण करने तक मेरा प्रोत्साहन बनाये रखा। शोध अध्ययन के माहौल को जीवंत बनाये रखने में सहयोगी आप सभी को कोटि-कोटि धन्यवाद।

- पूजा तिवारी

¹ The Fictional Work of Taslima Nasreen :A Social Critique, research scholar - Mohammad Umar, supervisor - Dr. Monika Bhatnagar, Submitted in English Department, Meerut College, Meerut, 2011.

² Thematic Concerns in Taslima Nasrin's Major Novels, Research Scholar - Sneha Lata Sharma, Supervisor - Dr. Satish Arya, Submitted in English Department, Maharshi Dayanand University, Rohatak, August-2010.

प्रथम अध्याय

हिंदी में आत्मकथा की परम्परा और तसलीमा नसरीन

प्रथम अध्याय

हिंदी में आत्मकथा की परम्परा और तसलीमा नसरीन

भूमिका

1.1 आत्मकथा : उद्भव और विकास

- (क) आत्मकथा का अर्थ एवं परिभाषा
- (ख) आत्मकथा के आवश्यक तत्व
 - (अ) आत्मतत्व
 - (आ) कथातत्व
- (ग) आत्मकथा का उद्देश्य एवं प्रयोजन
 - (अ) कलावादी मत
 - (आ) उपयोगितावादी मत
- (घ) आत्मकथा एवं अन्य विधाओं में प्रकृतिगत भिन्नता
 - (अ) आत्मकथा एवं जीवनी
 - (आ) आत्मकथा एवं संस्मरण
 - (इ) आत्मकथा एवं रेखाचित्र
 - (ई) आत्मकथा एवं डायरी
 - (उ) आत्मकथा एवं यात्रावृत्तांत
 - (ऊ) आत्मकथ्य, आत्मवृत्त और आत्मकथा
 - (ऋ) आत्मकथात्मक उपन्यास तथा आत्मकथा
- (च) आत्मकथा की प्रामाणिकता का प्रश्न

1.2 हिंदी में आत्मकथा विधा का विकास : पाश्चात्य प्रभाव या भारतीय परम्परा की देन

- (क) पाश्चात्य प्रभाव
- (ख) भारतीय परम्परा की देन

(अ) संस्कृत में आत्मकथा की परम्परा

(आ) हिंदी में आत्मकथा लेखन का विकास

1.3 हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ और तसलीमा नसरीन : मूल्यांकन

(क) हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(अ) मराठी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(आ) गुजराती से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(इ) पंजाबी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(ई) बांग्ला से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(उ) असमिया से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(ऊ) मलयालम से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(ऋ) तुर्की से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(ए) फारसी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(ऐ) उर्दू से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(ओ) अंग्रेजी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(औ) जापानी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

(ख) अनूदित आत्मकथाओं में तसलीमा नसरीन की आत्मकथा : मूल्यांकन

(अ) तसलीमा की आत्मकथा

(आ) आत्मकथा के सम्बन्ध में तसलीमा का मत

(इ) आत्मतत्व

(ई) कथातत्व

(उ) आत्मकथा में सम्मिलित कवितार्ये : उपादेयता

(ऊ) आत्मकथेतर रचनाओं में आत्मकथा

निष्कर्ष

भूमिका

अपनी कथा कहने की परम्परा भारतीय साहित्य और समाज में बहुत प्राचीन समय से ही रही है। भारतीय समाज ही क्यों बल्कि कह सकते हैं, विश्व के लगभग हर समाज में, अपने बारे में बताने और उसे कथा का रूप देने की परम्परा दिखाई पड़ती है। यह कभी 'गौरव-गाथा' के रूप में दिखाई देती है, तो कभी प्रेरणा उत्पन्न करने वाली कथाओं के रूप में। प्रारम्भ कब से हुआ यह कह पाना मुश्किल है। लेकिन इस बात के संकेत अवश्य मिलते हैं कि मनुष्य ने अपनी आगे की पीढ़ी को मार्गदर्शन देने, उसके प्रोत्साहन और गौरवपूर्ण इतिहास को सँजोये रखने के लिए कथा का सहारा लेना बहुत पहले ही शुरू कर दिया था। संभवतः जब से मनुष्य ने चित्रों के माध्यम से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करनी शुरू की थी, तभी से इसकी शुरूवात हुई। अर्थात् जब भाषा की शुरुआत भी नहीं हुई थी, तभी से मानव स्वयं की कथा अभिव्यक्त करता रहा है।

'कथा', 'परकथा' और 'आत्मकथा' ये तीनों अलग-अलग पद हैं, किन्तु इन सब में एक चीज समान है और वह है 'कथा'। कथा, परकथा और आत्मकथा के रूप में जीवन के प्रसंगों और अनुभवों के उल्लेख की परम्परा का क्रमिक विकास हुआ है। यह परम्परा किस प्रकार विकसित हुई, आत्मकथा 'साहित्यिक विधा' के रूप में हिंदी में किस प्रकार स्थापित हुई, उसके उद्देश्य क्या हैं, अन्य विधाओं से उसकी क्या भिन्नता है? आदि प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत अध्याय में खोजने का प्रयास किया गया है। साथ ही साथ आत्मकथा की प्रासंगिकता के सम्बन्ध में विविध मतों को प्रस्तुत कर आत्मकथाओं की प्रासंगिकता-अप्रासंगिकता को समझने का प्रयास किया गया है।

आत्मकथा की परम्परा में एक परम्परा, अनूदित आत्मकथा की भी है। तमाम उद्धरणों से स्पष्ट है कि हिंदी में आत्मकथा लेखन को सर्वाधिक प्रेरणा अनूदित आत्मकथाओं से प्राप्त हुई है। ऐसे में यह देखना आवश्यक हो जाता है कि अन्य किन भाषाओं से हिंदी में आत्मकथाओं का अनुवाद हुआ है और ऐसे अनुवादों से हिंदी की कौन-कौन सी स्वरूपगत भिन्नताएँ रही हैं। इस सन्दर्भ में तसलीमा नसरीन की आत्मकथा अति महत्वपूर्ण इसलिए सिद्ध होती है, क्योंकि एक तो जिस साहस

से तसलीमा ने अपने जीवन के सत्यों का उद्घाटन अपनी आत्मकथा में किया है, उसका सर्वथा अभाव हिंदी की आत्मकथाओं में मिलता है और दूसरा, लेखन शैली की दृष्टि से भी उनकी आत्मकथा महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। इस अध्याय में अनूदित आत्मकथाओं के उल्लेख के साथ तसलीमा की आत्मकथा की विशिष्टता को देखा गया है और हिंदी में इस प्रकार की आत्मकथा लेखन के अभाव के कारणों को भी खोजने का प्रयास किया गया है।

1.1 आत्मकथा : उद्भव और विकास

(क) आत्मकथा : अर्थ एवं परिभाषा

रूसी उपन्यासकार नाबोकोव ने एक महान कलाकार के लक्षण बताते हुए लिखा कि "वह उस आदमी की तरह है, जो मकान की नवीं मंजिल से गिरता हुआ अचानक दूसरी मंजिल की एक दुकान का बोर्ड देख सोचता है-,"अरे, इसके तो हिज्जे ही गलत लिखे हैं!"¹ ऐसी ही कला के संवाहक होते हैं - लेखक या रचनाकार। वे अपनी रचनाओं में न केवल निर्जीव को जीवंत बनाने का साहस करते हैं, बल्कि ऐसे प्रसंगों की तरफ समाज का ध्यान आकृष्ट करते हैं, जिनकी ओर लोगों का ध्यान अकसर नहीं जा पाता या जिन्हें किन्हीं कारणों से नजरंदाज कर दिया जाता है। इन लेखकों में आत्मकथाकार तो और भी साहसी होते हैं, जो अपने जीवन के उधड़े पन्नों को आत्मकथा के माध्यम से दोबारा समेटने और जोड़ने का प्रयास करते हैं। संभवतः इसी कारण कठोपनिषद् में कहा गया है 'कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत'² अर्थात् 'धीर मनुष्य ही आत्मा को समझने की ओर उन्मुख होता है'। संभवतः आत्मा की जटिलता ने ही गाँधी को यह कहने पर मजबूर किया कि 'आत्मकथा लेखन तलवार की धार पर चलने के समान है'³।

वस्तुतः आत्मकथा लेखन एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें आत्मविश्लेषण के सामानांतर समाज-विश्लेषण का कार्य भी किया जाता है। यह जितनी व्यक्तिनिष्ठ होती है, उतनी ही वस्तुनिष्ठ भी। आत्मकथा लेखन की जटिलता के विषय में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं, "जब कोई व्यक्ति अपनी जीवनी स्वयं लिखता है तब उसे 'आत्मकथा' कहते हैं, किन्तु अपने चरित्र का विश्लेषण करना सरल नहीं है, क्योंकि यदि लेखक अपने गुणों का वर्णन करता है तो आत्मप्रशंसक कहलाता है, यदि दोषों का उल्लेख करता है तो यह भय बना रहता है कि कहीं श्रद्धालु जनों की श्रद्धा ही न समाप्त हो जाय; और यदि वह अपने दोषों का उल्लेख नहीं करता तो सच्चा आत्मकथा-लेखक होने का अधिकारी नहीं है।"⁴

आत्मकथा लेखन का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। कई बार आत्मकथा दूसरों को दिशा और मार्गदर्शन देने के उद्देश्य से तो कई बार केवल यथार्थ को उजागर करने के उद्देश्य से लिखी जाती है, जो लेखक को एक प्रकार का आत्मसंतोष प्रदान करती है। बच्चन अपनी आत्मकथा के प्रथम खंड 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' के पहले संस्करण की भूमिका में लिखते हैं, "इतने बड़े संसार में अपने को अकेला अनुभव करने से बड़ा बंधन नहीं है। सायुज्य मुक्ति यही है - सबसे युक्त होकर मुक्त।"⁵ इस 'युक्त होकर मुक्त' होने के लिए ही तमाम लेखकों ने आत्मकथा लिखी है और यही इसका मूल प्रयोजन होता है।

अंग्रेजी के समीक्षक डब्लू. एच. डन ने जहाँ आत्मकथा को 'कबंध' अर्थात् हाथ, पाँव और सिर विहीन की संज्ञा देते हुए उसे 'अधूरी कथा' माना है, वहीं कमलेश्वर ने इसे सबसे सघन, पहला और अकृतिम अनुभव की 'सच्ची दास्तान' कहा है। वस्तुतः सही अर्थों में देखा जाय तो आत्मकथा व्यक्ति के अपने जीवन के सत्यों का अनावरण है, जो कोई न कोई सामाजिक मूल्य अवश्य रखता है क्योंकि माना जाता है कि मनुष्य ही समाज है।

'आत्मकथा' वस्तुतः आत्मचिंतन कर स्वयं को प्रकट करने का माध्यम है। इस माध्यम का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता रहा है। किन्तु साहित्यिक विधा के तौर पर आत्मकथा की स्थापना आधुनिक काल में ही जाकर हुई, जहाँ अन्य विधाओं यथा कहानी, रिपोतार्ज, उपन्यास, यात्रा-वृत्तांत आदि के विकास के साथ आत्मकथा का भी विकास हुआ। इस समय विकसित हुई विभिन्न विधाओं में आत्मकथा सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि उसमें जीवन के सत्यों को उसके यथार्थ के साथ प्रस्तुत करना होता है।

'आत्मकथा' की शाब्दिक व्युत्पत्ति पर यदि दृष्टि डालें तो यह दो शब्दों 'आत्म' और 'कथा' से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है 'अपनी कथा'। अंग्रेजी में इसके लिए 'ऑटोबायोग्राफी' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह ग्रीक शब्द 'ऑटोस' और 'बायोस' से मिलकर बना है, जिसके अर्थ क्रमशः

हैं - 'स्व' और 'जीवन'। इस प्रकार शाब्दिक उत्पत्ति के आधार पर आत्मकथा को 'स्वयं की कथा' कह सकते हैं। इसके लिए विभिन्न शब्दावलियों का प्रयोग किया जाता है, जैसे - 'आत्मचरित', 'आत्मचरित्र', 'आत्म-कहानी' आदि। हिंदी में आत्मकथा शब्द का सर्वप्रथम किसने प्रयोग किया यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अंग्रेजी के 'ऑटोबायोग्राफी' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग विलियम टेलर ने अंग्रेजी पत्रिका 'द मंथली रिव्यू' में 1797 में किया था। उस समय उन्होंने इस शब्द को एक संकर शब्द कहा था। किन्तु इसमें बहुत अधिक पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन किये जाने की निंदा की थी। आधुनिक अर्थ में इसका सर्वप्रथम प्रयोग रॉबर्ट साउथी ने 1809 में किया।⁶

आत्मकथा को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है :-

आत्मकथा की कोशगत परिभाषा :

मानक हिंदी कोश, "आत्मकथा साहित्य में ऐसी पुस्तक है, जिसमें कोई व्यक्ति अपने जीवन की सभी मुख्य-मुख्य बातों का वर्णन करता है।"⁷

'मानविकी पारिभाषिक कोश' के अनुसार, "आत्मकथा में लेखक के अपने जीवन से सम्बंधित घटनाओं का क्रमिक वर्णन होता है। इसमें लेखक के आंतरिक जीवन या चरित्र पर अधिक बल होता है।"⁸

कैम्ब्रिज डिक्शनरी के अनुसार, "ऑटोबायोग्राफी एक व्यक्ति की स्वयं के द्वारा लिखी कथा है।"⁹

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार, "आत्मकथा एक व्यक्ति की स्वयं के द्वारा लिखी जीवनी है।"¹⁰

'डिक्शनरी ऑफ़ वर्ल्ड लिटरेचर' में जे.टी. शिप्ले का मत है, "आत्मकथा मूलतः लेखक के जीवन का सातत्यपूर्ण विवरण होता है, जिसमें मुख्य बल आत्मनिरीक्षण और अपने जीवन की सार्थकता को बाह्य परिवेश में प्रस्तुत किया जाता है।"¹¹

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कह सकते हैं कि आत्मकथा स्वयं की कथा है, जिसे लेखक प्रस्तुत करता है।

प्राच्य परिभाषा :

डॉ नगेन्द्र, "जब कोई अपनी जीवनी स्वयं लिखता है तो उसे आत्मकथा कहते हैं।"¹²

डी. जी. नायक के मतानुसार, "मानव जीवन कुछ अपरिहार्य क्रमों से गुजरता है, जन्म, बचपन, यौवन तथा वृद्धावस्था। जब इस क्रमिक विकास का वर्णन एक कथा में समाहित करके प्रस्तुत किया जाता है तो साहित्यिक शब्दावली में उसे आत्मकथा नाम दिया जाता है।"¹³

शम्भूनाथ लिखते हैं, "आत्मकथा निजी जीवन वृत्तान्त से एक बड़ी चीज है। यह अपनी व्यापकता में लेखक के भीतर बैठे दृष्टिमान भोक्ता और प्रेक्षक की एक मिली-जुली कथा है। इसमें कल्पनाशील अंतर्दृष्टि आवश्यक है। वस्तुतः इसी अंतर्दृष्टि के बल पर लेखक खुद को किसी समाज या विश्व में रखकर दुबारा देखता है और अपनी स्मृतियों का पुनः सृजन करता है।"¹⁴

व्यंग्य रचनाकार रवीन्द्र नाथ त्यागी लिखते हैं, "अपने बारे में लिखने की इच्छा का जो सुखद परिणाम निकलता है, उसे आत्मकथा कहकर पुकारा जाता है।"¹⁵

भारत भरद्वाज अपने आलेख, 'कथा, आत्मकथा और अलोचकथा' में लिखते हैं, "कहानी, उपन्यास और गद्य की अन्य विधाओं की तरह आत्मकथा भी अंततः किसी व्यक्ति के जीवन संघर्षों का ही व्याख्यान है। यह अलग बात है कि औरों के बहाने कभी-कभी यह प्रत्याख्यान भी बन जाता है।"¹⁶

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि आत्मकथा जीवन का क्रमिक वर्णन है, जो एक सुखद अनुभूति प्रदान करती है।

पाश्चात्य परिभाषा :

ई. स्टुअर्ट बेट्स की पुस्तक 'इनसाइड आउट' में आत्मकथा को परिभाषित करते हुए लिखा गया है, "किसी व्यक्ति के अतीत का चित्रण जो उसने स्वयं प्रस्तुत किया हो।"¹⁷

ऑटोबायोग्राफी पर गहन काम करने वाले आलोचक लेजियोन का मत है, "आत्मकथा, अपने व्यक्तित्व के विकास पर विशेष रूप से, अपने व्यक्तिगत जीवन पर ध्यान केन्द्रित करते हुए अस्तित्व से सम्बंधित एक वास्तविक व्यक्ति द्वारा पूर्वलक्षित गद्य कथा है।"¹⁸

लिंडा एंडरसन के अनुसार, "आत्मकथा उन घटनाओं की ओर मुड़कर देखना है जो दूसरों के लिए महत्व रखती हैं।"¹⁹

स्पष्ट है आत्मकथा स्वयं के जीवन को देखना तो है ही साथ ही इसमें अन्य का जीवन भी महत्वपूर्ण होता है। यह व्यक्तित्व का विश्लेषण करने वाली एक गद्य कथा है।

(ख) आत्मकथा के आवश्यक तत्व

आत्मकथा में व्यक्ति अपने जीवन को उद्घाटित कर समाज के समक्ष एक कथा के रूप में प्रस्तुत करता है। यही आत्मकथा किसी की मार्गदर्शक, प्रोत्साहक होने के साथ अनुभव का एक भंडार-सा खोलती है। आत्मकथा में कल्पना के स्थान पर यथार्थ और वर्तमान के स्थान पर इतिहास का महत्व होता है। ऐसा इतिहास जिसके प्रसंग दूसरों को सीखने का अवसर देते हैं या ऐसा इतिहास जो दूसरों के ज्ञान और अनुभव में वृद्धि करता है। ऐसे में आत्मकथा के कुछ महत्वपूर्ण तत्व निम्नलिखित हो सकते हैं -

(अ) आत्मतत्व :

आत्मकथा का विषय स्वयं लेखक होता है। एच. जी. वेल्स ने कहा, "आत्मकथा में मैं अपना ही पीछा करता हूँ।"²⁰ डॉ कमलेश के शब्दों में, "आत्मकथा लेखक दर्पण के सम्मुख खड़ा होकर स्वयं को देखता ही नहीं बल्कि अपने चेहरे पर पड़ी समय की रेखाओं को भी गिनता है और जीवन के सुख-दुःख के घात-प्रतिघात के चिन्हों को भी एक-एक करके देखता है।"²¹

यह भाव किसी भी आत्मकथा का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। यही आत्मकथा का भावपक्ष है।

आत्मतत्त्व से तात्पर्य लेखक के 'स्व' से है। अर्थात् लेखक इतिहास में स्वयं को खोजकर कहाँ स्थापित कर पाता है, यह इस आत्मतत्त्व पर ही निर्भर करता है। इसमें लेखक की स्वानुभूतियाँ ही आत्मोद्घाटन, आत्मविश्लेषण और आत्मालोचन का माध्यम बनती हैं। यह आत्मोद्घाटन सदैव निष्पक्षता और तटस्थता की माँग करता है। इस आत्मतत्त्व के भीतर लेखक का इतिहास और परिवेश भी सम्मिलित है। आत्मकथा में जो कथा प्रस्तुत की जाती है, वह उस व्यक्ति और समाज का इतिहास होता है। इस ऐतिहासिक परिवेश से पाठक तत्कालीन समय की स्थिति, विचार, सामाजिक वातावरण आदि से परिचित हो सकता है। इस सम्बन्ध में हरिवंश राय बच्चन की कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं - 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ/अगणित उन्मादों के क्षण हैं,/अगणित अवसादों के क्षण हैं,/ रजनी की सूनी घड़ियों को किन-किन से आबाद करूँ मैं !/क्या भूलूँ क्या याद करूँ मैं !'²² अर्थात् अभिव्यक्त करने के लिए असंख्य विषय और घटनाएँ हैं। ये असंख्य घटनाएँ ही आत्मकथा की वस्तुनिष्ठता का आधार हैं, जिसमें एक लेखक के बनने के साथ उसके समाज के बनने और क्रमशः बदलने को देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त आत्म प्रकटीकरण की इच्छा होना भी आत्मकथा के लिए आवश्यक है, जिसे लारा मार्क्स ने 'इंटेंशन' की संज्ञा दी। लारा मार्क्स ने आत्मकथा में 'Intention' को महत्त्व देते हुए लिखा, "आत्मकथा लेखक की गंभीरता, लेखक के व्यक्तित्व की गंभीरता और उसके लिखने की मंशा पर निर्भर करती है।"²³ जैसा कि श्याम सुन्दर दास ने आत्मकथा 'मेरी आत्मकहानी' आत्मकथा लिखने की अपनी मंशा को स्पष्ट करते हुए लिखा, "मेरी यह इच्छा है कि इस समय इन घटनाओं का वृत्तांत तथा अपना भी कुछ-कुछ लिख डालूँ, जिससे समय पड़ने पर मैं इन बातों से काम ले सकूँ और मेरे पीछे दूसरे लोग उन घटनाओं की वास्तविकता जानकर इस समय के ऐतिहासिक तथ्य का यथार्थ निर्णय कर सकें।"²⁴

(आ) कथातत्व :

यह आत्मकथा का कलात्मक तत्व है। आत्मकथा में कथातत्व महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह लेखक की जीवन-कथा पर ही आधारित विधा है। किन्तु यह कथा सामान्य कथा से भिन्न होती

है। वह इसलिए कि सामान्य कथा कल्पना पर आधारित होती है किन्तु आत्मकथा की कथा किसी व्यक्ति के जीवन की सत्यकथा होती है। आत्मकथाकार का कार्य अपने जीवन की बिखरी और अव्यवस्थित घटनाओं को रोचकता के साथ क्रम में पिरोना होता है। अपने जीवन के साथ-साथ लेखक अपने समय के अन्य लोगों को भी कथाओं के इस क्रम में संजोता चलता है। इस प्रकार यह केवल लेखक की ही कथा नहीं होती समाज के अन्य लोगों की भी कथा होती है। यही आत्मकथा की वस्तुनिष्ठता है। डॉ. माजदा असद के अनुसार, "आत्मकथा शब्द में कथात्मकता का तत्व होने के कारण इस साहित्य विधा में वे सभी विशेषताएँ होनी चाहिए, जो कथा साहित्य में होती है। आत्मकथा में कथा साहित्य के गुण होते हुए भी देखे और भोगे जीवन का अंकन होता है।"²⁵ डॉ. पुष्पा बंसल के अनुसार, "आत्मकथा केवल किसी एक व्यक्ति के आत्म की कथा ही नहीं होती है वह साहित्य अथवा काव्य की एक विधा भी है। इसका अर्थ है किसी एक व्यक्ति द्वारा लिखा गया उसका अपना जीवन चरित् जब तक रस, साधारणीकरण, औदात्य, अनुकरण, लोक मंगल, भाव-विह्वलता, निर्वैयक्तिकता आदि की अपेक्षाएँ पूर्ण नहीं करता और वह जब तक काव्य की शर्त पूरी नहीं करता तब तक वह काव्य की परिधि में प्रवेश नहीं कर पाता और तब तक उसे आत्मकथा भी नहीं कहा जा सकता।"²⁶

इस कला पक्ष के भीतर ही भाषा-शैली को भी सम्मिलित किया जा सकता है। आत्मकथा की रोचकता उसकी अभिव्यक्ति की शैली के साथ बढ़ जाती है। ज्यादातर आत्मकथाएँ उत्तम पुरुष एकवचन अर्थात् 'मैं' की शैली में ही अभिव्यक्त की गयी हैं। यह लेखक के 'मैं' से पाठक के 'मैं' को जोड़ने का काम करती है। डॉ. कमलेश सिंह के अनुसार, "आत्मकथा एक ऐसा साहित्य प्रकार है कि जिसे भाषा की दृष्टि से लेखक का निजी दस्तावेज़ कहा जा सकता है।"²⁷ सरल, सहज, बिना किसी लाग-लपेट के साथ लिखी गयी आत्मकथा, पाठक में लेखक के जीवन की जटिलता को सरल शब्दों में समझने की रुचि उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त विवरणात्मक, संस्मरणात्मक, वर्णनात्मक शैलियों में आत्मकथा को लिखा जा सकता है। डायरी, उपन्यास, संस्मरण एवं यात्रा-वृत्तांत आदि

विधाएँ आत्मकथा लेखन में कई बार सहायक के रूप में भूमिका निभाती हैं। आत्मकथा की शैली और भाषा इस पर निर्भर करती है कि वह किस व्यक्ति की आत्मकथा है। यदि वह किसी साहित्यकार की आत्मकथा है तो उसमें सहजता से साहित्यिक भाषा, सरसता, आदि प्राप्त कर सकते हैं, जबकि यदि वह किसी राजनेता या डॉक्टर या क्रांतिकारी की आत्मकथा है तो रचनात्मकता के धरातल पर इसमें कमियाँ दिख सकती हैं किन्तु जीवन का यथार्थ उतने ही कठोर लहजे में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके उदाहरण हैं - के. जे. अलफोंस, वैशाली हल्दणकर की आत्मकथा और बच्चन या उर्मिला पवार की आत्मकथा का अंतर। डॉ. नगेन्द्र के 'मानविकी पारिभाषिक कोश' के अनुसार आत्मकथा को नीरसता से बचाने के लिए लेखन-शैली को निम्नलिखित आधार पर व्यवस्थित किये जाने का उल्लेख है :-

1. किन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं या आंदोलनों से यदि लेखक का संपर्क रहा हो तो उसका विवरण बाद की पीढ़ियों के लिए रोचक और उपयोगी हो सकता है क्योंकि उससे तत्कालीन मनोवृत्ति का कुछ सही अनुमान, सुलभ हो पाता है।
2. हो सकता है कि स्वयं लेखक का ही इतिहास निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा हो। विख्यात विजेता, शासक, राजनीतिज्ञ अथवा चिन्तक के विचारों का अपने तथा अन्य व्यक्तियों तथा घटनाओं के विषय में उसके मत का सदा महत्व रहता है।
3. लेखक के दृष्टिकोण या विचारों में कुछ विशेषता या अनूठापन हो अथवा वह अपने युग से आगे की बात सोचने वाला हो।
4. लेखक ऐसा व्यक्ति हो, जिसके जीवन का मुख्य कार्य आत्ममंथन और चिंतन रहा हो।²⁸

यह पाठक पर ही निर्भर करता है कि वह किसी लेखक की आत्मकथा के मूल उत्स को किस प्रकार ग्रहण करे। इस सम्बन्ध में पाठक के महत्व को रेखांकित करते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं -

"आत्मकथा लिखना स्वयं को कोड़े से मारने वाले नृत्य की तरह है। आप सड़क पर ही अपने वस्त्र उतारना शुरू कर देते हैं। लेखक के मन में सदैव एक अन्धकारमय कोना होता है जिसे वह अभिव्यक्त करना चाहता है और वह उसे इस प्रकार अभिव्यक्त करता है कि लोग उसकी बातों का भिन्न अर्थ न निकालें। जो कुछ भी लिखा गया है वह उसी प्रकार समझा जाना चाहिए जैसा कि लेखक समझाना चाहता है। यह तो पाठकों पर निर्भर करता है।²⁹ आत्मकथा में लेखक और पाठक दोनों का लगभग समान महत्व होता है। अतः जहाँ एक ओर लेखक स्वयं के जीवन की अभिव्यक्ति और स्वयं के मूल्यांकन को स्वयं के द्वारा प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर ऐसी शैली का प्रयोग भी करता है, जिससे पाठक भी उसके मंतव्यों को समझकर उसका मूल्यांकन कर सकें और अपनी जिज्ञासाओं को शांत कर सकें। हरेप्रकाश उपाध्याय का इस सम्बन्ध में मत है, "आत्मकथा को सीधे शब्दों में परिभाषित किया जाय तो उसे 'कन्फेशन' ही कहा जा सकता है। कन्फेशन से समाज को कुछ मिले चाहे न मिले, पर उससे व्यक्ति और समाज को अपनी गलतियों और संकीर्णताओं को आगे सुधारने की दिशा अवश्य मिल सकती है।"³⁰ शम्भूनाथ का मत है, "आत्मकथा के बारे में यह कहा जा सकता है कि यदि यह निजी इतिहास नहीं है, उसमें समाज का कोई भी पाठक अपनी स्थिति पहचान सकता है। हर आत्मकथा में 'मैं' और 'वे' के अलावा एक 'तुम' है, जो समुदायनिरपेक्ष है। हर आत्मकथा सहृदय पाठक से पूछती है, तुम कहाँ खड़े हो ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। हर पाठक आत्मकथा पढ़ते समय स्वयं अपनी आत्मकथा भी रचता है, वह अपने को पुनरुपलब्ध भी कराता है।"³¹

स्पष्ट है, आत्मकथा किसी न किसी रूप में पाठकों के लिए उपयोगी होनी चाहिए, जिसमें कुछ ऐसे सन्दर्भों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो सार्वजनिक जीवन से सम्बंधित हों और कोई न कोई महत्व रखते हों। इस प्रकार के प्रसंगों और आत्मालोचन को पढ़कर यदि पाठक स्वयं को पुनरुपलब्ध पाता है तो उस आत्मकथा को सफल कहा जा सकता है।

(ग) आत्मकथा का उद्देश्य एवं प्रयोजन :

अब तक लिखी गयी आत्मकथाओं को पढ़कर यह ज्ञात होता है कि अधिकतर आत्मकथाकारों ने किसी न किसी प्रेरणा से अपनी आत्मकथा लिखी और उसका कोई न कोई प्रयोजन और उद्देश्य भी अवश्य रहा है। हरिवंश राय बच्चन ने आत्मकथा को जहाँ 'आत्मप्रेरणा का परिणाम' माना, वहीं मराठी लेखिका उर्मिला पवार ने अपने दलित जीवन की विसंगतियों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए आत्मकथा 'आयदान' लिखी। बच्चन लिखते हैं, "सृजन के मामले में मुझे खेद है कि मैं अपने से बाहर के किसी प्रकार के प्रोत्साहन, प्रलोभन या दबाव का लिहाज नहीं पाता।"³² राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, देवेन्द्र सत्यार्थी, कौशल्या बैसन्त्री आदि सभी ने वाह्य प्रेरक के रूप में अपने सहयोगियों या अन्य लेखकों की प्रेरणा से और आन्तरिक प्रेरक के रूप में अपने अंतर्मन के दबाव के कारण ही आत्मकथा लिखी।

कला या साहित्य के उद्देश्य के सम्बन्ध में दो प्रकार के मत प्रस्तुत किये गये हैं - कलावादी एवं उपयोगितावादी।

(अ) कलावादी मत :

इस मत के अनुसार साहित्य का कोई उद्देश्य नहीं हो सकता। कलावादियों के अनुसार कलाकार लोकोत्तर प्राणी, कला लोकातीत वस्तु तथा कलाजन्य आनंद, अलौकिक, अस्वादयुक्त एवं समाजनिरपेक्ष होता है। विक्टर कूजे ने 'कला-कला के लिए' कहकर उसे सौंदर्यानुभूति का वाहक बताया जिसका समाज, नीति, धर्म, दर्शन आदि से कोई सम्बन्ध नहीं होता।³³ प्लेटो ने साहित्य को प्रत्यय जगत की अनुकृति करने के कारण कलाकारों का बहिष्कार ही कर देने की बात की।³⁴ अरस्तू ने साहित्य को अनुकरणीय मानते हुए इसके दो प्रयोजन - शिक्षा और आनंद, स्वीकार किया है।³⁵ अरस्तू की दृष्टि में काव्य से ज्ञान (प्रत्यभिज्ञान) - जनित शिक्षा तो मिलती ही है, काल्पनिक आनंद भी मिलता है।³⁶ सिसरो ने 'उदात्तता' (सब्लाइमनेस) और 'शालीनता' (डेकोरम) को कला का उद्देश्य माना।³⁷ लॉजाइनस ने कला का उद्देश्य 'उदात्तीकरण' स्वीकार किया।³⁸ क्रोचे ने 'अभिव्यंजनाविवाद'

का सिद्धांत प्रस्तुत कर यह सिद्ध किया कि सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्यभिव्यक्ति अत्यंत सूक्ष्म मानसिक व्यापार हैं। अतः कलापक्ष और वस्तुपक्ष को अलग करके देखना गलत है। इसलिए केवल अभिव्यंजना ही कला का उद्देश्य है।³⁹

(आ) उपयोगितावादी मत :

टालस्टॉय ने कला में किसी भी प्रकार की उदात्तता का विरोध करते हुए उसको गौढ़ स्थान दिया। उनके अनुसार तो कला का साध्य न सौन्दर्य है न आनंद। वे कला को सुधारवादी दृष्टि से देखते हैं।⁴⁰ आर. ए. रिचर्ड्स का मत है कि काव्य सत्ता जगत से भिन्न नहीं है। मार्क्सवादी विचार के उदय के साथ उपयोगितावादी मत को बल मिला।⁴¹ मार्क्स ने भी काव्य के सम्बन्ध में उपयोगितावादी दृष्टि से ही विचार किया और स्वीकार किया कि कला मुख्यतः जनता के लिए है। स्टालिन ने रूस में और माओ ने चीन में साहित्य को राजनीति के प्रचार का मुख्य साधन माना।⁴²

भारतीय साहित्य में भी अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि से संबंधित अनेक ऐसे संप्रदाय रहे हैं, जिनकी दृष्टि में कलापक्ष अधिक महत्वपूर्ण है। किन्तु कहीं-कहीं काव्य के प्रयोजन भी गिनाये गये हैं, जैसे संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य-रचना के उद्देश्यों पर भी गंभीर विचार-विमर्श हुआ है। भरत से लेकर विश्वनाथ तक ने काव्य का प्रयोजन 'पुरुषार्थ चतुष्टय' की प्राप्ति माना है। पुरुषार्थ चतुष्टय से अभिप्राय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति से है। भरत के अनुसार काव्य का प्रयोजन है -

‘दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।

विश्रांति जननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति ॥

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि विवर्धनम् ।

लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति ॥⁴³

अर्थात् दुःख, श्रम, शोक से आर्त तपस्वियों के विश्राम के लिए धर्म, यश, आयु-वृद्धि, हित-साधन, और लोकोपदेश के निमित्त नाट्य की रचना होती है।

आचार्य मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजन बताये हैं-

काव्यं यशेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये

सद्यः परनिवृत्तये कांतासम्मिततयोपदेश युजे ॥⁴⁴

अर्थात् काव्य यश का जनक, अर्थ का उत्पादक, लोक व्यवहार का बोधक, अनिष्ट का नाशक, सद्यः परम आनंद देने वाला और स्त्रियोचित सरस पद्धति से कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश प्रदान करने वाला होता है।

जायसी ने रचना का उद्देश्य 'यश प्राप्ति' मानते हुए लिखा 'औ मन जानि कवित अस कीन्हा/ मकुयह रहै जगत मह चीन्हा'⁴⁵, तुलसी ने 'स्वान्तः सुखाय' रचना की बात की और इसके साथ उससे प्राप्त सुख को अन्य के लिए भी उपयोगी होने की बात कुछ इस प्रकार कही - 'कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सब कहँ हित होई ।' अर्थात् कीर्ति, कविता और संपत्ति वही भली है जिससे सबका कल्याण हो।⁴⁶ इसी प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'लोकमंगल की साधनावस्था' से 'लोकमंगल की सिद्धावस्था'⁴⁷ की भी बात कही और कहा 'कविता का अंतिम लक्ष्य जगत के मार्मिक पक्षों के प्रत्यक्षीकरण करके उनके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है।'⁴⁸ हिंदी के आधुनिक साहित्यकारों में प्रेमचंद, दिनकर आदि उपयोगितावादी थे तो प्रसाद ने आनंदवादी दृष्टि अपनाई, जो कलावाद के अधिक निकट है। अज्ञेय, महादेवी वर्मा आदि कलावादी हैं तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा आदि आलोचकों की दृष्टि विशुद्ध उपयोगितावादी है।

डॉ. श्यामसुंदरदास साहित्य में कलावाद एवं उपयोगितावाद के समन्वित रूप को ही उत्तम और श्रेयस्कर मानते हैं।⁴⁹ इस आधार पर कह सकते हैं कि साहित्य या कोई रचना समाज से जुड़कर ही महत्वपूर्ण होती है। इसी प्रकार आत्मकथा भी एक साहित्यिक विधा होने के कारण समाज से सम्बन्धित है और उसका भी वही प्रयोजन होता है, जैसा अन्य साहित्यिक विधाओं का होता है, किन्तु यहाँ प्रस्तुतीकरण की शैली और स्वरूप भिन्न हो जाता है।

आत्मकथा लेखन के उद्देश्यों को डी.जी.नायक ने अपनी पुस्तक 'आर्ट ऑफ़ ऑटोबायोग्राफी' में कुछ इस प्रकार गिनाया है- स्व का निष्पक्ष परीक्षण, आत्मप्रस्तुति की इच्छा, कलात्मक अभिव्यक्ति, आर्थिक लाभ, आत्मप्रकाशन, पूर्वाग्रहों से मुक्ति, प्रतिशोध, मिथ्या प्रतिष्ठा।⁵⁰ इन उद्देश्यों के अतिरिक्त भी लेखकों के अनुसार आत्मकथा लेखन के अन्य कई अन्य उद्देश्य भी हैं, जैसे - अपने अनुभवों से जन मानस को सीख देने की इच्छा, सहानुभूति प्राप्त करना, पश्चाताप, आत्म-सांत्वना के लिए, भुक्त जीवन अभिव्यक्ति के लिए, समकालीन साहित्य और इतिहास की विवेचना आदि।

आत्मकथा लेखन के इन उद्देश्यों का उदाहरण यदि हिंदी साहित्य में देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ आत्मकथा लेखन के भिन्न-भिन्न उद्देश्य रहे हैं। जैसे - सेठ गोविन्द दास ने आत्मकथा का उद्देश्य 'आत्मनिरीक्षण की भावना' बताया है, अमृतलाल नागर ने आत्मकथा 'आईने के सामने' के प्रथम अध्याय में अपना नखशिख वर्णन किया है। कमला दास ने लिखा, "मैं चाहती थी कि स्वयं को उड़ेल दूँ - कोई भी रहस्य रुका छिपा न रहने दूँ ताकि जब समय आये मेरे कूच का तो विदा ले सकूँ - मैं एकदम साफ़ - शफ़फ़ाक अंतःकरण लिए।"⁵¹ महात्मा गाँधी ने लिखा, "मैं मानता हूँ मेरे सब प्रयोग इकट्ठे जनता को मिलना लाभदायक होगा।"⁵² आत्मकथा के उद्देश्य के सम्बन्ध में नेहरु लिखते हैं, "मेरा उद्देश्य, खासकर अपने ही लाभ के लिए अपने मानसिक विकास को अंकित करना था। मोरारजी देसाई ने 'मारू जीवन वृत्तांत' में आत्मकथा का उद्देश्य अपने जीवन पर लगे आक्षेपों को स्पष्ट करना बताया है। हिंदी की पहली आत्मकथा 'अर्धकथानक' पश्चाताप की दृष्टि से ही लिखी गयी है। बच्चन ने लिखा है, "मुझे कई वर्षों से लग रहा था कि जब तक मैं अपने अंतर से उठती स्मृतियों को चित्रित नहीं कर डालूँगा तब तक मेरा मन शांत नहीं होगा।"⁵³ भुक्त जीवन की अभिव्यक्ति के लिए ज्यादातर दलित और स्त्री-आत्मकथाएँ सामने आती हैं। उदाहरण के लिए - कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' या ओम प्रकाश बाल्मीकि की 'जूठन' इत्यादि।"⁵⁴ ओम प्रकाश बाल्मीकि जूठन में आत्मकथा के अपने उद्देश्य के संबंध में लिखते हैं, "दलित जीवन की पीड़ाएँ असहनीय और अनुभवदग्ध हैं। ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके...अपनी व्यथा-कथा

को शब्द-बद्ध करने का विचार काफी समय से मन में था... एक लम्बी जद्दोजहद के बाद मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा। स्वयं को परत-दर-परत उधेड़ते हुए लगा - कितना दुखदायी है यह सब!"⁵⁵ इसी प्रकार दया पवार 'अछूत' आत्मकथा की भूमिका में लिखते हैं, "दगडू मारुति पवार/के हिस्से आयी/दुखों की यह बनिहारी/ भारतीय समाज व्यवस्था ने/ उसकी झोली में डाली- मैं मात्र उनका भार वाहक/ उसके शब्दों का शब्दांकन किया मैंने/ किसी को न बताएँ/ यह उसकी इच्छा है/ मैं भी सोचता हूँ/आप भी किसी को न बताएँ।"⁵⁶ हरी नारायण ठाकुर लिखते हैं, "दलित रचनाकार दया पवार यदि कहते हैं कि 'यह व्यथा-कथा आप भी किसी को न बताएँ' तो इसमें एक व्यंग्यभारी पीड़ा है। आशय यह है कि अब यह कथा छुपाने की चीज नहीं है। इसको जग-जाहिर कर दिया जाना चाहिए।"⁵⁷ एक तरफ गाँधी ने सत्य को उद्घाटित करने का प्रयोग किया तो वहीं बाबू गुलाब राय ने अपने उचित-अनुचित कार्यों से लोगों को परिचित करवाने के उद्देश्य से आत्मकथा लिखी। स्पष्ट है, आत्मकथा में कभी पश्चाताप करने का मर्म होता है, तो कभी प्रतिद्वंद्विता और कभी स्वानुभवों को सामने लाना उद्देश्य होता है। कह सकते हैं कि आत्मकथा एक प्रकार का सोद्देश्य लेखन है।

(घ) आत्मकथा एवं अन्य विधाओं में प्रकृतिगत भिन्नता :

आत्मकथा की अन्य विधाओं से भिन्नता के सम्बन्ध में हरेप्रकाश उपाध्याय का मत है, "आत्मकथा दूसरी विधाओं से भिन्न है, क्योंकि यह सत्य अनुभवों पर आधारित होती है। इसमें परिस्थितियाँ बनाई नहीं जातीं बल्कि परिस्थितियों का दस्तावेजीकरण होता है, जिनसे स्वतः निष्कर्ष निकलते हैं।"⁵⁸ जीवनी, संस्मरण, साक्षात्कार, डायरी लेखन आदि को आत्मानुभव पर आधारित होने के कारण प्रायः एक ही मान लिया जाता है। किन्तु वास्तव में इनमें बड़े ही सूक्ष्म किन्तु उल्लेखनीय भेद होते हैं, जिनका ज्ञान होने पर ही हम आत्मकथा के वास्तविक स्वरूप को समझ सकते हैं। आत्मकथा का इन विधाओं से अंतर होने के बावजूद आत्मकथा लिखते समय जीवन-कथा को पठनीय और जिज्ञासापूर्ण बनाने के लिए इसमें जीवनी, संस्मरण, कहानी आदि की

विशेषताएँ दिखाई देने लगती हैं। किन्तु ऐसे स्थल पर उनका प्रयोग केवल आत्मकथा की सहयोगी विधा के रूप में होता है। वस्तुतः आत्मकथा साहित्य की एक स्वतंत्र विधा है। सेठ गोविन्ददास ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, "जीवन चरित्र को नाटक, उपन्यास, कहानी आदि के दायरे में रखा भी नहीं जा सकता, हाँ, यदि जीवनियों में स्वाभाविक रूप से कुछ नाटकीय परिस्थितियाँ आ जाएँ, उपन्यास या कहानी के सदृश मनोरंजक घटनाओं का समावेश हो जाय तो साहित्यिक दृष्टि से इनका महत्व अवश्य बढ़ जाता है।"⁵⁹

(अ) आत्मकथा और जीवनी :

जीवनी भी आत्मकथा के ही समान एक आधुनिक विधा है, जिसका हिंदी में प्रारंभ 1881 ई. में गोपाल शर्मा शास्त्री द्वारा दयानंद सरस्वती की जीवनी 'दयानंद दिग्विजय' के साथ हुआ। दोनों में मूलभूत अंतर यह है कि आत्मकथा जहाँ 'स्वयं के द्वारा लिखी गयी, स्वयं की कथा' होती है, वहीं जीवनी में एक व्यक्ति के जीवन को किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा लिखा जाता है। आत्मकथा में आत्मानुसंधान किया जाता है, जबकि जीवनी में पर-अनुसन्धान किया जाता है। जीवनी में व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक और मृत्यु के बाद के जीवन को भी सम्मिलित किया जा सकता है, जबकि आत्मकथा केवल लेखक के जीवित रहने तक की ही होती है। कई बार यह जन्म से प्रारंभ भी नहीं की जाती जैसे - के. जे. अलफोंस की आत्मकथा 'बदलाव के लिए'। यह अनिवार्यतः अधूरी रचना है। आत्मकथा में स्वानुभूतियों का महत्व होता है, जबकि जीवनी में परानुभूतियों को स्थान दिया जाता है। अमृतराय द्वारा लिखित 'कलम का सिपाही' (प्रेमचंद की जीवनी), राम विलास शर्मा द्वारा लिखित 'निराला की साहित्य साधना' (निराला की जीवनी), विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित 'आवारा मसीहा' (शरतचंद की जीवनी) आदि हिंदी में लिखित उल्लेखनीय जीवनियाँ हैं, जिन्होंने जीवनी साहित्य को समृद्ध किया है।

(आ) आत्मकथा एवं संस्मरण :

हिंदी में सबसे पहला संस्मरण आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित 'पहली सलामी' है, जिसमें उन्होंने एसेम्बली में भगत सिंह द्वारा बम फेंकने का आँखों देखा वर्णन किया है। संस्मरण का अर्थ है 'सम्यक् स्मरण'। अर्थात् किसी वस्तु या घटना का आत्मीयता से स्मरण करते हुए उल्लेख किया जाना। स्मृति द्वारा किसी व्यक्ति अथवा घटना का मार्मिक और साहित्योचित वर्णन करना ही संस्मरण है। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार, "भावुक कलाकार जब अतीत की अनंत स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से अनुरंजित कर विशेषताओं से विशिष्ट बनाकर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त करता है, तो उसे संस्मरण कहते हैं।"⁶⁰ आत्मकथा पूरे जीवन की कथा होती है, जबकि संस्मरण जीवन की किसी महत्वपूर्ण घटना या घटनाओं के लेखन को कहा जाता है। स्पष्ट हैं, संस्मरण आत्मकथा लेखन में सहयोगी बन सकते हैं, किन्तु पूर्ण आत्मकथा नहीं। भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'महाप्राण निराला', विनयमोहन शर्मा का 'लक्ष्मीधर वाजपेयी', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'बलराज साहनी' आदि उल्लेखनीय संस्मरण हैं।

(इ) आत्मकथा एवं रेखाचित्र :

हिंदी में रेखाचित्र की शुरुआत 1929 में प्रकाशित पं. पद्मसिंह शर्मा के रेखाचित्र 'पद्म राग' से हुई। गणित में रेखाचित्र शब्द का प्रयोग ऐसी आकृति के लिए किया जाता है, जो रेखाओं से बनी हो। साहित्य में रेखाचित्र से तात्पर्य ऐसी रचना से है, जिसमें कल्पना के माध्यम से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व, या किसी दृश्य, वस्तु या स्थान का चित्र उभारने का प्रयास किया जाता है। कह सकते हैं कि रेखाचित्र में कल्पना का विशेष स्थान होता है, जबकि आत्मकथा में कल्पना का कोई स्थान नहीं होता। यह तो पूर्णतयः लेखक के जीवन के यथार्थ पर आधारित होती है। इसके अतिरिक्त रेखाचित्र की शैली में भी आत्मकथा से काफी अधिक अंतर देखने को मिलता है। रेखाचित्र में चित्रों को उभारने के लिए तदनुरूप शब्दों के प्रयोग पर बल दिया जाता है और इसके लिए व्यंजना और लक्षणा

में ही अधिकतर लेखन किया जाता है, जबकि आत्मकथा में अभिधात्मक शैली को ही उचित माना जाता है। रेखाचित्र और आत्मकथा में घटनाओं की संख्या को लेकर भी अंतर है। आत्मकथा में घटनाओं की बहुलता होती है जबकि रेखाचित्र में इन घटनाओं को चित्रात्मक रूप दिया जाता है। इसमें अपेक्षाकृत भावात्मकता और काल्पनिकता अधिक होती है। रॉय पास्कल के अनुसार, "आत्मकथा जहाँ आत्मकथाकार के जीवन की पूरी याद्दाश्त पर आधारित होती है, वहीं संस्मरण में स्व के स्थान पर अन्य की क्या स्थिति रही है, आत्मकथाकार के जीवन में, इस पर आधारित होता है।"⁶¹ हिंदी में महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'मेरा परिवार', 'पथ के साथी', रामवृक्ष बेनीपुरी का 'माटी की मूर्तें', उपेन्द्रनाथ 'अशक' का 'ज्यादा अपनी कम पराई', सत्यवती मल्लिक की 'अमिट रेखाएँ' आदि उल्लेखनीय रेखाचित्र हैं।

(ई) आत्मकथा और डायरी :

डायरी में कोई व्यक्ति अपने दिन विशेष की अभिव्यक्ति करता है, जबकि आत्मकथा उसके जीवन की समग्र अभिव्यक्ति है। कह सकते हैं, डायरी खण्डों में विभाजित आत्मकथा है। इसमें हम आत्मतत्त्व तो देख सकते हैं किन्तु इसमें कथा नहीं होती। यह घटनाओं के विवरण के कारण स्वरूप में तथ्यात्मक होती है, जबकि आत्मकथा में तथ्यात्मकता को शिथिल करने के लिए कथात्मकता का सहारा लिया जाता है। आत्मकथा पूरे जीवन का विश्लेषण होती है, जबकि डायरी में वर्तमान को ही स्थान दिया जाता है। रॉय पास्कल आत्मकथा और डायरी में अंतर को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं, "आत्मकथा एक समय विशेष में की गयी अपने जीवन की समीक्षा है जबकि डायरी में जीवन की घटनाओं का क्रम चलता है।"⁶²

(उ) आत्मकथा एवं यात्रावृत्तांत :

जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है 'यात्रावृत्तांत' यानी यात्रा का वृत्तान्त। इसमें यात्रा का वृत्तांत प्रस्तुत किया जाता है, जो कि किसी व्यक्ति के जीवन का एक अंश मात्र है। यह सम्पूर्ण जीवन नहीं हो

सकता। किसी व्यक्ति की यात्रा कुछ दिनों, महीनों या वर्षों की हो सकती है, अतः इसमें केवल उतने ही दिनों का वर्णन किया जा सकता है जब तक व्यक्ति यात्रा पर है, जबकि आत्मकथा जन्म से मृत्यु तक समस्त जीवन के उतार-चढ़ाव, उठा-पटक को कथात्मक रूप में अभिव्यक्त करती है। इसका मुख्य लक्ष्य यह होता है कि पाठक जिन स्थलों पर नहीं जा सके हैं, वे उनको पढ़कर उन स्थलों का ज्ञान प्राप्त करें और यात्रा का आनन्द उठायें। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है, राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा' और 'रूस की यात्रा', अज्ञेय की 'एक बूँद सहसा उछली', 'अरे यायावर रहेगा याद' आदि।

(ऊ) आत्मकथ्य, आत्मवृत्त और आत्मकथा :

आत्मकथ्य लेखक की किसी कृति या रचना या घटना के सम्बन्ध में उसके व्यक्तिगत और सारगर्भित विचार होते हैं। कृति के सम्बन्ध में उसकी प्रेरणा, रचना का मूल तत्व, मनोवृत्ति आदि से परिचित करवाता है। इसमें आत्म होते हुए भी आत्म-विश्लेषण नहीं बल्कि संक्षिप्त विश्लेषण होता है, जो एक संदर्भ विशेष के लिए होता है। इसमें लेखक की रचनात्मक वृत्ति समझने को मिलती है, किन्तु जीवन के सम्बन्ध में विश्लेषण तो हमें आत्मकथा में ही मिलता है। आत्मकथ्य एक क्षणिक अभिव्यक्ति है, जबकि आत्मकथा सम्पूर्ण जीवनवृत्त की प्रस्तुति है।

मराठी आलोचकों ने आत्मकथा के स्थान पर 'आत्मवृत्त' शब्द का प्रयोग किया है। महीप सिंह के अनुसार, "मराठी आलोचक इन रचनाओं को आत्मकथा या आत्मचरित्र कहने के बजाय 'आत्मवृत्त' कहना अधिक उचित समझते हैं, क्योंकि उनके कथनानुसार आत्मकथाएँ अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त बुढ़ापे में लिखी जाती हैं। वे स्वकेंद्रित होती हैं। उनमें वर्णित प्रसंग कब के हो चुकने से 'भूतकालीन' होते हैं, 'वर्तमान' से उनका कोई सरोकार नहीं होता। आत्मवृत्त युवा लेखकों के द्वारा लिखे गये हैं, जिन्होंने अपने वृत्तों के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया है कि आखिर हम कौन हैं, जिस रूप में आज हम समाज में पहचाने जाते हैं उसका कारण क्या है। ऐसे लेखक पीछे मुड़कर इसलिए देखते हैं कि सामने का रास्ता साफ़ दिखाई पड़े।"⁶³

(त्र) आत्मकथात्मक उपन्यास तथा आत्मकथा :

'आत्मकथात्मक उपन्यास' लेखक के साहस के अभाव में लिखी गयी आत्मकथा ही होती है। इसमें प्रस्तुतीकरण का केंद्र 'आत्म' से अधिक 'कथातत्व' होता है। अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी', मिथिलेश्वर का 'जाग चेत कुछ करौ उपाई', कौशल्या वैसंत्री का 'दोहरा अभिशाप', कांता भारती कृत 'रेत की मछली', मैत्रिणी पुष्पा 'कृत न हन्यते', कृष्णा सोबती कृत 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुतान' आदि आत्मकथात्मक उपन्यास ही हैं। अज्ञेय ने स्वीकार किया है कि 'आत्मकथा को आत्मकथा में लिखने से ज्यादा आसान है उसे उपन्यास में लिपिबद्ध करना।' ⁶⁴ हंस के आत्मकथा।

विशेषांक में प्रसाद ने लिखा -

"छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ

क्या यह अच्छा नहीं औरों की सुनता मैं मौन रहूँ।"⁶⁵

इस मौन रहने के पीछे आत्मकथा के यथार्थ को न कह पाने के साहस का अभाव हो सकता है या अपने जीवन को तुच्छ समझने की मनोवृत्ति। इसी कारण लेखक पात्रों को रचकर उसके सहारे अपने जीवन की कथा को कहने का प्रयास करने लगता है। यही आत्मकथात्मक उपन्यास का मुख्य तत्व है, जबकि आत्मकथा में पात्रों को गढ़ा नहीं जाता। इसमें वे असली जीवन से उतरकर कथा के साथ स्वयं बहने लगते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि आत्मकथा और उपरोक्त सभी विधाओं में पर्याप्त अंतर है। जहाँ संस्मरण जीवन में बीते हुए किसी एक घटना का जिक्र है वहीं यात्रावृत्तांत लेखक की यात्रा के अनुभव और तत्कालीन स्थिति का ब्योरा मात्र हैं। इन मूलभूत भिन्नताओं के होते हुए भी ये विधाएँ कई बार आत्मकथा की सहयोगी बन जाती हैं।

(च) आत्मकथा की प्रामाणिकता का प्रश्न :

'संतप्त' में सूरजपाल चौहान लिखते हैं, "जीवन की यादें तो बहुत हैं, जो इन घटनाओं को लिखते समय बार-बार चलचित्र की तरह सामने घूमती रहीं लेकिन मैं उन्हें नहीं लिख पाया। जीवन में कभी-कभी ऐसा घट जाता है कि उसे कलमबद्ध नहीं किया जा सकता।"⁶⁶ इस कलमबद्ध न किये जा सकने की असमर्थता से क्या पाठक अर्धसत्य के बीच ही नहीं घूमता रह जाता ? ऐसे में आत्मकथा की प्रामाणिकता का प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठ खड़ा होता है। यह प्रश्न है 'अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता' का प्रश्न अर्थात् जो कुछ भी लिखा गया वह पाठक सच मानेगा या नहीं और पाठक उसे सच किस आधार पर माने ?

इसके लिए आत्मकथा लेखक कई कौशलों का प्रयोग करता है, जिससे उसके द्वारा कही गयी बातें सच लगें। जैसे कि अप्रिय सच कहने का साहस, कही बातों के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करना आदि। वाल्टर बेंजामिन का मत है कि आत्मकथा स्मृति और विस्मृति के द्वंद्व से पैदा होती है।⁶⁷ ऐसे में, लेखक को अपने जीवन में घटी हर घटना ठीक उसी रूप में याद हो यह जरूरी नहीं और यह भी जरूरी नहीं कि वह हर घटना को आत्मकथा में सम्मिलित करे। वह तो आत्मकथा में वही सम्मिलित करता है जो वह सम्मिलित करना चाहता है। ऐसे में, उसके द्वारा छोड़े गये और सम्मिलित किये गये प्रसंगों के बीच का अन्तराल ही उसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के प्रश्न को जन्म देता है। इस सम्बन्ध में कृष्णानंद गुप्त लिखते हैं, "परन्तु प्रश्न यह है कि क्या, हम भी अपने सम्बन्ध में कुछ लिखते समय यथार्थ सत्य को प्रकट कर सकते हैं ?"⁶⁸

आत्मकथा आत्मालोचन, आत्ममंथन पर आधारित रचना है, जिसमें आत्मश्लाघा और आत्ममुग्धता का सर्वथा अभाव होना चाहिए। आत्मकथा लेखन के समय किसी प्रकार का संकोच, पूर्वाग्रह, महत्वपूर्ण घटनाओं और यथार्थ की भयावहता के प्रकट हो जाने का भय आदि आत्मकथा विधा को कमजोर बना सकते हैं। इस सम्बन्ध में गुलाब राय का मत है, "साधारण जीवन चरित्र से आत्मकथा में कुछ विशिष्टता होती है। आत्मकथा लेखक जितना अपने बारे में जान सकता है उतना

लाख प्रयत्न करने पर भी कोई दूसरा नहीं जान सकता। किन्तु इसमें कहीं तो स्वाभाविक आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति बाधक होती है और किसी के साथ शील-संकोच आत्म-प्रकाश में रुकावट डालता है।"⁶⁹ फ्रायड ने अपनी रचनाओं में सत्य के प्रश्न को खड़ा किया और इसकी प्रमाणिकता की जाँच करने की कोशिश की। उसने यह प्रतिपादित किया कि साहित्य में सत्य की पुनर्रचना की जाती है, किन्तु यह नितांत असम्भव है।

क्या ऐसा संभव है कि किसी भी आत्मकथा में कुछ भी न छिपाया जाय ? इस सम्बन्ध में दो प्रकार के मत हैं। प्रथम मत के अनुसार आत्मकथा महत्वपूर्ण रचना है। वस्तुतः आत्मकथा में लेखक वही लिखता है, जो वह लिखना चाहता है। ग्राब्रियल गार्सिया मार्केज का मत है कि 'जादुई यथार्थवाद' का प्रयोग कर आज सत्ता के भीषण दबावों से दबे-कुचले यथार्थ को आत्मकथा के माध्यम से बाहर निकाल लाने का प्रयास किया जा रहा है। इसमें 'यथार्थ के साथ कल्पना सर्पिल रूप में' जुड़ी रहती है।⁷⁰ जहाँ असत्य, अन्याय और असंतोष के मध्य मनुष्य जीवित हो, उस समाज में जादुई यथार्थवाद के माध्यम से अभिव्यक्त थोड़ा सत्य भी प्रबल प्रोत्साहन का कार्य करता है। दूसरा, इस मत के अनुसार अर्धसत्यों पर आधारित होने के कारण आत्मकथा एक पूर्ण रचना नहीं हो सकती। इसी कारण इसे 'कबंध साहित्य' की संज्ञा दी गयी है। डब्ल्यू. एच. डन ने आत्मकथा को 'टासो' कहा है, जिसका अर्थ है 'आवक्ष प्रतिमा' - 'जिसके मात्र चहरे की पहचान है किन्तु हाथ, पैर धड़ नहीं !' रोजर पोर्टर और एच. आर. वोल्फ का मत है, "सत्य एक व्यक्तिगत मामला है और ऐसे में कोई भी आत्मकथाकार अनन्य सत्य को उद्धाटित नहीं कर सकता।"⁷¹ इसी कारण बेट्स का भी मत है कि आत्मकथा और गल्प या उपन्यास में कोई विशेष अंतर नहीं होता। सुमन राजे के अनुसार, "मुझे ऐसा लगता है, लेखक सबसे ज्यादा सच्चा और ईमानदार तब होता है, जब वह सर्जनात्मक लेखन कर रहा होता है, और सबसे कम ईमानदार तब, जब आत्मकथा में सायास 'सच' लिख रहा होता है।"⁷²

आत्मकथा और गल्प को एक साथ जोड़ते हुए फ्रांसीसी लेखक सर्ज डोब्रोवस्की 'ऑटोफिक्शन' शब्द का प्रयोग करते हैं, जिसमें कल्पना और यथार्थ दोनों का मेल होता है। हिंदी में

इसे 'आत्मकथात्मक उपन्यास' कहा जाता है। जहाँ आत्मकथा में लेखक के जीवन का ब्योरा होता है, वहीं आत्मकथात्मक उपन्यास में उसके अनुभवों का महत्व होता है। इनके आत्मकथा की तरह कालक्रम की दृष्टि से एकदम सटीक होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। आत्मकथा को उपन्यास न मानते हुए भी उपन्यास की श्रेणी में रखते हुए लेखक और सम्पादक अभय कुमार दुबे लिखते हैं, "आत्मकथा में लेखक अपने पुनः आविष्कार की कहानी, खुद को सुनाने के लिए नये सिरे से गढ़ता है। यह भी कहा जा सकता है कि आत्मकथा पुनः आविष्कार का अंतिम चरण है। मेरी मान्यता रही है कि कोई भी जीवन-कथा उपन्यास न कहा जाने वाला (या न माना जाने वाला) उपन्यास ही होती है।"⁷³

आत्मकथा की प्रामाणिकता का निर्धारण उसमें अभिव्यक्ति की ईमानदारी और अनुभूति की प्रामाणिकता के आधार पर किया जा सकता है। हिंदी साहित्य में ईमानदारी के स्तर को देखने का प्रयास विभिन्न कालों में किया गया, जिसके विषय में नामवर सिंह 'कविता के बहाने साहित्य' आलेख में विस्तार से बात करते हैं। उनके अनुसार "कवि की ओर से 'आत्मन्वेषण की घोषणा' और आलोचक की ओर से 'प्रामाणिक अनुभूति' की माँग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह माँग उस खरेपन की माँग है, जिसमें कवि के ईमानदार व्यक्तित्व (ऐसा व्यक्तित्व जो न छायावादी की तरह स्फीत किया गया हो और न प्रगतिवादी की तरह अनुकूलित) के जटिलतम स्तरों का अनुभव होता है।"⁷⁴ एक तरफ छायावादी कवियों में हंस के आत्मकथांक के लिए कविता लिख जयशंकर प्रसाद ने अपनी आत्मकथा का संकेत किया तो दूसरी ओर निराला ने 'सरोज स्मृति' में आत्मचरित का उद्घाटन कर अपनी - अपनी ईमानदारी का दावा किया। किन्तु फिर भी उन पर बराबर शक किया जाता रहा। महावीर प्रसाद ने कहा 'इनके भाव झूठे, इनकी भाषा झूठी'⁷⁵ तो रामचंद्र शुक्ल ने 'भावानुभूति तक कल्पित होने'⁷⁶ की बात कह डाली। दूसरी तरफ ईमानदारी के इस दावे को और मजबूत करने के लिए उत्तर - छायावाद में लेखकों ने अपनी कमियों को ही उजागर करना शुरू कर दिया। बच्चन ने कहा कि 'यदि छिपाना चाहता तो जगत मुझे को साधू समझता'।⁷⁷ नामवर सिंह ने लिखा है कि इस दौर में 'नीयत की सफाई' पर जितना जोर दिया गया उतना अन्य किसी काल में नहीं। प्रगतिवादी युग में

लिखी रचनाओं में ईमानदारी का दावा न कर, दूसरों की ईमानदारी पर शक करने का दौर शुरू हुआ। इस समय मध्यवर्गीय संस्कारों से मुक्ति के लिए मार्क्सवादी चिंतन और मनोविश्लेषणवाद का सहारा लेकर ईमानदारी की तड़प को जगाए रखने का प्रयास किया गया। प्रयोगवाद के दौर में तो 'प्रदीप' पत्रिका में रघुवीर सहाय ने एक लेख 'ईमानदारी' और 'ईमानदारी के बाद' शीर्षक से लिखा। रघुवीर सहाय के शब्दों में, "ईमानदारी वास्तव में एक मौलिक गुण है और बौद्धिक स्तर का पर्याय भी है, जिस पर आकर हमारा तर्क पूर्वाग्रह और व्यक्तिगत हित से ऊपर उठ जाता है और जिस पर आकर हमें वस्तुओं की वास्तविकता का सही अनुभव होता है।"⁷⁸ नामवर सिंह के अनुसार, "ईमानदारी कोई स्वतः सिद्ध और प्रदत्त गुण नहीं बल्कि प्रयत्न साध्य अर्जित क्षमता है, जिसके संवर्धन के लिए अनवरत प्रयत्न की आवश्यकता पड़ती है।"⁷⁹ मुक्तिबोध ने भी 'एक साहित्यिक की डायरी' में ईमानदारी और अनुभूति की प्रामाणिकता पर बात की है। उनके अनुसार, "व्यक्तिगत ईमानदारी वहाँ लक्षित होगी जहाँ वस्तु का वस्तुमूलक आकलन करते हुए लेखक उस आकलन के आधार पर वस्तु-तत्त्व के प्रति सही-सही मानसिक प्रतिक्रिया करे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसकी प्रतिक्रिया में सत्यत्व का आविर्भाव नहीं होता।"⁸⁰ मुक्तिबोध के अनुसार, "व्यक्तिगत ईमानदारी का (एक) अर्थ है - जिस अनुपात में, जिस मात्रा में जो भावना या विचार उठ रहा है, उसको उसी मात्रा में प्रस्तुत करना।"⁸¹ इसी प्रकार लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपनी पुस्तक 'नये प्रतिमान : पुराने निकष' में भी 'अनुभूति की प्रामाणिकता' की बात की है।

साठ के दशक के बाद 'ईमानदारी' और 'अनुभूति की प्रामाणिकता' शब्द को निरर्थक माना जाने लगा और इसके स्थान पर 'साहस' को स्थान दिया गया। मलयज जैसे कवियों ने इस प्रकार की अनुभूति की प्रामाणिकता जैसी शब्दावली के प्रयोग पर सवाल खड़ा किया और उसमें 'रूमानी आत्मनिष्ठता' देखी। आत्मनिष्ठता के स्थान पर साहस का पदस्थापन हुआ। यह साहस था 'अप्रिय से अप्रिय घटना से साक्षात्कार कर सकने की क्षमता'। इस साक्षात्कार को ईमानदारी के स्थान पर रख रचना की प्रामाणिकता का सहारा बनाया गया। नामवर सिंह के अनुसार, "इस दौर के कवियों का

खेल है कि सत्य कहीं सात परदे के अंदर छिपा हुआ कोई रहस्य नहीं है, जिसे खोजने के लिए 'प्रामाणिक अनुभूति' की आवश्यकता हो। उनके अनुसार सम्राट स्वयं नंगा है और यदि कोई आवश्यकता है तो बस उसे नंगा कहने की, जिसके लिए साहस - केवल साहस जरूरी है और इसी साहस का नाम आज ईमानदारी है।"⁸²

स्पष्ट है, कि किसी आत्मकथा में कल्पना और यथार्थ एवं ईमानदारी और साहस का प्रतिशत ही उसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता को निर्धारित करने में सहायक हो सकते हैं। यदि आत्मकथा को सौन्दर्यात्मक दृष्टि से समृद्ध किया जायेगा तो निश्चित रूप से उसमें यथार्थ के साथ कल्पना का पुट भी होगा। आत्मकथा में तथ्यों के प्रस्तुतीकरण से एक नीरसता उत्पन्न होने लगती है और इस नीरसता को कम करने के लिए कल्पना का सहारा लेकर सौन्दर्य में वृद्धि की जाती है। कह सकते हैं, आत्मकथा जितनी अधिक सौन्दर्यात्मकता से लिखी गयी होगी, उसमें यथार्थ का पुट उतना ही कम होगा। एक प्रकार के संशय की स्थिति होने के बावजूद आत्मकथा को डायरी के रूप में देखते हुए उसके महत्व को रेखांकित करते हुए कृष्णानंद गुप्त का मत है, "डायरी लिखना मानों समय के बेगवान रथ के पहिये को क्षणभर के लिए थाम रखने का सुन्दर प्रयत्न है।"⁸³

1.2 हिंदी में आत्मकथा विधा का विकास : पाश्चात्य प्रभाव या भारतीय परम्परा की देन

हिंदी में आत्मकथा विधा के विकास को लेकर दो प्रकार के मत हैं - एक, आत्मकथा साहित्यिक विधा के रूप में पाश्चात्य साहित्य से हिंदी में आयी है। दूसरा, यह आत्मप्रकटीकरण की भारतीय परम्परा का क्रमिक विकास है।

(क) पाश्चात्य प्रभाव :

यदि मूलतः हिंदी भाषा में लिखित आत्मकथा की परम्परा की बात करें तो इसका प्रारंभ 1641 ई. में बनारसी दास जैन द्वारा लिखित आत्मकथा 'अर्धकथानक' से स्वीकर किया जाता है।

आश्चर्य यह है कि हिंदी और हिंदीपूर्व भाषाओं का साहित्य तो पर्याप्त समृद्ध है किन्तु उनमें आदिकाल में आत्मकथा लेखन की कोई परम्परा नहीं मिलती। चाहे संस्कृत साहित्य हो, पालि भाषा का साहित्य हो या प्राकृत और अपभ्रंश का साहित्य हो; सभी में छिटपुट आत्मप्रसंगों के अतिरिक्त आत्मकथा का अभाव मिलता है। उदाहरण के लिए - संस्कृत की कुछ रचनाओं में लेखकों ने स्वयं का परिचय देने की परम्परा का प्रारंभ की, बौद्ध साहित्य को समृद्ध बनाने वाली 'थेर गाथा' और 'थेरी गाथा' में भिक्षु-भिक्षुणियों के आध्यात्मिक जीवन का परिचय मिलता है, रासो साहित्य से राजाओं का शौर्य वर्णन और मौर्य और गुप्त वंश के शिलालेखों से उन वंशों के वंशजों का जीवन परिचय और उनके कार्यों का उल्लेख अवश्य मिलता है, किन्तु इन्हें सही मायने में आत्मकथा नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनमें जगदीश्वर चतुर्वेदी द्वारा बताए गये आत्मकथा को निर्धारित करने वाले तत्वों⁸⁴ - व्यक्तिगत अस्मिता, निर्वैयक्तिकता, सम्प्रेषण, सामूहिकता, सुसंगत अनुभूति, उद्धाटन आदि का पर्याप्त अभाव है। अभाव के कारण कई आलोचकों का मत है कि हिंदी में आत्मकथा विधा पाश्चात्य 'ऑटोबायोग्राफी' से प्रभावित होकर ही आई है। क्योंकि पाश्चात्य साहित्य में तो आत्माभिव्यक्ति का प्रारंभ ग्रीस से हुआ। सिसरो, अरस्तू, प्लेटो आदि के कई ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिनसे उनके जीवन की जानकारी मिलती है। इस सम्बन्ध में कृष्णानन्द गुप्त का मत है, "आत्मकथा हमारे लिए नई वस्तु है। भारतीय साहित्यकारों ने अपने सम्बन्ध में कभी कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझी। यहाँ तक कि दूसरों के सम्बन्ध में भी वे चुप रहे हैं। इसी से हमारे यहाँ इतिहास नहीं, जीवन चरित नहीं और आत्मकथा नाम की चीज़ तो बिल्कुल ही नहीं। हम कह सकते हैं कि यह अन्तिम वस्तु हमारे यहाँ पश्चिम से आई है।"⁸⁵

हिंदी साहित्य के आरम्भिक वर्षों में आत्मकथा लेखन के इस अभाव के कारण का विश्लेषण किया जाय तो हम पाते हैं कि भारत में आत्मकथा लेखन की परम्परा आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के पूर्व तक इसलिए नदारद रही क्योंकि भारतीय दर्शन 'आत्माभिव्यक्ति' को 'दंभ' के समान मानता रहा है। यहाँ 'अहम् ब्रह्मास्मि' या 'अयम् आत्मा ब्रह्म' कहकर स्वयं को ईश्वर से एकाकार कर

'आत्म' को अमर और शाश्वत घोषित कर दिया गया है और इससे इतर आत्माभिव्यक्ति को अनावश्यक और निरर्थक माना गया है। उदाहरण के लिए गीता के तेरहवें अध्याय में कहा गया है -

प्रकृत्यैव च कर्माणि

क्रियमाणानि सर्वशः।

यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं

स पश्यति ॥29॥⁸⁶

अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति द्वारा ही किए जाते हुए देखता है और आत्मा को अकर्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है। अर्थात् आत्मा को सृजनशील नहीं माना जा सकता।

किन्तु 'आत्मानं विद्धि' अर्थात् 'आत्मा को जानो' या 'आत्मा की ओर उन्मुख हो' यह कहना भी तो आत्मा को महत्व देना है। मुकुंद लाठ का मत है कि 'भारतीय दर्शन हर समय आत्मा को अनिर्वचनीय नहीं कहता बल्कि यहाँ तो 'आत्मानं विद्धि' कहकर आत्मा को जानने के लिए प्रेरित किया गया है।'⁸⁷

'कठोपनिषद्' में कहा गया है -

"कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत ।"⁸⁸

अर्थात् कोई बिरले, धीर, बुद्धिमान मनुष्य ही ऐसे होते हैं जो आत्म समीक्षण की ओर प्रवृत्त होते हैं।

'गीता' में कहा गया है -

उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत ।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥⁸⁹

अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह स्वयं आत्मा का उद्धार करे, कभी आत्मा को पीड़ित या निरादृत न करे, क्योंकि अपना सबसे बड़ा शत्रु या मित्र आत्मा ही है। गीता विश्व का ऐसा ग्रन्थ है जिसमें 'आत्मा' के रूप में आत्म के महत्व को प्रतिपादित किया गया है।

आत्मा की अवधारणा ही दरअसल दो प्रकार से है, जिसके पश्चिमी और पूर्वी मत एकदम विपरीत हैं। परलोक और पारलौकिक सत्ता में विश्वास रखने वाली संस्कृतियों में आत्मा का अर्थ ईश्वर से एकाकार जीव है, जो ईश्वर के बिना कुछ भी नहीं। जबकि पश्चिमी अवधारणा में आत्मा को बुद्धि, तर्क, अंतःकरण से जोड़कर देखा गया है। ऐसे में, पश्चिम में आत्मा को जानने से मतलब मनुष्य या स्वयं को समझना है। जबकि भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा को जानने से तात्पर्य परम सत्य, नित्य सत्ता से अपना तादात्म्य स्थापित करना है। इसीलिए आत्मा को नितांत अभौतिक मानते हुए उसके किसी भी प्रकार के बखान या वर्णन में सभी असमर्थ महसूस करते हैं। यही कारण है कि भारतीय दर्शन की परम्परा से जुड़े प्रारंभिक हिंदी साहित्य में आत्मकथा का नितांत अभाव दिखता है। इसके अतिरिक्त मैनेजर पाण्डेय का इस सम्बन्ध में मत है, "भारतीय साहित्य में आत्मकथा के अभाव का एक कारण शायद यह भी है कि यहाँ लगातार यह उपदेश दिया जाता रहा है कि सच बोलो, पर अप्रिय सच नहीं।"⁹⁰

इससे आत्मकथा न लिखे जाने की अवधारणा तो स्पष्ट हो जाती है, किन्तु अचानक मध्यकाल में बनारसीदास जैन का आत्मकथा लेखन आश्चर्य में इसलिए भी डालता है क्योंकि इसके बाद भी आत्मकथा लेखन की परम्परा कई वर्षों तक बाधित ही दिखती है। उनके बाद भारतेंदु और द्विवेदी युग से आत्मकथा लेखन की एक व्यापक परम्परा प्रारंभ होती है, जो आज भी सशक्त और प्रभावशाली रूप में जारी है। आधुनिक काल में आत्मकथा लेखन की परम्परा समृद्ध होने के भी कई कारण दिखाई देते हैं- मसलन, हिंदी में गद्य विधा का विकास, विदेशी साहित्य का प्रभाव और व्यक्तिवाद और अस्तित्ववादी अवधारणाओं का हिंदी साहित्य में प्रवेश आदि।

स्पष्ट है, भारतीय पारम्परिक ग्रंथों में आत्मा को जानने पर बल दिया गया है, किन्तु इस आत्मा के प्रकटीकरण को प्रोत्साहित नहीं किया गया। इसी कारण, यहाँ आत्मकथा की परम्परा काफी देर से शुरू हुई। महीप सिंह लिखते हैं, "हिंदी में आत्मकथा लिखने का प्रचलन इन दिनों बढ़ा है किन्तु इसकी पुष्ट परम्परा का निर्माण होना अभी शेष है। आत्मकथा लिखने के लिए जिस प्रकार की स्पष्टता, प्रामाणिकता, निर्ममता और बेबाकी की आवश्यकता होती है वह भारतीय चरित्र में नहीं है। यह चरित्र बचपन से ही एक विशिष्ट प्रकार की संभ्रान्त मानसिकता से घिरी आदर्शात्मकता के घेरे में पनपता है। जैसे-जैसे व्यक्ति बड़ा होता है, आदर्श और व्यवहार के निरंतर विकसित होते अन्तराल को छद्मता और आडम्बर से भरना उसकी सहज प्रवृत्ति बन जाती है। इसलिए यहाँ आत्मकथा जैसी सर्जनात्मक विधा का विकास नहीं हुआ, क्योंकि यह विधा कई बार ऐसी नंगी सच्चाई को प्रकट करने का साहस माँगती है, जो भारतीय (संभ्रान्त) चरित्र में बहुत कम संभव है।"⁹¹

हिंदी में अचानक आधुनिक काल में आत्मकथा लेखन का चलन बढ़ना इस बात का संकेत है कि यहाँ आत्मकथा पाश्चात्य प्रभाव से आई है। यह वह समय था जब, भारत में ब्रिटिश शासन अपने चरम पर था। ब्रिटिश शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा था और विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। ऐसे में पाश्चात्य साहित्य से संपर्क ने हिंदी को आत्मकथा विधा से परिचय करवाया। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार किया है, "फिर यूरोपीय प्रभाव होने मात्र से कोई चीज अस्पृश्य नहीं हो जाती। प्रेमचंद की कहानियाँ, बैतालपचीसी के ढंग की न होकर आधुनिक यूरोपीय कहानियों के ढंग की हुई हैं, इतना कह देने से प्रेमचन्द का महत्व कम नहीं हो जाता... प्रभाव तो मनुष्य पर तब तक पड़ेगा, जब तक उसमें जीवन है। जहाँ जीवन का वेग अधिक है, प्राण धारा का बहाव तेज है, उसी स्थान से उसका ऐश्वर्य छितराएगा ही। आलोक सीमा में बंधना नहीं चाहता उसका धर्म ही प्रकाशित होना और प्रकाशित करना है।"⁹²

(ख) भारतीय परम्परा की देन :

दूसरा मत, यह है कि हिंदी में आत्मकथा विधा का विकास क्रमशः उसकी परम्परा से ही हुआ है। इसके लिए आत्मकथा के रूप में किये गये लेखन की विकास यात्रा को देखा जा सकता है। हिंदी भाषा संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश का सफर तय कर ही हिंदी का रूप धारण कर सकी है। यह जानने से पूर्व कि हिंदी में आत्मकथा का कैसे विकास हुआ यह देखना समुचित है कि हिंदी से पूर्ववर्ती कालों में आत्मकथा लेखन की क्या परम्परा रही है। हिंदी को सम्पदा के रूप में विभिन्न विधाओं की रचनाएँ इन भाषाओं में प्राप्त हुई हैं। ऐसे में सम्भव है कि आत्मकथा की परम्परा भी इन भाषाओं से जुड़ते हुए ही हिंदी में पहुँची हो। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में आत्मकथा लेखन की परम्परा को देखा जाना समीचीन होगा।

(अ) संस्कृत में आत्मकथा की परम्परा :

संस्कृत में कालिदास के समय तक रचनाकार का अपना परिचय देने की परम्परा नहीं दिखती। किन्तु कालिदास के बाद के रचनाकारों की रचनाओं में कहीं न कहीं उनका नाम, गोत्र, वंश या माता-पिता का नाम आदि मिलने लगता है। नाटकों के मंचन के समय नाटककारों के परिचय की परम्परा का आरंभ हुआ। इसके साथ ही लेखकों ने भी अपना परिचय देना प्रारंभ किया। उदाहरण के लिए भवभूति के नाटक 'उत्तररामचरितम्' की भूमिका में लिखा है - "अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यपः श्रीकंठपद्माच्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः।"⁹³ अर्थात् आप लोग यह जानिये कि काश्यप गोत्र में उत्पन्न, 'श्रीकंठ' उपाधि से विभूषित, व्याकरण में निपुण, जतुकर्णी के पुत्र भवभूति हैं। इसके अतिरिक्त 'मालतीमाधवम्' में भी सूत्रधार भवभूति की जीवन परम्परा से जुड़े लोगों का संक्षिप्त परिचय देता है। माघ के 'शिशुपाल वध', बाण की 'कादम्बरी' की भूमिका और 'हर्षचरित' के प्रथम ढाई उच्छ्वासों में उनके जीवन और उनकी वंश परम्परा का उल्लेख मिलता है। इस सम्बन्ध में, "हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य में अधिकतर लेखकों - विशेषतः कवियों और नाटककारों के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान शून्य के बराबर ही है... किन्तु सौभाग्यवश अपवादस्वरूप

इने-गिने कुछ ऐसे भी कलाकार हुए हैं, जो आगे की पीढ़ियों के लिए अपनी ही कृतियों के भीतर अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ ऐसे तथ्य छोड़ गये हैं, जिनसे उनका सही-सही ज्ञान हो जाता है। ऐसे कवियों में सबसे प्रमुख हमारे आलोच्य कवि बाणभट्ट हैं। इन्होंने कादम्बरी के कुछ आरंभिक श्लोकों में अपने वंशधरों का संक्षिप्त वर्णन दिया है, लेकिन हर्षचरित में तो न केवल अपने वंश की प्रत्युत अपने जन्म - स्थान, काल और व्यक्तिगत जीवन आदि का भी विस्तृत वर्णन दे रखा है। सारांश में यों समझ लीजिये कि प्रथम, द्वितीय और तृतीय उच्छवास का भी कुछ भाग 'हर्षचरित' नहीं बल्कि 'बाणचरित' है।⁹⁴ बाणभट्ट ने अपने वंश के सम्बन्ध में लिखा- "धीरधिषणः, कवयः, वाग्मिनः, नृत्यगीतवादित्रेष्ववाह्याः, सर्वगुणोपेता।"⁹⁵ इसी प्रकार दण्डी की रचनाओं 'दशकुमारचरितम्' और 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में भी उनके जीवन के कुछ संकेत प्राप्त होते हैं। दूसरी शताब्दी की अश्वघोष की रचना 'बुद्ध चरित' से बुद्ध के जीवन प्रसंगों की जानकारी मिलती है तो 'नैषधचरित' के हर सर्ग की समाप्ति पर श्रीहर्ष ने अपना परिचय दिया है। कश्मीरी कवि विल्हण ने 'विक्रमांकदेवचरित्' के दसवें सर्ग में अपना जीवन-परिचय दिया है। स्पष्ट है, कि संस्कृत की प्रारंभिक रचनाओं में अलग से कोई आत्मकथात्मक या आत्मपरिचायात्मक रचना तो नहीं लिखी गयी किन्तु रचनाओं के बीच में स्व-परिचय के माध्यम से आत्मोद्धाटन का प्रयास किया गया है। आधुनिक काल तक आते-आते अन्य भाषाओं के साथ संस्कृत में भी आत्मकथा विधा का विकास हुआ, जिसके परिणामस्वरूप कई आत्मकथाएँ लिखी गयीं। जैसे-पंडित हषिकेश भट्टाचार्य की आत्मकथा 'आत्मवयोरुद्धारः', मंगलदेव स्वामी, पंडित रमेशचन्द्र शुक्ल, तपोवन स्वामी की आत्मकथा 'तपोवन चरितम्' आदि।⁹⁶ अब्राहम काउली का कहना है कि "अपने बारे में खुद लिखना बहुत मुश्किल काम है, क्योंकि यदि आप अपनी बुराई करते हैं तो उससे आपको दुःख होता है और अगर आप अपनी प्रशंसा करते हैं तो लोग आप पर यकीन नहीं करते। यह बात एकदम सच्ची है और इसी कारण कालिदास, भवभूति और जयदेव ने अपने बारे में कुछ नहीं लिखा। अगर अपना चरित्र लिखना सरल होता तो दण्डी ने जहाँ 'दशकुमारचरित' लिखा, वहाँ लगे हाथों वे एक चरित अपना भी लिख सकते थे। सारे पुराने साहित्य

में केवल बाणभट्ट ऐसे कवि हैं, जिनकी आत्मकथा प्राप्त है। मगर उसमें भी यह किल्लत है कि वह आत्मकथा बाण ने खुद नहीं बल्कि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखी है।⁹⁷ स्पष्ट है कि संस्कृत में आदिकाल और मध्यकाल में आत्मकथा कहे जाने योग्य कोई विशेष रचना प्राप्त नहीं है। यह अवश्य है कि लेखकों ने प्रसंगवश अपने जीवन का ब्योरा कहीं-कहीं दिया है।

(आ) हिंदी में आत्मकथा लेखन का विकास

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जब यह कहा कि "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है..."⁹⁸ तो इससे स्पष्ट होता है कि जनमानस की प्रवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन ने साहित्य को विभिन्न विधाओं के रूप में प्रस्फुटित होने का अवसर दिया। आगे वे जब यह कहते हैं कि 'जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक और धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है' तो इससे यह स्पष्ट होता है कि जनता की मानसिकता तत्कालीन राजनीति, समाज, धर्म, और सम्प्रदाय विशेष के आधार पर ही परिवर्तित होती हैं। अब यह देखने का विषय है की देश-कालगत परिवर्तन के साथ आत्मकथा लेखन में किस प्रकार परिवर्तन आया। हिंदी में आत्मकथा के विकास को अग्रलिखित तीन चरणों के आधार पर समझ सकते हैं :

(i) आदिकाल में आत्मकथा की परम्परा :

आदिकाल का समय ऐसा था, जिसमें साहित्यकार राज्याश्रित होते थे। ऐसे में उनके लिए अपने जीवन का विवरण महत्वपूर्ण न होकर राजाओं का जीवन महत्वपूर्ण होता था। इसलिए इस काल में राजाओं के 'जीवनचरित' और 'जीवन-आख्यान' या 'प्रशस्तिगान' तो प्राप्त होते हैं, किन्तु किसी लेखक का स्वयं के द्वारा लिखा हुआ जीवन-चरित नहीं मिलता है। यदि संस्कृत के बाद पालि साहित्य में देखें तो बौद्ध साहित्य के अंतर्गत आने वाले 'खुद्दक निकाय' में प्राप्त 'थेर गाथा' और 'थेरी गाथा' का साहित्य आत्मकथात्मक पुट से संपृक्त है। इसमें भिक्षु और भिक्षुणियों ने अपनी

आध्यात्मिक उन्नति का वर्णन किया है। किन्तु इसमें जीवनानुभवों का अभाव है। किन्तु ये आध्यात्मिक वर्णन ही भिक्षु-भिक्षुणियों के आत्म-परिचय की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए - थेरी सुमंगल माता अपनी गाथा में कहती है :-

‘सुमत्तिका सुमत्तिका, साधु मुत्तिकांमिह मुसलस्।

अहिरिको में छत्तकं वापि, उक्खलिखा में देडुडभं वाति ॥⁹⁹

अर्थात् अहो ! मैं मुक्त नारी हूँ। मेरी मुक्ति कितनी धन्य है। पहले मैं मूसल लेकर धान कूटा करती थी, आज मैं उससे मुक्त हो गयी हूँ।

इसी प्रकार मुत्ता थेरी की गाथा है -

सुमुत्ता साधुमुत्ताहि, तीहि खुज्जेहि मुत्तिया,

उदुक्खलेन मुसलेन, पतिना खुज्जेकेन च।

मुत्तामिह जातिमरणा, भवनेति समूहता ति ॥¹⁰⁰

अर्थात् 'मैं अच्छी तरह से विमुक्त हो गयी हूँ। तीन टेढ़ी चीजों - ओखली, मूसल और कुबड़े स्वामी से मुक्त हो गयी हूँ। मैं आज जाति और मरण से भी मुक्त हो गयी हूँ। मेरी संसार तृष्णा ही समाप्त हो गयी है।' आत्मपरिचय की दृष्टि से ये ग्रन्थ आदिकालीन ग्रंथों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय हैं, लेकिन इन्हें आत्मकथा की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

इसके बाद अपभ्रंश में जैन-साहित्य में कुछ आत्मपरक अभिव्यक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। जैसे पुष्पदंत का 'णयकुमार चरिउ', स्वयंभू का 'पउम चरिउ', धनपाल की 'भविष्यत्तकहा' आदि से लेखकों के वंश आदि के विषय में जानकारी मिलती है। इसी प्रकार इस काल में लिखे रासो साहित्य से तत्कालीन राजाओं के जीवन की छिटपुट घटनाओं का वर्णन तो प्राप्त होता है किन्तु आत्मपरिचय का कोई पुट नहीं दिखता है। इनमें से 'पृथ्वीराज रासो' में कुछ छन्द ऐसे हैं, जिसमें चंद कवि ने अपने जीवन के विषय में भी परिचय दिया है। रामचंद्र शुक्ल ने इसका कारण यह माना कि संभवतः चंदबरदाई पृथ्वीराज के राजकवि ही नहीं मित्र भी थे। यदि वे पृथ्वीराज से इतने अन्तरंग न होते तो

राजा के जीवनवृत्त के साथ उनका उल्लेख अन्य चारणों की भाँति कभी नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए चंद ने पृथ्वीराजरासो में अपने पुत्रों का उल्लेख इस प्रकार किया है:-

दहति पुत्र कविचंद कै सुंदर रूप सुजान ।

इक्क जल्ह गुन बावरो गुन समुदं ससभान ॥¹⁰¹

इसी प्रकार पृथ्वीराज के साथ व्यतीत किये गये समय का भी उल्लेख किया गया है। वस्तुतः, रासो केवल एक प्रशस्तिपरक साहित्य ही कहा जा सकता है। इसमें आत्मकथा के पुट को खोजना कहीं से भी समीचीन नहीं मालूम होता।

(ii) मध्यकाल में आत्मकथा का विकास :

मध्यकाल ऐसा समय था जहाँ भारत की जनता धार्मिक चिंतन और भक्ति में लिप्त थी। ऐसे समय में विदेशी सत्ताओं का आक्रमण और मुगल सल्तनत का प्रारंभ हुआ। इस समय कुछ मुगल शासकों ने आत्मकथा लिखी और लिखवाई। किन्तु ये सभी आत्मकथाएँ फारसी और उर्दू में लिखी गयीं। इनका अनुवाद भी काफी बाद में किया गया। ऐसे में इन आत्मकथाओं से हिंदी साहित्य में आत्मकथा लेखन पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं देखा जा सकता। यह अवश्य है कि इन आत्मकथाओं का उल्लेख संदर्भ के अनुसार किया जाय, क्योंकि यह इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं कि आत्मकथा लेखन में हिंदी साहित्य भले ही काफी पीछे चल रहा था किन्तु उसकी पृष्ठभूमि में आत्माभिव्यक्ति के प्रयास किये गये हैं।

मध्यकालीन आत्मकथा लेखन का वर्गीकरण-

भक्तिकाल (1375 -1700 संवत्) में आत्मकथा लेखन :

मुगलों की सत्ता स्थापित होने के बाद राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन आया। परिणामस्वरूप साहित्य के प्रति दृष्टि में भी परिवर्तन हुआ। राज्याश्रित कवियों के गुणगान से इतर ईश्वर में आस्था स्थापित हुई। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, "इतने भारी

राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जनमानस पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की भक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?"¹⁰² इस समय अपने जीवन से बहुमूल्य अपने आराध्य का जीवन हो उठा था। इस वजह से संत कवियों की रचनाओं में आत्मोल्लेख अत्यंत ही सीमित रूप में और प्रसंगवश ही मिलता है। तुलसी, कबीर, रैदास, मीरा आदि के काव्य से उनके विषय में जानकारी तो मिलती है, किन्तु यह जानकारी स्वयं के प्रकटीकरण या स्वयं का परिचय विशेष देने के लिए नहीं बल्कि ईश्वर से अपनी तुच्छता प्रमाणित करने के संदर्भ में या प्रसंगवश ही आ गयी है। उदाहरण के लिए - कबीर की 'साखी' में प्रसंगवश आये दोहे कबीर के जीवन से परिचित कराते हैं-

'मसि कागद छुयो नहीं कलम गही नहिं हाथ'¹⁰³

'सिया राम मय सब जग जानी' और 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' कहने वाले क्रमशः तुलसी और सूर के जीवन के विषय में उनके काव्य के माध्यम से जानकारी मिलती है। किन्तु यह दृष्टव्य है कि तुलसीदास स्वयं का परिचय देने को उत्सुक नहीं दिखते बल्कि यह उनके काव्य में स्वतः ही प्रसंगवश आ गया है। विश्वनाथ त्रिपाठी की दृष्टि में देखें तो, "तुलसी ने अपने जीवन और अपने युग के विषय में हिंदी के किसी मध्यकालीन कवि से ज्यादा लिखा है।"¹⁰⁴ राम विलास शर्मा का मत है, "भारत के रूप में तुलसीदास अपनी ही अनुभूति, अपने ही मानसिक संघर्ष को प्रकट कर रहे हैं, यह 'विनय पत्रिका' पढ़ने से ज्ञात होगा। आत्माभिव्यक्ति की प्रेरणा उस युग की विशेषता है। 'विनयपत्रिका' में यह आत्माभिव्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से होती है, मानस में अप्रत्यक्ष रूप में। तुलसीदास आत्मपरक गीतिकाव्य के प्रणेता हैं।"¹⁰⁵ उदाहरण के लिए-

'रामहि प्रिय पावनी तुलसी सी

तुलसीदास हित हिय हुलसी सी'¹⁰⁶

अथवा

'लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुनी चाय ।

जोबन जुर-जुवती कुपथ्यकरि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ॥¹⁰⁷

रैदास की रचनाओं से भी उनके विषय में छिटपुट जानकारी मिल ही जाती है । उदाहरण के लिए -

'ऐसी मेरी जाति विख्यात चमारा'

'जाके कुटुंब सब ढोर ढोवंत

फिरहि अजहूँ बनारसी आसपासा

आचार सहितं विप्र मरहिं दंडवति

तिन तनै रविदास दासानुदासा ।¹⁰⁸

मीरा के बारे में रामविलास शर्मा का मत है, "मीराबाई ने लिखा थोड़ा पर उनकी सूक्ष्म विह्वल आत्माभिव्यक्ति के कारण उनके गीत सारे देश, में प्रसिद्ध हुए ।"¹⁰⁹

दूसरी तरफ सूफी कवियों के द्वारा 'मसनवी शैली' का प्रयोग करने के कारण उनके सम्बन्ध में जानकारी उनकी रचनाओं के प्रारंभ में ही मिल जाती है । इस शैली में सर्वप्रथम कासिमशाह 'हंस जवाहिर' में अपना परिचय कुछ इस प्रकार देते हैं -

'दरियाबाद माँझ मम ठाऊँ । अमानुल्ला पिता कर नाऊँ ॥

तहवाँ मोहि जनम विधि दीन्हा । कासिम नाँव जाति कर हीना ॥¹¹⁰

जायसी ने भी 'पद्मावत' में अपना परिचय कुछ इस प्रकार दिया है-

'एक नयन कवि मुहम्मद गुमि ।

सोई बिमोहो जेई कवि सुनि ॥

जायस नगर धरम अस्थानु ।

तहां आई कवि कीन्ह बखानु ॥¹¹¹

जहाँ हिंदी भाषा के कवियों में आत्म-प्रस्तुतीकरण का अभाव मिलता है, वहीं समकालीन उर्दू-फारसी में लिखित रचनाओं में आत्मकथात्मक साहित्य भी दिखाई पड़ता है। इसमें मुगल बादशाहों की आत्मकथाएँ उल्लेखनीय हैं। जैसे - तुर्की में लिखी बाबर की आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी', गुलबदन बेगम के द्वारा लिखित हुमायूँ का जीवन-चरित 'हुमायूँनामा', अबुल फजल कृत 'आईने अकबरी' और मुल्ला बदायूँनी कृत 'मुनखाब उत तवारीख', 'तुजुक ए-जहाँगीरी', शाहजहाँ के दरबारी इतिहासकार अब्दुल हमीद लाहौरी के द्वारा लिखित 'पादशाहनामा', (इसके अतिरिक्त मोहम्मद अमीन कजवीनी और मोहम्मद सादिक के द्वारा भी 'पादशाहनामा' लिखे जाने का जिक्र मिलता है) आदि से तत्कालीन परिस्थितियों, समाज और सम्बंधित लेखक एवं सम्बंधित शासक के विषय में परिचयात्मक जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत में फारसी में ही 1681 ई. में बुस्तमी कृत 'हदीकल सलातीन' में फारसी कवियों की जीवनियाँ, शाहजहाँ के पुत्र दारा शिकोह के द्वारा रचित 'सकीनत-उल-औलिया' से उनके शिष्यों के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है।

स्पष्ट है, भक्तिकाल में मुगलों के प्रभाव के कारण फारसी साहित्य में हिंदी की अपेक्षा आत्मकथात्मक लेखन अधिक किया गया। इसका एक कारण यह भी देखा जा सकता है कि जनता इस समय बाह्य आक्रमणों और आन्तरिक संघर्षों से भयभीत होकर ईश्वर में आश्रय की तलाश कर रही थी, वहीं मुगलों के दरबार में बिना किसी भय के साहित्य और कला के क्षेत्र में विकास किया जा रहा था।

'अर्धकथानक' : आत्मकथा का सर्वप्रथम उल्लेखनीय प्रयास

इस क्रम में 1641 ई. में बनारसी दास जैन द्वारा लिखित आत्मकथा 'अर्धकथानक' ही एकमात्र रचना है, जिसे सही मायने में आत्मकथा कहा जा सकता है। यहीं से हिंदी में आत्मकथा लेखन की परम्परा की शुरुआत मानी गयी है। यह ब्रजभाषा में लिखी पद्यात्मक आत्मकथा है। मनुष्य के जीवन को 110 वर्ष मानकर 55 वर्ष की आयु में लिखी गयी आत्मकथा को शीर्षक दिया 'अर्धकथानक'।

हालाँकि बनारसी दास ने यह अपनी आधी उम्र मानकर लिखी थी किन्तु उसके कुछ ही वर्षों बाद उनकी मृत्यु हो गयी। इसलिए इसे पूर्ण आत्मकथा कहने में कोई आपत्ति नहीं की जानी चाहिए। बनारसीदास जौनपुर के श्रीमाल वंश में जन्मे थे। उन्होंने 'मोह विवेक युद्ध', 'बनारसी नाममाला', 'समयसार नाटक', 'बनारसीविलास' जैसी रचनाएँ लिखीं, किन्तु इन रचनाओं में बनारसीदास की आत्मकथा 'अर्धकथानक' का विशेष महत्व है। इसे 1943 व 1957 ई. में नाथूराम प्रेमी द्वारा सम्पादित किया गया और मुकुंद लाठ के द्वारा इसका अंग्रेजी में 'हाफ अ टेल' शीर्षक से अनुवाद किया गया। इसके महत्व के सम्बन्ध में इस आत्मकथा का खड़ी बोली में अनुवाद करने वाली रोहिणी चौधरी का मत है, "बनारसीदास का अर्धकथानक उनकी अन्य रचनाओं से अलग है। इसका विषय बनारस, स्वयं बनारसीदास और उनका जीवन है। कवि का यह 'अर्ध कथान' अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ, इन तीनों मुगल बादशाहों के शासनकालों से गुजरता हुआ हमें मुगलकालीन भारत की ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति की अनूठी झलक देता है, जो किसी भी इतिहास की पुस्तक के पृष्ठों में नहीं पाया जाता।"¹¹² बनारसीदास लिखते हैं -

'जैसी सुनी बिलोकी नैन।

तैसी कछु कहौं मुख बैन

कहौं अतीत दोष गुणवाद।

बरत मानताई मरजाद ॥¹¹³

अर्थात् जो बातें मैंने सुनी हैं, जो बातें अपनी आँखों से देखी हैं, उन बातों को मैं अपने मुख से सुनाऊँ। मैं मर्यादा रखते हुए पिछले गुण और दोष सुनाता हूँ।' 75 पृष्ठों और 675 दोहों और चौपाइयों में सिमटी इस आत्मकथा में समकालीन परिवेश को साहस के साथ प्रस्तुत किया गया है।

रीतिकाल (1700 - 1850 विक्रम संवत्) में आत्मकथा लेखन :

रीतिकाल में अलंकृत और जटिल काव्य लिखे जा रहे थे, जिनमें या तो ईश्वर की छवि या फिर नायिका के सौन्दर्य का गायन था। रीतिकाल में आत्मकथा लेखन के अभाव और जो भी रचनाएँ

लिखी गयीं उनकी जटिलता के संदर्भ में विश्वबंधु शास्त्री लिखते हैं, "हिंदी के प्राचीनकाल और मध्यकाल के इतिहास का शोध करने वालों को इस आत्मकथात्मक प्रवृत्ति के अभाव के कारण कितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ी होंगी, इसका अनुमान इस उदाहरण से भली-भाँति लगाया जा सकता है कि यदि मध्यकाल के कवि अपने वंश परिचय आदि का संकेत करते भी थे तो एकदम प्रच्छन्न भाव से।"¹¹⁴ इस काल में बिहारी के कुछ आत्मकथात्मक दोहे जैसे - 'हम उनकी कविता करि भये प्रसन्न बड़ भाव/ चलत कहीं हमसो तबहिं अर्गलपुर में आव ।' किन्तु वे अप्रयत्न ही हैं। भिखारीदास ने अपने 'काव्य निर्णय' में एक कवित्त में लिखा है -

'अभिलाषा करी सदा ऐसी, नी होय ब्रीथ, सब ठौर दिन सब, याही सेवा चरचानि ।

लोभा लई नीचै ज्ञान हलाहल, ही को अंत है क्रिया पाताल, निंदा रस ही को खानि ॥

सेनापति देवी केस शोभा गनती को भूप, पन्ना मोती हीरा होम, सौदा दास को ही जानि ।

हीय पर देव को बदे यश, रटै नाऊं खगा सन नग धर, सीता नाथ को ला पानि ॥

इस कवित्त में छुपे हुए कुलनाम, वंश आदि को जानने के लिए हमें इस दोहे का सहारा लेना पड़ेगा-

या कवित्त अंतरण लै, तुकांत द्वै छाड़ी ।

दास नाम कुल ग्राम कही भगति रस माड़ी ॥¹¹⁵

इस दोहे में बताई गयी रीति से एक-एक वरन को छोड़कर और एक-एक वर्ण ग्रहण कर 'गोमूत्रिका बांध' की शैली में इससे कविवर भिखारीदास का नाम और उनका वंश परिचय प्राप्त होता है। जैसे कवित्त के वर्णों को कृष्णांकृत करके दिखाया गया है कि कवि का नाम भिखारीदास, जाति 'कायस्थ' एवं वर्ण 'बहिवार' है। भाई का नाम 'चैनलाल', कोत (गोत्र) 'कृपालदास' है। नाती वीरभान के पनाम: रामदास, 'यखर प्रदेश, ट्योंगा नगर, ताथला ग्राम है आदि। अब इस कूट परिचय की खोज क्या किसी तिलिस्म तोड़ने से कम श्रमापेक्षी है?"¹¹⁶

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मध्यकाल के दोनों दौर - भक्तिकाल और रीतिकाल में 'अर्धकथानक' को छोड़कर हिंदी में आत्मकथात्मक लेखन का पूर्णतया अभाव मिलता है। इसका

कारण क्रमशः इन दोनों कालों में ईश्वर की बढ़ती महत्ता और सौन्दर्य वर्णन की प्रमुखता है। यहाँ व्यक्ति से अधिक समष्टि को महत्व दिया गया है।

दूसरी ओर रीतिकाल में भी उर्दू-फारसी में लगातार परिचयात्मक साहित्य लिखा जा रहा था। उदाहरण के लिए - मीर तकी मीर ने 1783 में 'जिक्रे मीर' शीर्षक से अपनी आत्मकथा लिखी और इन्हीं के द्वारा लिखित 'नुकातुश्शुअरा' से समकालीन कवियों और रचनाकारों के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। मीर हसन का लिखा 'तजकिश्शुअरा'(1778), सआदत यार खां रंगीन का 'मजलिसे रंगी' आदि में समकालीन रचनाकारों का परिचय और आलोचना प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त मिर्जा मेहँदी का 'नादिरनामा' का उर्दू में अनुवाद 'तारीख-ए-नादिर' में नादिरशाह की जीवनी मिलती है। भारतेंदु युग से पूर्व कल्लोल और कृष्णदत्त के आत्मकथा लेखन के उदाहरण भी मिलते हैं, किन्तु इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

(iii) आधुनिक काल (1850 - अब तक) में आत्मकथा की परम्परा :

इस काल में आत्मकथा लेखन को दो भागों में बाँटकर देख सकते हैं - स्वतंत्रता पूर्व (1850 -1946) व स्वतंत्रता के पश्चात् (1947 से अब तक)।

स्वतंत्रता पूर्व आत्मकथा लेखन :

भारतेंदु युग (1850-1900) में आत्मकथा : 'अर्धकथानक' के बाद एक लम्बा अवरोध दिखता है और सीधे भारतेंदु-युग में ही आत्मकथा लिखी गयी। वास्तव में कह सकते हैं कि हिंदी आत्मकथा का विकास भारतेंदु-युग से ही हुआ। कई विद्वानों ने विशुद्ध विधा के रूप में आत्मकथा को आधुनिक काल की ही देन स्वीकार किया है। 1875 में जाकर महर्षि दयानंद सरस्वती कृत आत्मकथा 'आत्मचरित' प्राप्त होती है, जिसे उनके भाषणों से संकलित कर प्रकाशित कराया गया। इस जीवन-चरित में छब्बीस पृष्ठ महर्षि से सम्बंधित है। भारतेंदु ने पत्रिकाओं के प्रकाशन द्वारा आत्मकथा विधा को पल्लवित किया। इस समय आत्मकथा लेखन का प्रारंभ कुछ लघु

आत्मकथाओं से हुआ। जैसे भारतेन्दु ने स्वयं 'कुछ आप बीती कुछ जगबीती' शीर्षक से कविवचन सुधा में 1876 में एक संस्मरणात्मक लेख लिखा। वे लिखते हैं - "हम कौन हैं और किस कुल में उत्पन्न हुए हैं आप लोग पीछे जानेंगे। आप लोगों को क्या, किसी का रोना हो पड़े चलिए जी बहलाने से काम है। अभी इतना ही कहता हूँ कि मेरा जन्म जिस तिथि को हुआ, यह जैन और वैदिक दोनों में बड़ा पवित्र दिन है।"¹¹⁷ इस युग में प्रतापनारायण मिश्र ने भी 'प्रताप चरित' नाम से एक आत्मकथा लिखने का प्रयास किया। किन्तु वह अपूर्ण रह गयी। उन्होंने आत्मवृत्तान्त लिखने के लिए प्रेरित करते हुए लिखा, "हमारी सभा में जितने मनुष्य हैं सबका जीवन चरित लेखनीबद्ध होना चाहिए। हमारे देश में यह लिखने की चाल नहीं है, इससे बड़ी हानि होती है। मैं उनका बड़ा गुण मानूँगा जो अपना वृत्तांत लिखकर मेरा साथ देंगे।"¹¹⁸

द्विवेदी युग (1900 से 1918) -

इस काल की महत्वपूर्ण आत्मकथाओं में सुधाकर द्विवेदी की 'रामकथा', और अम्बिकादत्त व्यास की 'निज वृत्तांत'(1901) है।

छायावादी युग (1918-1936) -

इस युग की प्रारंभिक आत्मकथाओं में सत्यानन्द अग्निहोत्री की 'मुझमे देव जीवन का विकास' (दो खण्डों में 1909 व 1918 में), परमानन्द श्रीवास्तव की 'आपबीती' (1921) उल्लेखनीय हैं। 1917-18 के दौरान गाँधी और भवानी दयाल सान्याल के दक्षिण अफ्रीका के जेल अनुभव प्रकाशित होने के बाद नेताओं और क्रांतिकारियों के जेल के अनुभव, आत्मकथ्य और आत्मचरित के रूप में आने शुरू हुए और धीरे-धीरे इन्होंने पूर्ण आत्मकथा का रूप ले लिया। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उमादत्त शर्मा ने 'भारतीय देशभक्तों की कारावास कहानी' प्रकाशित की, जिसमें तिलक, सावरकर, पाल, अरविन्द घोष, गाँधी, लाला लाजपत राय आदि को सम्मिलित किया गया। इसके बाद 'पच्चीस महापुरुषों की आपबीती जेल कथाएँ' प्रकाशित हुईं। 1924 में स्वामी श्रद्धानन्द की

'कल्याणमार्ग का पथिक' आत्मकथा प्रकाशित हुई। 1928 में राम प्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा सम्पादित पुस्तक 'काकोरी के शहीद' के एक अंश के रूप में प्रकाशित की गयी। इसका दूसरा संस्करण 1962 में बनारसी दास चतुर्वेदी के द्वारा सम्पादित कर प्रकाशित करवाया गया। यह 'काकोरी के क्रान्तिकारी की आत्मकथा' शीर्षक से प्रसिद्ध हुई। 1929 में निर्मल तलवार द्वारा संपादित पुस्तक 'आचार्य द्विवेदी' में 'मेरी जीवनरेखा' शीर्षक से आत्मकथात्मक निबंध लिखा गया, जो कि महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा था। इसमें की गयी आत्मस्वीकारोक्ति और आत्मविश्लेषण अत्यंत उल्लेखनीय है। महावीर प्रसाद लिखते हैं, "मेरी झूठी विज्ञता के आदेश ने, मुझसे पूर्वावस्था में, अनेक अनुचित काम कराये। उस दशा में मुझसे जो दुष्कृत्य हो गये, उन्होंने मेरी आत्मा को कलुषित कर दिया।" इस क्रम में 'हंस' पत्रिका का योगदान उल्लेखनीय है, जिसके द्वारा 1932 में एक आत्मकथांक प्रकाशित किया गया। हालाँकि इस अंक के सम्बन्ध में प्रेमचन्द को नंददुलारे बाजपेयी और रामेश्वर शुक्ल अंचल के विरोध और उत्तर-प्रतिउत्तर का सामना भी करना पड़ा। विजय बहादुर सिंह इस वाद-विवाद के सन्दर्भ में 'कौन सा सृजन कैसा सन्दर्भ' शीर्षक लेख में लिखते हैं कि 'प्रेमचंद पर 5 फरवरी 1959 को आकाशवाणी से बोलते हुए नंददुलारे बाजपेयी ने कहा, 'हंस' के आत्मकथा विशेषांक को लेकर मेरा उनसे बहुत कुछ उत्तर-प्रत्युत्तर हुआ था। मेरी मान्यता थी कि आज साहित्य में आत्मकथा नहीं लेखन की आवश्यकता है। प्रेमचंद जी कहते थे कि लेखक ही नहीं, एक सामान्य मजदूर के जीवन की भी एक प्रेरणात्मक कथा हो सकती है।'¹¹⁹ दरअसल नंददुलारे का मानना था कि आत्मकथा न लिखना 'आत्मत्याग' के समान है, जबकि प्रेमचंद का मानना था कि जो परम्परा में नहीं है उसे आधुनिक विवेक के साथ अपनाया जा सकता है। इस पत्रिका के 1932 के अंक में 52 लेखकों के आत्मकथांश को प्रेमचंद ने पत्रिका में स्थान दिया। इसमें प्रेमचंदजी, बी.ए. ने 'जीवनसार' नाम से आत्मकथांश लिखा। वे लिखते हैं, "मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है, जिसमें कहीं-कहीं गड्ढे तो हैं, टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटी और खड्डों का स्थान नहीं है। जो

सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन हैं उन्हें तो यहाँ निराशा होगी ।”¹²⁰ इसमें सम्मिलित जयशंकर प्रसाद की 'आत्मकथ्य' कविता अति प्रसिद्ध हुई -

मधुप गुन-गुनाकर कह जाता कौन कहानी यह अपनी
मुरझाकर गिर रहीं पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी

...

छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्मकथा?
अभी समय भी नहीं, थकी सोई है मेरी मौन व्यथा ।¹²¹

इसके बाद 1933 में पंडित लज्जाराम मेहता की 'आपबीती' प्रकाशित हुई । 1935 में आचार्य रामदेव कृत 'मेरे जीवन के कुछ पृष्ठ' और हीरानंद शास्त्री की 'आत्मकथा के कुछ पन्ने' शीर्षक से भी आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं ।

उत्तर-छायावादी व प्रगतिवादी युग (1936 -1943) की आत्मकथाएँ :

इस समय 1939 में प्रो. अक्षयवट मिश्र की आत्मकथा 'आत्मचरित-चम्पू' शीर्षक से विद्यापति प्रेस, बिहार से प्रकाशित हुई । यह गद्य-पद्यमय सचित्र आत्मकथा है । इसी प्रकार, इस वर्ष सियाराम शरण गुप्त के 'झूठ-सच' निबंध संग्रह में उनका आत्मवृत्त संकलित है । विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' ने 'मेरा वह बाल्यकाल', धनीराम ने 'मेरा साहित्यिक जीवन', गया प्रसाद शास्त्री श्री हरि ने 'मेरी आत्मकथा', राजाराम ने 'मेरी कहानी' शीर्षक से आत्मकथाएँ लिखीं । 1940 में स्वामी सत्यभक्त की 'आत्मकथा', परमेश्वरी दयाल की 'मेरी मुक्ति की कहानी' प्रकाशित हुई । इसके बाद बाबू श्याम सुन्दर दास की आत्मकथा 'मेरी आत्मकहानी' 1941 में इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई । पहले यह 'सरस्वती' पत्रिका में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हुई थी । इस आत्मकथा में श्यामसुन्दर

दास ने अपने वंश-परिचय के साथ शिष्यों का परिचय और रामचंद्र शुक्ल के विरुद्ध अपनी ईर्ष्या का भी चित्रण किया है। इसी वर्ष बाबू गुलाबराय की 'मेरी असफलताएँ' भी प्रकाशित हुई। इस पुस्तक की भूमिका में लेखक ने लिखा है, 'मैं अपने जीवन की असफलताओं पर स्वयं हँसा हूँ। यदि आप इस पुण्य कार्य में मेरा सहयोग देंगे तो मैं अपनी असफलताओं के वर्णन में स्वयं को सफल समझूँगा।' इसी क्रम में 1946 में हरिभाऊ उपाध्याय की 'साधना के पथ पर', पदुमलाल पुन्ना लाल बक्शी की 'अपनी बात', अम्बिका दत्त व्यास की 'निज वृत्तांत' जैसी आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं।

स्वतंत्रता के पश्चात् आत्मकथा का विकास : इसमें प्रयोगवाद (1943-1953) से लेकर समकालीन (1953 से अब तक) आत्मकथाएँ सम्मिलित हैं।

प्रयोगवादी युग की आत्मकथाएँ :

इस युग में, 1944 में मूलचंद्र अग्रवाल की आत्मकथा 'एक पत्रकार की आत्मकथा' शीर्षक से प्रकाशित हुई। राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा' कुल पाँच भागों (1946 में प्रथम, 1949 में दूसरा, 1967 तीसरा, चौथा और पाँचवा) में प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा के तृतीय, चतुर्थ और पंचम खंड का प्रकाशन सांकृत्यायन की पत्नी कमला सांकृत्यायन ने उनकी मृत्यु के उपरान्त करवाया। इसी वर्ष महात्मा गाँधी के शिष्य हरिभाऊ उपाध्याय की आत्मकथा 'साधना के पथ पर' और लाला लाजपत राय कृत 'आत्मकथा', 'पंजाब केसरी' में प्रकाशित हुई। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की 'मेरी जीवन यात्रा' 1947 में प्रकाशित हुई। यह देश के किसी राजनीतिज्ञ द्वारा लिखी गयी पहली आत्मकथा थी। इसी वर्ष भवानी दयाल सन्यासी की आत्मकथा 'प्रवासी की आत्मकथा' का प्रकाशन हुआ। यह पहले ही विदेशों में चर्चित हो चुकी थी। भारत में प्रकाशित होने के बाद इसे ब्रिटिश शासन द्वारा जब्त कर लिया गया। 1948 में वियोगी हरि की आत्मकथा 'मेरा जीवन प्रवाह' शीर्षक से प्रकाशित हुई। यह संस्मरणात्मक शैली में लिखी गयी आत्मकथा है, जिसमें लेखक के जीवन-संघर्ष के साथ साहित्यिक जीवन के प्रसंग भी मिलते हैं। इसी वर्ष गणेश नारायण सोमानी की आत्मकथा 'मेरी जीवन कहानी' प्रकाशित हुई। गणेश प्रसाद वर्मा की 'मेरी जीवन गाथा' 1949 में

प्रकाशित हुई। 1950 में विनोद शंकर व्यास की 'उलझती स्मृतियाँ' तो 1951 में कमला प्रसाद वर्मा की 'भूल भागती यादें', मन्मथनाथ गुप्त की 'क्रान्तिकारी की आत्मकथा', अजित प्रसाद जैन की 'अज्ञात जीवन', अलगू राय शास्त्री की 'मेरा जीवन', सत्येन्द्र परिव्राजक की 'स्वतंत्रता की खोज में', यशपाल की 'सिंहावलोकन' (भाग-1) प्रकाशित हुई। इसके अन्य भाग क्रमशः 1952 और 1955 में प्रकाशित हुए। 1952 में शांतिप्रिय द्विवेदी की 'परिव्राजक की प्रजा' आत्मकथा का प्रकाशन इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद से एवं देवेन्द्र सत्यार्थी की 'चाँद सूरज के बीरन (भाग-1) प्रकाशित हुई, जिसका दूसरा भाग 'नील यक्षिणी' शीर्षक से 1985 में प्रकाशित हुआ। 1953 में कालिदास कपूर की 'मुर्दरिस की रामकहानी' और किशोरीदास बाजपेयी की 'साहित्यिक जीवन के अनुभव' आत्मकथा प्रकाशित हुई।

समकालीन आत्मकथाएँ (1954 से अब तक) :

1954 में गंगा प्रसाद उपाध्याय की 'जीवन चक्र' एवं 1956 में चतुरसेन शास्त्री की 'यादों की परछाईयाँ' शीर्षक से आत्मकथा का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। इसका दूसरा भाग 'मेरी आत्मकहानी' शीर्षक से 1963 में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष (1956) रामदेवी मोरारका की 'मेरी जीवन कहानी', एल.पी.नागर की 'समय का फेर', जानकी देवी बजाज की 'मेरी जीवन यात्रा' जैसी आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं। 1957 में नरेन्द्र देव शास्त्री की 'आपबीती-जगबीती' का प्रकाशन हुआ। आगे के क्रम में 1958 में सेठ गोविन्ददास की 'आत्मनिरीक्षण' (तीन भागों में), देवराज उपाध्याय की 'बचपन के दो दिन' (दो भागों में, दूसरा भाग 1970 में 'यौवन के द्वार पर' शीर्षक से प्रकाशित), पदुमलाल पुन्ना लाल बक्शी की 'मेरी अपनी कथा' एवं राम प्रसाद बिस्मिल की 'आत्मकथा' जैसी आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं। 1960 में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'अपनी खबर' और शिव पूजन सहाय की 'मेरा बचपन' जैसी आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं। 1963 में आचार्य नन्द दुलारे शास्त्री की 'मेरी आत्मकहानी', आचार्य चतुरसेन शास्त्री की 'मेरी आत्मकहानी', संतराम बी.ए. की 'मेरे जीवन के अनुभव' जैसी आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं। 1966 में पृथ्वी सिंह आजाद की 'क्रान्तिकारी की आत्मकथा' और भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र माधव की 'जीवन के चार अध्याय' प्रकाशित हुईं। 1967 में

गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी की 'आत्मकथा और संस्मरण' शीर्षक से आत्मकथा प्रकाशित हुई। 1968 में आबिद अली की 'मजदूर से मिनिस्टर' आत्मकथा प्रकाशित हुई।

1969 का वर्ष हिंदी आत्मकथा की दृष्टि से महत्वपूर्ण वर्ष रहा क्योंकि इस वर्ष हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा का प्रथम भाग 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' प्रकाशित हुआ। यह चार भागों में लिखी गयी, जिसके अन्य भाग क्रमशः 'नीड़ का निर्माण फिर-फिर' (1970), 'बसेरे से दूर' (1978), 'दश द्वार से सोपान तक' (1985) में प्रकाशित हुए। 1970 में वृन्दावन लाल वर्मा की 'अपनी कहानी', देवराज उपाध्याय की 'यौवन के द्वार पर', हीरालाल शास्त्री की 'प्रत्यक्ष जीवन सार' प्रकाशित हुई। रामदरश मिश्र की 'जहाँ मैं खड़ा हूँ, रेशमी पगडंडियाँ', 'टूटते बनते दिन', 1974 में बलराज साहनी की 'मेरी फ़िल्मी आत्मकथा' का प्रकाशन हुआ। इसका दूसरा भाग 1983 में 'यादों के झरोखे' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। हंसराज रहबर की 'मेरे सात जन्म' (1986), डॉ. नगेन्द्र की 'अर्धकथा' (1990), अमृतलाल नगर की 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' (1991), 1992 में कमलेश्वर की आत्मकथा का प्रथम भाग 'जो मैंने जिया' प्रकाशित हुई। इसका दूसरा भाग 'यादों का चिराग' 1997 में, और 'जलती हुई नदी' शीर्षक से तीसरा भाग 1999 में आया। इसके बाद गोपाल प्रसाद व्यास की 'कहो व्यास कैसी कटी' (1996) और रामविलास शर्मा की प्रथम और द्वितीय खंड की आत्मकथा क्रमशः 'अपनी धरती अपने लोग' और 'देर सवेर' शीर्षक से आई। इसका तीसरा भाग 'आपस की बातें' शीर्षक से 2000 ई. में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष रवीन्द्र कालिया की प्रसिद्ध आत्मकथा 'गालिब छुटी शराब' और डी.आर. जाधव की 'मेरा सफर मेरी मंजिल' प्रकाशित हुई। 2001 में भगवती चरण वर्मा की 'कही न जाय का कहिये' और राजेन्द्र यादव की 'मुड़-मुड़ कर देखता हूँ', 2003 में भीष्म साहनी की 'आज के अतीत', अशोक बाजपेयी की 'पाव भर जीरे में ब्रह्मभोज', स्वदेश दीपक की 'मैंने मांडू नहीं देखा', 2004 में विष्णु प्रभाकर की आत्मकथा का प्रथम भाग 'पंखहीन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जिसका दूसरा और तीसरा भाग क्रमशः 'मुक्त गगन में' और 'पंछी उड़ गया' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, देवेश ठाकुर की 'यों ही जिया' (2007), कृष्ण बलदेव वैद्य की 'शम' अ हर रंग में', नन्द चतुर्वेदी की 'अतीत

राग', जाबिब हुसैन की 'रेत पर खेमा', तोताराम सनाढ्य की 'भूतलेन की कथा', सुमित्रानंदन पन्त की 'साठ वर्ष : एक रेखांकन', धर्मवीर की 'मेरी पत्नी और भेड़िया' (2009), मिथिलेश्वर की 'कहाँ-कहाँ तक कहें युगों की बात' (2011), राजकमल चौधरी की 'भैरवी तंत्र' जैसी आत्मकथाएँ इस युग में प्रकाशित हुई हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त, कुछ विशेष की आत्मकथाएँ भी आयीं, जिन्होंने आत्मकथा के साहित्य को न केवल समृद्ध किया बल्कि आत्मकथा लेखन को एक नवीन क्षितिज पर ला खड़ा किया। इन आत्मकथाओं ने यथार्थ चित्रण में पूर्ववर्ती सभी आत्मकथाओं को पीछे छोड़ दिया। ये आत्मकथाएँ निम्नवत् हैं :-

स्त्री आत्मकथाएँ :

आधुनिक काल की एक सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि स्त्रियों ने स्वयं के विषय में लिखना प्रारंभ किया, जिससे कई महत्वपूर्ण स्त्री-आत्मकथाएँ सामने आयीं। इन आत्मकथाओं ने कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति में पिछले सभी मानकों को तोड़ दिया। इन स्त्री-आत्मकथाओं के महत्व को रेखांकित करते हुए राजेन्द्र यादव लिखते हैं, "निजी और वैयक्तिक के भीतर सामाजिक और सार्वजनिक समाया हुआ है। सामाजिक और सार्वजनिक उनके समुच्चय में से निचोड़ा हुआ निराकार है। इसीलिए स्त्री-विमर्श में आत्मवृत्तों की एक खास जगह है - पर्सनल इज पोलिटिकल ! आत्मवृत्त के द्वारा स्त्री अपने जीवन का पाठ स्वयं रच रही है। एक दूसरी की कहानी में तीसरी चौथी पाँचवी की पहचान का अनंत सिलसिला एक ओर इज्जत यानी 'घर की बात' या 'फैमिली सीक्रेट' के नाम पर गोपन की जंजीरों में स्त्री को बाँध रखने के षड्यंत्रों का विद्रोह है तो दूसरी ओर अनुभव की साझेदारी के द्वारा विश्वव्यापी बहनापे से पूरे स्त्री समुदाय को जोड़कर एक विराट राजनीतिक पक्ष का निर्माण भी।"¹²²

आधुनिक काल में आत्मकथा-लेखन ने आत्मकथा विधा को सशक्त किया ही साथ ही अपने धरातल पर स्त्री-विमर्श को भी सम्बल दिया। आधुनिक काल से पूर्व की स्त्री-आत्मकथाओं पर दृष्टि

डालें तो यह इतिहास बौद्ध काल की थेरियों तक जा पहुँचता है, जहाँ 'थेरीगाथा' में स्त्रियों ने अपनी आध्यात्मिक उन्नति का वर्णन किया है। इससे आगे निकलकर आये तो मीरा के पद भी उनके जीवन पर प्रकाश डालते हैं -

"राणोजी म्हाँने या बदनामी लगे मीठी ॥

कोई निंदो कोई बिन्दो, मैं चलूँगी चाल अनूठी।

साँकड़ली सेयाँ जन मिलिया क्यूँ कर फिरूँ अपूठी।"¹²³

इसके बाद स्त्री-आत्माभिव्यक्ति की परम्परा आधुनिक काल की पृष्ठभूमि में उस समय दिखाई देती है, जब 1882 में एक अज्ञात हिन्दू औरत के द्वारा लिखी 'सीमंतनी उपदेश' जैसी आत्मकथा सामने आई। इसका सम्पादन डॉ. धर्मवीर ने किया। पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं, "इसी पंजाब की धरती पर 'सीमंतनी उपदेश' की इस अज्ञात लेखिका ने उन्नीसवीं शताब्दी में काम किया था। अंतर केवल यह है कि पंजाब की यह बहादुर बेटी रोने के बजाय सिंहिनी के समान गर्जना कर उठी थी... समाज के सामने अपनी बात रखने में इसने कोई कमी नहीं छोड़ी थी।"¹²⁴ लेखिका हिन्दू औरतों को केंद्र में रख उनकी पीड़ा की अभिव्यक्ति इस प्रकार करती है -

दुनिया में कोई हमदम न हमको पड़ा नजर;

तेरे सिवा कोई नहीं दिलदार खबर ले।¹²⁵

इस आत्मकथा के बाद 'स्त्री-दर्पण' पत्रिका के जुलाई 1915 से मार्च 1916 तक धारावाहिक के रूप में दुखिनीबाला की आत्मकथा 'सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी' प्रकाशित हुई। प्रज्ञा पाठक पत्रिकाओं पर काम करते हुए इस आत्मकथा को सामने लायीं। इस आत्मकथा में विधवा जीवन की विसंगतियों और धर्म के नाम पर अत्याचार सहती विधवा स्त्री की आत्म-कहानी है। इस आत्मकथा की लेखिका लिखती है, "आज घर में चिराग नहीं जला, रसोई में कोई गया ही नहीं। मैं इस चिंता में लगी कि क्या हो गया ? जिससे पूछती कि क्या हुआ, वही रोने लगता। घबड़ाकर मैं अपनी खाट पर

चली गयी। पड़े-पड़े सोचने लगी कि मामला क्या है ? मुझे याद आया कि अम्मा यह कहकर रोई थी कि मैं रांड हो गयी। अब मैं सोचने लगी कि रांड के माने क्या है, और मैं क्या हो गयी और मुझमें कौन सा परिवर्तन हो गया ?"¹²⁶ इसके बाद स्फुरना देवी की 1927 में लिखी आत्मकथा 'अबलाओं का इन्साफ' प्राप्त होती है, जिसका सम्पादन नैया के द्वारा किया गया, जो 2013 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा को पढ़कर आश्चर्य होता है कि 'चाँद' पत्रिका से प्रकाशित यह आत्मकथा उस समय प्रकाशित हुई, जब हिंदी में महादेवी वर्मा का पदार्पण हो चुका था। ऐसे में, इस आत्मकथा का इतने लम्बे समय तक उपेक्षित रह जाना संशय में डालता है। फिलहाल इस आत्मकथा की भूमिका में स्फुरना ने लिखा, "उच्च वर्ण के हिंदू, खासकर राजपूताने के ब्राह्मण एवं वैश्य-स्त्रियों के आपस के व्यवहारों के विषय में अपने अनुभव को प्रकाशित करने का बहुत समय से मेरा विचार था; क्योंकि मैंने स्वयं अपने ऊपर बीती हुई बातें देख-सुनकर निश्चय किया कि इस समाज के पुरुषों का व्यवहार स्त्रियों के साथ बहुत ही अनुचित और स्वार्थपूर्ण है... अतएव इस विषय की चर्चा करना मैंने अपना मुख्य कर्तव्य समझा।"¹²⁷

इसके बाद, 1956 में जानकी देवी बजाज की आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' प्रकाशित हुई। 1976 में अमृता प्रीतम की 'रसीदी टिकट', 1990 में प्रतिभा अग्रवाल की 'दस्तक ज़िन्दगी की' नाम से आत्मकथा का प्रथम भाग और 'मोड़ ज़िन्दगी का' (1996) शीर्षक से आत्मकथा का दूसरा भाग, कुसुम अंसल की आत्मकथा 'जो कहा नहीं गया', 1997 कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा', दूसरा भाग 2010 में 'और...और..औरत' शीर्षक से, 1999 में पद्मा सचदेव की 'बूंद बांवड़ी', शिवानी की 'सुनहु तात यह अमर कहानी', दूसरा भाग 'सोने दे', 2012 में तीसरा भाग 'एक थी रामरती', 1999 में ही कौशल्या बैसंत्री का 'दोहरा अभिशाप', 2000 में शीला झुनझुनवाला की 'कुछ कही कुछ अनकही', मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुंडली बसै', दूसरा भाग 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2008), 2005 में रमणिका गुप्ता की 'हादसे' और सुनीता जैन की 'शब्दकाया', 2007 में मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी' और प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या', 2008 में राजमाता विजयाराजे

सिंधिया की 'राजपथ से लोकपथ पर' और चन्द्रकिरण सोनरिक्सा की 'पिंजरे की मैना', 2011 में ममता कालिया की 'कितने शहरों में कितनी बार', 2012 में सुशीला टाकभोरे की 'शिकंजे का दर्द', चन्द्रकांता की 'हाशिये की इबारतें' आदि आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं। कुसुम अंसल आत्मकथा 'जो कहा नहीं गया' में लिखती हैं, "स्मृति को देखने का अर्थ है, अतीत के माध्यम से वर्तमान को देखना, वर्तमान के इस पल में, बीते हुए कल का पुनरावलोकन करते समय मुझे लग रहा है, जैसे मैं स्मृतियों की एक सुरंग में घुस गयी हूँ और अपने इन स्व-विश्लेषण के पलों को झेलना जैसे बर्दास्त नहीं हो रहा है। आत्मकथा लिखने के इस सफ़र में ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे कि मेरी शल्य चिकित्सा है। तभी यह यात्रा दर्द के स्थान पर दर्द से मुक्ति की यात्रा बन गयी है। मेरी स्मृतियों के कुछ 'इन्ग्रेड' पलों का टेप चल पड़ा है, तो उसे रोकने की चेष्टा क्यों की जाय? एक बार पुनः जी लेने में बुराई भी क्या है ?¹²⁸ उपरोक्त आत्मकथाओं के महत्व को रेखांकित करते हुए राजेन्द्र यादव लिखते हैं, "आत्मवृत्त स्त्री विमर्श के लिए भाषा संसार में उनके दावे और दखल की जगह है, जिनके पास दर्ज करने के लिए अनुभव हैं, पर दक्ष अभिव्यक्ति नहीं।"¹²⁹

दलित आत्मकथाएँ :

आधुनिक काल में दलित आत्मकथाओं की संख्या बढ़ने के कारण का उल्लेख शम्भूनाथ कुछ इस प्रकार करते हैं, "आत्मकथा बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में राष्ट्रीय महारथियों के लिए एक आत्मघातक विधा बन गयी थी। छल-प्रपंच से भरे वर्तमान समय में किसी बड़े साहित्यकार का अपनी आत्मकथा लिखना अपने ऊपर कीचड़ उछालने और अपना ही बिम्ब तोड़ने का मामला था। सवर्ण पुरुष सामान्यतः आत्मकथा नहीं लिख पा रहे थे। ऐसे दौर में दलित लेखकों ने न केवल अपनी ज़िन्दगी की मर्मन्तक सामाजिक पीड़ा को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने का साहस दिखाया, बल्कि आत्मकथा विधा को पुनर्जीवित किया था।"¹³⁰ आगे वह लिखते हैं, "दलित आत्मकथा सामान्य आत्मकथा से भिन्न है, क्योंकि यह वस्तुतः आत्मपहचान का संघर्ष है।"¹³¹

हिंदी की पहली दलित आत्मकथा भगवान दास द्वारा लिखी 'मैं भंगी हूँ' मानी जाती है। हिंदी में दलित आत्मकथा लेखन की वास्तविक शुरुआत मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' (1995) से होती है, जो दो भागों में लिखी गयी। इसके बाद ओम प्रकाश बाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' (1999) और कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' (1999) आती है। इसके बाद दलित आत्मकथा लेखन का एक क्रम ही चल पड़ता है, जिसमें डी. आर. जाटव की 'मेरा सफर मेरी मंजिल' (2000), सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' (2002), दूसरा भाग 'संतप्त', माता प्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन तक' (2002), डॉ. श्योराज सिंह बेचैन की 'बेवक्त गुजर गया माली' (2006) और दूसरा भाग 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' (2009), जयप्रकाश कर्दम की 'मेरी जात', कर्मेंदु महर्षि की 'इन्सान से ईश्वर तक', रमाशंकर आर्य की 'घुटन', एन. आर. सागर की 'जब मुझे चोर कहा', के. नाथ की 'तिरस्कार', रजनी तिलक की 'समर गाथा', रूप नारायण सोनकर की 'नागफनी' (2007) और 'मेरे जीवन की बाइबिल', तुलसीराम की 'मुर्दहिया' (2010) और मणिकर्णिका (2013) आदि महत्वपूर्ण दलित आत्मकथाएँ हैं।

(iv) आत्मकथा के सम्बन्ध में हिंदी में किये गये कुछ विशिष्ट प्रयोग :

हिंदी साहित्य में आत्मकथा को लेकर कुछ अनूठे प्रयोग भी किये गये हैं। कई लेखकों ने अन्य लेखकों की आत्मकथा, उनके विविध आत्मकथ्यों, भाषणों, लेखों और निबंधों के आधार पर रचने का प्रयास किया है। ऐसे प्रयास में सर्वप्रथम हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने 1958 'बाणभट्ट की आत्मकथा' लिखी। इसी क्रम में सूर्य प्रसाद दीक्षित की 'निराला की आत्मकथा' भी सम्मिलित है। 1980 में कमलेश्वर ने 12 भारतीय साहित्यकारों की आत्मकथा का संपादन 'गर्दिश के दिन' शीर्षक से किया, 1984 में विष्णुचंद्र शर्मा ने 'मुक्तिबोध की आत्मकथा' लिखी, 2000 में मदनगोपाल ने 'प्रेमचंद की आत्मकथा' लिखी, 2005 में राजेन्द्र यादव ने अर्चना वर्मा और बलवंत कौर के सहयोग से 20 लेखिकाओं के आत्मकथ्य का 'देहरि भई विदेस' शीर्षक से सम्पादन किया। इस क्रम में जयशंकर द्विवेदी का नाम भी लिया जा सकता है, जिन्होंने 'कृष्ण की

आत्मकथा', 'कालिदास की आत्मकथा', 'द्रोण की आत्मकथा', 'गांधारी की आत्मकथा' जैसे शीर्षकों से इन पात्रों की कुल आठ भाग में आत्मकथा लिखी। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं, "समूचे आत्मकथा साहित्य के पारिवारिक परिदृश्य को समवेत रूप से देखने पर यह लगता है कि वे विविध रूपी हैं - इनमें परिवार के व्रत, उत्सव, अंधविश्वास, परम्पराएँ, जीवनमूल्य, आदि सभी को स्थान मिला है। सच तो यह है कि भारत का सामाजिक इतिहास लिखने के लिए ये महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करती हैं। शिल्प की दृष्टि से इनमें पत्र, डायरी, संस्मरण आदि सबका सम्मिलित रूप मिलता है। ये प्रेरणा के अक्षय स्रोत हैं तथा पढ़ने में उपन्यास का-सा आनंद देती हैं।"¹³² किन्तु फिर भी हिंदी की आत्मकथाओं में कुछ कमी है जिसके सम्बन्ध में मैनेजर पाण्डेय का मत है, "हिंदी में आत्मकथा और जीवनी लेखन की दुर्दशा का मुख्य कारण यहाँ व्यक्तिगत जीवन की सच्चाई कहने के साहस का और सहने की आदत का अभाव भी है।"¹³³

1.3 हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ और तसलीमा नसरीन

(क) हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ :

मूलरूप से हिंदी में लिखित आत्मकथाओं के अतिरिक्त अन्य भाषाओं (भारतीय और विदेशी) से अनूदित आत्मकथाएँ भी हिंदी में मिलती हैं और इनकी बड़ी समृद्ध परम्परा रही है। कह सकते हैं कि इन आत्मकथाओं के हिंदी अनुवाद ने हिंदी आत्मकथा-साहित्य को वृहद् और समृद्ध बनाने में विशेष योगदान दिया है। इन आत्मकथाओं में बांग्ला, मराठी, तेलुगु, तमिल, उर्दू, असमिया, कन्नड़, पंजाबी, उड़िया के साथ-साथ अंग्रेजी, जापानी, फ्रेंच आदि भाषाओं से अनूदित आत्मकथाएँ सम्मिलित हैं। अनुवाद के माध्यम से विश्व भर के लेखकों की आत्मकथाओं के हिंदी में आगमन ने आत्मकथा लेखन को नई दिशा दी है। हिंदी में जो भी आत्मकथाएँ अनूदित हुई हैं वे केवल प्रतिष्ठित लेखकों की ही नहीं बल्कि राजनेताओं, पत्रकारों, यौनकर्मी, फिल्मकारों, व्यवसायियों आदि की भी हैं। इस विविधता ने हिंदी में आत्मकथा विधा के विकास में ही योगदान नहीं दिया, बल्कि विषयवस्तु

प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से भी जीवन-कथा की विभिन्न शैलियों से हिंदी साहित्य को परिचित करवाया है। विभिन्न भाषाओं से अनूदित आत्मकथाएँ और उनका संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है :-

(अ) मराठी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ :-

हंसा वाडेकर द्वारा मराठी में लिखित आत्मकथा 'सांगत्ये एका' (1972) का विजय बापट ने 'कहती हूँ सुनो' शीर्षक से हिंदी में अनुवाद किया। उनकी इस आत्मकथा पर हिंदी में 'श्याम बेनेगल ने 'भूमिका' फिल्म भी बनायी। 1978 में 'बलूत' नाम से दया पवार द्वारा लिखी गयी मराठी आत्मकथा का हिंदी में 'अछूत' नाम से अनुवाद किया गया। इस आत्मकथा में समाज के अछूतों के जीवन की त्रासदी और उनके जीवन की विडम्बनाओं के सम्बन्ध में मार्मिक वर्णन मिलता है। इस आत्मकथा ने दलित जीवन को सामने लाने का ही प्रयास नहीं किया बल्कि दलित आत्मकथा लेखन का भी मार्ग प्रशस्त किया। लक्ष्मण माने की मराठी में लिखित आत्मकथा 'उपरा' का 'पराया' शीर्षक से हिंदी में अनुवाद किया गया। इसे 1981 में मराठी भाषा के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' भी प्राप्त हुआ। यह 'कैकाड़ी' समाज के जनजातीय जीवन का उल्लेख करती आत्मकथा है, जिसमें इस समाज की घोर अज्ञानता से निकल आने वाले व्यक्ति की जीवन कथा है। मल्लिका अमर शेख - 'मला उध्वस्त व्हॉयचय' (1984) का 'मैं खाक में मिल जाना चाहती हूँ' शीर्षक से हिंदी अनुवाद हुआ है। शांतासभा की आत्मकथा का 1986 में 'वि शांतासभा की आत्मकथा' नाम से हिंदी अनुवाद किया गया। शंकर राव खरात की आत्मकथा 'जागल्या' का 'तराल-अंतराल' (1987) नाम से हिंदी अनुवाद डॉ. केशव प्रथमवीर ने किया। 1991 में मराठी में 'अक्करमाशी' नाम से शरण कुमार लिम्बाले द्वारा लिखी गयी आत्मकथा का उसी शीर्षक से हिंदी में सूर्य नारायण रणसुभे ने अनुवाद किया। 'अक्करमाशी' शब्द एक गाली है, जिसका मराठी में तात्पर्य है 'अमान्य या अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न संतान'। यह अवैध संबंधों के उपरांत दलित जाति में पैदा हुए व्यक्ति की कथा है, जिसमें दलित वर्ग के दर्द को सहज महसूस किया जा सकता है। अवैध संतानों के जीवन में परिवार और पिता के नाम की कमी और ऊपर से निम्न जाति में जन्म का दंश इन्सान को भीतर से किस तरह तोड़ देता है, यह आत्मकथा इसी

त्रासदी को बयाँ करती है। लक्ष्मण गायकवाड़ की आत्मकथा का 'उचक्का' नाम से हिंदी में अनुवाद किया गया। यह आत्मकथा 'जरायम पेशा' जाति की मुक्ति की छटपटाहट का दस्तावेज है। यह मराठी में 1992 में 'उचल्या' शीर्षक से प्रकाशित हुई। बेबी काम्बले की आत्मकथा 'आमाच्या जीवन' का 'जीवन हमारा (1995) शीर्षक से अनुवाद किया गया। इस आत्मकथा में महाराष्ट्र के एक गाँव की 'महार' जाति की स्त्रियों की गुलामी और उनकी यातना के अनुभव की कथा है। किशोर शांताबाई काले की 'छोरा कोलहाटी का' अनुवाद - अरुंधती देवस्थले द्वारा किया गया जो 1999 में प्रकाशित हुई। यह महाराष्ट्र के एक ऐसे लड़के की आत्मकथा है, जो महाराष्ट्र के 'कोल्हाटी' समाज में जन्म लेता है। इस समाज की स्त्रियाँ नाच आदि करने के कारण विवाह नहीं कर सकती थीं और इनके बच्चे भी पढ़-लिख नहीं सकते थे। ऐसे समाज में जन्म लेकर डॉक्टर बनने वाले इन्सान की सत्य कथा है यह आत्मकथा। मराठी में 'गब्बाल' नाम से प्रसिद्ध दादा साहब मोरे की आत्मकथा का हिंदी में अनुवाद डॉ. अर्जुन चव्हाण ने 'डेराडंगर' नाम से किया। इसका प्रथम संस्करण 2001 में आया। यह दलित साहित्यांदोलन को एक दिशा देने वाली आत्मकथा है, जिसमें दलित जीवन, परिवेश, परिस्थितियों को लेखक ने प्रमुखता से दिखाया है और इसे ही केंद्र में रखा है। उत्तम काम्बले की आत्मकथा का 'अगनपथ' नाम से हिंदी अनुवाद किया गया। यह आत्मकथा एक दलित पत्रकार के जीवन संघर्ष और विजय की गाथा है, जिसमें दलित जीवन की विसंगतियों को साफ-साफ देखा जा सकता है। प्र. ई. सोनकाम्बले की आत्मकथा 'आठ वर्णाचे पक्षी' का हिंदी में 'यादों के पक्षी' शीर्षक से अनुवाद किया गया। विनायक दामोदर सावरकर की मराठी से अनूदित 'आत्मचरित्र' भी प्राप्त होती है। 'आयदान' उर्मिला पवार की आत्मकथा का हिंदी में अनुवाद किया सौ. माधवी प्र. देशपांडे ने। उर्मिला पवार की यह आत्मकथा समाज का दोहरा अभिशाप झेलने वाली एक दलित स्त्री की करुण आत्मकथा है, जिसमें पितृसत्तात्मक समाज की गहरी जड़ों से घिरी स्त्री के एक प्रसिद्ध लेखिका बनने की कथा है। वैशाली हलदणकर की आत्मकथा का शीर्षक है 'बारबाला'। यह पद्मजा घोरपड़े के द्वारा हिंदी में अनूदित की गयी। इस आत्मकथा में ऐसी स्त्री का जीवन संघर्ष है, जो अपनी

परिस्थितियों से विवश हो बारबाला बनती है और उस जीवन के कटु दंशों से जूझते हुए बाहर आती है। आशा अपराद की 'दर्द जो सहा मैंने', भारतीय मुस्लिम परिवार में जन्मी, एक ऐसी स्त्री की गाथा है, जिसने तमाम कष्टों और झंझावतों को सहते हुए अपने मुकाम को हासिल किया। इसका मराठी से हिंदी में अनुवाद स्वयं आशा आपराद ने किया है। पार्थ पोलके की आत्मकथा 'पोतराज' भी मूलतः मराठी में लिखित आत्मकथा है, जिसके अनुवादक डॉ. गजानन चौहान हैं। यह मराठी में 'आभरान' शीर्षक से लिखी गयी है। यह भीषण अभाव में जीवन बिताने वाले मनुष्य के जीवन की कथा है, जो एक नवीन सामाजिक दृष्टि प्रदान कर मनुष्य में जिजीविषा उत्पन्न करती है। शांताबाई काम्बले की आत्मकथा 'माझी जन्माची चित्रकथा' का भी हिंदी अनुवाद किया गया। अरुण खोरे की आत्मकथा का 'भूले बिसरे दिन' शीर्षक से दामोदर खडसे ने हिंदी अनुवाद 2001 में किया। यह गरीबी के कारण रिमांड होम में अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों को बिताने वाले पत्रकार की आत्मकथा है। इस आत्मकथा में हम रिमांड होम या अनाथालयों में रहने वाले बच्चों की दुर्दशा, उनकी प्रताड़ना आदि का मार्मिक चित्रण पाते हैं। 'मैं दुर्गा खोटे' मराठी अभिनेत्री दुर्गा खोटे की आत्मकथा है, जिसका हिंदी अनुवाद कुसुम ताम्बे के द्वारा किया गया है। एक संपन्न परिवार में जन्म लेने वाली बालिका के उस जीवन की कथा है, जो विवाह के बाद पति की प्रताड़ना से नरक में बदल गया। फिल्म क्षेत्र में सफलता किन्तु पारिवारिक सम्बन्ध में विफलता की कहानी कहती है यह आत्मकथा। डॉ. सुनील कुमार लवटे की आत्मकथा 'नेम नॉट नोन' का अनुवाद डॉ. गिरीश काशिद ने किया जो 2009 में प्रकाशित हुई। यह अनाथाश्रम में पले-बढ़े एक ऐसे व्यक्ति की आत्मकथा है, जिसके जीवन के जन्म, सम्बन्धियों आदि के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं था। यह गुमनामी से नाम तक पहुँचने वाले व्यक्ति की कहानी है। अम्बेडकर की आत्मकथा 'मी कसा झाला' का हिंदी में 'मैं कैसे बना' नाम से अनुवाद किया गया। अप्पा कोरपे की आत्मकथा 'मी तो हमाल' का हिंदी में 'मैं तो ठहरा हमाल' नाम से अनुवाद किया गया।

(आ) गुजराती से हिंदी में अनूदित आत्मकथायें :-

महात्मा गाँधी ने मूलतः 'आत्मचरित' शीर्षक से गुजराती भाषा में अपनी आत्मकथा लिखी, जिसका हिंदी अनुवाद हरिभाऊ उपाध्याय ने 1927 में 'सत्य के मेरे प्रयोग' शीर्षक से किया। इसके सम्बन्ध में पंकज चतुर्वेदी लिखते हैं, "महात्मा गाँधी का लेखन इस जनतांत्रिक स्फिरिट से अनुप्राणित है। उन्होंने जब अपने 'सत्य के प्रयोग' अथवा आत्मकथा शब्दबद्ध की, तो उसका आधार उनका यह विश्वास रहा कि... जो एक के लिए शक्य है, वह सबके लिए शक्य है।"¹³⁴ महात्मा गाँधी स्वयं लिखते हैं, "इस संकुचित क्षेत्र में आत्मकथा के मेरे लेखों से बहुत कुछ मिलेगा, क्योंकि कहने योग्य एक भी बात मैं छिपाऊँगा नहीं... मुझे सत्य के शास्त्रीय प्रयोगों का वर्णन करना है। मैं कितना भला हूँ इसका वर्णन करने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है।"¹³⁵ कन्हैया लाल मणिकलाल मुंशी की तीन खण्डों में गुजराती में लिखी आत्मकथा का हिंदी अनुवाद तीन भिन्न व्यक्तियों द्वारा किया गया। प्रथम भाग 'आधे रास्ते' (1942) का अनुवाद पद्मसिंह शर्मा कमलेश के द्वारा किया गया, दूसरे भाग 'सीधी चढ़ान' का अनुवाद मंजुला वीरदेव ने 1952 में किया और तीसरे भाग का अनुवाद 'स्वप्न सिद्धि की खोज में' शीर्षक से प्रवासी लाल वर्मा ने किया।

(इ) पंजाबी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ :-

पंजाबी भाषा में दलीप कौर टिवाणा द्वारा लिखित 'नंगे पैरों दा सफर' (1980) का हिंदी में 'नंगे पैरों का सफ़र' शीर्षक से अनुवाद किया गया। राजेन्द्र यादव ने इस आत्मकथा को अपनी पुस्तक 'आदमी की निगाह में औरत' में एक आत्मविश्वासपूर्ण रचना कहा है। दारा सिंह की आत्मकथा 'मेरी आत्मकथा' 1993 में हिंदी में प्रकाशित हुई। 1994 में प्रेम गोरखी की पंजाबी भाषा में लिखी आत्मकथा का 'गैर हाज़िर आदमी' शीर्षक से हिंदी में अनुवाद किया गया। 2002 में पंजाबी में बलवीर माधोपुरी के द्वारा लिखित आत्मकथा 'छांग्या रुख' का हिंदी अनुवाद सुभाष नीरव के द्वारा किया गया। यह पंजाबी भाषा की पहली दलित आत्मकथा है। यह आत्मकथा सिखों में व्याप्त जाति प्रथा का रहस्योद्घाटन करती है। अजीत कौर द्वारा पंजाबी में लिखित आत्मकथा दो खण्डों में है।

पहला 'खानाबदोश' और दूसरा 'कूड़ा कबाड़ा'। कर्तार सिंह दुग्गल की आत्मकथा 'किस पहि खोलउ गंठड़ी' का हिंदी अनुवाद फूलचंद मानव ने 2011 में किया।

(ई) बांग्ला से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ :-

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी आत्मकथा 'जीवन-स्मृति' शीर्षक से 1920 में लिखी। इसका हिंदी अनुवाद सूरजमल जैन ने किया जो मित्र ग्रंथमाला, इंदौर से 1930 में प्रकाशित हुई। वे लिखते हैं, "जब मैंने स्मृति-पटल पर के चित्र मंदिर के द्वार को खोला तो मुझे मालूम हुआ कि मनुष्य की स्मृति जीवन का इतिहास नहीं हैं, किन्तु अज्ञात चित्ते द्वारा उसकी कल्पना के अनुसार बनाये हुए चित्र हैं। इस पट पर जो इधर-उधर चित्र-विचित्र रंग फैला हुआ है, वह वाह्य दृश्यों का प्रतिबिम्ब नहीं है किन्तु उस चित्ते के अन्तःकरण का आदर्श है, जिसमें उसके विकारों की छठा छाई हुई है।"¹³⁶ बांग्ला भाषा में सर्चींद्र सान्याल के द्वारा लिखी आत्मकथा 'बंदी जीवन' (1936) का 'बंदी जीवन' शीर्षक से अनुवाद किया गया। सुभाष चन्द्र बोस की आत्मकथा बांग्ला में 'तरुण सपन' (1935) का हिंदी में 'तरुण के स्वप्न' शीर्षक से अनुवाद अनुवादक गिरीश चन्द्र जोशी ने किया। तसलीमा नसरीन की आत्मकथा के सात भाग भी बांग्ला से हिंदी में अनूदित आत्मकथाओं के उदाहरण हैं। 2002 में बेबी हलधर द्वारा बांग्ला में लिखी आत्मकथा 'आलो आंधारि' अनूदित होकर 2006 में हिंदी में प्रकाशित हुई। इसका हिंदी में अनुवाद प्रबोध कुमार ने किया।

(उ) असमिया से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ :-

इंदिरा गोस्वामी द्वारा असमी भाषा में लिखित आत्मकथा के प्रथम खंड 'अधलिखा दस्तावेज' (आधा लेखा दस्तावेज) (1988) और दूसरे खंड 'दस्तावेजेर नतुन पृष्ठा' (2007) का 'जिंदगी कोई सौदा नहीं' नाम से हिंदी अनुवाद किया गया।

(ऊ) मलयालम से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ :-

'एक सेक्स वर्कर की आत्मकथा' नलिनी जमीला की मलयालम में लिखित आत्मकथा है। इसका मलयालम संस्करण 2005 में प्रकाशित हुआ। यह एक सेक्स वर्कर के जीवन की गाथा है, जिसमें जीवन के स्याह और सफ़ेद पन्नों को उसी रंग के साथ खोला गया है।

(ऋ) तुर्की से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ :-

इस भाषा से सर्वप्रथम अमीर तैमूर की आत्मकथा 'मालफुजात-ए-तैमूरी' (1410 ई.) का अनुवाद प्राप्त होता है। यह पुस्तक तुर्की में थी, जिसका फारसी अनुवाद अल हुसैनी ने 'तुजुक-ए-तैमूरी' शीर्षक से किया। हिंदी में अनुवाद डॉ. आर. के. सक्सेना ने 'अमीर तैमूर की आत्मकथा' शीर्षक से किया, जो पंचशील प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा में तैमूर ने अपने जीवन की घटनाओं का तिथिक्रम पर बल न देते हुए केवल उल्लेख भर कर दिया है। इसमें तैमूर का 7 से 74 वर्ष का जीवन वर्णन प्राप्त होता है। हालाँकि इसमें प्राप्त कई घटनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है। इसके अतिरिक्त 'बाबरनामा' तुर्की में लिखित बाबर की आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' का ही दूसरा नाम है। इसका फारसी में अनुवाद अब्दुल रहीम खानखाना ने किया और इसके बाद इसका अंग्रेजी अनुवाद 1826 में लीडेन और अर्सीकिन ने किया। साहित्य अकादमी से यह पुस्तक रूप में 1974 में प्रकाशित हुई, जिसका हिंदी अनुवाद युगजीत नवलपुरी ने किया है। इसमें बाबर ने अपने व्यक्तित्व के कई पहलुओं को तो खोला ही है साथ ही इसमें भारत के सन्दर्भ में भी काफी जानकारी मिलती है। 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' का हिंदी अनुवाद मथुरालाल शर्मा ने किया। जहाँगीर ने अपने राज्यकाल के 17वें वर्ष तक का वृत्तांत इस आत्मकथा में लिखा है। इसके बाद का वृत्तांत मुहामिद खां को सौंप दिया गया, जिसने इसे अपनी पुस्तक 'इकबालनामा' में पूर्ण किया। इसका अंग्रेजी अनुवाद अलेक्जेंडर रोजर्स ने और अंग्रेजी में संपादन हेनरी वेबरिज ने किया। इसमें शाहजहाँ के बादशाह के रूप में उसके द्वारा बिताये गये जीवन, उपलब्धियों और युद्धों के विवरण प्राप्त होते हैं।

(ए) फारसी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ :-

मीर तकी मीर की आत्मकथा 'जिक्रे मीर' (1783) नाम से मूलतः फारसी में लिखी गयी थी। इसका हिंदी अनुवाद मित्र प्रकाशन प्रा. लि. इलाहाबाद से 1928 में प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद अजमल अजमली ने किया और इसके सम्पादक कृष्णदास थे। इसमें नादिरशाह के हमले और कत्लेआम का आँखों देखा वर्णन किया गया है।

(ऐ) उर्दू से हिन्दी में अनूदित आत्मकथाएँ :-

जोश मलीहाबादी की उर्दू में लिखित आत्मकथा 'यादों की बारात' (1972) का उसी नाम से हिंदी में अनुवाद किया गया।

(ओ) अंग्रेजी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ

मूलतः अंग्रेजी में लिखित मुंशी लुत्फुल्ला खां की आत्मकथा 'एन ऑटोबायोग्राफी' (1848) का देवीदत्त शुक्ल ने 'एक आत्मकथा' शीर्षक से हिंदी अनुवाद किया, जो इन्डियन प्रेस इलाहाबाद से 1939 में प्रकाशित हुई। मैक्सिम गोर्की की आत्मकथा 'माय चाइल्डहुड' (1912-13) का 1966 में हिंदी में अनुवाद हुआ। 'लोगों के बीच' (1914) और 'मेरे विश्वविद्यालय' (1923) उपन्यासों में भी गोर्की की आत्मकथा प्राप्त होती है। बुकर टी वाशिंगटन की आत्मकथा 'अप फ्रॉम स्लेवरी' का सर्वप्रथम मराठी भाषा में अनुवाद किया गया और इससे ही इसका हिंदी में अनुवाद 1915 में 'आत्मोद्धार' शीर्षक से पंडित लक्ष्मीनारयण गर्दे ने किया। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी समाज और देश के हित के लिए कार्य करने की प्रेरणा उत्पन्न करती है, यह आत्मकथा। ज्याँ जेने की आत्मकथा हिंदी में 'चोर का रोजनामचा' शीर्षक से अनूदित हुई। कथा और आत्मकथा के सटीक मिश्रण से तैयार इस पुस्तक में, लेखक ने 1930 के दशक में अपनी यूरोप यात्रा का वर्णन किया है। भूख, उपेक्षा, थकान और दुराचार को झेलते और चिथड़े पहने उन्होंने स्पेन, इटली, ऑस्ट्रिया, चेकोस्लोवेकिया, पोलैंड, जर्मनी आदि की यात्रा की और तत्कालीन जन-जीवन के एक उपेक्षित पहलू को अपनी भाषा में स्थान दिया। हिटलर की आत्मकथा 'मीन कैम्फ' का हिंदी अनुवाद 1938

में कृष्णचन्द्र बेरी ने 'मेरा जीवन संग्राम' शीर्षक से किया। यह मूलतः जर्मन भाषा में 1931 में प्रकाशित हुई थी। 1932 में प्रकाशित हुई मि. वेस्ट की आत्मकथा 'कोलमाइन टू पार्लियामेंट' का हिंदी अनुवाद प्रतापनारायण चतुर्वेदी ने 'कोयले की खान से पार्लियामेंट तक' शीर्षक से किया, जिसका प्रकाशन भारतीय प्रेस दारागंज, प्रयाग से हुआ। इसी प्रकार ट्राटस्की की आत्मकथा का पहले अंग्रेजी में अनुवाद 'माई लाइफ' शीर्षक से किया गया। इसके बाद इस अंग्रेजी संस्करण से इसका दो भागों में हिंदी अनुवाद 1934 में ज्ञानमंडल काशी से प्रकाशित हुआ। प्रथम भाग का अनुवाद रामदास गौड़ और द्वितीय भाग का अनुवाद राजवल्लभ सहाय ने किया। पंडित नेहरू ने 1936 में 'माई स्टोरी' नाम से आत्मकथा लिखी, जिसका हिंदी अनुवाद हरिभाऊ उपाध्याय ने किया। 'इंडिया विन्स फ्रीडम' शीर्षक से अंग्रेजी में लिखी अबुल कलाम आज़ाद की आत्मकथा का हिंदी अनुवाद 'भारत की आजादी की जीत' शीर्षक से किया गया। यह उनकी राजनीतिक आत्मकथा है। 'सत्य की खोज' डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की हिंदी में अनूदित आत्मकथा है। वेद मेहता की आत्मकथा 'फेस टू फेस' का 1958 में हिंदी अनुवाद 'मेरा जीवन संघर्ष' शीर्षक से किया गया, सीमोन द बोउआर की 'अ वेरी इजी डेथ' (1964) आत्मकथा का अनुवाद गरिमा श्रीवास्तव ने किया, कमला दास की 'माई स्टोरी' (1977) का हिंदी अनुवाद 'मेरी कहानी' और काज्जा इलैया की आत्मकथा 'व्हाई आई एम नॉट अ हिन्दू' का 'मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ' शीर्षक से अनुवाद किया गया। इसमें हिन्दू धर्म के अस्तित्व पर प्रश्न किया गया है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी से हिंदी में अनूदित अन्य आत्मकथाएँ हैं- मैडम क्यूरी की आत्मकथा का लाल बहादुर शास्त्री द्वारा किया गया अनुवाद, हेलेन केलर की 'मेरी जीवन कहानी', बेंजामिन फ्रेंकलिन की आत्मकथा 'मेरी आत्मकथा', आर. के. नारायण की 'माई डेटलेस डायरी', क्रोपार्टकिन की 'एक क्रांतिकारी के संस्मरण', चार्ली चेपलिन की 'मेरी आत्मकथा' (अनुवादक - सूरज प्रकाश), बेनजीर भुट्टो की आत्मकथा 'डॉटर ऑफ़ द ईस्ट' (1989) का हिंदी अनुवाद 'मेरी आपबीती' शीर्षक से किया गया। के. जे. अलफोंस की आत्मकथा 'बदलाव के लिए' (1998) के अनुवादक अभय किशोर हैं। कृष्ण कुमार बिड़ला की अनूदित आत्मकथा है

'इतिहास का स्पर्श बोध' । सुविख्यात बिड़ला परिवार के एक विशिष्ट सदस्य द्वारा लिखित यह आत्मकथा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मदन मोहन मालवीय, जयप्रकाश नारायण, मोरारजी देसाई और बिधान चन्द्र रॉय जैसे दिग्गज राष्ट्रीय नेताओं के साथ परिवार के घनिष्ठ सम्बन्धों की अन्तरंग झलक प्रस्तुत करती है । मार्क शागल की आत्मकथा का 'आप बीती' शीर्षक से अनुवाद अखिलेश द्वारा किया गया । कर्ण सिंह की 'आत्मकथा' भी अंग्रेजी से ही अनूदित है । यह आत्मकथा भारतीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण दौर का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है, जिसमें भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति की घटना के अलावा जम्मू-कश्मीर की राजनीति, चीन और पाकिस्तान के साथ विवाद और पं.जवाहरलाल नेहरू व लालबहादुर शास्त्री के प्रधानमंत्रित्व काल की घटनाएँ शामिल हैं । इसी क्रम में कुलदीप नैयर की आत्मकथा 'एक जिन्दगी काफी नहीं', जनरल जे. जे. सिंह की 'एक सेना अध्यक्ष की आत्मकथा', चर्चिल की 'मेरा प्रारंभिक जीवन', मार्क ट्वेन की 'यादों की घाटियाँ', हास्य लेखक पी. जी. वुड हाउस की आत्मकथा 'ओवर सेवेंटी', सामरसेट माम की आत्मकथा -'द समिंग अप', फौजी अफसर की 'द ब्यू गिल्स एंड द टाइगर', जनरल कॉल की 'अनकही कहानी', अयंगर, निनुहा और राव की आत्मकथा 'अफसरों की आत्मकथाएँ', लीला सेठ की आत्मकथा 'घर और अदालत' ('बैलेंस' से हिंदी अनुवाद किया अनुवादक -प्रदीप तिवारी ने), ए. पी. जे. अब्दुल कलाम की आत्मकथा 'छुआ आसमान' (अंग्रेजी में विंग्स ऑन फायर), चार्ल्स डार्विन की आत्मकथा (अनुवादक सूरज प्रकाश) एवं के. पी. तिवारी, मुहम्मद युनुस की अंग्रेजी में लिखित आत्मकथा 'बैंकर ऑफ़ द पुअर' का 'गरीबों के बैंकर' शीर्षक से हिंदी अनुवाद किया गया । यह अनुवाद अमरनाथ श्रीवास्तव ने किया, जिसका प्रथम संस्करण 2009 में आया । फिलिप मिडोज टेलर द्वारा अंग्रेजी में लिखित अमीर अली की आत्मकथा 'द कन्फेसन ऑफ़ ए ठग' का हिंदी अनुवाद डॉ. राजनारायण पाण्डेय ने 'एक ठग की दास्तान' नाम से किया । दलाई लामा की आत्मकथा 'माई लैंड माई पियूपिल' का हिंदी में अनुवाद 'मेरा देश निकाला ' नाम से किया गया । यह देश-निकाला पाने वाले शांतिमय योद्धा के संघर्ष की कहानी है । मन्ना डे की 'यादें जी उठीं : एक आत्मकथा', खुशवंत सिंह की 'सच प्यार और थोड़ी सी

शरारत' अंग्रेजी से हिंदी अनूदित आत्मकथाएँ हैं। खुशवंत सिंह की यह आत्मकथा अपने समय का बयान है। इस आत्मकथा के माध्यम से उन्होंने अपने जीवन के राजनीतिक, सामाजिक माहौल की पुनर्चना तो की ही है, पत्रकारिता की दुनिया में झाँकने का मौका भी मुहैया कराया है। इस प्रक्रिया में न जाने कितनी जानी-मानी हस्तियाँ बेनकाब हुई हैं और न जाने कितनी घटनाओं पर से पर्दा उठा है। ऐसा करते हुए खुशवंत सिंह ने हैरत में डालनेवाली साहसिकता का परिचय दिया है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी' (2015), अनुवादक डॉ. शशिकला राय, 2015, नेल्सन मंडेला की अंग्रेजी से अनूदित आत्मकथा 'मेरा जीवन बातों बातों में', शेख मुजीबुर्रहमान की 'अनफिनिशड मेमोरीज' का हिंदी में 'बंगबंधु-दास्ताँ और भी है' नाम से अनुवाद 2017 में प्रकाशित हुआ।

(औ) जापानी से हिंदी में अनूदित आत्मकथाएँ :

1993 में जापानी भाषा में शिमाजाकी तोसेन के द्वारा लिखी गयी आत्मकथा 'हाकाई' का हिंदी में 'अवज्ञा' नाम से अनुवाद किया गया।

चूँकि "...जीवन के किसी एक बिंदु पर, सब कुछ कभी नहीं चुकता। जीवन एक ऐसा अक्षय सोता है, जो जितना उलीचा जाता है, उतना फिर रिसकर भर जाता है" ¹³⁷ इसलिए आत्मकथा-लेखन कभी समाप्त नहीं हो सकता और न ही कोई आत्मकथा पूर्ण हो सकती है। हिन्दी में अनूदित आत्मकथाओं ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है, किन्तु अभी भी, कई भाषाओं से आत्मकथाओं के अनुवाद किये जाने की आवश्यकता है।

हिंदी और अनूदित आत्मकथाओं का एक वृहद् भंडार दिखाई पड़ता है और ये सभी आत्मकथाएँ जीवन के स्तर विशेष पर पहुँचकर विभिन्न प्रयोजन और उद्देश्य से लिखी गयी हैं। इस सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव 'आत्मकथा, यानी बाहर-भीतर झाँकने की खिड़की' शीर्षक आलेख में लिखते हैं, "प्रायः सभी आत्मकथाएँ सफलता और उपलब्धियों के द्वीपों पर बैठकर जीवन का पुनरावलोकन ही होती हैं। व्यक्ति और समाज की टकराहट से उपजी प्रतिक्रिया या रेस्पांस ही

अनुभवों के कोश का रूप ले लेते हैं और यह अनुभव-भण्डार संवेदनाओं, स्मृतियों, आकांक्षाओं के रसायनों से गुजरते हुए जो समझ विकसित करता है उसे विवेक भी कहा जा सकता है... यही विवेक पलटकर अनुभवों, अनुभूतियों, संवेदनाओं, स्मृतियों, चेतना की जीवंत प्रक्रिया को काटता-छांटता, छोड़ता, समेटता हुआ भूत और भविष्य में विस्तृत होता या सिकुड़ता है।"¹³⁸

(ख) अनूदित आत्मकथाओं में तसलीमा नसरीन की आत्मकथा : मूल्यांकन

(अ) तसलीमा नसरीन की आत्मकथा : तसलीमा नसरीन ने मूलतः बांग्ला भाषा में आत्मकथा लिखी, जो अब तक सात भागों में प्रकाशित हो चुकी है। ये सात खंड भिन्न-भिन्न शीर्षकों से लिखे गये हैं, जिनका क्रम इस प्रकार है :-

1. तसलीमा ने आत्मकथा का प्रथम भाग मूलतः 'आमार मेयेबेला' शीर्षक से बांग्ला भाषा में लिखा, जो 1999 में प्रकाशित हुआ। इसके हिंदी अनुवाद का प्रथम संस्करण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 'मेरे बचपन के दिन' शीर्षक से 2002 में प्रकाशित हुआ। अमर गोस्वामी ने इसका हिंदी अनुवाद किया है।
2. दूसरा भाग 'उत्तोल हबा' शीर्षक से 2002 में प्रकाशित हुआ। इस भाग के अनुवाद का प्रकाशन भी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 'उत्ताल हवा' शीर्षक से वर्ष 2003 में हुआ। इस खंड का अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है।
3. बांग्लादेश में 'का' और पश्चिम बंगाल में 'द्विखंडित' शीर्षक से आत्मकथा का तृतीय भाग वर्ष 2003 में प्रकाशित हुआ। इसका हिंदी अनुवाद 'द्विखंडित' शीर्षक से वाणी प्रकाशन से 2004 में प्रकाशित हुआ। इस भाग का अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है।

4. आत्मकथा का चतुर्थ भाग 'सेई सोब ओंधोकार दिन गुई' शीर्षक से 2004 में प्रकाशित हुआ। इसका हिंदी में अनूदित प्रथम संस्करण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 'वे अँधेरे दिन' शीर्षक से 2004 में प्रकाशित हुआ। इस खंड का हिंदी अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है।

5. पाँचवे भाग का प्रकाशन 'आमी भालो नेइ तुमि भालो थेको प्रियो देश' शीर्षक से 2006 में हुआ। हिंदी में यह वाणी प्रकाशन से 'मुझे घर ले चलो' शीर्षक से 2007 में प्रकाशित हुई। इस भाग का हिंदी अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है।

6. छठे भाग का प्रकाशन 'नेइ, किछु नेइ' शीर्षक से बांग्ला में 2010 में हुआ। इसका हिंदी संस्करण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 'नहीं, कहीं कुछ भी नहीं' शीर्षक से 2012 में प्रकाशित हुआ। इस संस्करण का हिंदी अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है।

7. सातवाँ खंड मूलतः 'निर्वासन' शीर्षक से 2013 में प्रकाशित हुआ। इसका हिंदी संस्करण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 'निर्वासन' शीर्षक से 2014 में प्रकाशित हुआ। इस खंड का हिंदी अनुवाद अमृता बेरा ने किया है।

(आ) आत्मकथा के सम्बन्ध में तसलीमा का मत :

आत्मकथा के सम्बन्ध में तसलीमा लिखती हैं, "मैं लेखक हूँ या नहीं। मेरी ही आत्मकथा उसे मुझे धारावाहिक के रूप में लिखने का अधिकार है भी या नहीं, ऐसे सवाल भी उठाने लगे। वस्तुतः हर व्यक्ति को अपनी आत्मकथा लिखने का अधिकार है, यहाँ तक कि उन अहंकारपूर्ण संवादकों को भी यह अधिकार है, जो यह मानते हैं कि मेरे हाथ में कलम होना ही घोर अशुभ है।"¹³⁹ स्पष्ट है, तसलीमा सभी के लिखने के अधिकार के पक्ष में हैं चाहे वह उनका विरोधी ही क्यों न हो। यहाँ यह देखना है कि तसलीमा की आत्मकथा क्या आत्मकथा के मानकों पर खरी उतरती है या नहीं एवं तसलीमा ने कौन से नये मानक गढ़े हैं, जो हिंदी आत्मकथा लेखन के लिए मार्गदर्शक बन सकते हैं।

(इ) आत्मतत्व :

किसी भी आत्मकथा का मुख्य तत्व लेखक स्वयं होता है क्योंकि वह पूरी जीवन-कथा का केंद्र बिंदु होता है। आत्मतत्व को प्रस्तुत करने के सन्दर्भ में तसलीमा की आत्मकथा का सानी खोज पाना अत्यंत कठिन है। सात भागों में तसलीमा ने अपने व्यक्तित्व के एक-एक पक्ष को जैसे कोई 'अन्य' बनकर उधाड़ने का प्रयास किया है। 'बचपन के दिन' से 'निर्वासन' तक तसलीमा स्वयं को स्वयं से बाहर आकर देखती हैं। आत्मालोचना और आत्ममंथन में यह आत्मकथा अत्यंत विशिष्ट है। पूरी आत्मकथा उनके जीवन को केंद्र में रखकर आगे बढ़ती है और इसके इर्द-गिर्द आते व्यक्तियों, समाज और उसके मूल्यों और नियमों का मूल्यांकन करती चलती है। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार, "लेखक की सामाजिक छवि और अपनी अनुभूति के प्रति ईमानदारी की जो कशमकश होती है वह आत्मकथा में जितनी ज्यादा उभरती है उतनी ही ज्यादा आत्मकथा की कला चमकती है।"¹⁴⁰ तसलीमा की आत्मकथा में इस सामाजिक छवि और अपनी अनुभूति के प्रति ईमानदारी को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से परख सकते हैं :

(i) वैयक्तिकता :

आत्मकथा में मुख्य वर्ण्य विषय स्वयं लेखक ही होता है। तसलीमा की आत्मकथा में भी केंद्र में तसलीमा ही हैं - "मेरी चेतना बुद्धि में समाज का विकट और कुत्सित रूप मेरी नज़रों में साफ़ होता गया। मैं कौन हूँ? मैं क्या हूँ? मैं क्यों हूँ? - ये तमाम सवाल मैं तस्बीह के दानों की तरह फेरती रही।"¹⁴¹ इन प्रश्नों के उत्तर की तलाश ने तसलीमा को अपने जीवन को एक बार फिर से पीछे मुड़कर देखने पर मजबूर किया। इस पीछे मुड़ कर देखने का परिणाम है, उनकी आत्मकथा।

तसलीमा की आत्मकथा एक ऐसी लेखिका की आत्मकथा है, जिसने कभी किसी नियम को नहीं माना, अपने सिद्धांतों के चलते किसी के आगे हार नहीं मानी और निरंतर प्रताड़ित होने के बावजूद अपने भीतर के 'स्व' को जगाए रखा - "जिस पाप बोध की बात, दूसरे लोग सोचते हैं, वह पाप - बोध मुझ में लेशमात्र भी नहीं है। किसी की तनी हुई भौहें मुझे बिलकुल स्पर्श नहीं करतीं।"¹⁴²

इस 'स्व' या 'मैं' में किसी प्रकार के घमंड का आभास नहीं होता। बल्कि बार-बार इस 'स्व' का मूल्यांकन करने और उसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखने का प्रयास ही दिखता है। आत्मकथा में तसलीमा निरंतर आत्मविश्लेषण और आत्ममूल्यांकन करती रहती हैं। इस आत्ममूल्यांकन में कई बार वे स्वयं को नितांत कमजोर तो कई बार अत्यंत सशक्त पाती हैं। उदाहरण के लिए जब वे लिखती हैं "एक चीज मेरे विश्वास के अंदर पक्की तौर पर घर करती जा रही थी; वह थी अपनी चाहों की कद्र करना"¹⁴³ तब वे स्वयं के आत्मविश्वास को जगाने का ही प्रयास करती हैं और जब वे लिखती हैं "मेरी रचनाएँ पढ़कर लोग मेरे बारे में यही राय कायम करते हैं कि मैं विलक्षण साहसी हूँ, मर्द-वर्द बिलकुल पसंद नहीं करती, मर्द को देखते ही उसके गाल पर थप्पड़ कस देती हूँ, तलपेट में लात जमाकर उसे चित्त कर देती हूँ। लेकिन आमने-सामने मैं बिलकुल भी वैसी नहीं हूँ। यह देखकर कोई-कोई अवाक् या आहत भी होते हैं। ऐसे लोग अगर सुने कि मुझे मर्द से चाबुक खाने पड़ते हैं तो... बेहोश ही हो जाए।"¹⁴⁴ तब वे अपने व्यक्तित्व के नकारात्मक पहलू से स्वयं और अन्य, दोनों को परिचित करवाती हैं। इस दोहरे व्यक्तित्व की छाप लिए वे निरंतर अपनी कमियों से पार पाने का प्रयास करती हैं। यह प्रयास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे लिखती हैं "मैं इतिहास की शिकार एक व्यक्ति हूँ अथवा जितनी भी समृद्ध हुई हूँ वह इतिहास के द्वारा हुई हूँ।"¹⁴⁵

आत्मसंघर्ष की अभिव्यक्ति आत्मकथा का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। जीवन केवल सर्वसुलभ हो तो वह जीवन उल्लेखनीय नहीं हो सकता। तसलीमा का जीवन, संघर्ष की गाथा है और इस गाथा को लिखते समय 'जिन्दगी कभी पंखों की तरह हलकी-फुलकी तो कभी चट्टान की तरह वजनी लगती थी।"¹⁴⁶ इस जीवन गाथा में पारिवारिक जीवन के कुछ गुदगुदाने वाले प्रसंग हैं तो कहीं प्रेम में उत्ताल हवा के संग बहता जीवन - "हाँ, कब और कैसे मिले थे यह याद नहीं है। सिर्फ इतना याद है कि किसी धूप-जले मन ने, किन्ही साँवली हथेलियों पर, किसी वाकहीन निःशब्दता में सिर्फ एक शब्द लिख दिया था - मैं!"¹⁴⁷, और इसी जीवन में पारिवारिक बंदिशों में बंधा जीवन है और उसी प्रेम के कारण तमाम आलोचना, शारीरिक और मानसिक यातना सहता जीवन भी है - "रुद्र का खत अब

मुझे कभी नहीं मिलेगा, मुझे पता है, फिर भी मैं बार-बार भूल जाती हूँ, हर दिन भूल जाती हूँ कि उसका खत मुझे कभी नहीं मिलेगा। मैं उस बुझी हुई राख पर उकड़ूँ होकर, दीवानों की तरह खोजती रहती हूँ कि कहीं तिल भर भी कोई सपना, भूल से ही सही, कहीं पड़ा रह गया हो।"¹⁴⁸

तसलीमा विश्व में सम्भवतः एकमात्र ऐसी लेखिका हैं, जिन्हें अपने देश से पिछले 24 वर्षों से निर्वासित कर दिया गया है। वे निर्वासित, प्रतिबंधित और निषिद्ध लेखिका हैं। इस कारण उनकी आत्मकथा में जो भी जीवन संघर्ष दिखाई पड़ता है, वह अन्य किसी भी आत्मकथा में नहीं मिलता। चार लाख लोगों द्वारा एक स्त्री की फाँसी की माँग, लेखिका के विरुद्ध फतवा, लेखिका के ऊपर आत्मघाती हमला, निर्वासन, निष्कासन, बहिष्कार, परदेश का अकेलापन, देश-हीन अनिश्चित जीवन जैसे तमाम संघर्षों के साथ तसलीमा की आत्मकथा अपने आप में अनूठी और अद्वितीय है। यह संघर्ष केवल तसलीमा को ही नहीं रुलाता पाठक के मन को भी उद्वेलित कर देता है - "मेरी आँखों में, मौलवादियों का आक्रोश या उन्हें दांत पीसते हुए देखकर पानी नहीं आया। मैं जब टूट चुकी, जब मुझे मृत्यु की गुफा से बचाकर बाहर लाया गया, और तब मैंने किसी की बेचैन आवाज़ सुनी, 'तुम ठीक तो हो?' या 'हम तुम्हारे साथ हैं', मेरी आँखें भर आयीं।"¹⁴⁹

(ii) वस्तुनिष्ठता :

तसलीमा व्यष्टि में समष्टि की खोज करती हुई लिखती हैं, "जिस दुनिया में मेरा घूमना-फिरना है, उस दुनिया की बातों के बारे में अपने तजुर्बे को बयान करने के बावजूद समाज के हर स्तर की लड़कियों के प्रति मर्द का आचरण स्पष्ट हो जाता है। मेरा व्यक्तिगत मामला तब व्यक्तिगत न रहकर समष्टिगत हो जाता है।"¹⁵⁰ इस समष्टि के लिए प्रयास करते हुए कई बार उनका अपना जीवन नितांत अकेला रह जाता है। इस सम्बन्ध में उनका मत है, "इस ज़िन्दगी को मैं ठीक तरह से नहीं पहचानती ! कभी यह ज़िन्दगी, मेरी होकर भी मेरी नहीं थी। दीर्घ-दीर्घ सालों से इसका सारा पानी, किसी एक अंजुरी में उड़ेलती रही, अपनी प्यास मुझे एक बार भी याद नहीं आई। बाद में जब बेहद कातर होकर

मैंने हाथ बढ़ाया, तो जिन्दगी जलहीन, सूखी रेत की तरह नज़र आई। मेरे घड़े में, मेरे लिए ही पानी नहीं बचा।"¹⁵¹ इस अकेलेपन के बावजूद उन्होंने अपने लिए जीना, स्वयं की तुष्टि के लिए कार्य करना कभी नहीं छोड़ा।

तसलीमा की यह आत्मकथा एक व्यक्तित्व के रूप में तसलीमा की कथा होने के साथ-साथ समष्टि के रूप में समस्त स्त्रियों की कथा है। इसमें माँ, सहेलियों, पड़ोसियों, रिश्तेदारों, समाज में कार्य कर रही तमाम औरतों, निम्नतर जीवन जी रही औरत से लेकर राजनीतिक पदों पर बैठी स्त्री के विषय में चिंतन है। यह एक स्त्री की कथा से शुरू होकर समस्त स्त्री-जाति की कथा सुनाती आत्मकथा है, जिसमें पुरुष पितृसत्तात्मक मानसिकता से घिरा एक कुंठित व्यक्ति नज़र आया है और स्त्री को इस कुंठित व्यक्ति के माया-जाल, जो कभी प्रेम, कभी धर्म, कभी पितृसत्ता और कभी राजनीति का सहारा लेकर स्त्री-जीवन को अपने पाश में रखने का प्रयास करता है, से बाहर निकल आने की प्रेरणा देती है। यह प्रेरणा तसलीमा ने स्वयं के जीवन संघर्षों को दिखाकर उत्पन्न करने का प्रयास किया है ताकि भविष्य में कोई अन्य स्त्री इस प्रकार के बंधन में पड़ने से पहले एक बार जरूर सोचे और इन सब से बाहर निकल आने का मार्ग स्वयं तलाश करे। वे स्वयं लिखती हैं, "एक औरत जो खुद को तबाह कर लेने की भीषण राह पर चलने के लिए प्रलोभित हो जाती है। मैंने बस उसकी तड़प की कहानी कही है।"¹⁵²

(ई) कथातत्व :

आत्मकथा के कथातत्व का मूल्यांकन करने के लिए लेखक के जीवन को आधार प्रदान करने वाली घटनाओं, व्यक्तियों, देश और काल एवं अभिव्यक्ति की शैली, सत्य और ईमानदारी के स्तर को सम्मिलित किया जा सकता है। इस दृष्टि से तसलीमा की आत्मकथा का मूल्यांकन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं :-

(i) देशकाल व परिवेश :-

आत्मकथा में लेखक केंद्र में तो होता है, किन्तु उसकी कथा के साथ-साथ उसका परिवेश और समय भी चलता रहता है। इस आत्मकथा में भी तसलीमा के जीवन के साथ उसके परिवार, समाज, देश और यहाँ तक कि विश्व की घटनाएँ भी एक-एक कर आगे बढ़ती हैं। इसमें 'स्व' के साथ 'पर' का चिंतन भी है - "मेरा मन कहता था, अर्थहीन जीवन, को अर्थपूर्ण बनाने की शक्ति, इन्सान में नहीं रही। इन्सान हद से हद यह कर सकता है कि जितने दिन उसकी काया में प्राण है, उतने दिन, वह कहाँ से आया है, कहाँ जाएगा इसकी चिंता फ़िक्र छोड़कर, इस क्षणिक जीवन का अमृत रस आखिरी बूँद तक पीता रहे।"¹⁵³

तसलीमा की आत्मकथा न केवल समय-सापेक्षता बल्कि समाज की विद्रूपता के चित्रण के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके साथ ही इस आत्मकथा के माध्यम से प्रस्तुत विविध प्रश्न समाज की नब्ज पकड़ने में हमारी सहायता करते हैं। वस्तुतः आत्मावलोकन और आत्मविश्लेषण के साथ सामाजिक यथार्थ के चित्रण में तसलीमा की आत्मकथा का सानी ढूँढना अंधरे में खोई हुई किसी वस्तु को खोजने जैसा है। एक तरफ़ उनके लेखन में स्त्रियों के बधिया समाज को आवाज दी गई है, तो दूसरी तरफ़ धर्म की तमाम व्याख्याओं के आधार पर स्त्रियों के लिए सीमित किए गए सामाजिक दायरों का जिक्र है। उनकी विचारों के प्रस्तुतीकरण की शैली को उसकी उग्रता और कटाक्षों की तीव्रता के कारण, नाओमी वुल्फ़ के शब्दों में 'जेंडर क्वेक' कहा जा सकता है। तसलीमा की आत्मकथा में चिंतन के मूल प्रश्न हैं - अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और समानता, धार्मिक कट्टरता और रूढ़िवादिता का विरोध, नस्लवाद और साम्प्रदायिकता का विरोध, विवाह संस्था का औचित्य-अनौचित्य एवं यौन-स्वतंत्रता, निर्वासितों और विस्थापितों का पक्ष, धर्म और पितृसत्ता आधारित राजनीति का विरोध, मानवतावादी मूल्यों की स्थापना।

(ii) ईमानदारी, सत्य और साहस :-

किसी आत्मकथा की प्रामाणिकता की जाँच के लिए, उसमें अभिव्यक्त सत्य और उसे अभिव्यक्त करने का साहस महत्वपूर्ण साधन हो सकता है। इस आधार पर तसलीमा की आत्मकथा का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि वह घोर साहस, ईमानदारी और कठोर सत्यों को जिस तरह से अभिव्यक्त करती है, वैसा बहुत ही कम आत्मकथाओं में किया गया है। वे स्वयं स्वीकार करती हैं कि "यह तो आत्मकथा का अलिखित दस्तूर है, 'कुछ भी नहीं छुपाया जायेगा, हर चीज के बारे में लिखा जाएगा।' एक आत्मकथा का विषय ही है - अज्ञात और गोपनीय मानव जीवन की घटनाएँ। मैंने सिर्फ इसी नियम को सच्चाई के साथ निभाया है।"¹⁵⁴ तसलीमा 'अपने पाठकों के साथ कोई फरेब नहीं करना चाहती'¹⁵⁵ हैं, यह वे बार-बार दोहराती हैं और इसे पूर्ण करने की कोशिश भी करती दिखती हैं।

किसी भी सच को स्वीकार करने में वे झिझकती नहीं, चाहे वह सच कितना भी कड़वा क्यों न हो। आत्मगोपन के प्रकटीकरण के साथ-साथ अपनी भूलों, अपनी कमियों, अपने दुर्व्यवहार, अपनी हार, हर एक चीज जो तसलीमा के व्यक्तित्व और जीवन के नकारात्मक पक्ष से सम्बंधित है, वह सब इस आत्मकथा में मिल जाता है। माता-पिता के शारीरिक संबंध से लेकर स्वयं के द्वारा बनाये गये शारीरिक सम्बन्ध व उनकी अंतरंगता, पिता, नाना के नाजायज सम्बन्धों, बचपन में घर के ही सदस्यों के द्वारा किया गया उनका शोषण और शील-भंग, एक स्त्री के रूप में मन में उठने वाली यौन आकांक्षाएँ, आत्मगोपन जैसा जो कुछ भी हो सकता है वह सब अभिव्यक्त किया गया है। जीवन की कुछ अप्रिय और अप्रत्याशित घटनाएँ जैसे - एक लेखक के तौर पर उन्होंने किस तरह से 'निर्वाचित कलाम' में वेद विशेषज्ञ सुकुमारी भट्टाचार्या की 'प्राचीन भारत और वैदिक समाज' पुस्तक के कुछ अंशों की नक़ल की, यह उन्होंने खुलकर स्वीकार किया। एक लेखक के तौर पर उन्होंने कई बार केवल धनोपार्जन के लिए लेखन कार्य किया, यह भी स्वीकार किया, स्वयं को लेखन के स्तर पर बांग्लादेश और भारत के उन लेखकों से बहुत कम स्तर का पाया, जिन्हें कभी-भी आनंद पुरस्कार नहीं

मिला। बड़े-बड़े कवियों के साथ मंच साझा करने की अपनी हैसियत का मूल्यांकन करते हुए लिखती हैं, "क्या मैं धन्य हुई ? हाँ! मैं धन्य हो गई। हर इंसान के कुछ-कुछ गगन चुम्बी सपने होते हैं, मेरा सपना इतनी दूर तक पहुँचे, ऐसा साहस मुझमें कभी नहीं जगा।"¹⁵⁶

अपने जीवन के साथ समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करने में भी तसलीमा का साहस प्रशंसनीय है। धर्म और धार्मिक व्यवस्था, इस्लाम और इस्लामिक मान्यताओं और बांग्लादेश और भारत की राजनीति पर जिस तरह से उन्होंने आत्मकथा में खुलकर बयान किये हैं, उस साहस को जुटाने में ही कई बार कई वर्ष लग जाते हैं। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार तो 'पूरा सच बोलना आत्मकथा या जीवनी लेखन की 'नैतिक' ही नहीं, सौंदर्यबोधी शर्त भी है।"¹⁵⁷ तसलीमा ने उस साहस को संजोकर अपने प्राणों, अपने जीवन की चिंता न करते हुए धार्मिक कट्टरपंथियों और सरकार के विरुद्ध जिस तरह से अभिव्यक्तियाँ की हैं, वह हिंदी की आत्मकथाओं में दुर्लभ है। उदाहरण के लिए जैसा कि उन्होंने लिखा, "उप राष्ट्रपति अब्दुल सत्तार को राष्ट्रपति का पद ग्रहण करना पड़ा। वैसे पद ग्रहण करना और देश चलाना, एक जैसी बात नहीं होती। एक बुढ़े को सामने बिठाकर, पीछे से बंदूकधारी जवान देश चलाने लगे। देश भला चल कहाँ रहा था ? देश तो खून की नदी में बह रहा था।"¹⁵⁸ उनकी इस ईमानदारी के सम्बन्ध में उनकी आत्मकथा के महत्व को रेखांकित करते हुए मोहन कृष्ण बोहरा लिखते हैं, "तसलीमा नसरीन का जीवन-परिचय पाने का प्रमुख साधन उसकी आत्मकथा ही है। इसे उसने विस्तार से लिखा है। जितना जीवन उसने जिया है, उसका आलेखन कठोर ईमानदारी से और यथाशक्य विस्तार से किया है। कम ही आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथा इतने विस्तार से लिखी है।"¹⁵⁹

(iii) उद्देश्य :-

मैनेजर पाण्डेय ने अपने लेख 'सार्वजनिक चौराहों पर व्यक्तिगत चेहरे' में लिखा है कि दुनिया में वही आत्मकथा महत्वपूर्ण है, जो दुनिया या समाज में व्याप्त पाखंड को तोड़ने का प्रयास करती है, स्वयं को सिद्ध करने के लिए नहीं।¹⁶⁰ तसलीमा की आत्मकथा भी इसी उद्देश्य से लिखी

गयी है। मौलाना सय्यद बदरुल हसन आबिदी कहते हैं, "इस संसार में जहाँ बहादुरी लेखक के जीवन से बाहर जा रही है, तसलीमा नसरीन ने अकेले ही लोगों के वैचारिक और अध्यात्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन करने की लेखन शक्ति में हमारा विश्वास जगाये रखा है। इस प्रकार तसलीमा के लेखन का उद्देश्य हमें आनंदित या भावविभोर करना नहीं बल्कि हमें जागृत, उत्तेजित और चिंतन करने के लिए प्रेरित करना है जिससे उनका पाठक मानव जनित सामाजिक समस्याओं से न केवल परिचित हो बल्कि उनके समाधान का भी प्रयास करे।"¹⁶¹

आत्मकथा लेखन की शुरुआत के संदर्भ में तसलीमा लिखती हैं, "सन सत्तानबे के नवंबर महीने में मैंने अदरख-पानी पीकर, लिखना शुरू कर दिया। अचानक मैं साहित्यकार हो उठी। जो-सो नहीं, मैं बकायदा आत्मकथा लिखने लगी। आत्मकथा लिखने का प्रबल ख्याल कहाँ से आया, क्यों आया, मैं नहीं जानती। शायद इसलिए कि तुम मेरे बचपन के दिन याद कर रही थी। तुम मेरे सामने वे सब पुराने दिन याद कर रही थी और मैं मन ही मन उन यादों के सहारे किताब लिखने की परिकल्पना बन रही थी।"¹⁶² अपनी आत्मकथा के प्रयोजन के सम्बन्ध में तसलीमा लिखती हैं, "मेरे जीवन की कहानी जब दूसरों के मुँह से अलग-अलग रंग और ढंग से प्रचारित हो ही रही है, तो क्यों मैं ही खुद जिम्मेदारी लूँ अपनी जीवनी शुरू से अंत तक कहने की ! अपने इस जीवन को जितना ज्यादा मैं जानती हूँ, उतना तो कोई और नहीं जानता।"¹⁶³ कह सकते हैं तसलीमा की आत्मकथा 'कलावाद' से ज्यादा 'उपयोगितावादी दृष्टि' से लिखी गयी है। किन्तु इसमें सर्वथा कलावाद का अभाव है यह भी नहीं कहा जा सकता।

(iv) भाषा-शैली :-

तसलीमा की आत्मकथा की भाषा और शैली, सौन्दर्य उत्पन्न करने में सक्षम हैं। लेखन का स्वरूप कुछ इस तरह का है कि पाठक की उत्सुकता और कौतूहल पूरी आत्मकथा के दौरान बना रहता है। इसके साथ ही बीच-बीच में तसलीमा गद्य से पद्य की ओर भी बढ़ जाती हैं, जहाँ उनकी कविताओं की विषयवस्तु और गंभीरता तसलीमा के जीवन में डूबकर उन्हें महसूस करने का

अवसर देती है। तसलीमा की भाषा कथात्मकता और काव्यात्मकता के माध्यम से बिम्ब पैदा करती है। इस लयबद्धता से एक सौन्दर्य पनपता है, जो तमाम तथ्यात्मक विवरणों के बावजूद आत्मकथा में सौन्दर्य को बरकरार रखता है। उदाहरण के लिए -

- युद्ध की भयावहता का बिम्ब - "युद्ध छिड़ने वाला था। हर मोहल्ले में इसी की चर्चा थी। लोग घर के दालान में, खुले मैदान में, गली के मोड़ पर, जहाँ भी इकट्ठा होते, इसी पर बहस करते। किसी के माथे पर, तो किसी की नाक के नीचे, तो किसी के खुले मुँह में, तो किसी के गालों पर, कानों पर, सिर पर आँखें ही नजर आतीं। सभी की आँखें खुली रहती थीं... गिद्धों की चोचों से मृतदेह की गंध आती थी। कबूतरों के बेचैन पंखों की फड़फड़ाहट में गोलियों की आवाज सुनाई पड़ती थी। लोग पैदल, रेलगाड़ियों से, नावों से भाग रहे थे।" ¹⁶⁴
- "सत्तर का दशक मौत की टूटी दरारों का दशक था; सत्तर का दशक कविता का दशक था; कविता में लाशों की गंध ! चीत्कार ! प्रतिवाद !" ¹⁶⁵
- देश का हाल कुछ इन बिंबों के माध्यम से इस प्रकार लिखा- "अगर इस देश की सूरतेहाल रिपोर्ट लिखने को कहा जाए, तो कुछ इसी किस्म का होमिसाइड लिखा जाएगा। लिखा जाएगा, आततायी लोग देश के सीने को निशाना बनाकर गोलियाँ दाग रहे हैं, जिनसे देश की छाती-पसली छलनी हो गयी है। पसलियों की हड्डियाँ टूट-फूटकर चकनाचूर हो गयी हैं, देह के मांस-मज्जा में सुराख हो गया है और गोलियाँ अंदर तक पैबस्त हो गयी हैं ! दिल की धड़कन तक थम गयी है।" ¹⁶⁶
- "मेरे सिर पर औरत सवार हो गयी थी, मेरी छाती पर दर्द सवार हो गया था।" ¹⁶⁷

(उ) आत्मकथा में सम्मिलित कवितायें : उपादेयता

तसलीमा ने आत्मकथा में गद्यात्मक अभिव्यक्ति के बीच-बीच में अपनी अनुभूतियों को पद्यात्मक रूप देते हुए कई कवितायें भी लिखी हैं। ये कवितायें बीच-बीच में आकर आत्मकथा के कथ्य को और अधिक पुष्ट करती हुई मालूम पड़ती हैं। इन कविताओं में तसलीमा के जीवन की पीड़ा, भय, निःसंगतता, क्षोभ, क्रोध, प्रेम, कामोत्तेजना आदि को बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से तो कभी सीधे-सपाट लहजे में अभिव्यक्त किया गया है। उदाहरण के लिए : देश विहीन तसलीमा की पीड़ा -

अपने देश में प्रवासी

परदेश में प्रवासी

तब कहाँ है मेरा देश

सुजला, सुफला देश !

मैं जानूँ, देश जाने, मेरे अन्तस में है, वह देश !¹⁶⁸

पारलौकिक जीवन के सम्बन्ध में :

जिनका है विश्वास उस पार पर, तो वे ही जाएँ, मृत्यु को चुम्बन कर

रत्न जड़े दरवाजे का कुंडा खड़कायें,

भीतर प्रतीक्षा में है अगाध रौनक, शराब और नारी

मुझे रहने दें पृथ्वी पर, रहने दें जंगल, पर्वत और उफनते समुद्र में,

सोने दें घास पर, फूलों पर, मुझे जगने दें पक्षियों के कलरव के कोलाहल में।¹⁶⁹

रुद्र (तसलीमा के प्रेमी और पति) और तसलीमा के बीच तो कई बार खतों में हुआ संवाद जब कविता के रूप में बाहर आया तो वह अधिक सशक्त था। उन दोनों का प्रेम और दोनों के बीच आपसी मतभेद भी कविता के रूप में कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त हुए हैं -

तसलीमा ने लिखा -

"सुई-से छेद से आ घुसा साँप, लोहे के कक्ष में
जहर के दंश से नीली पड़ी देह, पर उतरा सर्द अँधियारा
गंगा के जल में बहती सियाह डोंगी
दुःखिनी मेरी, तुम जगी बैठी हो, रेतीली नदी-सी !"¹⁷⁰

रुद्र ने लिखा :

"सुनता रहता हूँ, टूटती दरारों का शोर, कहीं नहीं और कोई आवाज़
दिनमान में अविरल टूटते-ढहते रहते हैं किनारे
जाग उठता है करात दिल का शोर, पेशियों में, नसों में !

सारी-सारी रात वृक्षों की हत्या का मचा रहता है हडकंप, मेरे खून में ।"¹⁷¹

स्पष्ट है आत्मकथा में सम्मिलित कवितायें तसलीमा के जीवन के विविध प्रसंगों को शसक्त अभिव्यक्ति देने के एक उपादान के रूप में दिखाई देती हैं | इस उपादान में तसलीमा के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन और उनके विचारों को ढूँढ पाना कठिन नहीं है |

(ऊ) आत्मकथेतर रचनाओं में आत्मकथा : -

आत्मकथा से इतर तसलीमा की जो भी रचनाएँ प्राप्त होती हैं, चाहे वे उपन्यास हों, कहानी, कविता, और आलेख हों, सभी में तसलीमा के जीवन की कथा कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में विद्यमान है। उपन्यासों में 'ब्रह्मपुत्र के तट पर', 'दो औरतों के पत्र', 'शोध' में ऐसा कई बार लगता है कि जो स्त्री पात्र हैं जैसे - झुमुर, यमुना, वे तसलीमा ही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तसलीमा ने ही स्वयं को एक अन्य नाम देकर अप्रस्तुत रूप में अपनी कथा दोहराने का प्रयास किया है।

'दुखियारी लड़की' की कहानी में आलेया कई बार तसलीमा की माँ की ही तरह दिखाई देती हैं। जिस तरह आलेया को अपने पति से तलाक मिल जाता है और वह अपने मायके चली जाती है, तसलीमा के पिता रज्जब अली और माँ इदुलआरा के बीच भी कुछ ऐसा ही होता है।

'कौन है जो घर से निकाले' कहानी, 'शोध', 'फ्रांसीसी प्रेमी' जैसे उपन्यास की नायिकाओं में तसलीमा के व्यक्तित्व की झलक मिलती है। उदाहरण के लिए 'शोध' उपन्यास में झुमुर की कहानी तसलीमा के निजी जीवन से काफी मिलती-जुलती है। झुमुर जिसे अपने पति से गर्भ ठहरता है शक के कारण वह उसका गर्भ गिरवा देता है। यह घटना तसलीमा के जीवन में भी हूबहू घटती है। तसलीमा के पति नईम भी शक के कारण ही उनका गर्भपात करा देते हैं। हालाँकि तसलीमा इस बात पर नईम से रुष्ट होती हैं, किन्तु उस समय वह कुछ विशेष कर नहीं पाईं। वहीं इस उपन्यास की झुमुर प्रतिशोध लेने की ठानती है। ऐसा लगता है यह तसलीमा का ही प्रतिशोध है, जो वह नईम से लेना चाहती थीं, किन्तु उस समय यह सम्भव न होने पर उपन्यास में इसकी अभिव्यक्ति की है।

'ब्रम्हपुत्र के तट पर' उपन्यास में ऐसा प्रतीत होता है कि तसलीमा ने इसमें अपनी जगह जमुना को रखकर अपनी मृत्यु के बाद की परिस्थितियों की कल्पना कर उपन्यास की रचना की है। जिसमें वह एक तरफ अपने कृत्यों के कारण मरने के बाद भी घृणा की पात्र है और अपने सम्बन्धियों से तिरस्कार प्राप्त करती हैं तो वहीं दूसरी ओर अपने मित्रों और दूर के लोगों से सम्मान और प्रेम प्राप्त करती हैं। उनका अपने देश और घर के प्रति जो लगाव है वह जमुना के रूप में सामने आता है। और नुपुर उनकी बहन यास्मीन की तरह लगती है।

उपन्यासों और कहानियों में तसलीमा के स्त्री पात्र जिस तरह से पुरुष और पुरुष केन्द्रित समाज के बन्धनों को तोड़कर बाहर निकलना चाहती हैं वह तसलीमा की स्वयं की ही दृष्टि है जो कई बार पात्रों पर थोपी गयी सी लगती है। 'लज्जा' का सुरंजन जब बाबरी मस्जिद विध्वंस की घटना के बाद शहर की सड़कों पर टहलता है तो वही देखता है जो तसलीमा ने इस घटना के दूसरे दिन अर्थात् 7 दिसंबर 1992 को देखा था। उस समय तसलीमा के भीतर का वह रोष सुरंजन के रूप में उपन्यास में सामने आया है।

कविताओं में भी तसलीमा कई बार अपने जीवन दर्शन, अपने संघर्ष और अपने दुःखों की बात करती हैं। हर कविता संग्रह में तसलीमा का 'मैं' उपलब्ध है। वह दूसरों के साथ अपना दर्द भी बयाँ करती चलती हैं। उदाहरण के लिए -

"प्रतीक्षा करना मेरी मधुपुर, नेत्रकोना
प्रतीक्षा करना जयदेवपुर के चौराहे
मैं वापस लौटूंगी

...

प्रतीक्षा करना मेरी मोतीझील, शांतिनगर,
प्रतीक्षा करना फरवरी के पुस्तक मेले,
मैं लौटूंगी।" ¹⁷²

'धूसर शहर' कविता में -

"जब मैं छह साल की थी, माँ का आँचल थामे
बिलख उठी थी ढाका जाने के लिए।" ¹⁷³

'कम्पन-6' कविता में -

'प्यार की बाढ़ ने
खिलाया था एक फूल,
जन्म-जन्म के सभी दुखों को मैं भूल गयी।" ¹⁷⁴

'कत्थई किताब' में -

'सुबह-सुबह एक कप अदरखवाली चाय के बिना
मेरा दिन अच्छा नहीं बीतता
ऑपरेशन थियेटर में दो-चार अधमरे रोगियों को
नाप-जोखकर देती हूँ दवा

...

ऐसे ही कट जाती है सारी दोपहर
शाम को शहर का एक चक्कर लगाए बिना
मन उदास रहता है
उसके बाद गाना सुनना, अड्डेबाजी या फिर
अकेले कमरे में लिखना पढ़ना आधी रात तक।¹⁷⁵

'बंदिनी' कविता संग्रह में तो तसलीमा ने अपना जीवन-संघर्ष ही दिखाया है। ये कवितायें उस समय की हैं जब तसलीमा कलकत्ता में नज़रबंद और दिल्ली में अज्ञातवास में थीं। उदाहरण -
'पिछले कई सालों से' कविता में -

'पिछले कई सालों से,
मैं मौत के बेहद करीब हूँ !
लगभग आमने-सामने खड़ी हूँ !
अपनी अम्मी, अपने अब्बू, चंद प्रिय लोगों के सामने,
बिलकुल वाक्-रुद्ध।'¹⁷⁶

'कुछ पल साथ रहो' की भूमिका में अपनी कविताओं के विषय में वे लिखती हैं, "इन्हें कविता भी कैसे कहूँ ? इनमें ढेर सारे तो खत हैं। सुदूर किसी को लिखे गये, रोज़-रोज़ के सीधे - सरल खत... मैं आधे सच और आधे सपने से कोई प्रेमी निकाल लेती हूँ और अपने को प्यार की तपिश देती हूँ, अपने को जिंदा रखती हूँ।"¹⁷⁷

इसी प्रकार अपने सभी आलेखों चाहे वह उनके संकलन 'नष्ट लड़की : नष्ट गद्य', 'छोटे-छोटे दुःख', 'औरत के हक में', 'औरत का कोई देश नहीं', निषिद्धि' में सम्मिलित हों या फिर 'हंस' में लिखे आलेख हों; सभी में तसलीमा की आत्मकथा कभी आत्मकथ्य के रूप में, तो कभी आत्मचिंतन के रूप में मौजूद है। उदाहरण के लिए तसलीमा ने निषिद्ध पुस्तक में एक आलेख लिखा है 'कहानी छोटे

भैया की'। यह तो पूरी तरह से आत्मकथा ही है क्योंकि इसमें तसलीमा ने अपने छोटे भाई के उस चरित्र और व्यक्तित्व को सामने रखा है, जिनसे तसलीमा को बचपन में सभी निषिद्ध कार्यों और अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की प्रेरणा मिली। वे लिखती हैं, "इसके बाद की जो क्रांतियाँ हम भाई - बहन घर में ले आये थे, वे सब छोटे भैया से सीख कर ही लाये थे। अटपटापन, डर, दुविधा छोटे भैया ने ही दूर किये थे। मैंने भी एक समय प्रेम करना शुरू किया छोटे भैया की तरह। मैंने भी एक दिन किसी को बिना बताये फट से शादी कर ली।"¹⁷⁸

'हंस' में भी तसलीमा ने 'शब्दभेदी' शीर्षक के अंतर्गत जो भी आलेख लिखे हैं, उनमें विश्व की बातें हैं, समाज है, परिवार है, स्त्री है और इन सब के साथ तसलीमा की जीवन-कथा और संघर्ष भी है। इन्हें तसलीमा के आत्मकथ्यों के रूप में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'क्या पीर या बाबाओं की जरूरत है?' आलेख में वे लिखती हैं, 'मेरी माँ किसी पीर की मुरीद थीं। पीर जो भी कहते माँ उस पर विश्वास करतीं। माँ बीमार पड़ने पर उन पीर का पढ़ा पानी पीतीं। पढ़ा पानी पीने पर अगर बीमारी बढ़ जाती तो वह मेरे डॉक्टर पिता की शरण में आतीं।'¹⁷⁹ इसी प्रकार 'अजंता-ऐलोरा भ्रमण का मेरा अनुभव' शीर्षक से लिखे आलेख में तसलीमा ने वर्तमान में उनके निषेध और प्रतिरोध की राजनीति के साथ पूर्व में हुए प्रतिरोधों को भी याद किया है। इसी प्रकार अन्य कई आलेख हैं, जिनमें तसलीमा अपने जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त करती हैं।

तसलीमा ने आत्मकथा से इतर रचनाओं में अपने जीवन को सम्मिलित क्यों किया है ? यह प्रश्न स्वाभाविक तौर पर सामने आता है। इसका उत्तर यही है कि तसलीमा ने अपने जीवन को इसलिए रखा है क्योंकि उससे सीख लेकर कोई भी उन गलतियों को दोहराने से बच सकता है जो उन्होंने अपने जीवन में कीं, या फिर उनका जीवन एक प्रेरणा के तौर पर कार्य करता है और इसके साथ ही उनका जीवन ज्यादातियों का प्रमाण है। इसके अतिरिक्त इसका एक महत्व यह भी है कि इस प्रकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष आत्मोल्लेख ने तसलीमा की आत्मकथा की प्रामाणिकता को प्रतिष्ठित भी किया है। इसका एक कारण यह भी है कि तसलीमा इसके माध्यम से अपनी समस्या की

ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहती हैं। दूसरी तरफ बार-बार की गयी आत्माभिव्यक्ति को दोहराव के कारण आलोचनात्मक दृष्टि से भी देखा जा सकता है। तसलीमा का यह मानना रहा है कि जो जीवन में होता है वही साहित्य में होता है। इस आधार पर वे कई बार अपना जीवन, साहित्य में भी ले आती हैं। किन्तु साहित्य केवल जीवन नहीं हो सकता उसमें फैंटेसी और रचनात्मकता का भी एक अपना स्थान है। इस दृष्टि से देखें तो तसलीमा की रचनाएँ कल्पना के मामले में बहुत ऊँची उड़ान नहीं भरतीं बल्कि वे धरातल से जुड़कर उनके अपने जीवन के आस-पास ही घूमती रहती हैं। इस सम्बन्ध में तसलीमा की कवितायें ज्यादा प्रबल हैं, जिनमें अपने जीवन से इतर विषयों को भी सशक्त रूप में अभिव्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। वस्तुतः तसलीमा स्वयम् इस बात को कई बार स्वीकार करती हैं कि वे यथार्थ के आधार पर ही लेखन कर सकती हैं उनसे कल्पना या फैंटेसी के आधार पर लेखन नहीं होता। इसी कारण उनकी रचनाओं में उनके परिवेशगत तत्कालीन घटनाओं की ही बहुलता है, जिससे वे स्वयं को अलग नहीं समझतीं और इसीलिए वे भी उनमें साथ-साथ दिखाई पड़ती हैं।

इस आधार पर कह सकते हैं कि तसलीमा के जीवन को समझने के लिए आत्मकथा से इतर रचनाएँ भी सहयोगी हैं। उनमें उस तसलीमा को देखा जा सकता है, जो आत्मकथा में कई बार नहीं आ सकी है। इस आधार पर कह सकते हैं कि तसलीमा की आत्मकथेतर रचनाएँ और आत्मकथा कई बार एक दूसरे की पूरक बन जाती हैं।

स्पष्ट है कि तसलीमा की आत्मकथा में आत्मकथा के सभी तत्व और उपकरण मौजूद है, जो इस आत्मकथा को महत्वपूर्ण बनाते हैं। किन्तु कई बार ऐसा महसूस होता है कि कुछ छूट गया है या छिपाया गया है। जैसे - जब तसलीमा अपनी निर्वासन के बाद माँ की मृत्यु के समय चुपके से बांग्लादेश में प्रवेश करती हैं, और वहाँ तीन महीनों तक रहने के बावजूद इंटेलिजेंस को यह तो पता लग जाता है कि वे बांग्लादेश आ चुकी हैं किन्तु फिर भी उनके घर की तलाशी नहीं ली जाती और न ही सरकार इस सम्बन्ध में बहुत दबाव बनाती है। इस मामले के संदर्भ में उनकी चुप्पी अखरती है।

ऐसा ही, उस समय भी दिखाई देता है, जब तसलीमा को अपना देश छोड़ने की शर्त रखी जाती है। उनके और सरकार के बीच क्या समझौता होता है और क्या बात होती है, इसका स्पष्ट उल्लेख आत्मकथा में नहीं मिलता। जैसा कि रमणिका गुप्ता कहती हैं, "एक आत्मकथा लिखने के बाद अगर दूसरी आत्मकथा लिखने की दरकार पड़े तो वह टुकड़ों में बंटा सत्य बन जाता है। उसमें निरन्तरता नहीं बल्कि बदली हुई परिस्थितियों का वर्णन अधिक होता है। आत्मस्वीकृतियाँ समय के अंतराल में भिन्न निष्कर्ष दे सकती हैं।"¹⁸⁰ सम्भवतः तसलीमा के साथ भी यही हुआ हो।

निष्कर्ष

आत्मकथा स्वयं के विश्लेषण का माध्यम है, जिसके माध्यम से स्वयं को एक बार फिर से जानने का प्रयास किया जाता है। इस प्रयास में आत्मनिष्ठता के साथ वस्तुनिष्ठता भी होती है, जिसमें तत्कालीन समाज का भी चित्रण होता जाता है।

इसका कोई न कोई प्रयोजन होता है, जिसे बच्चन ने 'सायुज्य' मुक्ति' के रूप में देखा है। आत्मकथा के सम्बन्ध में उपयोगितावादी मत ही अधिक उचित जान पड़ता है क्योंकि कोई भी आत्मकथा अचानक नहीं लिखी जाती। यह एक उद्देश्य लेकर चलती है। जैसे कि अभियक्ति की लालसा, यश प्राप्ति, आत्मप्रकाशन, निष्पक्ष परीक्षण, प्रतिशोध, मिथ्या प्रतिष्ठा आदि। वस्तुतः आत्मकथा एक सोद्देश्य लेखन है।

आत्मकथा में पाठक की महत्ता भी है क्योंकि यह पाठक पर ही निर्भर करता है कि वह किसी व्यक्ति की आत्मकथा को किस तरह से देखे। यदि पाठक आत्मकथा पढ़ते हुए स्वयं को पुनरुपलब्ध करता है तो उस आत्मकथा को सफल कहा जा सकता है।

आत्मकथा समान लगने वाली अन्य आधुनिक विधाओं जैसे जीवनी, यात्रावृत्तांत, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथात्मक उपन्यास, आत्मकथ्य से पर्याप्त भिन्न है। आत्मकथा में कहने और न कहने के बीच जिस अंतराल का जन्म होता है उसके कारण उसकी प्रामाणिकता पर भी प्रश्न उठता है। किसी आत्मकथा में प्रामाणिकता का पूर्णतः निर्धारण तो नहीं किया जा सकता किन्तु गैब्रियल गार्सिया मार्केज़ के मत को मानते हुए 'जादुई यथार्थवाद' के आधार पर उसमें अंतर्निहित थोड़े से सत्य के आधार पर ही उसकी महत्ता को स्वीकार किया जा सकता है। ईमानदारी और साहस आत्मकथा की प्रामाणिकता के आधुनिक मापदंड हैं। किसी आत्मकथा में कल्पना और यथार्थ एवं ईमानदारी और साहस का प्रतिशत ही उसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता को निर्धारित करने में सहायक हो सकते हैं।

हिंदी साहित्य आत्मकथा के सम्बन्ध में समृद्ध है। उसके इस विस्तार में हिंदी मूल में लिखी आत्मकथाओं के साथ-साथ अनूदित आत्मकथाओं का विशेष योगदान है। हिंदी में लिखित और अनूदित आत्मकथा की संख्या वर्तमान में पाँच सौ से ऊपर है। किन्तु इनमें से सभी आत्मकथा के मानकों पर खरी नहीं उतरतीं, इस कारण हिंदी आत्मकथा को मानकों के आधार पर और अधिक समृद्ध किये जाने की आवश्यकता महसूस होती है।

हिंदी में एक विधा के रूप में आत्मकथा की स्थापना काफी बाद में हुई। किन्तु यह कहना कि यहाँ आत्मकथा लेखन का पूर्णतः अभाव रहा है, यह वाक्य अपूर्ण अध्ययन का परिणाम है। वस्तुतः प्राचीन से लेकर आधुनिक काल तक हिंदी और उसके पूर्व की भाषाओं संस्कृत, पालि, अपभ्रंश में आत्मकथा लेखन के कई प्रयास किये गये हैं। इसमें बौद्ध थेर-थेरी गाथा से लेकर आधुनिक दलित और स्त्री आत्मकथाओं तक की परम्परा सम्मिलित है। हाँ ! यह कहना गलत नहीं होगा कि प्रारंभिक प्रयास वर्तमान आत्मकथा विधा से भिन्न रहे हैं। सभी प्राचीन संदर्भ स्पष्ट करते हैं कि एक तरफ भारतीय संस्कृति आत्माभिव्यक्ति को असंभव मान रही थी, वहीं दूसरी ओर 'आत्मानं विद्धि' कहकर आत्मा को जानने के लिए भी प्रेरित करती रही। इस प्रेरणा का ही परिणाम था कि 'स्व' और 'आत्म' को जानने का प्रयास एवं उसे अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया। ये प्रयास कभी 'गाथा' के रूप में कभी 'आत्मकथ्य' या 'आत्मचरित' और 'आत्मजीवनी' के रूप में समय-समय पर अभिव्यक्त होते रहे। इस प्रयास में बनारसीदास की 'अर्धकथानक' मील का पत्थर साबित हुई।

आधुनिक काल में, पाश्चात्य आत्मकथाओं और आत्मकथा लेखन की शैलियों से परिचय होने पर भारतीय आत्मकथा-लेखन की शैली में परिवर्तन आया और यह परिवर्तन हिंदी आत्मकथा में भी दिखता है। इस परिवर्तन का ही परिणाम है कि हिंदी में स्त्री और दलित आत्मकथाएँ लिखी गयीं। अतः आत्मकथा लेखन को पाश्चात्य प्रभाव के रूप में स्वीकार करने में कोई गुरेज नहीं होना चाहिए जैसा कि हजारी प्रसाद ने भी प्रभावित होना मनुष्य प्रवृत्ति कहकर स्वीकार किया है।

इसके अतिरिक्त हिंदी में अनूदित आत्मकथा की परम्परा भी काफी समृद्ध है, जिसमें भारतीय भाषाओं बांग्ला, मराठी, तमिल, मलयालम, उर्दू से लेकर विदेशी भाषाओं अंग्रेजी, फारसी, जापानी आदि भाषाओं की आत्मकथायें सम्मिलित हैं। इनमें मराठी आत्मकथा के अनुवाद ने ही हिंदी में दलित आत्मकथा विधा को स्थापित होने में विशेष सहयोग किया है और अंग्रेजी से अनूदित आत्मकथाओं ने विदेशी महानुभावों के जीवन से न केवल परिचित होने का अवसर दिया बल्कि हिंदी आत्मकथा विधा को लेखन शैली की दृष्टि से मजबूत होने का अवसर दिया।

बांग्ला से अनूदित आत्मकथा में तसलीमा नसरीन की सात भागों में लिखी आत्मकथा का हिंदी में अनूदित होना, आत्मकथा के दायरे, मानक और उसके स्तर को बढ़ा देने जैसा है। उनकी आत्मकथा को आत्मकथा के मानकों पर परखने पर यह ज्ञात होता है कि अब तक लिखी गयी आत्मकथाओं में सबसे अधिक विस्तृत होने के बावजूद यह कहीं भी आत्मकथा के तत्वों से इतर नहीं जाती बल्कि कुछ नये मानक गढ़ती है। वैयक्तिकता और वस्तुनिष्ठता के साथ-साथ इस आत्मकथा में आत्माभिव्यंजना और आत्मविश्लेषण के प्रति एक विशेष ईमानदारी दिखाई देती है जो किसी भी आत्मकथा के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। यह ईमानदारी तसलीमा ने स्वयं के जीवन के साथ-साथ अन्य के जीवन, समसामयिक समाज या राजनीति को अभिव्यक्त करते हुए भी बरती है। इस ईमानदार अभिव्यक्ति के लिए जिस हिम्मत की आवश्यकता है वह तसलीमा की आत्मकथा में कहीं भी कम होती नहीं दिखती।

तसलीमा आत्मकथा में साहस और ईमानदारी के साथ-साथ कई नये प्रयोग करती हैं - जैसे - आत्मकथा के साथ मन की अभिव्यक्तियों को सशक्त बनाने के लिए कविताओं को सम्मिलित किया जाना, दूसरा - तसलीमा की आत्मकथा का छठवाँ भाग माँ को एक लम्बे खत के रूप में लिखना और तीसरा पाँचवे भाग में यात्रावृत्तांत और संस्मरणात्मक शैली का प्रयोग। कह सकते हैं, धार्मिक, पितृसत्तात्मक और राजनीतिक सत्ताओं के खिलाफ खड़ी हो उठने वाली लेखिका का जीवन, सत्य से टकराता हुआ, एक मिसाल प्रस्तुत करता है, जिसका प्रयोजन उपयोगितावादी जान पड़ता है।

आवश्यक टिप्पणियाँ एवं संदर्भ सूची

- 1 एम.एफ. हुसैन, एम.एफ. हुसैन की कहानी अपनी जुबानी (मुंबई : एम एफ हुसैन फ़ाउंडेशन, 2002) भूमिका.
- 2 कठोपनिषद् 0-1.
- 3 महात्मा गाँधी, सत्य के मेरे प्रयोग (अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन) भूमिका.
- 4 डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास (नोएडा : मयूर पेपरबैक्स, 2007) पृष्ठ-595.
- 5 हरिवंश राय बच्चन, क्या भूलूँ क्या याद करूँ (दिल्ली : राजपाल एंड संस, 2011) भूमिका.
- 6 “Autobiography”, 2016, https://en.wikipedia.org/wiki/Autobiography#cite_ref-1, (26 August 2016).
- 7 रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, खंड-1.
- 8 डॉ नगेन्द्र, मानविकी पारिभाषिक कोश (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन).
- 9 “Autobiography” Def No-1, Cambridge Dictionary, <https://dictionary.cambridge.org/dictionary/english/autobiography>, (26 August 2016).
- 10 “Autobiography” Def No-2, Britannica.com, <https://www.britannica.com/art/autobiography-literature>, (26 August 2016)
- 11 डॉ कमलेश सिंह, हिंदी आत्मकथा स्वरूप और साहित्य (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1989) पृष्ठ-3.
- 12 डॉ नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, (नोएडा : मयूर पेपरबैक्स, 2007) पृष्ठ-595.
- 13 D.G. Naik, Art of Autobiography(Pune : Vidarbha Marathwad Book Company, 1962) pg-44.
- 14 शम्भूनाथ, हिंदी उपन्यास : राष्ट्र और हाशिया, (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2016) पृष्ठ-302.
- 15 रवीन्द्रनाथ त्यागी, गरीब होने के फायदे एवं अन्य व्यंग्य रचनाएँ, (दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, 2010) पृष्ठ-73.
- 16 भारत भारद्वाज, ‘कथा, आत्मकथा और आलोचकथा’ हंस, जुलाई 2010, पृष्ठ-91.
- 17 ‘a narrative of the past of a person by the person concerned’
Candace Bacon. ‘The Genre of Autobiography : Defenition and Chrachterstics’, 2016, <https://letterpile.com/writing/TheGenre of Autobiography>, (27 September 2016).
- 18 ‘Retrospective prose narrative produced by a real person concerning his own existence, focusing on his individual life, in particular on the development of his personality’
<https://letterpile.com/writing/TheGenre of Autobiography>, (27 September 2016).
- 19 ‘Autobiography [is] a form of witnessing which matters to others’
Linda R. Anderson, Autobiography: New Critical Idiom, (New York : Routledge, 2001) pg-126.
- 20 H. G Wells, Experiment in Autobiography, (Read Books Ltd., 2016) pg.417
- 21 डॉ कमलेश सिंह, हिंदी आत्मकथा स्वरूप और साहित्य (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1989) पृष्ठ-8.
- 22 हरिवंश राय बच्चन. ‘क्या भूलूँ क्या याद करूँ’, http://kavitakosh.org/क्या_भूलूँ_क्या_याद_करूँ_मैं/_हरिवंशराय_बच्चन, (16 October 2017).
- 23 ‘Autobiography depends on seriousness of the author the seriousness of his personality and his intention of writing.’
Linda R. Anderson, Autobiography: New Critical Idiom, (New York : Routledge, 2001) pg-3
- 24 श्याम सुन्दर दास, मेरी आत्मकहानी, (प्रयाग : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन) प्राइवेट लिमिटेड, 1957) पृष्ठ-1.
- 25 माजदा असद, गद्य के विविध रूप, (नई दिल्ली : अकादमी प्रकाशन, 2007) पृष्ठ-58.
- 26 स्नेह लता शर्मा, बच्चन की आत्मकथा : काव्यात्मक मूल्यांकन, (दिल्ली : आर्य बुक डिपो ,1986) पृष्ठ-216.
- 27 कमलेश सिंह, हिंदी आत्मकथा स्वरूप और साहित्य, पृष्ठ-18.

- 28 सुनीता आगतराव क्षीरसागर(सं), आत्मकथाएँ और आत्मकथाकार: एक अध्ययन, पृष्ठ-3.
- 29 "Writing autobiography is also like a strip-tease dance. You start taking of your clothes on the road. There is always a dark corner in the mind of the writer which wishes to express itself and to eulogize while wishing at the same time that people don't take her words in the wrong manner. Whatever is written should be taken in the right perspective and meaning. It is up to the readers."
- ज्योति गुप्ता, 'स्त्री आत्मकथा : आत्माभिव्यक्ति और मुक्तिप्रश्न', स्त्री काल, 2016, <http://www.google.co.in/search?&en&q=relatedeconomictimes.indiatimes.com/articleshow/msid-3504762,flstny-1cm>), 6 August 2016.
- 30 रमणिका गुप्ता, मेरे साक्षात्कार, (नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 2007) पृष्ठ-127.
- 31 शम्भूनाथ, हिंदी उपन्यास : राष्ट्र और हाशिया, (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2016) पृष्ठ-305.
- 32 हरिवंश राय बच्चन, बसेरे से दूर, (नई दिल्ली : राजपाल एंड संस, 2010) पृष्ठ-5.
- 33 'कलावाद', wikipedia, सितंबर, 2014, <https://hi.wikipedia.org/wiki/कलावाद>, (6 August 2016).
- 34 रामचंद्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की भूमिका, (इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2010) पृष्ठ-123.
- 35 रामचंद्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ-136.
- 36 रामचंद्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ-137.
- 37 'कलावाद', wikipedia, सितंबर, 2014, <https://hi.wikipedia.org/wiki/कलावाद>, (6 August 2016).
- 38 <https://hi.wikipedia.org/wiki/कलावाद>, (6 August 2016).
- 39 <https://hi.wikipedia.org/wiki/कलावाद>, (6 August 2016).
- 40 <https://hi.wikipedia.org/wiki/कलावाद>, (6 August 2016).
- 41 <https://hi.wikipedia.org/wiki/कलावाद>, (6 August 2016).
- 42 <https://hi.wikipedia.org/wiki/कलावाद>, (6 August 2016).
- 43 रामचंद्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ-3.
- 44 रामचंद्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ-4.
- 45 रामचंद्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ-4.
- 46 रामचंद्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ-5.
- 47 रामचंद्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ-6..
- 48 रामचंद्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की भूमिका,, पृष्ठ-7.
- 49 <https://hi.wikipedia.org/wiki/कलावाद>, (6 August 2016).
- 50 D.G. Naik, Art of Autobiography, पृष्ठ-37-41.
- 51 कमला दास, मेरी कहानी, (हिंदी पॉकेट बुक्स, 2012) भूमिका.
- 52 मोहनदास करम चंद गांधी, सत्य के मेरे प्रयोग, (अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन) भूमिका.
- 53 हरिवंश राय बच्चन, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, (दिल्ली : राजपाल एंड संस, 2011) भूमिका.
- 54 जवाहर लाल नेहरू, मेरी कहानी, (सस्ता साहित्य मंडल, 2011,) प्रस्तावना.
- 55 ओम प्रकाश बाल्मीकि, जूठन, (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि, 1999) भूमिका .
- 56 दया पवार, अछूत, (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि, 2010) भूमिका.
- 57 हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, (नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2009) पृष्ठ-467.
- 58 रमणिका गुप्ता, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-128.
- 59 सेठ गोविन्द दास, आत्मनिरीक्षण, भूमिका.
- 60 डॉ मधु धवन (सं), लेखन कला : एक परिचय, पृष्ठ-14.
- 61 https://en.wikipedia.org/wiki/Autobiography#cite_ref, (26 August 2016).

- 62 "Autobiography is a review of a life from a particular moment in time, while the diary, however reflective it may be, moves through a series of moments in time"
https://en.wikipedia.org/wiki/Autobiography#cite_ref, (26 August 2016).
- 63 मोहन दास नैमिशराय, अपने-अपने पिंजरे, (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1996) भूमिका.
- 64 डॉ. विनीता अग्रवाल, हिंदी आत्मकथाएँ : सिद्धांत एवं स्वरूप का विश्लेषण, पृष्ठ-17.
- 65 हंस, (आत्मकथा विशेषांक), जनवरी-फरवरी-1932, प्रेमचन्द (सं), पृष्ठ-1.
- 66 सूरजपाल चौहान, संतप्त, भूमिका.
- 67 मैनेजर पाण्डेय, आलोचना में सहमति असहमति, पृष्ठ-58.
- 68 हंस, (आत्मकथा विशेषांक), जनवरी-फरवरी-1932, प्रेमचन्द(सं), पृष्ठ-167.
- 69 सं. - सुनीता आगतराव क्षीरसागर : आत्मकथाएँ और आत्मकथाकार: एक अध्ययन, पृष्ठ-3.
- 70 <http://www.hindisamay.com/content/6136/1/लेखक-वैभव-सिंह-का-लेख-जादुई-यथार्थवाद-एवं-मार्खेज.csp>, (18 September 2016).
- 71 Truth is a highly subjective matter, and no autobiographer can represent exactly 'what happened back then,' <https://letterpile.com/writing/TheGenreofAutobiography>, (6 August 2016).
- 72 सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ-296.
- 73 अभय कुमार दुबे, फुटपाथ पर कामसूत्र, पृष्ठ-203.
- 74 नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, पृष्ठ-185.
- 75 वही, पृष्ठ-186.
- 76 वही, पृष्ठ-186.
- 77 <http://www.hindisamay.com/content/2056/1/हरिवंश-राय-बच्चन-की-कविताएँ-कवि-की-वासना.csp>, (20 April 2017).
- 78 नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, पृष्ठ-187.
- 79 वही, पृष्ठ-187.
- 80 वही, पृष्ठ-189.
- 81 वही, पृष्ठ-189.
- 82 वही, पृष्ठ-189.
- 83 हंस, (आत्मकथा विशेषांक), जनवरी-फरवरी-1932, प्रेमचन्द(सं), पृष्ठ-170.
- 84 जगदीश्वर चतुर्वेदी, 'अस्मिता और आत्मकथा की चुनौतियाँ'
[http://gadyakosh.org/gk/अस्मिता_और_आत्मकथा_की_चुनौतियाँ_\(रश्मिरथी_के_प्रसंग_में\)_/_जगदीश्वर_चतुर्वेदी](http://gadyakosh.org/gk/अस्मिता_और_आत्मकथा_की_चुनौतियाँ_(रश्मिरथी_के_प्रसंग_में)_/_जगदीश्वर_चतुर्वेदी), (16 March 2016).
- 85 हंस, (आत्मकथा विशेषांक), जनवरी-फरवरी-1932, प्रेमचन्द(सं), पृष्ठ-167.
- 86 श्रीमद्भगवद्गीता -13:29.
- 87 सं-गिरीश्वर मिश्र, अशोक मिश्र, बहुवचन, अंक-44(जनवरी-मार्च 2015), पृष्ठ-184.
- 88 कठोपनिषद् 0-1.
- 89 श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय -6, श्लोक-5.
- 90 मैनेजर पाण्डेय, आलोचना में सहमति-असहमति, पृष्ठ-53.
- 91 मोहनदास नैमिशराय, अपने-अपने पिंजरे, भूमिका.
- 92 पंकज चतुर्वेदी, आत्मकथा की संस्कृति, पृष्ठ-34.
- 93 प्रेमचन्द्र तारकबागीश(सं), उत्तररामचरितम्, पृष्ठ-2.

- 94 प्राचार्य श्रीमोहनदेवपंत(व्याख्याकार),हर्षचरितम्, पृष्ठ-1(भूमिका से).
- 95 वही, पृष्ठ-5(भूमिका से).
- 96 http://sanskritbhasi.blogspot.in/2014/05/blog-post_17.html, (28 April 2017).
- 97 रवीन्द्रनाथ त्यागी, गरीब होने के फायदे, डॉ कमल किशोर गोयनका(सं), पृष्ठ-75.
- 98 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-1.
- 99 https://preachingsofbuddha.blogspot.in/2014/10/blog-post_21.html, (28 April 2017).
- 100 वही, (28 April 2017).
- 101 http://kavitakosh.org/kk/चंदबरदाई/_/परिचय, (20 February 2017).
- 102 हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ-43.
- 103 वासुदेव सिंह, कबीर साखी सुधा, पृष्ठ-28.
- 104 विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ-33.
- 105 रामविलास शर्मा, परम्परा का मूल्यांकन, पृष्ठ-22.
- 106 तुलसी ग्रंथावली, पहला खंड, (मानस), पृष्ठ-18.
- 107 तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खंड, (विनयपत्रिका), पृष्ठ-507.
- 108 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-57.
- 109 रामविलास शर्मा, परम्परा का मूल्यांकन, पृष्ठ-21.
- 110 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-77.
- 111 डॉ कमलेश सिंह, हिंदी आत्मकथा स्वरूप एवं साहित्य, पृष्ठ-57.
- 112 बनारसीदास, अर्धकथानक, रोहिणी चौधरी (अनु.), प्रस्तावना.
- 113 वही, प्रस्तावना.
- 114 डॉ विश्वबंधु व्यथित, हिंदी का आत्मकथा साहित्य, पृष्ठ-5.
- 115 वही, पृष्ठ-5.
- 116 वही, पृष्ठ-5.
- 117 भारतेन्दु ग्रन्थावली, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. 813.
- 118 प्रताप नारायण मिश्र, प्रताप चरित, भूमिका.
- 119 पाखी, फ़रवरी 2013, http://www.pakhi.in/feb-13/about_pakhi.php, (18 August 2017).
- 120 हंस-आत्मकथा अंक, प्रेमचंद(सं), पृष्ठ-161.
- 121 वही, पृष्ठ-1.
- 122 हंस, सं-राजेन्द्र यादव, वर्ष -14, अंक- 6-7, जनवरी-फरवरी-2000, पृष्ठ-11.
- 123 देहरी भई विदेस, राजेन्द्र यादव (सं), पृष्ठ-29.
- 124 डॉ धर्मवीर(सं), सीमंतनी उपदेश, पृष्ठ-21.
- 125 वही, पृष्ठ-40.
- 126 <http://www.hindisamay.com/content/1145/1/लेखक-दुखिनीबाला-की-आत्मकथा-सरला-एक-विधवा-की-आत्मजीवनी.cxp>, (28 February 2016).
- 127 स्फुरना देवी, अबलाओं का इन्साफ, पृष्ठ-15.
- 128 सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ-298.
- 129 हंस, सं-राजेन्द्र यादव, वर्ष -14, अंक- 6-7, जनवरी-फरवरी-2000, पृष्ठ-11.
- 130 शम्भूनाथ, हिंदी उपन्यास : राष्ट्र और हाशिया, पृष्ठ-301.

- 131 वही, पृष्ठ-302.
- 132 डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-716.
- 133 पंकज चतुर्वेदी, आत्मकथा की संस्कृति, पृष्ठ-15.
- 134 वही, पृष्ठ-14.
- 135 महात्मा गाँधी, सत्य के प्रयोग, पृष्ठ-09.
- 136 रवीन्द्रनाथ ठाकुर : जीवन स्मृति, भूमिका.
- 137 प्रो. सच्चिदानन्द चतुर्वेदी, मझधार, पृष्ठ-176.
- 138 हंस, फ़रवरी-2012, पृष्ठ-2.
- 139 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-25.
- 140 मैनेजर पाण्डेय, आलोचना में सहमति-असहमति, पृष्ठ-53.
- 141 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-384.
- 142 वही, पृष्ठ-47.
- 143 वही, पृष्ठ-212.
- 144 वही, 191.
- 145 तसलीमा नसरीन, निर्वासित, पृष्ठ-75.
- 146 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-41.
- 147 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-278.
- 148 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-42.
- 149 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-39.
- 150 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-134.
- 151 वही, पृष्ठ-41.
- 152 तसलीमा नसरीन, निर्वासित, पृष्ठ-16.
- 153 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-441.
- 154 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-18.
- 155 वही, पृष्ठ-16.
- 156 वही, पृष्ठ-128.
- 157 पंकज चतुर्वेदी, आत्मकथा की संस्कृति, पृष्ठ-15.
- 158 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-273.
- 159 मोहन कृष्ण बोहरा, तसलीमा संघर्ष और साहित्य, पृष्ठ-25.
- 160 मैनेजर पांडेय, आलोचना में सहमति:असहमति, पृष्ठ-56.
- 161 <https://www.facebook.com/public/Badrul-Hasan>, (22 February 2016).
- 162 तसलीमा नसरीन, नहीं, कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-36.
- 163 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-19.
- 164 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-9.
- 165 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-211.
- 166 वही, पृष्ठ-273.
- 167 वही, पृष्ठ-377.
- 168 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो, पृष्ठ-09 .

- 169 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-73.
- 170 तसलीमा नसरीन, उताल हवा, पृष्ठ-341.
- 171 वही, पृष्ठ-341.
- 172 तसलीमा नसरीन, मुझे मुक्ति दो, पृष्ठ-09.
- 173 तसलीमा नसरीन, यह दुःख, यह जीवन, पृष्ठ-75.
- 174 वही, पृष्ठ-59.
- 175 वही, पृष्ठ-14.
- 176 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, पृष्ठ-37.
- 177 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, भूमिका- 'मुझे कुछ कहना है...' से.
- 178 तसलीमा नसरीन, निषिद्ध, पृष्ठ-98.
- 179 हंस, सं-संजय सहाय, वर्ष-32, अंक-3, अक्टूबर 2017, पृष्ठ-88.
- 180 रमणिका गुप्ता, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-128.

द्वितीय अध्याय

तसलीमा नसरीन : रचनात्मक व्यक्तित्व

द्वितीय अध्याय

तसलीमा नसरीन : रचनात्मक व्यक्तित्व

भूमिका

2.1 तसलीमा नसरीन : रचनात्मक व्यक्तित्व

- (क) व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक पक्ष
- (ख) रचनात्मक व्यक्तित्व : निर्वासन से पूर्व
- (ग) रचनात्मक व्यक्तित्व : निर्वासन के पश्चात्

2.2 रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

2.3 तसलीमा नसरीन के साहित्य की संवेदना : अभिव्यक्ति के प्रमुख विषय

निष्कर्ष

भूमिका

तसलीमा नसरीन, स्त्री-विमर्श या स्त्री-सम्बन्धी चिंतन के फलक पर एक चिर-परिचित नाम है। इस नाम के पीछे छिपे व्यक्तित्व को जानना तब आवश्यक हो जाता है, जब हम उनके स्त्री सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझना चाहते हैं। इस व्यक्तित्व को समझने के लिए तसलीमा के जीवन में रचनात्मकता विशेषकर साहित्यिक रचनात्मकता के कारणों को देखना आवश्यक हो जाता है; किन परिस्थितियों ने तसलीमा को 'तसलीमा' बनाया, उनका विश्लेषण किया जाना अपरिहार्य हो जाता है। इससे हम स्त्री-विमर्श के फलक पर एक नये अंदाज़ और तेवर के साथ अपनी बात दर्ज करवाने वाली लेखिका के विचारों और आदर्शों को समझ सकते हैं। यह भी जानना आवश्यक हो जाता है कि एक लेखिका किस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में विरोध और समर्थन की राजनीति के बीच अपना लेखन उसी तेवर के साथ जारी रखे हुए है।

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य, तसलीमा के जीवन और लेखन का क्रमवार वर्णन करना है। इस अध्याय के माध्यम से यह जाना जा सकेगा कि उन्होंने जीवन में किन परिस्थितियों और चुनौतियों के बीच से गुजरते हुए अपने लेखन को जारी रखा है, उनका महत्वपूर्ण लेखन क्या रहा है, उनके चिंतन के प्रमुख बिंदु या मुद्दे क्या रहे हैं और उनके लेखन के लिए पथ-प्रदर्शक और प्रेरक तत्व क्या हैं? इसके साथ ही उनकी रचनाओं का परिचयात्मक विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। यह अध्याय वस्तुतः तसलीमा के रचनात्मक व्यक्तित्व के क्रमिक विकास की कहानी है। इसमें तसलीमा के रचनात्मक व्यक्तित्व को दो अलग-अलग कालखण्डों में विकसित होता हुआ देखा गया है :- निर्वासन से पूर्व एवं निर्वासन के पश्चात्। इसके अतिरिक्त इस अध्याय के माध्यम से तसलीमा के समस्त रचनाकर्म का संक्षिप्त परिचय और विषयवस्तु एवं संवेदना को भी प्रस्तुत किया गया है।

तसलीमा नसरीन : रचनात्मक व्यक्तित्व

(क) व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक पक्ष

साहित्य का उसके रचयिता के व्यक्तित्व से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इस सम्बन्ध को समझने के लिए साहित्यकार के व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है। इसके लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि 'व्यक्तित्व' के अर्थ को समझा जाय। 'व्यक्तित्व' अंग्रेजी के 'पर्सनालिटी' का हिंदी पर्याय है जो 'पर्सोना' शब्द से बना है, जिसे प्रारम्भ में 'नाटक में पहने जाने वाले मुखौटे' से जोड़कर देखा गया। वर्तमान में इसे 'किसी व्यक्ति की वेश-भूषा, बातचीत के ढंग' आदि से जोड़कर देखा जाता है। मनोवैज्ञानिक शैल्डन ने शारीरिक बनावट के आधार पर मनुष्य के व्यक्तित्व को समझने का प्रयास किया और उसे तीन श्रेणियों- 'एंडोमोर्फ़ी', 'मेसोमोर्फ़ी', 'एक्टोमोर्फ़ी' में विभक्त किया।¹ किन्तु साहित्यकार के सन्दर्भ में उसकी वेशभूषा और शारीरिक गठन का महत्व नगण्य होता है। अतः यह देखना आवश्यक है कि साहित्य के सन्दर्भ में व्यक्तित्व से क्या आशय है? इस सन्दर्भ में मनोविज्ञान हमारी सहायता करता है। 'हैण्डबुक ऑफ़ पर्सनालिटी : थियरी एण्ड रिसर्च'² में किया गया अध्ययन, यह साफ़ दिखाता है कि व्यक्तित्व के सन्दर्भ में विभिन्न मनोवैज्ञानिक भिन्न-भिन्न मत देते हैं और व्यक्तित्व मनोविज्ञान पर अल्पोर्ट, स्टैगनर, मूरें, कैटल आदि ने काफी काम किया। उनके व्यक्तित्व को लेकर किये गये अध्ययन और मत भिन्न-भिन्न हैं, जैसे - मैक्डूगल के अनुसार 'व्यक्तित्व व्यक्ति की समस्त मानसिक शक्तियों और प्रवृत्तियों की समन्वित इकाई है'³, कैटल का मत है, 'विशेष परिस्थितियों में व्यक्ति विशेष के व्यवहार को व्यक्तित्व कहते हैं'⁴, कार्न ने 'व्यक्ति की समस्त वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को' व्यक्तित्व के रूप में परिभाषित किया है।⁵ बेरोन के अनुसार, "व्यक्तियों के अनूठे संवेगों, चिन्तनों तथा व्यवहारों के सापेक्ष रूप से स्थिर पैटर्न के रूप में व्यक्तित्व को सामान्यतः परिभाषित किया जाता है।"⁶ इस सम्बन्ध में फ्रायड और युंग के मत महत्वपूर्ण हैं। फ्रायड ने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में केवल प्रारंभिक पाँच वर्षों को ही महत्वपूर्ण माना और यह स्वीकार किया कि केवल पाँच वर्ष की आयु तक ही व्यक्तित्व का विकास हो सकता है, वहीं कैटल और इरिक्सन ने यह माना

कि व्यक्तित्व आजीवन विकसित होता रहता है। युंग ने मनुष्य के व्यक्तित्व की दो श्रेणियाँ निर्धारित की - अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी।⁷

सभी मतों को सम्मिलित कर देखने पर व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले जो कारक प्राप्त होते हैं, वे अग्रलिखित हैं- जैविक कारक और पर्यावरण सम्बन्धी कारक। जैविक कारक में अनुवांशिकता, शारीरिक गठन, अन्तःस्त्रावी ग्रंथियाँ और शारीरिक रसायन आते हैं, तो पर्यावरण सम्बन्धी कारक में जलवायु, परिवार, समाज और संस्कृति सम्मिलित किये गये हैं। इन पाश्चात्य मतों के अतिरिक्त प्राच्य मत पर दृष्टि डालें तो गणपति चन्द्र गुप्त का मत प्राप्त होता है। उनके शब्दों में, "हमारे विचार में व्यक्तित्व के अंतर्गत व्यक्ति की सभी विशेषताओं एवं प्रवृत्तियों का समावेश करते हुए उसे चार पक्षों के अंतर्गत विभक्त किया जा सकता है - 1. शारीरिक पक्ष, 2. बौद्धिक पक्ष 3. भावात्मक पक्ष 4. चारित्रिक एवं व्यावहारिक पक्ष। साहित्य का सम्बन्ध वैसे तो इन सभी पक्षों से न्यूनाधिक मात्रा में होता है, किन्तु बौद्धिक एवं भावात्मक पक्ष से विशेष रूप से होता है, क्योंकि साहित्य के माध्यम से व्यक्ति अपनी बौद्धिक वृत्तियों एवं भावात्मक प्रवृत्तियों - जीवन-दृष्टि, विचारधारा, भावनाओं आदि की अभिव्यक्ति करता है।"⁸ वे साहित्यकार के निर्माण के तीन प्रमुख तत्वों को उत्तरदायी मानते हैं- वंश परम्परा, वातावरण और द्वंद्व। साहित्य के चार तत्व होते हैं- विचार, भाव, कल्पना और शैली। साहित्यकार का व्यक्तित्व इन चार तत्वों के अंतर्गत किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है।

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक गार्डेन विलियर्ड अल्पोर्ट के अनुसार, "व्यक्तित्व, एक व्यक्ति की उसकी विशिष्टताओं के अनुसार सामाजिक उद्दीपकों के प्रति की गई प्रतिक्रिया और वह गुण है, जो वह अपने वातावरण के सामाजिक लक्षणों से प्राप्त करता है।"⁹ उपरोक्त विवरण और परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मुख्यतः परिवार और समाज ही एक व्यक्ति को बनाता है। उसका व्यक्तित्व तथा उसके विचार सभी आस-पास की परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही आकार लेते हैं। हाँ! यह संभव है कि

ये प्रभाव कभी सकारात्मक हो सकते हैं या नकारात्मक हो सकते हैं। ऐसे ही, अपनी परिस्थितियों द्वारा गढ़ी गई लेखिका हैं, तसलीमा नसरीन। तसलीमा का रचनात्मक व्यक्तित्व वंश, वातावरण और द्वंद का परिणाम कहा जा सकता है। तसलीमा के 'रचनात्मक व्यक्तित्व की यात्रा' को उनकी आत्मकथा के सात खण्डों के माध्यम से समझा जा सकता है, जो 1971 के बांग्लादेश मुक्तियुद्ध से प्रारम्भ होकर 2010 तक उनके भारत आगमन तक का सम्पूर्ण ब्यौरा देती है। आत्मकथा में तसलीमा के रचनात्मक व्यक्तित्व को क्रमशः परिपक्व होते हुए देखा जा सकता है।

(ख) रचनात्मक व्यक्तित्व का विकास : निर्वासन से पूर्व

बचपन के दिन : तसलीमा के बचपन के दिन में उनके व्यक्तित्व के विकास को क्रमशः निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देख सकते हैं :-

कठिन परिस्थिति में जन्म :

आत्मकथा के प्रथम भाग 'मेरे बचपन के दिन' में नन्ही बालिका के रूप में तसलीमा की दुर्बलता, उनके भय और उन में पनपने वाले हजारों प्रश्नों की उथल-पुथल को देख सकते हैं। दरअसल तसलीमा के संघर्ष की कथा उनके जन्म के पूर्व से ही प्रारम्भ होकर अनवरत चलती है। जन्म के समय गर्भ में उलट जाने की वजह से उनके पैदा होने में माँ और बच्ची तसलीमा को बड़े ही कष्ट का सामना करना पड़ा। इस सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "मैंने साँस की तकलीफ भोगते हुए और दिल की धड़कन बंद होने की नाजुक स्थिति में इस धरती पर जन्म लिया।"¹⁰

धर्मभीरु होने की संभावना :

इस्लामी कैलेण्डर (हिजरी संवत्) के अनुसार इस्लाम में पवित्र माने जाने वाले 'बारह रबी-अल-अव्वल'¹¹ (ग्रेगोरियन कैलेंडर के अनुसार- दिनांक 25 अगस्त, 1962) के दिन बांग्लादेश के मयमनसिंह के एक मुस्लिम परिवार में तसलीमा का जन्म हुआ। यह दिन इस्लाम में एक पवित्र दिन माना जाता है, क्योंकि इस दिन इस्लाम के प्रवर्तक मुहम्मद साहब का भी जन्म हुआ था। इस दिन

जन्म होने के कारण परिजनों ने यह मान लिया कि तसलीमा भी आगे चलकर मुहम्मद साहब की ही तरह धर्म-भीरू होंगी। इस सम्भावना को सच में बदलने के लिए उनके परिजनों विशेषकर उनकी माँ ईदुलआरा और मौसी फजली के दबावों का उन्हें बार-बार सामना करना पड़ा। नन्ही तसलीमा को परिवार के लोगों द्वारा समाज के साथ घुल-मिल जाने के लिए तैयार किया जाने लगा, कुरीतियों को कुरीतियाँ न मानते हुए उन्हें स्वीकार करने के लिए विवश किया जाने लगा।

प्रश्नों की दुनिया में गोता लगाती नहीं तसलीमा :

किन्तु तसलीमा पर जितना अधिक दबाव बनाया जाता, उतना ही उनमें प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति भी पनपती जाती। प्रारंभिक दिनों में वे बांग्लादेश के मैमनसिंह, दापुनिया, धोबाउड़ा, नान्दाइल, मदारीनगर, बेगुनबाड़ी, हांसपुकर, अमलापाड़ा, फूलपुर चाहे जहाँ रहीं या चाहे जिस जगह से भी उनका सम्बन्ध रहा, वे प्रत्येक बार स्वयं को प्रश्नों से घिरा पातीं। इस प्रश्न करने की प्रवृत्ति ने उन्हें प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए भी प्रेरित किया और उन्हें जो भी उत्तर प्राप्त हुए, वे या तो उनके लिए संतोषजनक नहीं थे या उत्तरों की भयावहता ने उनके अंतः को भीतर तक झकझोर दिया।

निषिद्ध और वर्जित कार्यों के प्रति उनके मन में असंख्य प्रश्नों का जन्म हो रहा था। मसलन- 'मनुष्य का चित्र क्यों ना बनाया जाय?', 'नमाज़ पढ़ने पर भी अल्लाह मनचाही चीज़ क्यों नहीं देते?', 'कुरान अरबी में ही क्यों पढ़ते हैं', 'बांग्ला में नहीं पढ़ सकते?', 'अल्लाह को क्या बांग्ला भाषा नहीं आती?', 'क्या कबीरा-ए-गुनाह¹² भी अल्लाह माफ़ कर देता है?', 'किसकी बात सच है विज्ञान की या कुरान की?', 'स्त्रियाँ क्या सच नहीं बोलतीं?', 'क्या पुरुष की हड्डी से स्त्री की रचना हुई है?', 'बेटी को जायदाद में कम हिस्सा क्यों मिलेगा?', 'पुरुष ही चार विवाह क्यों करेगा?', 'पुरुष ही तीन तलाक क्यों बोलेगा स्त्री क्यों नहीं?', 'अल्लाह से प्रेम करना चाहिए, पर डरने से क्या प्रेम संभव है?' आदि।

भयभीत और डरपोक तसलीमा :

किसी भी प्रकार के अंधविश्वास में विश्वास न करने वाली तसलीमा बचपन में भूतों के नाम तक से डरा करती थीं। अपने लेखन में निडर और साहसी दिखाई देने वाली तसलीमा, बचपन में इतनी डरपोक भी हो सकती हैं, यह जानकर आश्चर्य होता है। यह डर उनके परिजनों के द्वारा ही पैदा किया गया था। कई प्रकार के भय उनके जीवन को घेरने लगे - अपमानित होने का भय, अँधेरे से भय, साँप से भय, रात से भय, एकांत से भय, पिता से भय आदि। उनके व्यक्तित्व को इस प्रकार के भय ने भीतर तक प्रभावित किया। भय के कारण उनका व्यक्तित्व निरंतर अंतर्मुखी होता जा रहा था। किसी को कुछ बता न पाने और विरोध न कर पाने की कुंठा के कारण निषिद्ध कार्य को करने में उनकी रुचि क्रमशः बढ़ती गयी।

प्रतिबंधों के बीच तसलीमा और अन्य लड़कियाँ :

तसलीमा के बचपन के दिन किसी भी मध्य वर्गीय परिवार की लड़की की तरह ही कभी गाँव तो कभी शहर, कभी नानी के घर तो कभी मामाओं के साथ, कभी मौसी के साथ, तो कभी कठोर हृदय वाले पिता के साथ, तो कभी नरम दिल वाली माँ के साथ व्यतीत हुए। उन दिनों अपने परिवार की आँखों में तसलीमा 'दो बड़े - बड़े चूहे' देखा करती थीं अर्थात् रोक-टोक करने वाली निगाहें, जो उन्हें कोई भी ऐसा काम करने से रोकती थीं, जो केवल लड़के ही कर सकते हैं - जैसे बाहर जाना, धान की बालियों के साथ खेलना, जंगल, तालाब की ओर जाना, दुकान जाना आदि सब कुछ मना था, क्योंकि वे एक लड़की थीं। 1971 के बांग्लादेशी मुक्तियुद्ध के दौरान जब तसलीमा को परिवार के साथ हांसपुकर में कुछ दिनों के लिए छिपकर रहना पड़ा, तब उन्होंने देखा, "उस मकान में मेरी हमउम्र लड़कियाँ साड़ी पहनती थीं। पता चला किसी-किसी की शादी भी हो गयी थी। भोर उठकर वे लोग हंस और मुर्गियों का दड़बा खोलती थीं, चूल्हे में फुंकनी फूँकती थीं, मसाला पीसती थीं, देकी कूटती थीं, सूप से चावल फटकती थीं। मैंने उनसे कहा, 'एक्का-दुक्का, कुतकुत खेलोगी ?' यह सुनकर वे सब मुँह दबाकर हँसीं, मगर खेलने नहीं आईं। लड़के पेड़ों पर चढ़कर आम, कैथा तथा नारियल

तोड़ते थे। उनकी तरह पेड़ों पर चढ़ने की मेरी भी इच्छा होती। वे कहते, 'पेड़ों पर लड़कियों के चढ़ने से पेड़ सूख जाते हैं।' वे लोग लुंगी का फेटा बांधकर कबड्डी खेलते। मैं भी खेलना चाहती तो वे कहते, 'लड़कियाँ कबड्डी नहीं खेलतीं।'¹³ इस प्रकार की घटनाओं ने उनके मन में समाज की रूढ़ियों के प्रति विद्वेष और स्त्रियों के प्रति चिंता का भाव उत्पन्न करने का काम किया।

मुक्तियुद्ध के बीच तसलीमा :

तसलीमा ने बचपन में बांग्लादेश के मुक्तियुद्ध की भयावहता को अपनी आँखों से देखा था। 1971 के इस मुक्तियुद्ध के समय उनकी आयु 9 वर्ष थी। पाकिस्तान से आये सैनिक बांग्लादेश के एक-एक घर के लोगों को मौत के घाट उतार रहे थे, घर की प्रत्येक औरत का बलात्कार किया जा रहा था। लाखों लोग अपना घर छोड़कर खानाबदोश जैसा जीवन जीने को विवश कर दिए गये। वे स्वयं एक बार इस तरह की घटना की शिकार हुईं। पाकिस्तान से आये कुछ सैनिकों ने उनके घर पर भी हमला कर दिया। वे सब कुछ लूटने के साथ-साथ किसी नौजवान लड़की की तलाश कर रहे थे। ऐसे में उन्होंने उनपर भी एक बार नज़र डाली, किन्तु वे बाल-बाल बच गयीं। उस समय उन्हें जो महसूस हुआ, उस सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "...मेरी देह पर जैसे एक ठंडा साँप सरक रहा था।"¹⁴ साथ-ही वे बताती हैं, "मुक्तियुद्ध के समय पाकिस्तान से आये सैनिकों के लिए 'स्त्रियाँ हवस का साधन थीं। किशोर हो या अधेड़, किसी को भी देखते ही उनका सख्त डंडा पतलून फाड़कर बाहर निकल आता था।"¹⁵ उनके घर पर हमला कर उनके यहाँ के जेवर लूट लिए गये और उनके पिता को भी शारीरिक यातना दी गयी। यह सब उन्होंने अपनी आँखों से देखा था, जो नन्ही तसलीमा को भीतर तक झकझोर गया। इसी विचलित कर देने वाली परिस्थिति ने उनके भीतर एक ही कौम के लोगों में पनपते विद्वेष और धर्म के नाम पर एकजुटता का दावा किये जाने के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि उत्पन्न की।

बेड़ियों में बंधीं औरतों के प्रति तसलीमा की संवेदना का जन्म :

बांग्लादेशी समाज में लड़कियों का क्या स्थान रहा है, यह तसलीमा बचपन से ही अपने आस-पास के वातावरण को देखकर समझ रही थीं। नानी का कराहती माँ से कहना- 'थोड़ा बर्दाश्त

कर। औरत को बर्दाश्त करने की आदत होनी चाहिए।¹⁶, नाना का माँ से कहना 'औरतों को ज्यादा पढ़ने-लिखने की क्या ज़रूरत !'¹⁷, नाना का भाइयों के पैदा होने पर अज़ान लगाना किन्तु लड़की पैदा होने पर नहीं, नाना द्वारा माँ को गोरेपन की दवा देना ताकि वह अपने पति को किसी और के चंगुल में जाने से रोक सकें, माँ का बदसूरत होने के कारण अपराध-बोध, अपने को तुच्छ समझना, एक ही समय में माँ और बेटी (नानी और माँ) का एक साथ गर्भवती होना, एक स्त्री होने के कारण माँ के सपने बिखरना, नानी का अकेलापन और निसंगतता, शराफ मामा और नवाज़ुद्दीन चाचा के द्वारा शारीरिक शोषण का प्रयास, जिसे उस समय तसलीमा समझ नहीं पायीं ('मैं इस नंगे होने वाले खेल का नाम नहीं जानती थी'¹⁸), माँ का जीवन जैसा था पाकिस्तान बनने के बाद भी वैसा ही रहा, घूमने-फिरने वाली लड़की फजली को घर में कैद कर केवल पति और ससुर की सेवा में लगा देना आदि घटनाओं ने उन्हें स्त्रियों के प्रति अधिक संवेदनशील बना दिया। तसलीमा ने अपने आसपास की स्त्रियों माँ, नानी, खाला, फूलबहारी, गेतू की माँ, मनी, रेनू, पीरबाड़ी की लडकियाँ - हुमैरा, मुनज्जबा, नसीमा, नाजिया, दिलरुबा, ममता, मुबशिशरा, सहेलियों - गीता, चंदना, अमीना, सूफी, रेहाना, बकुली, शिप्रा आदि के जीवन में घट रही घटनाओं को बहुत नजदीक से देखा। वह यह तो समझती थी कि उन स्त्रियों के साथ जो कुछ भी किया जा रहा है वह गलत है, किन्तु उसके पीछे छिपे कारणों को समझ पाने की क्षमता ने उस समय जन्म नहीं लिया था। उन्होंने पितृसत्ता को अपने पिता, मामा, भाइयों और नाना के रूप में पहले ही देख लिया था। लेकिन इसे ही 'पितृसत्ता' कहते हैं, इसका ज्ञान उन्हें तब तक नहीं हुआ था।

कल्पना में रंग भरती तसलीमा :

तसलीमा बचपन से ही अत्यंत चिंतनशील रहीं हैं। कल्पना-जगत में अक्सर ही उड़ान भरते हुए वह तरह-तरह के चित्र बनाया करतीं। वे लिखती हैं, 'मेरे दिमाग में तस्वीर बसी रहती थी, शब्दों के बारे में मैं कभी सोचती ही नहीं थी। दरअसल मैं तस्वीर पढ़ती थी, शब्द नहीं। अक्षर आंकने से पहले मैंने पेड़, फूल, नदी, नाव को ही आंका था।'¹⁹ रंगों से विशेष प्रेम रखने वाली नन्ही तसलीमा

विद्यालय में खाने की रंगीन थाली मिलने पर प्रसन्नता में खाना ही भूल जातीं, उन्हें कविता के स्थान पर उसके चित्र ज्यादा याद रहते ।

कविता के प्रति प्रेम :

रंगों के साथ प्रेम के अतिरिक्त तसलीमा ने अपने मनोरंजन और दूसरों को चिढ़ाने के लिए छोटी-छोटी कवितायें भी गढ़ना शुरू कर दिया । जैसे-

‘कुट्टी, कुट्टी, कुट्टी

कल जाऊँगी बाड़ी

परसों जाऊँगी घर

क्या करेगी कर ।”²⁰

बड़े भाई नोमान के द्वारा 'पल्लव' (पाता) पत्रिका का प्रकाशन और उस पत्रिका में 'रामधनु' (इन्द्रधनुष) नामक तसलीमा के नाम से प्रकाशित कविता ने, उनके भीतर भी लिखने के प्रति लालसा को जन्म दिया (हालाँकि यह कविता तसलीमा में बड़े भाई ने लिखी थी) । इस प्रसंग का उल्लेख वह कुछ इन शब्दों में करती हैं :-

"बड़े भैया ने कहा, "आगामी अंक में तेरे नाम से एक और कविता छापूँगा । मैं बहुत खुश होकर बोली, "तब तो मैं अपनी कविता खुद ही लिखूँगी । बड़े भैया फिक्क से हँसकर बोले," अरे जा, तू भला क्या कविता लिखेगी । यह सुनते ही मुझे विषाद ने ढँक लिया... मेरा मन कविता में लगा रहा । इसके बाद भैया की अनुपस्थिति में उनकी पढ़नेवाली मेज़ की दराज़ खोलकर उनकी कविताओं की कापी निकालकर बड़े ध्यान से कवितायें पढ़ने लगी । काश, मैं भी ऐसा ही लिख पाती ।”²¹

अन्तर्मुखी व्यक्तित्व :

अपने शराफ मामा और रियाजुद्दीन चाचा के द्वारा शारीरिक शोषण किये जाने से तसलीमा अन्तर्मुखी हो उठी । उन्हें इस शोषण के बारे में कुछ जानकारी नहीं थी, किन्तु उन्हें आभास था कि यह

गलत है। लेकिन इस गलत के विरुद्ध आवाज़ उठाने का उस समय उनमें साहस नहीं था। इसका कारण यह था कि वे इस घटना के लिए स्वयं को ही दोषी मानती थीं- 'न जाने कौन से अदृश्य धागे तसलीमा के ओंठ सी देते थे !' इस घटना के बाद तसलीमा का स्वभाव दबू की तरह हो आया था। वे किसी के भी सामने आने में कतराने लगीं। उनमें पुरुष को लेकर एक प्रकार का भय बैठ गया।

द्वंदात्मक परिवेश : धार्मिक अरुचि का जन्म और तार्किक चिंतन

माँ की धार्मिक रुचि ने तसलीमा के अन्दर धर्म को लेकर अरुचि पैदा कर दी। नौमहल के पीर बाड़ी में अमिरुल्लाह नामक मुल्ला के ढकोसलों को देखकर वे धर्म के प्रति घृणा के भाव से भर उठीं। एक तरफ परम धार्मिक माँ थीं जो कहतीं, "बेटे, इस भौतिक जगत की लिखाई पढ़ाई में कुछ नहीं होने वाला। आखिरत का सहारा लो, नमाज़-रोज़ा करो। अपने बाप की तरह काफिर मत बनो। अल्लाह का नाम लो। वह बड़े दयालु हैं। वे ही तुम लोगों को माफ़ करेंगे। कायदा सिपारा पढ़ो। कुरआन शरीफ पढ़ो।"²² दूसरी ओर पिता का विश्वास था 'छात्रानाम अध्ययनम तपः'। उनका कहना था, "अल्लाह को पुकारने से क्या अल्लाह तुझे खाना दे जायेंगे। अपने खाने-पीने का इंतजाम खुद ही करना पड़ता है। अब जा, पढ़ने बैठ। पढ़ाई छोड़ कर उठेगी तो मार-मार कर हड्डी तोड़ दूँगा।"²³

इस तरह के द्वंदात्मक परिवेश के बीच तसलीमा की परवरिश हो रही थी। प्रारम्भ में उन्हें समझ नहीं आया कि कौन सही है और कौन गलत। लेकिन धीरे-धीरे उनके मन से भ्रम का यह पर्दा हटता जा रहा था। जैसे-जैसे वे विश्व के महान लेखकों की जीवनियाँ, रचनायें, विज्ञान आदि पढ़ती गयीं और धर्म के आडम्बरों को देखा, वैसे-वैसे उनको यह स्पष्ट होने लगा कि पिता जी की बातें ज्यादा तार्किक और प्रमाणिक हैं। बड़े मामा सिद्दीक की तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक बातों और फजली खाला के धर्म आधारित विचारों की भिड़ंत के बीच वे तर्क आधारित निर्णय लेने लगी थीं। किताबों के बीच रहते हुए जब उन्होंने कुरान और हदीस पढ़ी तो उन्हें इस बात का ज्ञान हुआ, "जिस कुरआन को सम्मान के साथ चूमकर खोला और बंद किया जाता है, उस कुरआन में इतनी विषमता की बातें लिखी हुई हैं, मुझे यकीन

नहीं आता... मतलब अल्लाह भी स्त्रियों को समान दृष्टि से नहीं देखते। अल्लाह भी लगता है गेंतू के बाप की तरह हैं। गेंतू का बाप अपनी पत्नी को बेहद मारता था क्योंकि वह उसकी बात नहीं सुनती थी।"24 उन्हें बार-बार धर्म की ओर खींचने में पीरबाड़ी के अमिरुल्लाह, फजली खाला और माँ लगी हुई थीं, जिसके कारण उनका मन भयभीत हो उठता, "मेरे मन में भी कयामत का डर घुस गया था। तब पिता जी की जो इच्छा है कि मैं पढ़ लिखकर बड़ी होऊँ, उसका क्या होगा?"25 तो दूसरी ओर पिता, बड़े मामा और उनकी किताबें उन्हें तर्क का पाठ पढ़ा रही थीं - "अल्लाह ने जो कहा है, मैं महसूस कर रही थी, उनमें तर्क कम था। यह नया शब्द 'तर्क' मैंने सीख लिया था।"26

पुस्तकों से मार्गदर्शन प्राप्त करती तसलीमा : साहित्यिक रुचि का जन्म

इन दोनों पक्षों की खींचा-तानी के बीच पुस्तकें ही उनकी वास्तविक सहयोगी और पथप्रदर्शक बनीं। वे लिखती हैं, "किताबें पढ़कर मैंने अंग्रेजी गद्य-पद्य सीखा था, व्याकरण सीखा था, भूगोल-इतिहास सीखा था, गणित सीखा था। दुनिया ने हमें नीची-जात, ऊँची-जात, अमीरी-गरीबी आदि बातें सिखा दी थी।"27 उनके आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहता, जब वे देखती कि पीरबाड़ी में उनके ही उम्र की लड़कियाँ पढाई-लिखाई छोड़कर अल्लाह के रास्ते पर आ गयी हैं। इन लड़कियों को देख तसलीमा उनको मन ही मन स्कूल ले जाने के बारे में सोचने लगतीं, "जैसे कई बिल्लियाँ एक साथ दूध पी रही हों। मैं वह शब्द सुन रही थी और ऋषि मूषिक की तरह बैठकर उन्हें गिन रही थी- सात, छह, चार, तीन, दो, एक। लम्बी, नाटी, मंझोली, नाटी, नाटी, मंझोली। उन्हें मैंने मन ही मन स्कूल की एसेम्बली में खड़ा कर दिया - नाटी, नाटी, मंझोली, मंझोली, लम्बी। फिर उनसे गवाने लगी- "सात भाई चम्पा जागो रे, जागो रे!"28

साहित्य की ओर उनकी रुचि पैदा करने में दो लोगों का विशेष योगदान रहा। बड़े मामा सिद्दीक और दूसरी उनकी मित्र चंदना। बड़े मामा सोवियत यूनियन के दूतावास के सांस्कृतिक केंद्र में 'उदयन' पत्रिका के संयुक्त सम्पादक थे। वे पत्रिका और अन्य किताबें 'अवकाश' (तसलीमा का घर)

पर भेजा करते थे। उनमें 'उदयन' पत्रिका, 'बच्चों के लेनिन', 'द्वितीय विश्व युद्ध का इतिहास', 'साम्यवाद', 'क्या और क्यों', 'मैक्सिम गोर्की की माँ', 'मेरा बचपन', 'दुनिया की पाठशाला' आदि पुस्तकें सम्मिलित होतीं। तसलीमा ने इन पुस्तकों से देश-दुनिया का ज्ञान-विज्ञान अर्जित किया। वे लिखती हैं, "बड़े मामा की दी गयी किताबों को उतनी छोटी उम्र में ही उलट-पुलट कर फिर पढ़कर देखने के बाद मुझे यह एहसास होने लगा कि यह दुनिया सिर्फ झाड़-फूँक की दुनिया नहीं है, इसके बाहर भी एक बहुत बड़ी दुनिया है, तर्क पर आधारित दुनिया।"²⁹

नए ज्ञान की ओर तसलीमा बचपन से ही सदैव आकर्षित होती थीं। किसी अन्य बच्चे की तरह ही उन्हें भी यह संसार रहस्यमय लगता था। किसी चीज के बारे में मन में प्रश्न उठने पर जब तक उसका उत्तर नहीं प्राप्त कर लेती, तब तक चैन नहीं लेती और नया ज्ञान पाकर आश्चर्य से विभोर हो जातीं। वे लिखती हैं -

"माँ के छी: - छी: शब्द से सजग होकर मैं पूछती, "कम्युनिस्ट क्या होता है माँ?"

"और क्या होता है, अल्लाह खुदा को नहीं मानता।"

माँ उदास होकर कहती। पहली बार मैं चकित हुई थी, यानी कि इस दुनिया में ऐसे लोग भी थे जो

अल्लाह खुदा को नहीं मानते थे।"³⁰

किशोरावस्था में तसलीमा :

किशोरावस्था की ओर बढ़ती तसलीमा के भीतर उन्मुक्त होने की आकांक्षा बढ़ रही थी, "मेरी सीमा जितनी छोटी होती जा रही थी, बाँध तोड़ने की आकांक्षा मुझमें उतनी ही प्रबल होती जा रही थी। मैं अपने भीतर और बाहर के दोनों चेहरों को महसूस करने लगी थी। एक में उत्सुकता थी, दूसरा उदासीन था।"³¹ इस तरह के द्वंदों और विरोधाभास से परिपूर्ण वातावरण में रहते हुए तसलीमा का अंतर्मन सबसे अलग हट कर सोचने लगा और यह चिंतन धीरे-धीरे कविताओं के रूप में बाहर आने लगा।

कविता लेखन :

तसलीमा जो भी सीखतीं उसे कविता के रूप में ढालने का प्रयास करतीं। चित्र और रंगों की दुनिया से आगे बढ़कर उन्होंने हाथ में कलम थाम ली और इससे मन के असंख्य चित्रों को शब्द का रूप दे डाला। अब खेल छोड़कर शब्दों से खेलना शुरू किया, इसमें सबसे ज्यादा सहयोग रहा बड़े मामा, बड़े भाई और माँ का। प्रारम्भ में खेल के लिए सबके साथ बैठकर मौखिक रूप में कविता गढ़ी गयी। काव्य-पाठ और कहानी-पाठ का आयोजन भी खेल-खेल में ही होता रहा। इसने कविता को लेकर भले ही कोई सैद्धांतिक समझ नहीं उत्पन्न की लेकिन इससे कविता के सम्बन्ध में रुचि और सामान्य समझ अवश्य ही विकसित हुई। उदाहरण के लिए-

"बड़े मामा - क्षुधा के राज्य में पृथ्वी गद्यमय है,

पूर्णमा का चाँद जैसे झुलसी हुई रोटी।

तसलीमा - "मुझे तोड़ दो चाँद रोटी, कुछ खाऊँगी,

बाकी बस्तीवालों में बाँटूँगी।

माँ - "ताड़ का पेड़, खड़ा है एक पैर पर,

सब पेड़ों से ऊँचा होकर।

तसलीमा - "बरगद खड़ा है पाँच पैर पर,

सात हाथ आगे बढ़ाकर।"³²

इसका परिणाम यह हुआ कि विद्यालय में पाठ्यपुस्तक की कविता के स्थान पर वे स्वयं की लिखी हुई कवितायें सुनाया करतीं -

"ओ मधुमक्खी कहाँ जा रही नाच-नाच कर,

बहना जरा ठहरना मेरे कहने पर।"³³

उन्हें मूल कविता को संशोधित करके कहने की आदत हो गयी -

"काना मामू काना मामू कहाँ जा रहे जरा एक बार रुकिये तो सही

किस्सा सुनने को आतुर हैं बच्चे, अब रुकने का समय नहीं।"³⁴

किन्तु इस समय तक लेखन-कार्य में किसी गंभीरता का जन्म नहीं हुआ था। तसलीमा कभी किसी का मजाक उड़ाते हुए, तो कभी किसी से तुक मिलाते हुए 'छड़ा' रच रहीं थीं। 'छड़ा' एक बांग्ला शब्द है। यह बांग्ला लोकसाहित्य का महत्वपूर्ण अंग है, जो लोकजीवन में अत्यंत प्रचलित है। इसके सम्बन्ध में हरिश्चंद्र मिश्र में अपने आलेख 'लोकसाहित्य और साहित्य का अन्तःसम्बन्ध : रवीन्द्रनाथ के शिशु-साहित्य के विशेष सम्बन्ध में' में लिखा है, "रवीन्द्रनाथ शिशु गीतों को (बांग्ला में) छड़ा कहते हैं। उनको उनमें प्राचीन इतिहास दिखता है। वे कहते हैं कि सुना जाता है कि मंगल एवं बृहस्पति के कक्ष में कई छोटे-छोटे गृह हैं। कोई कहते हैं कि एक बड़ा गृह टूटकर खंड-खंड हो गया है। इन 'छड़ों' को भी इसी प्रकार खण्ड-खण्ड रूप में मेरा मन मानता है।"³⁵ रवीन्द्रनाथ ने स्वयं 'छेले घुमानो छड़ा' (बच्चों को सुलाने का गीत - लोरी) और 'छेले भुलानो छड़ा' (बच्चों को बहलाने का गीत) लिखा। रवीन्द्रनाथ लिखते हैं, "ऐसा लगता है कि इधर-उधर करने से ही 'छड़ा' लिखा जा सकता है। किन्तु इधर-उधर का भाव पाना सहज नहीं है। उसके सारे कार्यों में हमारा ऐसा अभ्यास हो गया है कि सहज भाव की अपेक्षा सचेष्ट भाव ही हमारे लिए सहज हो जाता है, बिना बुलाये ही प्रौढ़ चेष्टा सभी कामों में स्वयं उपस्थित होती है... यही कारण है कि 'छड़ा' जिनके लिए सहज है उनके लिए अतिशय सहज है, किन्तु जिनके लिए कठिन है, उनके लिए एकदम असाध्य है।"³⁶

रवीन्द्रनाथ द्वारा लिखे छड़े का एक उदाहरण -

"जादू यह तो बड़ा रंग जादू, यह तो बड़ा रंग।

चार काला दिखा सकते हो, तो जाऊँगी तुम्हारे संग ॥

काक काला, कोकिल काला, काला भंवरा का वेश।

उससे अधिक काला, कन्या तुम्हारे सिर का केश ॥"³⁷

तसलीमा और उनकी मित्र चंदना ने कुछ इस तरह से लिखा -

चंदना - 'लो चली सुरैया, फूल बटोरिया, मुखड़ा घुमइया !

तसलीमा - 'और कितना चलोगी, हाय ! समय गुजरता जाय'

चंदना - 'चलते-चलते ढलती जाय' |³⁸

लेकिन समय के साथ यह हँसी-खेल का यह कार्य गंभीर रूप लेने लगा और धीरे-धीरे तसलीमा ने नियमित रूप से कविता लेखन प्रारम्भ कर दिया। उन्हें अपने स्कूल में 'कवयित्री' के नाम से प्रसिद्धि मिलनी प्रारम्भ हो गयी, जिसने उन्हें प्रोत्साहन दिया। इसी उत्साह में उन्होंने 'मुक्त विहंग' नाम से अपनी सबसे पहली कविता लिखी। उस समय उनकी उम्र तेरह वर्ष थी। उनके अन्दर कविता को लेकर एक इच्छा जन्म ले रही थी। वे भी औरों की तरह लिखना चाहती थीं। अपनी सहपाठी दिलरुबा की 'घास' कविता पढ़कर उससे कहा, "मुझे कविता लिखना सिखाओगी, दिलरुबा?... कविता लिखना किसी को सिखाया नहीं जा सकता। आसमान की ओर देखती रहना, तुम्हे रोना आयेगा। अगर तुम खूब रो सकती हो तो कविता भी लिख सकती हो।"³⁹

आकाश की ओर देखकर तसलीमा रो भले ही न सकी, किन्तु एक कविता अवश्य लिख डाली -

"मैं तुम्हे अपने खेल में शामिल करूँगी दिलरुबा

आता है गोल्लाछूट खेलना ?

गोल्ला से एक शाम अचानक भागकर

खो जाऊँगी कहीं दूर, बड़ी दूर।

सात समंदर तेरह नदी के उस पार जाओगी ?"⁴⁰

इसके बाद से 'गोल्लाछूट'⁴¹ शब्द तसलीमा का प्रिय शब्द बन गया। बचपन में खेले गये इस खेल ने तसलीमा को अपने दायरों से निकल आना सिखाया और यह भी सिखाया कि अन्य स्त्रियों को इस दायरे से बाहर आने के लिए किस तरह से प्रेरित किया जाय। तसलीमा ने अपनी जिज्ञासा को

शांत करने के लिए घर में रखी सभी किताबें पढ़ डाली । कुछ समय में आई और कुछ नहीं । माँ के दराज़ में रखी किताबों 'मक्सुदुल मोमेनिन', 'नेमुल कुरआन', पीर अमिरुल्लाह की लिखी कविताओं की पुस्तक 'मीनार', 'ताज्केरातुल औलिया', 'हू एम आई' जैसी किताबें पढ़कर उन्हें यह महसूस हुआ कि, "दुनिया में सब कुछ भोग के लिए है और दुनिया की सर्वोत्तम सामग्री नेक चरित्र की औरत होती है ।"⁴²

अपनी ज्ञान-क्षुधा को पुस्तकों से शांत होता देख, उनकी रुचि पाठ्यक्रम से इतर साहित्यिक पुस्तकों में बढ़ गयी और वे दिन-रात सबसे छुपकर साहित्य पढ़ने में ही जुटी रहतीं, "अचानक मेरा मन किसी और तरफ मुड़ गया । किताबों की तरफ ! आले पर जितनी सारी किताबें सजी हुई हैं, निमिष भर में पढ़ डालने की आकुलता ! मानो वे किताबें मगरमच्छ की तरह मुँह-बाएँ मुझे निगल जाने को आतुर ! आस-पास, हाथ की पहुँच में, जितनी सारी किताबें थीं, जब, सब पढ़ डाली, तो पहुँच के बाहर की किताबों की तरफ, अंगूठे के बल उचककर या सीढ़ी पर चढ़कर, ऊपर ताखे से किताबें निकाली जाने लगीं । मैं और चंदना गऊ-ग्रास की तरह पढ़ने में बेसुध !"⁴³

पत्र-पत्रिका में लेखन-कार्य :

छोटे भाई कमाल के द्वारा लायी हुई पत्रिका 'चित्राली'⁴⁴ को पढ़ने के साथ पत्रिकाओं को पढ़ने का क्रम प्रारम्भ हुआ । तसलीमा इस पत्रिका के लिए पत्र भी लिखा करती थीं । कई बार ये चिट्ठियाँ प्रकाशित भी हुईं, जिससे लेखन के प्रति उनका उत्साह बढ़ता गया । इस सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "कहीं भी, कोई भी मुद्रित-अमुद्रित शब्द देखते ही, उसे घोंट डालने वाली लड़की थी मैं । स्कूल जाते हुए, राह में अगर लड़के छोकरे न दिखे, तो हज़ारों बार पढ़े हुए साइन बोर्ड ही, नए सिरे से बार-बार पढ़ती हुई जाती थी । मूँगफली खरीद कर, मूँगफली खाते-खाते, उसके ठोंगे (लिफ़ाफ़े) पर छपे, जुमले ही पढ़ डालती । तेतुल का अचार खरीदती, तो अचार तो चाट-पोछकर खा जाती, तेल में धुंधलाये कागज़ तक पढ़कर उद्धार कर डालती । जो पढ़ाकू थी, वह तस्वीरों वाली मनोरंजक पत्रिका भला कैसे

छोड़ती ? छोटे भैया की उस 'चित्राली' पत्रिका पर नज़र दौड़ाते-दौड़ाते मुझे इसकी आदत पड़ गई । यह आदत धीरे - धीरे नशे में ढल गई ।"⁴⁵

इस पढ़ने की आदत से तसलीमा में सामान्य सामाजिक समझ विकसित हुई, जिसने उन्हें कुछ गंभीर लिखने के लिए प्रेरित किया । इस तरह उनका पहला लेख 'किन्नरकंठी सबीना उपेक्षित क्यों है ?' चित्राली पत्रिका में प्रकाशित हुआ । उसी पत्रिका में इस लेख की प्रशंसा और आलोचना में कई पत्र भी प्रकाशित हुए । इसके बाद तसलीमा का लेखन कभी नहीं थमा । अब तसलीमा के लेख बांग्लादेश की पत्रिकाओं 'चित्राली' और 'पूर्वाणी', 'बेगम', 'विचित्रा', 'बांग्ला दर्पण', 'दैनिक जहान', 'रविवार', 'संधानी' आदि में आये-गए प्रकाशित होने लगे ।

युवावस्था : अनुभवों से परिपक्व होता व्यक्तित्व

पत्र-मित्र : प्रेमानुभव

तसलीमा का जीवन अब बतौर लेखिका प्रारम्भ हो चुका था । इसी के साथ शुरू हुआ पत्र-मित्र बनाने का सिलसिला । पत्रिकाओं में तसलीमा ने जो लेख या पत्र लिखे उनके जवाब कभी आलोचना या प्रशंसा या फिर सुझाव के रूप में तसलीमा तक पहुँचने लगे । ऐसे में, तसलीमा के कई पत्र - मित्र भी बन गये । इन पत्रों के द्वारा बने संबंधों से तसलीमा ने यह जाना कि आत्मीयता से इतर भी कोई सम्बन्ध होता है और वह है 'प्रेम' का सम्बन्ध । किन्तु 'प्रेम' का ऐसा रूप, जिसका उद्देश्य केवल विवाह करना ही नहीं है, बल्कि यह पुरुष और स्त्री के बीच सौहार्द का एक सम्बन्ध है । 'प्लेटोनिक प्रेम' की ओर उनका विश्वास निरंतर बढ़ता गया । उन्होंने इन चिट्ठियों के माध्यम से कई लोगों से संपर्क बनाया और उनके जीवन के अनुभवों से अपने अनुभवों को समृद्ध किया- "खतों में इंसान को अपना बना लेना, मेरे स्वभाव में शामिल था ।"⁴⁶

कॉलेज की दुनिया : विज्ञान और साहित्य का सामंजस्य

अब तक तसलीमा विद्यालय की चाहर - दीवारी से बाहर निकल कर कॉलेज में प्रवेश कर चुकी थीं । वे अपने आस-पास की लड़कियों और स्वयं पर बढ़ती हुई पाबंदियों को महसूस कर रहीं

थीं। उत्ताल हवा से बहते जीवन के चारों-ओर घर और समाज के द्वारा लगायी जाने वाली पाबंदियों को देख रही थीं। धर्म की बेड़ियों में जकड़े समाज को समझने लगी थीं। राजनीति से अभी कोसों दूर तसलीमा ने केवल कुछ सैद्धांतिक किताबों से ही मार्क्स, लेनिन, अरस्तू आदि के बारे में जाना था। उनमें अनुचित का विरोध करने की प्रवृत्ति जन्म ले चुकी थी। किसी तरह की पाबंदी चाहे वह दुष्पट्टा हो, बुर्का हो, या विवाह हो, इसे स्वीकार करना तसलीमा के बस का नहीं था। तसलीमा ने किसी भी प्रकार के बंधन के 'मर्म' के प्रति अपने चर्म को कभी उदार नहीं किया।

नियमित लेखन के साथ-साथ 'विचित्रा' पत्रिका में व्यक्तिगत विज्ञापन भी लिखा, "मैंने लिखा - 'मैं दुर्धर्ष ! दुर्निवार !' चंदना ने लिखा- 'आई एम द ग्रेटेस्ट !' फिर वही चित्राली जैसा काण्ड घटने लगा। मैं कुछ भी लिखती तो उस पर बीसियों लोग लिखने लगे। कोई पक्ष में, कोई दो-तीन शब्दों में गुथा हुआ वाक्य। बेजान पोखर में कंकड़ फेंकने जैसा ! समूचे पोखर में लहरें उठने लगतीं। किनारे पर बैठे - बैठे, मैं और चंदना दोनों ही इसका मजा लेते। सीमाओं में कैद हमारी ज़िन्दगी, ज़िन्दगी के इर्द-गिर्द घिरी चारदीवारी। क्रदम-क्रदम पर निषेध ! हर बात में ना ! इस 'ना' शब्द के निषेध की अवमानना करने की ताकत और साहस हम शब्दों के जरिये अर्जित करती थीं।"⁴⁷

फ़िल्मी जगत पर आधारित पत्रिका में लिखते हुए तसलीमा फिल्म जगत में भी प्रसिद्धि पा रही थीं। एक बार बांग्ला फिल्मों के अभिनेता के 'चिपाचस' (छोटे भाई कमाल के द्वारा बनाया गया संगठन) के कार्यक्रम में आने पर उनका आटोग्राफ लेने पहुँची, तब जो हुआ उसके विषय में तसलीमा कुछ इस प्रकार से लिखती हैं, "जब मैंने उन्हें अपना पूरा नाम बताया, उन्होंने मुक्त कंठ से ठहाका लगाकर, मुझे अभिभूत करते हुए सवाल किया, 'तुम ही तसलीमा नसरीन हो ? तुम मेरा आटोग्राफ क्या लोगी ? तुम्हारा आटोग्राफ तो मुझे लेना है ? तुम तो मुझसे ज्यादा मशहूर हो, जी !'"⁴⁸ इस तरह अपने लेखन से प्रसिद्धि प्राप्त कर रही तसलीमा के लिए विभिन्न पत्रिकाओं में लेख या कविता लिखने के लिए प्रस्ताव आने लगे।

तसलीमा मेडिकल की पढ़ाई और बांग्ला साहित्य के प्रतिष्ठित लेखकों को पढ़ने के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य भी पढ़ती रहीं। पत्र-व्यवहार करते हुए तसलीमा, कई लेखकों से परिचित हुई, जिससे उनके मन में एक पत्रिका के सम्पादन का सपना उमड़ पड़ा। तत्पश्चात् तसलीमा ने 'संझा-बाती' नाम से एक पत्रिका प्रकाशित करने का निर्णय लिया। पत्रिका प्रकाशित करने के लिए आर्थिक संसाधनों के इंतजाम में तसलीमा को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसके लिए उन्होंने, "... शीशी-बोतल - कागज़वाले को बुलाकर, घर के सारे ज़रूर-गैर-ज़रूरी शीशी, बोतल, कागज़, और धूप दिखाने के बाद, दीमक झाड़कर, 'चित्राली' और 'पूर्वाणी' की पुरानी प्रतियाँ, मोह त्यागकर, इतवार की 'संधानी' और 'विचित्रा' की प्रतियाँ बेचकर, पैसे-पैसे जमा किये। अम्मी के आँचल की खूंट से भी कुछ पैसे झाड़े।"⁴⁹ हालाँकि पत्रिका निकलने पर पिताजी ने काफी विरोध किया, लेकिन तसलीमा तो अपनी धुन की पक्की थीं। पिताजी कभी-भी तसलीमा के लिखने के पक्ष में नहीं थे। वे कभी बातों से तो कभी शारीरिक बल प्रयोग कर तसलीमा को लिखने से रोकते रहे। वे अपनी बेटी को केवल डॉक्टर बनते हुए देखना चाहते थे। वहीं तसलीमा डॉक्टर तो अपने पिता के लिये बनना चाहती थीं लेकिन लेखिका तो उनके अपने भीतर से जन्म ले रही थी। उन्होंने अपने भीतर की इस लेखिका को तमाम बाधाओं के बावजूद बाहर आने से नहीं रोका। उनके पिता से कभी-कभी उनका बौद्धिक तर्क-वितर्क भी होता था, जो उनके जीवन की अत्यंत रोचक घटना है। जब उनके पिता क्रोधित होते तो अपने दवाखाने जाने से पहले दीवार या दरवाज़े पर अपना गुस्सा कविता के रूप में लिखकर जाते। तसलीमा भी उसका प्रत्युत्तर कविता के रूप में ही देतीं।

उदाहरण के लिए :-

"पिताजी-	मर्म- मर्म करे आघात, आत्मजा का क्रंद
	पिता ही जाने, आत्मजा से आत्मा का अटूट बंधन !
तसलीमा-	मुझे नहीं चाव, समेटू मणि - मुक्ता की थाती

इतना ही शौक, जलाए रखूँ, 'संझा - बाती' ।⁵⁰

अपने पिता के मना करने के बाद भी तसलीमा ने 'संझा-बाती' को जारी रखा और उसके कई अंक प्रकाशित भी किये । 'संझा-बाती' में आने वाली कविताओं से तसलीमा ने बहुत कुछ सीखा । उदाहरण के लिए- भाषिक परिवर्तन, व्याकरणिक परिवर्तन आदि । कई बार कविताओं को कुछ ठीक भी करना पड़ता । कुल मिलाकर, इन दिनों तसलीमा साहित्य के प्रति समर्पित हो उठीं थीं और कविता ही उनकी दुनिया बन गयी थी । वे लिखती हैं, "जब तक समूची दुनिया को कविता की दुनिया न बना दूँ, मुझे चैन नहीं था । मेरे सिर पर सच ही कविताओं का जूनून चढ़ गया था । कविता मेरे दिन रात की संगिनी बन गयी थी ।"⁵¹

'सिलहट मेडिकल कालेज' में भर्ती होने के बाद तो नये प्रयोग शुरू हो गये । मेडिकल कालेज में भी साहित्यिक पत्रिका प्रकाशित करने की इच्छा बनी रही । तब तसलीमा ने इसका शुभारंभ किया दीवार-पत्रिका 'कृशानु' लिखकर । फिर 'अमृत' नामक एक और दीवार पत्रिका का संपादन किया । तसलीमा अपनी लगन के कारण ही मेडिकल की पढ़ाई के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में भी उतने ही परिश्रम के साथ जुटी रहीं और उनकी इस मेहनत का ही परिणाम था कि 'संझा-बाती' का तीसरा अंक भी प्रकाशित हुआ । इस बार, तसलीमा ने लीक से हटकर एक काम यह किया कि 'संपादिका' के स्थान पर 'संपादक' तसलीमा नसरीन के नाम से पत्रिका प्रकाशित करवाई । इस सम्बन्ध में उनका कहना है, "... लेकिन संपादिका... प्रकाशिका... यह सब एक-टका मुझे नहीं सुहाता । लड़का हो या लड़की... संपादक, संपादक है । कोई भी हो सकता है ? कुछेक शब्दों में लिंग-भेद क्यों? लिंग फिजूल ही शामिल कर लिया गया है । मैं इसका इस्तेमाल नहीं करना चाहती । जो लड़की कविता लिखती है, उसे भी मैं सिर्फ कवि ही कहूँगी, महिला कवि नहीं ।"⁵² इतना ही नहीं, तसलीमा ने मेडिकल कालेज में ही 'शताब्दी चक्र' नाम की एक साहित्यिक संस्था भी बनाई और इस संस्था से एक पत्रिका निकाली 'धूप' । साथ ही 'इनझन' शीर्षक से एक छड़ा पत्रिका भी निकाली । इन सबके

लिए धन की व्यवस्था अपनी छात्रवृत्ति के पैसों से की। कुछ दिनों तक तसलीमा ने नाटक के निर्देशन का भी दायित्व संभाला। उनके निर्देशन में समरस बसु के नाटक 'आवर्त' का सफल मंचन भी हुआ।

अपनी दृढ़ इच्छा और निश्चय के बल पर तसलीमा 'संझा-बाती' का चौथा अंक (1978 से 1983 तक प्रकाशन किया) भी निकालने में सफल हुई। 'शताब्दी चक्र संस्था' की ओर से तसलीमा ने कई कार्यक्रम भी आयोजित किये। वास्तव में, तसलीमा को किताबों से लगाव तो था ही, लेकिन उन किताबों से सीखी बातों का व्यावहारिक जीवन में उतनी ही तेजी से प्रयोग करने का उतावलापन भी उनमें बहुत अधिक था। तसलीमा बैठकर किताबी कीड़ा बने रहने वालों में से नहीं थीं। वे कालेज के छात्र संघ चुनाव में भी शामिल हुईं और सबके साथ राष्ट्रपति जियाउर रहमान से भी मिल आयीं।

निषिद्ध को सिद्ध किया :

तसलीमा को कालेज के आवारा छात्रों में गिना जाने लगा क्योंकि वे अन्य छात्रों की तरह दिन-रात मेडिकल की किताबों या प्रयोगशाला में डूबी नहीं दिखती थीं, उन्होंने कालेज के कई नियम तोड़े। वास्तव में, तसलीमा को बेवजह थोपे हुए नियम बिल्कुल पसंद नहीं थे। उनका मन समाज के बेतुके नियमों को तोड़ डालने का होता था। इसीलिए वे आए दिन निषिद्ध कार्यों को ही करते दिखतीं, जैसे - कालेज की कैंटीन में केवल लड़के ही जाते थे, उन्होंने वहाँ जाना शुरू कर दिया। परिणामस्वरूप कालेज की सभी लड़कियाँ भी कैंटीन जाने लगीं, कालेज के सीनियर डाक्टरों को कभी-भी उन्होंने सलाम नहीं कहा, ब्रम्हपुत्र नदी की ओर अकेले जाने पर रोक थी, वह अकेले ही गयीं, पत्र-मित्र को पत्र लिखने पर रोक लगाई गयी, फिर भी उन्होंने पत्र लिखना बंद नहीं किया, विवाह परिवार की मर्जी से करना होगा, लेकिन अपनी इच्छा से ही किया आदि।

तार्किक चिंतन : राजनीति और धर्म के विरुद्ध

तसलीमा के भीतर राजनीति को लेकर थोड़ी-बहुत सोच विकसित होने लगी थी, जो उनके इस कथन से साफ़ हो जाता है, "इस देश में मजहबी राजनीति निषिद्ध थी। उन्होंने यह निषेधाज्ञा भी

वापस ले ली... कुरान पढ़ते हुए 'बिस्मिल्लाहि रहमान इररहीम' यानी शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम पर ! अब यह शिरोनामा, संविधान के शुरू में बिठा दिया गया है। देश में हिन्दू, बौद्ध, ईसाई-सभी धर्मों के लोगों को अगर जूतों से भी पीटा जाता, तो भी शायद इससे बदतर अपमान नहीं होता...।"⁵³

इसी प्रकार, चिकित्सा जगत में काम करते हुए तसलीमा ने यह देखा कि बड़े-बड़े डॉक्टर भी धर्म में उसी तरह विश्वास करते हैं, जिस तरह कोई आम इंसान। इसके प्रति भी उनमें खीझ उठती थी, "जिस प्रोफेसर की बुद्धि में दिमाग जैसी जटिल चीज इतनी साफ़ है, उसे यह बात समझ में क्यों नहीं आती कि धर्म एक तर्कहीन मामला है।"⁵⁴ ऐसी स्थिति में वह भ्रमित हो जाया करतीं। उन्हें पहले लगता था कि जो लोग पढ़े लिखे नहीं होते, वही धर्म में विश्वास करते हैं। लेकिन जब उन्होंने डॉक्टरों को भी धर्म का उतनी ही कट्टरता से पालन करते हुए देखा तो, वे इसका कारण समझ नहीं पायीं। उन्हें यह समझ नहीं आया कि धर्म की जड़ें समाज में इतनी गहरी कैसे हो गयीं ? और वह इसी प्रश्न का उत्तर पाने में तत्पर हो गयीं।

रुद्र के साथ प्रेम और कविता की आँख-मिचोली : 'जुबान पर कविता, मन के भीतर कविता'⁵⁵

'संझा-बाती' के दूसरे अंक के लिए कविता भेजी, ढाका के उदीयमान कवि रुद्र मुहम्मद शहीदुल्लाह⁵⁶ ने। यहीं से, तसलीमा के जीवन में एक ऐसा मोड़ आया, जो अप्रत्याशित था और जिसने उनके जीवन विशेषकर रचनात्मक - जीवन की दिशा को एक नया मोड़ दिया। रुद्र बांग्लादेश के ढाका के रहने वाले थे। वह एक बड़े परिवार से सम्बन्धित थे, जो बहुत ही खानदानी और इस्लामिक संस्कारों को मानने वाला थे। तसलीमा उसकी भेजी हुई रचनाओं से इतनी प्रभावित हुई कि उसकी वेश - भूषा और बाहरी व्यक्तित्व को न पसंद करते हुए भी, बिना घर में बताये उससे विवाह कर लिया। इस समय उनकी उम्र मात्र 22 वर्ष की थी। वे लिखती हैं, "रुद्र की कविता ने मुझे लेटी हुई मुद्रा से उठाकर सीधे बिठा दिया। नहीं, उसने मुझे खड़ा कर दिया। उस कविता ने मुझे बेचैन कदमों से चहलकदमी के लिए लाचार कर दिया। ऐसा सत्य कथन; ऐसा दृढ़ और सशक्त वक्तव्य।

उसकी कविता ने मुझे बेतरह आकर्षित किया।⁵⁷ उसने कई कवितायें तसलीमा को भेजीं, जिसे तसलीमा ने आत्मकथा में सम्मिलित किया है। इन कविताओं में प्रेम, उन्माद, अवसाद, कुत्सित राजनीति को फटकार, देश और सामान्य जन की चिंता आदि दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए रुद्र के कविता संग्रह 'उपद्रव उपकूल' की एक कविता -

"स्वाधीनता ? स्वप्नों को खोकर पाया है जिसने, मेरा एकमात्र स्वजन !

स्वाधीनता ? वह मेरे प्रिय जन के खून के विनिमय में,

खरीदी गयी अनमोल फसल

घर्षिता बहन की साड़ी, वह है लहलुहान जाति-पताका ?"⁵⁸

विवाह कर 'कागज की बहू' रुद्र के साथ धूप-छाँव का खेल इसलिए खेलती रही क्योंकि वह रुद्र नामक कवि और लेखक को पसंद करती थीं, न कि रुद्र नामक पुरुष को। रुद्र से पत्र-मित्रता के कारण तसलीमा को एक तरफ कविता की गूढ़ता और अभिव्यक्त करने की शैली का ज्ञान हुआ, वहीं दूसरी तरफ रुद्र के साथ प्रेम-सम्बन्ध ने उन्हें पितृसत्तात्मक मानसिकता के यथार्थ से परिचित कराया। रुद्र के साथ 'धूप' और 'सुबह' का खेल खेलते-खेलते तसलीमा की अपनी जिंदगी में अन्धेरा पैर पसारने लगा था। यह अन्धेरा था- सच की कड़वाहट का, अपनों से बढ़ती दूरी का, बात-बात पर बोले जाने वाले झूठ का।

रुद्र से तलाक लेने के बावजूद चाह कर भी तसलीमा इस अँधेरे से स्वयं को मुक्त नहीं कर सकीं। तसलीमा का व्यक्तिगत जीवन बार-बार उनके साहित्यिक जीवन को प्रभावित करता रहा। अपनी सहेली चंदना के विवाह और फिर बहन यास्मिन के विवाह के बाद तसलीमा बहुत निराश हुई। वह इसलिए क्योंकि इन दोनों के रूप में जिन स्त्रियों को उन्होंने विवाह के पहले निडर, स्वतंत्र और पितृसत्ता के विरुद्ध बोलते देखा था, वे ही विवाह के बाद पति की गृहस्थी के लिए अपने अस्तित्व को भूल गयी थीं, वे भय में जीने लगी थीं और यह भय था, पति को खोने का। तसलीमा को महसूस

हुआ कि समाज द्वारा बनायी हुई प्रथाओं में स्त्री अपने अस्तित्व को खो बैठती है। ये प्रथाएँ, परम्पराएँ और नियम कुछ इस तरह से बनाये गये हैं कि पुरुषों पर तो किसी तरह की आँच नहीं आती लेकिन स्त्रियाँ प्रत्येक दिन उस आँच में जलती रहती हैं और धीरे-धीरे उनका स्वत्व ही समाप्त हो जाता है।

इस बीच उनका पहला काव्य संग्रह 'जड़ में विपुल भूख' (1982) प्रकाशित हुआ। तसलीमा जीवन से सीख रही थीं और इस सीख में उन्होंने पुरुष की प्रवृत्ति, समाज और राजनीति की दिशा, धर्म की गहरी जड़ों को समझ लिया। वे यह भी समझ गयीं कि साहित्य के क्षेत्र में जो लोग सामने वाह-वाही करते हैं, वे पीठ-पीछे आलोचना करने से भी नहीं कतराते। इसका उदहारण है - प्रशंसा मिलने के बावजूद पुस्तक मेले में तसलीमा की पुस्तक की बिक्री न होना। लेकिन तसलीमा ने इन घटनाओं से सीख लेकर अपने व्यक्तित्व को और अधिक अनुभवी और परिपक्व बनाया।

व्यक्तित्व और जीवन का द्विखंडन :

तसलीमा के जीवन में धीरे-धीरे द्विखंडन प्रारम्भ हुआ। यह द्विखंडन था, रुद्र और तसलीमा के प्रेम का, साहित्य और चिकित्सा के क्षेत्र का, उनके पक्ष और विपक्ष में खड़े होने वाले लोगों का। वे लिखती हैं, "मेरी जिंदगी दो हिस्सों में बँट गयी थी- मयमनसिंह का घर, नाते-रिश्तेदार, नौकरी ! ढाका में साहित्य, संस्कृति, बंधु-बांधव।"⁵⁹ जितना अधिक समाज को वे समझ रही थीं, उतना ही वे गंभीर और समाज - विरोधी भी हो रही थीं। वे समाज के यथार्थ को देखकर हतप्रभ रह जाती। उनसे कुछ कहते नहीं बनता। ऐसे में वे स्वयं को अस्पताल में आने वाली गूँगी मरीज़ बकुली के समान महसूस करने लगी थीं, जो सब कुछ देख और समझ रही थी पर कुछ बोल नहीं सकती थी। इस न बोल पाने की दुर्बलता को उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से सबल बनाया और अपने भीतर के उद्गारों की सशक्त अभिव्यक्ति की। इन सबके कारण, उनके मन में एक प्रकार की वितृष्णा जन्म लेने लगी जो समाज, पुरुष की मानसिकता, धर्म और परिवार के बंधन के प्रति थी। वे अपने भीतर पल-बढ़ रहे विचारों के कारण स्वयं को सबसे अलग-थलग महसूस करने लगीं। उनके विचार उनको दूसरों से दूर

करते जा रहे थे। इसीलिए चिकित्सा के काम की व्यस्तता के बावजूद, वे स्वयं को रचनात्मक कार्य में लगाये रहतीं, जिससे उन्हें एक आंतरिक शांति और आत्मसंतोष प्राप्त हुआ।

अव्यवसायिक :

एक डॉक्टर से जिस तरह की व्यवसायिकता की अपेक्षा की जाती है, वे उससे अलग तरह का व्यवहार अपने मरीजों से करतीं। डॉक्टर होकर भी कभी अपनी संवेदनाओं को रोक नहीं सकीं, अस्पताल में सबसे बड़ी अधिकारी होते हुए भी वैसा व्यवहार नहीं किया, इससे यह स्पष्ट होता है कि तसलीमा ने सदैव एक बेहतर इन्सान बनना चाहा है न कि कोई अधिकारी या कोई डॉक्टर। उनकी संवेदना समस्त मानव जाति के प्रति ही रही है, चाहे वह किसी भी ही धर्म, जाति या लिंग का हो। यह जीवन दृष्टि आगे चलकर भी कायम रही और वर्तमान में भी है, जिसे न समझ पाने के कारण ही आलोचकों ने उन पर विभिन्न प्रकार के आरोप मढ़े हैं।

चिकित्सक के रूप में 'वेस्कोटामी' और 'लाइगेशन कैम्प' में काम करते हुए तसलीमा पितृसत्ता की गहरी जड़ों से परिचित हुईं। उन कैम्पों में पुरुष चंद रुपयों के लिए अपनी स्त्रियों का लाइगेशन (गर्भाशय का ऑपरेशन) करा देते थे। वह महसूस कर रही थीं कि पति नाम का जीव अपने लिए तो सब कुछ कर सकता है लेकिन अपनी पत्नी के लिए नहीं। वह पत्नी के उपयोग और उपभोग किये जाने के किसी अवसर को नहीं छोड़ना चाहता है। इसके साथ ही चिकित्सा विभाग की भीतरी सच्चाइयों से भी परिचित हुईं। वह सदैव संपन्न की अपेक्षा विपन्न और असहाय लोगों की ओर अधिक आकर्षित होती थीं। उन्होंने कई बार प्रयास किया कि वह भी अन्य डॉक्टरों की तरह अपनी एक क्लीनिक चलायें लेकिन अपनी असफलता के विषय में वे लिखती हैं, "अपने नाम, डिग्री के साथ, मरीज देखने के समय के उल्लेख के साथ, मैंने साइन बोर्ड, 'अवकाश' के काले गेट पर टांग दिया है। जमान प्रिंटर्स से डॉक्टर के नाम का एक लेटर पैड भी छपा लायी हूँ। सारा इंतजाम कर

डाला। मरीज़ भी आने लगे हैं। लेकिन मोहल्ले के मरीज़ ! जाने-पहचाने चेहरे ! जब भी वे लोग डॉक्टर की फीस देने लगते हैं मेरा चेहरा शर्म से लाल हो उठता है।"⁶⁰

प्रेम से आगे निकलकर : समाज की विपरीत दिशा में

कुछ रचनात्मक करने के उद्देश्य से ही उन्होंने 'सुबह कविता परिषद्' नामक साहित्यिक संस्था का गठन किया। कविता पाठ के लिए आवृत्ति कलाकारों को एकत्रित किया और 'सकाल कविता परिषद्', 'मैमनसिंह साहित्य परिषद्' के संयोजन से बने 'सामूहिक सांस्कृतिक गुट' में सम्मिलित हो गयीं। इस साहित्यिक संगठन की ओर से कई कार्यक्रम आयोजित करवाए, जिसके कारण तसलीमा धीरे-धीरे बांग्लादेश के बड़े कवियों और रचनाकारों से परिचित होने लगीं और एक समय ऐसा भी आया जब बांग्लादेश ही नहीं भारत और विदेश के अन्य साहित्यकार भी उन्हें जानने लगे। व्यक्तिगत जीवन और प्रेम की कविताओं से आगे निकलकर तसलीमा ने झूठ, असमानता, स्वेच्छाचार, अनाचार, अत्याचार के खिलाफ संग्राम की कवितायें लिखनी प्रारम्भ की।

निरंतर साहित्य से जुड़े रहने के बावजूद वे अपनी क्षमता समझती थीं। उनकी राजनीति के बारे में विचारधारा भले ही परिपक्व नहीं हुई थी, किन्तु उन्होंने वैषम्यहीन समाज का सपना सँजोना शुरू कर दिया था। इस सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "मेरी जुबाँ पर राजनीति के मुश्किल-मुश्किल शब्द कम ही आते थे। समीक्षा विश्लेषण में भी मैं निहायत कच्ची थी। आर्थिक-सामाजिक शब्द का मतलब समझने में ही, मुझे काफी वक़्त लगता था। मैंने बेहद आसान शब्दों में जो बात समझी है वह है, स्वस्थ और खूबसूरत परिवेश तैयार करने के लिए, सभी लोगों के लिए रोटी-कपड़ा और मकान मौजूद हो; सबके लिए शिक्षा और स्वास्थ्य का इंतज़ाम हो। औरत मर्द को बराबरी का हक हो; संपत्ति का स्वस्थ बँटवारा हो। अंध श्रद्धा, गँवारपन, हिंसा, नृशंसता से समाज को मुक्त कराना चाहिए। इन समुचित कार्यों के लिए दक्ष और ईमानदार नेतृत्व की ज़रूरत है।"⁶¹

जैसे-जैसे वे प्रसिद्धि प्राप्त कर रही थीं, उनके व्यक्तिगत जीवन को लेकर लोगों की भौहें तनने लगी थीं। लेकिन तसलीमा ने इन तनी हुई भौहों की तनिक भी चिंता नहीं की। वे अपना जीवन अपने तरीके से जीना चाहती थीं, जिसमें किसी बाहरी व्यक्ति का कोई हस्तक्षेप न हो। वह सच्चे प्रेम की तलाश में थीं, जहाँ गृहस्थी बसाने के सपने न हों, बस स्वच्छन्दता और नितांत बन्धनहीन प्रेम हो। लेकिन यह प्रेम उन्हें कभी नहीं मिला। वह समझ चुकीं थी कि सामाजिक सम्बन्ध केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए ही बनाए जाते हैं और जैसे ही अपेक्षित लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है, पुरुष पल भर में ही सब कुछ भूल जाता है। नितांत बन्धनहीन, शर्तहीन प्रेम जैसी कोई चीज नहीं है और यदि है भी, तो प्राप्य नहीं है। जीवन के इन सब प्रसंगों और सीखों का प्रतिबिम्ब तसलीमा की कविताओं, आलेखों और उपन्यासों में भी देखा जा सकता है।

बांग्लादेश में धर्म को 'पारलौकिक मूली' बनाकर राजनीति आम - जन को किस तरह ठग रही थी, तसलीमा इसे अपनी आँखों से देख रही थीं। इस दुर्नीति की शिकार जनता और शिकारी नेताओं को सत्ता के लालच में अपना ईमान बेचते हुए देखा था और देश को धर्म के आधार पर खंडित होते हुए महसूस कर रही थीं। फिर भी वे सदैव देश के उज्ज्वल भविष्य की आशा बाँधे रहीं, "मैं किसी भी राजनीतिक दल की, किसी भी किस्म की सदस्य नहीं हूँ। लेकिन जिन लोगों ने यह प्रतिश्रुति दी है कि मुसीबत के ये दिन गुजर जायेंगे और हम किसी खूबसूरत भविष्य की ओर बढ़ने लगेंगे, उनपर अपना भरोसा टिकाकर, मैं एक संभावना के अंकुर की जड़ों को सींचने लगी, उसमें खाद पानी देने लगी।"⁶²

समय के साथ बांग्लादेशी राजनीति का रुख भी बदला। सत्ता को लेकर उहा-पोह के बीच बांग्लादेश ने क्रमशः शेख मुजीबुर्रहमान, जिया उर रहमान और तत्पश्चात् इरशाद की सरकार देखी। सत्ता के हस्तांतरण के साथ - साथ देश का इस्लामीकरण भी हो रहा था। जहाँ देश धीरे-धीरे धार्मिक कट्टरता की चपेट में आ रहा था, वहीं दूसरी ओर तसलीमा, धर्म की मुट्ठी से बाहर निकलने को व्याकुल हो उठीं थीं। उनके विचार उन्हें समाज के विपरीत धारा में बहा ले जा रहे थे। इन विचारों के

बल पर तसलीमा समाज को नई दिशा में जाता हुआ देखना चाहती थीं, किन्तु सरकार और समाज तो मध्य-युगीन सामन्तवादी सोच में गोता लगा रहे थे।

नजरो में चढ़तीं तसलीमा :

'सकाल कविता परिषद्' नाम से जिस प्रकाशन संस्था का प्रारम्भ तसलीमा ने किया था, उसी की ओर से 'निर्वासित भीतर-बाहर' नामक एक काव्य संग्रह 1989 में प्रकाशित हुआ। इस संकलन की कविता 'नियति' पर अश्लीलता का आरोप लगाकर प्रतिबंधित किये जाने की साजिश की गयी। यहीं से तसलीमा के विरुद्ध राजनीति और पुस्तकों पर प्रतिबंधों की श्रृंखला प्रारम्भ हुई। अपने साथ काम करने वाले लेखकों अबू हसन शहरयार, हासन रशीद, इलाल हाफ़िज़, सैय्यद शम्सुल हक़, मोजम्मल, नईम आदि के दुःचरित्र को सामने लाने पर कई लेखक उनके विरोधी हो गये। यहाँ तक कि तसलीमा विरोधी गुट भी बना लिया। इन लेखकों के सम्बन्ध में तसलीमा ने 'दूधराज कवि' कविता लिखी -

"इससे तो बेहतर है कुत्ता पाल लेना
धूर्त सियार तक मानता है पोस !
मैं भी दूध-केला खिलाकर, इतने दिनों
प्यार और उमंग से पालती रही, एक कवि !
मुझे डसकर
देखो, देखो, कैसे भाग रहा है, वही कवि !"⁶³

साथ ही, तसलीमा ने अपने समकालीन और वरिष्ठ लेखकों के विषय में उनके व्यवहार और चरित्र और लेखन आदि को लेकर आलोचना-प्रत्यालोचना तो की ही, उनके व्यक्तिगत जीवन को भी बिना किसी लाग-लपेट के अपने आलेखों में सम्मिलित किया। वे ऐसा क्यों करती हैं, इसे स्पष्ट करते हुए वे लिखती हैं, "ऐसा मैं इसलिए करती हूँ, ताकि लोगों को समझा सकूँ कि साहित्य जगत की

बड़ी-बड़ी रेहू-कातला मछली के आचरण में और पुरुष प्रधान किसी बदचलन मर्द के आचरण में बहुत ज्यादा फर्क नहीं होता।"⁶⁴

यथार्थ के धरातल पर लेखन : जीवन की घटनायें रचनाओं का विषय

1989 में बांग्लादेश की प्रतिष्ठित पत्रिका 'खबर कागज़' में उन्होंने कलाम (लेख) लिखना प्रारम्भ किया। इन कलामों में तसलीमा ने अपने जीवन के अनुभवों को ही विषय बनाया। वास्तव में, तसलीमा कल्पना के आधार पर साहित्य रचने में स्वयं को अक्षम पाती हैं। इसका कारण यह है कि उनके आस-पास ही इतना कुछ घटता रहा है और इसकी अभिव्यक्ति के लिए किसी प्रकार की फैंटेसी की ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई। अपने कलामों के कारण तसलीमा बांग्लादेश में प्रसिद्ध हो गयीं। किन्तु उनसे इर्ष्या करने वाले लोग भी सामने आने लगे। इनमें सबसे प्रमुख थे लेखक हुमायूं आज़ाद, सैयद हक़, फरहाद मजहर आदि। किन्तु इन विरोधियों की परवाह न करते हुए तसलीमा निरंतर लेखन-कार्य में लगी रहीं और आगे चलकर 'विद्याप्रकाश प्रकाशन' की ओर से एक अन्य काव्य संग्रह 'मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता' प्रकाशित हुआ। तसलीमा की रचनाओं के लिए अब ढाका पुस्तक मेले में हर वर्ष भीड़ उमड़ पड़ती थी। वे अब तक, एक जानी-पहचानी हस्ती बन चुकी थीं।

समाज की समझ :

तसलीमा अपने जीवन में पुरुष को गिरगिट की तरह रंग बदलते हुए देख रही थीं। रुद्र, नईम और मुहम्मद अली मीनार से विवाह और विच्छेद की घटनाओं ने उन्हें यह समझा दिया कि वह 'अगर कोई औरत मुट्ठी में आ जाए, तो कोई भी मर्द नहीं चाहता कि वह अपना सिर आजाद करके भाग जाए।'⁶⁵ लेकिन तसलीमा ने इस पुरुष रूपी गिरगिट से अपने सिर को स्वतंत्र कर लिया और ढाका में अकेले ही रहने का निर्णय किया। अपने साहित्यिक जीवन में तसलीमा पाठकों के बीच दिन-पर-दिन ख्याति प्राप्त कर रही थीं। लोग उन्हें एक साहसी स्त्री के रूप में पहचानने लगे थे। इस विषय में वे लिखती हैं, "मेरी रचनाएँ पढ़कर लोग मेरे बारे में यही राय कायम करते हैं कि मैं विलक्षण साहसी हूँ, मर्द-वर्द बिलकुल पसंद नहीं करती, मर्द को देखते ही, उसके गाल पर थप्पड़ जड़ देती हूँ,

तलपेट में लात जमाकर उसे चित कर देती हूँ। लेकिन आमने-सामने मैं बिलकुल भी वैसी नहीं हूँ। यह देखकर कोई-कोई शायद अवाक् या आहत भी होते हैं। ऐसे लोग अगर सुने कि मुझे मर्द के चाबुक खाने पड़ते हैं तो शायद बेहोश ही हो जाए।"⁶⁶ यह बात विशद रोष उत्पन्न करती है कि तसलीमा जब अपने व्यक्तिगत जीवन में पुरुषों से चोट खा रहीं थीं, तब उनकी निंदा की जा रही थी और पुरुषों द्वारा दी गयी उन्हीं चोटों को साहित्यिक जीवन में जब दिखाया तो उन्हें प्रशंसा मिली। समाज के इस दोहरे चरित्र को वह समझने लगी थीं।

प्रशंसा और आलोचना से सीख लेती तसलीमा :

ढाका जैसे शहर में अपनी गृहस्थी चलाने के लिए तसलीमा ने 'खबरकागज़' और 'आज का अखबार' के साथ-साथ 'पूर्वाभास' और 'अनन्या' पत्रिका में भी कलाम लिखना शुरू किया। इस बीच, उनका एक और काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ 'अतल में अंतरीप'। उन्होंने बांग्लादेश में भाषा को साम्प्रदायिक बनाये जाने के विरुद्ध आवाज़ उठाई और कहा 'भाषा का कोई धर्म नहीं होता'। इसके बाद, तसलीमा के पत्रिकाओं में छपे कलामों का संग्रह 'निर्वाचित कलाम' के नाम से पुस्तक के रूप में आया, जिसे अत्यधिक प्रशंसा मिली। इस प्रशंसा के साथ-साथ तसलीमा के विरोधी गुटों ने उनके विरुद्ध अपना वार तेज़ कर दिया। 'सुगंधा' जैसी पत्रिका में तसलीमा के विषय में अफवाहों के आधार पर कई उलटी-सीधी बातें देखकर उनके पिता ने उन्हें काफी पीटा और घर में कैद कर दिया। छोटी-छोटी पत्रिकाएँ तसलीमा की रचनाओं से अधिक उनके व्यक्तिगत जीवन और चरित्र में अधिक रुचि ले रही थीं। तसलीमा को इसके कारण काफी समस्याओं का सामना करना पड़ा। पिताजी और परिवार के सदस्यों के साथ उनके सम्बन्ध खराब हो गये।

तसलीमा समझ चुकी थीं कि उनकी बेइज्जती और आलोचना का अब कोई अंत नहीं बल्कि यह तो एक प्रारम्भ है। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि अब वह जीवन-भर सड़क के बीचों-बीच ही चलेंगी, बिना किसी की परवाह किये अर्थात् उन्होंने अब किसी ऐसे नियम और परम्परा का पालन न

करने का निर्णय लिया, जिनका सम्बन्ध उनके स्त्री होने से हो। इसी बीच बांग्लादेश आयी कैरोलिन राईट नामक अमेरिकी कवियत्री से उनकी भेंट हुई। वे तसलीमा की कविताओं पर ही काम कर रहीं थीं और उनकी कविताओं का अनुवाद भी किया।

व्यक्तित्व का नकारात्मक पक्ष :

उनके पहले पति रुद्र मुहमद की 1991 में मृत्यु हो गयी। रुद्र की मृत्यु को लेकर तसलीमा पर ही आरोप लगाये गये। तसलीमा सबको माफ़ करती रहीं। उनके स्वभाव में ही जैसे माफ़ करना बस गया था। अन्यथा, उनको छोड़ कर चले जाने वाले रुद्र, उनके विरुद्ध साजिश करने वाले दूसरे पति नईम और उनको मारने-पीटने वाले तीसरे पति मीनार से वह बार-बार नहीं मिला करतीं और न ही शारीरिक सम्बन्ध बनातीं। उन्हें इस बात का एहसास था कि यह उनके व्यक्तित्व का एक नकारात्मक पक्ष है। लेकिन इस स्वभाव से वे मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकीं।

यौन-स्वतंत्रता सम्बन्धी सोच :

तसलीमा ने 'समाज के हजारहा असंगत और तर्कहीन नियम से इनकार करने की तरह, यह नियम भी अस्वीकार कर दिया था कि 'अगर कोई एक स्त्री की देह छुए तो वह सड़ जाती है'। तसलीमा ने अपनी शारीरिक जरूरत को पूरा करना गलत नहीं समझा। उनकी 'यौन स्वतन्त्रता' और 'यौन शुचिता' सम्बन्धी सोच यहीं से उपजी। उनका मानना था कि कोई भी स्त्री कई पुरुषों से संपर्क बनाते हुए भी अपनी शुचिता को बरकरार रख सकती है। क्योंकि यह देह उसकी है और इससे सम्बंधित निर्णय लेने का अधिकार भी केवल उसी स्त्री का ही है। तसलीमा लिखती हैं, "मैंने तोड़ डाली है जंजीर ! पान से पोछ दिया है संस्कारों का चूना !" ⁶⁷

इन सबके बीच उनकी रचनाओं का प्रकाशन उपन्यास - 'शोध', 'अपरपक्ष'; कलामों का संग्रह 'नष्ट लड़की, नष्ट गद्य' और एक कविता संग्रह 'बालिका की लक्ष्यच्युती' के रूप में जारी रहा। इन सभी रचनाओं में तसलीमा ने 'स्त्री' को ही केंद्र में रखा। समाज और परिवार के नियमों को तोड़कर

बाहर निकलने की अकुलाहट इन रचनाओं में दिखती है। इन रचनाओं के कारण तसलीमा अब केवल ढाका ही नहीं उसके बाहर पूरे बांग्लादेश और भारत में भी प्रसिद्ध हो चुकी थीं। उनके गीतों के अनुवाद के साथ-साथ उनका प्रसारण भी किया जाने लगा। इन गीतों को बंगाल के बड़े-बड़े गायकों समीन नबी, आलमगीर आदि ने आवाज़ दी। उन्हें विभिन्न कार्यक्रमों में आमंत्रित किया जाने लगा।

कट्टरतावादियों की बर्बरता और तसलीमा की बढ़ती निश्चयता :

इस्लाम धर्म और कुरान की आलोचना करने के कारण धार्मिक कट्टरतावादी उनके विरोध में उठ खड़े हुए। इसी कारण 'पूर्वाभास' पत्रिका के कार्यालय पर हमला कर तोड़-फोड़ की गयी, यहाँ तक कि उनके प्रकाशकों को धमकाया जाने लगा, उनपर मुकदमा किया गया। इन घटनाओं ने तसलीमा को भीतर तक झकझोर दिया। उन्होंने यह कल्पना नहीं की थी कि उनके लेखन के कारण कट्टरवादी इस तरह भड़क उठेंगे। किन्तु तसलीमा यह भी अच्छी तरह जानती थीं कि उन्होंने अपनी रचनाओं में कुछ भी गलत नहीं लिखा है। इसलिए उन कट्टरवादियों से भले ही कुछ प्रकाशक भयभीत हो गये, किन्तु तसलीमा ने किसी प्रकार का कोई भी समझौता किये बिना अपना लेखन जारी रखा। अपने लेखन के इसी क्रम में उन्होंने बांग्लादेश के लेखक गिरीन्द्र शेखर बसु⁶⁸ की पुस्तक 'लाल-कालो' का पुनः संस्करण निकाला। उनकी लेखन शक्ति का ही परिणाम था कि उन्हें 'निर्वाचित कलाम' के लिए बांग्ला भाषा का सबसे उत्कृष्ट 'आनंद पुरस्कार' (1992) देने की घोषणा की गयी।

उनकी कविता का अंग्रेजी अनुवाद 'लाईट अप ऐट मिडनाईट' नाम से, लन्दन में रहने वाले लेखक फजलूल आलम कर रहे थे। जहाँ एक ओर उनके प्रशंसकों की संख्या बढ़ रही थी वहीं कट्टरवादियों ने तसलीमा विरोधी गुट बनाना प्रारम्भ कर दिया। और इन्हीं गुटों में से एक 'तसलीमा नसरीन पेषण कमेटी' ने 17 फ़रवरी 1992 के ढाका पुस्तक मेले में उनकी पुस्तकों को जला दिया और तसलीमा पर हमला करने का प्रयास किया। तसलीमा इस समय दो विपरीत स्थितियों के मध्य झूल रही

थीं, जिसके सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "इधर मुझे उछाल फेंकने और पीसकर मार डालने की साजिश चल रही थी, दूसरी तरफ अनगिनत पाठक मेरी एक झलक भर पाने के लिए मेले में आते रहते हैं।"⁶⁹

काला दिवस : साहित्यिक जीवन का टर्निंग प्वाइंट

तसलीमा अपने लेखन के कारण, साहित्यिक जगत के खास लोगों के बीच से निकलकर आम पाठकों तक भी अपनी पहुँच बना चुकी थीं। किसी देवी-देवता में विश्वास न रखने वाली तसलीमा अपने लेखन के कारण बांग्लादेशी स्त्रियों के लिए देवी समान हो उठीं थीं। विरोधियों ने आरोप लगाया चूँकि तसलीमा मुसलमानों के खिलाफ लिखती हैं, इसलिए 'आनंद बाज़ार' पत्रिका ने उन्हें यह पुरस्कार दिया, बांग्लादेशी कट्टरवादियों ने उनपर 'रॉ' का एजेंट होने का आरोप लगाये। बेहया, बदचलन, रचनाएँ पोर्नोग्राफी हैं, यौनता की रानी जैसे न जाने कितने आरोप लगाये गये। हद तो तब हो गयी जब लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता का दावा करने वाली सरकार ने तसलीमा पर निगरानी रखने के लिए विशिष्ट जाँच दल की नियुक्ति कर दी। इस बीच 'साध्वी' पत्रिका में उनकी 'माधवी का जीवन' कहानी प्रकाशित हुई और एक अन्य उपन्यास 'निमंत्रण' का भी प्रकाशन हुआ।

6 दिसंबर 1992 का काला दिवस भी आ पहुँचा। ढाका मेडिकल कालेज में लाशों और घायलों की कतार ने 'बाबरी मस्जिद ध्वंस' के भयंकर दुष्परिणाम की सूचना दे दी थी। तसलीमा अपनी आँखों से देखकर भी विश्वास नहीं कर पा रही थीं कि धर्म के नाम पर इंसान इस हद तक गिर सकता है। इस सम्बन्ध में तसलीमा लिखती हैं, "मनुष्य की मनुष्यहीनता की वजह से, मेरा इंसान होने का परिचय, मानो मुझ पर व्यंग कर रहा हो... मैं धर्म नहीं मानती; मैं प्रगतिशील आन्दोलन से जुड़ी हुई हूँ; मेरे ज्यादातर दोस्त धर्महीन हैं... देश के कल्याण के लिए मैं दिन-रात सोचती रहती हूँ। लेकिन इस साम्प्रदायिक आतंक ने मुझे तोड़कर रख दिया; मेरे आदर्श टूट-फूट गये हैं।"⁷⁰

इस घटना के बाद स्वयं को कुछ भी करने में असहाय महसूस करते हुए, तसलीमा ने कलम को ही अपना हथियार बनाया। बांग्लादेश में घट रही विभिन्न साम्प्रदायिक घटनाओं के आधार पर,

अपने हृदय में उठ रहे आवेगों को अभिव्यक्ति देते हुए बांग्ला समाचार पत्रों 'एकता', 'संवाद', 'आज का अखबार', 'सुबह का अखबार' आदि के समाचारों के आधार पर उन्होंने 'लज्जा' उपन्यास लिख डाला, जो 1993 में 'पर्ल पब्लिकेशन' की ओर से प्रकाशित हुआ। हालाँकि यह तथ्यों पर आधारित उपन्यास था और तसलीमा का मानना है कि यह उपन्यास कोई रस नहीं देता, किन्तु यह उपन्यास तसलीमा के जीवन का 'टर्निंग प्वाइंट' बन गया जो नयी राहों, नयी समस्याओं और नई चुनौतियों को लिए खड़ा था। उन्हें इसके कारण अभूतपूर्व प्रशंसा और आलोचना का शिकार होना पड़ा। इसके बाद उन्हें भारत जाने की अनुमति नहीं दी गयी। उनका पासपोर्ट भी जब्त कर लिया गया। फ़रवरी 1993 में ढाका में आयोजित पुस्तक मेले में कट्टरवादियों ने तसलीमा पर हमला कर दिया और उनकी कई किताबें जला दी गयीं, जिसमें लज्जा भी सम्मिलित थी। तसलीमा का जीवन अब संकट में था और यह संकट कट्टरवादी संगठनों द्वारा खड़ा किया गया था।

जुलाई 1993 में 'लज्जा' को सरकार की ओर से, जनमानस में विभ्रान्ति और विभिन्न सम्प्रदायों के बीच ग़लतफ़हमी फैलाने और उत्तेजना पूर्ण तथा उकसाने वाले वक्तव्य के प्रयोग का आरोप लगाते हुए, निषिद्ध कर दिया गया। इस बार सरकार खुलकर तसलीमा विरोध में आ खड़ी हुई। इस थोपी हुई आपदा से तसलीमा को कोई पार नहीं मिला। परिणामस्वरूप लेखन के लिए किसी भी प्रकार की अनुमति लेने के झंझट से मुक्ति के लिए और साहित्य को अधिक समय देने के उद्देश्य से, लेखन को अपना अंतिम साध्य और साधन मानते हुए तसलीमा ने मेडिकल अधिकारी के पद से इस्तीफ़ा दे दिया।

इस बीच तसलीमा ने 'आनंदलोक' पत्रिका के लिए 'फेरा' नामक एक लम्बी कहानी, 'शोध' और 'भ्रमर कहियो जाकर' के साथ 'निमंत्रण' नामक उपन्यास, 'दुखियारी लड़की' कहानी संग्रह और 'चार कन्या' उपन्यास के साथ 'छोटे-छोटे दुःख' कलामों का संग्रह भी लिखा और 'भात का मांड दो' नामक कविताओं का संग्रह भी संपादित किया। 'लज्जा तथा अन्यान्य' नामक किताब का सम्पादन

भी किया, इसमें लज्जा के विषय में अन्य लेखकों ने कुछ भी जो लिखा, उसका संकलन किया गया। तसलीमा यह समझ चुकी थीं कि वे कट्टरवादियों की गतिविधियों की ओर जितना अधिक ध्यान देंगी उतना ही उनका लेखन प्रभावित होगा। अतः जैसे-जैसे कट्टरवादियों के हमले तेज हो रहे थे, तसलीमा की अपने लेखन के प्रति प्रतिबद्धता उतनी ही बढ़ती गयी।

इस बीच, फ्रांस के 'आर्ते टेलीविजन' के प्रयास से तसलीमा को उस धार्मिक और राजनीतिक झंझावात से निकलकर कुछ दिनों तक फ्रांस जाने का अवसर प्राप्त हुआ। पहली बार किसी यूरोपीय देश को देखकर तसलीमा अचरज से भर उठीं। वहाँ उन्होंने विभिन्न टी.वी. और रेडियो कार्यक्रमों में भाग लिया और कई साक्षात्कार दिए, 'लज्जा' पुस्तक का फ्रांसीसी अनुवाद भी किया जाना प्रारम्भ हुआ। वहाँ जाकर तसलीमा का मन बार-बार पश्चिमी और पूर्वी देशों की तुलना कर उठता। वहाँ के स्वच्छंद माहौल को देखकर तसलीमा का मन भी इस इच्छा से भर उठा कि बांग्लादेश में भी इसी तरह की स्वतंत्रता और समानता से भरा वातावरण होना चाहिए। जाति-भेद, वर्ग-भेद को मिटा देना चाहिए।

फ्रांस में कुछ दिन व्यतीत करने के बाद वे बांग्लादेश में समता, शिक्षा और विकास का सपना लेकर वापस तो आयीं, किन्तु वे इस बात से अनभिज्ञ थीं कि उनका अपना देश उन्हें पुनः विदेश भेजने की तैयारी कर रहा था। उनके कभी लौट कर न आने का परिवेश ढाका में तैयार किया जा रहा था। इसी बीच, 9 मई 1994 को कलकत्ता के 'दि स्टेट्समैन' अखबार में तसलीमा का एक साक्षात्कार प्रकाशित हुआ, जिसमें यह लिखा गया कि तसलीमा कुरान में संशोधन करना चाहती हैं। यह खबर बांग्लादेश के अखबारों में भी प्रकाशित की गयी। जिसके बाद वहाँ तसलीमा विरोध का बड़ा तांडव प्रारम्भ हो गया। लोगों को भड़काने के लिए उनके नाम से गलत बातें प्रकाशित की जाने लगीं। इस्लामी ऐक्य गुट ने तो उनपर आरोप का लंबा-चौड़ा आरोप-पत्र तैयार कर लीफलेट के रूप में बाज़ार, मस्जिद, गलियों सड़कों पर चिपका दिया।

उनके शुभचिंतक उन्हें देश छोड़ने की सलाह देने लगे। क्योंकि फतवाबाज़ उनपर कभी भी हमला कर सकते थे। लेकिन, तसलीमा अपना देश छोड़कर कहीं भी जाने को तैयार नहीं हुई। अपना भय काफी पहले ही पीछे छोड़ चुकी तसलीमा के भीतर भय एक बार फिर जाग उठा। उन्हें भय था, अपने सपनों के खत्म हो जाने का, भय था अपने देश में कट्टरवादियों की विजय का, भय था, सत्य के हार जाने का। इसी कारण, देश को अकेला, यूँ कट्टरवादियों के हाथों में छोड़कर केवल अपना जीवन बचाकर भागना उन्होंने उचित नहीं समझा। वे लिखती हैं, "एक संभावना को कुचल पीसने का प्रयास किया जा रहा है, दुर्जनों के हाथ से, मैं वह संभावना छीन लाना चाहती हूँ।"⁷¹ स्पष्ट है कि तसलीमा यह समझ रही थीं कि उन्हें भीतर से कमजोर करने की साजिश की जा रही थी, जिससे थक-हार कर वे माफ़ी माँग लें। लेकिन माफ़ी माँगने के बजाय उन्होंने प्रत्येक क्षण अपने भीतर सकारात्मक ऊर्जा बनाये रखी।

अँधेरे दिन :

4 जून 1994 को तसलीमा के जीवन के सर्वाधिक कष्टमय दिनों की शुरुआत हो गयी। सरकार की तरफ से नुरुल आलम नामक किसी अफसर ने तसलीमा के खिलाफ क़ानून की धारा 295(क) के तहत मुकदमा दायर किया। उनपर धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने का आरोप लगाते हुए सरकार की ओर से तसलीमा की गिरफ्तारी का वारंट जारी कर दिया गया। इस गिरफ्तारी और कट्टरवादियों के हमले से बचने के लिए तसलीमा को दो महीने तक भूमिगत जीवन बिताना पड़ा। तसलीमा इस भूमिगत होने के दिनों को ही 'अँधेरे दिन' कहती हैं। किन्तु ये 'अँधेरे दिन' केवल उनके जीवन में ही नहीं आये थे, बांग्लादेश में भी धर्म का गहरा अन्धेरा छा गया। इन दो महीनों (4 जून से 4 अगस्त, 1994) में तसलीमा के लेखन और उनके स्वतंत्र जीवन पर ही नहीं बांग्लादेश के समाज और राजनीति पर भी ग्रहण लग गया। हर कोई जैसे तसलीमा के नाम पर ही थम गया था। सबकी नज़रें तसलीमा को ही खोज रही थीं। सभी इस बात का इंतज़ार कर रहे थे, यह देखने को आँखें गड़ाए बैठे थे कि देखते हैं तसलीमा का क्या अंजाम होता है? सदैव बांग्लादेश के विकास और समता की

बात करने वाली तसलीमा के पक्ष में बोलने का साहस किसी के भीतर नहीं था। सरकार वोट के लालच में अपना मुँह सिले बैठी थी और दूसरी तरफ तसलीमा अपने जीवन को बचाने के लिए एक जगह से दूसरी जगह शरण ढूँढती, छिपती फिर रही थीं। इन दिनों ने तसलीमा को जीवन का असली चेहरा दिखा दिया था। जिन लोगों से उन्हें आशा थी उन्होंने भी भय के कारण तसलीमा की सहायता करने से इनकार कर दिया, उनके पक्ष में लिखना बंद कर दिया, और तो और कुछ लोग सरकार और कट्टरवादियों के गुट में जा मिले थे।

आखिरकार यूरोपीय देशों एवं अमेरिका आदि के दबाव के बाद तसलीमा को बांग्लादेश छोड़कर जाने की शर्त पर, जमानत मिल गयी। न चाहते हुए भी अपने सपनों को कुछ समय के लिए भूलकर उन्हें स्वीडन जाना पड़ा। वे लिखती हैं, "कोई लेखक अपने लेखन के जुर्म में अपनी अभिव्यक्ति के अपराध में चरम निर्वासन का दंड झेलता रहे और समूचा देश महज टुकुर-टुकुर देखता रहे, कोई ऐतराज नहीं उठाएगा? मैं तो मन में यह सपना लिए जा रही हूँ कि देश के बोध-बुद्धि संपन्न लोग, यह बात हरगिज़ नहीं मानेंगे कि किसी लेखक को अपने लेखन के जुर्म में निर्वासित होना होगा... जिस तरह अपना चेहरा ढँककर, सिर झुकाकर, चरम असम्मान के साथ, अपना नाम-परिचय छिपाकर देश से निकलना पड़ रहा है, मैं उस तरह नहीं लौटूँगी... लेखक के अधिकार के साथ लौटूँगी।" लेकिन तसलीमा को उस समय यह बात मालूम नहीं थी कि उनका वापस आना अब कभी भी नहीं हो पाएगा। जिस देश के लिए वह लिखती रहीं, जिसके लिए अपना जीवन संकट में डाल दिया और जिस पर विश्वास किया, उसी देश ने उन्हें आजीवन निर्वासित रहने के लिए छोड़ दिया। वे बड़े ही मार्मिक ढंग से लिखती हैं- 'भगवान न करे, किसी को भी अपना देश छोड़ने के लिए लाचार होना पड़े।'

(ग) रचनात्मक व्यक्तित्व : निर्वासन के पश्चात्

"वैसे तो हर व्यक्ति को जीवन में मृत्यु-पर्यंत किसी-न-किसी रूप में संघर्ष करना ही पड़ता है लेकिन तसलीमा को तो बचपन में ही ऐसे हादसे झेलने पड़े कि उसका प्रारंभिक जीवन ही कुंठित हो

गया। यौवन की दहलीज़ पर उसे ऐसा निर्वासन मिला कि पुनर्वास की कोई सूरत भी बनती दिखाई नहीं पड़ती। ऐसे व्यक्ति को जब निर्वासन में भी अपने मनोनुकूल जगह रहने के लिए सुलभ न हो, तो उसकी पीड़ा और उसका संघर्ष कैसे उसकी आत्मा को नोचने वाला हो जाता है, इसे कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है। इस सबब में तसलीमा का संघर्ष समय के साथ कम होने के बजाय बढ़ता और गहराता ही गया है।⁷²

तसलीमा के जीवन के साथ-साथ लेखन को भी निर्वासन के आर-पार के रूप में विभक्त करके देखा जाना इसलिए आवश्यक हो जाता है क्योंकि इससे यह समझा जा सकता है कि जो लेखिका निर्वासन से पूर्व अपने देश, अपने समाज के बारे में लिख रही थी, उसी लेखिका को उसके देश से निष्कासित किये जाने के बाद उसके लेखन के स्वरूप में, विषय में, उद्देश्य में क्या-कुछ परिवर्तन आया? क्या वह लेखिका धर्म और पितृसत्ता द्वारा गढ़ी राजनीतिक चालों के आगे हार मान गयी या फिर विदेशी धरती पर जाकर अपने देश को भूल गयी या स्वयं के दुखों में ही खोकर रह गयी?

साहित्यिक चिंतन के दायरे में विस्तार :

निर्वासन के बाद के तसलीमा के साहित्य पर यदि दृष्टि डाले तो यह स्पष्ट होता है कि उपरोक्त में से कुछ भी तसलीमा के साथ नहीं हुआ। बल्कि एक लेखिका के रूप में, एक समाजिक चिन्तक के रूप में उनके लेखन का दायरा बढ़ता ही गया है। उन्होंने विदेशी धरती पर भी बांग्ला भाषा को हथियार बनाते हुए उसी तीक्ष्णता बल्कि कह सकते हैं, उससे भी अधिक तीक्ष्णता के साथ अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति की।

निर्वासन के कई नुकसान तो थे ही किन्तु रचनात्मकता के सन्दर्भ में उन्हें एक फायदा यह हुआ कि उन्हें लिखने और काम करने का एक वृहद् 'प्लेटफार्म' मिला। अब उनके लेखन में पूरी दुनिया के प्रति चिंता दिखाई देने लगी। स्त्री जाति किसी देश में नहीं अपितु समस्त विश्व में शोषण की शिकार है यह उन्हें पहली बार महसूस हुआ। हाँ! इसका रूप अलग-अलग परिवेश के अनुसार भिन्न

जरूर हो सकता है। विदेशी धरती पर उन्होंने अपने देश की महक को कभी भी खोने नहीं दिया उसे बांग्ला भाषा के रूप में सदैव अपने साथ संजोये रखा। निर्वासन के बाद तसलीमा की कई रचनाये आयीं - आत्मकथा के सभी खंड, 'कुछ गद्य कुछ पद्य', औरत का कोई देश नहीं। इन रचनाओं में तसलीमा ने अपने विचारों और पुख्तगी के साथ रखा इसके अतिरिक्त उनके लेखन में केवल बांग्लादेश ही नहीं एशिया, यूरोप, अमेरिका और दक्षिण पश्चिमी देशों ईरान, ईराक, फिलिस्तीन आदि की समस्याओं का भी जिक्र दिखाई पड़ने लगा।

नई दुनिया के बीच :

निर्वासन के बाद स्वीडन पहुँचकर तसलीमा ने एक नई दुनिया देखी। अभिव्यक्ति की अपार स्वतंत्रता, समानता, कट्टरतावादियों का कोई नाम तक नहीं, धर्म मानने या न मानने की स्वतंत्रता आदि। यह सब देख, तसलीमा अपने देश के लिए अफ़सोस से भर गयीं। उन्हें इस बात का अत्यधिक कष्ट हुआ कि उनका देश अपने नागरिकों के लिए ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं कर पा रहा है? वहाँ रहते हुए कई बड़े-बड़े लेखकों, साहित्यकारों, कलाकारों और राजनीतिज्ञों से उनकी भेंट हुई। तसलीमा ने उनसे बहुत कुछ सीखा। विदेशी धरती पर लेखन को एक व्यवसाय मानने की प्रवृत्ति देखकर उन्हें आश्चर्य तो हुआ किन्तु उन्होंने इसकी प्रशंसा भी की, क्योंकि पूर्वी देशों में भले ही लेखक के अन्दर ख्याति प्राप्त करने और रुपए कमाने की लालसा होती है किन्तु वह उसे नैतिक रूप से कभी भी स्वीकार नहीं करता। वे लिखती हैं, "...भारतीय उपमहादेश में ये त्यागी आदर्श काफी कुछ मैसोकिज्म जैसा है। अपने को आराम-ऐश से वंचित करना, अपने को तकलीफ देना-इस पार मैसोकिज्म को मानसिक रोग माना जाता है।"⁷³ तसलीमा ने बांग्लादेश में रहते हुए ही कई बार यह बात स्वीकार की कि वे अपना घर चलाने के लिए लिखती हैं। लेकिन वह भी पूर्वी देशों के लेखकों की तरह लेखन के सम्बन्ध में व्यावसायिक होने में संकोच करती हैं। यूरोप में उनका यह स्वभाव बार-बार सामने आ जाता था, जिसे उनके कुछ साथी पसंद नहीं करते थे। लेकिन तसलीमा लेखन के सम्बन्ध में गैर-व्यावसायिक होना ही ज्यादा पसंद करती हैं।

स्वीडन में तसलीमा का भव्य स्वागत भले ही हुआ, किन्तु कड़ी सुरक्षा के बीच रहते हुए यह महसूस किया कि उन्होंने अपनी स्वतंत्रता खो दी है। तसलीमा की 'आज़ादी को धर-पकड़कर बक्सा बंद कर दिया गया'। ऐसे में विभिन्न प्रकार के नियमों के बीच रहते हुए काफी समय तक उनके लिए लिखना संभव नहीं हो पाया।

विभिन्न नामी-गिरामी पत्रिकाओं जैसे 'एक्सप्रेसन', 'डगेनस नेइहेटर', 'न्यूयार्कर' आदि की ओर से उन्हें लिखने के लिए आमन्त्रण मिल रहे थे, विभिन्न कार्यक्रमों के भी आमन्त्रण मिले जैसे - नार्वे में इंटरनेशनल पार्लियामेंट ऑफ़ राइटर्स के सम्मलेन में आमंत्रण। इस संस्था ने 'रिपोर्टर्स सां फ्रंटियर्स' के साथ मिलकर उनके पक्ष में यूरोप के बीस देशों की बीस पत्रिकाओं में हर रोज बीस मशहूर लेखकों के तसलीमा के नाम लिखे गये खत प्रकाशित किये। उस सम्मलेन में तसलीमा को 'पेन क्लब' की ओर से 'कुर्ट टुखोलस्की' पुरस्कार दिया गया। अमेरिका के कई लेखकों ने पत्रिकाओं में तसलीमा के नाम खुली चिट्ठियाँ उस समय लिखी थीं (जब वे बांग्लादेश में अपनी जान बचाने के लिए भूमिगत हो गयी थीं)। इन पत्रों का संकलन पुस्तक के रूप में किया गया और उसका हिंदी अनुवाद 'प्रिय तसलीमा नसरीन' के नाम से बाद में प्रकाशित भी हुआ। इन पत्रों में सलमान रुश्दी, दक्षिण अफ्रिका की नोबेल पुरस्कार प्राप्त लेखिका नादिन गार्डीमर, बात इयोर, अमेरिका की सुजान सटांग, आस्ट्रिया की एल्फ्रिड इएलिनेक, जर्मन लेखक एरिख ल्येस्ट जैसे प्रतिष्ठित साहित्यकारों के पत्र भी सम्मिलित थे। तसलीमा ने इन सभी खतों का उत्तर एक पत्र में लिखा, जिसमें इन सभी लेखकों को धन्यवाद देते हुए यह अफ़सोस व्यक्त किया कि अपार संभावनाओं के साथ जन्म लेने वाले बांग्लादेश की दुर्दशा का कारण वहाँ कट्टरपंथियों का राज है। यह राज समाप्त होने पर ही बांग्लादेश प्रगति की सीढ़ियों पर आगे बढ़ सकेगा। उन्होंने यह भी लिखा कि साहित्यकार ही सच्चे अर्थों में अपने देश की बुराइयों से सभी को परिचित करा सकता है। उनका कहना है, "मेरा दृढ़ विश्वास है कि साहित्यकार-कलाकार ही समाज के शरीर से सड़ा-गला कूड़ा-कर्कट हटाने की ज़रूरत महसूस करते हैं, वे लोग ही अँधेरा चीरकर गुच्छा-गुच्छा उजाला लाते हैं।"⁷⁴

स्वीडन में तसलीमा का लोगों से मिलने-मिलाने के साथ बड़ी-बड़ी साहित्यिक सभाओं, सम्मेलनों में भाग लेना, अपनी पुस्तकों के अनुवाद कार्य को देखना आदि चलता रहा। वे साहित्यिक गतिविधियों में प्रतिभाग करने, व्याख्यान देने और पुरस्कार प्राप्त करने हेतु विभिन्न यूरोपीय देशों में आमंत्रित की गयीं। यथा - 'पुर्तगाल इंटरनेशनल पालियामेंट ऑफ़ राइटर्स' ट्रेडहेडम विश्वविद्यालय में मानवाधिकार के बारे में भाषण, नार्वे की मानववादी संगठन द्वारा 'ह्यूमन 'एटिस्क फॉरवुड' मानववादी पुरस्कार, स्कैंडेनेवियन देशों में सबसे बड़े पुस्तक मेले के उद्घाटन के लिए गोथेनबर्ग आमन्त्रण, अन्तर्राष्ट्रीय पेन क्लब की तरफ से प्राग, चेक गणराज्य के लेखक सम्मलेन में प्रतिभाग, पेन क्लब फिनलैंड के कार्यक्रम में प्रतिभाग, फ्रांस के टेलीविजन पर 'बोर्नार्ड पीभो' के कार्यक्रम में प्रतिभाग, 'द फाम' संगठन की ओर से 'ए डिक्ट द नान्त' पुरस्कार, फ्रेंच सरकार की तरफ से 'प्री द द्रोया दे लोम' मानवाधिकार पुरस्कार, पेरिस विश्वविद्यालय में व्याख्यान, आस्ट्रिया की तरफ से आमंत्रण, स्विट्जरलैंड की मानवाधिकार संस्था की ओर से आमंत्रण, जहाँ उन्हें 1994 का 'सखारोव पुरस्कार' दिया गया, एमनेस्टी इंटरनेशनल की तरफ से आमंत्रण पर स्काटलैंड, आयरलैंड, हालैंड, इटली में व्याख्यान दिया, जर्मनी की ओर से आमंत्रण, अमेरिका की 'इंटरनेशनल अकादमी ऑफ़ हुमैनिज्म' की ओर से 'हुमैनिस्ट लारियेट' की उपाधि, हर्बर्ट विश्वविद्यालय में व्याख्यान, इटली, बर्लिन, वेनिस, टुरिन, फ्लोरेंस, रोम आदि का भ्रमण और वहाँ पर व्याख्यान, बेल्जियम के घेंट विश्वविद्यालय की ओर से डॉक्टरेट की उपाधि, राष्ट्रसंघ के सम्मलेन में भाषण हेतु आमन्त्रण, कनाडा के टोरंटो विश्वविद्यालय में व्याख्यान, फ्रांस की राष्ट्रीय संसद में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया, फ्रांस के फिल्म प्रोड्यूसर क्लाद माइजेर ने अपनी फिल्म प्रोडक्शन संस्था की तरफ से चित्र नाट्य के लिए स्क्रिप्ट लिखने के लिए फ्रांस के मूलादंदे में आमंत्रित किया। फ्रेंच संस्कृति कार्यालय से स्कालरशिप, फ्रांस के ह्यूमैनिस्ट और एथिकल यूनियन की तरफ से मानववादी पुरस्कार, ब्राजील के पावलो विश्वविद्यालय में व्याख्यान हेतु आमंत्रण, यूनेस्को की ओर से नारीवाद और मानवतावाद पर बोलने के लिए आमंत्रण, अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय में व्याख्यान, आदि।

देश से निष्कासित किन्तु देश के लिए समर्पित :

विदेशी धरती पर रहते हुए तसलीमा का अपने देश के प्रति लगाव और अधिक बढ़ता गया है। किन्तु इस लगाव के बावजूद उनकी इस समय की रचनाओं में देश की आलोचना का कहीं भी अभाव नहीं दिखता। इस आलोचना का उद्देश्य किसी की निंदा करना नहीं बल्कि उन कमियों की ओर इंगित करना है जो उनके देश को कमजोर बना रही हैं।

'लास एंजिल्स टाइम्स' और 'ग्लोबल एंड मेल' पत्रिकाओं ने उनकी आत्मकथा के प्रथम खंड 'मेरे बचपन के दिन' को वर्ष 2002 की श्रेष्ठ 'नॉन-फिक्शन' की सूची में शामिल किया। यहाँ उनका जीवन भले ही व्यस्तता से भरा रहा हो किन्तु अन्दर ही अन्दर उनमें एक प्रकार की निःसंगतता राज कर रही थी। वे लिखती हैं-

"...अब भी, लौटा लो मुझे,

अब भी, मुझे धूल-रेत, नदी, हवा, सरसों खेत और ब्रम्हपुत्र दे दो मुझे !

अब भी, दे दो मुझे नलथान, लिपा-पुता आंगन,

हाथ पंखे की हवा, टिन की छादन की रिमझिम,

झींगुर की शोर भरी वर्षा,

धुँआ उठते भात में मागुर मछली, धनिया पत्ती का शोरबा !

अभी भी, स्कैंडीनिविया की देह से हटा लो, छूने को उन्मुख मेरी जड़ें !"⁷⁵

तसलीमा को पश्चिम में 'रेडिकल नारीवादी' के रूप में पहचान मिली। वे जैसे-जैसे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करती जा रही थीं, उनके जीवन और लेखन के सम्बन्ध में जिज्ञासाओं के साथ अनुसन्धान और अन्य विभिन्न कार्य जोर पकड़ते जा रहे थे। मसलन, पीटर पिंगस्की नामक लेखक ने तसलीमा पर जर्मन भाषा में किताब लिखी, हेलेन सिक्रूस ने फ्रांस में तसलीमा पर एक नाटक लिखा, मारसेइ की स्त्रियों ने तसलीमा के समर्थन में एक किताब लिखी, फ्रेडरिक एल्फ्राय, जर्मनी के

टीवी स्टेशन जी.डी.ऍफ और बी.बी.सी. ने तसलीमा पर वृत्तचित्र निर्मित किये, प्रख्यात जाज़ संगीतज्ञ स्टीव लेसी और गायिका इरेन एबिर ने उनकी कविताओं को गीत का रूप दिया और 'दि क्राई' के नाम से संगीत एल्बम भी बनाया। पदोवा विश्वविद्यालय में एक शोधार्थी द्वारा उन पर शोध कार्य किया गया। जावेद अख्तर ने उन पर एक कविता लिखी आदि। यानी विदेशी धरती ने उन जैसी लेखिका को एक 'तारिका' बना दिया। किन्तु वे इस तारिका वाली छवि को बहुत अधिक पसंद नहीं करतीं। उन्हें तो बांग्लाभाषी समाज के साथ रहते हुए, बांग्ला भाषा में बोलते और लिखते हुए ढाका और कलकत्ता के पुस्तक मेले में भ्रमण करते हुए ही जीवन जीना पसंद है। ऐसे में विदेशी धरती, विदेशी लोगों के बीच असहजता ने उनके लेखन को काफी दिनों तक बाधित किया।

इस थोपी हुई दूरी के बीच "मुझसे एक अक्षर भी लिखा नहीं जाता। मैं जैसे किसी अनाम लेखिका की तरह जिंदगी गुज़ार रही हूँ... किसी जमाने में किसी देश में मैं लेखिका भी थी, कभी-कभी मैं यह भी भूल जाती हूँ।"⁷⁶ इस थोपी हुई निःसंगतता से खुद को बचाने के लिए उन्होंने अपनी स्मृतियों में खो जाना बेहतर समझा। परिणामतः इन स्मृतियों के आधार पर आत्मकथा लिखनी शुरू की। अकेलेपन, निःसंगतता और निराशा के बीच वे स्वयं को पश्चिमी संस्कृति में ढाल पाने में असहज महसूस करती हैं। ऐसे में उनका मन कई बार पलायनवादी हो उठता है -

"कभी-कभी तीखी चाह जागती है, फरार हो जाऊँ !

बर्च के सागर तट, ओक और पाइन के खूबसूरत अरण्य से,

शीतल शांत बाल्टिक सागर से घिरे,

सजे-सजाये नगर से !

लेकिन फरार हो जाऊँ कहाँ ?

दुनिया में कहाँ है और कोई नगर, जो मेरे इंतज़ार में हो...।"⁷⁷

यूरोप की संस्कृति में स्वयं को न ढाल पाने पर बार-बार एक बांग्लादेशी लेखिका सामने आ जाती, जिसे वहाँ के लोगों ने ढकने का भरपूर प्रयास किया। इस सम्बन्ध में वे लिखती हैं-

"परदेस अपने स्नेहिल बर्फ में,
ढके रखता है घमौरियों-भरी पीठ,
फिर भी निकल आती है एक बेअदब बंगाली,
बर्फ की परत तोड़कर,
लहक उठती है लपलपाती आग के मानिंद,
समूचे दूधिया मैदान में!"⁷⁸

विदेश पर निर्भरता और तसलीमा का लेखन :

तसलीमा जितना अधिक यह स्वीकार करती हैं कि 'किसी और पर निर्भर करने जैसी मौत, और कोई नहीं होती' उतना ही वह इन पश्चिमी देशों पर निर्भर होती जा रही हैं या यह कह सकते हैं, उन्हें निर्भर बना दिया गया। यह निर्भरता उन्हें बार-बार कचोटती रही जो आज भी जारी है और उनके लेखों में देखी जा सकती है। अपने देश में भय के बीच रहते हुए भी वे इतनी तकलीफ नहीं महसूस करती थीं, जितनी विदेश में तमाम सुविधाओं के बीच रहते हुए महसूस करती हैं। वे लिखती हैं, "रातों को अचानक नींद टूट जाती है और मेरे मन में सवाल उठता है कि ये मेरी किताबें बिक रही हैं या मैं बिक रही हूँ? मेरी जिंदगी की कहानी बिक रही है? मेरा दम घुटने लगता है।"⁷⁹

विदेशी धरती पर भी जां दार्न आलिए, ताहर बेन जेलुन जैसे कई तसलीमा विरोधी भी उग आये। उन्हें वहाँ किसी के विरुद्ध कुछ भी कहने की स्वतंत्रता नहीं थी, जिसके कारण उन्हें अपना मुँह बंद कर बैठना पड़ रहा है। कई बार तो उनकी रचनाओं के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करते समय उनके विवादित विचारों को हटा दिया गया। उन्हें बस एक ही स्वतंत्रता प्राप्त थी जीवन की स्वतन्त्रता। किन्तु लोगों को यह नहीं ज्ञात था कि लिखना ही तसलीमा के लिए जीवन है-

“...पत्थर पर अगर रोपी जाए सपनों की पौध,
आँखों के आँसुओं से सींचकर,
क्या कभी घटती है छाया दुखों की ?”⁸⁰

दिन-रात के दबाव और सुरक्षा से तंग आकर उन्होंने सरकार से पुलिस की सुरक्षा को हटाने की माँग की जिसे स्वीकार कर लिया गया। इस सम्बन्ध उन्होंने स्वीडिश सरकार को पत्र लिखा, "अगर मेरे अनुरोध के बावजूद, आप लोग मुझे पहरेदारी और निगरानी में रखना चाहते हैं तो मेरा लिखना-पढ़ना, हमेशा के लिए बंद हो जाएगा, कह देती हूँ। अभी जो आप लोग, मेरी लेखिका होने पर गर्व करते हैं, बाद में नहीं कर पायेंगे ! मैं आज़ादी चाहती हूँ, सम्पूर्ण आज़ादी। मेरी गर्दन पर कोई लगातार साँस-प्रश्वास लेता रहे, इस जैसा दुस्वप्न और कोई नहीं।"⁸¹ इस प्रकार पहली बार विदेशी धरती पर उन्होंने अकेले चलना शुरू किया। भय और अकेलेपन से बाहर निकलकर वहाँ के समाज और संस्कृति को अपने अनुसार देखने और समझने का प्रयास किया। आवश्यकतानुसार उसकी आलोचना-प्रत्यालोचना और प्रतिवाद भी किया।

तसलीमा धीरे-धीरे पश्चिम की चाल को समझने लगीं और उसके अनुसार चलना भी सीख लिया। किन्तु उन्होंने सब कुछ सहज स्वीकार नहीं किया। वे लिखती हैं, "नहीं, मैं, उनका सब कुछ किसी शर्त पर भी नहीं सीख सकती... हाँ, पश्चिम का जो कुछ अच्छा है उसे ग्रहण करने में मुझे आपत्ति नहीं है, लेकिन जो बनावटी या नकली है, उसे मैं हरगिज़ कुबूल नहीं कर सकती।"⁸² इतने देशों में भ्रमण के बावजूद उन्हें अपने लिए कोई भी देश या स्थान उपयुक्त नहीं लगा। कारण हम समझ सकते हैं। अपनी जड़ों से दूर फेंका हुआ इंसान बार-बार उन जड़ों को ही खोजने का प्रयास करता है :-

"क्या सच ही कोई देश मेरा है ?

है मेरा कोई शहर या गाँव-देहात ?

या मेरा कोई घर ? कोई बदन या मकान ?

यह जो मैं बहती रहती हूँ, एक देश से दूसरे देश,
यूँ बहते-उतराते किसी दिन, रात के अंतिम प्रहर
या दिन-दोपहर, कहाँ जा भिड़ेगा मेरा जीवन ?"83

विदेशी धरती पर प्रशंसा और अलोचना का सिलसिला जारी रहा। इस बीच तसलीमा ने अपने आवेगों को पुनः शब्दों में ढालना प्रारम्भ किया। इस सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रोत्साहन दिया बांग्लादेश के प्रसिद्ध लेखक निखिल सरकार ने। इस सम्बन्ध में तसलीमा लिखती हैं, "...उन्होंने कहा था, 'इतने-इतने देशों में भ्रमण कर रही हो, इतना-इतना तजुर्बा हो रहा है, लेकिन लिख कुछ भी नहीं रही हो।' 'लिखने का मन नहीं करता' मैंने निसंतप्त आवाज़ में जवाब दिया। 'लिखने की कोशिश करो। लिखने के लिए ही देश छोड़ना पड़ा। अब निर्वासन में जाकर अगर लिखना ही बंद कर दो तो जिंदा कैसे रहोगी ? देखना, यह लिखना ही तुम्हें बचाएगा। तुम्हें लिखना तो पड़ेगा ही।"84

इस अकेलेपन के बीच रहते हुए तसलीमा स्वयं को हर प्रकार के अहंकार, निराशा आदि से बचाने के लिए बार-बार अपना मूल्यांकन करती रहीं। एक प्रकार का स्वानुशासन विकसित किया। वे लिखती हैं, "लेकिन असल में क्या मैं किसी की भी हूँ ? मैं अपने से ही सवाल करती हूँ। मैं मन-ही-मन अपने को समझाती हूँ- सिर्फ सुनती रहो ! सिर्फ अपना दिमाग ठीक रखो। खबरदार ! अहंकार को अपने आस-पास भी मत आने देना।"85 विदेशी धरती पर नितांत अकेलेपन के बीच व्यतीत होने वाला तसलीमा का जीवन 'बर्च के पत्तों की तरह झड़ रहा' था और कोई भी उनके पास नहीं था 'जो कह सके - जियो !'। इस जीवन को जीते हुए भी तसलीमा अपने भीतर अपने देश-प्रेम का दीपक जलाए बैठी रहीं। वे सकुशल नहीं हैं, लेकिन सदैव अपने देश के लिए यही इच्छा रखी 'तुम सकुशल रहना, प्रिय देश !' अपने आस-पास की चीजों में अपना देश, अपनी संस्कृति कुछ इस प्रकार खोजती रहीं -

'असल में भात के स्पर्श से भात नहीं
लगता है मुट्ठी में आ गया है भरपूर बांग्लादेश !"86

विदेश में रहते हुए एक दिन तसलीमा ने अपने माता-पिता को भी खो दिया। जीवन-भर स्त्रियों के लिए लिखती रहने वाली तसलीमा अपनी माँ के प्रति अपराध बोध से भर उठीं। माँ को लेकर कई कवितायें 'तुम्हारा न होना', 'मेरी माँ के बारे में', 'दुखवती माँ', 'देश कहने को अब', 'तुम नहीं हो, इसलिए', 'एक अकविता', 'अगर', 'चाह', 'प्रायश्चित' और साथ ही अन्य कविताएँ 'काश, ऐसा होता', 'जीना', 'यादें सेंकती हैं धूप', 'तुम्हारी देह, तुम नहीं', 'खाली-खाली लगता', 'ठीक वही-वही चाहिए', 'हरसिंगार बिछी राह', 'ईदुलआरा', 'मेरी इंसानियत', 'तुम सोयी हो कब्र में', 'पूरब-पश्चिम', 'माँ को खत', 'वह थी, वह नहीं है', 'न होना', 'मत जाओ', 'तुम थीं', 'लौट आओ', 'माँ' आदि लिखीं। इन कविताओं को आत्मकथा के छोटे खंड 'नहीं, कहीं कुछ भी नहीं' में देखा जा सकता है। उन्होंने अपनी माँ की ही प्रेरणा से आत्मकथा लिखनी प्रारम्भ की। इस सम्बन्ध में वे लिखती हैं, 'आत्मकथा लिखने का ख्याल कहाँ से आया, क्यों आया, मैं नहीं जानती। इसलिए कि शायद तुम मेरे बचपन के दिन याद कर रही थी। तुम मेरे सामने वे सब पुराने दिन याद कर रही थी और मैं मन ही मन उन यादों के सहारे किताब लिखने की परिकल्पना बुन रही थी।'⁸⁷

भारत की धरती पर लेखकीय संघर्ष :

1994 से 1999 के बीच के संघर्ष के बाद उन्हें भारत का एक्स वीजा प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने निर्वासन के दौरान तमाम तकलीफों और उपेक्षा के बीच भी अपना लेखन जारी रखा। भारत के पश्चिम बंगाल में बंगाली समुदाय के बीच रहते हुए वे फिर से अपने देश को महसूस करने लगीं और उनका अवरुद्ध लेखन कार्य फिर से गति पकड़ने लगा। इसी बीच आत्मकथा का प्रथम भाग 'मेरे बचपन के दिन' प्रकाशित हुआ और इसके लिए उन्हें दूसरी बार बांग्ला भाषा का प्रतिष्ठित 'आनंद पुरस्कार' प्राप्त हुआ। तत्पश्चात्, 'जलपक्ष', 'खाली-खाली लगता है' नामक कविता संग्रह और आत्मकथा का दूसरा और तीसरा भाग (द्विखंडित और वे अँधेरे दिन) भी प्रकाशित हुआ।

तसलीमा अपने लेखन को लेकर सदैव आश्वस्त रहीं। 'मेरे बचपन के दिन' के लिए आनंद पुरस्कार लेते समय उन्होंने कलकत्ता के रवींद्र सदन में कहा, "चूँकि मैं लिखती हूँ, इसलिए मुझे डाक्टरी छोड़नी पड़ी; लिखती हूँ, इसलिए जुलूस निकाले गये, मेरी हत्या की धमकियाँ आई हैं; मेरे सिर का मोल निश्चित किया गया है; लिखती हूँ, इसलिए मुझ पर मुकदमें चलाए गये हैं; वारंट निकाले गये, हड़तालें होती रहीं, लोगों की हत्याएँ हुईं; लिखती हूँ; इसलिए रातोंरात एक घर से दूसरे घर भागते रहना पड़ा। इस लिखने की वजह से ही नाते-रिश्तेदार, यार-दोस्तों को छोड़ना पड़ा; अपना घर द्वार छोड़ना पड़ा। ब्रम्हपुत्र, अपना देश-सब छोड़ना पड़ा! लेकिन लिखती हूँ, इसीलिए पुरस्कार भी नसीब हुआ!"⁸⁸

उनके 'शोध' उपन्यास पर आधारित टीवी सीरियल पश्चिम बंगाल में प्रसारित किया जाने लगा। टीवी पर मेगा सीरियल के लिए तसलीमा ने कहानी लिखनी भी शुरू की और नाम दिया, 'दुःसहवास'। उनकी कहानी 'फेरा' का नाटक के रूप में मंचन भी हुआ। कलकत्ता में रहने के दौरान स्टेट्समैन पत्र के बंगाली संस्करण 'दैनिक स्टेट्समैन' के लिए साप्ताहिक निबंध लिखे। उन्होंने अपनी रचनाओं के अतिरिक्त कलकत्ता को एक और भेंट दी और वह है अपने शरीर का दान। कलकत्ता को उन्होंने काफी कुछ दिया किन्तु कलकत्ता ने उन्हें दिया 'लानत-मलामत' (कलकत्ता कविता से)।

फिर वही सम्मलेन, कार्यक्रम, साहित्यिक अड्डों का दौर चल पड़ा। इस दौरान कई राज्यों के कार्यक्रमों में भी सम्मिलित हुईं। इसी बीच हैदराबाद से डा. ईनाईया की तरफ से 'शोध' उपन्यास के तेलुगु संस्करण के लोकार्पण के लिए हैदराबाद जाना उनके जीवन में एक बार फिर अन्धेरा लेकर आया। लोकार्पण कार्यक्रम के दौरान हैदराबाद के विधायकों और उनके समर्थकों ने तसलीमा पर हमला कर दिया, जिससे किसी तरह तो वे बच गयीं, किन्तु पश्चिम बंगाल के निष्कासन से नहीं बच सकीं। हैदराबाद से वापस आने पर कलकत्ता के घर में उन्हें गृहबंदी बना दिया गया। इस बीच कलकत्ता के मौलवियों ने सभा करके उनके विरुद्ध 'अनलिमिटेड' रुपयों का फतवा जारी किया। यही

नहीं, गायक कबीर सुमन ने भी तसलीमा के विरुद्ध एक और फतवा जारी कर दिया। फिर वही फतवा, जुलूस, विरोधी संगठन, विरोधी पत्रिका, विरोधी लेखों, सवाल-जवाब, प्रतिबन्ध और निर्वासन का सिलसिला शुरू हो गया।

इस बीच अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर कई घटनाएँ हुईं - गुजरात दंगे, ट्विन टावर पर आतंकवादी हमला, पश्चिम बंगाल के सिंगूर और नंदीग्राम में दंगे, प्रथम आलो के कार्टूनिस्ट अरिफुर रहमान की हत्या, बांग्लादेश के लेखक हुमायूँ आज़ाद की हत्या और अंत में पश्चिम बंगाल से तसलीमा का निष्कासन। एक लेखिका जो सबकी स्वतंत्रता के लिए आवाज़ उठाती रही, उसकी स्वतंत्रता के लिए आवाज़ उठाने वाला कोई नहीं था। कलकत्ता में कट्टरपंथी तसलीमा की हत्या का अवसर ढूँढ़ने लगे। इसीलिए दंगों की आशंका देखते हुए सरकार के आदेश पर, तसलीमा को एक दिन धोखे से दिल्ली ले जाकर, 'अज्ञातवास' में रख दिया गया। एक बार फिर उन्हें बंगाली सरजमीं छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा, जिसे वे दूसरी मृत्यु के रूप में ही देखती हैं :-

"मौत से बचने के लिए लेना होगा मुझे आसरा मौत ही का,

इसके अलावा और कोई चारा है क्या !"⁸⁹

तसलीमा भारत से जुड़ाव महसूस करती हैं क्योंकि एक तो उनके पूर्वज भारत के हिन्दू थे, जो बाद में इस्लाम धर्म ग्रहण कर बांग्लादेश विस्थापित हो गये। इस तरह वे नृवैज्ञानिक और ऐतिहासिक तौर पर भी भारत से जुड़ी हुई हैं। इस सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "मैं इतिहास की शिकार एक व्यक्ति हूँ अथवा जितनी भी समृद्ध हुई हूँ वह इतिहास के द्वारा हुई हूँ। इसके दारिद्र्य, औपनिवेशिकता, धर्म-धर्मान्धता, हिंसा, हिन्दू-मुसलमान, खून-खराबा, देश-छोड़ना, माइग्रेशन, एक्सोडस, द्विजातित्व, या टू नेशन थियोरी, गणतंत्र हीनता, जात-पात, दंगे, युद्ध द्वारा शिकार की गई हूँ मैं। मुझे जितना भी भारतीय बनाया इन्हीं सब ने मिलकर बनाया है। इन सबसे ऊपर, बांग्लादेश नाम के एक मौलवाद, आतंकवाद, तानाशाह, दुर्नीति, गरीबी और दुर्भिक्ष से पीड़ित देश ने मुझे और भी ज्यादा अनुभवी

बनाया है।⁹⁰ दूसरा, बांग्लादेश का इतिहास और संस्कृति आपस में जुड़े हुए हैं। दोनों की परम्परा और विकास एक ही महाद्वीप भारत का हिस्सा है, तीसरा, बंगाली संस्कृति से लगाव के कारण वे पश्चिम बंगाल को अपूर्व बांग्लादेश के रूप में ही देखती हैं। इस कारण कलकत्ता से दूरी उन्हें अपने देश से दूर जाने जितनी ही कष्टप्रद महसूस हुई।

अज्ञातवास के जीवन से मुक्ति के लिए तसलीमा ने 17 मार्च 2008 को भारत छोड़ने का निर्णय किया। इसके बाद स्वीडन पुनर्गमन, पुरस्कारों व सम्मान, सम्मेलन का सिलसिला फिर शुरू हुआ - 'सिमोन द बोवेयर' पुरस्कार अयान हिरसी अली के साथ, फ्रेंच में 'मेरे कारागार से' कविता संग्रह का प्रकाशन, कनाडा के माइक ने तसलीमा पर डाक्यूमेंट्री बनाई, अल्बर्टो मंगुएल ने प्रसिद्ध धारावाहिक 'एम्पायर ऑफ़ द वर्ल्ड' में तसलीमा की कहानी को भी शामिल किया गया, फ्रान्स की नागरिकता मिली, फ्रेंच सरकार द्वारा मानवाधिकार प्राप्त लोगों को लेकर हुए उत्सव में आमंत्रण, पिपियार व्यावसायिक संगठन की ओर से 'फाउन्डेशन फार वूमेन' की सदस्य बनने का आमंत्रण, स्वीडेन में अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मलेन में भाग लिया, स्पेन में बिल्बाओये सेंसरशिप के विरुद्ध सेमिनार में आमंत्रण, सेनफ्रांसिस्को, इटली, लक्सम्बर्ग के कविता उत्सव में भाग लिया, एम्सटर्डम में मुक्त चिंता पर कार्यक्रम, बेल्जियम की लोवेईन विश्वविद्यालय से डाक्टरेट, यूरोपीय पार्लियामेंट में कार्यक्रम में आमन्त्रण, आस्ट्रेलिया में ग्लोबल एथीस्ट कन्वेंशन में आमंत्रण, कनेक्टिकट विश्वविद्यालय में शिक्षिका पद हेतु आमंत्रण, विभिन्न विश्वविद्यालयों में पढ़ाने का आमंत्रण आदि। इन सब से स्पष्ट है कि तसलीमा ने हजारों झंझावातों के बीच रहते हुए अपने आदर्शों, अपनी मान्यताओं और अपने लेखन से कभी भी समझौता नहीं किया। वे निरंतर अपने कार्य में लगी रहीं।

यह उनके लेखन और संघर्ष का ही प्रभाव है कि उनको भारत का वीजा दिए जाने के पक्ष में कई लोग आगे आये। हिन्दुस्तान टाइम्स के करन थापर ने 'डू वी पास द तसलीमा टेस्ट' नाम से लेख लिखा, आनंद बाज़ार पत्रिका ने सरकार पर सवाल खड़ा किया, सुनंद सान्याल ने तसलीमा के पक्ष में

लेख लिखा, प्रणव मुखर्जी ने तसलीमा को भारत में रहने के पक्ष में लोकसभा में बात रखी, आशीष घोष, अरुंधती राय, भाष्कर राय, जय गोस्वामी, रामचन्द्र गुहा, चंद्रिल भट्टाचार्य, मुचकुंद दुबे, अपर्णा सेन, जयश्री दास गुप्ता, ग्लोरिया स्टाइनेम, विभूतिभूषण नंदी, सुनंद सान्याल, देवव्रत बंद्योपाध्याय, आउटलुक की शीला रेड्डी, यूनेस्को के गुडविल एम्बेसडर मदनजीत सिंह, पाकिस्तानी प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो, शिवनारायण राय, 'मेन स्ट्रीम' पत्रिका के सम्पादक सुमित चक्रवर्ती, अमलान दत्त, महाश्वेता देवी, शओली मित्र, शिवानी मुखोपाध्याय, सुबीर मित्र, श्रीनिरपेक्ष आदि ने तसलीमा के पक्ष में किसी न किसी रूप में अपनी बात रखी। दिल्ली में हिंदी के साहित्यकारों ने भी तसलीमा की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में प्रदर्शन किया। ऐसा नहीं था कि विदेश जाने पर उनके विरोधी समाप्त हो गये थे। 'डीएनए टेलीग्राफ', 'द स्टेट्समैन', 'आजकल' आदि पत्रिकाओं और वीर सिंघवी, भवानी प्रसाद चट्टोपाध्याय, सिद्धार्थ शंकर राय जैसे लोगों के द्वारा विरोध भी जारी रहा। इतने विरोध के बीच तसलीमा ने गौतम घोष दस्तदार की 'रक्त मांस' पत्रिका के लिए दो कवितायें लिखीं- 'लांग लिव डेमोक्रेसी' और 'किसी भी कवि को क्या गृहबंदी बनाया गया था कभी ?'

2010 से वे भारत में रह रही हैं। लेकिन यहाँ की राहें भी उनके लिए तिरस्कार और अपमान से भरी हुई हैं। यहाँ आकर उन्होंने देखा कि जो पत्रिकाएँ - 'आनंदबाजार', 'देश', 'रविवार', 'प्रतिदिन', 'दैनिक स्टेट्समैन', 'जनसत्ता', आदि उनका लेख बेच-बेच कर अपार धन और नाम कमा चुकी हैं, उन्होंने ही उनके लेखों का प्रकाशन बंद कर दिया। तसलीमा से सम्बंधित जो भी टीवी सीरियल या फिल्म बनाये जाने की योजना थी उन सब पर रोक लगा दी गयी। इसी बीच, 'विकिलीक्स' ने तसलीमा पर हुई राजनीति को जग जाहिर कर दिया। लेकिन सब अपने में ही चोर बने बैठे रहे।

आज भी हर वर्ष अपने वीजा की अवधि बढ़ाए जाने के साथ, भारत की नागरिकता के लिए दी गयी अर्जी के स्वीकार किये जाने का उन्हें इंतजार रहता है। किन्तु, उस स्त्री के जीवन को थोड़ा स्थायित्व देने के लिए किसी के पास समय कहाँ है ? या यूनं कहीं साहस और इच्छा शक्ति का अभाव है।

यह वही स्त्री है, जो अपने लिए नहीं दुनिया के लिए, आज भी बेघर जी रही है। आज भी एक बिंदु के समान अकेले खड़ी हैं और लड़ रहीं हैं। तसलीमा का कहना है, "यह लड़ाई किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए बिल्कुल नहीं है, यह उससे भी बड़ा स्वार्थ है। मैं हुई तो हुई, दुनिया का कोई भी और इंसान, अपना मत प्रकाश करने के कारण, कभी-भी निर्वासन, निषेधाज्ञा या निषिद्ध होने का शिकार न हो।"⁹¹

बहरहाल जो भी हो तसलीमा के रचनात्मक व्यक्तित्व का कारवाँ अस्थायित्व और असुरक्षा के बीच निरंतर जारी है। हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिका 'हंस' में 2011 से वह लगातार 'शब्दवेधी/शब्दभेदी' शीर्षक के अंतर्गत कॉलम लिख रही हैं। ज्यादातर पत्र और पत्रिकाओं ने भले ही उनका लेख प्रकाशित करना बंद कर दिया हो, लेकिन वाणी प्रकाशन के अरुण माहेश्वरी लम्बे समय से उनका समर्थन करते रहे हैं तथा अन्य कई लेखकों ने भी उनका समर्थन किया है। इसके साथ ही जब कई पत्रिकाओं ने उनके लेखों को प्रकाशित करने से इनकार कर दिया, तो वे आज के युग में द्रुतगामी विचार अभिव्यक्ति की सोशल मीडिया साइट्स 'ट्विटर' और 'फेसबुक' पर लगातार सक्रिय रहकर अपनी विचार अभिव्यक्ति को जारी रखे हुए हैं। हाल ही में उनके जीवन की निःसंगतता पर पश्चिम बंगाल की निर्देशिका चुरनी गांगुली ने 'निर्वासितो' नाम से एक फिल्म भी बनाई है, जिसे 2015 की 'बेस्ट डेब्यू फिल्म' का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त हाल ही में उनकी दो पुस्तकें भी हिंदी में अनूदित होकर आ चुकी हैं 'कुछ गद्य कुछ पद्य' (2016) और 'निषिद्ध' (2017)। अतः यह कहना न होगा कि वर्तमान युग, तसलीमा नाम की लेखिका की रचनात्मक क्षमता से परिचित हो चुका है और आशा है कि भविष्य इससे परिचित होता रहेगा, क्योंकि लेखिका का साहित्यिक जीवन अभी-भी उतनी ही धार और लेखकीय साहस के साथ अनवरत है।

2.2 रचनाओं का संक्षिप्त परिचय :

(क) कविता संग्रह

1.1982 में प्रथम कविता संग्रह 'शिखोरे बिपुल खुधा' या '**जड़ में विपुल भूख**' प्रकाशित हुआ।

2.1989 दूसरा काव्य संग्रह 'निर्वासितो बाहिरे-आन्तरे' अर्थात् '**निर्वासित बाहर-भीतर**' का प्रकाशन हुआ।

3. 1990 में 'आमार किछु जाए आसे ना' अर्थात् '**मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता**' का प्रकाशन हुआ।

4.1991 में 'ऑतोले अंतरीन' अर्थात् '**अतल में अंतरीन**' का प्रकाशन हुआ।

5.1992 में 'बालिकार गोल्लाछूट' अर्थात् '**बालिका की लक्ष्यच्युती**' का प्रकाशन हुआ।

6.1993 में '**बेहुला एक भाशिये छिलो भेला**' का प्रकाशन हुआ।

7. **यह दुःख : यह जीवन** : यह कविता संग्रह 1994 'एई कोष्टो झेपे, जीबोन देबो मेपे' शीर्षक से बांग्ला में प्रकाशित हुआ। इसका हिंदी में अनूदित संस्करण 1996 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इसमें सम्मिलित कविताओं का हिंदी अनुवाद शम्पा भट्टाचार्य द्वारा किया गया है। यह तसलीमा की 97 कविताओं का संकलन है। इसमें तसलीमा ने उस दुःख और पीड़ा को अभिव्यक्त किया है, जो उनकी होने के साथ उन मनुष्यों की भी है, जो अपने प्रकृतिप्रदत्त अधिकारों से वंचित कर दिए गये हैं। ये कवितायें केवल बांग्लादेश की सीमा में ही नहीं अपनी विषयवस्तु के कारण उस सीमा को पार कर समस्त मानव के विषय में चिंतन करती हैं। इस संकलन की कवितायें बिना किसी कलावादी आग्रह के फेर में पड़े स्त्री-जीवन और स्त्री-संघर्ष, धर्म, राष्ट्र इतिहास, परम्परा, प्रेम आदि का चित्रण पूरी सच्चाई एवं सीधी और सपाट भाषा के साथ करती हैं। उदाहरण :

"भारत कागज का कोई रद्दी टुकड़ा नहीं

जिसे चिंदी-चिंदी कर फेंका जा सके ।

सैंतालीस एक शब्द है, जिसे मैं

रबर से मिटा देना चाहती हूँ ।"⁹²

8. **मुझे मुक्ति दो** : यह काव्य संग्रह 1996 'निर्वासित नारीर कोबिता' शीर्षक से बांग्ला में प्रकाशित हुआ । हिंदी में यह पुस्तक 'पूज्य प्रकाशन' से 2014 में प्रकाशित हुई । इसमें तसलीमा की सत्तावन कवितायें संकलित हैं । इस पुस्तक में निर्वासित स्त्री की कवितायें हैं, जो निर्वासित जीवन में स्मृतियों के बल पर अपने देश को महसूस करने का प्रयास करती है । तसलीमा विदेशी धरती पर जिस हाल में हैं उनका रोजनामचा है, इसमें सम्मिलित कवितायें । उनके अकेलेपन, उसके वापस लौट आने की आशा और निराशा आदि का मार्मिक चित्रण इन कविताओं में किया गया है । उदाहरण के लिए 'अब घर लौटना है' कविता में घर लौटने की ललक की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार हुई है :-

"खूब मिली गर्मजोशी, नगर की चाभी, उपहार ।

अब घर वापस लौटूंगी निखिल दा !

...

बहुत हुआ महासागर में तैरना, अब गाँव के तालाब में

भरी दोपहर में डुबकी लगाऊँगी -निखिल दा !"⁹³

9. 'जोलपोद्यो' का प्रकाशन बांग्ला में सन् 2000 में हुआ । इसका हिंदी में अनुवाद 'जलपद्य' शीर्षक से किया गया । इस संकलन में सम्मिलित कवितायें दग्ध हृदय की अत्यन्त सजल अभिव्यक्ति हैं । नितान्त व्यक्तिगत-सी लगती ये कविताएँ दरअसल जीवन के प्रति अदम्य मोह और ललक से भरी हैं । देश से, परिवेश से और परिवार से वंचित, यूरोप में निर्वासित जीवन बिता रही तसलीमा की इन कविताओं में यद्यपि दुःख की एक सर्वग्रासी छाया है लेकिन इस दुख से पलायन नहीं बल्कि उसे जीने

की जिजीविषा है, जो एक प्रकार की आत्मोपलब्धि कही जा सकती है। तसलीमा कहती हैं : 'कविता को जन्म देने के लिए स्त्री होना होता है पहले।' कहीं ये कवितायें स्त्री-पुरुष के लिंग-भेद को अस्वीकार करती हैं तो कहीं उसका अतिक्रमण करती नजर आती हैं। इन कविताओं में अपने प्रकृत रूप में उपस्थित हैं, तसलीमा नसरीन।

10. तसलीमा नसरीन की कवितायें : यह तसलीमा की विभिन्न समय पर लिखी गयी कविताओं का हिंदी में अनूदित संकलन है। यह वाणी प्रकाशन से 2002 में प्रकाशित हुआ। इन कविताओं का अनुवाद मुनमुन सरकार के द्वारा किया गया। इस कविता संग्रह में स्त्री जीवन से सम्बंधित कवितायें हैं। ये कवितायें पितृसत्ता, धर्म और राजनीति के घेरे में बंधी स्थिति के लिए मार्ग खोजती हैं। उपभोग की संस्कृति से बाहर निकल आने के लिए स्त्रियों का आह्वान करती हैं। अपनी भाषा और शिल्प के कारण ये कवितायें पार निकल आती हैं सीमा से आगे और प्रतिरोध की संस्कृति को विकसित करती हैं।

10. 'खाली-खाली लागे' का प्रकाशन 2004 में हुआ।

11. कुछ पल साथ रहो : यह कविता संग्रह 2005 में 'किछु खान थाको' शीर्षक से बांग्ला में प्रकाशित हुआ, जिसका हिंदी अनुवाद वाणी प्रकाशन से 2006 में प्रकाशित हुआ। इस कविता संग्रह का हिन्दी अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है। इसमें 'कलकत्ता', 'मृत्यु', 'यार', 'मानवता' और 'नारी' शीर्षक के अंतर्गत लिखी गयी 55 कविताओं का संकलन है। इन कविताओं के विषय में तसलीमा भूमिका 'मुझे कुछ कहना है...' में लिखती हैं, "इन्हें कविता भी कैसे कहूँ? इनमें ढेर सारे तो सिर्फ खत हैं। सुदूर किसी को लिखे गये, रोज-रोज के सीधे सरल खत।"⁹⁴ अस्तित्वहीनता के सम्बन्ध में 'न होना' व

"एक भयंकर 'न होने' को साथ लेकर, मैं सोने जाती हूँ, हर रात

सो जाती हूँ, नींद से जागती हूँ, स्नानघर में दाखिल होती हूँ -

'न होना' साथ होता है।"⁹⁵

12. **भालो बासो ? छेड़ बासो ?** : इसका प्रकाशन 2007 में बांग्ला भाषा में हुआ।

13. **बंदिनी** : यह संकलन बांग्ला में 2008 में 'बोंदिनी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसका हिंदी संस्करण 2009 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ, जिसका अनुवाद किया है, सुशील गुप्ता ने। इसमें साठ कवितायें संकलित हैं। इस संकलन में तसलीमा की वे कवितायें संकलित हैं, जो उन्होंने कलकत्ता में गृहबंदी रहने और दिल्ली में अज्ञातवास में रहने के दौरान लिखीं। इन कविताओं में तसलीमा के बंदी जीवन का दर्द और सरकार के प्रति रोष उभरा है। 'जिस घर में मैं रहने को विवश हूँ' कविता में वे लिखती हैं -

'इन दिनों मैं एक ऐसे कमरे में रहती हूँ,
जिसमें एक बंद खिड़की है
जिसे खोलना चाहूँ, तो मैं खोल नहीं सकती।'⁹⁶

14. **मुझे देना और प्रेम** : यह संकलन हिंदी में 2012 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इसमें तसलीमा की पूर्व में बांग्ला में लिखी सौ कविताओं का संकलन किया गया है। इन कविताओं का अनुवाद प्रयाग शुक्ल ने किया है। इन कविताओं में जीवन के विविध रंग हैं। कभी किसी को सम्बोधित करती कविता तो कभी आत्मालाप करती कविता, कभी प्रकृति का गुणगान करती कविता तो कभी समाज से टकराती कविता। इन कविताओं में जीवन के साथ बहता समय, समाज, और मन है। इसकी कुछ कवितायें अन्य संग्रहों में पहले भी प्रकाशित हो चुकी हैं। 'ईंट तोड़ने वाली लड़की' कविता का उदाहरण -

"लड़की खुद भी होती रहती हैं ईंट
होते होते होती वह भी ईंट से अधिक मजबूत,
हथौड़ी से टूटती है ईंट,

(ख) निबंध या आलेख संग्रह :-

1. **'निर्वाचित कलाम'** : इसका प्रकाशन बांग्ला भाषा में 1990 में हुआ। हिंदी में 'औरत के हक में' शीर्षक से इसका अनुवाद मुनमुन सरकार ने किया जो वाणी प्रकाशन से 2005 में प्रकाशित हुई। इस कृति के लिए तसलीमा को 1992 का 'आनन्द पुरस्कार' प्राप्त हुआ। इसमें तसलीमा के 78 आलेख संकलित हैं, जो समय-समय पर बांग्लादेश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत कृति में समाज में शोषित स्त्री के जीवन का हूबहू चित्रण है। इस चित्रण में तसलीमा ने अपने जीवन के प्रसंगों के साथ अपने आस-पास की स्त्रियों, अपने देश और समाज की स्त्रियों की दुर्दशा का चित्रण किया है। इस चित्रण के साथ उन्होंने धर्मशास्त्रों और सामाजिक रूढ़ियों की अलोचना और पितृसत्ता द्वारा स्त्री पर निरंकुश एकाधिकार को चुनौती भी दी है।

2. **जाबो न केनो ? जाबो !** का प्रकाशन 1991 में हुआ।

3. **नष्ट लड़की, नष्ट गद्य** : यह बांग्ला भाषा में 1992 'नोष्टो मेयेर नोष्टो गदो' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। हिंदी में यह वाणी प्रकाशन से 1995 में प्रकाशित हुआ। इसके हिंदी संस्करण का अनुवाद मुनमुन सरकार ने किया है। यह तसलीमा के इकसठ लेखों का संग्रह है, जो समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। इसमें भी वे सभी विषय हैं, जिन्हें तसलीमा ने अपनी अन्य पुस्तकों में केंद्र में रखा है। जैसे- धर्म, स्त्री, पितृसत्ता, राजनीति, प्रेम, मानवता आदि। स्त्री को मुक्ति के लिए मन्त्र देती पंक्ति 'नारी के शुद्ध होने की पहली शर्त यही है कि वह नष्ट हो' इसी संग्रह की है। इसमें सम्मिलित लेखों में स्त्री-दुर्भाग्य का ही चित्रण नहीं है बल्कि उससे उबर आने के मार्ग पर भी प्रकाश डाला गया है।

4. **छोटे-छोटे दुःख** : इस पुस्तक का बांग्ला भाषा में 'छोटो छोटो दुखो कोथा' शीर्षक से 1994 में प्रकाशन हुआ। हिंदी में यह 2002 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुई। इसका हिंदी में अनुवाद

सुशील गुप्ता ने किया है। यह 53 लेखों का संग्रह है। स्त्री-अधिकार, प्रताड़ना, तिरस्कार और संस्कार की बात करते हैं इसमें सम्मिलित आलेख।

5. औरत का कोई देश नहीं : यह पुस्तक 'नारीर कोनो देश नेइ' शीर्षक से 2007 में बांग्ला भाषा में प्रकाशित हुई है। इसका हिंदी में अनूदित संस्करण 2009 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण का हिंदी अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है। यह 46 लेखों का आंकलन है। तसलीमा का मत है कि यदि देश का अर्थ सुरक्षा है तो यह निश्चित है कि औरत का कोई देश नहीं क्योंकि औरत कहीं भी सुरक्षित नहीं है। स्त्री की असुरक्षा के कारणों की पड़ताल करती है यह पुस्तक।

6. कुछ गद्य कुछ पद्य : इस पुस्तक का हिंदी में प्रकाशन वाणी प्रकाशन, दिल्ली से 2016 में हुआ। इसमें सम्मिलित 45 लेखों और 29 कविताओं का हिंदी अनुवाद महेंद्र मिश्र के द्वारा किया गया है। यह तसलीमा के उन आलेखों और कविताओं का संग्रह है, जो समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इस पुस्तक की विशेष बात यह है कि इसमें गद्य और पद्य के अलग-अलग रंगों को एक साथ घोलकर वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का एक ढाँचा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसमें एक तरफ गद्य में लिखे गये लेख हैं, जिसमें समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य, समकालीन राजनीति, स्त्री-मुक्ति अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ आदि है, वहीं कविताओं में प्रेम, स्त्री-मुक्ति, सामाजिक सम्बन्ध, आधुनिक युग के अकेलेपन, संत्रास और विखंडन का चित्रण मिलता है।

7. निषिद्ध : तसलीमा के आलेखों का संकलन है यह पुस्तक, जिसका प्रकाशन 2017 में वाणी प्रकाशन से हुआ है। इन लेखों का हिंदी अनुवाद सांत्वना निगम ने और सम्पादन विमलेश त्रिपाठी ने किया है। इसमें तसलीमा के द्वारा लिखित 45 लेखों का संग्रह है। इसमें जीवन और स्त्री को लेकर किये जा रहे चिंतन का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। तसलीमा यह मानती हैं कि नारीवाद पश्चिम की जागीर नहीं है और पूर्व की स्त्रियाँ यदि नारीवाद पर या स्त्री के सम्बन्ध में कुछ भी लिख रही हैं तो वह पश्चिम की नकल नहीं कहा जा सकता।

(ग) उपन्यास -

1. दो औरतों के पत्र : यह उपन्यास 1992 में 'ओपोरपक्ख' (अपरपक्ष) शीर्षक से बांग्ला भाषा में प्रकाशित हुआ। हिंदी में इसका अनुवाद सुशील गुप्ता के द्वारा किया गया है जो कि वाणी प्रकाशन से 2010 में प्रकाशित हुआ। नुपुर और जमुना नामक दो बहनों के पत्र के माध्यम से हुई बातचीत को इस उपन्यास का 'प्लॉट' (विषयवस्तु) बनाया गया है। इसमें दो अलग-अलग परिस्थितियों के बीच जी रही, दो बहनों के विचारों को बड़े ही गूढ़ और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। एक तरफ जमुना है जो 'फ्रीडम ऑफ़ सेक्स' की अवधारणा में विश्वास करती है और इसके कारण वह किसी भी प्रकार के सामाजिक बंधन में बंधना नहीं चाहती। दूसरी ओर है, छोटी बहन नुपुर जो सामाजिक रूढ़ियों को पहचानती है, किन्तु उसमें इतना साहस नहीं कि वह जमुना की तरह समाज को धता बता सके। नुपुर 'बधिया स्त्री' का प्रतीक है, जिसे या तो सामाजिक मान्यताओं में कोई खोट नहीं दिखता या फिर वह उसमें से निकल आने का साहस ही नहीं कर पाती। जय गोस्वामी की पंक्ति 'जब तक है साँस तब तक है आस, कभी आये कभी जाय ईश्वर में विश्वास' की तरह वह भी जीवन के विभिन्न सन्दर्भों को लेकर भ्रमित दिखती है। यह पत्र-शैली में लिखा गया एक अनूठा उपन्यास है, जो रचनात्मक स्तर पर तो प्रयोग करता दिखता है, साथ ही मनोवैज्ञानिक और सामाजिक रूप से भी स्त्री-जीवन और मानस पटल को छूता है। उपन्यास में तसलीमा ने स्त्रियों की स्वतंत्रता, समानता और सहस्तित्व के प्रश्न को अति-रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के संदर्भ में एक रोचक तथ्य यह भी है कि उपन्यास को तसलीमा ने सिर्फ तीन दिनों में ही लिखा है।

2. शोध : यह उपन्यास बांग्ला में 1992 में लिखा गया। इसका हिंदी अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है जिसका प्रथम संस्करण 2006 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास एक स्त्री के प्रतिशोध की कहानी कहता है। यह प्रतिशोध है पुरुष की उस सोच से जो स्त्री के चरित्र को दागदार बनाती है। इसमें एक पति शक के कारण अपनी पत्नी झुमुर के पेट में पल रहे अपने ही बच्चे को जन्म

से पहले मार देता है। तमाम सुबूत प्रस्तुत करने और समझाने के बाद भी झुमुर की पीड़ा को न समझने पर दिल ही दिल में उसके मन में अपने पति से ही बदला लेने की भावना न जाने कब घर कर जाती है। इस बदले की आग में जलते हुए वह न केवल पराये मर्द से सम्बन्ध बनाती है, बल्कि उसके बच्चे की माँ भी बनती है। और पति जो इन सब बातों से बेखबर है, उसे अपना बच्चा समझकर खुश होता है। उसकी खुशी देखकर झुमुर और भी खुश होती है, क्योंकि उसकी वह खुशी उसकी अपनी नहीं थी। यह उपन्यास यह सिद्ध करना चाहता है कि पुरुष चाहे प्रेम से स्त्री को अपने घर ले आये या पारिवारिक सहमति से लेकिन कुल मिलाकर वह औरत को घर-गृहस्थी से आगे निकलता हुआ नहीं देख सकता और शादी के पहले किये हुए तमाम वायदों को भूल जाता है।

3. निमंत्रण : यह उपन्यास बांग्ला भाषा में 1992 में प्रकाशित हुआ। इसका हिन्दी में प्रथम संस्करण 2010 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इसका अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है। यह तहमीना अख्तर उर्फ शीला की कहानी है, जिसमें वह उसके प्रेमी मंसूर के द्वारा ही एक साजिश का शिकार होती है। मंसूर के द्वारा 'निमंत्रण' दिया गया। वह उसे प्रेम का निमंत्रण समझ बेखौफ़ घर से निकल तो पड़ती है, किन्तु घर लौटती है 'बलात्कार' से सने शरीर को लेकर।

4. फेरा : बांग्ला में यह 1993 में प्रकाशित हुआ और हिन्दी में वाणी प्रकाशन से 1996 में प्रकाशित हुआ। अमर गोस्वामी ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है। यह उपन्यास वतन से बिछुड़ी हुई एक स्त्री कल्याणी की कहानी प्रस्तुत करता है। अपने देश से उसका लगाव कलकत्ता जाकर और अधिक बढ़ जाता है। ऐसे में, कलकत्ता के लोगों के बीच वह उसी प्यार की तलाश करती है। किन्तु उसे कहीं भी वह प्यार नहीं मिलता। उसे जीवन-भर अपने वतन लौटने की चाह होती है। इतनी चाह कि वह अपने बच्चों से जब भी बात करती है तो अपने वतन के बारे में, अपने बचपन के दोस्तों और अपने आस-पड़ोस के बारे में ही रटती रहती है। किन्तु उसका पति उसकी इन सब कहानियों में कोई रुचि नहीं लेता। वह उसकी संवेदना और पीड़ा को समझ ही नहीं पाता। ऐसे में, एक दिन वह पति के बगैर ही

अपने देश को देख आने का निश्चय करती है। लेकिन उसका दुर्भाग्य कि उसकी यादों वाला देश ही अब यथार्थ में नहीं था। अपने देश पहुँचकर वह पराया महसूस करती है। लोगों से ज्यादा उसकी मिट्टी ही उसे वहाँ अपनी लगती है। सब कुछ बदल चुका होता है- लोग, परिस्थितियाँ, ब्रह्मपुत्र। प्रेम की जगह धार्मिक कट्टरता ने ले ली, लोगों की जगह नये लोगों ने ले ली, हहराती ब्रह्मपुत्र की जगह सिमटती सकुचाती ब्रह्मपुत्र को देख उसका हृदय टूट जाता है। ऐसे में वह पागलों की तरह अपने जानने वाले हर स्थान पर जाती है, किन्तु उसे कहीं भी एक बूँद प्यार या अपनापन नहीं मिलता। जिस देश की तलाश करने कल्याणी वापस आई थी, वह तो उसे कहीं मिला ही नहीं। हारकर वह अपने देश वापस लौट जाती है।

5. लज्जा : इस उपन्यास का बांग्ला में प्रकाशन 1993 में हुआ। हिंदी में इसका अनुवाद मुनमुन सरकार ने किया जो 1994 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। 6 दिसंबर 1992 को बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद बांग्लादेश में हिंदूओं के साथ हुई हिंसा को पृष्ठभूमि में रखते हुए यह उपन्यास लिखा गया। यह सुरंजन नामक एक हिन्दू युवक की कथा है, जो बांग्लादेश में भले ही रहता है किन्तु उसके आस-पड़ोस में रहने वाले मुस्लिम उसके मित्र हैं। इस उपन्यास की शुरुआत होती है बाबरी मस्जिद तोड़े जाने पर बांग्लादेश के मुसलमानों की हिन्दुओं के प्रति की गयी आक्रामक प्रतिक्रिया से। सुरंजन 7 दिसंबर के दिन जब अलसाया हुआ सा अपने घर से निकलता है तो उसे मालूम भी नहीं होता कि उसका शहर साम्प्रदायिकता की आग में गत रात को झोक दिया गया है। वह अपने मित्रों को खोजता हुआ जब शहर की गलियों में गुजरता है तब उसे मालूम होता है कि बांग्लादेश के वे मुस्लिम जो कल तक हिन्दुओं के पड़ोसी और उनके मित्र थे, आज सभी हिन्दुओं की जान के पीछे पड़ गये हैं। हिन्दू जिस भी अवस्था में थे, वैसे ही अपनी जान बचाने के लिए देश छोड़ कर भाग रहे थे। कई तो मौत के घाट उतार दिए गये और स्त्रियों को बलात्कार का शिकार बनाया गया। शांति और अहिंसा में विश्वास रखने वाले सुरंजन को किस तरह इन परिस्थितियों ने एक 'इन्सान' से एक 'हिन्दू' बना दिया, यह उपन्यास इसी साम्प्रदायिक बर्बरता को अभिव्यक्त करता है।

6. ब्रह्मपुत्र के तट पर : यह उपन्यास 1994 में बांग्ला भाषा में 'भ्रोमोर कोइयो गिया' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। हिंदी में इसका अनुवाद सांत्वना निगम ने किया, जो वाणी प्रकाशन से 2015 में प्रकाशित हुआ। यह ब्रह्मपुत्र के तट पर बसे बांग्लादेश के एक शहर में जन्मी दो बहनों की कथा, बहनों की ही जुबानी है। सोच और स्वभाव की दृष्टि से एकदम अलग फिर भी जन्मगत स्नेह के बंधन में बंधी छोटी बहन मरणोपरांत लीक छोड़कर चलने वाली अपनी बड़ी बहन को समझने की कोशिश करती है। लेखिका ने चार नारी पात्रों के जीवन के वृत्तांत के द्वारा नारीवादी दृष्टिकोण से जीवन को देखने-समझने का प्रयास किया है और पाठकों तक उस दृष्टिकोण को पहुँचाने की कोशिश की है जो आज के संदर्भ में जरूरी और सराहनीय है। कुछ हद तक इस आत्मकथात्मक उपन्यास में अपनी धरती से उखड़ जाने की पीड़ा एक अमूर्त रूप से हर कहीं उपस्थित रहती है। ब्रह्मपुत्र के किनारे बसा हुआ वह बचपन का घर शुरू से आखिर तक साथ-साथ चलता रहता है। जीवन भर एक निर्वासित की पीड़ा को झेलते हुए बूबू का घर पहुँच न पाना, स्वयं उसका पति का घर छोड़ निकल आना और अंत में घर पहुँच कर देखना कि वह घर कहीं खो गया है-फिर भी उस खोये घर को उसे अपनी अगली पीढ़ी के रूप में तपू को लौटाना ये सब इस उपन्यास की कथावस्तु हैं।

7. फ्रांसीसी प्रेमी : यह उपन्यास 2002 में 'फोरासी प्रेमिक' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। हिंदी में यह वाणी प्रकाशन से 2003 में प्रकाशित हुआ। यह नीला की कहानी है, जिसका एक परपुरुष से शारीरिक सम्बन्ध होता है और वह गर्भवती हो जाती है। इस परपुरुष को प्राप्त करने के लिए वह अपना अब कुछ दाँव पर लगा देती है। किन्तु अंत में उसी परपुरुष से हुए गर्भ को समाप्त करने का विचार करती है और इसी विचार के साथ यह उपन्यास समाप्त हो जाता है।

8. चार कन्या : यह तसलीमा के पूर्व में प्रकाशित चार उपन्यासों 'दूसरा पक्ष', 'शोध', 'निमंत्रण' और 'भंवरे जाकर कहना' का एक संकलन है। इसका प्रकाशन राधाकृष्ण पब्लिकेशन से 2004 में हुआ। इस संकलन का हिंदी अनुवाद मुनमुन सरकार ने किया है। यह चार स्त्रियों जुमुर, शीला, यमुना और

हीरा की कहानी है। जिसमें इन चारों के जीवन के माध्यम से स्त्री-जीवन के अलग-अलग पक्षों को दिखाया गया है। ये सभी पात्र पुरुषों के द्वारा ठगी जाती हैं किन्तु यह उनके भीतर अधिकारबोध उत्पन्न करता है। इसी अधिकारबोध तक पहुँचने में इन स्त्रियों को किन संघर्षों और झंझावातों से होकर गुजरना होता है, यह उपन्यास बखूबी दिखाता है।

9. वीन्दुम लज्जुकुनू (शेम अगेन) : यह 2009 में सर्वप्रथम मलयालम में प्रकाशित हुआ। सर्वप्रथम मलयालम में प्रकाशित होने का कारण यह है कि इसे प्रकाशित करने के लिए कोई भी बंगाली प्रकाशक तैयार नहीं हुआ। इसी कारण अभी तक इसका हिंदी अनुवाद नहीं हो सका। 'द हिन्दू' अखबार की एक रिपोर्ट के अनुसार तसलीमा ने इस पुस्तक के अनावरण के कार्यक्रम में बताया कि यह पुस्तक 'लज्जा' के समान एक राजनीतिक पुस्तक नहीं है। इसमें प्रेम, सम्बन्ध, घृणा, भ्रम और आत्मसम्मान की कमी आदि को केंद्र में रखकर कथा लिखी गयी हैं, जो बांग्लादेश से भारत विस्थापित हुए परिवार की कहानी है।⁹⁸

(घ) कहानी संग्रह :

दुखियारी लड़की : इस कहानी संग्रह का प्रकाशन 1994 में बांग्ला में 'दुखोबोती मेये' शीर्षक से हुआ। हिंदी में इसका अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया, जो कि वाणी प्रकाशन से 2005 में प्रकाशित हुआ। इसमें दस कहानियाँ संकलित हैं, जो स्त्री जीवन की परतों को एक-एक कर खोलती हैं। कहानियों 'दुखियारी लड़की', 'मातृत्व', 'झरी हुई लड़की' आदि से गुजरते हुए इसके आत्मकथामक होने का भी आभास मिलता है। अर्थात् अन्य स्त्रियों की कथा के साथ तसलीमा की कथा भी गुथी हुई है।

(च) आत्मकथा :

1. मेरे बचपन के दिन : तसलीमा ने आत्मकथा का प्रथम भाग मूलतः 'आमार मेयेबेला' शीर्षक से लिखा, जो 1999 में प्रकाशित हुआ। इसके हिंदी अनुवाद का प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, नई

दिल्ली से 'मेरे बचपन के दिन' शीर्षक से 2002 में प्रकाशित हुआ। अमर गोस्वामी ने इसका हिंदी अनुवाद किया है। इसमें तसलीमा के जन्म लेने से लेकर बारह से तेरह वर्ष की आयु तक की कहानी है।

2. उत्ताल हवा : दूसरा भाग 'उत्तोल हवा' शीर्षक से 2002 में प्रकाशित हुआ। इस भाग के अनुवाद का प्रकाशन भी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 'उत्ताल हवा' शीर्षक से वर्ष 2003 में हुआ। इस खंड का अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है। इसमें तसलीमा ने किशोरावस्था की ओर बढ़ते अपने जीवन और अपने लेखन के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों आदि का वर्णन किया है।

3. द्विखंडित : बांग्लादेश में 'का' और पश्चिम बंगाल में 'द्विखंडित' शीर्षक से आत्मकथा का तृतीय भाग वर्ष 2003 में प्रकाशित हुआ। इसका हिंदी अनुवाद 'द्विखंडित' शीर्षक से वाणी प्रकाशन से 2004 में प्रकाशित हुआ। इस भाग का अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है। इसमें तसलीमा ने युवावस्था की ओर बढ़ते अपने जीवन और उस जीवन में लेखन और प्रेम के कारण आने वाले झंझावातों का वर्णन किया है। इसमें तसलीमा के व्यक्तित्व को एक लेखिका के तौर पर परिपक्व होते हुए देखा जा सकता है। समाज, राजनीति, धर्म और पितृसत्ता संबंधी उनके दृष्टिकोण के विकास की कथा इस आत्मकथा का हिस्सा है।

4. वे अंधेरे दिन : आत्मकथा का चतुर्थ भाग 'सेई सोब ओंधोकोर दिन गुई' शीर्षक से 2004 में प्रकाशित हुआ। इसका हिंदी में अनूदित प्रथम संस्करण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 'वे अंधेरे दिन' शीर्षक से 2004 में प्रकाशित हुआ। इस खंड का हिंदी अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है। इसमें तसलीमा ने अपने लेखन के कारण मौलवादियों और सरकार के भय से भूमिगत जीवन के दिनों और उस समय घट रही घटनाओं का वर्णन किया है। इन घटनाओं का प्रस्तुतीकरण लोमहर्षक है।

5. मुझे घर ले चलो : पाँचवे भाग का प्रकाशन 'आमी भालो नेइ तुमि भालो थेको प्रियो देश' शीर्षक से 2006 में हुआ। हिंदी में यह वाणी प्रकाशन से 'मुझे घर ले चलो' शीर्षक से 2007 में प्रकाशित हुई।

इस भाग का हिंदी अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है। इसमें तसलीमा ने निर्वासन के बाद के अपने जीवन का विस्तृत ब्योरा दिया है। इसमें स्वीडन से लेकर अमेरिका तक विभिन्न देशों में भ्रमण, आमंत्रण आदि के आधार पर तसलीमा के समृद्ध होते अनुभव को देखा जा सकता है।

6. नहीं, कहीं कुछ भी नहीं : छठे भाग का प्रकाशन 'नेइ, किछु नेइ' शीर्षक से बांग्ला में 2010 में हुआ। इसका हिंदी संस्करण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 'नहीं, कहीं कुछ भी नहीं' शीर्षक से 2012 में प्रकाशित हुआ। इस संस्करण का हिंदी अनुवाद सुशील गुप्ता ने किया है। यह एक लम्बे पत्र के रूप में लिखी गयी है। यह पत्र तसलीमा ने अपनी माँ के नाम लिखा है। इस पूरे पत्र में तसलीमा पश्चाताप से भरी नजर आती हैं। यह पश्चाताप है अपनी माँ को वह सम्मान न दे पाने का जिसकी वह वास्तव में हकदार थीं।

7. निर्वासन : सातवाँ खंड मूलतः 'निर्वासन' शीर्षक से 2013 में प्रकाशित हुआ। इसका हिंदी संस्करण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से 'निर्वासन' शीर्षक से 2014 में प्रकाशित हुआ। इस खंड का हिंदी अनुवाद अमृता बेरा ने किया है। इसमें तसलीमा ने पश्चिम बंगाल से अपने निर्वासन की कथा और राजनीतिक निर्णयों और उनके विरुद्ध चली गयी चालों को व्यक्त किया है।

उपरोक्त के अतिरिक्त एक अन्य पुस्तक 'Bangladesh A Country Of Terrorism' भी लिखी है, जो उनके लेखन और उनके कार्यों का क्रमिक परिचयात्मक विवरण देती है।

2.3 तसलीमा के साहित्य की संवेदना : अभिव्यक्ति के प्रमुख विषय

कहते हैं, 'अंदाज-ए-बयाँ ही रंग लाता है वरना दुनिया में कोई बात नई नहीं होती'। हम जितनी भी चीजें सोचते हैं या करते हैं या लिखते हैं वह हमसे पूर्व भी सोची, व्यतीत की या लिखी जा चुकी होती हैं। साहित्य के सन्दर्भ में भी यही है। तसलीमा का लेखन भी इसी मान्यता के इर्द-गिर्द घूमता है। तसलीमा के समस्त साहित्यकर्म को देखने के बाद यह नहीं कह सकते कि तसलीमा ने जो कुछ भी

लिखा वह सर्वथा नवीन है। वस्तुतः उनसे पहले भी काफी कुछ उन विषयों पर लिखा जा चुका है और उनके सामानांतर भी लिखा जा रहा है। किन्तु एक चीज है, जो तसलीमा के लेखन को अन्य से भिन्न बनाती है और वह है तसलीमा की विचार अभिव्यक्ति की शैली।

तसलीमा की रचनाओं का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि तसलीमा नसरीन का लेखन कुछ अवधारणाओं के इर्द-गिर्द घूमता है। वह है, 'धर्म', 'पितृसत्ता', 'राजनीति', 'प्रेम' और 'मानवतावाद'। तसलीमा के लेखन के मर्म और संवेदना को समझने के लिए इन शब्दों के अर्थ और उनके अंतर्संबंध को जानना अति आवश्यक है। किन्तु इस सम्बन्ध में यह कहने में कोई गुरेज नहीं कि इन तीनों का अन्तर्सम्बन्ध इतना जटिल है कि किसी एक पंक्ति में इसे समेटना संभव नहीं है। यही कारण है कि अगले अध्यायों में इन शब्दों की मूल अवधारणा और तसलीमा के द्वारा इस सम्बन्ध में की गयी अभिव्यक्तियों को समझने का कार्य किया गया है।

निष्कर्ष

तसलीमा के व्यक्तित्व को फ्रायड की व्याख्या के अनुसार यदि देखें तो ज्ञात होता है कि पाँच वर्ष की अवस्था तक उनका रचनात्मक रुझान समझ में आने लगता है। यह स्पष्ट होने लगता है कि यह व्यक्तित्व कला और रचनात्मकता की ओर ही जाएगा। इसी प्रकार युंग के द्वारा सुझाये गयी व्यक्तित्व की दो श्रेणियाँ (अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी) तसलीमा के व्यक्तित्व में भी दिखती हैं। गणपति चन्द्र गुप्त ने साहित्यकार के निर्माण में जिन तीन तत्वों (वंश परम्परा, वातावरण और द्वंद) को उत्तरदायी माना वे सभी तसलीमा के व्यक्तित्व में परिलक्षित होते हैं।

तसलीमा का रचनात्मक व्यक्तित्व और उनके विचार किसी एक दिन की घटना नहीं हैं, बल्कि उसने तमाम सामाजिक दबावों के फलस्वरूप आकार ग्रहण किया है। उन्होंने अपने जीवन की घटनाओं से सीखकर अपने विचारों को दिशा दी है। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व सामाजिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया है।

तसलीमा का जीवन दो ध्रुवों को समानांतर रूप से लेकर चलने वाला रहा है, जहाँ एक ओर उनका व्यावहारिक जीवन है, जो किसी भी आम स्त्री की तरह गुजरता है, जहाँ वह उन सभी समस्याओं से जूझती हैं, जिसका किसी भी आम स्त्री को सामना करना पड़ता है और दूसरी ओर साहित्यिक जीवन है, जहाँ ख्याति के साथ-साथ आलोचना भी है; जहाँ लेखन के लिए प्रशंसा और सम्मान है, तो उसी लेखन के लिए असंख्य आलोचना, निंदा और देश निष्कासन है। ऐसे दोहरे जीवन को लेकर चलने की राह सरल नहीं रही है। अतः कह सकते हैं, तसलीमा नसरीन एक जटिल एवं संघर्षपूर्ण व्यक्तित्व का नाम है।

तसलीमा के लेखन से गुजरते यह ज्ञात होता है कि जीवन से सीखे गये अनुभवों को उन्होंने लेखन का विषय बनाया। बचपन के आँगन से प्रौढ़ावस्था के परदेश तक, जीवन में जिन कुरीतियों को देखा और जिनका विरोध करना चाहा, लेकिन सामाजिक दबाव के कारण और स्वयं की झिझक

के कारण तत्काल उसका विरोध नहीं कर सकीं, उन्हीं कुरीतियों और सामाजिक समस्याओं को उन्होंने आत्मकथा और अन्य रचनाओं में वृहद् रूप में प्रस्तुत कर, उनपर प्रश्न उठाया है। एक ओर तसलीमा उसी जीवन को जीने को विवश रहीं और दूसरी ओर समस्त विवशता को परे रख, लेखन के माध्यम से उसका कड़ा विरोध किया।

तसलीमा की आत्मकथा के माध्यम से हम यह देख सकते हैं कि बचपन के दिनों में बेहद डरपोक रहीं तसलीमा के डर ने उन्हें लिखने का साहस दिया। निरंतर अनचाहे कार्यों को करते रहने की कुंठा ने तसलीमा को कलम उठाने पर मजबूर किया। कुरीतियों को दूर न कर पाने की अक्षमता ने लेखन के माध्यम से उनको सामने लाने और उन पर सवाल उठाने का बल दिया।

तसलीमा का लेखन निर्वासन के पूर्व जहाँ केवल बांग्लादेश की स्त्रियों के सम्बन्ध में चिन्तन तक ही सीमित था वहीं निर्वासन के बाद उस दृष्टि में विस्तार हुआ, जिसके कारण उनकी रचनाओं में विश्व की स्त्री भी नज़र आने लगी, उसकी समस्याओं का भी जिक्र होने लगा और धार्मिक, पितृसत्तात्मक और राजनीतिक सत्ताओं की समस्त विश्व की स्त्रियों के जीवन में भूमिका का भी मूल्यांकन किया गया।

इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि तसलीमा को 'तसलीमा' बनाने में बांग्लादेश की परिस्थितियों और मीडिया की बहुत बड़ी भूमिका रही है। परिवार, समाज और देश की कुरीतियों ने एक 'विद्रोही तसलीमा' को जन्म दिया। साथ ही, मीडिया के एक बड़े हिस्से ने उनका समर्थन किया। यदि अंतर्राष्ट्रीय मीडिया ने तसलीमा के मामले को हाथों-हाथ नहीं लिया होता, तो शायद आज तसलीमा की बांग्लादेश के कट्टरपंथियों द्वारा या तो हत्या कर दी गयी होती या फिर वे एक गुमनाम जीवन व्यतीत कर रही होतीं।

तसलीमा ने कुछ विषयों को ही केंद्र में रखकर लेखन किया है। यही कारण है कि सभी रचनाओं का उद्देश्य और प्रयोजन एक जैसा ही नज़र आने लगता है। ये विषय हैं -धर्म, पितृसत्ता,

राजनीति, मानवता और प्रेम । ये विषय घूम फिरकर हर रचना और हर आलेख में दिखाई पड़ते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि विषय का दोहराव सा महसूस होता है । किन्तु इस विषय के दोहराव का कारण यह है कि तसलीमा बार-बार उन्हीं विषयों को उठाकर उसकी संवेदनशीलता और उनपर चिन्तन किये जाने की आवश्यकता पर बल देती हैं । वे स्वयं को कुछ विषय में सीमित इसीलिए कर लेती हैं, जिससे अभिव्यक्ति का स्तर प्रबल हो और जो बात वह कहना चाहती है, वह कई विधाओं से होती हुई उसी रूप में पाठक तक पहुँचे और दूसरा यह कि स्त्रियों का जीवन उन्हें 'बेभाव प्रभावित' करता रहा है ।

आवश्यक टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ सूची

- ¹ <http://www.scotbuzz.org/2017/10/vyaktitv-evam-manav-vyavahar.html>, (12 October 2016).
- ² Handbook of Personality: Theory and Research, Ed.Olive P.John, Richard W.Robins, Lawrence A. Perwin, The Guilford Press, New York, London, 2008.
- ³ अरुण कुमार सिंह व आशीष कुमार सिंह (सं), व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, पृष्ठ-5.
- ⁴ वही, पृष्ठ-7.
- ⁵ वही, पृष्ठ-7.
- ⁶ वही, पृष्ठ-5.
- ⁷ वही, पृष्ठ-10-11.
- ⁸ डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत, पृष्ठ-12.
- ⁹ https://en.wikipedia.org/wiki/Gordon_Allport, (30 April 2017).
- ¹⁰ तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-32.
- ¹¹ इस्लाम में स्वीकार किये गये बारह महीनों - मुहर्रम, सफ़र, रबी-उल-अव्वल, रबी-उल-सानी, जमादिल अव्वल, जमादी-उल-आखिर, रजब, शाबान, रमजान, शव्वाल, जिल्काद, जिल्हज में से तीसरा महीना। बारह रबी-अल-अव्वल को इस्लाम धर्म अनुयायी 'मिलाद-ए-नबी' का पर्व मनाते हैं.
- ¹² इस्लाम में गुनाह या पाप की कई श्रेणियाँ बताई गयी हैं -गुनाह-ए-सगीरा, कबीरा-ए-गुनाह, सूरअलनिसा-4:31, 4:2, सूरा अल बकरा- 2:219, बुखारी, जिल्द 4, 2653 में इसका उल्लेख मिलता है। गुनाह-ए-सगीरा के अंतर्गत छोटे-छोटे गुनाह सम्मिलित हैं जैसे-किसी को गाली देना, धोखा देना, अपमान करना आदि. ये अच्छे अमल और इबादत की बरकत से माफ़ कर दिये जाते हैं . कबीरा-ए-गुनाह में 70 से अधिक गुनाह सम्मिलित किये गये हैं और वे तब तक माफ़ नहीं किये जाते, जब तक सच्चे दिल से तौबा कर उनसे हमेशा के लिए परहेज करने का वादा नहीं किया जाता. इनमें सबसे बड़ा गुनाह है 'शिरक' अर्थात् अल्लाह के साथ किसी और की भी इबादत करना.
- ¹³ तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-17.
- ¹⁴ वही, पृष्ठ-23.
- ¹⁵ वही, पृष्ठ-27.
- ¹⁶ वही, पृष्ठ-29.
- ¹⁷ वही, पृष्ठ-35.
- ¹⁸ वही, पृष्ठ-102.
- ¹⁹ वही, पृष्ठ-69.
- ²⁰ वही, पृष्ठ-73.
- ²¹ वही, पृष्ठ-105.
- ²² वही, पृष्ठ-121.
- ²³ वही, पृष्ठ-122.
- ²⁴ वही, पृष्ठ-158.
- ²⁵ वही, पृष्ठ-181.
- ²⁶ वही, पृष्ठ-189.
- ²⁷ वही, पृष्ठ-165.
- ²⁸ वही, पृष्ठ-179.
- ²⁹ वही, पृष्ठ-194.
- ³⁰ वही, पृष्ठ-237.

- 31 वही, पृष्ठ-239.
- 32 वही, पृष्ठ-265.
- 33 वही, पृष्ठ-268.
- 34 वही, पृष्ठ-269.
- 35 दयानिधि मिश्र (सं), लोक और साहित्य : अन्वय और समन्वय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृष्ठ-141.
- 36 वही, पृष्ठ-142.
- 37 वही, पृष्ठ-143.
- 38 तसलीमा नसरीन, उताल हवा, पृष्ठ-18.
- 39 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-271.
- 40 वही, पृष्ठ-272.
- 41 'गोल्लाछूट' गोल घेरा बनाकर खेला जाने वाला एक खेल है, जिसमें एक गोले से निकलकर दूसरे गोले में प्रवेश करना होता है . इसके दौरान यदि कोई दौड़ते समय गोले के बाहर ही छू जाता है, तो उसे चोर बना दिया जाता है.
- 42 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-286.
- 43 तसलीमा नसरीन, उताल हवा, पृष्ठ-16.
- 44 बांग्लादेश की प्रसिद्ध फ़िल्मी पत्रिका.
- 45 तसलीमा नसरीन, उताल हवा, पृष्ठ-21.
- 46 वही, पृष्ठ-141.
- 47 वही, पृष्ठ-103.
- 48 वही, पृष्ठ-105.
- 49 वही, पृष्ठ-131.
- 50 वही, पृष्ठ-137.
- 51 वही, पृष्ठ-142.
- 52 वही, पृष्ठ-172.
- 53 वही, पृष्ठ-188.
- 54 वही, पृष्ठ-426.
- 55 वही, पृष्ठ-143.
- 56 रूद्र मोहम्मद शहिदुल्लाह प्रसिद्ध बंगाली कवि थे. उन्हें उनकी प्रेमपूर्ण और क्रान्तिकारी कविताओं के लिए जाना जाता है. इनका जन्म बारिसाल, बांग्लादेश में 16 अक्तूबर 1956 को हुआ. 1991 में नशीली दवाओं के सेवन के कारण और सिफिलिस रोग के कारण मात्र 34 वर्ष की आयु में उनकी मौत हो गयी. ढाका में हर वर्ष उनकी स्मृति में 'रूद्र मेला' आयोजित किया जाता है . साहित्यिक कार्य - कविता संग्रह -'उपद्रित उपकूल', 'फिरे चाइ स्वर्णों ग्राम', 'मानुषेर मानचित्र', मौलिक मुखोस, लघु कथा - सोनाली शिशिर आदि हैं. पुरस्कार- मुनीर चौधरी मेमोरियल अवार्ड, उनका गीत 'आमार भीतोरो बाहिरे ओतोरे ओतोरे' जो कि अत्यंत प्रसिद्ध हुआ और जिसे बाद में विभिन्न गायकों द्वारा गाया गया, के लिए 'मरणोपरांत 'बांग्लादेश चलचित्र सांगबादिक समिति पुरस्कार' दिया गया.
- 57 तसलीमा नसरीन, उताल हवा, पृष्ठ-143.
- 58 वही, पृष्ठ-143.
- 59 द्विखंडित, पृष्ठ-28.
- 60 वही, पृष्ठ-25.
- 61 वही, पृष्ठ-46.
- 62 वही, पृष्ठ-57.
- 63 वही, पृष्ठ-121.

- 64 वही, पृष्ठ-134.
- 65 वही, पृष्ठ-150.
- 66 वही, पृष्ठ-191.
- 67 वही, पृष्ठ-212.
- 68 गिरीन्द्र शेखर बसु दक्षिण एशिया के प्रसिद्ध मनोविश्लेषक थे. उनका जन्म दरभंगा में और शिक्षा कोलकाता में हुई थी. उन्होंने सिगमंड फ्रायड से बीस वर्षों तक बात-चीत जारी रखी और उनकी इडिपल थ्योरी की आलोचना की. उन्हें 'फ्रायड इन एशिया' के नाम से भी जाना जाता है. 'लाल कालो' पुस्तक बांग्ला में लिखी गयी महत्वपूर्ण पुस्तक है.
- 69 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-260.
- 70 वही, पृष्ठ-348.
- 71 तसलीमा नसरीन, वे अंधरे दिन, पृष्ठ-92.
- 72 मोहन कृष्ण बोहरा, तसलीमा संघर्ष और साहित्य, पृष्ठ-137.
- 73 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो, पृष्ठ-120.
- 74 वही, पृष्ठ-75.
- 75 वही, पृष्ठ-70.
- 76 वही, पृष्ठ-320.
- 77 वही, पृष्ठ-95.
- 78 वही, पृष्ठ-127.
- 79 वही, पृष्ठ-180.
- 80 वही, पृष्ठ-201.
- 81 वही, पृष्ठ-307.
- 82 वही, पृष्ठ-262.
- 83 वही, पृष्ठ-105.
- 84 वही, पृष्ठ-249.
- 85 वही, पृष्ठ-162.
- 86 वही, पृष्ठ-349.
- 87 तसलीमा नसरीन, नहीं कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-36.
- 88 वही, पृष्ठ-224.
- 89 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-70.
- 90 वही, पृष्ठ-75.
- 91 वही, पृष्ठ-252.
- 92 तसलीमा नसरीन, यह दुःख : यह जीवन, पृष्ठ-88.
- 93 तसलीमा नसरीन, मुझे मुक्ति दो, पृष्ठ-68.
- 94 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, भूमिका.
- 95 वही, पृष्ठ-42.
- 96 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, पृष्ठ-33.
- 97 तसलीमा नसरीन, मुझे देना और प्रेम, पृष्ठ-17.
- 98 <http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-national/tp-kerala/Taslimarsquo-slsquoShame-Againrsquo-in-Malayalam/article16622293.ece>, (18April 2017).

तृतीय अध्याय

तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म का स्वरूप

तृतीय अध्याय

तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म का स्वरूप

भूमिका

3.1 धर्म की संकल्पना : एक परिचय

(क) धर्म की व्युत्पत्ति का कारण

(ख) धर्म की व्युत्पत्ति सम्बन्धी विविध सिद्धान्त

(अ) उद्विकासवादी सिद्धान्त

(आ) प्रकार्यवादी सिद्धान्त

(इ) मार्क्सवादी सिद्धान्त

(ई) प्रोटेस्टेंट आचार और पूँजीवाद की आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्त

(उ) नृतत्ववैज्ञानिक मत

(ऊ) सामाजिक संरचनावाद

(ग) धर्म का क्रमिक विकास

(अ) आदिम युग में धर्म

(आ) मध्य युग में धर्म

(इ) आधुनिक युग में धर्म

(घ) धर्म की शाब्दिक व्युत्पत्ति और उसका अर्थ

(च) धर्म की परिभाषा

(अ) कोशगत परिभाषा

(आ) पाश्चात्य परिभाषा

(इ) प्राच्य परिभाषा

(छ) धर्म का स्वरूप

(ज) विश्व के विभिन्न धर्म

(अ) धर्म का वर्गीकरण

(आ) विश्व के विभिन्न धर्मों का परिचय

(इ) धर्म की जनसांख्यिकी

(झ) धर्म सुधार के प्रयास

(अ) यूरोपीय धर्म सुधार

(आ) भारतीय धर्म सुधार

(इ) बंगाल में धर्म सुधार

(ट) धर्म के लिए साझा प्रयास

3.2 तसलीमा का धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण

(क) धर्म की आलोचना

(ख) धर्म की आलोचना के लिए प्रेरित करने वाले कारक

(अ) पारिवारिक परिस्थितियाँ

(आ) सामाजिक परिस्थितियाँ

(इ) राजनीतिक परिस्थितियाँ

(ग) धर्म की आलोचना में प्रस्तुत तर्क

(अ) धर्म पितृसत्ता का पोषक है

(आ) धर्म का इस्तेमाल सहूलियत के लिए

(इ) धर्म पाखंड की शरण स्थली है

(ई) धर्म भय के कारण उत्पन्न है एवं भय और लालच उत्पन्न करता है

- (उ) धर्म और धर्मग्रन्थ मनुष्य द्वारा रचे गये प्रपंच हैं
- (ऊ) धार्मिक शिक्षा घातक है और अलगाववाद उत्पन्न करती है
- (ऋ) अंतरजातीय विवाह : बंधन या धर्म से मुक्ति
- (ए) धार्मिक ग्रन्थ अवैज्ञानिक एवं अतार्किक हैं
- (ऐ) धर्म साम्प्रदायिकता और धार्मिक कट्टरता के लिए उत्तरदायी है
- (ओ) पश्चिमी देश भी धर्मान्धता से ग्रस्त हैं
- (औ) धर्म की आलोचना की स्वतंत्रता होनी चाहिए
- (अं) धर्म अनावश्यक व्यवस्था है

निष्कर्ष

भूमिका

हम सभी जानते हैं, 'धर्म' एक ऐसा मसला है, जिस पर एकमत होना बहुत ही कठिन है। इसका कारण, विश्व में असंख्य धर्मों का अस्तित्व और उन धर्मों की असंख्य व्याख्याएँ एवं तत्संबंधी मान्यताएँ हैं। एक तरफ 'धर्म' मनुष्य को निर्देशित करता है और अलौकिक से संपर्क साधने का माध्यम बनता है, वहीं दूसरी ओर उसकी कई नकारात्मक भूमिका भी दिखाई देती है। धर्म की इस नकारात्मक भूमिका पर बोलने का साहस बहुत ही कम लोग कर पायें हैं। तसलीमा नसरीन उनमें से एक हैं। इस सम्बन्ध में उनका आत्मकथेतर साहित्य धर्म पर खुलकर प्रहार करता चलता है तो आत्मकथा उन कारणों और उन परिस्थितियों का ब्योरा देती चलती है, जिसके कारण तसलीमा ने धर्म के विरुद्ध कलम चलाई।

प्रस्तुत अध्याय में लेखिका के धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया गया है, जो डंके की चोट पर यह घोषणा करती है कि 'धर्म का समूल नाश कर दिया जाना चाहिए'। उनके इस नाद को सुन धार्मिक कट्टरपंथी इतने भड़क क्यों उठे ? 'धर्म को मानने का अधिकार है, तो धर्म की आलोचना का अधिकार भी होना चाहिए' इस सूत्र वाक्य के द्वारा तसलीमा ने धर्म का विकल्प खोजने का मार्ग ही तो ढूँढना चाहा है। ऐसे में हवा में लहराती तलवारों और सड़कों पर उतरे लाखों लोगों के तमतमाते चेहरों को देखकर भी तसलीमा स्वयं के भय को दरकिनार कर किस तरह 'धर्म' को 'भय' के रूप में प्रतिस्थापित कर पायीं और किस तरह उससे मुक्ति के अपने संकल्प पर डटी रह सकीं, यह अध्याय उन परिस्थितियों से गुजरने के साथ-साथ तसलीमा के द्वारा धर्म की आलोचना में प्रस्तुत तर्कों का भी तमाम प्रमाणों के आधार पर पुनर्मूल्यांकन करता है।

तसलीमा के धर्म सम्बन्धी मत को समझने से पहले यह देखा जाना आवश्यक जान पड़ता है कि धर्म के सम्बन्ध में समाज में प्रतिस्थापित मत क्या हैं ? कौन-कौन से दृष्टिकोण हैं और समाज में उसे किस रूप में स्वीकार किया गया है ? इसी के आधार पर यह समझा जा सकेगा कि तसलीमा ने

धर्म के किस रूप का विरोध किया है। इसीलिए यहाँ पहले धर्म सम्बन्धी सामान्य मान्यताओं, सिद्धान्तों और विश्व के विभिन्न धर्म और तत्सम्बन्धी मान्यताओं का उल्लेख करने के बाद ही तसलीमा के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया गया है। धर्म की सामान्य मान्यताओं और तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देख सकते हैं -

3.1 धर्म की संकल्पना : एक परिचय

'धर्म' शब्द से प्रायः हर मनुष्य परिचित है, किन्तु जब व्यवहार में उतरते हैं, तो हम पाते हैं कि इस छोटे से शब्द के कई अर्थ, असंख्य व्याख्याएँ और विविध सिद्धान्त हैं, जिसके कारण इस शब्द का अर्थ बहुत अधिक जटिल हो जाता है। ऐसे में अखिलेश मिश्र के आलेख 'आस्था की आदत में बिचौलियों की दलाली' की कुछ बातें इस संदर्भ में सटीक साबित होती हैं। वे लिखते हैं, "धर्म क्या है ? सवाल जरा बेतुका है। कौन नहीं जानता कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है। पिताजी कहते थे धर्म-अधर्म कुकुर भी जानता है तब आदमी क्यों नहीं जानेगा ? लेकिन जब समझते हैं तो समझाने वालों की इतनी भीड़ क्यों है, क्या कमी है ? मोटे पोथे लिखे गये हैं, हर भाषा में हैं। न जाने कितने महापुरुष इस काम में जुटे। शास्त्रार्थ हुए, तकरार हुई, सर फूटे, तलवारें बजी, खून बहा। क्यों ? धर्म समझाने के लिए।" तसलीमा के धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझने के लिए यह आवश्यक है कि धर्म सम्बन्धी अन्य मान्यताओं, विश्वासों और सिद्धान्तों से भी परिचित हो लिया जाय। इसी कारण यहाँ पहले धर्म से सम्बंधित मान्यताओं को स्पष्ट किया गया है तत्पश्चात् तसलीमा की दृष्टि को देखा गया है।

(क) धर्म की व्युत्पत्ति का कारण :

'धर्म' साधारणतया एक अलौकिक तत्व माना जाता है, जो मनुष्य को 'सद्प्रवृत्तियों की ओर प्रेरित' और 'दुष्प्रवृत्तियों से विमुख' करता है। धर्म ने ही सम्पूर्ण विश्व को धारण किया हुआ है। किन्तु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि धर्म अस्तित्व में कैसे आया और उसके अस्तित्व के पूर्व मनुष्य किस प्रकार नियंत्रित था ?

विश्व की प्राचीनतम् सभ्यताओं में से एक 'सिन्धु घाटी सभ्यता' इसका प्रमाण है कि मानव सभ्यता के विकास के समय से ही मनुष्य किसी अलौकिक सत्ता में विश्वास करता आया है। पृथ्वी के विकास के विभिन्न कल्पों से गुजरते हुए जब से वानर से 'होमो सेम्पियंस' का विकास हुआ, मनुष्य प्रकृति से भयभीत होता रहा है। 'हड़प्पा सभ्यता' या समकालीन सभ्यताओं जैसे 'मेसोपोटामिया' और 'मिश्र की सभ्यताओं' से प्राप्त मूर्तियों बल्कि उससे पूर्व प्राप्त गुफाओं के भित्ति-चित्र आदि इस बात के प्रमाण हैं कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य का किसी दैवीय तत्व में विश्वास बढ़ता गया। इस दैवीय शक्ति में विश्वास ने एक तरफ किसी अलौकिक सत्ता के प्रति लोगों के विश्वास को बढ़ाया, वहीं स्थानीय स्तर पर लोगों के बर्बर स्वरूप को न केवल स्थायित्व प्रदान किया बल्कि उन्हें सभ्य बनाया। हड़प्पा सभ्यता में लोगों के रहने खाने-पीने और आपसी सम्बन्ध के विषय में कुछ नियम अवश्य ही रहे होंगे। ऐसा इसलिए अनुमानित किया जा सकता है क्योंकि उनके रहन-सहन का एक सुव्यवस्थित ढाँचा वहाँ से प्राप्त होता है। इन नियमों ने सभ्यता के विकास क्रम में आगे चलकर रूढ़ी का रूप ले लिया और इसी सामाजिक नियंत्रण के नियमों ने आगे चलकर 'धर्म' का रूप धारण किया।

इस्लाम धर्म में भी इस बात का उल्लेख है कि जब पश्चिमी एशिया में लोगों की बर्बरता बढ़ गयी तो उन्हें नियंत्रित करने के उद्देश्य से ही अल्लाह ने पैगम्बर मुहम्मद को भेजा, जिन्होंने अपनी शिक्षाओं और नूरानी किताब 'कुरान' के माध्यम से लोगों को बर्बर से सभ्य बनने और अलौकिक के प्रति अपनी आस्था को दृढ़ करने की शिक्षा दी। इस प्रकार धर्म का विकास हुआ, जिसके लिए प्रारम्भ में कोई शब्द निर्धारित नहीं था। किन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ नियमों के बदलाव एवं कुछ नियमों के स्थायित्व में धर्म एक स्थायी तत्व बन गया, जिसका लोगों के द्वारा पालन किया जाने लगा।

(ख) धर्म की व्युत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्त :

(अ) उद्-विकासवादी सिद्धान्त : इसके समर्थक मैक्समूलर और टाइलर हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार प्राकृतिक शक्तियों की उपासना से ही धर्म का भी विकास हुआ। इसमें धर्म की व्याख्या व्यक्तिगत अथवा मनोवैज्ञानिक धारणाओं के संदर्भ में की गयी।

(i) 'जीववाद' या 'आत्मावाद' (एनिमिज्म) सिद्धान्त : मानववादी टॉयलर ने यह मत प्रस्तुत किया। किसी जीवित व्यक्ति अथवा भौतिक सावयव के स्थूल शरीर में एक सर्वथा भिन्न प्राकृतिक तत्व की विद्यमानता को 'जीववाद' कहते हैं। जीववाद आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है और इस आत्मा में केवल मनुष्यों की ही नहीं बल्कि प्रेतात्माओं और शक्तिशाली देवी-देवताओं की आत्मा भी सम्मिलित है और ये संसार में विचरण करती रहती हैं। उनके अनुसार यह आत्मवाद ही सभी धर्मों का मूल है।

(ii) प्रकृतिवाद : दूसरी तरफ मैक्समूलर ने धर्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'प्रकृतिवाद' का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उनके अनुसार धर्म का प्रारम्भ उस समय हुआ जब आदिम मनुष्य ने प्रकृति के विभिन्न पदार्थों सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु आदि की उपासना करना प्रारंभ किया। फ्रेज़र ने 'द गोल्डन बो' में धर्म का प्रारंभ जादू से स्वीकार किया। उनके अनुसार धर्म की उत्पत्ति की दो अवस्थाएँ रहीं- पहली अवस्था में आदिम मनुष्य ने जादू-टोने से प्राकृतिक तत्वों पर नियंत्रण करने का प्रयास किया और दूसरी अवस्था में जब वह प्राकृतिक शक्तियों पर नियंत्रण नहीं कर सका तो उसने उन शक्तियों की उपासना प्रारंभ कर दी।

धर्म की उत्पत्ति सम्बन्धी विविध सिद्धान्त

- ⇒ उद्-विकासवादी ⇒ जीववाद - टॉयलर
- ⇒ प्रकार्यवादी ⇒ प्रकृतिवाद - मैक्समूलर
- ⇒ प्रकार्यवादी - इमाइल दुर्खीम, मैलिनास्की, टॉलकाट, पारसंस
- ⇒ प्रोटेस्टेंट आचार और पूँजीवाद की आत्मा का सिद्धान्त - मैक्स वेबर
- ⇒ मार्क्सवादी सिद्धान्त - जार्ज लुकाच, मार्क्स, एंटोनियो ग्रांशी
- ⇒ नृत्य वैज्ञानिक मत - जॉन मोनाघन और पीटर जस्ट
- ⇒ सामाजिक संरचनावाद - डेनियल डबसन, टिमोथी फिज़राल्ड, तलाल असद, जेसन अनंदा जोसेफसन

(आरेख -3.1)

(आ) प्रकार्यवादी सिद्धान्त : प्रकार्यवादियों ने धर्म को पूर्णतः सामाजिक परिघटना के रूप में देखा है। उनका मानना है कि समाज के भाग के रूप में धर्म की उत्पत्ति स्वयं समाज के द्वारा की गयी है और समाज के एक अंग के रूप में धर्म समाज को बनाये रखने हेतु कुछ निश्चित प्रकार्यों को सम्पन्न करता है। धर्म का प्रकार्यवादी विश्लेषण प्रस्तुत करने वाले विद्वानों में इमाइल दुर्खीम, मैलिनास्की, टॉलकाट, पारसंस आदि प्रमुख हैं। दुर्खीम की पुस्तक 'दि एलीमेंट्री फॉर्म्स ऑफ़ द रेलिजस लाइफ' के अनुसार धर्म सर्वथा सामाजिक मसला है और प्रत्येक धर्म समाज को एक समुदाय के रूप में एकताबद्ध करता है। धर्म पवित्र है और कोई वस्तु अपने अन्तर्निहित गुणों या उपयोगितावादी मूल्यों के कारण पवित्र नहीं होती बल्कि इसलिए होती है क्योंकि समाज इन्हें विशेष आदर या सम्मान देता है। दुर्खीम ने आस्ट्रेलिया की 'अरुन्टा' जनजाति में प्रचलित 'टोटमवाद' (किसी वस्तु या चित्र को प्रतीक मानकर उसे पवित्र घोषित कर उसकी उपासना की प्रथा) को धर्म की उत्पत्ति

का आधार माना है। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म की उत्पत्ति का मूल कारण सामाजिक जीवन से प्राप्त होने वाली उत्तेजना है।

मैलिनास्की ने ट्रोंम्बीयाँ के द्वीपवासियों में से मछुआरों के जीवन का अध्ययन करते समय पाया कि यहाँ के लोगों को जीवन यापन के लिए मछली पकड़ने के लिए समुद्र में उतरना पड़ता है। उसी में उन्हें तमाम संघर्षों से गुजरना होता है। इन संघर्षों के दौरान वे विभिन्न प्रकार की भावनाओं क्रोध, भय, उदासी और विभिन्न प्रकार की आपदाओं के शिकार होते हैं। ऐसे में इन पर नियंत्रण के लिए वे कुछ क्रियाकलापों को करने लगे। इन क्रियाकलापों ने ही धर्म की नींव रखी। इसी कारण मैलिनास्की ने कहा कि धर्म प्रतिकूल परिस्थितियों में संघर्ष के साधन का कार्य करता है और तनाव से मुक्ति प्रदान करता है।

टॉलकाट पारसंस ने धर्म का प्रकार्यवादी विश्लेषण प्रस्तुत किया। इसके आधार पर समझाया कि धर्म का उद्भव समाज के एकीकरण एवं प्रतिमान अनुरक्षण जैसी प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु समाज द्वारा स्वयं किया गया है और यह समाज की इन आवश्यकताओं को पूरा करके समाज के अस्तित्व एवं उसकी निरंतरता को बनाये रखने में प्रकार्यकारी भूमिका अदा करता है और सामाजिक एकता स्थापित करता है।

(इ) मार्क्सवादी सिद्धान्त : जोर्ज लुकाच, मार्क्स, फ्रेडरिक एंगल्स, एंटोनियो ग्राम्शी आदि इस सिद्धान्त को प्रस्तुत करने वाले महत्वपूर्ण नाम हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार अर्थव्यवस्था और उत्पादन प्रणाली को समाज का आधार माना गया है और धर्म, राजनीति, कला, साहित्य आदि को अर्थव्यवस्था के द्वारा निर्धारित माना गया है। मार्क्सवादियों का मत है कि साम्यवादी व्यवस्था में धर्म का लोप हो जाएगा।

(ई) 'प्रोटेस्टेंट आचार और पूँजीवाद की आत्मा' का सिद्धान्त : मैक्स वेबर ने धर्म के

सम्बन्ध यह सिद्धान्त प्रस्तुत कर सामाजिक अर्थव्यवस्था के निर्धारण में धार्मिक विश्वासों की भूमिका को स्पष्ट किया। एक निश्चित प्रकार के विचार और निश्चित व्यवस्था के बीच ही आर्थिक संगठन बनाया जा सकता है और यह व्यवस्था स्थापित की है- प्रोटेस्टेंट धर्म ने। उनका कहना है कि प्रोटेस्टेंट धर्म के आर्थिक आचारों के फलस्वरूप ही आधुनिक पूँजीवाद का विकास संभव हो पाया है। जिन देशों में पूँजीवाद का विकास नहीं हुआ वे या तो कैथोलिक थे या गैर-प्रोटेस्टेंट देश थे।

(उ) नृत्यवैज्ञानिक मत : जॉन मोनाघन और पीटर जस्ट के अनुसार विश्व के कई महान

धर्मों का विकास पुनरोद्धार आन्दोलन के रूप में हुआ। दुनिया में कई बार कई जगहों पर कुछ करिश्माई व्यक्ति उभरे। यह उन धर्मों के लिए दीर्घ अवधि सफलता के रूप में सिद्ध हुई और इनके ही दीर्घ अवधि संबंधों के कारण कई आन्दोलन हुए।

(ऊ) सामाजिक संरचनावाद : इसके अनुसार धर्म एक आधुनिक अवधारणा है, जो

अब्राहिमी धर्मों के मॉडल के अनुसार उन सभी आध्यात्मिक अभ्यासों और पूजा-पाठ आदि का पालन करने का सुझाव देता है, जो कि वास्तविकता और मनुष्य के जीवन के सत्य को अभिव्यक्त करने में सहयोग करते हैं। इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में उल्लेखनीय विद्वान हैं - डेनियल डबसन, टिमोथी फिज़राल्ड, तलाल असद, जेसन अनंदा जोसेफसन आदि। सामाजिक संरचनावादियों का मानना है कि धर्म एक आधुनिक विचार है, जिसका जन्म ईसाइयत से हुआ और गैर-पाश्चात्य संस्कृतियों में अनुचित तरीके से लागू और अनुप्रयुक्त किया गया।

(ग) धर्म का क्रमिक विकास :

(अ) आदिम युग में धर्म : इस समय धर्म का जन्म प्रकृति से भय रूपी मानसिकता के रूप

में हुआ, जो आगे चलकर क्रमशः 'राजधर्म' में परिवर्तित हो गया। इस यात्रा में धर्म लोगों को निर्देशित

और नियंत्रित करने वाले मार्ग के रूप में भी प्रयुक्त हुआ। प्राचीन कल में धर्म राजधर्म हुआ करता था, 'राजाओं का धर्म' ही 'प्रजा का धर्म' हुआ करता था।

(आ) मध्य युग में धर्म : मध्ययुगीन धर्म एवं दर्शन के प्रमुख प्रतिमान थे- स्वर्ग की कल्पना, सृष्टि एवं जीवों के कर्ता रूप में ईश्वर की कल्पना, लौकिक जीवन की निरर्थकता का बोध, अपने देश एवं काल की माया एवं प्रपंचों से परिपूर्ण अवधारणा। धर्म के व्याख्याताओं ने संसार के प्रत्येक क्रियाकलाप को ईश्वर की इच्छा माना तथा मनुष्य को ईश्वर के हाथों की कठपुतली के रूप में स्वीकार किया। दार्शनिकों ने व्यक्ति के वर्तमान जीवन की विपन्नता का हेतु 'कर्म-सिद्धान्त' के सूत्र में प्रतिपादित किया। इसकी परिणति मध्ययुग में यह हुई कि वर्तमान की सारी मुसीबतों का कारण 'भाग्य' अथवा ईश्वर की इच्छा को मान लिया गया। धर्म के ठेकेदारों ने पुरुषार्थवादी-मार्ग के मुख्य-द्वार पर ताला लगा दिया। समाज या देश की विपन्नता को उसकी नियति मान लिया गया। समाज स्वयं भी भाग्यवादी बनकर अपनी सुख-दुःखात्मक स्थितियों से सन्तोष करता रहा। इस युग को हजारी प्रसाद ने 'पतनोन्मुख एवं जब्दी हुई मनोवृत्ति' से ग्रस्त कहा है।

(इ) आधुनिक युग में धर्म : आज के मनुष्य की रुचि अपने वर्तमान जीवन को सँवारने में अधिक है। उसका ध्यान 'भविष्योन्मुखी' न होकर 'वर्तमानोन्मुख' है। वह दिव्यता को अपनी ही धरती पर उतार लाने के प्रयास में लगा हुआ है। वह पृथ्वी को ही स्वर्ग बना देने के लिए बेताब है। इसलिए 'भाग्यवाद' के स्थान पर 'भौतिकतावाद' की स्थापना हुई। काल महत्वपूर्ण हो गया। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि धर्म सम्बन्धी पूर्व की सभी मान्यताओं का पूर्णतः नाश हो गया। बल्कि यह आश्चर्य का विषय है कि वर्तमान में धर्म सम्बन्धी सभी मान्यताएँ एक साथ समानांतर रूप में चल रही हैं। यहाँ प्रकृति से भय रखने वाले, प्रकृति उपासक आदिवासी के रूप में विद्यमान हैं तो वहीं मध्ययुगीन मानसिकता से ग्रस्त देश भी हैं, जिन्होंने धर्म को राजधर्म बनाने की कोई कसर बाकी नहीं

रखी और ऐसे भी लोग हैं जो धर्म के विकल्प की तलाश कर रहे हैं और उससे उबर आने का मार्ग खोज रहे हैं।

(घ) धर्म की शाब्दिक व्युत्पत्ति और उसका अर्थ :

धर्म को समझने के लिए सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि पश्चिम के 'रिलीजन' और पूर्व के 'धर्म' में पर्याप्त अंतर है। इनकी शाब्दिक उत्पत्ति और अर्थ भिन्न भिन्न हैं।

'Religion' जिसे सामान्यतः धर्म का पर्यायवाची माना जाता है, का अर्थ 'पवित्रता', 'एक प्रकार से ईश्वर के प्रति श्रद्धा', 'ईश्वर और मनुष्य के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का माध्यम' है। यह शब्द लैटिन के 'Religio' से उत्पन्न है। सिसरो के अनुसार इसका शाब्दिक अर्थ है 'ईश्वर की उपासना के लिए ठीक प्रकार से किये गये क्रियाकलाप'। किन्तु आधुनिक दार्शनिकों जैसे टॉम हार्पर और जोसेफ कैम्पबेल आदि ने इसकी शाब्दिक उत्पत्ति के सम्बन्ध में संत ऑगस्टीन के मत को स्वीकार किया है, जिन्होंने रेलिजन की शाब्दिक उत्पत्ति 're-ligare' से मानी है, जिसमें 're' का अर्थ है 'पुनः' और 'ligare' का अर्थ है 'जुड़ना' अर्थात् 'ईश्वर के साथ पुनः जुड़ना'।

यूरोपीय समाज के प्राचीन और मध्यकाल में 'religio' को सदैव 'पूजा या उपासना के व्यक्तिगत क्रियाकलापों या व्यवहारों' से जोड़कर देखा गया, किन्तु बाद में इसने सामाजिक स्वरूप धारण कर लिया। 1200 ई. के आसपास जब यह अंग्रेजी के 'religion' से जोड़कर देखा जाने लगा तब इसे 'धार्मिक प्रतिज्ञा' के रूप में देखा गया। 1500 ई. के आसपास पहली बार 'रिलिजन' शब्द का प्रयोग 'चर्च या धार्मिक संस्था' और 'नागरिक या प्रशासनिक संस्थाओं' के भेद को स्पष्ट करने के लिए किया गया। 16वीं सदी में प्रोटेस्टेंट आन्दोलन और बढ़ते वैश्वीकरण ने religion की अवधारणा को विस्तार दिया।

संस्कृत शब्द 'धर्म' का सम्बन्ध 'नियमों' से है। भारतीय संस्कृति में धर्म का अर्थ अन्य देशों की तरह 'रिलीजन' या 'सम्प्रदाय परक' नहीं रहा है। उसे तो विद्या के, ज्ञान के सूत्रों के अनुरूप 'जीवन

का अनुशासन' कहा जाता रहा है। यहाँ प्रयुक्त होने वाला 'धर्म' शब्द संस्कृत की 'धृ' धातु से व्युत्पन्न है, जिसमें 'धृ' का अर्थ है 'धारण करना', अर्थात् 'जिसे धारण किया जा सके वह धर्म है'। यह धारण करना है 'नियमों का', 'उचित मार्गों का', 'नैतिकता' आदि का। 'धरीयते लोकःअनेन' अर्थात् जिसके द्वारा लोक धारण किया जाता है या 'धारयति लोकम्' अर्थात् जो लोक को धारण करे आदि पद धर्म को व्याख्यायित करते हैं। धारण करने के संदर्भ में धर्म के अर्थ को देखें तो धारणार्थक 'धृज' धातु में 'मन' प्रत्यय उपसर्गपूर्वक धर्म की व्युत्पत्ति हुई है। अस्तु कह सकते हैं कि जो तत्व प्राणियों का पोषक, संरक्षक और संवर्धक हो उसे 'धर्म' कहते हैं।

धर्म के लिये एक अन्य शब्द 'वृष' का भी प्रयोग किया जाता है। 'वर्षति अभीष्टान्कामान् इति वृषः' अर्थात् सभी प्रकार की कामनाओं को जो पूर्ण कर दे उसे 'वृष' कहते हैं। मनुस्मृति में इसका उल्लेख इस प्रकार है-

वृषो हि भगवान्धर्मस्तरस्य यः कुरुते ह्यलम।

वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥²

अर्थात् भगवान् धर्म को 'वृष' कहते हैं, जो मनुष्य उसका नाश करता है उसे देवता लोग 'वृषल' (धर्म को काटने वाला) अर्थात् शूद्र कहते हैं, अतएव धर्म का नाश न करें।

प्रसिद्ध भाषाविद् मैक्समूलर जिन्होंने भारतीय, मिश्र और फारसी संस्कृतियों का अध्ययन किया, ने भी रेलिजन शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'religio' से ही स्वीकार की और उसका अर्थ 'ईश्वर के प्रति श्रद्धा' बताया जैसा कि सिसरो ने भी पूर्व में बताया था। वास्तव में प्राचीन काल में जिसे 'नियम या मनुष्य को निर्देशित करने वाले मार्ग' के रूप में देखा गया वह अब 'रेलिजन' या 'ईश्वर या किसी विशेष ईश्वर की उपासना मात्र' से जुड़ गया है, जिसके कारण सभी धर्मों में अपने-अपने ईश्वर को लेकर कट्टरता बढ़ी है।

(च) धर्म की परिभाषा :

अभी तक धर्म की कोई एक सार्वभौमिक परिभाषा नहीं की जा सकी है क्योंकि धर्म की अवधारणा भिन्न-भिन्न रूप में ग्रहण की गयी है। अब तक दी गयी परिभाषाओं को तीन श्रेणियों में बाँटकर देख सकते हैं -

(अ) शब्दकोश के अनुसार :

'हिन्दू विश्वकोश' में धर्म को किसी वस्तु में निहित गुणों के संदर्भ में कुछ इस प्रकार परिभाषित किया गया है, "किसी वस्तु की विधायक आंतरिक वृत्ति को उसका धर्म कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ का व्यक्तित्व जिस वृत्ति पर निर्भर है, वही उस पदार्थ का धर्म है।³

'ऑक्सफ़ोर्ड इंग्लिश हिंदी डिक्शनरी' के अनुसार - 'रिलिजन एक संज्ञा शब्द है, जिसका अर्थ है ईश्वर या देवताओं की सत्ता में विश्वास या धर्म।'⁴

'उर्दू-हिंदी-कोश'- धर्म के लिए उर्दू में 'दीन' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है 'धर्म या मजहब'।⁵

'संक्षिप्त हिंदी शब्दकोश' के अनुसार धर्म के अर्थ हैं -

1. ईश्वरीय श्रद्धा व पूजा पाठ, ईश्वरीय उपासना, अराधना आदि
2. सामाजिक कर्तव्य
3. पदार्थ का मूलभूत गुण
4. नैतिक या व्यावहारिक नियम
5. सदाचार 6. पुण्य, सत्कर्म
7. न्यायशीलता और विवेक।⁶

'ज्ञान शब्द कोश' में धर्म का अर्थ इस प्रकार दिया गया है - 'अभ्युदय और निःश्रेयस का साधनभूत वेद विहित कर्म (जैसे यज्ञ); एक प्रकार का अदृष्ट जिससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है (मीमांसा);

लौकिक सामाजिक कर्तव्य; वह कर्म जिसे वर्ण, आश्रम, जाति आदि की दृष्टि से करना आवश्यक हो (इसके पाँच भेद हैं- 1. वर्णधर्म 2. आश्रमधर्म 3. वर्णाश्रम धर्म 4. गौण धर्म 5. नैमित्तिक धर्म); उपमेय और उपमान में रहने वाला साधारण गुण; ऋषि, मुनि या आचार्य द्वारा निर्दिष्ट वह कृत्य जिससे परलौकिक सुख प्राप्त हो; किसी वस्तु या व्यक्ति में सदा बनी रहने वाली सहज वृत्ति, स्वभाव प्रकृति; ईश्वर या सद्गति की प्राप्ति के लिए किसी महात्मा या पैगम्बर द्वारा प्रवर्तित मतविशेष; आप्त, आचार्य, राजा या सरकार द्वारा निर्दिष्ट लोकव्यवहार सम्बन्धी नियम; पुण्य ; निष्पक्षता; औचित्य; सत्संग; तरीका, ढंग; यम राज; आचार; अहिंसा; उपनिषद्; न्याय; धनुष; सोमपायी; आत्मा; कुंडली में लग्न से नौवां स्थान; ईमान ।⁷

'ज्ञान शब्दकोश' में अरबी शब्द 'दीन' का अर्थ है - धर्म, मजहब या पंथ ।⁸

(आ) पाश्चात्य परिभाषा :

इसके अंतर्गत आने वाली ज्यादातर परिभाषाओं ने 'धर्म' को 'रिलिजन' के सन्दर्भ में देखा है। बहुत से विद्वानों ने इसे परिभाषित करने में कठिनता महसूस की है और कई का मानना है कि इस शब्द का प्रयोग गैर पाश्चात्य देशों या संस्कृतियों के सन्दर्भ में नहीं किया जा सकता।

फ्रेडरिक हेगल ने रिलिजन को परिभाषित करते हुए कहा कि 'रिलिजन वह है, जिसमें दिव्य आत्मा लौकिक या परिमित आत्मा के माध्यम से स्वयं के प्रति जागरूक होती है ।'⁹

एडवर्ट बर्नट टेलर के अनुसार, "धर्म अलौकिक सत्ता में विश्वास है ।"¹⁰

'वेराइटीज ऑफ़ रिलीजियस इक्स्पीरियंस' में विलियम जेम्स धर्म को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि धर्म, "ऐसा अनुभव या कार्य है जो अकेलेपन में व्यक्ति को किसी दैवीय सत्ता से जोड़ता है ।"¹¹

एमाइल दुर्खीम अपनी पुस्तक 'एलीमेंट्री फॉर्म ऑफ़ दि रिलीजियस लाइफ़' में धर्म को कुछ इस प्रकार परिभाषित करते हैं- धर्म "पवित्र वस्तुओं में विश्वास एवं क्रियाकलापों की एकीकृत प्रणाली है ।"¹²

फ्रेडरिक फेरे और पॉल टिलिक ने भी धर्म को आस्था के रूप में ही परिभाषित किया है।¹³

अमेरिकी मानव विज्ञानी क्लिफर्ड गर्ट्ज ने धर्म को ब्रह्मांडीय अस्तित्व के क्रम के रूप में देखा और धर्म को परिभाषित करते हुए लिखा, "प्रतीकों की ऐसी व्यवस्था जो किसी अस्तित्व के प्रति मनुष्यों में शक्तिशाली, व्यापक और लम्बे समय तक रहने वाली मनोदशा और प्रेरणाएँ पैदा करता है।"¹⁴

पीटर मंडविल और पाल जेम्स ने आधुनिक दोहरेपन जैसे स्थिरता और गति, आध्यात्मिकता और भौतिकता, धार्मिकता और धर्म निरपेक्षता से आगे निकलकर धर्म को कुछ इस तरह से परिभाषित किया, "धर्म विश्वासों, प्रतीकों और व्यवहारों की एक सम्बद्ध प्रणाली है जो कि किसी अस्तित्व के प्रति प्रतिबद्ध है और जिसमें किसी अन्य सत्ता (ईश्वर) के साथ जुड़ाव महसूस किया जाता है।"¹⁵

(इ) प्राच्य परिभाषा :

ऋग्वेद में धर्म शब्द का प्रयोग संज्ञा और विशेषण शब्द के रूप में हुआ है जिसका अर्थ 'ऊँचा उठाने वाला' (उन्नायक), 'प्राण तत्व का पोषक करने वाला (संपोषक) है। कुछ स्थलों पर धर्म का तात्पर्य 'सुबद्ध सिद्धान्त' और 'धार्मिक क्रियाओं के नियम' से भी है। यहाँ 'यज्ञ' को धर्म कहा गया है। यज्ञ का विधान संपूर्ण सृष्टि के कल्याण के लिए किया गया।¹⁶

अथर्ववेद में कहा गया है -

'ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च।

भूतं भविष्यदुचिद् देष्टेवीर्यं लक्ष्मीबलं बले ॥'¹⁷

यहाँ धर्म का अर्थ धार्मिक क्रिया एवं संस्कार करने से अर्जित गुण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

'कठोपनिषद्' में कहा गया कि 'शास्त्रीय अनुष्ठान ही धर्म है'। अर्थात् वेदों में जो कहा गया है, वही धर्म है।¹⁸

'मनुस्मृति' के अनुसार वेद, धर्मशास्त्र, सदाचार और आत्मसंतुष्टि धर्म के साक्षात् लक्षण हैं। वेद और शास्त्रों की वाणी का पालन करना, ऐसा आचरण करना जिससे किसी को कोई नुकसान या दुःख न पहुँचे और ऐसे कार्य करना जिससे अपनी आत्मा को संतोष मिले वे सभी कार्य धर्ममय हैं।¹⁹

'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार वाल्मीकि के राम संसार में धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं -

यथा: यस्मिस्तु सर्वेस्वरसं निविष्टा धर्मो, यतः स्यात्तदुपक्रमेत।

द्रेष्यो भवत्यर्थ परोहिलोके कामात्मता खल्वपि प्रशस्ता।

अर्थात् जिस कर्म में धर्म आदि पुरुषार्थों का समावेश नहीं, उसको नहीं करना चाहिए। जिस से धर्म की सिद्धि होती हो वही कार्य करें। जो केवल धन कमाने के लिए कार्य करता है, वह संसार में सबके द्वेष का पात्र बन जाता है।

'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार सीता भी धर्म के पालन को ही आवश्यक मानती हैं-

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम्।

धर्मेण लभते सर्वधर्मसारमिदं जगत्।²⁰

अर्थात् धर्म से अर्थ प्राप्त होता है, धर्म से सुख मिलता है, और धर्म से ही मनुष्य सर्वस्व प्राप्त कर लेता है। इस संसार में धर्म ही सार है।

'महाभारत' के 'कर्ण पर्व' में श्रीकृष्ण कहते हैं-

धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।

यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥

अर्थात् 'धर्म से ही सब प्रजा बँधी हुई है। यह निश्चय किया गया है कि जिससे (सब प्रजा का) धारण होता है वही धर्म है।'

हिन्दू षड्दर्शन न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा एवं वेदांत वेद और उपनिषद पर आधारित होने के कारण धर्म की वही परिभाषाएँ प्रस्तुत करते हैं जो वेदों और उपनिषदों में व्यक्त की गयी है। 'वैशेषिक मत' का इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध सूत्र है-

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः।²¹

अर्थात् 'जिस कार्य को करने से अभ्युदय या निश्रेयस की सिद्धि हो उसे धर्म कहा जाता है।'

इसी प्रकार मीमांसा दर्शन में 'अथातो धर्म जिज्ञासा' और 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' सूत्र वाक्य स्थापित कर धर्म और ब्रह्म के अंतर्संबंध को व्यक्त किया गया है।

इसी प्रकार, धर्म की एकांगी और संक्षिप्त परिभाषाएँ भी प्राप्त होती हैं जैसे-

'अहिंसा परमोधर्मः'²² (अहिंसा सबसे उत्तम धर्म है), 'आचारः परमो धर्मः'²³

स्वामी विवेकानंद के अनुसार, "धर्म अनुभूति की वस्तु है। वह मुख की बात मतवाद अथवा युक्तिमूलक कल्पना मात्र नहीं है। आत्मा की ब्रह्मस्वरूपता को जान लेना, तद्-रूप हो जाना- उसका साक्षात्कार करना, यही धर्म है- वह केवल सुनने या मान लेने की चीज नहीं है। समस्त मन-प्राण का विश्वास की वस्तु के साथ एक हो जाना यही धर्म है।"²⁴

विद्यानिवास मिश्र के अनुसार, "जिससे सांसारिक अभ्युदय हो और परमार्थ की सिद्धि हो, वही धर्म है। धर्म एक गतिशील अवधारणा है, इसीलिए उसका अमूर्त आकार वृषभ माना गया है। उसके सत्य, अहिंसा, ताप और आर्जव (सीधापन)- चार पैर माने गये हैं, जिनसे वह संचरण करता है।"²⁵

स्पष्ट है पाश्चात्य परिभाषाओं में जहाँ धर्म को सर्वोच्च सत्ता से जोड़ा गया है वहीं प्राच्य परिभाषाएँ धर्म को एक संस्कार के रूप में स्थापित करती हैं जो व्यक्ति के जीवन में उन्नायक की भूमिका निभाता है।

(छ) धर्म का स्वरूप :

याज्ञवल्क्य ने धर्म के नौ लक्षण बताये -

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

दानं दया दमः क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥²⁶

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, दान, दया, दम और शांति ये सब धर्म के साधन हैं।

मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये हैं :-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम् ॥²⁷

अर्थात् धृति (धैर्य), क्षमा (दूसरों के द्वारा किये गये अपराध को माफ कर देना, क्षमाशील होना), दम (अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (अन्तरङ्ग और बाह्य शुचिता), इन्द्रिय निग्रहः (इन्द्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धिमत्ता का प्रयोग), विद्या (अधिक से अधिक ज्ञान की पिपासा), सत्य (मन वचन कर्म से सत्य का पालन) और अक्रोध (क्रोध न करना) ; ये धर्म के दस लक्षण हैं।

इसके साथ ही साथ धर्म के कुछ प्रमाण भी स्वीकार किये गये हैं - वेद, वेदमूलक स्मृतियाँ, शास्त्रों में प्रतिपादित सदाचार एवं आत्म तुष्टि। धर्म के दो रूप हैं - एक सिद्ध और दूसरा साध्य। जिसके सिद्ध होने के लिए किसी प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती वह 'सिद्ध धर्म' है। इसमें नित्य परमेश्वर को ही सिद्ध धर्म माना गया है एवं इस सिद्ध धर्म स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के लिए शास्त्रों में प्रतिपादित जितने भी प्रकार के साधन हैं उनके अनुष्ठान या उनके पालन से अर्जित पुण्य ही 'साध्य धर्म' हैं।

सनातन धर्म की यह कसौटी स्वीकृत है कि -

श्रूयतां धर्मं सर्वस्वं श्रुत्वा चैव अनुवर्त्यताम्।

आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥

अर्थात् धर्म का सर्वस्व क्या है, सुनो और सुनकर उस पर चलो ! स्वयं को जो अच्छा न लगे, वैसा आचरण दूसरे के साथ नहीं करना चाहिये।

दार्शनिकों ने धर्म के दो रूप बताए हैं- 1. सहज धर्म 2. कर्तव्य धर्म।

1. सहज या सांसीद्विक धर्म:-

सहज धर्म का अर्थ होता है- प्राणियों की सहज स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ जिनके बिना उनका अस्तित्व ही नहीं हो सकता। जैसे- अग्नि का धर्म है- ऊर्जा का प्रसारण, जल का धर्म है- शीतलता प्रदान करना, प्यास बुझाना आदि। इस आधार पर मनुष्य का धर्म होता है- मनुष्यता की गरिमा का निर्वाह।

2. कर्तव्य धर्म या नैमित्तिक धर्म :-

धर्म का दूसरा स्वरूप मनुष्यों के आदर्श कर्तव्यों से जुड़ा है। जैसे- राजा का धर्म प्रजा की रक्षा, पोषण और न्याय की व्यवस्था प्रदान करना। शिक्षक का धर्म जन-जन को शिक्षित बनाने की योग्यता एवं कुशलता अर्जित करके उसे मूर्त रूप देना है। इसी तरह विद्यार्थी का धर्म विद्या को अभ्यास-अनुभव में लाना होता है।

धर्म का विरोधी 'अधर्म' है। जो वेदों में निहित है उसके अनुसार कर्म करना 'शुभ' है और उसके अनुसार कर्म न करना 'अशुभ' माना जाता है। इन शुभ और अशुभ कर्मों के आधार पर ही क्रमशः धर्म और अधर्म का निर्धारण होता है। किन्तु वर्तमान में धर्म का स्वरूप बदल गया है। इसे कर्तव्य से नहीं बल्कि मजहब से जोड़कर देखा जाता है, जिसका तात्पर्य यह कि मनुष्य ने इसे सम्प्रदाय विशेष से जोड़ लिया है और अपनी मान्यताओं को श्रेष्ठ साबित करने पर तुला है। इस सम्बन्ध में प्रोफ़ेसर महावीर सरन जैन का अभिमत है, "आज धर्म के जिस रूप को प्रचारित एवं व्याख्यायित किया जा रहा है उससे बचने की जरूरत है। वास्तव में धर्म संप्रदाय नहीं है। ज़िंदगी में हमें जो धारण करना चाहिए, वही धर्म है। नैतिक मूल्यों का आचरण ही धर्म है। धर्म वह पवित्र अनुष्ठान है जिससे चेतना का शुद्धिकरण होता है।"²⁸

(ज) विश्व के विभिन्न धर्म :-

(अ) धर्म का वर्गीकरण :

वैश्विक संस्कृति में अलग-अलग मान्यताओं के कारण असंख्य धार्मिक समूह दिखाई पड़ते हैं। भारतीय संस्कृति में एक ही सत्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न दार्शनिक मत हैं, तो इस्लाम में कुरान के अनुसार इन्सान की तीन श्रेणियाँ हैं - 'मुस्लिम', 'मुश्रिक' (कुरान जिनकी पाक पुस्तक है) और 'बुतपरस्त' (काफ़िर)। वहीं ईसाई धर्म में विरोधाभास है - ईसाई सभ्यता और गैर ईसाई की बर्बरता का। डेनियल डेफो ने धर्म को कुछ इस प्रकार से परिभाषित किया है, "धर्म वस्तुतः ईश्वर को दी गयी श्रद्धा है लेकिन यह भी मूर्तियों और झूठे देवताओं पर लागू होती है।"²⁹ जोसिया कंडर ने 1838 में 'एनालिटिकल एण्ड कम्परेटिव वियु ऑफ़ आल रेलिजन्स नाउ एक्सटेंट एमंग मैनकाइंड' में विश्व के धर्मों को चार श्रेणियों में विभक्त किया- ईसाइयत (क्रिश्चैनिटी), यहूदी (जुडैस्म), मुसल्मानियत (मोहमेडेनिज्म) एवं बुतपरस्त (पेगेनिज्म)। वह इस मत को और अधिक विस्तार देते हुए एकेश्वरवादी धर्मों (मोनोथीइस्टिक) की श्रेणी में 'डूज़', 'यजीदी', 'मेंडेंड्यंस' और 'एलमाइश' को भी सम्मिलित करते हैं और बहुदेववादी धर्मों (पोलिथीज्म) एवं पैन्थीज्म (देव पूजा करने वाले) धर्मों की श्रेणी में पारसीवाद, के साथ-साथ वेद, पुराण और मूर्तिपूजकों को रखते हैं और बौद्ध, जैन, सिख, तिब्बतियन बौद्धों (लामावाद), चीन और जापान के धर्मों और अन्धविश्वास पर आधारित धर्मों को अन्य धर्मों की श्रेणी में रखा है।³⁰ तमाम विरोधाभासों एवं कभी-कभी समानताओं से युक्त विश्व के विभिन्न धर्मों का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया गया है -

(i) **भौगोलिकता के आधार पर धर्म का वर्गीकरण :** धर्म का एक वर्गीकरण उसकी भौगोलिक उत्पत्ति के आधार पर भी किया जाता है। इस सम्बन्ध में मैक्समूलर का कथन है, "वास्तविक विज्ञान वर्गीकरण पर आधारित है। यदि हम केवल विश्वासों का वर्गीकरण नहीं कर पाते, तो क्या हमें यह मान लेना चाहिए कि धर्म का विज्ञान एक असम्भव चीज है?"³¹ धर्मों की भौगोलिकता के आधार पर कई धर्म समूह बनते हैं जैसे-

1. मध्य-पूर्वी धर्म (जिसमें यहूदी, ईसाई, इस्लाम, जरथ्रुस्त)
2. अफ्रीकी धर्म (इसमें उप-सहारा अफ्रीका के कई आदिवासी धर्म सम्मिलित हैं)
3. अमेरिकी धर्म (इस महाद्वीप की मान्यताओं और स्वदेशी प्रथाओं का पालन करने वाला धर्म)
4. भारतीय धर्म (इसमें भारत के हिन्दू, जैन, सिख और बौद्ध धर्म एवं बौद्ध धर्म से प्रभावित दक्षिण-पूर्वी एशिया के धर्म आते हैं)
5. पूर्व-एशियाई धर्म (जिनमें चीन, जापान और कोरिया के धर्म जैसे कन्फ्युशियस, ताओ, बौद्ध और शिन्तो धर्म हैं)
6. महासागरीय धर्म (इसके अंतर्गत प्रशांत महासागर के द्वीपों, न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया की धार्मिक प्रथाएँ सम्मिलित हैं)
7. क्लासिकल धर्म (इसके अंतर्गत ग्रीक और रोम साम्राज्य के प्राचीन धर्म आते हैं जो यूनानी मान्यताओं पर आधारित हैं)।³²

(ii) नृवंशवैज्ञानिक-भाषाई वर्गीकरण : प्रायः 'धर्म के इतिहास के पिता' कहे जाने वाले मैक्समूलर का मत है, "मानव बुद्धि के प्रारंभिक इतिहास में भाषा, धर्म और राष्ट्रीयता के बीच सबसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है।" इस मत के आधार पर ही धर्म की जननिक उत्पत्ति को खोजने का प्रयास किया गया और उसके आधार पर विश्व के धर्मों का वर्गीकरण किया गया। उन्होंने एशिया और यूरोप में तीन नस्लों की बात की - तुरानी, यहूदी और आर्यन, जो तीन भाषा परिवारों से भी सम्बद्ध हैं। डूरेन जे.एच. वार्ड ने इस वर्गीकरण को और अधिक वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया। उसका मत है, "धर्म को उसका चरित्र उन लोगों या नस्लों से प्राप्त होता है जो इसे अपनाते हैं या विकसित करते हैं।"³³ वार्ड ने मानव नस्लों को पाँच भागों में विभक्त किया, जिनके अपने अलग-अलग धार्मिक संस्कार हैं-

1. महासागरीय नस्ल 2. अफ्रीकन 3. अमेरिकी 4. मंगोलियन 5. मडेटेरिनियन।

(iii) **दार्शनिक आधार पर धर्म का वर्गीकरण :** इस आधार पर प्रस्तुत किये गये वर्गीकरण में सर्वप्रथम जॉर्ज विल्हेल्म फ्रेडरिक एंगल्स द्वारा उनके 'लेक्चर्स ऑन फिलोसोफी ऑफ रिलिजन (1832) में किया गया दार्शनिक वर्गीकरण है। हेगल के धर्म सम्बन्धी मत उसके दार्शनिक विचारों से प्रभावित हैं। हेगल ने यह स्वीकार किया है कि 'सम्पूर्ण मानव इतिहास स्वतंत्रता की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने वाला एक द्वंदात्मक आन्दोलन है'। उसने ऐतिहासिक धर्मों का वर्गीकरण तीन भागों में किया- प्राकृतिक धर्म (हीगल के अनुसार ये विकास के निम्नतर स्तर पर विकसित होने वाले धर्म हैं जो तात्कालिक भावना पर आधारित होते हैं। इसके अन्तर्गत हीगल ने चीनी धर्म और भारत के धर्मों को रखा है), आध्यात्मिक धर्म- इसके अंतर्गत हीगल यहूदी, प्राचीन ग्रीक और रोमन धर्मों को रखता है, पूर्ण धर्म- इसके अंतर्गत हीगल ने ईसाई धर्म को रखा है और इसे ही धर्म का सर्वोच्च स्तर माना है। हेगल के इस मत की काफी आलोचना हुई, जिसके बाद कई लोगों ने भिन्न तरीके से धर्म वर्गीकरण किया। जर्मन धर्मशास्त्री ओटो फ्लाडरर का मत है, "धर्मों का वर्गीकरण तब तक संभव है जब तक हम उनके सार या मूलतत्त्व को नहीं समझते। यह सार कोई ऐतिहासिक चीज नहीं बल्कि दार्शनिक विचार है।" उसने रेलिजन : इट्स एसेंस एंड हिस्ट्री में धर्मों के आपसी संबंधों को समझकर धर्म का तीन आधार पर वर्गीकरण किया। प्रथम वर्ग : प्राचीन यहूदी, मिश्र के धर्म और चीनी धर्म, भारतीय, यूरोपीय, ग्रीक और रोमन धर्म। द्वितीय वर्ग के अंतर्गत सम्मिलित धर्मों को उसने आध्यात्मिक धर्म का नाम दिया, जिसमें जरथ्रुस्त धर्म को सम्मिलित किया। तीसरे वर्ग में उसने एकेश्वरवादी धर्मों को रखा और इसमें इस्लाम यहूदी और ईसाई धर्मों को सम्मिलित किया।

दार्शनिक आधार पर धर्म का वर्गीकरण एक और प्रकार से किया जाता है और वह है आस्तिक और नास्तिक दर्शन। भारतीय दर्शन की बात करें तो यहाँ आस्तिकता और नास्तिकता के वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है - प्रथम, वे दर्शन जो वेदों की प्रमाणिकता में विश्वास नहीं करते 'नास्तिक' और जो वेदों की प्रमाणिकता में विश्वास करते हैं उन्हें 'आस्तिक' कहा गया है। आस्तिक

दर्शन हैं- षड्दर्शन-न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदांत । और नास्तिक दर्शनों में बौद्ध, जैन और चार्वाक को रखा गया है ।

इसके अतिरिक्त ईश्वर में आस्था रखने वालों को आस्तिक और आस्था न रखने वालों को नास्तिक की श्रेणी में रखा गया है । नास्तिकों को अनीश्वरवादी भी कहा गया है । इस दृष्टि से देखें तो भारतीय दर्शन में जैन बौद्ध, चार्वाक, सांख्य, योग, वैशेषिक, और पूर्व-मीमांसा नास्तिक दर्शन हैं और शेष न्याय और वेदांत आस्तिक हैं ।

(iv) रूप या संरचना आधारित वर्गीकरण : इस सम्बन्ध में ब्रिटिश नृतत्वविज्ञानी एडवर्ड बर्नेड टेलर का नाम प्रसिद्ध है, जिन्होंने अपनी पुस्तक 'प्रिमिटिव कल्चर' में जीववाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और इसके आधार पर धर्म के प्राकृतिक स्वरूप और आस्थाओं के बदलते रूप को बड़े ही तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया । उनके अनुसार प्राचीन आस्था की शुरुआत अपने साथ के मरे हुए लोगों की आत्मा में विश्वास के साथ होती है और उसके बाद यह विश्वास किया जाने लगता है कि उनकी आत्मा किसी वस्तु में है । ऐसे विश्वास के कारण 'फेटिसिज्म' या 'वस्तु के प्रति लगाव' बढ़ जाता है और वस्तु या किसी स्थान विशेष में किसी अलौकिक शक्ति के वास के प्रति विश्वास बढ़ जाता है, जिससे उसकी पूजा की प्रक्रिया शुरू होती है । यहाँ से 'मूर्ति पूजा' की शुरुआत होती है । 'टोटेमवाद' की शुरुआत तब होती है जब कोई विशेष समूह किसी आत्मा को अपना संरक्षक समझ उसके प्रति सम्मान जाहिर करता है और किसी न किसी वस्तु या जीव में उसकी आत्मा के निवास की कल्पना कर लेता है । इस स्तर पर आकर हर समूह का अपना कुलदेवता हो जाता है जिससे 'बहुदेववाद' के स्थान पर 'एकेश्वरवाद' की स्थापना होती है क्योंकि समूह के लोग या समुदाय विशेष के लोग एक ही देवता या अलौकिक सत्ता की उपासना करने लगते हैं ।

धर्म की स्वरूपगत व्याख्या या उसके वर्गीकरण में एक और नाम आता है और वह है धर्म का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले डच विद्वान कार्नेलिस पेट्रस का जिन्होंने धर्म को दो भागों में बाँटकर

देखा - 'एथिकल रेलिजन' या 'नैतिक धर्म' और 'नेचर रेलिजन' या 'प्राकृतिक धर्म'। उन्होंने नैतिक धर्म का फिर से दो भागों में वर्गीकरण किया। पहला 'जातीय वैधानिक धर्म' जिनका किसी धर्म विशेष के पवित्र पुस्तकों में उल्लेख होता है और दूसरा है 'विश्व धर्म', जिसका सभी धर्मों के लोगों के द्वारा पालन किया जाता है।

रोमन-अमेरिकी विद्वान मिर्से एलिआडे ने धर्म को दो श्रेणियों में बाँटा - प्रथम, 'पारम्परिक धर्म' या 'कॉस्मिक रेलिजन' जिसमें प्रारम्भिक समाज की धार्मिक मान्यताओं को सम्मिलित किया गया और दूसरा, ऐतिहासिक धर्म या 'मॉडर्न रेलिजन' या 'पोस्ट आर्केइक रेलिजन' इसके अंतर्गत उन्होंने ईसाई, इस्लाम और बौद्ध धर्म को रखा।

'फेनोमेनालॉजी ऑफ़ रेलिजन' का सिद्धान्त प्रस्तुत किया जर्मन विद्वान् एडमंड हसर्ल ने। इस सिद्धान्त के दो उद्देश्य हैं पहला, धार्मिक समूहों से इतर धर्म की व्याख्या और दूसरा धार्मिक व्यक्तियों के व्यक्तिगत अनुभवों का प्रस्तुतीकरण। परिघटना आधारित धर्म के अध्ययन में एक प्रमुख नाम और आता है और वह डच विद्वान् जेर्गार्डस वैन डेर लीउ। उन्होंने पुस्तक 'रेलिजन इन एसेन्स एण्ड मेनिफेस्टेशन' में धर्म को 12 श्रेणियों में विभक्त किया³⁴ -

1. पृथक धर्म - प्राचीन चीनी और अठ्ठरहवीं शताब्दी का ईश्वरवादी आस्तिक धर्म,
2. संघर्ष का धर्म - पारसी धर्म,
3. शांति या स्थायित्व का धर्म - इस प्रकार के धर्म का अपना कोई अलग इतिहास नहीं है बल्कि यह सभी धर्मों में 'रहस्यवाद' के रूप में प्राप्त होता है,
4. अस्थायित्व का धर्म या आस्तिकतावाद - यह कई धर्मों में पाया जाता है,
5. अन्य धर्मों की तुलना में धर्म की गतिशीलता और धर्मों की समन्वयता,
6. आन्तरिक विकास की दृष्टि से धर्म की गतिशीलता - सुधार और पुनः प्रवर्तन,
7. तनाव का धर्म- ग्रीस धर्म,

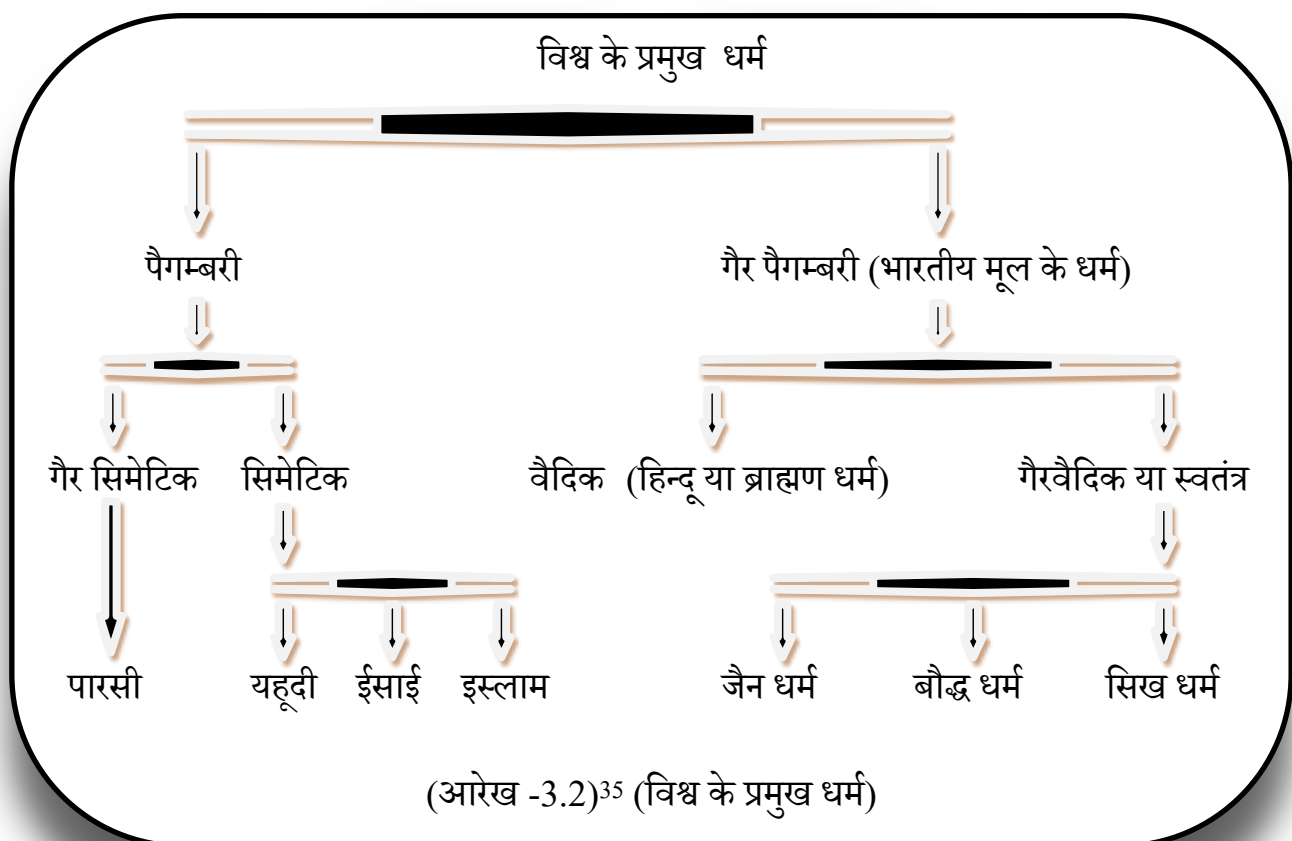
8. अनन्य धर्म या वैराग्य का धर्म - बौद्ध धर्म को छोड़कर भारत के सभी धर्म,
9. शून्यता और दया का धर्म-बौद्ध धर्म,
10. इच्छाशक्ति और विनयशीलता का धर्म - इसराइली धर्म,
11. महिमा और दीनता का धर्म - इस्लाम,
12. प्रेम का धर्म - ईसाई धर्म।

(v) **अन्य वर्गीकरण** : इसके अतिरिक्त भी अन्य कई विद्वानों जैसे विलियम जेम्स, मैक्स वेबर, अलबर्ट स्क्वेत्जर, रॉबर्ट बेल्लाह ने भी धर्म का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया। विलियम जेम्स ने अपनी पुस्तक 'वेराइटीज़ ऑफ़ रेलिजिअस एक्सपीरियंस' में जीवन के प्रति दृष्टिकोण के आधार पर धर्म को दो श्रेणियों में विभक्त किया है। प्रथम, 'स्वस्थ मानसिकता का धर्म' जो कि अस्तित्व की नकारात्मकताओं को नज़रंदाज़ करता है और दूसरा, 'विकृत मानसिकता से युक्त धर्म' जो अशुभ को जीवन का सार मानता है। जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने धर्म को दो दृष्टियों से विभाजित किया। पहला, वे धर्म जो मिथकों पर आधारित होते हैं और दूसरा, वे धर्म जो विचार और तर्क पर आधारित हैं या उसके निकट प्रतीत होते हैं। अलबर्ट स्क्वेत्जर ने धर्मों को दो श्रेणियों में बांटा- ईसाइयत के प्रतिद्वंदी और ईसाइयत के समर्थक धर्म। अमेरिकी समाजशास्त्री रॉबर्ट बेल्लह का मत है कि धर्म का विकास पाँच चरणों में हुआ। इन चरणों में यदि क्रमशः आगे बढ़ें तो दो महत्वपूर्ण परिघटनाएँ हुईं, जो बेल्लह के अनुसार अग्रलिखित हैं- प्रथम, प्रतीकात्मकता की जटिलता में वृद्धि और व्यक्तित्व स्वातंत्र्य अर्थात् धर्मनिरपेक्षता की भावना में बढ़ोतरी।

साधारणतया धर्म का वर्गीकरण पैगम्बर के माध्यम से अवतरित या गैर-पैगम्बर के माध्यम से उत्पन्न धर्मों में विभक्त किया जाता है। यह वर्गीकरण 'आरेख- 3.1' के अनुसार है।

इस वर्गीकरण में 'पैगम्बरी धर्म' का उल्लेख है। इन्हें पैगम्बरी इस लिए कहा जाता है क्योंकि इन धर्मों के प्रवर्तक पैगम्बर थे। ये 'एकेश्वरवादी' भी हैं। यहूदी, ईसाई और इस्लाम को 'सिमेटिक'

इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनका जन्म सेमाइट लोगों या दूसरे शब्दों में कहें तो हिब्रू या अरबी भाषी लोगों के बीच हुआ। जबकि पारसी धर्म का जन्म ईरान में हुआ था। इसके अतिरिक्त धर्मों का वर्गीकरण 'एकेश्वरवादी' या 'अनेकेश्वरवादी' और 'निरीश्वरवादी' धर्म के रूप में भी हो सकता है। इस दृष्टि से देखने पर पारसी, यहूदी, ईसाई, इस्लाम और सिख एकेश्वरवादी हैं, बौद्ध और जैन धर्म निरीश्वरवादी और हिन्दू धर्म बहुदेववादी है।



इसके अतिरिक्त धर्मों का 'श्रुत' या 'अश्रुत' के आधार पर भी वर्गीकरण किया गया है। 'श्रुत धर्म' वे हैं, जिनमें धर्मग्रंथों को ईश्वर की वाणी समझा जाता है जबकि 'अश्रुत धर्मों' के अंतर्गत वे धर्म आते हैं, जो अपने धर्म ग्रंथों को ईश्वर की वाणी नहीं मानते। इस दृष्टि से देखें तो सिख धर्म अश्रुत धर्म के अंतर्गत आता है क्योंकि वे 'गुरु ग्रन्थ साहिब' को गुरु की वाणी मानते हैं। जबकि हिन्दू धर्म ग्रन्थों को लेकर मतभेद है। एक तरफ वेदों को मीमांसकों ने अपौरुषेय माना तो दूसरी तरफ वेदों को श्रुति कहा गया। इसी प्रकार 'गीता' को भी कभी श्रुति तो कभी विष्णु के अवतार कृष्ण रूपी ईश्वर द्वारा रचित या प्रेषित

माना गया है। मनुस्मृति के विषय में भी ऐसी ही किंवदन्ती है कि वह ब्रह्मा के द्वारा रचित है। इसके अतिरिक्त अन्य धर्म श्रुत की श्रेणी में ही आते हैं।

नोट : विश्व के विभिन्न धर्मों के 1821 ई. से 2011 ई. में विस्तार के अंतर को परिशिष्ट-1 के मानचित्र 1 और 2 में देख सकते हैं।

(आ) विश्व के विभिन्न धर्मों का परिचय :

(i) **इब्राहिमी धर्म या सामी धर्म** : इससे तात्पर्य उन धर्मों से है जो अद्वैतवादी हैं और इन धर्म के अनुयायियों का मानना है कि वे इब्राहम के वंशज हैं। यदि अनुयायियों की दृष्टि से देखा जाय तो 'यहूदी', 'ईसाई' और 'इस्लाम' सबसे बड़े इब्राहिमी धर्म हैं। ये तीनों धर्म मध्य-पूर्व के रेगिस्तान में विकसित हुए एकेश्वरवादी धर्म हैं। इन धर्मों के लिए एक ही शब्द 'इब्राहिमी धर्म' दिए जाने का तात्पर्य यह है कि ये सभी एक ही आध्यात्मिक स्रोत से उत्पन्न माने जाते हैं। जहाँ ईसाई 'इब्राहम' या 'अब्राहम' को 'विश्व का पिता' मानते हैं, इस्लाम में इसके लिए 'मिलात इब्राहिमी' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है -'इब्राहम में विश्वास'। इसके साथ ही यहूदी भी स्वयं को इब्राहम की परम्परा से जोड़ते हैं और बाइबिल में उल्लिखित तीन क्रमिक आध्यात्मिक पितरों 'अब्राहम', 'इशाक' और 'याकूब' का अनुसरण करते हैं।

यहूदी धर्म : - यह इब्राहिमी धर्मों में से सबसे प्राचीन धर्म है और इसका सम्बन्ध प्राचीन इस्राइल और यहूदिया लोगों से है। 'तौरैत' इनका मूल धार्मिक ग्रन्थ है जो 'तनख' या 'हिब्रू बाइबिल' का हिस्सा है। बाइबिल के 'ओल्ड टेस्टामेंट' के तीन खण्डों -'कानून', 'पैगम्बर' और 'लेखन' में से 'कानून' यहूदियों के सबसे बड़े पैगम्बर मूसा के द्वारा प्रेषित माना जाता है। यही 'तौरैत' का आधार है। तौरैत का अर्थ है 'रास्ता दिखाना' या 'दिशा निर्देश देना'। 'तौरैत' मौखिक रूप में था बाद में 'मिदरश' और 'तालमुद' के रूप में इसे लिखा गया। बाइबिल के अनुसार हिब्रू लोग भयानक अकाल की वजह से कनान से मेसोपोटामिया (मिस्र) चले गये जहाँ उनका बहुत शोषण किया गया। 13वीं शताब्दी में मूसा ने उनको इस दमन से मुक्ति दिलाई, जिसे यहूदियों में 'पासओवर' के त्योहार के रूप में मनाया

जाता है। यहूदियों का मानना है कि ईश्वर ने मिस्र के सिनाई पर्वत पर मूसा को मौखिक 'तोरत' के रूप में अपने आदेश दिए। मूसा ने यहोवा (ईश्वर) के आदेश से दस आज्ञाओं का प्रवर्तन किया और ईश्वर के साथ प्रतिज्ञा के आधार पर 'इज़राइल' कहे जाने वाले धार्मिक समुदाय की स्थापना की।

यह धर्म मूलतः एकेश्वरवादी है, जिसमें मूर्तिपूजा और बहुदेववाद को नाकारा गया है। मूसा के दस आदेशों का पालन ही इस धर्म के लोगों का मुख्य कर्तव्य है। खतना या सुन्नत, विवाह करना और बच्चों को जन्म देना धार्मिक कृत्य माना गया है। तीन बार प्रार्थना को आवश्यक माना गया है। इनके अनुसार ईश्वर ने जगत की रचना इसलिए की है ताकि पूरे विश्व में न्याय और दयालुता के साथ ईश्वर की सत्ता स्थापित की जा सके। कर्म फल में विश्वास के साथ यहूदियों में तीन लोकों की अवधारणा है- 'स्वर्ग' (जहाँ ईश्वर का वास है), 'पृथ्वी' (जीवित लोगों का वास), 'शिओल' (मरे हुए लोगों का वास)। येरुसलम में यहूदियों के धर्मस्थल के विनाश के बाद यहूदी बिखर गये।³⁶

ईसाई धर्म :- जैसा कि बाइबिल के 'न्यू टेस्टामेंट' में उल्लेख है, यह धर्म जीसस की शिक्षाओं और आदेशों पर आधारित धर्म है। यह माना जाता है कि ईसाई धर्म का मूल यहूदियों में ही है। बाइबिल में मानवता के उद्धार के लिए एक मसीहा के आने की बात कही गयी है और 'न्यू टेस्टामेंट' के अनुसार 'जीसस' को ही वह मसीहा माना गया है। ईसाई जीसस या ईसा को 'ईश्वर का पुत्र' और 'मुक्तिदाता' मानते हैं। जबकि यहूदी धर्म में ऐसा स्वीकार नहीं किया जाता। बाइबिल के अनुसार ईसा के द्वारा ईश्वर पुत्र होने का दावा करने के कारण ही उन्हें सूली पर चढ़ा दिया गया था। सभी ईसाई तीन सत्ताओं- 'पिता'(ईश्वर), 'पुत्र' (जीसस) और 'पवित्र आत्मा' में विश्वास करते हैं और इन तीनों के सम्मिलित रूप को 'परम सत्ता' के रूप में देखते हैं। पहली शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में ईसाई धर्म का पूरे विश्व में प्रचार हुआ। ईसाई धर्मावलम्बी प्रार्थनाओं तथा 'बप्तिस्मा' एवं अन्य अनुष्ठानों के अवसर पर अग्रलिखित आस्था सूत्र का स्मरण करते हैं- 'मैं आकाश तथा पृथ्वी एवं सभी गोचर-अगोचर वस्तुओं के सृजक एकमात्र महाशक्तिमान पिता प्रभु तथा उनके पुत्र ईसा मसीह में विश्वास करता हूँ।'

ईसाई धर्म की पवित्र पुस्तक 'बाइबिल' या 'इंजील' है, जिसके दो भाग हैं- 'ओल्ड टेस्टामेंट', जिसमें यहूदी इतिहास तथा धर्मकथाएँ वर्णित हैं एवं 'न्यू टेस्टामेंट', जिसमें ईसाईयों के धर्म सम्बन्धी विचार, विश्वास तथा इतिहास वर्णित हैं। यह ईसा पूर्व नौवीं शताब्दी से लेकर ईस्वी प्रथम शताब्दी के बीच लिखे गये 73 लेख श्रृंखलाओं का संकलन है, जिनमें से 46 ओल्ड टेस्टामेंट में और 27 न्यू टेस्टामेंट में संकलित हैं।

धार्मिक क्रियाकलापों को लेकर ईसाइयों में थोड़ा बहुत मतभेद है। मुख्य रूप से निम्नलिखित सात धर्मकृत्य मान्य हैं -

1. धन्यवाद ज्ञापन (यूखैरिस्ट)- गिरिजाघर की प्रार्थना के समय रोटी और मदिरा का सेवन करना, जिसका उद्देश्य ईसा मसीह के शरीर का अंग बन जाना है। मान्यता यह है कि ईसा मसीह ने यहूदियों द्वारा अपनी गिरफ्तारी के पूर्व रात्रि को दिये गये एक भोज में रोटी तोड़कर एक-एक टुकड़ा और साथ में थोड़ी-थोड़ी मदिरा अपने प्रत्येक शिष्य को यह कहते हुए दी कि यह मेरे शरीर एवं रक्त के हिस्से हैं और इनके सेवन से सभी शिष्य एक मन, एक प्राण, एक शरीर रूप हो सहधर्मी हो जायेंगे।
2. बैप्टिज़्म – व्यक्ति पर जल छिड़कर या शिशु को पवित्र जल में डुबकी लगवाकर उसे चर्च विशेष के सदस्य के रूप में प्रविष्ट करना।
3. पुष्टिकरण (कनफरमेशन) – ईसाई धर्म स्वीकार कर चुके व्यक्ति के हाथों में तेल और बाम मलना, जिसका उद्देश्य उसके ईसाईयत को पुनः पुष्ट करना है।
4. प्रायश्चित्त (कनफेशन) – ईसाई धर्मावलम्बियों में, विशेषकर रोमन कैथोलिक में प्रचलित इस व्यवस्था के अनुसार चर्च में विशिष्ट रूप से बने एक स्थान पर व्यक्ति को पादरी के समक्ष धर्मग्रहण के समय तथा प्रत्येक वर्ष कम से कम एक बार अपने पापों का ब्यौरा देकर प्रायश्चित्त करना पड़ता है। ऐसी मान्यता है कि प्रभु पादरी के माध्यम से उसे माफ़ कर देता है।

5. अभिषेक – मृत्यु शय्या पर पड़े व्यक्ति की आँखों, कानों, नथुनों, ओठों, हाथों, पाँवों और पुरुषों की जाँघों में पादरी तेल छुवाता है या मलता है और प्रभु से उसके पापों को क्षमा करने की प्रार्थना करता है।
6. विवाह – ईसाईयों में विवाह एक पवित्र संस्कार है, जिसका सम्पादन चर्च में पादरी के आशीर्वाद एवं घोषणा से किया जाता है।
7. आर्डिनेशन – रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय में पुरोहितों की अत्यन्त सुव्यवस्थित व्यवस्था दृष्टिगत होती है, जिसे वे 'होली आर्डर्स' कहते हैं। अन्य सम्प्रदायों में भी पादरियों की व्यवस्था है। पादरियों के दो वर्ग होते हैं - ज्येष्ठ और कनिष्ठ। कनिष्ठ वर्ग में शिक्षार्थी पादरी, धर्मग्रन्थ कथावाचक आदि आते हैं। वहीं ज्येष्ठ वर्ग में बिशप, पादरी, डीकन, आर्कबिशप आदि आते हैं। पोप रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के सर्वमान्य सर्वोच्च धर्मगुरु हैं। रोमन कैथोलिक में किसी कनिष्ठ पुरोहित को ज्येष्ठ वर्ग में प्रवेश हेतु किया जाने वाला संस्कार 'आर्डिनेशन' कहलाता है।³⁷ ईसाई धर्म कई सम्प्रदायों में विभक्त है। जैसे- कैथोलिक, प्रोटेस्टैंट, आर्थोडोक्स, मॉरोनी, एवनजीलिक आदि। इस विभाजन का आधार उनकी मान्यताओं में भिन्नता है। प्रमुख सम्प्रदाय निम्नवत् है-

कैथोलिक धर्म या कैथोलिसिज़्म या अपोस्टोलिक : इसके अनुयायी रोम के वेटिकन शहर में स्थित चर्च के 'पोप' को अपना धर्माधिकारी मानते हैं। कैथोलिक मानते हैं कि उनका धार्मिक संगठन आरंभिक ईसाई संगठन की रिवायत को जारी रखता है और उसका एकमात्र उत्तराधिकारी है। कैथोलिक पोप को ईसाई धर्म का पृथ्वी पर परम अध्यक्ष मानते हैं जो कि प्रोटेस्टैंट नहीं मानते। इस धार्मिक संगठन में हर पादरी के ऊपर उस से उच्च कोटि का पादरी होता है और अंत में सभी के ऊपर पोप होता है। कैथोलिक मत में पादरियों को विवाह करने की अनुमति नहीं है और उन्हें आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करना होता है। कुछ स्त्रियाँ भी अपना जीवन धर्म के नाम कर देती हैं और आजीवन कुंवारी रहती हैं। इन्हें 'नन' कहा जाता है। जब यह नन बनाने की शपथ लेतीं हैं तो एक औपचारिक समारोह में विवाह के वस्त्र धारण किए इनका 'ईसा से विवाह' रचाया जाता है। कैथोलिक

धर्म में कुछ भक्तों को औपचारिक रूप से 'संतों' का दर्जा दिया जाता है और कैथोलिकों को अनुमति है कि वे इनकी पूजा कर सकें। बहुत से कैथोलिक देशों में किसी स्थानीय कैथोलिक संत को बहुत मान्य समझा जाता है, जैसे कि आयरलैंड में 'संत पैट्रिक' को और पोलैंड में 'संत स्टानिस्लाउस' को। ऐसी धार्मिक हस्तियों के द्वारा की हुई पूजा सीधे ईश्वर को प्राप्त होती हैं और इस से धर्म आम जनता के समीप आता है। प्रोटेस्टैंट दृष्टिकोण इससे विपरीत है और उसमें अक्सर संत-प्रथा को यूरोप की प्राचीन गैर-ईसाई रिवाजों का एक छद्म रूप माना जाता है, जिसमें बहुत से देवी-देवताओं हुआ करते थे।

पूर्वी ईसाई धर्म : पूर्वी ईसाई धर्म में चार मुख्य चर्च परिवार शामिल हैं : पूर्वी रूढ़िवादी (ऑर्थोडॉक्स) चर्च, ओरिएंटल रूढ़िवादी (ऑर्थोडॉक्स) चर्च, पूर्व के असीरियन चर्च और पूर्वी कैथोलिक चर्च। पूर्वी ईसाई धर्म में वे ईसाई परम्पराएँ और चर्च शामिल हैं जो मध्य पूर्व, अफ्रीका, पूर्वी यूरोप, एशिया माइनर, बाल्कन, दक्षिणी भारत और सुदूर पूर्व में कुछ शताब्दियों में विकसित हुए। पूर्वी ईसाई समान धार्मिक परंपराओं का निर्वाह नहीं करते, लेकिन कई सांस्कृतिक परंपराओं को साझा भी करते हैं। प्रारंभिक शताब्दियों के दौरान ही ईसाई धर्म पूर्वी धर्म में बंट गया क्योंकि मौलिक धर्मशास्त्र के विवादों के साथ-साथ राष्ट्रीय विभाजन (रोमन, फारसी, आदि) और रोमन साम्राज्य के भीतर और बाहर के सम्बन्ध में मतभेद बने रहे।³⁸

प्रोटेस्टैंट : इसका उदय सोलहवीं शताब्दी में प्रोटेस्टैंट सुधारवादी आन्दोलन के फलस्वरूप हुआ। पोप की शक्ति बढ़ जाने के कारण जॉन बैकलिफ और मार्टिन लूथर ने पोप की सत्ता को चुनौती दी, जिससे इस सुधारवादी मत का उदय हुआ जो कैथोलिक की अपेक्षा अधिक उदार है। इसकी प्रमुख मान्यता यह है कि धर्मशास्त्र (बाइबल) ही उद्घाटित सत्य का असली स्रोत है न कि परम्पराओं आदि का। प्रोटेस्टैंट के विषय में यह प्रायः सुनने में आता है कि वह असंख्य संप्रदायों में विभक्त है किंतु वास्तव में समस्त प्रोटेस्टैंट के 94 प्रतिशत पाँच ही संप्रदायों में सिमटे हैं- 'लूथरन', 'कैलविनिस्ट', 'एंग्लिकन', 'बैप्टिस्ट' और 'मैथोडिस्ट'। 1526 ई. में पवित्र साम्राज्य की सभा की बैठक स्पीयर में हुई,

इसमें जर्मनी के शासक कैथोलिक और लूथरवादी दो दलों में विभक्त हो गये थे। 1529 ई. में स्पीयर में ही दूसरी सभा हुई। इसमें सम्राट चार्ल्स पंचम ने कैथोलिक धर्म का प्रबल समर्थन किया और नये धर्मसुधार आंदोलन के विरुद्ध कई कठोर निर्देश पारित किए। इस सभा के इस एकपक्षीय निर्णयों का सुधारवादी शासकों और समर्थकों ने विरोध किया। इस विरोध और प्रतिवाद के कारण इस धर्म सुधार आंदोलन का नाम 'प्रोटेस्टेंट' पड़ा। 1530 ई. में प्रोटेस्टेंट धर्म के सिद्धान्तों को एकीकृत रूप दिया गया। इसमें लूथर के सिद्धान्त सम्मिलित कर लिए गए। यूरोप में यह प्रोटेस्टेंट धर्म का उदय था। इसके अतिरिक्त ईसाई मत में अन्य कई सुधार आन्दोलन हुए, जिससे इस के संबंध में विभिन्न मत सामने आये जैसे कि पुनरुत्थानवादी ईसाई या रेस्टोरेसनिज्म, सेंट मूवमेंट, जेहोवा दर्शन आदि।

इस्लाम धर्म : इस्लाम धर्म के उदय और विकास का एक लम्बा इतिहास रहा है, जिसके लिए इतिहास में कई युद्ध हुए और कई पीढ़ियों का अंत हुआ। मक्का में 610 ईसा.पू. में मुहम्मद साहेब को जब ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने अपना ज्ञान जन-सामान्य तक पहुँचाना शुरू किया तो इसे उस समय लोगों को भ्रमित किये जाने के रूप में देखा गया। इसके कारण उन्हें कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। इस विरोध के कारण किये गये उनके प्रस्थान को (मक्का से मदीना तक) 'हिजरा' कहा गया, जो इस्लामी कैलेण्डर का पहला दिन बना। आपसी रंजिश ने तमाम युद्धों के लिए माहौल तैयार किया और परिणाम यह हुआ कि इस्लाम में भी कई शाखाएँ या पंथ निकलकर सामने आये।
आरेख-3.3³⁹ (इस्लाम के विभिन्न पंथ)

वस्तुतः इस्लाम धर्म 'कुरान' पर आधारित धर्म है। इसके अनुयाइयों को 'मुसलमान' कहा जाता है। इस्लाम केवल एक ही ईश्वर को मानता है, जिसे मुसलमान 'अल्लाह' कहते हैं। हज़रत मुहम्मद अल्लाह के अन्तिम और सबसे महान सन्देशवाहक (पैगम्बर या रसूल) माने जाते हैं। इस्लाम शब्द अरबी भाषा के 'सल्म' से निगमित है, जिसका तात्पर्य 'शांत होना है'। इसका एक दूसरा अर्थ 'समर्पण' भी है। इस्लामी धर्म के प्रमुख मत निम्नलिखित हैं:-

ईश्वर की एकता : मुसलमान एक ही ईश्वर को मानते हैं, जिसे वे 'अल्लाह' कहते हैं। एकेश्वरवाद को अरबी में 'तौहीद' कहते हैं, जो शब्द 'वाहिद' से आया है, जिसका अर्थ है 'एक'। इस्लाम में ईश्वर को मानव की समझ से परे माना जाता है - "कहो : ईश्वर एक और अनुपम, सनातन, सदा से सदा तक जीने वाला है, न उसे किसी ने जना और न ही वो किसी का जनक है। उस जैसा कोई और नहीं है।"⁴⁰

नबी (दूत) और रसूल : इस्लाम के अनुसार ईश्वर ने धरती पर मनुष्य के मार्गदर्शन के लिये समय-समय पर किसी व्यक्ति को अपना दूत बनाया। इन को इस्लाम में 'नबी' कहते हैं। जिन नबियों को ईश्वर ने स्वयं, शास्त्र या धार्मिक पुस्तकें प्रदान कीं उन्हें 'रसूल' कहते हैं। मुहम्मद भी इसी कड़ी का भाग थे। उनको जो धार्मिक पुस्तक प्रदान की गयी उसका नाम 'कुरान' है। कुरान में अल्लाह के 25 अन्य नबियों का वर्णन है।

मुसलमानों के लिये अल्लाह द्वारा रसूलों को प्रदान की गयी सभी धार्मिक पुस्तकें वैध हैं। मुसलमानों के अनुसार 'कुरान' ईश्वर द्वारा मनुष्य को प्रदान की गयी अन्तिम धार्मिक पुस्तक है। 'कुरान' में चार अन्य पुस्तकों की भी चर्चा है:- 'सहूफ़ ए इब्राहीमी' जो कि इब्राहीम को प्रदान की गयी। 'तौरात' (तोराह) जो कि मूसा को प्रदान की गयी। 'ज़बूर' जो कि दाउद को प्रदान की गयी। 'इंजील' (बाइबल) जो कि ईसा को प्रदान की गयी। मुसलमान यह मानते हैं कि ईसाइयों और यहूदियों ने अपनी पुस्तकों के सन्देशों में बदलाव कर दिये हैं। वे कुरान में किसी भी प्रकार के संशोधन किये जाने के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि वे ईश्वर का सन्देश और आदेश है।

मुसलमान देवदूतों/ मलाइका/ फ़रिश्ते के अस्तित्व को मानते हैं। उनके अनुसार देवदूत स्वयं कोई विवेक नहीं रखते और ईश्वर की आज्ञा का यथारूप पालन ही करते हैं। हालाँकि देवदूत अगणनीय हैं, पर कुछ देवदूत कुरान में प्रभाव रखते हैं:- 'जिब्राईल' यह नबीयों और रसूलों को ईश्वर का सन्देश ला कर देता है। 'इज़्राईल' ईश्वर के समादेश से मनुष्य की आत्मा ले जाता है। 'मीकाईल' जो ईश्वर के आदेश पर मौसम बदलनेवाला देवदूत है। 'इस्माफ़ील' जो ईश्वर के आदेश पर प्रलय के दिन के

आरम्भ की सूचना देगा। 'किरामन कातिबीन' जो मनुष्य के कर्मों को लिखता है। 'मुनकिर नकीर' या 'नकीरैन' - मनुष्य की मृत्यु के उपरान्त उसकी कब्र में आ कर उससे तीन प्रश्न पूछने वाला देवदूत।

प्रलय (यौम अल-क्रियामा) : मध्य एशिया के अन्य धर्मों (ईसाई और यहूदी) के समान इस्लाम में भी ब्रह्मांड का अंत प्रलय के दिन के द्वारा ही माना जाता है। इसके अनुसार ईश्वर एक दिन संसार को समाप्त करेगा। यह दिन कब आयेगा इसकी सही जानकारी केवल ईश्वर को ही है। इस्लाम के अनुसार सभी मृत लोगों को उस दिन पुनर्जीवित किया जाएगा और अल्लाह के आदेशानुसार अपना जीवन व्यतीत करने वालों को स्वर्ग भेजा जाएगा और उसका आदेश न मनाने वालों को नर्क में जलाया जाएगा।

मुसलमान भाग्य को मानते हैं। भाग्य का अर्थ इनके लिये यह है कि ईश्वर बीते हुए समय, वर्तमान और भविष्य के बारे में सब जानता है। कोई भी घटना उसकी अनुमति के बिना नहीं हो सकती है। मनुष्य को अपनी इच्छा से जीने की स्वतन्त्रता तो है पर इसकी अनुमति भी ईश्वर ही के द्वारा उसे दी गयी है। इस्लाम के अनुसार मनुष्य अपने कुकर्मों के लिये स्वयं उत्तरदायी इसलिए है क्योंकि उन्हें करने या न करने का निर्णय ईश्वर मनुष्य को स्वयं ही लेने देता है। उसके कुकर्मों का भी पूर्व ज्ञान ईश्वर को होता है।

मुसलमानों के कर्तव्य और शरीयत : हर मुसलमान के पाँच आवश्यक कर्तव्य बताये गये हैं -

1. साक्षी होना (शहादा)- इस का शाब्दिक अर्थ है 'गवाही देना'। इस्लाम में अरबी में इसके लिए घोषणा है: 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मद उर रसूल अल्लाह' अर्थात् अल्लाह के सिवा और कोई परमेश्वर नहीं है और मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।
2. प्रार्थना (सलात)- इसे फ़ारसी में 'नमाज़' भी कहते हैं। इस्लाम के अनुसार नमाज़ ईश्वर के प्रति मनुष्य की कृतज्ञता दर्शाती है। यह मक्का की ओर मुँह कर के पढ़ी जाती है। हर मुसलमान के लिये दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ना अनिवार्य है।

3. व्रत (रमज़ान) (सौम)- इस्लामी कैलेंडर के नवें महीने में सभी सक्षम मुसलमानों के लिये फ़ज़र (सूर्योदय) से मगरिब (सूर्यास्त) तक व्रत रखना अनिवार्य है। इस व्रत को 'रोज़ा' भी कहते हैं। रोज़े में हर प्रकार का खाना-पीना वर्जित है। अन्य व्यर्थ कर्मों से भी अपने आप को दूर रखा जाता है। रोज़ा रखने के कई उद्देश्य हैं जिन में से दो प्रमुख उद्देश्य यह हैं कि दुनिया के बाकी आकर्षणों से ध्यान हटा कर ईश्वर से निकटता अनुभव की जाए और दूसरा यह कि निर्धनों, भिखारियों और भूखों की समस्याओं और परेशानियों का भी संज्ञान हो।

4. दान (ज़कात)- यह एक वार्षिक दान है जो कि हर आर्थिक रूप से सक्षम मुसलमान को निर्धन मुसलमानों में बांटना अनिवार्य है। अधिकतर मुसलमान अपनी वार्षिक आय का 2.5% दान में देते हैं। यह एक धार्मिक कर्तव्य इस लिये है क्योंकि इस्लाम के अनुसार मनुष्य की पूँजी वास्तव में ईश्वर की देन है।

5. तीर्थ यात्रा (हज)- हज उस धार्मिक तीर्थ यात्रा का नाम है जो इस्लामी कैलेण्डर के 12वें महीने में मक्का में जाकर की जाती है। हर समर्पित मुसलमान (जो हज का खर्च उठा सकता हो और विवश न हो) के लिये जीवन में एक बार इसे करना अनिवार्य है।

मुसलमानों के लिये इस्लाम जीवन के हर पहलू पर अपना प्रभाव रखता है। इस्लामी सिद्धान्त मुसलमानों के घरेलू जीवन, उनके राजनैतिक या आर्थिक जीवन, मुसलमान राज्यों की विदेश नीति इत्यादि पर प्रभाव डालते हैं। 'शरीयत' उस समुच्चय नीति को कहते हैं जो इस्लामी कानूनी परम्पराओं और इस्लामी व्यक्तिगत और नैतिक आचरणों पर आधारित होती है। शरीयत की नीति को नींव बना कर न्यायशास्त्र के अध्ययन को 'फिक्रह' कहते हैं। फिक्रह के मामले में इस्लामी विद्वानों की अलग-अलग व्याख्याओं के कारण इस्लाम में न्यायशास्त्र कई भागों में बंट गया और कई अलग-अलग न्यायशास्त्र से सम्बन्धित विचारधारों का जन्म हुआ। इन्हें 'पन्थ' या 'फिरका' कहते हैं। इस्लाम धर्म के प्रमुख पंथ आरेख- 3.3 के अनुसार हैं।

मुसलमानों के उपासनास्थल को 'मस्जिद' कहते हैं। मस्जिद इस्लाम में केवल ईश्वर की प्रार्थना का ही केंद्र नहीं होता है बल्कि यहाँ पर मुस्लिम समुदाय के लोग विचारों का आदान-प्रदान और अध्ययन भी करते हैं। मस्जिदों में अक्सर इस्लामी वास्तुकला के कई अब्दुत उदाहरण देखने को मिलते हैं। विश्व की सबसे बड़ी मस्जिद मक्का की मस्जिद 'अल हराम' है। मुसलमानों का पवित्र स्थल 'काबा' इसी मस्जिद में है।

मुसलमानों का पारिवारिक और सामाजिक जीवन इस्लामी कानूनों और इस्लामी प्रथाओं से प्रभावित होता है। विवाह एक प्रकार का कानूनी और सामाजिक अनुबंध होता है, जिसकी वैधता केवल पुरुष और स्त्री की मज्जी और दो गवाहों से निर्धारित होती है (शिया वर्ग में केवल एक गवाह की जरूरत होती है)। इस्लामी कानून स्त्रियों और पुरुषों को विरासत में आधा हिस्सा देता है। स्त्रियों का हिस्सा पुरुषों की तुलना में आधा होता है। अपनी इस्लामी पहचान दिखाने के लिये मुसलमान अपने बच्चों का नाम अक्सर अरबी भाषा से लेते हैं। इसी कारण वह दाढ़ी भी रखते हैं। इस्लाम में कपड़े पहनते समय लज्जा रखने पर बहुत जोर दिया गया है। इसलिये अधिकतर स्त्रियाँ बुर्का पहनती हैं और कुछ स्त्रियाँ नकाब भी पहनती हैं।

इस्लाम में जातिगत भेदभाव भी विद्यमान है। मुस्लिम समाज में भी 'हसब-नसब' (जात-पात) और 'आला-अदना' (ऊँच-नीच) की 'तफरीक' (भेदभाव) है। अरबी भाषा में 'अशराफ़', 'अजलाफ़' और 'अरजाल' शब्द क्रमशः 'शरफ़', 'जल्फ़' और 'रजल' से बने हैं जिसका अर्थ क्रमशः 'शरीफ़', 'नीच' और 'निकृष्ट' होता है। 'अशराफ़' मुसलमान वर्ग की सबसे बड़ी जाति मानी जाती है। इसके अंतर्गत शेख, सैय्यद, पठान और मुग़ल आदि आते हैं। 'अजलाफ़' वह वर्ग है जिसे नीच वर्ग कहा जाता है। अन्य धर्मों से परिवर्तित जितने भी लोग हैं वे सब 'अजलाफ़' वर्ग में आते हैं। और 'अरजाल' वह वर्ग है, जिसे 'निकृष्ट' वर्ग माना जाता है। इसके अंतर्गत कामगार वर्ग आते हैं- जैसे जुलाहा, नाई, कुंजड़ा, धुनिया, बुनकर, कारीगर आदि। इसी वर्ग को 'पसमांदा' वर्ग भी कहते हैं।

मुस्लिम समुदाय का सक्रांति माह 'मुहर्रम' होता है। जहाँ से उनके पर्व-त्यौहार का सिलसिला प्रारंभ हो जाता है। इस माह की 5वीं तारीख से 'मुहर्रम' का आगाज होता है। इस पर्व में इमाम हसन हुसैन के नाम से इमामबाड़ा में 'शिरनी-फातिया' की जाती है। यह पर्व 'सुन्नी' और 'शिया' दोनों मानते हैं लेकिन 'देवबंदी' और 'वहाबी' इसका पालन नहीं करते।

देवबंदी मुहर्रम मनाये जाने के खिलाफ हैं क्योंकि उनके अनुसार इस्लाम में बुतपरस्ती हराम है। उनके अन्य महत्वपूर्ण त्यौहार हैं - ईद-मिलादुन्नबी (हजरत मुहम्मद के जन्म-दिवस), रज्जब (ख्वाजा गरीब नवाज के नाम से मनाया जाता है, जिन्होंने भारत में सूफी धर्म की नींव रखी)। यह पर्व भी सुन्नी लोग मानते हैं क्योंकि देवबंदी और वहाबी लोग पीरों को महत्व नहीं देते), शब-ए-बरात ('शबे-बरात' को लोग 'सुबरात' भी कहते हैं, 'शबे-बरात' में मुसलमान अपने मुर्दा, पुरखों और अजीजों को याद करते हैं), रमजान :- मुसलमानों के लिए सबसे 'पाक-महीना'(पवित्र-माह) 'रमजान' का होता है। 'रमजान' के मौके पर 'रोजा' रखे जाते हैं। इस तरह माह के अंतिम दिन में चाँद को देख उसके दूसरे दिन ईद मनाई जाती है। ईद (इदुलफ़ितर) - 'ईद' मुसलमानों के लिए बहुत बड़ा पर्व होता है। यह पर्व समन्वय का प्रतीक माना जाता है। बकरीद (ईदुलजुहा) - यह पर्व पूर्णतः धार्मिकता से जुड़ा हुआ पर्व है। इस पर्व में इस्लाम को मानने वाले लोग पशुओं की बलि देते हैं।

(ii) गैर सिमेटिक धर्म

पारसी धर्म: प्राचीन फारसया या परसिया (आज का ईरान) पूर्वी यूरोप से मध्य एशिया तक फैला एक विशाल साम्राज्य था। उस समय पैगंबर 'जरथुस्त्र' ने एकेश्वरवाद का संदेश देते हुए 'पारसी धर्म' की नींव रखी। इनसाईक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार पारसी धर्म की स्थापना जरथुस्त्र या जोरोस्टर ने छठी शताब्दी ईसा पूर्व में की।⁴¹ यह हजार से अधिक वर्ष तक फारस का प्रमुख धर्म था।⁴² जरथुस्त्र व उनके अनुयायियों के बारे में विस्तृत इतिहास ज्ञात नहीं है। कारण यह कि पहले सिकंदर की फौजों ने तथा बाद में अरब आक्रमणकारियों ने प्राचीन फारस का लगभग सारा धार्मिक एवं सांस्कृतिक साहित्य नष्ट कर दिया। आज हम उनके इतिहास के बारे में जो कुछ भी जानते

हैं, वह ईरान के पहाड़ों में उत्कीर्ण शिलालेखों तथा वाचिक परंपरा की बदौलत ही संभव हो सका है। सातवीं सदी ईस्वी तक आते-आते फारसी साम्राज्य अपना पुरातन वैभव तथा शक्ति गँवा चुका था। जब अरबों ने इस पर निर्णायक विजय प्राप्त कर ली तो अपने धर्म की रक्षा हेतु अनेक जश्नोस्ती धर्मावलंबी समुद्र के रास्ते भाग निकले और उन्होंने भारत के पश्चिमी तट पर शरण ली। यहाँ वे 'पारसी' (फारसी का अपभ्रंश) कहलाए। आज विश्वभर में मात्र सवा से डेढ़ लाख के बीच जश्नोस्ती हैं। इनमें से आधे से अधिक भारत में हैं।

फारस के शहंशाह विश्तास्प के शासनकाल में पैंगबर जरथुस्त्र ने दूर-दूर तक भ्रमण कर अपना संदेश दिया। उनके अनुसार ईश्वर एक ही है। इस ईश्वर को जरथुस्त्र ने 'अहुरा मजदा' कहा अर्थात् 'महान् जीवन दाता'। अहुरा मजदा कोई व्यक्ति नहीं है, बल्कि सत्त्व है, शक्ति है, ऊर्जा है। जरथुस्त्र के दर्शनानुसार विश्व में दो आद्य आत्माओं के बीच निरंतर संघर्ष जारी है। इनमें एक है अहुरा मजदा की आत्मा या 'स्पेंता मैन्यू' और दूसरी है दुष्ट आत्मा 'अहिरमन' या 'अंग्र मैन्यू'। इस दुष्ट आत्मा के नाश हेतु ही अहुरा मजदा ने अपनी सात कृतियों यथा आकाश, जल, पृथ्वी, वनस्पति, पशु, मानव एवं अग्नि से इस भौतिक विश्व का सृजन किया। वे जानते थे कि अपनी विध्वंसकारी प्रकृति तथा अज्ञान के चलते अंग्र मैन्यू इस विश्व पर हमला करेगा और इसमें अव्यवस्था, असत्य, दुःख, क्रूरता, रुग्णता एवं मृत्यु का प्रवेश करा देगा। मनुष्य, जो कि अहुरा मजदा की सर्वश्रेष्ठ कृति है, की इस संघर्ष में केन्द्रीय भूमिका है। उसे स्वेच्छा से इस संघर्ष में बुरी आत्मा से लोहा लेना है। इस युद्ध में उसके अस्त्र होंगे अच्छाई, सत्य, शक्ति, भक्ति, आदर्श एवं अमरत्व। इन सिद्धान्तों पर अमल कर मानव अंततः विश्व की तमाम बुराई को समाप्त कर देगा।

अधिक वैज्ञानिक कसौटी पर धर्म को परखने वाले कुछ विद्वान 'स्पेंता मैन्यू' की व्याख्या अलग तरह से करते हैं। उनके अनुसार 'स्पेंता मैन्यू' कोई आत्मा नहीं, बल्कि संवृद्धिशील, प्रगतिशील मन अथवा मानसिकता है। अर्थात् यह अहुरा मजदा का एक गुण है, वह गुण जो ब्रह्माण्ड का निर्माण एवं संवर्द्धन करता है। ईश्वर ने स्पेंता मैन्यू का सृजन इसीलिए किया था कि एक आनंददायक विश्व का

निर्माण किया जा सके। प्रगतिशील मानसिकता ही पृथ्वी पर मनुष्यों को दो वर्गों में बाँटती है। सदाचारी, जो विश्व का सर्वोद्धन करते हैं तथा दुराचारी, जो इसकी प्रगति को रोकते हैं। जरथ्रुस्त्र चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर तुल्य बने, जीवनदायी ऊर्जा को अपनाए तथा निर्माण, सर्वोद्धन एवं प्रगति का वाहक बने। 'हुमाता' (सद्विचार), 'हुउक्त' (सद्वाणी) तथा 'हवाशर्ता' (सद्कर्म) ज़रथ्रोस्ती जीवन पद्धति के आधार स्तंभ हैं।

सबसे पुराने पारसी धर्मग्रन्थ को 'गाथा' कहा जाता है। बाद में जेंद और अवेस्ता भाषाओं में लिखे जाने के कारण इसे 'जेंदावेस्ता' कहा गया। जेंदावेस्ता दो भागों में है- पहले भाग में मुख्यतः धार्मिक कानून और कहानियाँ हैं जबकि दूसरे भाग में प्रार्थनाएँ हैं।

ज़रथ्रोस्ती धर्म में मठवाद, ब्रह्मचर्य, व्रत-उपवास, आत्म-दमन आदि की मनाही है। ऐसा माना गया है कि इनसे मनुष्य कमजोर होता है और बुराई से लड़ने की उसकी ताकत कम हो जाती है। निराशावाद व अवसाद को तो पाप का दर्जा दिया गया है। जरथ्रूस्त्र चाहते हैं कि मानव इस विश्व का पूरा आनंद उठाए, खुश रहे। वह जो भी करे, सदाचार के मार्ग से कभी विचलित न हो। भौतिक सुख-सुविधाओं से संपन्न जीवन की मनाही नहीं है, लेकिन यह भी कहा गया है कि समाज से तुम जितना लेते हो, उससे अधिक उसे दो। किसी का हक मारकर या शोषण करके कुछ पाना दुराचार है। जो हमसे कम सम्पन्न हैं, उनकी सदैव मदद करनी चाहिए।

ज़रथ्रोस्ती धर्म में दैहिक मृत्यु को बुराई पर अस्थायी जीत माना गया है। यह माना गया है कि इसके बाद मृतक की आत्मा का इंसाफ होगा। यदि वह सदाचारी हुई तो आनंद व प्रकाश में वास पाएगी और यदि दुराचारी हुई तो अंधकार व नैराश्य की गहराइयों में जाएगी, लेकिन दुराचारी आत्मा की यह स्थिति भी अस्थायी है। यह मान्यता है कि अंततः मुक्तिदाता आकर बुराई पर अच्छाई की विजय को पूर्ण करेंगे।⁴³

(iii) गैर पैगम्बरी धर्म या भारतीय मूल के धर्म :

इन धर्मों का उदय भारत में हुआ। यहाँ धर्म का तात्पर्य कर्तव्यों और जीवन से सम्बंधित विशिष्ट नियमों से है। धर्म के उदय के लिए यहाँ किसी पैगम्बर को उत्तरदायी नहीं माना जाता। इसी कारण यहाँ उदित हुए धर्मों को गैर-पैगम्बरी धर्म की श्रेणी में रखा जाता है। इस श्रेणी के प्रमुख धर्म निम्नवत् हैं:-

हिन्दू धर्म :

हिन्दू धर्म समूह का मानना है कि सारे संसार में धर्म केवल एक ही है, शाश्वत सनातन हिन्दू धर्म। इसे विश्व का प्राचीनतम धर्म कहा जाता है। इसे 'वैदिक सनातन वर्णाश्रम धर्म' भी कहते हैं। विद्वान लोग हिन्दू धर्म को भारत की विभिन्न संस्कृतियों एवं परम्पराओं का सम्मिश्रण मानते हैं, जिसका कोई संस्थापक नहीं है। यह वेदों पर आधारित धर्म है, जो अपने अन्दर कई अलग-अलग उपासना पद्धतियाँ, मत, सम्प्रदाय और दर्शन समेटे हुए है। अनुयायियों की संख्या के आधार पर यह विश्व का तीसरा सबसे बड़ा धर्म है। संख्या के आधार पर इसके अधिकतर उपासक भारत में हैं और प्रतिशत के आधार पर नेपाल में हैं। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने एक फैसले में कहा था कि हिन्दू केवल एक धर्म या सम्प्रदाय ही नहीं है अपितु जीवन जीने की एक पद्धति है।

हिन्दू धर्म की प्राचीनता : हिंदू ज्योतिष शास्त्र में विद्यमान काल गणना के अनुसार सृष्टि के आरंभ की तिथि कई करोड़ वर्ष पहले की वर्णित है; संदर्भ हेतु - बहुप्रचलित ग्रेगरी कैलेण्डर के सन् 2018 मे मार्च माह में प्रारंभ हुआ हिंदू नव वर्ष सृष्टि के प्रारंभ से 1,95,58,8,5,119वाँ वर्ष था। वेदांग ज्योतिषानुसार इस आधार पर हिंदू धर्मावलंबी इस धर्म को उतना ही पुराना मानते हैं। वहीं आधुनिक इतिहासकार हड़प्पा, मेहरगढ़ आदि पुरातात्विक अन्वेषणों के आधार पर इस धर्म का इतिहास मात्र कुछ हजार वर्ष पुराना मानते हैं। इन्हें खारिज करने हेतु कई चमत्कारी, सटीक साक्ष्य भी उपलब्ध हैं, जो इस धर्म को प्राचीनतम धर्म साबित करते हैं। उदाहरणार्थ जर्मनी में 1939 में मिली नृसिंह की मूर्ति।

कार्बन डेटिंग प्रक्रिया से उसकी आयु चार हजार वर्ष ज्ञात हुई। जहाँ भारत (और आधुनिक पाकिस्तानी क्षेत्र) की सिन्धु घाटी सभ्यता में हिन्दू धर्म के कई चिह्न मिलते हैं। इनमें एक अज्ञात मातृदेवी की मूर्तियाँ, शिव पशुपति जैसे देवता की मुद्राएँ, लिंग, पीपल की पूजा के प्रमाण, इत्यादि प्रमुख हैं। इतिहासकारों के एक दृष्टिकोण के अनुसार इस सभ्यता के अन्त के दौरान मध्य एशिया से एक अन्य जाति का आगमन हुआ, जो स्वयं को आर्य कहते थे और संस्कृत नाम की एक हिन्द यूरोपीय भाषा बोलते थे। एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग स्वयं ही आर्य थे और उनका मूलस्थान भारत ही था। आर्यों की सभ्यता को वैदिक सभ्यता कहते हैं। पहले दृष्टिकोण के अनुसार लगभग 1700 ईसा पूर्व में आर्य अफ़ग़ानिस्तान, कश्मीर, पंजाब और हरियाणा में बस गए। तभी से वो लोग (उनके विद्वान ऋषि) अपने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए वैदिक संस्कृत में मन्त्र रचने लगे। हिन्दू मान्यता के अनुसार वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थ अनादि, नित्य हैं, ईश्वर की कृपा से अलग-अलग मन्त्रद्रष्टा ऋषियों को अलग-अलग ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त हुआ, जिन्होंने फिर उन्हें लिपिबद्ध किया। दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार हिन्दू धर्म का मूल कदाचित सिन्धु सरस्वती परम्परा (जिसका स्रोत मेहरगढ़ की 6500 ई.पू. की संस्कृति में मिलता है) से भी पहले की भारतीय परम्परा में है।

हिन्दू नामकरण का इतिहास : भारतवर्ष को प्राचीन ऋषियों ने 'हिन्दुस्थान' नाम दिया था। 'हिन्दू' शब्द 'सिन्धु' से उत्पन्न माना जाता है। संस्कृत में सिन्धु शब्द के दो मुख्य अर्थ हैं - पहला, सिन्धु नदी जो मानसरोवर के पास से निकल कर लद्दाख और पाकिस्तान से बहती हुई समुद्र में मिलती है, दूसरा - कोई समुद्र या जलराशि। ऋग्वेद की नदीस्तुति के अनुसार वे सात नदियाँ थीं : सिन्धु, सरस्वती, वितस्ता (झेलम), शुतुद्रि (सतलुज), विपाशा (व्यास), परुषिणी (रावी) और अस्कनी (चेनाब)। एक अन्य विचार के अनुसार हिमालय के प्रथम अक्षर 'हि' एवं इन्दु का अन्तिम अक्षर 'न्दु', इन दोनों अक्षरों को मिलाकर शब्द बना 'हिन्दु' और यह भू-भाग 'हिन्दुस्थान' कहलाया। हिन्दू शब्द उस समय धर्म के बजाय राष्ट्रीयता के रूप में प्रयुक्त होता था। चूँकि उस समय भारत में केवल वैदिक धर्म को ही मानने वाले लोग थे, बल्कि तब तक अन्य किसी धर्म का उदय नहीं हुआ था इसलिए 'हिन्दू' शब्द

सभी भारतीयों के लिए प्रयुक्त होता था। भारत में केवल वैदिक धर्मावलम्बियों (हिन्दुओं) के बसने के कारण कालान्तर में विदेशियों ने इस शब्द को धर्म के सन्दर्भ में प्रयोग करना शुरू कर दिया।

आम तौर पर हिन्दू शब्द को अनेक विश्लेषकों ने विदेशियों द्वारा दिया गया शब्द माना है। इस धारणा के अनुसार हिन्दू एक फ़ारसी शब्द है। ऋग्वेद में सप्त सिन्धु का उल्लेख मिलता है - वह भूमि जहाँ आर्य सबसे पहले बसे थे। भाषाविदों के अनुसार हिन्द आर्य भाषाओं की 'स्' ध्वनि (संस्कृत का व्यंजन 'स्') ईरानी भाषाओं की 'ह्' ध्वनि में बदल जाती है। इसलिए 'सप्त सिन्धु' अवेस्तन भाषा (पारसियों की धर्मभाषा) में जाकर 'हफ्त हिन्दु' में परिवर्तित हो गया। इसके बाद ईरानियों ने सिन्धु नदी के पूर्व में रहने वालों को 'हिन्दु' नाम दिया। जब अरब से मुस्लिम हमलावर भारत में आए, तो उन्होंने भारत के मूल धर्मावलम्बियों को हिन्दू कहना शुरू कर दिया। चारों वेदों में, पुराणों में, महाभारत में, स्मृतियों में इस धर्म को हिन्दू धर्म नहीं बल्कि 'वैदिक सनातन वर्णाश्रम धर्म' कहा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह नाम विदेशियों के द्वारा प्रदत्त है।

हिन्दू धर्म के मुख्य सिद्धान्त : हिन्दू धर्म सिद्धान्तों का समूह नहीं है, जिसे सभी हिन्दुओं को मानना आवश्यक है। यह तो धर्म से ज़्यादा एक जीवन का मार्ग है। हिन्दुओं का कोई केन्द्रीय चर्च या धर्मसंगठन नहीं है और न ही कोई 'पोप'। इसके अन्तर्गत कई मत और सम्प्रदाय आते हैं और सभी को बराबर श्रद्धा दी जाती है। धर्मग्रन्थ भी कई हैं। फिर भी, वे मुख्य सिद्धान्त, जिन्हें ज़्यादातर हिन्दुओं के द्वारा अनुसरित किया जाता है। ये अग्रलिखित में विश्वास है : धर्म (वैश्विक क़ानून), कर्म (और उसके फल), पुनर्जन्म का सांसारिक चक्र, मोक्ष (सांसारिक बन्धनों से मुक्ति--जिसके कई रास्ते हो सकते हैं) और ईश्वर। हिन्दू धर्म, स्वर्ग और नरक को अस्थायी मानता है। हिन्दू धर्म के अनुसार संसार के सभी प्राणियों में आत्मा होती है। मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो इस लोक में पाप और पुण्य, दोनों कर्म भोग सकता है और मोक्ष प्राप्त कर सकता है। हिन्दू धर्म में चार मुख्य सम्प्रदाय हैं : वैष्णव (जो विष्णु को परमेश्वर मानते हैं), शैव (जो शिव को परमेश्वर मानते हैं), शाक्त (जो देवी को परमशक्ति मानते हैं) और स्मार्त (जो परमेश्वर के विभिन्न रूपों को एक ही समान मानते हैं)।

संक्षेप में, हिन्दुत्व के प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित हैं-

हिन्दू कौन है ? :-

गोषु भक्तिर्भवेद्यस्य प्रणवे च दृढा मतिः।

पुनर्जन्मनि विश्वासः स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥⁴⁴

अर्थात् गोमाता में जिसकी भक्ति हो, प्रणव जिसका पूज्य मन्त्र हो, पुनर्जन्म में जिसका विश्वास हो वही हिन्दू है। मेरुतन्त्र 33 प्रकरण के अनुसार 'हीनं दूषयति स हिन्दु' अर्थात् जो हीन (हीनता या नीचता) को दूषित समझता है (उसका त्याग करता है) वह हिन्दू है। लोकमान्य तिलक के अनुसार- 'असिन्धोः सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका। पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥'⁴⁵ अर्थात्- सिन्धु नदी के उद्गम-स्थान से लेकर सिन्धु (हिन्द महासागर) तक सम्पूर्ण भारत भूमि जिसकी पितृ-भू (अथवा मातृ भूमि) तथा पुण्यभू (पवित्र भूमि) है, (और उसका धर्म हिन्दुत्व है) वह हिन्दू कहलाता है। कालिका पुराण, मेदनी कोष आदि के आधार पर वर्तमान हिन्दू कानून के मूलभूत आधारों के अनुसार वेदप्रतिपादित वर्णाश्रम रीति से वैदिक धर्म में विश्वास रखने वाला हिन्दू है। यद्यपि कुछ लोग कई संस्कृति के मिश्रित रूप को ही भारतीय संस्कृति मानते हैं, जबकि कुछ का मत है कि जिस संस्कृति या धर्म की उत्पत्ति एवं विकास भारत भूमि पर नहीं हुआ है, वह धर्म या संस्कृति भारतीय (हिन्दू) कैसे हो सकती है।

ईश्वर सम्बन्धी मत : उपनिषदों के अनुसार 'ब्रह्म' ही परम तत्त्व है। ब्रह्म और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध में हिन्दू दर्शनों का मत भिन्न-भिन्न है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार जब मानव ब्रह्म को अपने मन से जानने की कोशिश करता है, तब ब्रह्म ईश्वर हो जाता है, क्योंकि मानव माया नाम की एक जादुई शक्ति के वश में रहता है। अर्थात् जब माया के आइने में ब्रह्म की छाया पड़ती है, तो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब हमें ईश्वर के रूप में दिखायी पड़ता है। ईश्वर अपनी इसी जादुई शक्ति 'माया' से विश्व की सृष्टि करता है और उस पर शासन करता है। इस स्थिति में हालाँकि ईश्वर एक नकारात्मक शक्ति के

साथ है, लेकिन माया उस पर अपना कुप्रभाव नहीं डाल पाती है, जैसे एक जादूगर अपने ही जादू से अचम्भित नहीं होता है। माया ईश्वर की दासी है, परन्तु जीवों की स्वामिनी है। वैसे तो ईश्वर रूपहीन है, पर माया की वजह से वह हमें कई देवताओं के रूप में प्रतीत हो सकता है। इसके विपरीत वैष्णव मत के अनुसार ईश्वर और ब्रह्म में कोई फ़र्क नहीं है और विष्णु (या कृष्ण) ही ईश्वर हैं। न्याय, वैशेषिक और योग दर्शनों के अनुसार ईश्वर एक परम और सर्वोच्च आत्मा है, जो चैतन्य से युक्त है और विश्व का सृष्टा और शासक है।

वस्तुतः जो बात सभी हिन्दू स्वीकार करते हैं वह यह है कि ईश्वर विश्वव्यापी और विश्वातीत दोनो है। बेशक, ईश्वर सगुण है। वह स्वयंभू और विश्व का कारण (सृष्टा) है। वह पूजा और उपासना का विषय है। वह पूर्ण, अनन्त, सनातन, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है। वह राग-द्वेष से परे है, पर अपने भक्तों से प्रेम करता है और उनपर कृपा करता है। उसकी इच्छा के बिना इस दुनिया में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। वह विश्व की नैतिक व्यवस्था को कायम रखता है और जीवों को उनके कर्मों के अनुसार सुख-दुख प्रदान करता है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार विश्व में नैतिक पतन होने पर वह समय-समय पर धरती पर अवतार (जैसे कृष्ण) रूप ले कर आता है। ईश्वर के अन्य नाम हैं : परमेश्वर, परमात्मा, विधाता, भगवान (जो हिन्दी में सबसे ज्यादा प्रचलित है)। इसी ईश्वर को मुसलमान अरबी में 'अल्लाह', (फ़ारसी में) 'खुदा', ईसाई (अंग्रेज़ी में) 'गॉड' और यहूदी (इब्रानी में) 'यहोवा' कहते हैं।

हिन्दू धर्म में देवता : इस विषय में तीन मत हैं :-

1. अद्वैत वेदान्त, भगवद्गीता, वेद, उपनिषद्, आदि के मुताबिक सभी देवी-देवता एक ही परमेश्वर के विभिन्न रूप हैं (ईश्वर स्वयं ही ब्रह्म का रूप है)। निराकार परमेश्वर की भक्ति करने के लिये भक्त अपने मन में भगवान को किसी प्रिय रूप में देखता है। ऋग्वेद के अनुसार, "एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति", अर्थात् एक ही परमसत्य को विद्वान कई नामों से बुलाते हैं।

2. योग, न्याय, वैशेषिक, अधिकांश शैव और वैष्णव मतों के अनुसार देवगण वे परालौकिक शक्तियाँ हैं जो ईश्वर के अधीन हैं। किन्तु मानवों के भीतर मन पर शासन करती हैं। योग दर्शन के अनुसार ईश्वर ही प्रजापति और इन्द्र जैसे देवताओं और अंगीरा जैसे ऋषियों के पिता और गुरु हैं।

3. मीमांसा दर्शन के अनुसार सभी देवी-देवता स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं और उनके ऊपर कोई एक ईश्वर नहीं है। इच्छित कर्म करने के लिये इनमें से एक या कई देवताओं को कर्मकाण्ड और पूजा द्वारा प्रसन्न करना ज़रूरी है। इस प्रकार का मत शुद्ध रूप से बहु-ईश्वरवादी कहा जा सकता है।

जो भी हो, ये देवता रंग-बिरंगी हिन्दू संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। वैदिक काल के मुख्य देव थे- इन्द्र, अग्नि, सोम, वरुण, रुद्र, विष्णु, प्रजापति, सविता (पुरुष देव) और देवियाँ थीं- सरस्वती, ऊषा, पृथ्वी, इत्यादि (कुल 33)। बाद के हिन्दू धर्म में नये देवी-देवता आये (कई अवतार के रूप में) गणेश, राम, कृष्ण, हनुमान, कार्तिकेय, सूर्य-चन्द्र और ग्रह और देवियाँ (जिनको माता की उपाधि दी जाती है) जैसे- दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी, शीतला, सीता, काली, इत्यादि। ये सभी देवता पुराणों में उल्लिखित हैं और उनकी कुल संख्या 33 करोड़ बतायी जाती है। इन सबके अलावा हिन्दू धर्म में गाय को भी माता के रूप में पूजा जाता है। यह माना जाता है कि गाय में सम्पूर्ण 33 करोड़ देवी-देवता वास करते हैं।

हिन्दू धर्म ग्रन्थ :

हिंदू धर्म के पवित्र ग्रन्थों को दो भागों में बाँटा गया है- 'श्रुति' और 'स्मृति'। 'श्रुति' हिन्दू धर्म के सर्वोच्च ग्रन्थ हैं, जो पूर्णतः अपरिवर्तनीय हैं, अर्थात् किसी भी युग में इनमें कोई बदलाव नहीं किया जा सकता। स्मृति ग्रन्थों में देश-कालानुसार बदलाव हो सकता है। श्रुति के अन्तर्गत वेद, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद, ब्रह्मसूत्र व उपनिषद् आते हैं। वेद श्रुति इसलिये कहे जाते हैं क्योंकि हिन्दुओं का मानना है कि इन वेदों को परमात्मा ने ऋषियों को सुनाया था। वेदों को श्रवण परम्परा के अनुसार गुरु द्वारा शिष्यों को दिया जाता था। हर वेद में चार भाग हैं- संहिता-मन्त्र भाग, ब्राह्मण ग्रन्थ-

गद्य भाग, जिसमें कर्मकाण्ड समझाये गये हैं, आरण्यक- इनमें अन्य गूढ़ बातें समझायी गयी हैं, उपनिषद्- इनमें ब्रह्म, आत्मा और इनके सम्बन्ध के बारे में विवेचना की गयी है। अगर श्रुति और स्मृति में कोई विवाद होता है तो श्रुति ही मान्य होगी। श्रुति को छोड़कर अन्य सभी हिन्दू धर्मग्रन्थ स्मृति कहे जाते हैं, क्योंकि इनमें वो कहानियाँ हैं, जिनको लोगों ने पीढ़ी दर पीढ़ी याद किया और बाद में लिखा। सभी स्मृति ग्रन्थ वेदों की प्रशंसा करते हैं। इनको वेदों से निम्न स्तर प्राप्त है, किन्तु ये अपेक्षाकृत सरल हैं और अधिकांश हिन्दुओं द्वारा पढ़े जाते हैं। प्रमुख स्मृति ग्रन्थ हैं:- रामायण और महाभारत, भगवद्गीता, अष्टावह पुराण, मनुस्मृति, धर्मशास्त्र और धर्मसूत्र, आगम शास्त्र। हिन्दू धर्म संस्थागत नहीं है क्योंकि इसके निर्णय किसी एक संस्था या उस संस्था के सदस्यों मात्र के आधार पर नहीं लिए जाते।

हिन्दू धर्म में प्रमुख विशेषताएँ हैं - जीवन में निरंतरता और अखंडता महसूस करना, कर्मवाद, आनृत्य-व्यवस्था (शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित चार ऋण- ऋषि, पितृ, देव, भूत या मनुष्य ऋण), पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष), कर्मकांड : पूजन, यज्ञ आदि को सम्पन्न करना।⁴⁶

जैन धर्म :

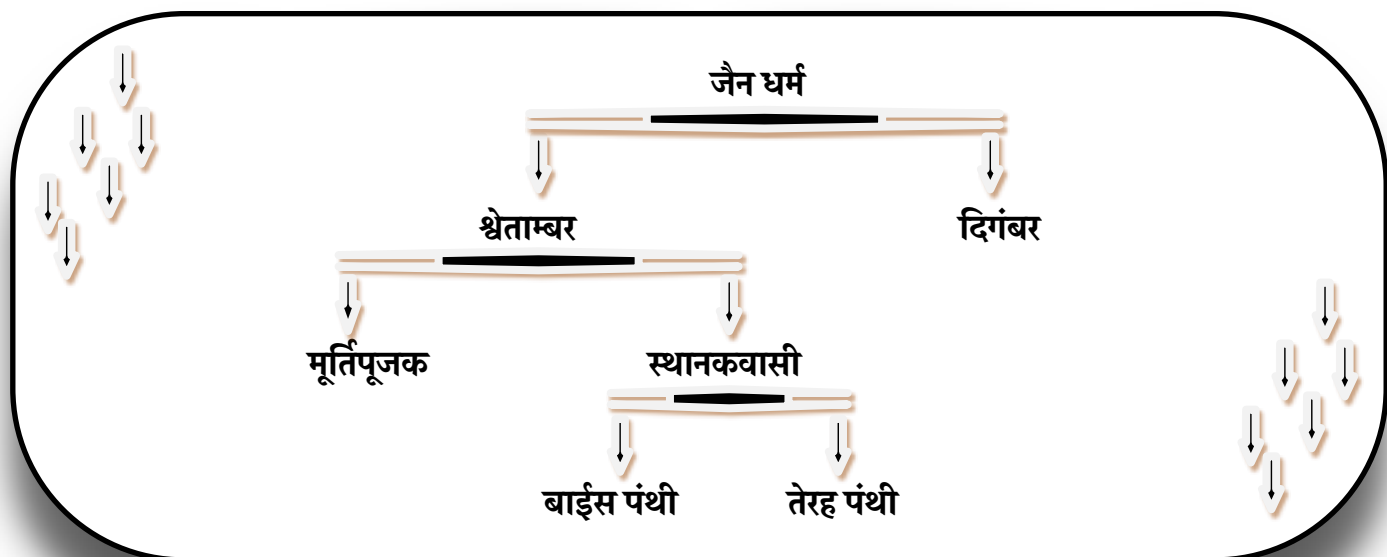
जैन धर्म भारत का एक प्राचीन धर्म है। जैन ग्रंथों के अनुसार जैन धर्म अनादिकाल से है। महावीर स्वामी या वर्धमान ने ईसा से 527 वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था। इसी समय से पीछे कुछ लोग विशेषकर यूरोपियन विद्वान् जैन धर्म का प्रचलित होना मानते हैं। जैनों ने अपने ग्रंथों को 'आगम', 'पुराण' आदि में विभक्त किया है। प्रो० जेकोबी आदि के आधुनिक अन्वेषणों के अनुसार यह सिद्ध किया गया है कि जैन धर्म, बौद्ध धर्म से पहले का है। उदयगिरि, जूनागढ़ आदि के शिलालेखों से भी जैनमत की प्राचीनता ज्ञात होती है। स्कन्द पुराण के अनुसार, 'ऋषभदेव नाभिराज के पुत्र थे, ऋषभ के पुत्र भरत थे, और इनके ही नाम पर इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा।

'जैन धर्म' का अर्थ है - 'जिन द्वारा प्रवर्तित धर्म'। 'जैन' उन्हें कहते हैं, जो 'जिन' के अनुयायी हों। 'जिन' शब्द बना है 'जि' धातु से। 'जि' माने- 'जीतना'। 'जिन' माने 'जीतने वाला'। जिन्होंने अपने मन

को जीत लिया, अपनी वाणी को जीत लिया और अपनी काया को जीत लिया और विशिष्ट ज्ञान को पाकर सर्वज्ञ या पूर्णज्ञान प्राप्त किया, उन आस पुरुषों को 'जिनेश्वर' या 'जिन' कहा जाता है। अहिंसा जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है। जैन दर्शन में सृष्टिकर्ता ईश्वर को स्थान नहीं दिया गया है।

जैन ग्रंथों के अनुसार ऋषभदेव द्वारा जैन धर्म का प्रादुर्भाव हुआ था। जैन धर्म में महावीर को अंतिम तीर्थंकर माना जाता है। जैन धर्म में तीर्थंकरों और श्रावकों के लिए पाँच महाव्रत बताये गये हैं:- अहिंसा - किसी भी जीव को मन, वचन, काया से पीड़ा नहीं पहुँचाना। किसी जीव के प्राणों का घात नहीं करना। सत्य - हित, मित, प्रिय वचन बोलना। अस्तेय - बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण नहीं करना। ब्रह्मचर्य - मन, वचन, काया से मैथुन कर्म का त्याग करना। अपरिग्रह - पदार्थों के प्रति ममत्व का बुद्धिपूर्वक त्याग।

तीर्थंकर महावीर के समय तक अविच्छिन्न रही जैन परंपरा ईसा की तीसरी सदी में दो भागों में विभक्त हो गयी : दिगंबर और श्वेताम्बर। जैन धर्म के विभाजन को निम्नलिखित रेखाचित्र के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं :-



आरेख- 3.4 जैन धर्म का विभाजन

दिगम्बर साधु (निर्ग्रन्थ) वस्त्र नहीं पहनते हैं, नग्न रहते हैं और साध्वियाँ श्वेत वस्त्र धारण करती हैं। दिगम्बर मत में तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ पूर्ण नग्न बनायी जाती हैं और उनका श्रृंगार नहीं किया जाता है,

पूजन पद्धति में फल और फूल चढाए जाते हैं। श्वेताम्बर संन्यासी एवं साध्वियाँ संन्यासी श्वेत वस्त्र पहनते हैं, तीर्थकरों की प्रतिमाएँ, धातु की आँख एवं कुंडल सहित बनायी जाती हैं और उनका श्रृंगार किया जाता है। श्वेताम्बर भी दो भागों में विभक्त हैं। मूर्तिपूजक - ये तीर्थकरों की प्रतिमा की उपासना करते हैं। स्थानकवासी - ये मूर्ति पूजा नहीं करते बल्कि साधु संतों को ही पूजते हैं। 'आगम साहित्य' को इनके धर्म ग्रन्थ के रूप में देखा जाता है। जैन दर्शन में समान्य जगत में विद्यमान तत्वों को 'द्रव्य' कहा जाता है। द्रव्य दो प्रकार के माने गये हैं- जीव - चैतन्य रूप तत्व, अजीव-भौतिक तत्व।

बौद्ध धर्म :

ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म की स्थापना हुई। बौद्ध धर्म के संस्थापक भगवान बुद्ध हैं। भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण की अगली पाँच शताब्दियों में, बौद्ध धर्म पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैला और अगले दो हजार वर्षों में मध्य, पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी जम्बू महाद्वीप में भी फैल गया। आज, हालाँकि बौद्ध धर्म में तीन सम्प्रदाय हैं: 'हीनयान' या 'थेरवाद', 'महायान' और 'वज्रयान', परन्तु बौद्ध धर्म एक ही है एवं सभी बौद्ध सम्प्रदाय बुद्ध के सिद्धान्त को ही मानते हैं। बौद्ध धर्म दुनिया का चौथा सबसे बड़ा धर्म है। चीन, जापान, वियतनाम, थाईलैण्ड, म्यान्मार, भूटान, श्रीलंका, कम्बोडिया, मंगोलिया, तिब्बत, लाओस, हांगकांग, ताइवान, मकाउ, सिंगापुर, दक्षिण कोरिया एवं उत्तर कोरिया समेत कुल 18 देशों में बौद्ध धर्म प्रमुख धर्म है। भारत, नेपाल, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया, रूस, ब्रुनेई, मलेशिया आदि देशों में भी काफी संख्या में बौद्ध हैं।

'त्रिपिटक' (तिपिटक) बौद्ध धर्म का मुख्य ग्रन्थ है। तथागत बुद्ध का पहला धर्मोपदेश, जो उन्होंने अपने साथ के कुछ साधुओं को दिया था, चार आर्य सत्यों के विषय में था -

1. दुःख - इस दुनिया में दुःख है। जन्म में, बूढ़े होने में, बीमारी में, मौत में, प्रियतम से दूर होने में, नापसंद चीजों के साथ में आदि सब में दुःख है।
2. दुःख का कारण - तृष्णा, इच्छा।

3. दुःख निरोध - तृष्णा से मुक्ति संभव है।

4. दुःख निरोध मार्ग - तृष्णा से मुक्ति 'अष्टांगिक मार्ग' के अनुशरण से प्राप्त हो सकती है। ये हैं -

सम्यक् दृष्टि : चार आर्य सत्य में विश्वास करना, सम्यक् संकल्प : मानसिक और नैतिक

विकास की प्रतिज्ञा करना,

सम्यक् वाक् : हानिकारक बातें और झूट न बोलना, सम्यक् कर्म : हानिकारक कर्मों को न

करना,

सम्यक् जीविका : कोई भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हानिकारक व्यापार न करना,

सम्यक् प्रयास : अपने आप सुधरने की कोशिश करना,

सम्यक् स्मृति : स्पष्ट ज्ञान से देखने की मानसिक योग्यता पाने की कोशिश करना,

सम्यक् समाधि : निर्वाण।

सिख धर्म :

सिख एक ही ईश्वर को मानते हैं। बराबरी, सहनशीलता, बलिदान, निडरता के नियमों पर चलते हुए एक निराले व्यक्तित्व के साथ जीते हुए उस ईश्वर में लीन हो जाना, किसी सिख के जीवन उद्देश्य है। इनका धर्मग्रन्थ 'गुरु ग्रंथ साहिब' है। आमतौर पर सिखों के 10 'सतगुरु' माने गये हैं, लेकिन सिखों के धार्मिक ग्रंथ में 6 गुरुओं सहित 30 'भगतों' की बानी है, जिन की शिक्षाओं पर चलना सिख के लिए महत्वपूर्ण है। सिखों के धार्मिक प्रार्थना स्थल को 'गुरुद्वारा' कहते हैं।

1469 ई. में पंजाब में जन्मे नानक देव ने इस मत की स्थापना की। सिख उन्हें अपना पहला गुरु मानते हैं। संत कबीर, रामानंद, परमानंद, नामदेव इत्यादि की बानी 'आदि ग्रंथ' में दर्ज है। इन को सिख सतगुरुओं के समान मानते हैं। सिख एक ही ईश्वर को मानते हैं, जिसे वे 'एक-ओंकार' कहते हैं।

गुरुनानक ने अपने समय के भारतीय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, अंधविश्वासों, जर्जर रूढ़ियों और पाखण्डों को दूर करते हुए जन-साधारण को धर्म के ठेकेदारों, पण्डों, पीरों आदि के चंगुल से मुक्त

करने के लिए ही, 'गुरुमत' का प्रचार किया। उन्होंने प्रेम, सेवा, परिश्रम, परोपकार और भाई-चारे की दृढ़ नींव पर सिख धर्म की स्थापना की। उन्होंने एक उदारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुआ सभी धर्मों की अच्छाइयों को इस मत में समाहित किया। उन्होंने अपने एक सबद में कहा -

पण्डित वाचहि पोथिआ न बूझहि बीचार।

आन को मती दे चलहि माइआ का बामारू।

कहनी झूठी जगु भवै रहणी सबहु सबदु सु सारू ॥६॥⁴⁷

अर्थात् पण्डित पोथी (शास्त्र) पढ़ते हैं, किन्तु विचार को नहीं बूझते। दूसरों को उपदेश देते हैं, इससे उनका माया का व्यापार चलता है। उनकी कथनी झूठी है, वे संसार में भटकते रहते हैं। इन्हें सबद के सार का कोई ज्ञान नहीं है। ये पण्डित तो वाद-विवाद में ही पड़े रहते हैं।

गुरु अर्जुन देव तो यहाँ तक कहते हैं कि परमात्मा अनंत है और घट-घट में व्याप्त है -

सगल वनस्पति महि बैसन्तरु सगल दूध महि घीआ।

ऊँच-नीच महि जोति समाणी, घटि-घटि माथउ जीआ ॥⁴⁸

सिख धर्म को कालजयी बनाने के लिए गुरु गोविन्द सिंह ने सभी धर्मों और जातियों के लोगों को गुरु-शिष्य-परम्परा में दीक्षित किया।

सिखमत की शुरुआत ही 'एक' से होती है। एक को निरंकार, पारब्रह्म आदिक गुणवाचक नामों से जाना जाता है। निरंकार का एकाकार स्वरूप श्री गुरुग्रंथ साहिब के शुरुआत में बताया है, जिसे आम भाषा में 'मूल मन्त्र' कहते हैं- 'एक ओंकार, सतनाम, करता पुरख, निर्भऊ, निरवैर। अकालमूरत, अजूनी, स्वैभं गुरप्रसाद ॥'⁴⁹ तकरीबन सभी धर्म इसी 'एक' की आराधना करते हैं, लेकिन 'एक' की विभिन्न अवस्थाओं का जिक्र व व्याख्या गुरु ग्रंथ साहिब जिस प्रकार दी गई है, वह अपने आप में विशिष्ट है। जीव आत्मा जो निराकार है, उस के पास निरंकार के सिर्फ चार ही गुण हैं - ओंकार, सतिनाम, करता पुरख, स्वैभंग। बाकी चार गुण प्राप्त करते ही जीव आत्मा पुनः निरंकार में

विलीन हो जाती है। किन्तु निरंकार को प्राप्त करने के लिए जीव आत्मा को स्वयं को गुरुमत के ज्ञान द्वारा समझना जरूरी है।

सिख धर्म के अनुसार इंसान स्वयं कुछ कर ही नहीं सकता। वह सिर्फ वही करता है, जो 'हुक्म' में है। गुरुग्रन्थ साहिब में उल्लिखित है -

'हुक्मे अंदर सब कोइ हुक्मे बाहर न कोय।

नानक हुक्मे जे बुझे हउ मैं कहै न कोय ॥'⁵⁰

अर्थात् हुकुम के अंदर सबको रहना है। हुकुम के बाहर कुछ भी नहीं है। नानक की इस बात को जो समझ ले वह फिर कभी यह नहीं कहेगा कि 'मैं भी कुछ हूँ'।

गुरुमत में पाप-पुण्य को नहीं स्वीकार किया गया। यह कर्म कांड के विरुद्ध है। निम्नलिखित चार 'पदार्थ' मानव को अपने जीवनकाल में प्राप्त करना अनिवार्य है : ज्ञान पदार्थ या प्रेम पदार्थ, मुक्त पदार्थ, नाम पदार्थ, जन्म पदार्थ। सिखमत मूर्ति-पूजा के विरुद्ध है। इसमें हर जीव को अवतार कहा गया है। हर जीव उस निरंकार की अंश है। पैगम्बर वो है, जो निरंकार का सन्देश अथवा ज्ञान आम जन में प्रसारित करे।

मूल रूप में भक्तों एवं सतगुरुओं की वाणी का संग्रह, 'आदि ग्रन्थ' जिसे सतगुरु अर्जुन देव ने संकलित किया था, सिखों के धार्मिक ग्रंथ के रूप में प्रसिद्ध है। यह ग्रंथ 36 भक्तों का उपदेश है। सिख आदि ग्रंथ के साथ-साथ 'दसम ग्रंथ' (सतगुरु गोविंद सिंह की वाणी का संग्रह) को भी पवित्र और अनुकरणीय मानते हैं।

सिख धर्म का परम लक्ष्य 'मानव-कल्याण' है। कदाचित इसी मानव-कल्याण का सबक सिखाने के लिए गुरु गोविन्द सिंह ने औरंगजेब को एक लम्बा पत्र (ज़फ़रनामा) लिखा था, जिसमें ईश्वर की स्तुति के साथ-साथ औरंगजेब के शासन-काल में हो रहे अन्याय तथा अत्याचार का मार्मिक उल्लेख है। इस पत्र में नेक कर्म करने और मासूम प्रजा का खून न बहाने की नसीहतें, धर्म एवं ईश्वर

की आड़ में मक्कारी और झूठ के लिए चेतावनी तथा योद्धा की तरह मैदान जंग में आकर युद्ध करने के लिए ललकार है। कह सकते हैं सिख गुरुओं ने कभी न मुरझाने वाले सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों की भी स्थापना की। सिख गुरुओं की वाणियों को देखें तो स्पष्ट होता है कि उन्होंने साम्राज्यवादी अवधारणा को कभी महत्व नहीं दिया बल्कि सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक सामंजस्य के माध्यम से मानवतावादी संसार के निर्माण के लिए ही सबको प्रेरित करते रहे।

(iv) अन्य धर्म :

बहाई धर्म : यह 19वीं शताब्दी में ईरान में उत्पन्न हुआ। इसके संस्थापक बहाउल्लाह हैं। यह धर्म सभी धार्मिक दर्शनों की एकता की शिक्षा देता है और इस्लाम, ईसाई और यहूदी धर्मों के पैगम्बरों को ईश्वर के पैगम्बरों के रूप में स्वीकार करता है। इस धर्म के अनुयायी बहाउल्लाह को विभिन्न धर्मों के अवतारों कृष्ण, ईसा-मसीह, मुहम्मद, बुद्ध, जरथुस्त्र, मूसा आदि की पुनः वापसी मानते हैं। बहाउल्लाह को कल्कि अवतार के रूप में स्वीकार किया जाता है। ऐसा मत है कि वे सम्पूर्ण विश्व को एक करने हेतु अवतरित हुए हैं। उनका मूल सन्देश है- 'समस्त पृथ्वी एक देश है और मानवजाति इसका नागरिक'। बहाउल्लाह द्वारा लिखी गई पुस्तक 'किताब-ए-अकदस' में इसके सिद्धान्तों का विवरण मिलता है, जो 1873 ई. के आसपास लिखी गई।

बहाई धर्म में धर्म गुरु, पुजारी, मौलवी या पादरी वर्ग नहीं होता है। बहाई अनुयायी जाति, धर्म, भाषा, रंग, वर्ग आदि किसी भी पूर्वाग्रहों को नहीं मानते हैं। इसके सिद्धान्तों में प्रमुख हैं - ईश्वर एक है, सभी धर्मों का स्रोत एक है, विश्व शान्ति एवं विश्व एकता, सभी के लिए न्याय, स्त्री-पुरुष की समानता, सभी के लिये अनिवार्य शिक्षा, विज्ञान और धर्म का सामंजस्य, गरीबी और धन की अति का समाधान, भौतिक समस्याओं का आध्यात्मिक समाधान। बहाई धर्म के अनुयायी सम्पूर्ण विश्व के लगभग कई देशों में सामाजिक पुनर्निर्माण के कार्य में जुटे हुए हैं।⁵¹

इसके अतिरिक्त अन्य छोटे स्थानीय इब्राहिमिक धर्म भी अस्तित्व में हैं जैसे- 'सामरी' (मुख्यतः इजराइल और वेस्ट बैंक में), 'स्ताफारी' (जमैका में), 'डूज़' (मुख्यतः सीरिया और लेबनान में) आदि।

पूर्व-एशियाई धर्म : पूर्व एशियाई धर्मों में (इन्हें सूदूर पूर्वी धर्म या ताओ धर्म के रूप में भी जाना जाता है) चीन का 'ताओ' और जापान और कोरिया का 'डो' धर्म भी सम्मिलित है। इसके अंतर्गत आने वाले अन्य धर्म हैं -

चीनी लोक धर्म: यह चीन में प्रचलित धर्म है, जिसमें चीनी 'ताओ', 'कन्फुशियस धर्म', 'बौद्ध धर्म', 'वुड्ज्म' के साथ कई नए धार्मिक आन्दोलन से उत्पन्न मत जैसे 'चेन ताओ', 'फालुन गोंग', 'यिगुआंडो' सम्मिलित हैं।

पूर्व एशियाई धर्मों में अन्य धर्म : पूर्वी और दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्य नये धर्मों में कोरिया के कोरियन 'म्युड्ज्म' या 'सिनिज्म', 'कोंदोग्यो', 'जयूंग सैन डो', 'शिंटो', 'शुगैन्डो', 'रियुक्यान' धर्म; जापान के नये 'जापानी धर्म' और लाओस के 'सत्साना फी', 'काओ फी', 'हो-हो' और वियतनाम के 'वियतनामी लोक धर्म' सम्मिलित हैं।

(v) स्थानीय धर्म :

स्थानीय धर्म से तात्पर्य किसी जातीय या जनजाति समूह विशेष से सम्बंधित धर्म से है। इनसे तात्पर्य ऐसे धर्म से है, जो पारम्परिक होते हैं, पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित कर दिए जाते हैं एवं जिनका व्यवहार 'जीववाद' और पूर्वजों की पूजा-उपासना या प्राकृतिक उपादानों की अराधना के रूप में होता है। सामान्यतः लोक धर्म का कोई ग्रंथ नहीं होता। इनकी मान्यताएँ मौखिक रूप में ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित होती रहती हैं। 'स्वदेशी जातीय धर्म' या 'स्थानीय धर्म' विश्व के हर महाद्वीप में प्रचलित रहे हैं, जिसे या तो अब प्रमुख संगठित विचारधारा वाले धर्मों में मिला लिया गया है या इनके अनुयायियों की संख्या कम होते-होते इनका लोप ही हो गया। लेकिन कुछ लोक धर्मों का अस्तित्व आज भी है। विश्व के प्रमुख स्थानीय धर्म निम्नवत् हैं -

शामानिज्म : ये ऐसे धर्म हैं जो 'ओझाओं' के द्वारा चलाये जाते हैं। पारम्परिक समाज में ओझा ऐसे व्यक्तियों को कहा जाता है, जिनके बारे में यह विश्वास हो कि उनमें प्रत्यक्ष दुनिया से बाहर किसी रूहानी दुनिया, आत्माओं, देवी-देवताओं एवं गैर-सांसारिक तत्वों से संपर्क रखने या उनकी शक्तियों के लाभ उठाने की क्षमता है।⁵² अक्सर जनजातियों या पारम्परिक कबीलों में ओझाओं का प्रभाव ज्यादा होता है और उन्हें धर्म और चिकित्सा दोनों का स्रोत माना जाता है। साइबेरिया, अफ्रीका, मंगोलिया, मूल अमेरिकी आदिवासी समाज, जापान और भारत समेत ओझाओं को विश्व भर में जनजातीय समाजों में देखा गया है। जहाँ आधुनिक चिकित्सा उपलब्ध नहीं होती वहाँ अक्सर ओझा ही उपचार करते रहे हैं, मसलन भारत में पारम्परिक रूप से साँप के काटे का इलाज ओझा ही किया करते थे।

अमेरिकी मूल निवासी धर्म : अमेरिकी मूल-निवासियों के परंपरागत रिवाजों का आज भी अनेक कबीलों और समुदायों द्वारा पालन किया जाता है। कुछ कबीलों की पारंपरिक पद्धतियों में तंबाकू, मीठी-घास या तेजपात जैसी पवित्र जड़ी-बूटियों का प्रयोग शामिल है। अनेक मैदानी कबीलों में 'स्वेटलॉज' का रिवाज है, हालाँकि इस रिवाज की विशिष्ट पद्धति को लेकर कबीलों के बीच अंतर है। उपासना पद्धति के लिए उपवास, गायन और पुरातन भाषाओं में गायन, तथा कभी-कभी ड्रम-वादन भी आम है। 'मिडविविन लॉज' उनका एक पारंपरिक चिकित्सा समुदाय है, जो 'ओब्जिवा' (चिप्पेवा) और संबंधित कबीलों की मौखिक परंपराओं तथा भविष्यवाणियों से प्रेरित है। मूल-निवासी लोगों के बीच एक अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक संस्था भी है, जिसे 'अमेरिकी मूल-निवासी चर्च' कहा जाता है। यह विभिन्न धार्मिक विश्वासों को संयोजित करने वाला एक चर्च होता है, जिसमें अनेक भिन्न-भिन्न कबीलों से ली गई अमेरिकी मूल-निवासियों की आध्यात्मिक परंपराएँ और साथ ही ईसाइयत के सांकेतिक तत्व सम्मिलित हैं। इसकी मुख्य रस्म 'पेयोट का रिवाज' है। सन् 1890 से पूर्व, पारंपरिक धार्मिक विश्वासों में 'वाकान टंका' शामिल था। दक्षिण-पश्चिमी अमेरिका, विशेषतः न्यू मेक्सिको में, स्पेनी मिशनरियों के साथ आए कैथोलिकवाद तथा मूल-निवासियों के धर्म के बीच एक

संयोजन दिखाई देता है; 'प्युएब्लो' लोगों के धार्मिक ड्रम, भजन और नृत्य आदि नियमित रूप से सैंटा फे के सेंट फ्रांसिस कैथेड्रल में होने वाली सामूहिक प्रार्थना-सभाओं के भाग होते हैं। अमेरिकी मूल-निवासियों के धर्म और कैथोलिक मत के बीच संयोजन संयुक्त राज्य अमेरिका में अन्यत्र भी देखा जा सकता है (उदाहरणार्थ, फॉन्डा, न्यूयॉर्क स्थित नैशनल कटेरी टेकाक्विथा मंदिर, ऑरीसविल, न्यूयॉर्क स्थित नैशनल श्राइन ऑफ द नॉर्थ अमेरिकन मार्टियर्स)। वहाँ अमेरिकी मूल निवासी धर्म के लिए एक प्रचलित नियम भी है, जिसे 'ईगल फीदर लॉ' कहते हैं। इसके अनुसार केवल संघीय रूप से मान्यता प्राप्त कबीलों में सम्मिलित व अमेरिकी मूल-निवासी वंश को प्रमाणित कर पाने वाले व्यक्ति ही धार्मिक या आध्यात्मिक प्रयोग के लिए चील के पंखों को प्राप्त करने के लिए कानूनी रूप से अधिकृत हैं। यह कानून अमेरिकी मूल-निवासियों को चील के पंख, गैर-अमेरिकी मूल-निवासियों को देने की अनुमति प्रदान नहीं करता।⁵³

ऑस्ट्रोनेशी धर्म : ऑस्ट्रोनेशी उन लोगों को कहा जाता है जो दक्षिण-पूर्व एशिया, ओसनिया या पूर्वी-अफ्रिका में रहते हैं और ऑस्ट्रोनेशियन परिवार की भाषा बोलते हैं। इसमें ताईवानी, फिलिपीन्स, मलेशिया, पूर्वी-तिमोर, इंडोनेशिया, ब्रूनल, मेडागास्कर, माइक्रोनेशिया और पोलिनेशिया के प्राचीन निवासी और सिंगापुर, थाईलैंड के मलय लोग, न्यूजीलैंड और हवाई के पोलिनेशियन लोग आते हैं। इन लोगों में स्थानीय पारंपरिक आस्थाओं का पालन किया जाता है। सांस्कृतिक और भौगोलिक भिन्नताओं के कारण इन लोगों की पौराणिक कथाओं में भिन्नता है, किन्तु आम तौर पर सभी एक सर्वशक्तिशाली देव में विश्वास करते हैं। अन्य मान्यताओं में पूर्वज की पूजा, जीववाद और शमनवाद इनमें भी दिखाई देता है। वर्तमान में कई मान्यताओं का लोप भी हुआ है। ऑस्ट्रोनेशियों के पारम्परिक धर्म हैं- 'एँ टियो', 'सुंडा वैविटन', 'वावा', 'केजवन' और 'माओरी'।

आस्ट्रेलियाई आदिवासी परम्पराएँ : ये मुख्यतः जीववादी हैं और उस समय को बहुत अधिक महत्व देते हैं, जब उनके पूर्वज, जिन्हें पहला मानव माना गया, इस धरती पर आये। वे बार-बार उस समय की कल्पना करते हैं, जिसे 'ड्रीमटाइम' नाम दिया गया है। आस्ट्रेलिया की मौखिक

परम्परा और धार्मिक मान्यताएँ भूमि और ड्रीमटाइम की श्रद्धा पर आधारित हैं। यह स्वप्न देखना, अतीत और वर्तमान दोनों से जुड़ा हुआ है। इन आदिवासियों का मानना है कि उनके पूर्वजों की अलग-अलग संस्कृति और स्वरूप था। वे पौराणिक आत्माओं में विश्वास करते हैं और उन्हें विभिन्न नामों जैसे - 'रेनबो सर्पेंट', 'बैआम', 'डरवांग' और 'बंजिल' आदि के नाम से पुकारते हैं। परम्परागत वैद्यों (मध्य आस्ट्रेलिया के पश्चिमी रेगिस्तानी क्षेत्रों में जिन्हें 'नगंकारी' के नाम से जाना जाता है) को बहुत अधिक सम्मान दिया जाता है, जो न केवल चिकित्सक हैं, बल्कि बहुत सी 'ड्रीमटाइम' कहानियों के संरक्षक भी हैं।

पोस्टवार शिन्तो या कामी-नो-मिची : यह जापान का नृजातीय धर्म है, जिसका उद्देश्य जापान की प्राचीन और वर्तमान परम्पराओं के बीच सामंजस्य बनाये रखना है। शिन्तो प्रथाओं को सर्वप्रथम आठवीं शताब्दी में कोजिकी और निहोन शोकी के द्वारा संहिताबद्ध किया गया था। हालाँकि तब उन्होंने इन प्रथाओं को शिन्तो धर्म के रूप में प्रतिस्थापित नहीं किया था। शिन्तो धर्म में विभिन्न उद्देश्यों को पूरा करने वाले देवताओं की पूजा के लिए देवालय बनाये गये हैं और वहीं उनकी पूजा की जाती है। जापान में 15% लोग शिन्तो धर्म के क्रियाकलापों में भाग लेते हैं, किन्तु केवल 5% ही स्वयं को 'शिंटोईस्ट' मानते हैं। ऐसा इसलिए है कि शिन्तो धर्म ग्रहण करने के लिए कोई औपचारिक प्रथा नहीं है, जिसके कारण लोग इस धर्म का अनुसरण करते हुए भी इसके सदस्य के रूप में नहीं गिने जाते। जापान के लगभग 4% लोग इस धर्म के वास्तविक अनुयायी हैं।⁵⁴

चीनी लोक धर्म या हान लोक धर्म : यह चीन का प्राचीन स्थानीय धर्म है। यह हान लोगों की धार्मिक परम्परा है, जिसमें प्राकृतिक शक्तियों, पूर्वजों की शक्तियों एवं प्रकृति के तर्कसंगत क्रम में विश्वास किया जाता है। ये विभिन्न देवताओं में विश्वास करते हैं, जिनका विवरण चीनी पौराणिक कथाओं में मिलता है। ग्यारहवीं शताब्दी तक इस धर्म की मान्यताओं को बौद्ध धर्म, कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों एवं ताओवाद के ईश्वर के क्रम के विचार के साथ मिला दिया गया।

अफ्रीकी परम्परा के धर्म : अफ्रीकी पारंपरिक धर्म में अफ्रीका के लोगों की पारंपरिक धार्मिक मान्यताओं को सम्मिलित किया जा सकता है। उत्तर अफ्रीका में, इन धर्मों में पारंपरिक बर्बर धर्म, प्राचीन मिस्र के धर्म शामिल हैं। पश्चिम अफ्रीकी धर्मों में 'अकण धर्म', 'दाहोमी' (फ़ान) की पौराणिक कथाओं, एफ़्रिक पौराणिक कथा, इगबो लोगों के 'ओडिनानी', 'सेरर धर्म' और 'योरूबा धर्म' शामिल हैं, जबकि मध्य अफ्रीका में बुशोंगो पौराणिक कथाएँ, एमबीटीटी (पिग्मी) पौराणिक कथाओं, लुगबरा पौराणिक कथाओं, दिंका धर्म, और लोटुको पौराणिक कथाएँ शामिल हैं। दक्षिणी अफ्रीकी परंपराओं में अकम्बा पौराणिक कथाएँ, मसाई पौराणिक कथाएँ, मालागासी पौराणिक कथाएँ, सैन धर्म, लोजी पौराणिक कथाएँ, तम्बूका पौराणिक कथाएँ और जुलु पौराणिक कथाएँ शामिल हैं। बंटु पौराणिक कथाएँ मध्य, दक्षिण-पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका में प्राप्त होती हैं। अमेरिका अफ्रीकी डायस्पोरिक धर्म भी प्रचलित हैं, जैसे कि 'सैन्टेरिया', 'सिंडेबल', 'वोदुन', 'ल्यूकूमि', 'उंबांडा' और 'माकुंबा'।

बोन धर्म : यह तिब्बत की प्राचीन और पारम्परिक धार्मिक प्रथा है। आधुनिक युग में इसके अंतर्गत बौद्ध धर्म और बौद्ध धर्म से पहले की तिब्बती संस्कृति में प्रचलित धार्मिक आस्थाएँ सम्मिलित हैं। वास्तविकता यह है कि बहुत सी बौद्ध-पूर्व आस्थाएँ तिब्बती बोन धर्म में सम्मिलित की जा चुकी हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार बोन धर्म के तत्व सिर्फ तिब्बत तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि उनका ऐतिहासिक प्रभाव तिब्बत से दूर मध्य एशिया के क्षेत्रों तक भी मिलता है। इतिहासकार बोन धर्म को तिब्बती साम्राज्य से पहले आने वाले 'झंगझुंग राज्य' से सम्बन्धित मानते हैं।⁵⁵

नर्मियाज़्म : यह एकेश्वरवादी धर्म है, जो एक दृढ़ द्वैतवादी विश्वदृष्टि रखता है। इन्हें कहीं - कहीं 'अंतिम ग्नोस्टिक्स' के रूप में भी देखा गया है, जो ईसाई धर्म से ही निःसृत है।

कुर्द धर्म : इस धर्म में 'यज़ीदी', 'अल्ली', और 'अहल-ए हक्र' के पारंपरिक विश्वास सम्मिलित हैं। इस धर्म में पारसी धर्म के बहुत से तत्व, इस्लामी सूफी मान्यताओं और कुछ ईसाई विश्वासों का मिश्रण दिखाई देता है। इस धर्म की शुरुआत 12वीं सदी ई. में शेख अदी इब्न मुसाफ़िर ने

की और इसके अनुसार ईश्वर ने दुनिया का सृजन करने के बाद इसकी देख-रेख सात फरिश्तों के सुपुर्द कर दी, जिनमें से प्रमुख 'मेलेक ताऊस', यानि मोर (पक्षी) है। अधिकतर यज़ीदी लोग पश्चिमोत्तरी इराक़ के 'नीनवा' प्रान्त में बसते हैं, विशेषकर इसके सिंजार क्षेत्र में। इसके अलावा यज़ीदी समुदाय दक्षिणी कॉकस, आर्मेनिया, तुर्की और सीरिया में भी मिलते हैं।

(इ) धर्मों की जनसांख्यिकी :

विश्व के पाँच सबसे बड़े धर्मों के अनुयायियों की जनसंख्या 5.8 अरब है, जो कि विश्व जनसंख्या की 84% है। ये पाँच प्रमुख धर्म हैं - ईसाई, इस्लाम, बौद्ध, हिन्दू और परम्परागत लोक धर्म। इन धर्मों की जनसंख्या को आरेख -3.5⁵⁶ के माध्यम से समझ सकते हैं।

(झ) धर्म सुधार के प्रयास :

हीगल के मतानुसार, 'पुनर्जागरण के बिना कोई भी धर्म सम्भव नहीं'⁵⁷ एवं महाराष्ट्र के समाज सुधारक गोपाल हरिदेशमुख के अनुसार, 'धर्म यदि सुधार की अनुमति नहीं देता तो उसे बदल देना चाहिए'।⁵⁸ स्पष्ट है कि धर्म को सुधार की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि भारत सहित विश्व के कई देशों में विभिन्न समय पर धर्म एवं समाज सुधार आन्दोलन हुए हैं, जिनका उद्देश्य धर्म की बुराइयों जैसे रूढ़िवादिता, परम्परावादी सोच, आडम्बरों और धर्म से उपजी अन्य सामाजिक बुराइयों एवं विसंगतियों से समाज एवं धर्म को मुक्त करना रहा है। यूरोप में धर्म सुधार आन्दोलन जहाँ सोलहवीं शताब्दी में हुआ, वहीं भारत में यह धर्म-सुधार आन्दोलन उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ, जिसे 'नवजागरण' की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

(अ) यूरोपीय धर्म सुधार आन्दोलन : प्रारम्भ में, समस्त पश्चिमी यूरोप धार्मिक दृष्टि से एक था। सभी ईसाई थे; सभी रोमन कैथोलिक चर्च के सदस्य थे; उसकी परम्परागत शिक्षा मानते थे और धार्मिक मामलों में उसके अध्यक्ष अर्थात् रोम के पोप का शासन स्वीकार करते थे। यूरोपीय धर्मसुधार अथवा रिफॉर्मेशन 16वीं शताब्दी के उस आंदोलन को कहते हैं, जिसके फलस्वरूप ईसाइयों की एकता छिन्न-भिन्न हुई और 'प्रोटेस्टैंट धर्म' का उदय हुआ। चर्च के इतिहास में समय-

समय पर सुधारवादी आंदोलन होते रहे, किंतु वे चर्च के धार्मिक सिद्धांतों अथवा उसके शासकों को चुनौती न देकर उनके निर्देशों के अनुसार ही नैतिक बुराइयों का उन्मूलन तथा धार्मिक शिक्षा का प्रचार अपना उद्देश्य मानते थे। 16वीं शताब्दी में जो सुधार का आंदोलन प्रवर्तित हुआ वह शीघ्र ही चर्च की परंपरागत शिक्षा और उसके शासकों के अधिकार, दोनों का विरोध करने लगा। धर्मसुधार आंदोलन के परिणामस्वरूप यूरोप में 'कैथोलिक सम्प्रदाय' के साथ-साथ 'लूथर सम्प्रदाय', 'कैल्विन सम्प्रदाय', 'एंग्लिकन सम्प्रदाय' और 'प्रेसबिटेरियन सम्प्रदाय' प्रचलित हो गये। समस्त कैथोलिक संसार में पोप का पद पुनः पूर्णरूपेण सम्मानित हो सका और बिशपों की सामंतशाही को समाप्त कर दिया गया।⁵⁹

(आ) भारतीय धर्म सुधार आन्दोलन : भारतीय धर्म सुधार आन्दोलन के अंतर्गत हिन्दू, मुस्लिम, सिख, पारसी धर्मों की कई कुरुतियों में सुधार हुआ। भारत में ब्रिटिश सत्ता के पैर जमाने के बाद यहाँ का जनमानस पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति के सम्पर्क में आया, परिणामस्वरूप पुनर्जागरण की शुरुआत हुई। "इस समय भारतीय संस्कृति को एक हद तक धार्मिक-आध्यात्मिक संस्कृति के रूप में व्याख्यायित कर इन्होंने एक तरह से इसे ही राष्ट्रीय संस्कृति मानने पर बल दिया। भारतीय संस्कृति की इस तरह की व्याख्या के मूलतः दो कारण थे। एक तो यह कि उपनिवेशवाद के रथ पर सवार ईसाई मत की अपनी उन्नत भौतिक सभ्यता और अपने सत्ता प्रतिष्ठान की श्रेष्ठता के दावे पेश किये। इसमें धार्मिक श्रेष्ठता का दावा भी अन्तर्भुक्त था। भारत के तत्कालीन बुद्धिजीवी बदले में आध्यात्मिक भारत को खड़ा कर उनसे अपना लोहा मनवाना चाहते थे।"⁶⁰ इस समय सुधारवादियों के दो दल हो गये। एक तो वे जो परम्परावादी थे और भावी भारत के निर्माण में अतीत की विरासत से प्रेरणा लेने पर जोर दे रहे थे जैसे कि दयानंद सरस्वती ने 'वेदों की ओर लौटो' का नारा दिया। वहीं दूसरी ओर 'सुधारवादी' थे, जिन्होंने बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप धर्म और समाज में सुधार का समर्थन किया। समग्र रूप से देखें तो इन सुधार आंदोलनों में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी जैसी संस्थाओं के साथ-साथ अलीगढ़, वहाबी, अहमदिया, देवबंद जैसे आंदोलनों ने धर्म सुधार का मार्ग प्रशस्त किया और जनमानस को नवीन की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया।

(इ) बंगाल का धर्म सुधार आन्दोलन : यहाँ बंगाल के धर्म सुधार आन्दोलन को विशेष

रूप से इसलिए प्रस्तुत किया जा रहा है क्योंकि शोध विषय का बंगाल की पृष्ठभूमि से विशेष सम्बन्ध है। इसके साथ ही ब्रिटिश काल में बंगाल में घट रही घटनाओं ने भारत के अन्य स्थानों को भी प्रभावित किया। बंगाल के सम्बन्ध में निराला ने 'कवि और कविता' नामक एक निबंध में लिखा, "भारत का सबसे बड़ा विज्ञानवेत्ता, सबसे बड़ा दार्शनिक, सबसे बड़ा पुरातत्वज्ञ, सबसे बड़ा राजनीतिज्ञ, सबसे बड़ा चिकित्सक, सबसे बड़ा वक्ता, सबसे बड़ा नट आपको बंगाल में ही मिलेगा। एक बड़े विद्वान का कथन है 'व्हाट बंगाल थिंक्स टुडे, इंडिया थिंक्स टुमॉरो'...।"⁶¹ बंगाल में सुधारकों के रूप में राजा राम मोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचंद्र सेन, विवेकानंद, गोविन्द रानाडे आदि के नाम लिए जा सकते हैं। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने जनता में तर्कपूर्ण चिंतन को प्रेरित करने के लिए लिखा, "कोई भी ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं है। हम अपनी श्रद्धा को तर्क और चेतना द्वारा पुष्ट धर्म के मूलभूत सत्यों पर आधारित करते हैं। अपनी आत्मा और परमात्मा के बीच सीधे तादात्म्य में हम किसी भी मनुष्य ग्रन्थ अथवा मूर्ति को खड़े होने की अनुमति नहीं देते।"⁶²

(ट) धर्म के लिए साझा प्रयास :

इन सुधार आंदोलनों के अतिरिक्त कई बार ऐसे भी प्रयास किये गये हैं, जिनसे लोगों में एक-दूसरे के धर्म के प्रति अज्ञानता और धार्मिक असहिष्णुता को कम किया जा सके। ऐसे प्रयास इतिहास में देखें तो सोलहवीं शताब्दी में अकबर के समय से ही किये गये हैं। जरमेरस जो कि भ्रमण करता हुआ आगस्टस के रोमन साम्राज्य में गया था, ने भी धार्मिक वैविध्य का उल्लेख किया है।⁶³ इसी प्रकार धर्म को लेकर 1263 ई. में यहूदियों और ईसाइयों में मध्य हुआ 'बार्सिलोना का वाद-विवाद'⁶⁴ भी

ये सब प्रयास तब किये गये जब धर्म का स्वरूप कट्टरता और साम्प्रदायिकता तक नहीं पहुँचा था। किन्तु जैसे-जैसे धर्म के प्रति कट्टरता बढ़ती गयी और धार्मिक सहिष्णुता भी कम होती गयी। इसी धार्मिक सहिष्णुता के लिए आगे चलकर कई धर्म सम्मेलन किये गये व कई संस्थाएँ बनायी गयीं। इस क्रम में सबसे पहले 1893 ई. में शिकागो में 'विश्व धर्म सम्मेलन' का आयोजन

किया गया। इसमें सार्वभौमिक मूल्यों की खोज का प्रयास किया गया। इस सम्मेलन में स्वामी विवेकानंद ने सभी भारतीय धर्म की विशेषता और सभी धर्मों को दोषमुक्त कर एकजुट होने का सन्देश कुछ इन शब्दों में दिया था, 'साम्प्रदायिकता, कट्टरता और इसके भयानक वंशजों के धार्मिक हठ ने लम्बे समय से इस धरती को हिंसा से भर दिया है और कितनी ही बार यह धरती खून से लाल हो चुकी है। न जाने कितनी सभ्यताएँ तबाह हुईं और कितने देश मिटा दिए गये... मुझे उम्मीद है कि इस सम्मेलन का बिगुल सभी तरह की कट्टरता, हठधर्मिता और दुखों का विनाश करने वाला होगा।'⁶⁵ इसके बाद इस प्रकार की महासभा किये जाने का क्रम चल पड़ा। 1993, 1999, 2004, 2009, 2015 में विभिन्न स्थानों पर धर्म-महासभायें की गयीं। इसके अतिरिक्त अन्य कई विश्वस्तरीय धर्म-सभाओं का आयोजन किया जाता रहा है। उदाहरण के लिए - 'इंटरनेशनल एसोशिएशन ऑफ़ रिलीजियस फ्रीडम'⁶⁶ (1900), 'फेलोशिप ऑफ़ रिकंसिलिएशन'⁶⁷ (FOR-1914), 'ग्रेट रेलिजस इक्सपोजिशन' (1930), 'वर्ल्ड कॉन्ग्रेस ऑफ़ फेथ'⁶⁸ (1936), 'इंटरनेशनल ह्यूमनिस्ट एण्ड एथिकल यूनियन'⁶⁹ (1952), 'मिन्हाज-उल-कुरान'⁷⁰ (1981) 'सेंट्रल यूरोपियन इंटरफेथ फोरम' (2006), 'मॉनिटरी फोरम ऑफ़ कल्चर्स' (2007), 'अ कॉमन वर्ल्ड'⁷¹ (2007), 'C 1 वर्ल्ड डायलॉग'⁷² और यूनाइटेड नेशंस के द्वारा प्रस्तावित 'वर्ल्ड इंटरफेथ हारमनी वीक'⁷³ आदि। इन संगठनों का उद्देश्य धर्म का प्रचार, पारस्परिक समन्वय की भावना उत्पन्न करना, विभिन्न धर्मों से परिचय और उन धर्मों की अच्छाइयों से परिचित होने के साथ-साथ विश्व में शांति के साथ सहअस्तित्व की भावना का प्रचार करना है। इनके अतिरिक्त भी कई अन्य गैर सरकारी, सरकारी संगठन लोगों में सद्भावना उत्पन्न करने और विभिन्न धर्मों के लोगों को एक मंच पर लाने का प्रयास कर रहे हैं। इतने प्रयासों के बाद भी यदि 'हफिंगटन पोस्ट' (स्वतंत्र अमेरिकी न्यूज वेबसाइट) के एक लेख 'द एवर गोइंग रेलिजस मूवमेंट दैट डज नॉट गेट इनफ अटेंशन' की माने तो 'धार्मिक असहिष्णुता अभी भी एक अहम मुद्दा बना हुआ है।'⁷⁴ हालाँकि इस लेख में यह भी स्वीकार किया गया है कि इस प्रकार की आपसी बैठक और सहयोग से धार्मिक असहिष्णुता और अन्य धर्मों सम्बन्धी अज्ञान को कम किया जा सकता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि धर्म अपने आप में एक वृहद् और व्यापक अर्थ और स्वरूप वाला है। यही कारण है कि इसको लेकर असंख्य अवधारणायें और मान्यताएँ हैं और इसकी मूल अवधारणा को लेकर भ्रमात्मक स्थिति बनी हुई है।

3.2 तसलीमा का धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण -

(क) धर्म की आलोचना :

तसलीमा ने धर्म को एक सिरे से खारिज किया है और इसके लिए कई तर्क और प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। तसलीमा से पूर्व और उनके समय के विश्व के कई विद्वानों ने भी अपने-अपने तरीके से धर्म की आलोचना की है। तात्पर्य यह है कि तसलीमा धर्म की आलोचना करने वालों में से एक हैं। यहाँ यह दृष्टव्य है कि धर्म की आलोचना के लिए अन्य विद्वानों या आलोचकों ने क्या तर्क प्रस्तुत किये हैं। मार्क्स की दृष्टि से देखें तो "धर्म की आलोचना समस्त आलोचना का आधार तथा आरम्भ बिंदु होती है।"⁷⁵ (यह मार्क्स ने 'हेगल के न्यायदर्शन की समालोचना का प्रयास' की भूमिका में लिखा है)। इस आलोचना के आरंभ का इतिहास भी बहुत पुराना है। प्रायः यह स्वीकृत किया जाता है कि धर्म की आलोचना आधुनिक युग की देन है किन्तु यदि हम रोमन साम्राज्य की ओर देखें तो यह पाते हैं कि धर्म की आलोचना उसी समय से प्रारंभ हो गयी थी। धर्म संबंधी इस आलोचना के सर्वप्रथम प्रमाण ग्रीस में मिलते हैं। पाँचवीं सदी ईसा पूर्व के वहाँ के एक लेखक डायगरस को नास्तिक होने के कारण और ग्रीक धर्म की आलोचना के कारण 'द अथीस्ट ऑफ़ मेलोस' की संज्ञा दी गयी थी।⁷⁶ पहली शताब्दी ईसापूर्व के ल्युक्रेटिस ने 'एपिक्युरिअनिज्म या आनंदवाद' का प्रचार किया और अपनी प्रसिद्ध कृति 'डी रेरेम नाटुरा' अर्थात् 'ऑन द नेचर ऑफ़ थिंग्स' में घोषित किया - 'धर्म ने मनुष्य में अपवित्रता को जन्म दिया है।'⁷⁷ यह 507 ई.पू. के ग्रीक दार्शनिक एपिकुरस की शिक्षाओं पर आधारित दर्शन है, जिसके अनुसार 'आनंद या सुख' ही सबसे बड़ी उपलब्धि है और अन्धविश्वास और आध्यात्मिक शक्तियों में विश्वास आलोच्य है। यही बात भारत के चार्वाक दर्शन में भी मिलती है, जहाँ भौतिक सुख को ही सर्वोच्च बताया गया है - "यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा, घृतं

पीवेत" कहकर जीवन का आनंद लेने की बात की गयी है। सोलहवीं शताब्दी में निकोलस मैकियावली ने भी यही स्वीकार किया कि 'धर्म राजनीतिक सत्ताओं का लोगों के मत को प्रभावित करने का हथियार है।' स्पष्ट है कि धर्म की आलोचना का प्रारंभ भी उतना ही पुराना है जितना कि धर्म की उत्पत्ति और विकास का इतिहास। अठारहवीं शताब्दी में वोलेंटियर और डेविड ह्यूम ने धर्म के असहिष्णुतापूर्ण तर्कों की आलोचना की।

"धर्म पर आपत्तियाँ दो प्रकार की हैं - बौद्धिक और नैतिक। बौद्धिक आपत्ति यह है कि किसी भी धर्म को सच मानने का कोई कारण नहीं है; नैतिक आपत्ति यह है कि धार्मिक शिक्षाएँ उस युग की देन हैं जब लोग उससे अधिक क्रूर थे जितना वे हैं, और इसलिए वे उन अमानवीयताओं को बनाये रखना चाहते हैं, जिनसे युग की नैतिक अन्तश्चेतना को अन्यथा बाहर आ जाना चाहिए।"⁷⁸ ईसाई धर्म की आलोचना करने वाले चार्ल्स ग्लाक और रोडनी स्टार्क का मत है कि ऐतिहासिक रूप से धर्म (मुख्यतः क्रिश्चैनिटी) ने विभाजन का काम किया है और हटिंगटन एवं बोर्डिलार्ड के अनुसार आज भी साम्प्रदायिक तनाव, संघर्ष एवं आतंकवाद जैसी गतिविधियों के लिए धर्म ही उत्तरदायी है। धर्म ने केवल समाज में एकता बनाये रखने में ही भूमिका नहीं निभाई बल्कि कई बार यह राजनीतिक तख्ता पलट, विभिन्न क्रांतियों आदि के लिए भी उत्तरदायी रहा है। उदाहरण के लिए - मैक्सबेबर द्वारा प्रस्तावित पूँजीवाद के विकास में प्रोटेस्टेंट धर्म की भूमिका, ईरान में अयातुल्ला खुमैनी के नेतृत्व में मोहम्मद राजशाह के शासनकाल में व्याप्त शोषणकारी व्यवस्था का विरोध, राजशाह के तख्तापलट एवं ईरान में सामाजिक परिवर्तन लाने में धर्म की भूमिका या फिर अमेरिका में घटित नवधार्मिक अधिकार आन्दोलन में धर्म की भूमिका। वस्तुतः धर्म लौकिक समस्याओं के निदान के लिए मानवीय प्रयासों को हतोत्साहित करता है। यही कारण है कि सीमोन दि बोउआर और जीन होल्म जैसी स्त्रीवादी लेखिकाओं ने एवं ब्रायन एस टर्नर का धर्म सम्बन्धी विश्लेषण धर्म के नकारात्मक पहलुओं का विश्लेषण इसे पितृसत्तात्मक समाज के निर्माण और लिंग असमानता के पोषक रूप में

माना है। मार्क्सवादी न होते हुए भी एंथोनी गिडनेस और हंटिंगटन ने अपनी पुस्तक 'क्लैश ऑफ़ सिविलाइजेशन' में धर्म की नकारात्मक भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत किया।

प्रफुल्ल कोलायन एक लेख 'धर्म की सत्ता, सत्ता का धर्म' में लिखते हैं कि "धर्म की सत्ता सापेक्षता उसे पुरोहितवाद की तरफ ले जाती है और धर्म की सत्ता निरपेक्षता भक्ति की तरफ ले जाती है।"⁷⁹ इन दोनों से इतर एक अन्य स्थिति है और वह है, धर्म की आलोचना और धर्म के विकल्प की तलाश। धर्म का विकल्प क्यों खोजा जाय- क्योंकि वह निरंकुश है, भय उत्पन्न करता है, यथास्थितिवादी, अवैज्ञानिक, अन्धविश्वासी है। वह ईश्वर का भय व्याप्त कर मनुष्य को नियतिवादी बना देता है। बड़ी चालाकी से इसे ईश्वरीय आदेश बताकर लोगों को कई सौ वर्षों से ठगा जा रहा है। इसी कारण कुमार अम्बुज धर्म में सुधार की बात किये जाने को बेईमानी मानते हैं और सीधे उसका निषेध किये जाने को स्वीकार करते हैं। इसका कारण बताते हुए वे लिखते हैं, "अतएव हिन्दू धर्म सहित, संसार के प्रत्येक धर्म में न केवल ईश्वर या अवतार या पैगम्बर की उपस्थिति एक प्रमुख तत्व है बल्कि वह इस कारण अपरिवर्तनीय भी है। उसमें किसी तरह का संशोधन, पहली बात तो लगभग नामुमकिन है, क्योंकि उसके अनुयायी ऐसा करने नहीं देंगे और यदि किसी तरह वह संशोधन हुआ भी तो एक नया धर्म सामने आ जाएगा, जिसमें संशोधनकर्ता को पैगम्बर या अवतार की मान्यता मिलेगी और इस तरह वह भी उतनी ही समस्याओं तथा बुराइयों से लैस होगा, जितना कोई भी धर्म हो सकता है।"⁸⁰ स्पष्ट है कि "धर्म दरअसल एक पुराना, भोथरा, जंग लगा औजार है।"⁸¹ धर्म कई समस्याओं जैसे व्यवसायीकरण, संस्थानीकरण, राजनीतिकरण, साम्प्रदायिकता को उत्पन्न करता है, जो आलोचना की चेतना को बाधित कर उस पर कंडीशनिंग करता है। धर्म की आलोचना क्यों की जानी चाहिए इस सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स 'हेगेल के न्यायदर्शन की समालोचना का प्रयास' में लिखते हैं, "धर्म के उन्मूलन का अर्थ है जनता के वास्तविक सुख की माँग करना... धर्म की आलोचना मनुष्य का मोहभंग कर देती है ताकि वह मनुष्य अब विवेक के साथ चिंतन कर्म कर सके..."⁸²

वास्तविकता है कि यह कूपमंडूकता पैदा करता है और यथास्थितिवादी है, अकर्मण्यता और अनावश्यक संतोषी बनाता है। अतः आवश्यक है कि धर्म के विकल्प की तलाश की जाय।

किन्तु "धर्म की अधूरी आलोचना समाज विज्ञान में इतिहास, दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, संस्कृति आदि में अधूरी आलोचना का कारण बनता है और समाज विज्ञान में अधूरी आलोचना हमारी मुक्ति का, सर्वहारा, शोषित जनों की मुक्ति का, सबसे बड़ा बाधक बन जाता है। धर्म की मुकम्मल आलोचना हमारी मुकम्मल मुक्ति की एक शर्त है।"⁸³ प्रश्न यह है कि धर्म की मुकम्मल आलोचना क्या है? इस सम्बन्ध में लेखक एवं सामाजिक कार्यकर्ता अशोक यादव अपने लेख 'धर्म की आलोचना की आलोचना' में जिन बातों की ओर ध्यान दिलाते हैं वे निम्नलिखित हैं -

1. हिन्दू धर्म के अलावा हमारे देश में जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई तथा सिक्ख धर्म हैं। हिन्दू धर्म के खिलाफ बाकी धर्मों की इतिहास में प्रगतिशील भूमिका रही है। इसलिए धर्म की आलोचना में इस अत्यंत महत्वपूर्ण बिंदु का खयाल रखना होगा। सभी धर्मों की आलोचना हम एक ही मापदंड से नहीं कर सकते।
2. दलित लेखक धर्म की आलोचना में वर्ण-व्यवस्था का सवाल उठाते हैं। किन्तु वर्ण-व्यवस्था के खिलाफ जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई तथा सिक्ख धर्मों की प्रगतिशील ऐतिहासिक भूमिका को सामने नहीं लाते हैं।
3. दलित लेखक धर्म की आलोचना करते हुए वर्ण-व्यवस्था का सवाल केवल हिन्दू धर्म एवं समाज के परिप्रेक्ष्य में उठाते हैं। अन्य धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था और उससे जुड़े धर्म के प्रश्न को गौण कर देते हैं।
4. धर्म के सभी आलोचक - समाजवादी, मार्क्सवादी, दलित आदि एक स्वर से धर्म को ज्ञान-विज्ञान, मानव विकास में बाधक समझते हैं। जबकि अपनी उत्पत्ति तथा परवर्ती समय में

सभी धर्मों ने, हिन्दू धर्म को छोड़कर, ऐतिहासिक रूप से क्रांतिकारी भूमिका का निर्वाह किया था। धर्म के संबंध में इस तथ्य को प्रमुखता से सामने नहीं लाया जाता है।

5. धर्मों के उद्भव और विकास के इतिहास से उपजे बोध का धार्मिक कट्टरता तथा धर्मों का शोषक वर्गों द्वारा इस्तेमाल के खिलाफ लड़ाई लड़ने में एक महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है लेकिन 'लिबरेशन थियोलॉजी' का सवाल धर्म की आलोचना का हिस्सा नहीं बन पाया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय उपमहाद्वीप के धर्म में धर्म के साथ जाति, वर्णव्यवस्था रूपी रोड़ा भी है। अतः केवल धर्म की आलोचना करना धर्म की पूर्ण आलोचना नहीं होगी। इसीलिए मार्क्स ने धर्म को 'मिथ्या सूर्य'⁸⁴ की संज्ञा दी है। सभी हिन्दू धर्मग्रन्थ वर्णव्यवस्था का पोषण करते हैं। गीता में उल्लिखित है - 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः/तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्' अर्थात् गुण और कर्म के अनुसार चार वर्णों में विभाजित समाज-चातुर्वर्ण्य व्यवस्था-मेरी ही सृष्टि है। यद्यपि मैं इस व्यवस्था का स्रष्टा हूँ किन्तु तुम यह जान लो कि मैं इतने पर भी अव्यय अकर्ता हूँ।' इसी प्रकार मुस्लिम, ईसाई और सिख धर्म में भी भीतरी खाँचे हैं। फायरबाख ने ईसाई धर्म की आलोचना करते हुए लिखा था कि इतिहास के लंबे दौर में 'ईसाई धर्म न केवल तर्क और ज्ञान से दूर जा चुका है, बल्कि उसने मनुष्यता से भी किनारा कर लिया है।' ईसाई धर्म की आलोचना में मार्क्स ने 'चर्च विरोधी आन्दोलन-हाइड पार्क में प्रदर्शन' शीर्षक लेख में लिखा- 'ईसाई धर्म के महान संतों ने आम जनता की आत्माओं के उद्धार के लिए स्वयं अपने शरीर को यातना दी थी; आधुनिक शिक्षित संत स्वयं अपनी आत्मा के उद्धार के लिए आम जनता के शरीरों को यातनायें देते हैं। नीत्शे की नजर में बौद्ध तथा ईसाई धर्म 'सर्वविध्वंसक निहिलिस्टिक धर्म' तथा 'मरणशीलन धर्म' है।⁸⁵ इन भीतरी बँटवारों को नज़रन्दाज करके धर्म की आलोचना नहीं की जा सकती। अतः आवश्यक है कि वर्ण व्यवस्था धर्म की आलोचना का मुख्य आधार हो और अन्य धर्मों में इसके विरुद्ध प्रस्तुत तर्कों को आधार बनाया जाय। उन्होंने धर्म की आलोचना में वर्गवादी खेमे (मार्क्सवाद, लेनिनवाद) और वर्णवादी खेमे (बुद्ध, फुले, आंबेडकर, पेरियार और लोहिया), को एकसाथ लाकर

खड़ा कर देने का पक्ष लिया। इसके साथ ही उन्होंने 'लिबरेशन थियोलॉजी' को भी आवश्यक माना है, जिसका अर्थ है शोषण के विरुद्ध धर्म का एक हथियार या माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाना। इस सिद्धांत का प्रयोग फिडेल कास्त्रो ने यह आह्वान करने के लिए किया कि 'जो गरीबों का शत्रु है, वह यीशू का भी शत्रु है'।

बायर, धर्म को राजनीतिक स्वतंत्रता के रास्ते में बाधक मानते हैं। वह धर्म के उन्मूलन के बिना वास्तविक राजनीतिक स्वतंत्रता को असंभव मानते हैं। यह बात उन्होंने यहूदियों को धर्म के आधार पर राजनीतिक स्वतंत्रता दिए जाने के प्रश्न पर कही थी। बायर की मान्यता थी कि राजनीतिक स्वतंत्रता केवल धार्मिक रूप से निरपेक्ष राष्ट्र-राज्य में ही संभव है; अर्थात् ऐसा राज्य जहाँ स्वतंत्र सामाजिक पहचान, जैसे धर्म, जाति, वर्ण आदि के लिए कोई स्थान न हो। इसके विपरीत मार्क्स का मत था कि धर्मनिरपेक्ष राज्य में नागरिक आध्यात्मिक और राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होने के बावजूद आर्थिक असमानता के कारण शोषण और उत्पीड़न के शिकार बन सकते हैं।⁸⁶ स्पष्ट है, दोनों ने ही धर्म की आलोचना का समर्थन किया। कुमार प्रशांत अपने आलेख 'धर्म बनाम धार्मिकता' में लिखते हैं कि धर्म को हमारे विश्वास का निजी तत्व बनाने के बजाय, एक ऐसा सार्वजनिक हथियार बना दिया गया, जिससे वह गर्दन काटी जाने लगी जो सर को थामने का काम करती है।⁸⁷ धर्म का राजनैतिक दायरा बढ़ने के साथ-साथ आर्थिक जाल भी विस्तृत हुआ है। धर्म जैसे-जैसे क्षमतावान लोगों के लिए राजनीतिक हिंसा का अस्त्र बनता गया, वैसे-वैसे उसके स्वरूप में सुधार की जरूरत भी महसूस की जाने लगी। यही कारण है कि स्वयं को धार्मिक घोषित करने के बावजूद, गांधी भी धर्म में दोष आ जाने पर उसके सुधार या उसकी आलोचना करने से नहीं कतराते। उन्होंने अल्प्पी में 18 जनवरी 1933 को दिए अपने एक भाषण में हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में कहा, "मैं इस धर्म का चेहरा बदल देना चाहता हूँ।" 'धार्मिक पुनर्जीवनवाद' के इस दौर में धर्माधि ताकतों को समाप्त कर देना और उनकी बढ़ती क्षमता को कम करना ही धर्म की आलोचना का मुख्य प्रयोजन है। क्योंकि अनिल जैन

के लेख 'धर्म के नाम पर' के अनुसार, "यह मानसिक आतंकवाद धार्मिक-आध्यात्मिक दुकानदारियों की आड़ में हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना को निरंतर खोखला बना रहा है।"⁸⁸

ऐसा नहीं है कि समाज में केवल धर्म की केवल आलोचना ही होती रही है बल्कि धर्म का एक बड़े स्तर पर समर्थन भी किया जाता रहा है। धर्म का समर्थन धर्म के सकारात्मक पक्षों के आधार पर किया जाता है जो अग्रलिखित हैं - मानसिक शांति, तत्काल आश्वासन, अवसाद को बाँटने का जरिया, विश्वास और संबल, सामाजिकता, नैतिक मूल्यों का प्रचार आदि। धार्मिक आलोचनाओं के समानांतर धर्म को सही ठहराने के लिए भी कई सिद्धांत रहे हैं और कई धार्मिक पुस्तकों में तो पहले ही धर्म या ईश्वर के अस्तित्व को नकारने वालों के लिए दंड के प्रावधान किये गये हैं। इन सिद्धांतों में से एक है 'अपोलोजेटिक्स' या 'ख्रीस्टीय मंडनवाद'। ईसाई धर्मशास्त्र में धार्मिक सिद्धांतों या विश्वासों के समर्थन में लिखे गये निबंधों को सामूहिक रूप से 'अपोलोजेटिक्स' कहते हैं। इस तरह की लिखी गयी पुस्तकों में जस्टिन की 'अपोलाजी' सर्वप्रसिद्ध है। इस प्रकार की अपोलोजी हिन्दू, इस्लाम, यहूदी, बहाई और बौद्ध धर्म में भी प्राप्त होती है। 'देववाद'/'तटस्थेश्वरवाद' (डीज्म) का सिद्धांत यह तो स्वीकार करता है कि ईश्वर का अस्तित्व है और उसने ही विश्व की रचना की है, किन्तु इस विश्वास के लिए वह बौद्धिकतावाद और अनुभववाद का सहारा लेता है। 'पैन्थीज्म' या 'सर्वेश्वरवाद' भी इसी क्रम में है जिसे दार्शनिक स्पिनोजा ने प्रस्तुत किया।

राहुल सांकृत्यायन ने 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' पुस्तक लिखकर उसमें धर्म की आलोचना करते हुए उसे 'बेकार'⁸⁹ सिद्ध किया। इसमें उन्होंने धर्म को खारिज करने के लिए तमाम सैद्धांतिक पक्षों को प्रस्तुत किया। किन्तु तसलीमा की धर्म सम्बन्धी दृष्टि सैद्धांतिक आधार पर नहीं बल्कि व्यवहार के धरातल पर चलती है। तसलीमा धर्म को एक सिरे से खारिज करती हैं।

तसलीमा की धर्म के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि उनके परिवार, समाज और देश में व्याप्त धर्म सम्बन्धी दृष्टि की आलोचना से जन्म लेती है। धर्म के सम्बन्ध में वे किसी प्रकार की रूढ़ि को नहीं

मानतीं, बल्कि तार्किक चिंतन किये जाने को प्रोत्साहित करती हैं। एक तरफ वे अपने आत्मकथेतर साहित्य में धर्म को तर्क के तराजू पर तोलती हैं, तो आत्मकथा में धर्म विहीन समाज का सपना देखने के अपने हौंसले के बुनियादी कारणों को प्रकट करती चलती हैं। उनके द्वारा धर्म की आलोचना किये जाने के दो मुख्य कारण हैं - पहला, धर्म और पितृसत्ता एक दूसरे के पूरक बन स्त्री को निकृष्ट प्राणी सिद्ध करते हैं और दूसरा, धर्म मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण के लिए की गयी व्यवस्था है। स्पष्ट है, उनका धर्म सम्बन्धी मत तत्सम्बन्धी 'व्यवस्था के विरुद्ध' पैदा होता है। यदि कोई धर्म किसी अन्य धर्म के लोगों को हानि नहीं पहुँचाता, तो संभवतः तसलीमा धर्म के विरुद्ध कभी नहीं लिखतीं। किन्तु उनके अनुसार ऐसा सम्भव नहीं है। धर्म होगा लेकिन उसके कारण द्वन्द नहीं होगा, यह स्वीकार करना तो ठीक उसी तरह है, जैसे यह मान लेना कि शरीर में रोग होगा, किन्तु वह अन्य अंगों को प्रभावित नहीं करेगा। धर्म को एक रोग के रूप में देखने वाली तसलीमा ने अन्य धर्मों की अपेक्षा इस्लाम धर्म पर विशेष रूप से कटाक्ष किया है। इसका कारण यह कि एक मुस्लिम परिवार और एक इस्लामिक देश में जन्म लेने के कारण उन्होंने इस्लामी मानसिकता को अपने साथ पलते-बढ़ते देखा है। इस सम्बन्ध में तसलीमा के पक्ष को अग्रलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं :-

(ख) धर्म की आलोचना के लिए प्रेरित करने वाले कारक :

(अ) परिवारिक परिस्थितियाँ : तसलीमा ने जीवन में धर्म को सदैव एक व्यवधान के रूप में महसूस किया, चाहे वह 'बचपन के दिन' हो, चाहे 'उत्ताल हवा' सी बहती उनकी किशोरावस्था या फिर 'युवावस्था का 'द्विखंडित' जीवन या एक परिपक्व और अनुभव से परिपूर्ण 'वे अँधेरे दिन' या 'निर्वासन' के दौरान की प्रौढ़ावस्था। जीवन के हर पड़ाव पर तसलीमा ने धर्म की बेड़ियों में स्वयं जकड़ा हुआ महसूस किया और अपने साथ-साथ अपने आस-पास हर किसी को धर्म की मुट्ठी में जकड़ा हुआ पाया। उन्होंने यह भी महसूस किया कि उनके आस-पास हर कोई इस मुट्ठी में बंद रहने में ही खुश है, किन्तु तसलीमा इस बंधन से कभी खुश नहीं रहीं।

तसलीमा अपने बचपन के दिनों में धार्मिक क्रियाकलापों के लिए परिवार के लोगों द्वारा बनाये जाने दबाव का विस्तृत वर्णन करती हैं- इस्लाम में पवित्र माने जाने वाले दिन, 'बारह रवि उल अव्वल' को तसलीमा का जन्म होना और उस दिन पैदा होने के कारण अल्लाह को खुश रखने का सारा उत्तरदायित्व, माँ का पीर के दर पर जाना और तसलीमा को भी वहाँ जाने और उन आडम्बरपूर्ण क्रियाकलापों में भाग लेने के लिए बाध्य करना, फजली खाला के द्वारा तसलीमा को धार्मिक हदों में रहने के लिए बाध्य करना, नमाज अदा करने के लिए बाध्य किया जाना, अल्लाह के विरुद्ध कोई तर्क या प्रश्न न किये जाने के लिए बाध्य किया जाना आदि । तसलीमा यह सब बताकर यह दिखाना चाहती हैं कि हर मुसलमान के घर में या कहें कि हर धर्म के व्यक्ति के घर में, इसी प्रकार एक मासूम बच्चे को धार्मिक मान्यताओं की सीख दी जाती है और उसे इस तरह से गढ़ दिया जाता है कि वह अपने धर्म से आगे निकलकर कभी कुछ सोच ही न सके । उसे धर्म के मामले में कभी-भी अपने विवेकानुसार निर्णय करने के लिए स्वतंत्र नहीं छोड़ा जाता । इसमें सबसे बड़ी भूमिका माता-पिता की होती है । अभिभावकों द्वारा बचपन से अनवरत दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में बच्चे को एक न एक दिन ढल ही जाना पड़ता है और इस तरह एक और धर्म के इशारों पर नाचने वाले इंसान का जन्म होता है । इस सम्बन्ध में तसलीमा लिखती हैं, "कोई शिशु जब जन्म लेता है, वह किसी धर्म के साथ नहीं आता । हर इंसान अपने माँ-बाप का ही धर्म मानने को लाचार होता है ।"⁹⁰

तसलीमा के पिता इस बात में विश्वास करते थे- 'कहाँ स्वर्ग है कहाँ नरक, कौन कहता है बहुत दूर, मनुष्य में ही है स्वर्ग-नरक, मनुष्य में ही सुरासुर'⁹¹ । दूसरी ओर, उनकी माँ का मानना था, 'इतने सवाल नहीं पूछे जाते । अल्लाह पर आँख मूंदकर भरोसा करना । अल्लाह सर्वशक्तिमान हैं । अल्लाह के अलावा कोई भी माबूद नहीं है । अल्लाह-गफूर्हीम । अल्लाह एक एवं अद्वितीय हैं ।'⁹² इस प्रकार के धर्म और तर्क के द्वंद के बीच पली-बढ़ी तसलीमा को अपने पिता के कारण धर्म पर तार्किक दृष्टि से सोचने का अवसर भले मिला हो, किन्तु हर व्यक्ति के साथ ऐसा नहीं होता । अभिभावकों की कट्टर जातिवादी सोच के कारण एक अबोध बच्चा कब कट्टर धार्मिक बन जाता है, उसे खुद भी पता नहीं

चलता। इसका उदाहरण तसलीमा के भाइयों, मामाओं और मौसियों के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। तर्क के आधार पर उनका बाल मन अल्लाह के शक्तिशाली होने पर बार-बार सवाल खड़ा करता रहा। नमाज़ अदा करने के बाद अल्लाह जब उन्हें माँगी हुई चीजें- 'पोड़ाबाड़ी का चमचम', 'चाबी वाली गाड़ी', 'मुक्तागाछी का मंडा', 'एक जार मार्बल', 'गुब्बारा' आदि नहीं देता तो उन्हें खिन्नता हुई। इस खिन्नता को उन्होंने बंद कमरे में कई बार अल्लाह के लिए अपशब्दों का प्रयोग कर उतारने का प्रयास किया। इस प्रयास में उन्होंने पाया कि जिस अल्लाह को सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ कहा गया और उसके विरुद्ध अपशब्द न कहने का चलन है, उसी के विरुद्ध इतना कुछ कहकर भी उन्हें कोई नुकसान नहीं हुआ। उन्होंने वे सभी काम किये, जो अल्लाह के नाम पर प्रतिबंधित थे। जैसे - अंग्रेजी पढ़ना, गीत गाना, फिल्म देखना, नमाज़ न अदा करना, चित्र बनाना, बुर्का ना पहनना आदि। वे यह सब, परम्पराओं को न मानने के अपने निश्चय के कारण तो करती रहीं उसके पीछे कहीं न कहीं अल्लाह की ताकत को परखने और आजमाने का भी उद्देश्य था। इन कार्यों से उन्हें कोई नुकसान नहीं हुआ तो वे इस निष्कर्ष पर पहुँची कि ईश्वर या अल्लाह जैसी कोई परलौकिक शक्ति नहीं है। जो कुछ भी है वह भौतिक जगत में ही है।

बचपन में 'लाल-कालो खेल' (तसलीमा के गाँव में बच्चे लाल-कालो खेल खेलते थे, जिसमें वे लाल चीटियों को हिन्दू और काली चीटियों को मुस्लिम मानकार लाल चीटियों को एक-एक कर मार देते थे) खेलते-खेलते वे धीरे-धीरे लाल चीटियों के पक्ष में कब आ खड़ी हुई, यह उन्हें भी नहीं पता चला।

(आ) सामाजिक परिस्थितियाँ :

(i) समाज में निरंतर बढ़ती धार्मिक कट्टरता : तसलीमा बांग्लादेश के उस स्थान पर जन्मीं, जहाँ मुस्लिम और हिन्दू धर्म के लोग कभी एक साथ रहते थे। इस तरह उन्होंने हिन्दू और मुस्लिम दोनों समाज के लोगों का धार्मिक जीवन नजदीक से देखा। इस समाज में जहाँ पहले

दोनों धर्म के लोग एक साथ मिलकर रहते थे और एक दूसरे के धार्मिक त्योहारों और अन्य क्रियाकलापों आदि में मिलजुलकर प्रतिभाग किया करते थे, उसी समाज में एक दौर ऐसा भी आया, जब हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के धुर विरोधी हो उठे। विशेषकर बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद तो यह विरोध कट्टरपंथ और सम्प्रदायिकता में तब्दील हो गया। हिन्दुओं को देश से खदेड़ दिया गया। इस स्थिति में एक बालिका, जो धर्म की जड़ों को तलाश रही थी, उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी? निश्चित रूप से, धर्म के आधार पर अपनी ही कौम के लोगों के द्वारा अपने ही साथ रहने वाली दूसरी कौम के प्रति किया गया यह अपराध उसे 'अपराधबोध' से भर देगा। इस अपराधबोध के बाद ही उन्होंने 'लज्जा' जैसी पुस्तक लिखी।

(ii) हिन्दुओं की घटती जनसंख्या : बांग्लादेश के समाज में कट्टरता जैसे-जैसे पैर जमा रही थी वैसे-वैसे उस समाज के बंगाली हिन्दुओं और साथ ही अन्य धर्म के अनुयायियों की संख्या निरंतर कम होती जा रही थी। यदि जनसांख्यिकीय आँकड़ों पर नजर डालें तो यह ज्ञात होता है कि प्रारम्भ से ही इस्लाम बांग्लादेश का सबसे बड़ा धर्म रहा है। 2011 में हुई जनगणना के अनुसार यहाँ कुल जनसंख्या का 90% मुस्लिम हैं, जो कि करीब 146 मिलियन है। बांग्लादेश विश्व में मुसलमान आबादी की दृष्टि से तृतीय स्थान पर है। इन मुस्लिमों के भी कई प्रकार हैं, जैसे - 'बंगाली मुसलमान'⁹³ जो कि कुल मुसलमानों का 98% हैं एवं 'बिहारी मुसलमान' और 'असमिया मुसलमान' जो कि 2% हैं। इन मुस्लिमों में से अधिकांश मुसलमान 'सुन्नी' हैं। 'शिया' और 'अहमदिया' समुदाय की संख्या अपेक्षाकृत कम है। शिया ज्यादातर शहरी इलाकों में रहते हैं। सभी मुस्लिम त्योहार जैसे 'ईद-उल-फितर', 'ईद उल-अधा' (बकरीद), 'मुहर्रम', 'मिलाद-अन नबी', 'शब-ए-बारात' और 'चांद रात' को पूरे देश में बहुत धूमधाम और भव्यता के साथ मनाया जाता है। 'विश्व इज्तेमा'⁹⁴ में विश्व के 150 देशों के व्यक्ति हिस्सा लेते हैं। दूसरी तरफ हिन्दुओं की संख्या 9.0% है। इनकी कुल जनसंख्या 14 मिलियन है। बांग्लादेशी हिंदू मुख्य रूप से बंगाली हिंदू हैं, लेकिन 'गारो', 'खासी', 'जयंतिया', 'संथाल', 'बिशुप्रिया मणिपुरी', 'त्रिपुरी', 'मुंडा', 'ओरन', 'धनुक' जैसी आदिवासी जनजातियों के रूप में

यहाँ एक अलग हिंदू जनसंख्या भी मौजूद है। बौद्ध कुल जनसंख्या का 0.6% हैं। ज्यादातर बौद्ध 'स्थविरवाद' या 'थेरवाद' के अनुयायी हैं। प्राचीन काल में वर्तमान बांग्लादेश एशिया में बौद्ध धर्म का केंद्र था। बंगाल से ही बौद्ध दर्शन, बौद्ध सभ्यता, वास्तुकला आदि का कम्बोडिया, इंडोनेशिया और थाईलैंड आदि में प्रचार हुआ। माना जाता है कि कम्बोडिया, इंडोनेशिया और थाईलैंड की बौद्ध वास्तुकला (अंगकोरवाट मंदिर और बोरोबुदुर विहार सहित), बांग्लादेश के प्राचीन मठों जैसे सोमपुरा महाविहार आदि से प्रेरित हैं। बांग्लादेश के अधिकतर बौद्ध चटगाँव डिविजन में रहते हैं। इसके अतिरिक्त वे बांग्लादेश के मयमनसिंह, कोमिला, सिलहट, रंगपुर आदि में भी निवास करते हैं। यहाँ के बौद्ध बंगाली भाषी, 'बरुआ बौद्ध'⁹⁵ हैं। चटगाँव के अधिकांश बौद्ध विभिन्न जनजातियों जैसे 'मर्म', 'मुरु', 'खामी', 'बाम', 'चक', 'कुकी', 'मुरांग', 'तंचंग्या' और 'खियंग' के हैं, जो बौद्ध धर्म का प्राचीन समय से ही अनुसरण कर रहे हैं। 'बुद्ध पूर्णिमा' बंगाली बौद्ध और जनजातीय बौद्ध दोनों में सबसे अधिक प्रचलित पर्व है।

बांग्लादेश में ईसाई धर्म पुर्तगाली व्यापारियों और मिशनरियों के साथ 16वीं शताब्दी के अंत से 17वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों के दौरान आया। ईसाईयों की संख्या कुल आबादी का 0.3% है। ज्यादातर ईसाई शहरी इलाकों में रहते हैं और अधिकतर 'रोमन कथोलिक' हैं। 'लुशी' और 'बाम' आदि जनजातियों में भी कुछ लोग ईसाइयत के अनुयायी हैं।

इसके अतिरिक्त यहाँ बहाई, सिख, जीववादी, अनीश्वरवादी, नास्तिक भी हैं, जो कुल जनसंख्या का लगभग 0.1% हैं। यहाँ अनौपचारिक तरीके से निवास करने वाली जनसंख्या के रूप में 'रोहिंग्या मुसलमान' भी हैं। बर्मा से आये हुए लगभग 32 हजार रोहिंग्या शरणार्थी यहाँ पंजीकृत हैं⁹⁶, किन्तु एक अनुमान के मुताबिक दो से पाँच लाख रोहिंग्या अवैध तरीके से शरणार्थी के रूप में यहाँ रह रहे हैं (मुख्यतः बांग्लादेश के दक्षिण-पूर्व के कॉक्स बाज़ार में)।⁹⁷

बांग्लादेश की दशकवार जनसंख्या वितरण को देखें तो स्पष्ट होता है कि यहाँ इस्लाम से इतर धर्मों के लोग चाहे वे हिन्दू हो, ईसाई हो, बौद्ध हों या अन्य धर्मों के हों उनकी जनसंख्या में बढ़ोतरी के

स्थान पर इसमें कमी ही आई है। हिन्दुओं के सम्बन्ध में यह संख्या तो और भी आश्चर्य में डालती है। जो हिन्दू, बांग्लादेश की 1951 ई. की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या का 22% थे, वही 2011 ई. तक आते-आते मात्र 9.0% ही रह गये ! (देखें-आरेख -3.6)।

प्रश्न यह है कि कुल 13% हिन्दू आखिर गये कहाँ ? इस प्रश्न का उत्तर और भी स्तब्ध करने वाला है। बांग्लादेश ने पाकिस्तान से अलग होने के लिए भले ही मुक्तियुद्ध किया था किन्तु वह अपनी भीतरी धार्मिक कट्टरपंथी मानसिकता से कभी भी उबर नहीं सका। इसका परिणाम यह हुआ अपने ही देश के, अपनी ही भाषा के हिन्दुओं को या तो मौत के घाट उतार दिया, या उनका जबरन धर्म परिवर्तन करवा दिया या फिर उन्हें देश से निकल जाने को मजबूर कर दिया। अर्थात् अधिकतर हिन्दुओं को विस्थापन ने निगल लिया।

धार्मिक समूह	जनसंख्या % 1951	जनसंख्या % 1961	जनसंख्या % 1974	जनसंख्या % 1981	जनसंख्या % 1991	जनसंख्या % 2001	जनसंख्या % 2011
मुसलमान	78.9 %	80.4 %	85.4 %	86.6 %	88.3 %	89.7%	90.0 %
हिन्दू	22 %	18.5%	13.5%	12.1 %	10.5 %	9.2%	9.0%
बौद्ध	0.7 %	0.7 %	0.6 %	0.6 %	0.6 %	0.7 %	0.6%
ईसाई	0.3 %	0.3 %	0.2 %	0.3 %	0.3 %	0.3%	0.3%
अन्य	0.1 %	0.1 %	0.2 %	0.3 %	0.3 %	0.1%	0.1%

(आरेख - 3.6)⁹⁸ बांग्लादेश की दशकवार जनसंख्या वृद्धि

यह विस्थापन हुआ कहाँ ? अपने ही पड़ोसी देश भारत में ! एक अनुमान के मुताबिक 1964 से 2013 के बीच लगभग एक करोड़ दस लाख हिन्दुओं का विस्थापन हुआ है।⁹⁹ इस विस्थापन ने भारत के उन लोगों में बांग्लादेशियों के प्रति आक्रोश तो उत्पन्न किया ही, जिनकी जमीन पर ये विस्थापित हिन्दू जा कर रह रहे हैं और उन हिन्दुओं में भी अपने ही देश के प्रति घृणा का भाव भर

दिया। यानी ये विस्थापित हिन्दू अब न तो अपने देश के हैं और न ही विदेशी धरती पर इन्हें कोई स्वीकार रहा है। बांग्लादेश के अल्पसंख्यक हिन्दू, हिन्दू होने के बावजूद, भारत के बहुसंख्यक हिन्दुओं में कभी भी घुल-मिल नहीं सके। वे केवल अपने देश से 'खदेड़े हुए लोग' की ही पहचान रखते हैं। तसलीमा ने इन खदेड़े जा रहे लोगों के लिए 1992 में 'लज्जा' लिखी तो उनके विरुद्ध हवा में तलवारें तैरने लगीं और उन्हें देशद्रोही की संज्ञा दी गयी। जबकि असलियत तो यह है कि तसलीमा ने उस समय धर्म के विरोध में नहीं, धार्मिक कट्टरपंथ और साम्प्रदायिक आधार पर किये जा रहे अत्याचार के विरुद्ध लिखा था। स्पष्ट है, बांग्लादेश की धार्मिक परिस्थितियों ने तसलीमा को धर्म के विरुद्ध लिखने के लिए प्रेरित किया।

(इ) राजनीतिक परिस्थितियाँ :

तसलीमा को धार्मिक व्यवस्था के विरुद्ध लिखने के लिए काफी हद तक बांग्लादेश में धर्म सम्बन्धी संवैधानिक व्यवस्था और सरकार के धर्म आधारित राजनीतिक निर्णयों ने भी प्रेरित किया है।

धर्म के सम्बन्ध में संवैधानिक प्रावधान : यद्यपि प्रारंभ में बांग्लादेश के संविधान में राज्य को एक 'धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र' घोषित किया गया था, किन्तु बाद में 1977 से 1988 के बीच हुए कई संविधान संशोधनों के माध्यम से 'इस्लाम' को बांग्लादेश का 'राज्य धर्म' घोषित कर दिया गया।¹⁰⁰ संविधान में धर्म, धार्मिक प्रावधान और धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लेख कई स्थानों पर है। उदाहरण के लिए -

- संविधान का प्रारंभ : संविधान का प्रारंभ 'बिस्मिल्ला-हिरहमा-निरहीम' से होता है, जिसका अर्थ है 'शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से।' इसे प्रत्येक मुस्लिम किसी काम को शुरू करने से पहले 'तस्मिया' करता है, अर्थात् पढ़ता है।
- प्रस्तावना : 'हम यह प्रण लेते हैं कि हमारे जाबाँज लोगों द्वारा अपनी जान की बाजी लगाने और वीर शहीदों को अपना जीवन बलिदान कर देने के लिए प्रेरित करने वाले उच्च आदर्श

'सर्वशक्तिमान अल्लाह में विश्वास', 'राष्ट्रवाद', 'लोकतंत्र' और 'समाजवाद' अर्थात् आर्थिक और सामाजिक न्याय, संविधान के मूल सिद्धान्त होंगे।¹⁰¹

- अनुच्छेद 2A - 'इस गणतंत्र का राजधर्म इस्लाम है, किन्तु राज्य हिन्दू, बौद्ध, ईसाई या अन्य धर्मों के पालन की समान स्वतंत्रता और अधिकार देना सुनिश्चित करेगा।'¹⁰²
- अनुच्छेद-12, (धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक स्वतंत्रता) - यह अनुच्छेद धर्म के आधार पर किये जाने वाले सभी प्रकार के भेदभाव, उत्पीड़न और धर्म का राजनीति के लिए इस्तेमाल आदि को रोकने सम्बन्धी प्रावधान करता है।¹⁰³ किन्तु बाद में इस अनुच्छेद को इस्लाम को राज्य धर्म घोषित करने के लिए संविधान संशोधन कर हटा दिया गया।
- अनुच्छेद-28 (1,3) यह प्रावधान करता है कि किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा।¹⁰⁴
- अनुच्छेद 29- यह प्रावधान करता है कि किसी भी प्रकार के रोजगार के सम्बन्ध में धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा।¹⁰⁵
- अनुच्छेद 41- यह नागरिकों को किसी भी धर्म के अनुपालन की स्वतंत्रता देता है। सार्वजनिक व्यवस्था, कानून और नैतिकता के दायरे में किसी भी नागरिक को कोई भी धर्म मानने की स्वतंत्रता और किसी भी धार्मिक समुदाय को अपने धार्मिक संस्थानों को स्थापित करने, रखरखाव और प्रबंधन करने का अधिकार देता है और साथ ही यह उपबंध भी करता है कि कोई भी व्यक्ति जो किसी शिक्षा संस्थान में शिक्षा ग्रहण कर रहा है और यदि वहाँ उसके धर्म के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म से सम्बंधित क्रियाकलाप हो तो वह किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने के, किसी धार्मिक समारोह या पूजा-पाठ आदि में भाग लेने लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।¹⁰⁶

वस्तुस्थिति यह है कि बांग्लादेशी संविधान एक साथ 'धर्मनिरपेक्ष' और 'धार्मिक' दोनों है। यह अपने आप में असमंजसपूर्ण और विवादस्पद स्थिति है। कोई भी राष्ट्र एक साथ दो विरोधी बातों का

पालन करने में सक्षम नहीं हो सकता। इसी कारण संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेष प्रतिनिधि हाईनर बिलेफेल्ड, जिन्होंने बांग्लादेश के संविधान का गहन अध्ययन किया, अपनी रिपोर्ट 'बांग्लादेश : असेकुलर स्टेट विद अ स्टेट रिलिजन ?' (2015 में प्रस्तुत) में लिखते हैं, “बांग्लादेश का संविधान, जो कि धर्मनिरपेक्षता के साथ ही इस्लाम को राजधर्म घोषित करता है, उसका यह प्रावधान संशयास्पद है, इसका देश के अल्पसंख्यकों की सुरक्षा और मानवाधिकार पर सीधा प्रभाव पड़ता है।”¹⁰⁷ स्पष्ट है, जब संविधान ही धर्म के सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं है, तो आम नागरिकों में भी भ्रम और आपसी असहमति की स्थिति अवश्य होगी। यही कारण है कि मुस्लिम समुदाय के लोग स्वयं को वहाँ का रहनुमा समझते हैं और अन्य धर्मों के लोगों को निकृष्ट दृष्टि से देखते हैं और उनका शोषण करते हैं। इस शोषण ने ही तसलीमा को अपने कौम के विरुद्ध खड़े होने का साहस दिया। और हद की बात तो यह है कि सरकार ने भी कभी इस संशयात्मक स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास नहीं किया।

(ग) धर्म की आलोचना में प्रस्तुत तर्क :

(अ) धर्म पितृसत्ता का पोषक है : तसलीमा ने इस सन्दर्भ में विभिन्न धर्मग्रंथों को

आधार बनाते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि धर्मों के मूल में पितृसत्तात्मक मानसिकता कार्य करती है जो सदैव स्त्री को कमतर दर्जे का सिद्ध करने में लगी रहती है। आत्मकथा के साथ-साथ उन्होंने अपने लेखों में इस सम्बन्ध में तमाम प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। तसलीमा की 'औरत के हक्क में' पुस्तक तो इन्हीं धार्मिक व्यवस्थाओं का उल्लेख करती है।

हिन्दू धर्म ग्रन्थ एवं संहिता ग्रंथों में पितृसत्ता : वे लिखती हैं, "संहिता, ब्राह्मण, आख्यानक, उपनिषद्, और सूत्र साहित्य ही (श्रुति, गृह, धर्मसूत्र) मुख्य रूप से वैदिक साहित्य है, ईसा पूर्व बारहवीं से ईसा की चौथी शताब्दी के बीच रचित साहित्य द्वारा समाज का जो चित्र उभरकर सामने आता है, उसमें नारी को कहीं भी 'मनुष्य' नहीं समझा गया।"¹⁰⁸ प्रस्तुत साक्ष्य :

- 'वही नारी उत्तम है जो पति को संतुष्ट करती है। पुत्र संतान को जन्म देती है एवं पति से बढ़चढ़ कर कुछ भी नहीं कहती'- (ऐतरेय ब्राह्मण-3/24/27)¹⁰⁹
- 'सुंदर पत्नी पति का प्रेम प्राप्त करती है'- (शतपथ ब्राह्मण -9/6)¹¹⁰
- 'यज्ञ में एक दंड (लाठी) को दो वस्त्रों के टुकड़ों से लपेटा जाता है, इसलिए पुरुष को दो पत्नी रखने का अधिकार है। चूँकि एक कपड़े के टुकड़े को दो लाठियों में नहीं लपेटा जाता, इसलिए नारी को द्विपतीत्व की मनाही है' (तैत्तरीय संहिता-6/6/4/3, तैत्तरीय ब्राह्मण-1/3/10/58)¹¹¹
- 'पिता रक्षति कौमारे, भ्राता रक्षति यौवने। रक्षति स्थविरे पुत्रा, न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।' (वशिष्ठ धर्मसूत्र-5/1-2, 2/1)¹¹²
- 'यदि कोई स्त्री अपने पति की संभोग इच्छा को चरितार्थ करने में सहमत नहीं होती तो पति पहले उसे उपहार देकर खरीदने की कोशिश करेगा और यदि उससे काम न बने तो हाथ या लाठी से पीटकर उसे अपने वश में करेगा' (वृहदारण्यक उपनिषद्-6/4/7)¹¹³
- 'कन्या के जन्म लेने पर सभी हेय दृष्टि से देखते हैं, वह अवहेलना की पात्रा है।' (मैत्रेयिणी संहिता -4.6.4)¹¹⁴
- 'स्त्री सांप की तरह है, इसलिए पुरुष को कभी इसका विश्वास नहीं करना चाहिए।' (महाभारत-5/37/29)¹¹⁵
- 'नारी के लिए विवाह ही है उपनयन, पतिगृह में वास करना ही गुरुगृह में वास करना है, और पति सेवा है वेदाध्ययन।' (मनुसंहिता 2/67)¹¹⁶

इस्लाम धर्म में पितृसत्ता -

- 'पुरुष नारी का अभिभावक है' (कुरान, सूरा निसार)¹¹⁷

- 'स्त्री, सन्तान, ढेर सारा सोना-चाँदी, और नस्ली घोड़ों का समूह और गाय-बैल एवं खेत खलिहान के प्रति आसक्ति आकर्षक रहे हैं। यह सब इस जन्म की भोग की वस्तुएं हैं।' (सूरा-अल-इमरान, आयत 14)¹¹⁸
- 'तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारे अनाज का खेत हैं इसलिए तुम अपने खेत में जैसे चाहो, जा सकते हो।' (सूरा बकर, आयत 223)¹¹⁹
- 'पति को कभी अपने से असंतुष्ट नहीं होने दीजियेगा, वह जिस तरह से चलाना चाहे, उसके इशारे पर चलते जाइए।' (मकसूदुल-मो-मेनीन, 7वीं नसीहत)¹²⁰
- 'आपके पति आपको जैसे चलाना चाहें, आप उसी तरह चलिए और वे जैसा भी करें, आप उसी में संतुष्ट रहें। किसी भी बात में उनके खिलाफ मत जाइए।' (मकसूदुल-मो-मेनीन, 29वीं नसीहत)¹²¹
- 'जब पुरुष महिलाओं के माध्यम होंगे तब वे खत्म हो जायेंगे।' (मुसतादरक अल् हक्रीम, चतुर्थ खंड, पृष्ठ-291)¹²²
- 'हजरत आयशा (रा:) ने वर्णन किया है, 'नबी (सा:) ने कहा है 'तुम लोग घर के काम में लगी रहो। यही तुम लोगों का जिहाद है।' (मसनदे अहमद, छठा खंड, पृष्ठ-68)¹²³
- 'जिस जाति ने स्त्री के हाथ में सत्ता सौंपी है, उस जाति का कभी भला नहीं हो सकता है।' (बुखारी)¹²⁴

ऐसे ही, तमाम साक्ष्य तसलीमा ने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किये हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि धर्मग्रंथों में निश्चित रूप से स्त्रियों के संदर्भ में एक हेय दृष्टि रही है और यह पितृसत्तात्मक मानसिकता के रूप में आज भी समाज में विद्यमान है। तसलीमा का मत है, 'लिंग केवल शारीरिक ही नहीं होता, सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक भी होता है।'¹²⁵

धर्म ने लिंगगत भेदभाव को बढ़ावा देने का कार्य किया है।

(आ) धर्म का इस्तेमाल सहूलियत के लिए :

'अशदो व लाइलाहाइल्लल्लाहो व अशोदुन मोहम्मन अब्दोहू व रसूलोहु' का पाठ किसी अर्थ न समझ में आने वाली कविता की तरह करते-करते तसलीमा को धर्म का असली चेहरा उस दिन दिख गया जब दिन-रात कुरान का पाठ करने वाली माँ को स्वयं अल्लाह के निर्देशों को तोड़ते हुए देखा। वे लिखती हैं, "अल्लाह ने पुरुषों को खुली छूट दे रखी थी कि वे जब चाहें अपनी पत्नी को तलाक दें और जब चाहें एक, दो तीन शादियाँ करते हुए चार शादियाँ कर लें। वे सब तो अल्लाह के बनाये हुए नियमों पर ही चल रहे थे। तब फिर माँ उन्हें कैसे गाली देने का साहस करती थीं। अल्लाह के आदेश को सिर झुकाकर मानने का माँ का यह कैसा तरीका था। माँ को क्या पता नहीं था कि वे खुद ही गुनाह कर रही थीं... मुझे लग रहा था जैसे मैंने चुपके से छुपा हुआ यक्ष का धन देख लिया हो। मोहरों से भरे घड़े में लिपटे हुए साँप को छिपकर देखा था। लोग समझते हैं ऐसे घड़े मोहरों से भरे होते हैं। उसमें मोहरें होती भी हैं या नहीं, कौन जानता है। खाली घड़ा, बाजे घना।"¹²⁶ इसके अतिरिक्त, इस्लाम में फिल्म देखना 'हराम' होने के बावजूद माँ फिल्म देखने छिप-छिप कर जाया करती थीं और हद तो तब हो गयी जब घर में टी.वी आने पर तसलीमा की माँ मुगलेआज़म देखने के बाद 'अशर की नमाज़' पढ़कर अल्लाह से माफ़ी माँग लिया करती थीं। उनका यह अटूट विश्वास था कि अल्लाह दयालू है और उन्हें इस 'गुनाह' के लिए माफ़ कर देगा। इन सब घटनाओं से तसलीमा समझ गयीं कि मनुष्य जब चाहे अपनी आवश्यकता के अनुरूप धर्म का इस्तेमाल करता है और आश्चर्य की बात तो यह है कि धर्म के उल्लंघन के पक्ष में वह कोई नया धार्मिक तर्क बिना किसी संकोच के ही, गढ़ भी लेता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस्लाम में कुछ चीजों को 'हराम' और 'हलाल' घोषित किया गया है। यहाँ हराम से तात्पर्य उन चीजों से है, जिसे अल्लाह ने निषिद्ध किया है और हलाल वे हैं जिन्हें अल्लाह ने करने के लिए अनुमति दी है। कुरान में 'अल-अहकाम-अल-खामशाह' अर्थात् गैर-प्रतिबंधित और प्रतिबंधित कार्यों की क्रमवार सूची बनाई गयी है¹²⁷ -

1.फर्द या वाजिब - अनिवार्य कर्तव्य

2.मुस्तहब - वांछनीय

3.मुबाह - जायज या अनुज्ञेय

4.मकरूह - घृणास्पद

5.हराम - प्रतिबंधित

हराम की दो प्रकार की श्रेणियाँ हैं -

1. अल-हराम-लि-दातिही - वे कार्य जिससे किसी का नुकसान हो ।

2. अल-हराम-लि-गयरिही - ऐसे कार्य जिनसे किसी का नुकसान नहीं होता किन्तु वे प्रतिबंधित कार्य की श्रेणी में आते हैं ।

हराम के श्रेणी में 'खान-पान' (कुछ विशेष प्रकार के मांस और मदिरा), 'जिना' (अवैध शारीरिक सम्बन्ध), 'रिबा' (सूदखोरी या मुनाफाखोरी), उत्तराधिकार से वंचित करना, मूर्ति और आलीशान रहन-सहन, 'शिरक' (अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की इबादत) आदि को सम्मिलित किया गया है । जहाँ तक फिल्म देखना या संगीत सुनना आदि के हराम होने का प्रश्न है तो कुरान में इस सम्बन्ध में कोई भी सीधी और स्पष्ट टिपणी नहीं की गयी है किन्तु 'हदीस' इस सम्बन्ध में कुछ प्रावधान अवश्य करती है ।

(इ) धर्म पाखंड की शरण स्थली है : तसलीमा की माँ एक मौलवी के पास जाया करती

थीं, जिसने उनसे वादा किया कि वह उन्हें बहिश्त का रास्ता दिखायेगा । वे तसलीमा को भी वहाँ ले गयीं । तसलीमा को वह जगह बहुत ही असहज और आडम्बरपूर्ण लगी । वहाँ पर उन्हें हर चीज़ बहुत डरावनी और अतार्किक लगी । इस बारे में वह 'मेरे बचपन के दिन' में लिखती हैं, "पीरबाड़ी में घुसते ही मेरी देह सिहरने लगती थी । उस घर के पेड़ों पर मुझे लगता था, जिन्न, भूतों और प्रेतनियों का डेरा है । कौन जाने, किस पेड़ के नीचे से गुजरते समय जाने कब कोई जिन्न मुझ पर कूद पड़े । मैं माँ की उँगली कसकर पकड़कर पीर के कमरे की ओर जाती थी । दरअसल मैं नहीं चलती थी, माँ ही चलती

थीं, मुझे उनके साथ चलना पड़ता था।"¹²⁸ पीरबाड़ी में बैठे पीर अमीरुल्लाह अल्लाह से बात करने का नाटक करते और वहाँ मौजूद लोग उनकी बातों पर आँख बंदकर विश्वास करते। तसलीमा का बहुत मन होता कि उनसे पूछे कि आप अल्लाह से किस भाषा में बात करते हैं, या अल्लाह आप को ही क्यों दिखते हैं, या आप अल्लाह से बात करने का खर्चा दूसरों से क्यों वसूलते हैं? आदि। "माँ को अमीरुल्लाह ने यह आभास भी दे दिया कि लोगों को बहिश्त की ओर ले जाते वक़्त रास्ते में तरह-तरह की विपत्ति में पड़ना पड़ता है। रास्ते की कठिनाईयों को दूर करने के लिए पैसे की जरूरत पड़ती है। पैसे के बिना खुद नाबीजी भी चल नहीं पायें थे। इस रास्ते पर चलने के लिए कुछ धन खर्च करना पड़ता है, जिसे हदीया कहते हैं।"¹²⁹ किन्तु वे उस समय ये प्रश्न उनसे न कर सकीं, क्योंकि एक तो उनके मन में सबका भय था और दूसरा वह उम्र में इतनी छोटी थीं कि सम्भवतः उनके इन प्रश्नों को गंभीरता से नहीं लिया जाता। जैसा कि उनकी माँ ने भी किया। जितनी बार वे धर्म से सम्बन्धित कोई प्रश्न करतीं, माँ से उन्हें डाँट-फटकार के अतिरिक्त कभी कोई उचित उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु पीर वाली घटना जैसी अन्य कई घटनाओं से जुड़े प्रश्न उनके अवचेतन मन में कहीं रह गये। और यहीं प्रश्न उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से किये।

वैसे तो अलग-अलग धर्म और संप्रदाय के लोग एक दूसरे से खार-खाए बैठे रहते हैं पर अंधविश्वास किस तरह इन लोगों को भी एक जगह ला सकता है यह उस बूढ़े पीर की मजार वाली घटना से समझ सकते हैं। अपनी इच्छाओं की पूर्ति की कामना लिए हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, ईसाई सभी उस मजार पर जाया करते थे जिस पीर के बारे कोई ठीक से जानता तक नहीं था। पर अवाक् तसलीमा बार-बार यही सवाल करती रहीं, 'वे बूढ़े फ़कीर क्या वाकई मौत के उस पार से किसी की साध-आह्लाद मिटा सकते हैं? अगर मिटा सकते हैं तो कैसे?' यह सवाल न तो वहाँ आने वाले किसी व्यक्ति के मन में उठता था और न ही उनकी माँ और अन्य किसी के पास इस सवाल का जवाब ही था। किन्तु तसलीमा ने इस सवाल को अपने अंतःकरण में सदैव जीवित रखा और आत्मकथा के माध्यम से इसे पाठकों में भी जीवित करने का प्रयास किया है।

तसलीमा के अनुसार मुल्ला और मौलवी जो अपने आपको धार्मिक नेता मानते हैं, उनमें सत्ता प्राप्त करने की सबसे अधिक लालसा होती है। वे धर्म का लबादा ओढ़कर सत्ता का लालच लिए बैठे रहते हैं और उसके लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार रहते हैं। पारलौकिक सत्ता के प्रति आम लोगों में भय पैदा कर अपने लिए धन और ख्याति का इन्तजाम करते हैं। इसका एक उदाहरण तसलीमा ने आत्मकथा में उसी पीर के माध्यम से दिया है, जिनके पास बचपन में उन्हें ले जाया गया था। उस पीर ने आगे चलकर धर्म के नाम पर काफी जमीन हथिया ली और आस-पास के लोगों का रहनुमा बन बैठा। 'धर्म का प्रचार बढ़ता जा रहा था, पीरबाड़ी का विस्तार होता जा रहा था, कारखाना उनके नाम कर दिया गया, पीर की मजलिस में लोग चीतों की तरह भीड़ करते थे।' पीरकोठी में पीर अमिरुल्लाह का आडम्बरपूर्ण रवैया और महिला मौलवियों का जीवन किसी भी संवेदनशील इंसान में धर्म के विरुद्ध घृणा उत्पन्न करने के लिए काफी है।

(ई) धर्म भय के कारण उत्पन्न है एवं भय और लालच उत्पन्न करता है : धर्म की उत्पत्ति सम्बन्धी 'प्रकृतिवादी सिद्धान्त' के अनुसार मनुष्य ने प्राकृतिक शक्तियों से ही भय खाकर उनकी उपासना शुरू की, जिसने धीरे-धीरे आगे चलकर 'धर्म' का रूप ले लिया। इससे स्पष्ट है कि धर्म की उत्पत्ति भय से हुई है। "धर्म क्या केवल भय की उत्पत्ति है? इसका उत्तर 'हां' में कहा जाएगा. धर्म न केवल भय की उत्पत्ति होता है, बल्कि भय को बढ़ाता भी है. कुछ लोग चमत्कारों के कारण देवी-देवताओं में श्रद्धा रखते हैं. फिर भी असली कारण भय होता है. अयाचित का भय मनुष्य को अदृश्य शक्तियों की अनुकंपा प्राप्त करने हेतु प्रेरित करता रहता है।"¹³⁰ इस भय को तसलीमा ने पहचाना और प्रश्न भी किया, "तुम्हारे हुजूर तो कहते हैं अल्लाह से प्रेम करना चाहिए। डरने से क्या प्रेम करना संभव है?"¹³¹ बर्टेंड रसेल की भी यही मान्यता है, "मैं इसे एक ऐसी बीमारी मानता हूँ जो डर से पैदा हुई है और जिसके कारण मानव जाति को अकथ्य कष्ट भोगना पड़ा है।"¹³²

प्रश्न यह है कि यह किस तरह का भय है ? भय- नरक या दोजख भेज दिए जाने का, ऐसा स्वर्ग या नरक जिसे कभी किसी ने नहीं देखा । अर्थात् धर्म इहलोक से ज्यादा परलोक की चिंता करने और इस सम्बन्ध में स्वयं को वहाँ के लिए तैयार होने के लिए प्रेरित करता है । कुरान में स्वर्ग से सम्बंधित 164 और नरक से सम्बंधित 137 बार उल्लेख हैं । ऐसा लगता है कि बार-बार स्वर्ग का वर्णन कर लोभ और नरक का वर्णन कर भय पैदा करने का प्रयास किया गया है । यह वर्णन केवल कुरान में ही नहीं हिंदू धर्म के 'गरुण पुराण' और ईसाई धर्म के 'न्यू टेस्टामेंट' में अंतिम अध्याय 'प्रकटीकरण' में भी मिलता है ।

धर्म लोभ भी पैदा करता है - स्वर्ग का लोभ । इस लालच के कारण ही व्यक्ति पाप करने से बचते रहते हैं और यदि पाप करने से बच नहीं पाते तो धर्म में उनके प्रायश्चित की भी व्यवस्था की गयी है । गालिब ने भी सम्भवतः स्वर्ग पर कटाक्ष करते हुए ही लिखा- 'हम खूब जानते हैं जन्नत की हकीकत, दिल के बहलाने को गालिब ख्याल अच्छा है ।' बहिश्त का ऐसा सुन्दर वर्णन कि लोगों में उसे प्राप्त करने का लोभ पैदा हो जाता है । कुरान के सूरा 2:25 में लिखा है, "और जो लोग ईमान लायें और उन्होंने अच्छे काम किये, उनको खुशखबरी सुना दो कि उनके लिए (बहिश्त के) बाग़ हैं, जिनमें नहरे बह रही हैं । जब उनमें का कोई मेवा खाने को दिया जाएगा तो कह उठेंगे, यह तो वही है जो हमको पहले मिल चुका है... और वहाँ उनके लिए बीवियाँ पाक़-साफ़ होंगी और वह उनमें सदैव रहेंगे ।"¹³³ इसी प्रकार सूरा 55 : आयत 46-76 तक बहिश्त का ऐसा वर्णन कि सुनने वाले में एक बार उसे देख लेने का लोभ पैदा ही हो जाय । बाइबिल में भी प्रलोभनकारी स्वर्ग का महिमामंडन किया गया है- 'स्वर्ग का राज्य खेत में दिए हुए धन के समान है, जिसे किसी मनुष्य ने पाकर छिपा दिया और मारे आनंद के जाकर और अपना सब कुछ बेच कर उसे मोल ले लिया ।'

दूसरी तरफ भय है - नरक का भय । कुरान का सूरा 55 आयत 41-43 में कयामत के बाद नरक में लोगों के साथ किये जाने वाले व्यवहार का वर्णन है । ऐसा वर्णन कि सुनने वाले की रूह काँप

जाय । नरक में होने वाले अत्याचार के भय से वह सभी गुनाहों से स्वयं को बचाता है और अल्लाह के हुक्म की तामील बिना किसी प्रश्न और तर्क के करता है । सूरा 55:41 में उल्लिखित है - "गुनहगारों को उनकी सूरत से पहचान लिया जाएगा फिर मत्थे के बाल और पैरों के बाल पकड़ें जायेंगे" ।¹³⁴ इसी प्रकार सूरा 4:56 में उल्लेख है - "यकीनन जिन लोगों ने हमारी आयतों से इनकार किया हम उनको जल्दी ही आग में झोकेँगे । जब उनकी खालें जल जायेंगी तब हम उनको दूसरी खालें देंगे ताकि वे बराबर अज्राब का मज़ा चखते रहें ।"¹³⁵ इस नरक की आग का जब वर्णन किया जा रहा था तो पीरबाड़ी में नन्ही तसलीमा ने देखा, "वहाँ मौजूद लोग आग में जलने के डर से फूट-फूट कर रो रहे थे... यह ठीक वैसा था जैसा बच्चों को डराया जाता है । पीटे जाने का डर दिखाने से काफी बच्चे जोर-जोर से रोने लगते हैं ।"¹³⁶ आगे वे लिखती हैं, "दोजख की आग में अल्लाह द्वारा लोगों को जलाने का तरीका सुनकर मुझे लगा कि अल्लाह बड़ा निर्दयी है ।"¹³⁷

दोजख के भय के अतिरिक्त अल्लाह के अज़ाब या क़यामत का भय कुरान में है । सूरा इब्राहीम की आयत 41-43 में क़यामत के लिए भय उत्पन्न किया गया है । सूरा 15:43 में उल्लेख है, "और लोगों को उस दिन से डरा जबकि उनपर सजा उतरेगी..." । कुरआन के सूरा 79 (सूरतुन-नाज़िआति) की आयत संख्या 1 से 14 तक में क़यामत के दिन का उल्लेख है - जिस दिन (क़यामत के दिन) काँप जाने वाली (धरती) काँप उठेगी, और भूकंप के बाद भूकंप आयेंगे, उस दिन लोगों के दिल धड़क रहे होंगे और उनकी आँखें झुकी होंगी, (गुनाहगार) कहते हैं क्या हम उलटे पाँव लौटाए जायेंगे ?, क्या जब (गल-सड़कर) हम हड्डियाँ हो जायेंगे तब दोबारा जिन्द: किये जायेंगे ?, ऐसा हुआ तो लौटना घाटे की बात होगी, तो ऐ पैगम्बर ! (यह लोग यह जान लें कि) यह तो एक झिड़की होगी, और एकदम से लोग (हशर के) मैदान में आ मौजूद होंगे ।"¹³⁸ हिन्दू धर्म में भी आत्मा के अमरत्व और मोक्ष की अवधारणा के सम्बन्ध में यह मत स्थापित किया गया है । यहाँ मनुष्य के कर्मों के फल के रूप में स्वर्ग और नरक की कल्पना की गयी है । इसमें पुनरुत्थान के स्थान पर पुनर्जन्म की अवधारणा है । इसमें चित्रगुप्त का उल्लेख मिलता है, जो मनुष्य के कर्मों का हिसाब रखता है ।

धर्म के भय उत्पन्न करने की इस प्रवृत्ति पर व्यंगात्मक रूप में तसलीमा लिखती हैं, "अल्लाह का एकदम सीधा हिसाब था। नमाज़ रोज़ा नहीं रखनेवाले दोजख की आग में जलते थे। बुर्का नहीं पहननेवाले की भी यही गति होती थी। बेगाने पुरुषों से मिलने वालियों के लिए भी दोजख की आग इंतज़ार करती थी... यहाँ तक की जोर से रोने पर भी दोजख की आग... मुझे माँ से कहते डर लगता था कि आग से लोग इतना क्यों डरते थे। आजकल आग डरने की चीज़ नहीं है। ठण्डे मुल्कों में तो हर घर में आग जलाई रखनी पड़ती है। सर्कस के लोग आग का कैसा बेहतरीन खेल दिखाते हैं। अब आग से जलने का इलाज भी है.. तकलीफ देने की और भी न जाने किनी भयंकर पद्धतियाँ हैं, लेकिन उन्होंने सिर्फ आग का डर ही दिखलाया... शारीरिक तकलीफ से कहीं ज्यादा मानसिक तकलीफ होती है। मुझे लगता है अल्लाह चतुर नहीं हैं बल्कि खराब हैं। गेंतू की माँ के शौहर की तरह। कभी-कभी पिताजी की तरह भी।"¹³⁹ परीक्षा के समय माँ तसलीमा के लिए अभिमंत्रित ताबीज लेकर आयीं। तसलीमा के मन में भी भय पैदा हुआ कि यदि उन्होंने यह न पहना तो वे फेल हो जायेंगी। अर्थात् प्रारंभ में धर्म के नाम पर तसलीमा के भीतर भी भय उत्पन्न हुआ। वे उस भय से तो उबर गयीं, किन्तु उनके परिवार के सदस्य न उबर सके। धर्म के भय ने तसलीमा की माँ ही नहीं फजली खाला, पीरबाड़ी की औरतों और लड़कियों, उनके देश के लोगों के भीतर 'धर्म का नशा' पैदा कर दिया। 'यह एक नशा था, अल्लाह का नशा, अफीम से भी गहरा।'¹⁴⁰ बहिस्त (स्वर्ग) से लगाव और दोजख (नरक) से इतना भय पैदा कर दिया गया था कि 'अमीरुल्लाह को संतुष्ट करने के लिए सिर्फ माँ ही नहीं और भी औरतें हरदम तैयार रहती थीं। शाम का चाय नाश्ता करने के बाद जब अमीरुल्लाह आराम फरमाने के लिए लेटते तब माँ और दूसरी औरतें आपस में इस बात पर छीना-झपटी करने लगतीं कि कौन हुज़ूर की बाँह दबायेंगी, कौन पैर और कौन सिर। माँ का लोभ पैरों के प्रति था। माँ के हिस्से में पैर पड़ने पर उनका चेहरा सितारे की तरह चमक उठता।'¹⁴¹ इस भय ने इस कदर बुद्धि को जकड़ लिया कि 'माँ अल्लाहताला पर कोई पेचीदा जिम्मेदारी देना पसंद नहीं करती थीं। माँ की नापसंदगी का दायरा इतना बढ़ रहा था कि मैं जो कुछ भी करती, माँ की नज़रों में वह गुनाह ही होता।'¹⁴²

दरअसल यह केवल तसलीमा की माँ के साथ ही नहीं हो रहा था । यह तो हर उस शख्स के साथ होता है, जो धर्म पर आँख बंदकर विश्वास करता है । और कई बार यदि कोई इस भय से पार पाने की कोशिश करता भी है, तो उसके साथ वही होता है, जैसा कि स्त्रीवादी चिन्तक और लेखिका अमीना वदूद अपनी पुस्तक 'इनसाइड द जेंडर जेहाद' में लिखती हैं, "किसी मुस्लिम द्वारा धर्म का ठीक से पालन न करने पर या अरुचि दिखाने पर उसे विश्वासघाती कहकर धर्मच्युत कर दिया जाता है । ज्यादातर लोग अपने जीवन की सुरक्षा को लेकर डरते हैं इसलिए वे इस्लाम विरोधी अपनी भावनाओं को छिपा ले जाते हैं ।"¹⁴³

स्पष्ट है कि धर्म में स्वर्ग और नरक सम्बन्धी व्यवस्थाओं का उल्लेख ईश्वर की महिमा और मनुष्य में ईश्वर का भय पैदा करने के उद्देश्य से की गयी दिखाई पड़ती है । इस सम्बन्ध में धर्म के समर्थक यह दावा कर सकते हैं कि यह भय उनमें नैतिक मार्ग पर चलने के उद्देश्य से पैदा किया गया है दूसरी ओर तसलीमा इसके विरुद्ध कहती हैं कि भय पैदा कर हर कार्य नहीं करवाया जा सकता ।

(उ) धर्म और धर्मग्रन्थ मनुष्य द्वारा रचे गये प्रपंच हैं : तसलीमा का यह मानना है कि मनुष्य ने ही धर्म को बनाया है । इस सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "किसी जमाने में मृत्यु भय, अनिश्चयता की आशंका और क्षमता के लालच में, चंद बुद्धिहीन और कुबुद्धिवाले इंसानों ने 'धर्म' नामक चीज़ तैयार की और यह धर्म एक गोत्र से दूसरे गोत्र, एक समाज से दूसरे समाज, एक देश से दूसरे देश में फैलता चला गया । इंसान हमेशा से ही किसी धर्म को अपनाता रहा है, ऐसा भी नहीं है । कभी-कभी यह जोर ज़बरदस्ती से भी इंसान पर लादा जाता रहा है ।"¹⁴⁴ इसीलिए वे कविता में भी लिखती हैं -

"धर्म की पोथी लिखी है इंसान ने ही
जड़पोथियों को नरभक्षक बनाया है मनुष्यों ने ही ।
धर्म के हैं बंधे हाथ-पाँव, मुख सिला हुआ है
छूट पाता तो धर्म भी चीखकर कहता,

पाखंडियों मरो तुम ।

प्राण होता तो धर्म लज्जा से करता आत्महत्या,

करता दो हजार साल पहले ही,

मनुष्यों के लिए, उनके मंगल के लिए ।"¹⁴⁵

धर्म ग्रन्थ किसके द्वारा लिखित हैं इस सम्बन्ध में विवाद है । विशेषकर सामी धर्मों के सम्बन्ध में जहाँ धर्म ग्रंथों को अवतरित माना जाता है । तसलीमा इसे विवाद नहीं मानती बल्कि एक सिरे से खारिज करते हुए इसे इन्सान के द्वारा लिखित मानती हैं । इसी कारण वे कुरान को 'पतियों के दल में शामिल पुरुष की रचना' तक कह देती हैं । इस्लाम धर्म में यह मान्यता है कि कुरान अल्लाह के शब्द हैं, जो दूत गैब्रील द्वारा मुहम्मद तक पहुँचे । इन शब्दों में किसी भी तरह का कोई फेर बदल नहीं किया जा सकता और बिना किसी शक के हर मुस्लिम को उसका पालन करना चाहिए । कुरान की आलोचना अल्लाह की आलोचना है । कुरान किसके द्वारा लिखित है या अवतरित इस पर विवाद है । कुरान के मनुष्य द्वारा लिखित होने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं -

- कुरान में ईश्वर अपनी बार-बार प्रशंसा करता है यदि ईश्वर महान है तो वह क्यों बार-बार स्वयं को इतना महान घोषित करने पर तुला हुआ है ?
- इसके अतिरिक्त कई आयते ऐसी हैं, जिनसे यह लगता है कि वे अल्लाह के द्वारा अवतरित नहीं हुई हैं । उन्हें खलीफाओं के द्वारा जोड़ा गया है -

कुरान 1/1-5- “(शुरू) अल्लाह के नाम से जो निहायत रहम वाला बेहद मेहरबान है। हर तरह की तारीफ़ अल्लाह (ही) के लिए है, जो सारे संसार का पलनहार (रब) है। निहायत दयावान बेहद मेहरबान है। (जज़ा) के दिन का मालिक है। (या अल्लाह!) हम तेरी इबादत करते हैं और तुझसे हाई मदद चाहते हैं। हमको सीधी राह चला ।”¹⁴⁶ इस आयत को पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि ये शब्द साफ़-साफ़ अल्लाह को सम्बोधित करने के उद्देश्य से लिखे गये

हैं। ये प्रार्थना के रूप में हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए कुछ मुस्लिम संकलनकर्ता सुविधाजनक ढंग से इंग्लिश या हिंदी भाष्य में इस कठिनाई को दूर करने के लिए सूरह के आरम्भ में आदेशसूचक शब्द 'कहो' जोड़ देते हैं। यह स्पष्ट है कि यह शब्द बाद में जोड़ा गया है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में कुरान की पहली आयत पर यही टिप्पणी करते हुए कहा है, "मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि यह कुरान खुदा का कहा है परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इसको बनाने वाला कोई दूसरा है क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो 'आरम्भ साथ नाम अल्लाह के' ऐसा न कहता किन्तु 'आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के' ऐसा कहता।"¹⁴⁷

- इसी प्रकार कुरान की आयत 6/104 - "तुम्हारे रब की तरफ से निशानियाँ आ चुकी। तो जिसने देख लिया सो अपने वास्ते, और जो अँधा रहा तो (उसका बवाल) उसकी जान पर , और मैं तुम पर निगहबान नहीं।"¹⁴⁸ इस आयत की पंक्ति 'मैं तुम पर निगहबान नहीं' का वक्ता स्पष्ट रूप से मुहम्मद साहब ही प्रतीत होते हैं।
- इसी प्रकार आयत 6:91, 81:15, 84:16-19, 6:114 में ऐसे शब्द कहे गये हैं, जिनसे यह बार-बार शंका उत्पन्न होती है कि कुरान मुहम्मद साहब या अन्य किसी मनुष्य के द्वारा ही लिखी गयी है।

दूसरी तरफ कुरान को अल्लाह की पुस्तक मानने के सम्बन्ध में जो तर्क दिए गये हैं वे निम्नवत् हैं -

- कोई भी कुरान की तरह दूसरी पुस्तक नहीं लिख सकता। इस विषय में कुरान के सूरा 2 आयत 23 में भी दावा पेश किया गया है - "और जो हमने अपने बन्दे (मुहम्मद) पर (कुरान) उतारा है अगर तुमको उसमें शक हो तो तुम उसके मानिंद (उस शक्ल की) एक सूरत (अध्याय) बना लो और अगर तुम सच्चे हो तो अल्लाह के मुकाबले में जो तुम्हारे सहायक हों उनको बुला लो।"¹⁴⁹

- मुहम्मद साहब अशिक्षित और ईमानदार थे । किसी निरक्षर व्यक्ति से यह अपेक्षा कैसे की जा सकती है कि वह कुरान जैसी वैज्ञानिक शैली में कोई पुस्तक लिख सकेगा ।
- कुरान वैज्ञानिक है - इसके लिए सूरा 23 आयत 12-14 को उदहारण के तौर पर लिया जाता है । यह माना जाता है कि इस आयत में ईश्वर ने भ्रूण के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को बताया है- 'हमने इनसान को मिट्टी के सत से बनाया है, फिर हमने उसे एक सुरक्षित ठहरने की जगह टपकी हुई बूँद बना कर रखा । फिर हमने उस बूँद को लोथड़ा का रूप दिया । फिर हमने उस लोथड़े को बोटी का रूप दिया । फिर हमने बोटी की हड्डियाँ बनाई । फिर हमने उस हड्डियों पर माँस चढ़ाया । फिर उसको एक नई सूरत में बना खड़ा किया ।'¹⁵⁰ इतने वर्ष पहले जब भ्रूण विज्ञान की उन्नति भी नहीं हुई थी, भ्रूण के विषय में आम इन्सान ऐसा वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण कैसे कर सकता है । इससे स्पष्ट होता है कि ये अल्लाह के शब्द हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कुरान ईश्वर के द्वारा अवतरित है या मनुष्य के द्वारा रचित इस पर विवाद है । हिन्दू धर्म ग्रंथों के संबंध में भी इस तरह के विवाद कई बार सामने आये हैं जहाँ वेदों को 'अपौरुषेय' कहकर उनके ईश्वरीय होने की बात कई बार स्वीकार की गयी है ।

कुमार प्रशांत अपने आलेख 'धर्म बनाम धार्मिकता में लिखते हैं, "हर धार्मिक संकल्पना का कोई न कोई विशिष्ट प्रज्ञावान जनक होता है - कहीं ईसा तो कहीं गौतम, कहीं मुहम्मद तो कहीं महावीर, कहीं जरश्रुष्ट ! मतलब यह कि संसार के सारे धर्म अपने-अपने समय के समाज को सँभालने के लिए मनुष्य ने खुद ही बनाये हैं । भगवान बेचारे की इसमें कोई भूमिका नहीं रही है, लेकिन सारे धर्म टिके इसी मान्यता पर हैं कि इनका कोई न कोई दैवी आधार है ! ऐसा इसलिए है कि सामान्यतः मनुष्य मनुष्य की बनाई व्यवस्था में बंधकर हमेशा-हमेशा रहेगा, उसे इतना विवेकवान बनाने की मशक्कत हम नहीं करना चाहते और वह इतना विवेकवान हो सकता है, इस पर हमारा विश्वास नहीं होता ।"¹⁵¹

(ऊ) धार्मिक शिक्षा घातक है और अलगाववाद उत्पन्न करती है : सिर्फ घर और

पीरबाड़ी ही नहीं बांग्लादेश के स्कूलों में भी धर्म का किस तरह से बोलबाला हुआ करता था, यह आत्मकथा के दूसरे भाग 'उत्ताल हवा' में दिखता है। धर्म की आरंभिक सीख अपने परिवार से लेकर जब स्कूल में प्रवेश के दौरान उससे मुक्ति की आकांक्षा ने जन्म लेना शुरू ही किया था, ठीक उसी समय यह देखकर तसलीमा आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सकीं कि धर्म तो यहाँ उससे भी ज्यादा मजबूत रूप में अपनी जड़ें गड़ाए बैठा है। जिस स्कूल में उन्हें विज्ञान और गणित की शिक्षा दी जा रही थी, वहाँ धर्म जैसे तर्कहीन विषय को भी उतने ही महत्वपूर्ण ढंग से पढ़ाने की व्यवस्था की गयी थी। 'क्लास की मुसलमान लड़कियों के लिए इस्लामियत का पाठ्यक्रम ! हिन्दू लड़कियों के लिए सनातन धर्म शिक्षा !' दरअसल घर पर बच्चे को समाज की धार्मिक मान्यताओं में घुल-मिल जाने के लिए तैयार करने का काम किया जाता है। बच्चा किस तरह से समाज में जाकर अपने वर्ग, जाति और धर्म की पहचान करे, यह सिखाने का काम परिवार के द्वारा ही किया जाता है। स्कूल में पहुँचते ही बच्चा अपने आपको हिन्दू-मुस्लिम, लड़का-लड़की, अमीर-गरीब में बाँट कर उसी के अनुरूप व्यवहार करना शुरू कर देता है और जो कसर रह जाती है वह स्कूली धार्मिक शिक्षा के माध्यम से पूरी कर दी जाती है।

इसके अतिरिक्त तसलीमा का मत है कि धार्मिक शिक्षा दिये जाने से अलगाववादी मानसिकता का जन्म होता है और कट्टरता बढ़ती है। धार्मिक मतान्ध लोगों में यह धारणा है जैसा कि पीर अमीरुल्लाह की मान्यता थी, "दुनियादारी की पढ़ाई-लिखी से मन में शैतान घुस जाता है।"¹⁵² पीरबाड़ी में धार्मिक शिक्षा ग्रहण कर रही हुमैरा ने कहा, "तुम दुनियादारी की पढ़ाई क्यों करती हो... अल्लाह तुम्हें काफी गुनाह देंगे... तुम्हारे पिता काफ़िर हैं। काफ़िर की बात मानने पर अल्लाहताला तुम्हें भी दोजख में भेजेंगे।"¹⁵³ माँ भी यही कहती, "एक दिन माँ से मैंने खीजकर पूछा, "यह सब क्या पढ़ती हूँ ? इसका मतलब तो जानती ही नहीं।" माँ ने शांत स्वर में कहा, 'इसकी जरूरत नहीं।

अल्लाह की किताब पढ़ने से सबाब मिल जायेगा ।"¹⁵⁴ अल्लाह की किताब पढ़ने से सबाब मिलता है या नहीं यह तो निश्चित नहीं है किन्तु यह ज्ञात हो जाता है कि अलग-अलग धर्म के व्यक्तियों में विभेद है और दिन-रात एक ही पुस्तक को रटते रहने से यह विभेद व्यावहारिक जीवन में भी उतर आता है । अपने धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ घोषित करने की भावना का जन्म होता है । इंसानों की अलग-अलग श्रेणियाँ बना दी जाती हैं - मुश्रिक, काफ़िर, मुनाफ़िक । अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक, ऊँचा-नीचा, छूत-अछूत आदि । स्पष्ट है सामाजिक असमानता के तत्व इसी धर्म से ही निकल कर आये हैं ।

धर्म में हिंसा अन्तर्निहित है । इसका प्रसार करने के लिए किसी भी हद तक जाने पर धर्म में किसी भी प्रकार के दंड के स्थान पर यश की व्यवस्था की गयी है । हिन्दू धर्म में देवी-देवताओं ने न जाने कितने युद्ध लड़े हैं और मुहम्मद साहब ने भी युद्ध लड़े हैं । "जिस तरह पूँजी कई अपराधों और हिंसा की जनक होती है, उसी तरह धर्म भी; जिस तरह पूँजी अपने पक्ष में किये गये अपराधों के दोषियों की रक्षा करने में सक्षम हो जाती है, उसी तरह धर्म भी । इसलिए ही धर्म और पूँजी का गठजोड़ बहुत आसानी से हो जाता है ।"¹⁵⁵

(ऋ) अंतरजातीय विवाह : बंधन या धर्म से मुक्ति : अंतरजातीय विवाह करके भी कोई धर्म के बंधन से मुक्त नहीं हो पाता । एक धर्म छूटता है तो दूसरा धर्म जकड़ लेता है । इसका सबसे अच्छा उदाहरण है तसलीमा की भाभी, गीता । एक हिन्दू परिवार से कम उम्र में ब्याह कर आई गीता को तसलीमा के घर में इस्लामिक रीति-रिवाजों और खान-पान को अपनाना ही अनिवार्य नहीं किया गया, बल्कि उसके अपने पूर्व संस्कारों को छोड़ देने के लिए भी बाध्य किया गया । तसलीमा इस विषय में बहुत ही कष्ट महसूस करते हुए लिखती हैं, "मुसलमान के घर ब्याह होने की वजह से, अब उसका 'पूजा' का मौज खत्म ! वैसे हम सब बारहों महीनों के तेरहों पूजा-पर्व में मुहल्ले-मुहल्ले मंडप देखते, घूम-फिर सकते थे; अष्टमी और रथ के मेले में चीनी के खिलौने और विन्नी धान की खोई खरीद सकते थे । हिन्दू से मुसलमान होने की वजह से, गीता के लिए यह सब संभव नहीं होगा

यह जान-समझकर, हमारे अफ़सोस का अंत नहीं था ।" इसी तरह तसलीमा की सहेली चंदना जो जाति से बौद्ध थी, को भी अपने परिवार से बहिष्कृत कर दिया गया; यहाँ तक कि उसके पिता ने उसके जीवित होते हुए भी उसका श्राद्ध कर दिया । उसका दोष केवल यह था कि उसने एक मुसलमान लड़के से विवाह किया था । इस पर भी तसलीमा अफ़सोस से भर गयीं । दरअसल यह अफ़सोस उन सभी स्त्रियों के लिए है, जो समाज की मान्यताओं को तोड़कर अंतरजातीय विवाह करने का साहस तो कर तो लेती हैं, किन्तु धर्म की जंजीरें उस नई जगह पर भी उनका पीछा नहीं छोड़तीं ।

(ए) धार्मिक ग्रन्थ अवैज्ञानिक और अतार्किक हैं : सहज ज्ञान की धारा से उत्पन्न विज्ञान ने दो पैरों पर चलने वाले एक मामूली प्राणी को प्रकृति को जीतने वाला मनुष्य तो बना दिया । लेकिन ज्ञान की इस धारा के विपरीत सदियों से अज्ञानता की एक समानांतर धारा विद्यमान रही है, जिसने ज्ञान के मार्ग को सदा से दूषित करने का प्रयास किया है । इस दूषित, संक्रमित और बीमार धारा का नाम है - धर्म । धर्म और विज्ञान में कोई तालमेल ही नहीं । जहाँ विज्ञान की धारा तर्क, शोध और तथ्यों पर आधारित है, वहीं धर्म का पूरा बखेड़ा अन्धविश्वास, आस्था, झूठ, कुतर्क और हिंसा पर आधारित है । फिर भी सभी धार्मिक गुट कई बार ऐसा दावा करते दिखते हैं कि उनका धर्म विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है । धर्म में कितना विज्ञान है यह कुछ तथ्यों से ही स्पष्ट हो जाता है ।

मसलन- सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में धार्मिक ग्रंथों ने बिल्कुल अलग-अलग बातें की हैं - कुरान में अल्लाह का कहना हमने सृष्टि को छह दिनों में बनाई (32/4) जबकि विज्ञान के अनुसार पृथ्वी अपने अक्ष पर चौबीस घंटे में एक घूर्णन पूरा करती है, जिसे एक दिन कहते हैं और सृष्टि के निर्माण की प्रक्रिया में 'हेडियन'¹⁵⁶ से 'आर्कियन'¹⁵⁷ युग तक कई लाख वर्ष लगे । 'श्रीमद्देवी भागवत' में सृष्टि की रचना की कहानी का उल्लेख है कुछ इस प्रकार है, "जब भगवती भुवनेश्वरी ने अपने श्रीविग्रह से तीन शक्तियों को विदा किया, तब वे तीनों शक्तियाँ ब्रम्हा, विष्णु और शंकर के रूप में पुरुष बन गयीं । एक-एक सुन्दर विमान पर उनका आसन था । उस समय उन प्रधान देवताओं के सामने भयंकर

जलार्णव ही नजर आता था। अतः वे ठहरने के लिए स्थान बनाने लगे। उनके द्वारा पृथ्वी की सृष्टि हुई और उनपर वे रह गये... भगवती भुवनेश्वरी ने उस पृथ्वी को शेषनाग के मस्तक पर ठहराया। वे उसे स्थिर रूप से धारण किये रहें - इस विचार से सम्पूर्ण विशाल पर्वत बनाये गये। जिस प्रकार काठ में लोहे की कीलें ठोक दी जाती हैं ताकि वे टस-से-मस न हों।"¹⁵⁸ कुरान में भी पहाड़ों को कीलों की तरह ठोकें जाने की बात कही गयी है (सूरा 78:6-7)- 'हमने पृथ्वी को फर्श बनाया और पहाड़ों को खूंटों की तरह गाड़ दिया।¹⁵⁹ यही बात कुरान के सूरा 21: 31 में भी है, "हम ने ही ज़मीन में बोझ (पहाड़) रखे ताकि लोगों को लेकर झुक न पड़ें।"¹⁶⁰

इसी प्रकार धर्म ग्रंथों के आत्मा और परमात्मा, स्वर्ग-नरक सम्बन्धी विचार भी अतार्किक लगते हैं। विज्ञान के अनुसार मानव शरीर कोशिकाओं से बना है। एक समय तक इन कोशिकाओं का निर्माण क्रम चलता रहता है, जैसे ही इन कोशिकाओं का बनना बंद हो जाता है, मनुष्य मृत्यु की ओर बढ़ने लगता है। जीव उत्पत्ति की 'ओपेरियन थियरी'¹⁶¹ की माने तो उसकी उत्पत्ति रासायनिक पदार्थों के जटिल संयोजन से हुई है, जिसे वैज्ञानिक हेल्डन ने 'प्रोबायोटिक सूप' या 'प्राजैविक तरल' कहा था। किन्तु धर्म ग्रंथों में मनुष्य की उत्पत्ति के लिए अलग-अलग पदार्थ और अलग-अलग कारण निर्धारित किये गये हैं। जैसे - कुरान के अनुसार- सूरा अल हिज़्र, आयत 26 - 'हमने मनुष्य को सड़े हुए गारे की खनखनाती हुई मिट्टी से बनाया', सूरा अल-अंबिया, आयत 30 - 'और हमने पानी से हर जीवित चीज़ बनाई', सूरा अल-अकल, आयत 2, 'पैदा किया मनुष्य को जमें हुए खून के एक लोथड़े से'। हिन्दू धर्म ग्रंथों में पञ्च तत्वों से शरीर निर्मित माना गया है -क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा। पंच रचित अति अधम शरीरा'¹⁶²। बाइबिल का प्रथम भाग तो केवल 'जेनेसिस' या 'उत्पत्ति' पर ही केन्द्रित है। इसी प्रकार वैज्ञानिक तर्कों को माने तो धार्मिक ग्रंथों में उल्लिखित मृत्यु के बाद जीवन की बात अतार्किक ही लगती है। गीता में कहा गया है, "जैसे एक ही सूर्य पूरी पृथ्वी को प्रकाशित करता है, वैसे ही एक ही आत्मा सारे शरीरों में निवास करती है।"¹⁶³ एवं 'आत्मा न जन्म

लेती है न मरती है यह नित्य और सनातन है'¹⁶⁴। किन्तु यदि आत्मा न जन्म लेती है न मरती है तो 1900 ई. में दुनिया की जो आबादी 1.4 अरब¹⁶⁵ थी वह सन् 2011 में 7 अरब तक पहुँच गयी। तो प्रश्न यह यह उठता है कि यदि आत्मा न तो मरती है और न जन्म लेती है तो इन 5.6 अरब नये शरीरों के लिए नई आत्माएँ कहाँ से आयीं। 'कमठ सेष सम धर वसुधा के'¹⁶⁶ अर्थात् पृथ्वी कछुए की पीठ और शेषनाग के फन पर धरी हुई है। धर्म-ग्रंथों की ऐसी अतार्किकता का कोई अंत नहीं।

तसलीमा ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि धार्मिक ग्रंथों में व्यक्त विचार या धर्म जिन व्यवहारों के आधार पर चलता है वे निराधार और अतार्किक हैं। बचपन में उनका अपनी माँ से या घर के लोगों से किया गया वार्तालाप हो या उनके कलामो में उनके द्वारा उठाये गये प्रश्न, ये सभी दिखाते हैं कि धर्म तार्किक दृष्टि से काफी कमजोर है। तसलीमा के प्रश्न और तसलीमा के तर्क -

- "गुनाह, गुनाह, गुनाह ! मैं तीन सीढियाँ उतरकर खड़ी हो गयी। दाहिने मुडूँ तो गुनाह, पीछे मुडूँ तो गुनाह। प्रश्न पूछूँ तो गुनाह... लेकिन स्कूल में गणित के मास्टर तो बोर्ड पर गणित लिखकर कहते थे कि जो कुछ भी शंका हो पूछो। जो सवाल नहीं पूछता, वह गणित नहीं समझाता।"¹⁶⁷
- मैं माँ से कहती, "स्कूल के टीचर कहते हैं कि बिना अच्छी तरह समझे कोई चीज रटनी नहीं चाहिए। मूर्ख लड़कियाँ ही रटकर अपना काम चलाती हैं जबकि अच्छी छात्राएँ पहले उस विषय को समझकर तब अपने शब्दों में लिखती हैं। अरबी में पढ़ने के बजाय बांग्ला में नमाज़ पढ़ने की दिक्कत क्या है, अल्लाह को क्या बांग्ला भाषा नहीं आती?"¹⁶⁸
- मुझे तस्वीर बनाते देख माँ कहती, "पेड़ पौधों की तस्वीर बना, फूलों की तस्वीर बना, इन्हें बनाने में कोई हर्ज नहीं है। मनुष्य में जान नहीं डाला जा सकता है, इसलिए मनुष्य की तस्वीर मत बना। सिर्फ अल्लाह ही है जो ऐसा कर सकता है, और कोई नहीं। उस दिन मेरे मुँह से न

जाने कैसे निकल गया, "तुम मुझसे पेड़ बनाने के लिए कह रही हो मगर पेड़ों में भी तो जान होती है। इसपर माँ ने तसलीमा को तर्क-वितर्क करने से रोका।¹⁶⁹

- "विज्ञान की बातों में मुझे तर्क ज्यादा नज़र आता था। अल्लाह ने आदम-हव्वा को धम्म से बहिश्त में फेंक दिया। यह मुझे कहानी जैसी ही लगती थी। परिकथाओं की तरह। माँ से कुछ कहने पर माँ कहती, 'अल्लाह के बारे में बुरी बातें कहने पर तेरी जीभ काटकर गिर जायेगी।' मैंने जीभ गिरती है या नहीं यह देखने के लिए कमरे का दरवाज़ा बंद करके उनके खिलाफ जाने क्या-क्या कहा। मगर मेरी जीभ सलामत रही।"¹⁷⁰
- "माँ की पहुँच से अपने को थोड़ा दूर रखकर बोली, 'समझो, अगर एक बच्चे ने जन्म लिया... उसके माता-पिता ने उसे जो सिखाया उसने वही किया- पूजा करना, कीर्तन करना, गाना वगैरह। यह बच्चा दोजख में जाएगा या बहिश्त में?... माँ बोलीं, 'अगर वह मुसलमान है, ईमान पर चलता हो, तब वह बहिश्त का हक़दार होगा, नहीं तो दोजख में जाएगा।'...मैंने इस बार मौका पाते ही अपने गले के धनुष से शब्दों का तीर चलाया, 'तुम खुद कहती हो कि अल्लाह के न चाहने पर कुछ भी नहीं होता। अल्लाह ने ही उस बच्चे को विधर्मी के यहाँ पैदा किया। यह तो अल्लाह का दोष हुआ।"¹⁷¹
- तसलीमा का प्रश्न और माँ के उत्तर - 'इन्सान कैसे बना - अल्लाह ने मिट्टी से इन्सान और आग से जिन्न बनाया है - जिन्न कहाँ रहता है ?- वह हवा में रहता है हम उसे देख नहीं पाते हैं- अल्लाह कहा रहते हैं?- अल्लाह नूर हैं वे नज़र नहीं आते - सात आसमान के ऊपर से क्या अल्लाह दुनिया के लोगों को ठीक से देख नहीं पाते ? अच्छी तरह से देखने के लिए क्या नीचे उतरना पड़ता है ?- इतने सवाल नहीं पूछे जाते। अलाह पर आंख मूँदकर भरोसा करना। अल्लाह सर्वशक्तिमान हैं।'

- "मेरे एक हाथ में इमली थी, उसे जीभ से चाट रही थी, दूसरे हाथ में कुरान का तर्जुमा था । उसे पढ़ते हुए एक जगह मेरा खून जैसे ठंडा होने लगा- 'पृथ्वी के चारो ओर सूरज चक्कर लगा रहा है, पहाड़ों ने पृथ्वी को कील की तरह अटका रखा है, इसीलिए पृथ्वी गिरने से बची हुई है।" मैंने इसे एक बार नहीं, दो बार, तीन बार पढ़ा ... लेकिन सच तो यह है कि सूर्य पृथ्वी के चारो तरफ नहीं, पृथ्वी सूर्य के चारो तरफ घूमती है । यानी कि कुरान में गलत लिखा था । या फिर स्कूल की किताब में जो लिखा था, वह गलत था ।"¹⁷²
- स्वर्ग-नरक जैसी खोखली और बेबुनियाद मान्यता पर व्यंग करते हुए लिखती हैं, "गुनाह किया तो दोजख में जाऊँगी, यही न ? अगर दोजख में गयी, तो वहाँ तुम्हारे प्रिय दिलीप कुमार, मधुबाला, तुम्हारे उत्तम कुमार, सुचित्रा सेन सबसे भेट हो आएगी । तुम्हारे छवि विश्वास, पहाड़ी सान्याल को देख लूँगी और तुम जब जन्नत जाओगी, तो तुम्हें सिर्फ कठमुल्ले लोग ही दिखेंगे । चार-चार ब्याह रचाने वाले शैतान, बदमाश मुल्ले ही मिलेंगे । ये लोग इंसान को दुःख देते हैं, उन्हें सताते हैं; जलते-कुढ़ते रहते हैं, कुटिल काम करते हैं, इंसान का खून करते हैं, सैकड़ों बलात्कार करते हैं, बीवियों को जला कर मारते हैं, मार-कुटाई करते हैं, लेकिन दिन-दिन भर अल्लाह-अल्लाह जपते हैं, इसलिए उन्हें जन्नत मिल जाती है । बताओ मुझे, उन शैतानों का साथ देकर तुम्हें क्या मिलेगा ? इससे तो बेहतर है गुनाह करो और दोजख के रजिस्टर में अपना नाम लिखाओं । वहाँ आइन्स्टीन जैसे विख्यात वैज्ञानिक मिलेंगे, नेल्सन मंडेला मिलेंगे यानी दुनिया के बड़े-बड़े वैज्ञानिक, गायक, नायक, सबसे दोस्ती होगी । अगर तुम जन्नत गयी, तो अब्बू बहत्तर हूँ के साथ लीला करते नज़र आयेंगे... तुम आखिर किस सुख की उम्मीद में जन्नत जाना चाहती हो ? किसलिए तुम नमाज़ अदा करती हो ?"¹⁷³

स्पष्ट है तसलीमा ने बचपन से ही धर्म को तार्किक दृष्टि से देखने का प्रयास किया और इस प्रयास में पाया कि धर्म कभी भी तर्क या विज्ञान आधारित नहीं हो सकता। धार्मिक ग्रंथों में व्यक्त बातें कोरी कल्पना पर आधारित हैं। और अफ़सोस कि इस कोरी कल्पना को सही साबित करने के प्रयास में बड़े-बड़े बुद्धिजीवी भी लगे होते हैं। ऐसा ही कुछ प्रयास भारत में पीस टीवी के संस्थापक और 'इस्लामिक रिसर्च फाउन्डेशन' के डॉ जाकिर नाइक ने भी करने का प्रयास किया, जिन्हें बाद में धार्मिक कट्टरता के प्रचार के आरोप में गिरफ्तार किया गया। कुरान को वैज्ञानिक मानने वालों पर कटाक्ष करते हुए वे लिखती हैं, "... लेकिन मजे की बात यह है कि किसी भी वैज्ञानिक आविष्कार से पहले, कुरान के इस आविष्कार का अता-पता नहीं होता। वैज्ञानिकों ने 'ब्लैक-होल' घटना का पहले ऐलान कर दिया, बाद में कुरान विशेषज्ञ भी कुरान में 'ब्लैक-होल' की घटना खोज निकालेंगे। अगर कोई मिसाल नहीं भी मिली, तो किसी आयत की ऐसी व्याख्या कर देंगे मानो अल्लाह ही इशारे-इशारे में इस ब्लैक-होल की बात पहले ही कह गये हैं। कुरान में लिखा हुआ है कि सूर्य, पृथ्वी के चारो तरफ घूमता है, ये तमाम पहाड़ मानो कील की तरह इस्तेमाल किये गए हैं। ताकि पृथ्वी गिर ना पड़े। इतने जमाने आये, मगर अब विज्ञान के जानकार मुसलमान यह कभी कुबूल नहीं करेंगे कि यह कुरान में लिखा हुआ है। वे स्पष्ट अरबी का अस्पष्ट अनुवाद करके यह समझाने की कोशिश करेंगे कि पृथ्वी स्थिर है, यह कहकर, अल्लाह ने दरअसल कुछ और समझाना चाहा है। अल्लाह कहाँ, क्या समझाना चाहते हैं, आजकल के धुरंधर ज्ञानी, अल्लाह से भी ज्यादा समझते हैं।"¹⁷⁴ धर्म ग्रंथों के उपरोक्त अतार्किक मत के ही कारण तसलीमा इस बात का समर्थन करती हैं कि धर्म ग्रंथों में संशोधन होना चाहिए। इसलिए मानव जाति को अतार्किकता से निकल आने का आह्वाहन 'इहलौकिक' कविता में कुछ इस प्रकार करती हैं - 'देह और मन की जंजीरों को खोलकर/चलो जी उठें वैज्ञानिक ढंग से।'¹⁷⁵

(ऐ) धर्म, साम्प्रदायिकता और धार्मिक कट्टरता के लिए उत्तरदायी है : दरअसल

समय के साथ-साथ अन्य सभी चीजों का रूप चाहे बदल गया हो पर धर्म उसी रूप में, समाज पर, अपने दांत गड़ाए बैठा है। जिस धर्म शब्द को कभी नैतिकता, आचरण और कर्तव्य के सन्दर्भ में देखा जाता था, आज वह उस अर्थ से कहीं दूर निकल आया है। अब यह धर्म अपने विकृत रूप में अच्छाइयों को धारण करने की नहीं, सामाजिक बुराइयों को धारण करने की सीख देता दिख रहा है। इस्लाम इस मामले में अन्य धर्मों से ज्यादा कट्टर दिखता है। तसलीमा इसी कट्टरतावाद के विषय में लिखती हैं, "शरीर में अगर विष वृक्ष बढ़ रहा हो, इसलिए अगर डाल, पत्ते काट दिए जाएँ, तो वृक्ष क्या अपने डाल-पत्ते फैलाना बंद कर देगा ? अपनी शाखों पत्तों में क्या ज़हर फलने-फूलने नहीं देगा ? ज़रूर देगा ! इसलिए हम यह उम्मीद नहीं कर सकते कि कट्टरवाद नामक वृक्ष काट फेंकने से, कट्टरवाद खत्म कर पायेंगे? जितने दिनों तक धर्म की जड़ें कायम हैं; उतने दिनों कट्टरवाद भी उगता-बढ़ता रहेगा। कट्टरवाद की जड़ है- धर्म!"¹⁷⁶ स्पष्ट है तसलीमा का मत है कि ज़रूरत है, सबसे पहले धर्म को जड़ सहित उखाड़ फेंका जाय। पर यह कार्य करेगा कौन ? सभी तो धर्म की हवा में बह रहे हैं और जो चन्द लोग इस हवा के विपरीत जाने प्रयास करते हैं, उन्हें बहुसंख्यक धार्मिक लोगों के द्वारा उखाड़ फेंका जाता है। तसलीमा के सन्दर्भ में भी कुछ ऐसा ही हुआ है।

बांग्लादेश की धार्मिक स्थिति के विषय में तसलीमा लिखती हैं, "देश उग्रपंथी जंगी मुस्लिमों के अड्डे में परिणत हो गया है। बाकी जो लोग बच रहे हैं जो यह कहते हैं कि वे लोग उग्रपंथी नहीं हैं, वे लोग कट्टरवाद के विरोधी हैं। वे लोग भी चोरी-छिपे कट्टरवाद की जड़ें कस कर दबोचे बैठे हैं। धर्म ही कट्टरवाद की जड़ है- बहुत से लोग जोर-शोर से यह बात क़बूल करना चाहेंगे लेकिन वे लोग धर्म में विश्वास करते हैं, इसलिए आज धर्मनिरपेक्ष इंसान भी कट्टरवाद के विरुद्ध उतनी सख्ती से नहीं लड़ पा रहा है... बांग्लादेश में जो लोग यह दावा करते हैं कि वे लोग कट्टरवादी नहीं हैं, वे लोग क्या धर्म की मूल नीति में विश्वास नहीं करते। जो लोग विश्वास नहीं करते उनमें से अधिकांश में इतनी हिम्मत

नहीं है कि वे लोग डंके की चोट पर यह कह सकें कि धर्म में उनका विश्वास नहीं है।¹⁷⁷ ऐसे धार्मिक कट्टरतावादी आम मुस्लिम व्यक्ति का 'ब्रेनवाश' कर धार्मिक लाभ उठाने का अवसर कभी नहीं चूकते। तसलीमा के सम्बन्ध में यही किया गया। हजारों-हजार मुस्लिमों को अल्लाह का वास्ता देकर तसलीमा विरोधी दल में शामिल किया गया। इनमें से ज्यादातर तो ऐसे हैं, जो धर्म का पालन सामाजिक दबाव में कर रहे हैं। उनमें अल्लाह और उसके नुमाइंदों को नाराज करने हिम्मत नहीं है। 'अल्लाह का अपमान करे वाली औरत' के रूप में प्रचारित तसलीमा के जीवन को छीन लेने पर आमादा चंद गुटों के बहकावे में आकर ये लोग भी विरोधी गुटों में शामिल हो जाने को विवश हो गये हैं।

कहने को तो पूरी दुनिया तकनीकी युग में प्रवेश कर चुकी है, विश्व सिमट कर छोटा हो गया है, 'ग्लोबल गाँव' जैसी विचारधारा स्वीकार की जा रही है, किन्तु धर्म, जाति, नस्ल और साम्प्रदायिकता का खाँचा फैलता ही जा रहा है। यह बात 'पी.ई.डब्ल्यू. रिसर्च सेंटर' के द्वारा किये गये शोध के आधार पर पुष्ट हो जाती है (देखें - आरेख- 3.7 व 3.8)। इस आरेख से स्पष्ट है कि भारत जहाँ धर्म की दृष्टि से बढ़ती सामाजिक शत्रुता में उच्चतम स्तर पर है वहीं बांग्लादेश उच्च स्तर के देशों में आता है। इस आरेख से यह भी स्पष्ट है कि भारत 2015 में धार्मिक अशांति की दृष्टि से विश्व में चौथे स्थान पर है। और वहीं पाकिस्तान का स्थान 10वाँ है, बांग्लादेश इन देशों के बाद है। लेकिन ये आरेख यह दिखाते हैं कि दक्षिण और दक्षिण-पूर्व के देशों में धार्मिक अशांति विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है।

धर्म के कारण साम्प्रदायिकता उत्पन्न होती है। इस्लाम धर्म में साम्प्रदायिकता पैदा करने वाली आयतें निम्नलिखित हैं -

- कुरान 4:14 - "और जो अल्लाह और उसके रसूल का हुक्म न माने और अल्लाह की हदों से हट कर चले (तो अल्लाह) उसको (नरक की) आग में दाखिल करेगा, (वह) उसमें हमेशा रहेगा और उसको जिल्लत की मार दी जायेगी।"¹⁷⁸

- कुरान के सूरा 4 की आयत 88 से 125 तक जिहाद, काफिर आदि का उल्लेख अन्य धर्मानुयायियों के सम्बन्ध में काफी भ्रामक स्थिति पैदा करती है।
- कुरान 4:101-"निःसंदेह 'काफिर (गैर-मुस्लिम) तुम्हारे खुले दुश्मन हैं।"179
- कुरान 5:51-"हे 'ईमान' लाने वालों! तुम यहूदियों और ईसाईयों को मित्र संबंध न बनाओ"180
- कुरान 5:57-"ऐ ईमान (अल्ला पर यकीन) लानेवालो! तुमसे पहले जिनको किताब दी गई थी, जिन्होंने तुम्हारे धर्म को हँसी - खेल बना लिया है, उन्हें और इनकार करनेवालों को अपना मित्र न बनाओ। और अल्लाह का डर रखो यदि तुम ईमानवाले हो।"181
- कुरान 9.5- "फिर, जब (मियाद वाले चार) अदब के महीने बीत जावें तो उन (अहद तोड़नेवाले) मुशरिकों को जहाँ पाओ क़त्ल करो और उनको गिरफ्तार करो, उनको घेर लो, और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो।"182
- कुरान 9:23- "हे 'ईमान' लाने वालों! (मुसलमानों) अपने बापों और भाईयों को अपना मित्र मत बनाओ यदि वे ईमान की अपेक्षा 'कुफ़्र' (इस्लाम को धोखा) को पसन्द करें। और तुम में से जो कोई उनसे मित्रता का नाता जोड़ेगा, तो ऐसे ही लोग जालिम होंगे।"183
- कुरान 9.28- "हे 'ईमान' लाने वालो केवल एक आल्लाह को न मानने वाले मुश्रिक (मूर्तिपूजक) नापाक (अपवित्र) हैं।"184
- कुरान 9:37- "अल्लाह 'काफिर' लोगों (गैर-मुस्लिमों) को मार्ग नहीं दिखाता।"185
- कुरान 9:123- "हे 'ईमान' लाने वालों! (मुसलमानों) उन 'काफिरों' (गैर-मुस्लिमों) से लड़ो जो तुम्हारे आस पास हैं, और चाहिए कि वे तुममें सख्ती पायें।"186

- कुरान 21:98- "(कहा जाएगा) : निश्चय ही तुम और वह जिसे तुम अल्लाह के सिवा (दूसरे भगवान को मानना) पूजते थे 'जहन्नम' का ईंधन हो। तुम अवश्य उसके घाट उतरोगे।"¹⁸⁷
- कुरान 32:22- "और उस से बढ़कर जालिम कौन होगा जिसे उसके 'रब' की आयतों के द्वारा चेताया जाये और फिर वह उनसे मुँह फेर ले (इस्लाम छोड़ दे) निश्चय ही हमें ऐसे गुनाहगारों से बदला लेना है।"¹⁸⁸
- कुरान 33:61- "फिटकारे हुए, (मुनाफिक) मूर्तिपूजक जहाँ कहीं पाए जाएंगे पकड़े जाएंगे और बुरी तरह कत्ल किए जाएंगे।"¹⁸⁹
- इसी प्रकार कुरान की कई ऐसी अन्य आयतें भी हैं, जिन्होंने मुस्लिमों को अन्य धर्म के अनुयायियों से सतर्क रहने, उनसे दूरी बनाये रखने की सलाह दी गयी है। उदाहरण के लिए - 4:89, 5:14, 8:65, 8:69, 9:14, 9:29, 9:68, 9:111, 21:98, 2:22, 41:27, 41:28, 48:20 एवं 66:9 आदि।

इस साम्प्रदायिकता और कट्टरता की परिणति हम इस्लाम धर्म में 'जिहाद' के नाम पर 'मुस्लिम आतंकवाद' और धर्म रक्षा के लिए पनप रहे 'संप्रदायिकतावाद' एक रूप में देख सकते हैं। पाकिस्तानी पत्रकार आरिफ जमाल ने 'जिहाद' विषय पर शोध किया और पाया कि जिहाद का जिहादियों ने वही अर्थ लिया है, जैसा कि कुरान में उल्लिखित है और इसके पीछे उद्देश्य है जन्नत की बहत्तर हूरो की प्राप्ति।¹⁹⁰

इस बढ़ती अशांति और धार्मिक प्रतिद्वंद्विता के सम्बन्ध में आत्मकथा 'नहीं, कहीं कुछ भी नहीं' में तसलीमा लिखती हैं, "यह सोचकर मुझे अचरज होता है कि इंसान जितना विज्ञान-निर्भर होता जा रहा है, उतना ही दुनिया भर में धर्म का भी विस्तार होता जा रहा है। विवर्तन तत्व में इसका यथेष्ट प्रमाण नहीं मिलता, यह वज्रह दिखाकर, तथाकथित उन्मत विश्व में भी अलौकिक सृष्टि में विश्वासी

होने का आन्दोलन जारी है । सभ्यता क्या अंत में पीछे की दिशा में चल पड़ेगी ? मध्ययुग का अन्धकार ही क्या इंसान का गंतव्य है ?"¹⁹¹

कई बार धर्म के स्थान पर आध्यात्मिकता की बात की जाती है किन्तु कुमार अम्बुज के अनुसार तो धर्म "अलौकिकता के अन्तरंग में जाकर वह आध्यात्मिकता को पुष्ट करता है । आध्यात्मिकता अपार्थिवता, अभौतिकता की तरफ ले जाती है और धर्म को ही गरिमा देती है । ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, एक दूसरे का मान बढ़ाने वाले हैं । रेखांकित किया जाना चाहिए कि आध्यात्मिकता किसी भौतिक दर्शन या वाद की तरफ यात्रा नहीं करती है । जो 'धर्म और आध्यात्मिकता में आध्यात्मिकता का गर्वीला चुनाव करते हैं, वे सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष तरीके से धर्म की ध्वजा उठाते हैं ।"¹⁹² और वे धर्म को एक मनोरोग की संज्ञा देते हैं "चिकित्सकीय दृष्टि से देखें तो 'धर्म के नशे में पैदा मानसिक उत्ताप या अवसाद बाकायदा एक मनोरोग है जिसकी विशिष्ट, निर्दिष्ट दवाएं हैं: उदाहरण के लिए होम्योपैथी में 'वेरेट्रम' और 'स्त्रेमोनियम' ।"¹⁹³

धर्म और साम्प्रदायिकता भी अलग नहीं है । कुमार अम्बुज के अनुसार, "जो लोग सोचते हैं कि धर्म और साम्प्रदायिकता अलग-अलग चीजें हैं, वे वस्तुतः अंगूर और अंगूर की शराब में जानबूझकर भेद नहीं करना चाहते । अंगूर से जब तक शराब नहीं बनती, वह एक फल है, लेकिन अंगूर की शराब जब बनेगी तो अंगूर से ही बनेगी । इसी तरह प्रत्येक धर्म-विश्वासी सांप्रदायिक हो यह कतई जरूरी नहीं, लेकिन प्रत्येक साम्प्रदायिक आदमी किसी न किसी धर्म में, उपासना पद्धति में विश्वास करने वाला होता ही है ।"¹⁹⁴

(ओ) पश्चिमी देश भी धर्मान्धता से ग्रस्त हैं : निर्वासन के दौरान विभिन्न देशों- फ्रांस, अमेरिका, स्वीडन आदि में रहते हुए तसलीमा ने पश्चिमी जगत की संस्कृति और धर्म के विषय में काफी कुछ समझा । पश्चिमी देशों में किये गये उनके भ्रमण की एक यात्रा-संस्मरणात्मक झलक उनकी आत्मकथा 'मुझे घर ले चलो' में दिखती है । पश्चिमी देशों के स्वच्छन्द परिवेश में तसलीमा इस बात

को लेकर हैरान थीं की तर्क, तकनीक, और बौद्धिकता में विश्वास रखने वाले देश अभी तक धर्म के खाँचें से बाहर नहीं निकल पाए हैं। इसकी अभिव्यक्ति वह कविता के रूप में इस प्रकार करती हैं-

जैसे भारत अपने मंदिर को लेकर,
मस्जिद को लेकर सऊदी अरब, ईरान, मिस्र, पाकिस्तान
वैसे ही गिरजे को लेकर यहाँ,
इस यूरोप में जारी है अतिशयता !
कैथेड्रल है शहर का मुकुट,
अभी भी लगती है भीड़, आलोकित गिरजों में,
ईसा के जन्मदिन पर सजते हैं घर-घर पाइन के पेड़
बच्चे लिखते हैं खत, उत्तरी ध्रुव के सांताक्रूज के नाम।
अभी भी वे नहीं बने इंसान, अभी भी हैं क्रिस्तान।
दुनिया की राह पर चलते फिरते नज़र आते हैं,
सिर्फ हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, यहूदी, मुसलमान,
कहीं नज़र नहीं आता इंसान !¹⁹⁵

पश्चिम में धर्म के साथ-साथ नस्लवाद की समस्या का भी उल्लेख साथ में किया है। यूरोप प्रवास के दौरान उन्हें और उनकी ही तरह अश्वेत लोगो को नस्ल के आधार पर कई तरह की असुविधाओं का सामना करना पड़ता है, यह उन्होंने विभिन्न घटनाओं के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया। जैसे काली चमड़ी होने के कारण सभी यह अनुमान लगा लेते थे कि तसलीमा वहाँ की निवासी नहीं हैं और इस आधार पर उनसे कई बार अस्पताल में या राह चलते दुर्व्यवहार किया गया। उन्होंने नस्लवाद पर व्यंग करते हुए लिखा है, "श्वेतांग मूर्ख साँवले रंग की बुद्धि को कभी स्वीकार नहीं करते।"¹⁹⁶

(औ) धर्म की आलोचना की स्वतंत्रता होनी चाहिए : तसलीमा भले ही यह मानती हों

कि यदि धर्म पालन की स्वतंत्रता दी गयी है तो धर्म की आलोचना करने की स्वतंत्रता भी होनी चाहिए, लेकिन सभी ऐसा नहीं स्वीकार करते, विशेषकर धार्मिक कठमुल्ले तो ऐसी बात से ही व्याकुल हो उठते हैं। वे ईश्वर के स्थान पर प्रकृति को स्थापित करती हैं - 'ईश्वर पर भरोसा नहीं/प्रकृति को देखती हूँ मुग्ध आँखों से'।¹⁹⁷ ईश्वर या किसी अलौकिक सत्ता की आलोचना करते हुए वे नास्तिकता और धर्मनिरपेक्षता संबंधी विचारों का समर्थन करती हैं।

स्त्रीवादी चिन्तक और लेखिका 'अमीना वदूद' अपनी पुस्तक 'इनसाइड द जेंडर जेहाद' में लिखती हैं, "किसी मुस्लिम द्वारा धर्म का ठीक से पालन न करने पर या अरुचि दिखाने पर उसे विश्वासघाती कहकर धर्मच्युत कर दिया जाता है। ज्यादातर लोग अपने जीवन की सुरक्षा को लेकर डरते हैं इसलिए वे इस्लाम विरोधी अपनी भावनाओं को छिपा ले जाते हैं।"¹⁹⁸ कुरान में अल्लाह की निंदा करने या धर्म का त्याग करने वालों के लिए मृत्युदंड का प्रावधान किया गया है। औरतों द्वारा धर्म त्याग या ईश निंदा किये जाने पर उनके लिए कैद की सजा निर्धारित की गयी है। इस तरह के बेबुनियादी धार्मिक नियम मनुष्य की स्वतन्त्रता में बाधक हैं। ये मानवाधिकार का उल्लंघन है। व्यक्ति विशेष को अपनी इच्छानुसार धर्म चुनने और उसका पालन करने की स्वतन्त्रता है। ये नियम उसकी इस स्वतन्त्रता का अतिक्रमण करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 10 दिसम्बर 1948 को 'अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणा पत्र' की धारा-18 में कुछ मानवाधिकार को कुछ इस तरह से स्वीकृत किया गया, "प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अंतःकरण, धर्मोपासना की स्वतंत्रता का अधिकार है। इसमें धर्मपरिवर्तन, धर्मोपदेश, व्यवहार, पूजा और अनुष्ठान की स्वतंत्रता सम्मिलित है।"

(अं) धर्म अनावश्यक व्यवस्था है : विख्यात पत्रकार 'करन थापर' को दिये अपने एक साक्षात्कार में तसलीमा कहती हैं, "हमें किसी भी धर्म को स्वीकार नहीं करना चाहिए क्योंकि यह मानवता के विरुद्ध है, यह मानव अधिकार के विरुद्ध है और अभिव्यक्ति के अधिकार के विरुद्ध है।"¹⁹⁹

दुनिया के एकेश्वरवादी धर्मों में ईसाई और इस्लाम धर्म ने अपने प्रसार और अपने धर्म की रक्षा के लिए प्रचार किया और इसके लिए किसी भी हद तक चले गये। हत्या, लूट, जनसंहार तक कर डाला। इस्लाम धर्म में 'दारुल हर्ब' को 'दारुल इस्लाम' में बदलने के जिस लक्ष्य की बात की गयी है सारी इस्लाम कौम उसी में लगी है। यद्यपि 'पैन अरब जैसे आन्दोलन' हुए किन्तु यह आन्दोलन आपसी मतभेदों और राजनीति के कारण असफल हो गया या कह सकते हैं औपनिवेशिक ताकतों ने उसे सफल नहीं होने दिया। हालाँकि इस आन्दोलन से धार्मिक दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन आया। समाज में आम लोगों को 'ब्लैक आउट' करने वाली आयतों का तो प्रचार बखूबी किया जाता है किन्तु शासन-प्रशासन, न्यायाकर्ताओं को उनके दायित्वों को याद दिलाने वाली आयतों का प्रचार नहीं किया जाता और न ही इसमें दी गयी हिदायतों का व्यवहार में कोई प्रयोग होता है। उदहारण के लिए- 'चोर-चोरनी का हाथ काट देना चाहिए' (5.38), 'अल्लाह के विधान को अंजाम देते हुए उन लोगों के प्रति दया, तुम लोगों को प्रभावित न करे। अगर तुम लोग अल्लाह और उनके वक्तों में विश्वास करते हो, तो मोमिनों का झुण्ड, उन दोनों को सजा झेलते हुए देखे' (सूरा 28.2), 'अल्लाह ने जो नाजिल किया है, उसके मुताबिक काम न करने वाला काफिर होता है' (सूरा 5.44)। वस्तुतः इस प्रकार की आयतों को छिपाकर रखा जाता है जबकि अल्लाह ने इस बारे पहले ही कह रखा है, 'मैंने इंसानों के लिए किताब में जो स्पष्ट विधान और पथ निर्देश नाजिल किया है, वह इतने साफ-साफ तरीके से जाहिर करने के बावजूद, जो लोग इसे गुप्त रखते हैं, अल्लाह ऐसे लोगों को लानत भेजते हैं और लानतकारी भी उन लोगों को लानतें देता है (सूरा 2.151)। इसके साथ ही बहुत से मुस्लिम ऐसे भी हैं जो कुरान की कुछ आयतों को मानकर चलते हैं और अपने को कट्टरवादी होने से बचाने के लिए अन्य आयतों का पालन नहीं करते। लेकिन कुरान के अनुसार ऐसा करने वाले स्वयं सजा के पात्र हैं क्योंकि कुरान यह कहती है, 'तो क्या तुम लोग किताब के कुछ हिस्से पर विश्वास करते हो और कुछ अंशों को खारिज कर देते हो? जो लोग ऐसा करते हैं उनको एकमात्र फल यह मिलता है कि पार्थिव जीवन में हीनता और कयामत के रोज सख्त से सख्त सजा की ओर फेंक दिए जाओगे' (सूरा

2.85)। साथ ही कुरान के किसी भी हिस्से को तुच्छ कहना पूरी कुरान को तुच्छ कहने के बराबर है- 'ये वही लोग हैं, जो अपने आचरण और कामकाज के जरिये, यह जताना चाहते हैं कि हम कितने हिस्से पर विश्वास करते हैं और कितने हिस्से को खारिज करते हैं और ये लोग कोई बीच के रास्ते का सहारा लेना चाहते हैं. सच पूछा जाय तो काफिर वही लोग होते हैं।' (सूरा 4:150, 4:151) तसलीमा का कहना है कि समाज के लिए धार्मिक कट्टरवादियों से ज्यादा वे लोग घातक हैं जो धार्मिक संत्रास का सारा दायित्व कट्टरवादियों पर मढ़ देते हैं। आज का ज्यादातर समाज या तो पूरी तरह से धर्म में शामिल है या 'जिराफ़' (बीच का रास्ता अपनाने वाले) में। ऐसे लोगों के लिए कुरान में स्पष्ट रूप से 'काफिर' (सूरा 5.45) और 'फ़ासिक' (सूरा 5.47) संज्ञा का प्रयोग किया गया है। धर्म और धार्मिक मान्यताओं और तत्संबंधी भ्रामक और कई बार घातक स्थितियों से बचने के लिए तसलीमा धर्म जैसी व्यवस्था को पूर्णतः समाप्त कर देने की ही पक्षधर हैं। युगांडा मूल की लेखिका इरशाद मांझी का मत है कि यह जरूरी नहीं है कि इस्लाम की सभी नकारात्मक मान्यताओं को मिटा दिया जाय या संशोधित कर दिया जाय इसके स्थान पर यह आवश्यक है मुस्लिम समाज यह मान ले कि उसमें कुछ बातें हैं जो हानिकारक हैं या गलत संदेश देती हैं जैसा कि ईसाई और यहूदी द्वारा पहले ही बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट में लिखी उग्र या हिंसात्मक बातों को 'सिंस ऑफ़ स्क्रिप्चर' या 'पवित्र पुस्तक का पाप' कहकर स्वीकार किया गया है।²⁰⁰

क्या धर्म सम्बन्धी व्यवस्था को पूर्णतः समाप्त करना सम्भव है अथवा उसका कोई अन्य विकल्प हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर की तलाश छठवें अध्याय में करने का प्रयास किया गया है। तसलीमा की धर्म सम्बन्धी अभिव्यक्तियों के सम्बन्ध में कमर मेवाड़ी एक साक्षात्कार में कहती हैं "यह धर्म ही सिखाता है कि कन्या को वस्तु की तरह दान करो, जबकि मनुष्य को मनुष्य द्वारा दान करना अपहरण का दूसरा रूप है। तसलीमा नसरीन ने धर्म का मुकाबला किया है। दूसरी तसलीमा नसरीन पैदा नहीं हुई, जो धर्म को चुनौती दे सके।"²⁰¹ तसलीमा जानती हैं कि वे पहली नहीं हैं

जिन्होंने धर्म के विरुद्ध आवाज़ उठाई है किन्तु वे इस बात से वाकिफ हैं कि धर्म का मसला इतना भ्रामक है कि इन आवाज़ों को उठने में ही काफी देर हो जाती है -

'भगवान से इन्सान खेलता है या इन्सान से भगवान

इन्ही दो सवालों के पोखर में कोई डूबता है, कोई तैरता है।

अच्छा तैरने वाले भी कभी-कभी आधा जीवन बिता देते हैं पानी में।'²⁰²

तसलीमा इस चीज से वाकिफ हैं कि अकेले धर्म की काली छाया को दूर नहीं किया जा सकता फिर भी अकेले खड़ी हैं यह कहते हुए -

'तमाम धरती पर धर्म ने फैला रखी हैं

अपनी अट्टारह अँगुलियाँ

अकेले के प्रतिरोध से कितनी तोड़ी जा सकती है भला उसकी हड्डियाँ

कितना फाड़ा जा सकता है दूर तक फैला

विषमता का माहाजाल !'²⁰³

स्पष्ट है, धर्म में तमाम भ्रामक स्थापनाओं के कारण तसलीमा धर्म के समूल नाश किये जाने की पक्षधर हैं।

निष्कर्ष

धर्म की अवधारणा अत्यंत प्राचीन है। यह उस समय से ही मनुष्य के साथ पलती-बढ़ती रही है, जब से मनुष्य ने भय के कारण प्रकृति की उपासना करना शुरू किया। प्रकृति की उपासना के लिए बनाए गये नियम और मनुष्य को संयमित करने के लिए बनाये गये नियम ही धीरे-धीरे रूढ़ होकर धर्म में बदल गये। धर्म की उत्पत्ति के विविध सिद्धान्तों में से उद्विकासवादी - फ्रेजर, मैक्समूलर और टॉयलर ने तो यही स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त प्रकार्यवादियों दुर्खीम और मैलिनासकी ने इसे सामाजिक उत्तेजना का परिणाम माना। दूसरी तरफ सामाजिक संरचनावादियों डेनियल डबसन, टिमोथी फिज़राल्ड आदि ने ईसाइयत को ही धर्म माना और गैर-पश्चिमी देशों के सम्बन्ध में इसे अनुपयुक्त ढंग से लागू किये जाने की बात कही। धर्म की उत्पत्ति की मार्क्सवादी व्याख्या इसे आर्थिक संघर्ष से जोड़कर देखती है। किन्तु सभी मतों के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि धर्म की उत्पत्ति भय, नियंत्रण और सत्ता कायम रखने के उद्देश्य से ही हुई।

धर्म ने उत्पत्ति के बाद से भय और संयमित करने वाले नियम के रूप से आगे बढ़ते हुए 'राजधर्म' का रूप भी धरा। प्राचीन काल में राजसत्ता ने जनता को नियंत्रित करने के लिए धर्म का सहारा लिया। मध्ययुग तक पहुँचते-पहुँचते इसने मनुष्य को भाग्यवादी बना दिया और आधुनिक काल में भाग्यवाद के स्थान पर भौतिकतावाद की स्थापना हुई। किन्तु इसके साथ ही समानांतर रूप में धर्म की सभी मान्यताएँ एक साथ आज भी कायम हैं।

'रिलिजन' और 'धर्म' में अन्तर होते हुए भी कई बार उसे पर्यायवाची के रूप में ग्रहण किया जाता है। रिलिजन धर्म सम्बन्धी पाश्चात्य मत का द्योतक है, जिसके अनुसार इसे पूजा उपासना और व्यक्तिगत क्रियाकलापों से जोड़कर देखा जाता है वहीं धर्म प्राच्य मत का द्योतक है, जहाँ इसे मनुष्य को नैतिकता और कर्तव्य का पाठ पढ़ाने वाले पथप्रदर्शक के रूप में देखा गया है।

धर्म की विभिन्न परिभाषाओं में विद्यानिवास मिश्र की परिभाषा सर्वोत्तम प्रतीत होती है, जिसके अनुसार धर्म को अभ्युदय एवं परमार्थ सिद्धि का माध्यम माना गया है और सत्य, अहिंसा, ताप और आर्जव चार पैर माने गये हैं, जिनसे यह संचरण करता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार यह दस लक्षणों - धृति, क्षमा, अचौर्य, सत्य, शांति आदि से युक्त है। किन्तु धर्म का यह स्वरूप इतना सरल भी नहीं है। इसकी जटिलता तब स्पष्ट होती है, जब विश्व में प्रसारित विभिन्न धर्मों की ओर नजर जाती है। विभिन्न प्रकार के धर्म जैसे - इब्राहिमी धर्म - यहूदी, ईसाई और इस्लाम, गैर सिमेटिक धर्म- पारसी धर्म, गैर पैगम्बरी धर्म या भारतीय मूल के धर्म - बहाई धर्म, पूर्व-एशियाई धर्म, स्थानीय धर्म - शामानिज्म, ऑस्ट्रोनेशी धर्म, आस्ट्रेलियाई आदिवासी परम्पराएँ, पोस्टवार शिन्तो या कामी-नो-मिची बोन धर्म, नर्मियाज्म, कुर्द धर्म, 'डूज़', 'यजीदी', 'मेंडेंड्यंस' और 'एलमाइश' आदि एवं धर्म के सम्बन्ध में विभिन्न विचारधाराएँ जैसे - पेगेनिज्म (बुतपरस्ती), मोनोथीस्टिक (एकेश्वरवादी धर्म), पोलिथीज्म (बहुदेववादी धर्म), पैन्थीज्म (देव पूजा करने वाले), एथीस्ट (नास्तिक), थीस्ट (आस्तिक), एनोस्टिसिज्म(अज्ञेयवाद/अनीश्वरवाद) आदि धर्म की जटिलता को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त हैं।

वैसे तो धर्म का विभिन्न आधारों जैसे - भौगोलिकता, नृजातित्व, संरचना आदि के आधार पर वर्गीकरण किया गया है किन्तु सामान्यतः पैगम्बरीय और गैर-पैगम्बरीय धर्मों के आधार पर वर्गीकरण किया गया है, जिसके अनुसार प्रमुख धर्म हैं - ईसाई, यहूदी, इस्लाम, हिन्दू और बौद्ध धर्म। विभिन्न धर्म हैं और उनसे सम्बंधित मान्यताएँ तो हैं ही इसके साथ उनमें पनपने वाले विवाद, मतभेदों या कुरीतियों को सुलझाने के लिए धर्म सुधार आन्दोलन भी किये गये। इसके साथ ही सभी धर्मों में समभाव और सहअस्तित्व के लिए भी कई साझा प्रयास किये गये, जिसकी शुरुआत 1893 के 'शिकागो विश्वधर्म सम्मेलन' से हुई और वर्तमान में 'C-1 वर्ल्ड डा यलॉग' के रूप में जारी है। 'हफिंगटन पोस्ट' (स्वतंत्र अमेरिकी न्यूज वेबसाइट) का लेख 'द एवर गोइंग रेलिजस मूवमेंट दैट डज नॉट गेट इनफ अटेंशन' यह सिद्ध करता है कि धर्म सुधार के तमाम प्रयासों के बाद धार्मिक असहिष्णुता अभी-भी एक अहम मुद्दा बना हुआ है।

राहुल सांकृत्यायन ने 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' पुस्तक में धर्म को 'बेकार' सिद्ध किया और उसके लिए तमाम सैद्धांतिक मतवादों को प्रस्तुत करते हुए उसे खारिज किया। किन्तु तसलीमा नसरीन का मामला इससे इतर है। उनकी आत्मकथा पढ़ते हुए यह ज्ञात होता है कि उन्होंने धर्म की सैद्धांतिकी को पढ़ा अवश्य किन्तु उसकी आलोचना के लिए वे व्यावहारिक स्तर पर उतरती हैं। परिवार, समाज, राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उन्हें धर्म जिस प्रकार की भूमिका अदा करता दिखा उन्होंने उसे हूबहू अपनी आत्मकथा में लिख दिया। उनकी धर्म के सम्बन्ध में आलोचनात्मक दृष्टि सर्वप्रथम अपने आस-पास के माहौल से पैदा होती है। उसके बाद धार्मिक ग्रंथों और मान्यताओं की आलोचना का सिलसिला शुरू होता है।

तसलीमा धर्म की आलोचना इसलिए करती हैं क्योंकि वे पाती हैं कि धर्म मनुष्य द्वारा निर्मित एक अनावश्यक, अतार्किक, अवैज्ञानिक व्यवस्था है, जो स्त्रियों के साथ-साथ समाज को भी गर्त में ले जा रही है। इसलिए वे धर्म को पूरी तरह समाप्त कर देना चाहती हैं। धर्म रूपी रोग को सबके समक्ष एक-एक कर खोलती हैं, जो कभी उनके परिजनों के जीवन को प्रभावित करता दिखता है, कभी समाज में अल्पसंख्यकों की प्रताड़ना का माध्यम बनता है, तो कभी देश को एक साम्प्रदायिक राष्ट्र बन जाने पर विवश करता है।

तसलीमा ने सभी धर्मों की आलोचना की। किन्तु इस्लाम के प्रति वे अधिक कटु हैं। इसका कारण यह है कि एक तो उन्होंने इस्लामिक जीवन को बहुत नजदीक से देखा है और दूसरा वे इस्लाम को अन्य धर्मों की अपेक्षा अधिक कट्टर और असहिष्णु धर्म मानती हैं। इसलिए वे कुरान की आयतों की आलोचना करती हैं, जो उनके अनुसार अतार्किक हैं और अशांति के लिए उत्तरदायी हैं। इसके साथ वे हिन्दू धर्म ग्रंथों मनुस्मृति, ब्राह्मण ग्रंथों आदि की आलोचना करती हैं। इस आलोचना का मूल उद्देश्य यह दिखाना है कि यदि संसार से धर्म की समाप्ति हो जाय तो व्यक्ति अधिक सहिष्णु हो सकता है और विश्व को बेहतर बनाया जा सकता है।

तसलीमा के द्वारा इस्लाम एवं अन्य धर्मों की आलोचना में प्रस्तुत तर्क कई बार धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन के बाद सही जान पड़ते हैं। किन्तु इसके साथ ही कई ऐसे बिंदु हैं, जिससे तसलीमा की धर्म की आलोचना भी आलोचना की पात्र होती दिखने लगती है। उनके मत की आलोचना का आधार यह दिखता है कि उन्होंने विभिन्न धर्मों के भीतरी बंटवारे और मतवाद को एक तरह से नजरंदाज करते हुए धर्म को खारिज किया है। इतनी विभिन्नता होने के कारण एक ही आधार पर धर्म को खारिज करना उचित नहीं जान पड़ता। इसके अतिरिक्त उनके समस्त लेखन में इस्लाम धर्म की ही अधिक आलोचना है। ईसाई धर्म की आलोचना के बिंदु बहुत कम ही दिखते हैं। फिर भी यह अवश्य है कि उन्होंने धर्म की आलोचना जो तर्क प्रस्तुत किये वे अन्य आलोचकों से काफी-हद तक मिलते-जुलते हैं। विशिष्टता यह है कि उन्होंने एक तो इस्लाम धर्म को ही विशेषतः केंद्र में रखा है और उसकी आलोचना में तमाम प्रमाण प्रस्तुत किये और दूसरा यह कि उनकी आलोचना की शैली अन्य आलोचकों से अधिक उग्र है।

आवश्यक टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ सूची

- 1 अखिलेश मिश्र, धर्म का मर्म, वंदना शर्मा (सं), पृष्ठ-39.
- 2 मनुस्मृति 8-16.
- 3 राजबली पाण्डेय, हिन्दू धर्मकोश, पृष्ठ-339.
- 4 ऑक्सफ़ोर्ड हिंदी इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ-569.
- 5 उर्दू-हिंदी-कोश, सं. आचार्य रामचंद्र वर्मा, पृष्ठ- 149.
- 6 डॉ हरदेव बाहरी : संक्षिप्त हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ-255.
- 7 ज्ञान शब्दकोश- सं. मुकुंदीलाल, पृष्ठ-379.
- 8 वही, पृष्ठ-359.
- 9 <https://en.wikipedia.org/wiki/Religion>, (15 May 2017).
- 10 <https://en.wikipedia.org/wiki/Religion>, (15 May 2017).
- 11 <https://en.wikipedia.org/wiki/Religion>, (15 May 2017).
- 12 <https://en.wikipedia.org/wiki/Religion>, (15 May 2017).
- 13 <https://en.wikipedia.org/wiki/Religion>, (15 May 2017).
- 14 <https://en.wikipedia.org/wiki/Religion>, (15 May 2017).
- 15 <https://en.wikipedia.org/wiki/Religion>, (15 May 2017).
- 16 ऋग्वेद -10/90/16.
- 17 अथर्ववेद -9.9-17.
- 18 कठोपनिषद् 1/2/14.
- 19 मनुस्मृति 2/12.
- 20 वाल्मीकि रामायण 3/9/30.
- 21 वैशेषिक दर्शनम् 1.2.
- 22 महा.अनु.115.1.
- 23 अनु. 1-108.
- 24 स्वामी विवेकानंद साहित्य संचयन, पृष्ठ-107.
- 25 विद्यानिवास मिश्र, हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज, पृष्ठ-30.
- 26 याज्ञवल्क्य स्मृति.
- 27 मनुस्मृति, 6-12.
- 28 <https://hi.wikipedia.org/wiki/>(on 18 august 2017).
- 29 Tomoko Masuzava : The Invention of World Religions, The University of Chicago Press Ltd, London, 2005, pg-60.
- 30 वही, pg-59.
- 31 <https://www.britannica.com/topic/classification-of-religions>, (3 November 2017).
- 32 <https://www.britannica.com/topic/classification-of-religions>, (3 November 2017).
- 33 <https://www.britannica.com/topic/classification-of-religions>, (3 November 2017).
- 34 <https://www.britannica.com/topic/classification-of-religions>, (3 November 2017).
- 35 डॉ. रमेश : धर्म दर्शन सामान्य एवं तुलनात्मक, पृष्ठ-221.

- ³⁶ याकूब मसीह: तुलनात्मक धर्मदर्शन, पृष्ठ-122.
- ³⁷<http://bharatdiscovery.org/india>, (23 July 2017).
- ³⁸ https://en.wikipedia.org/wiki/Eastern_Christianity, (25 July 2016).
- ³⁹ https://www.bbc.com/hindi/india/2016/02/160210_islam_many_sects_pk, (18 August 2017).
- ⁴⁰ कुरान -सूरा-112, आयत-1-4, पृष्ठ-1005.
- ⁴¹ डॉ. रमेश्वर : धर्म दर्शन सामान्य एवं तुलनात्मक, पृष्ठ-223.
- ⁴² Y. Masih, A Comparative Study of Religion, P. 19.
- ⁴³ https://hi.wikipedia.org/wiki/पारसी_धर्म, (28 May 2017).
- ⁴⁴ <https://pushpakpkr.wordpress.com/2017/04/06/hindu-dharm-ka-itihis-history/>, (28 May 2017).
- ⁴⁵ <http://www.kalkajyotish.com/हिन्दू-धर्म>, (15 June 2017).
- ⁴⁶ https://hi.wikipedia.org/wiki/हिन्दू_धर्म, (16 May 2017).
- ⁴⁷ आदिग्रंथ, पृष्ठ-55.
- ⁴⁸ आदिग्रंथ, पृष्ठ-617 .
- ⁴⁹ जगजीत सिंह, सरल गुरु ग्रन्थ साहिब, पृष्ठ-8.
- ⁵⁰ स्वामी अङ्गदानन्द, अमृतवाणी-भाग-5, गूढ़ पदों के संदेश, श्री परमहंस स्वामी अङ्गदानन्द ट्रस्ट, मुंबई, पृष्ठ-86.
- ⁵¹ https://hi.wikipedia.org/wiki/बहाई_धर्म, (16 May 2017).
- ⁵² <https://en.wikipedia.org/wiki/Shamanism>, (18 July 2017).
- ⁵³ https://hi.wikipedia.org/wiki/संयुक्त_राज्य_अमेरिका_में_अमेरिकी_मूल_निवासी, (28 May 2017).
- ⁵⁴ <https://en.wikipedia.org/wiki/Shinto>, (28 September 2017).
- ⁵⁵ https://hi.wikipedia.org/wiki/बोन_धर्म, (28 September 2017).
- ⁵⁶ <https://hi.wikipedia.org/wiki>, (28 September 2017).
- ⁵⁷ http://bharatdiscovery.org/india/सामाजिक-धार्मिक_सुधार_आन्दोलन, (18 October 2017).
- ⁵⁸ डॉ मोहनलाल गुप्ता, भारत में समाज एवं धर्म सुधार आन्दोलन, सुभद्रा प्रकाशन, जोधपुर, 2017.
- ⁵⁹https://hi.wikipedia.org/wiki/यूरोपीय_धर्मसुधार, (18 October 2017).
- ⁶⁰ तरुण कुमार, निराला की विचारधारा और विवेकानंद, पृष्ठ-17.
- ⁶¹ वही, पृष्ठ-19.
- ⁶² वही, पृष्ठ-19.
- ⁶³ Religious pluralism can also be observed in other historical contexts, including Muslim Spain. Zarmanochegas (Zarmarus) was a monk of the Sramana tradition (possibly, but not necessarily a Buddhist) from India who journeyed to Antioch and Athens while Augustus (died 14 CE) was ruling the Roman Empire. https://en.wikipedia.org/wiki/Interfaith_dialogue, (28 September 2017).
- ⁶⁴ Disputation of Barcelona – religious disputation between Jews and Christians in 1263. The apostate Paulus [Pablo] Christiani proposed to King James I of Aragon that a formal public religious disputation on the fundamentals of faith should be held between him and R. Moses b. Nahman (Nachmanides) whom he had already encountered in Gerona. The disputation took place with the support of the ecclesiastical authorities and the generals of the Dominican and Franciscan orders, while the king presided over a number of sessions and took an active part in the disputation. https://en.wikipedia.org/wiki/Interfaith_dialogue, (28 September 2017).
- ⁶⁵ <http://www.bbc.com/hindi/india-41228101>, (10 November 2017).

⁶⁶ In 1900, the International Association for Religious Freedom (IARF) was founded under a name different from its current one. In 1987, its statement of purpose was revised to include advancing "understanding, dialogue and readiness to learn and promotes sympathy and harmony among the different religious traditions". In 1990, its membership was enlarged "to include all the world's major religious groups". In 1996, IARF's World Congress included representatives of Palestinian and Israeli IARF groups and Muslim participants made presentations. https://en.wikipedia.org/wiki/Interfaith_dialogue, (28 September 2017).

⁶⁷ In December 1914, just after World War I began, a group of Christians gathered in Cambridge, England to found the Fellowship of Reconciliation (FOR) "in hopes of bringing people of faith together to promote peace, and it went on to become a leading interfaith voice for non-violence and non-discrimination". It has branches and affiliated groups in over 50 countries on every continent. The membership includes "Jews, Christians, Buddhists, Muslims, Indigenous religious practitioners, Baha'i, and people of other faith traditions, as well as those with no formal religious affiliation" https://en.wikipedia.org/wiki/Interfaith_dialogue, (28 September 2017).

⁶⁸ In 1936, the World Congress of Faiths (WCF) formed in London.
https://en.wikipedia.org/wiki/Interfaith_dialogue, (28 September 2017).

⁶⁹ In 1952, the International Humanist and Ethical Union (IHEU) was founded in Amsterdam. It serves as "the sole world umbrella organisation embracing Humanist, atheist, rationalist, secularist, skeptic, laique, ethical cultural, freethought and similar organisations world-wide". IHEU's "vision is a Humanist world; a world in which human rights are respected and everyone is able to live a life of dignity". https://en.wikipedia.org/wiki/Interfaith_dialogue, (28 September 2017).

⁷⁰ In 1981, Minhaj-ul-Quran was founded. It is a Pakistan-based international organization working to promote peace, tolerance, interfaith harmony and education, tackle extremism and terrorism, engage with young Muslims for religious moderation, promote women's rights, development and empowerment, and provide social welfare and promotion of human rights.
(https://en.wikipedia.org/wiki/Interfaith_dialogue)

⁷¹ मुस्लिम और ईसाई प्रतिनिधियों को एक मंच पर लाने के लिए 2007 में इसे प्रारंभ किया गया.

⁷² मुस्लिम और बौद्ध धर्म के लोगों में समंजस्य और परस्पर सद्भाव उत्पन्न करने के लिए यह प्लेटफार्म तैयार किया गया.

⁷³ World Interfaith Harmony Week is an annual event to be observed during the first week of February starting in 2011. World Interfaith Harmony Week was proclaimed by the General Assembly in resolution A/RES/65/5 adopted on 20 October 2010. In the resolution, the General Assembly, points out that mutual understanding and interreligious dialogue constitute important dimensions of a culture of peace and establishes World Interfaith Harmony Week as a way to promote harmony between all people regardless of their faith. <http://www.un.org/en/events/interfaithharmonyweek/>, (28 September 2017).

⁷⁴ 'Despite the long history of interfaith dialogue, religious intolerance is still a concern that threatens to undermine the hard work of devoted activists over the decades. Religious literacy is dangerously low in the United States, even among the faithful. At a time when Islam is particularly prominent in public discourse, only 38% of Americans say they actually know someone who is Muslim.'

(The Ever-Growing Religious Movement That Doesn't Get Enough Attention', Editor, Antonia Blumberg Associate Religion; Post, The Huffington (7 November 2014).

⁷⁵ अखिलेश मिश्र, धर्म का मर्म, भूमिका.

- ⁷⁶ https://naidastak.wordpress.com/2013/07/07/criticism_of_religion, 18 October 2017.
- ⁷⁷ "But 'tis that same religion oftener far / Hath bred the foul impieties of men" (https://en.wikipedia.org/wiki/Criticism_of_religion#cite_ref-9, retrieved on 12/12/17)
- ⁷⁸ राजकिशोर, धर्म और धर्म सत्ता, वाणी प्रकाशन, संस्करण -2015, नई दिल्ली, पृष्ठ-135.
- ⁷⁹ वही, पृष्ठ-38.
- ⁸⁰ वही, पृष्ठ-106.
- ⁸¹ वही, पृष्ठ-112.
- ⁸² वही, पृष्ठ-115.
- ⁸³ https://naidastak.wordpress.com/2013/07/07/criticism_of_religion, 18 October 2017.
- ⁸⁴ https://naidastak.wordpress.com/2013/07/07/criticism_of_religion, 18 October 2017.
- ⁸⁵ https://naidastak.wordpress.com/2013/07/07/criticism_of_religion, 18 October 2017.
- ⁸⁶ <https://omprakashkashyap.wordpress.com/2010/06/19>. (21 October 2017).
- ⁸⁷ राजकिशोर, धर्म और धर्म सत्ता, पृष्ठ-23.
- ⁸⁸ वही, पृष्ठ-61.
- ⁸⁹ राहुल सांकृत्यायन, वैज्ञानिक भौतिकवाद, पृष्ठ-52.
- ⁹⁰ तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-267.
- ⁹¹ तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-153.
- ⁹² उताल हवा, पृष्ठ-56.
- ⁹³ 'बंगाली मुसलमान' उन मुसलमानों को कहा जाता है, जो बंगाल के मूल निवासी हैं और बंगाल विभाजन के बाद जिन्होंने पूर्वी बंगाल (बांग्लादेश) को चुना. ये इस्लाम का पालन करते हैं और बंगाली भाषा का प्रयोग करते हैं. बांग्लादेश में ये बहुसंख्यक हैं. ये भारत के सिक्किम और कोलकाता में भी ये निवास करते हैं. वहाँ इनकी गणना अल्पसंख्यकों में की जाती है.
- ⁹⁴ बांग्लादेश में होने वाली मुस्लिमों की एक बहुत ही प्रसिद्ध वार्षिक प्रार्थना सभा. जिसमें 150 देशों के व्यक्ति भाग लेते हैं. इसके लिए वहाँ की सरकार के द्वारा व्यापक व्यवस्था की जाती है. यह तबलीगी जमात की बांग्लादेशी शाखा के द्वारा हर वर्ष टोंगी में आयोजित किया जाता है. इसके लिए बांग्लादेश सरकार के द्वारा 160 एकड़ की भूमि आवंटित की गयी है.
- ⁹⁵ ये बांग्लादेश में निवास करने वाली सबसे प्राचीन लोग माने जाते हैं. बरुआ बौद्ध वर्तमान में बांग्लादेश के चटगाँव के अतिरिक्त म्यामार के खाइल, भारत के त्रिपुरा में रहते हैं. ये महायान मतानुयायी हैं.
- ⁹⁶ According to UN High Commissioner for Refugees (Bangladesh 2015 International Religious Freedom Report, United states Department of states, Bureau of Democracy, Human Rights and Labour)
- ⁹⁷ according to The International Organization for Migration ((Bangladesh 2015 International Religious Freedom Report, United states Department of states, Bureau of Democracy, Human Rights and Labour)
- ⁹⁸ https://en.wikipedia.org/wiki/Demographics_of_Bangladesh, (18 October 2017).
- ⁹⁹ <https://www.hindujagruti.org/hindi/news/79249.html>, (18 October 2017).
- ¹⁰⁰ Constitution of Peoples Republic of Bangladesh, article 2A-'The state religion of republic is Islam, but other religions may be practised in peace and harmony in the Republic.
- ¹⁰¹ 'Pledging that the high ideals of nationalism, socialism, democracy and secularism, which inspired our heroic people to dedicate themselves to, and our brave martyrs to sacrifice their lives in, the national liberation struggle, shall be the fundamental principles of the Constitution' (Preamble, Constitution of Bangladesh), constituteproject.org, (20 August 2016).

¹⁰² 2A. The state religion-'The state religion of the Republic is Islam, but the State shall ensure equal status and equal right in the practice of the Hindu, Buddhist, Christian and other religions.' (Constitution of Bangladesh - constituteproject.org.)

¹⁰³ 12. Secularism and freedom of religion-The principle of secularism shall be realised by the elimination of a. communalism in all its forms; b. the granting by the State of political status in favour of any religion; c. the abuse of religion for political purposes; d. any discrimination against, or persecution of, persons practicing a particular religion.

(Constitution of Bangladesh - constituteproject.org.)

¹⁰⁴ 28. Discrimination on grounds of religion, etc. 1. The State shall not discriminate against any citizen on ground only of religion, race, caste, sex or place of birth. 3. No citizen shall, on grounds only of religion, race, caste, sex or place of birth be subjected to any disability, liability, restriction or condition with regard to access to any place of public entertainment or resort, or admission to any educational institution. (Constitution of Bangladesh, pg-15, constituteproject.org.)

¹⁰⁵ 29. Equality of opportunity in public employment 1. There shall be equality of opportunity for all citizens in respect of employment or office in the service of the Republic. 2. No citizen shall, on grounds only of religion, race, caste, sex or place of birth, be ineligible for, or discriminated against in respect of, any employment or office in the service of the Republic.' (Constitution of Bangladesh, pg-15, constituteproject.org.)

¹⁰⁶ 41. Freedom of religion 1. Subject to law, public order and morality a. every citizen has the right to profess, practice or propagate any religion; b. every religious community or denomination has the right to establish, maintain and manage its religious institutions. 2. No person attending any educational institution shall be required to receive religious instruction, or to take part in or to attend any religious ceremony or worship, if that instruction, ceremony or worship relates to a religion other than his own. (Constitution of Bangladesh, pg-18, constituteproject.org.)

¹⁰⁷ "the Constitution of Bangladesh, which enshrines the principle of secularism while at the same time proclaiming Islam as the official State religion gives rise to ambiguities that have a direct impact on human rights in the country, including the protection of religious minorities."

(Bangladesh: a secular State with a State religion?)

<http://www.ohchr.org/EN/NewsEvents/Pages/DisplayNews.aspx?NewsID=16401&LangID=E>, (28 Septwmbler 2017).

¹⁰⁸ तसलीमा नसरीन, औरत के हक में, पृष्ठ-23.

¹⁰⁹ वही, पृष्ठ-23.

¹¹⁰ वही, पृष्ठ-23.

¹¹¹ वही, पृष्ठ-24.

¹¹² वही, पृष्ठ-24.

¹¹³ वही, पृष्ठ-25.

¹¹⁴ वही, पृष्ठ-44.

¹¹⁵ वही, पृष्ठ-71.

¹¹⁶ वही, पृष्ठ-71.

¹¹⁷ वही, पृष्ठ-57.

¹¹⁸ वही, पृष्ठ-67.

- 119 वही, पृष्ठ-27.
- 120 वही, पृष्ठ-23.
- 121 वही, पृष्ठ-149.
- 122 वही, पृष्ठ-165.
- 123 तसलीमा नसरीन, नष्ट लड़की, नष्ट गद्य, पृष्ठ-131.
- 124 वही, पृष्ठ-150.
- 125 तसलीमा नसरीन, निषिद्ध, पृष्ठ-111.
- 126 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-160.
- 127 Adamec, Ludwig (2009). Historical Dictionary of Islam, 2nd Edition. Lanham: Scarecrow Press, Inc. p. 102. ISBN 9780810861619. and Gibb, H. A. R. (editor) (1960). The Encyclopaedia of Islam. Leiden, The Netherlands: E. J. Brill. p. 257.
- 128 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-176.
- 129 वही, पृष्ठ-126.
- 130 https://omprakashkashyap.wordpress.com/2015/04/16/धर्म_और_नैतिकता/, (18 October 2017).
- 131 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-187.
- 132 राजकिशोर, धर्म और धर्मसत्ता, पृष्ठ-131.
- 133 कुरान शरीफ, सूरा-सूरतुल-बक्ररति, आयात 25, पृष्ठ-31.
- 134 कुरान शरीफ, सूरतुर्रहमानी आयत-41, पृष्ठ-879.
- 135 कुरान शरीफ, सूरतुन्निसा, आयत 56, पृष्ठ-159.
- 136 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-120.
- 137 वही, पृष्ठ-120.
- 138 कुरान शरीफ, पृष्ठ-971.
- 139 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-286.
- 140 वही, पृष्ठ-116.
- 141 वही, पृष्ठ-118.
- 142 वही, पृष्ठ-146.
- 143 Amina Wadud, Inside the Gender Jihad, pg.82.
- 144 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-267.
- 145 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-72 .
- 146 कुरान शरीफ, आयत सूरतुलफ़ातिहाति, पृष्ठ-25.
- 147 <http://aryamantavya.in/quran-ishwariya-vaani/>, (18 October 2017).
- 148 कुरान शरीफ, पृष्ठ-245.
- 149 वही, पृष्ठ-31.
- 150 वही, पृष्ठ-571.
- 151 राजकिशोर, धर्म और धर्म सत्ता, पृष्ठ-23.
- 152 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-178.
- 153 वही, पृष्ठ-179.
- 154 वही, पृष्ठ-124.
- 155 राजकिशोर, धर्म और धर्म सत्ता, पृष्ठ-109.

- 156 'पृथ्वी के इतिहास का पहला युग, जिसकी शुरुआत लगभग 4.54 बिलियन वर्ष पूर्व (4.54 Ga) सौर-नीहारिका से हुई अभिवृद्धि के द्वारा पृथ्वी के निर्माण के साथ हुई, को हेडियन (Hadean) कहा जाता है.' https://hi.wikipedia.org/wiki/पृथ्वी_का_इतिहास, (18 October 2017).
- 157 'आर्कियन (Archaean) युग की शुरुआत 3.8 बिलियन वर्ष पूर्व हुई. ऐसा माना जाता है कि आर्कियन युग के प्रारंभिक काल में ही प्राथमिक जीवन की शुरुआत हो गई थी और कुछ संभावित जीवाष्म की आयु लगभग 3.5 बिलियन वर्ष पूर्व आंकी गई है.' https://hi.wikipedia.org/wiki/पृथ्वी_का_इतिहास, (18 October 2017).
- 158 हनुमान पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी (सं), संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत, पृष्ठ-127.
- 159 कुरान शरीफ, शेरवानी संस्करण, अनु.-नंदकुमार अवस्थी, किताबघर प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1978, तीसवाँ पार:- अम्म यतसाअलून, सूरा 78 -सूरतन्नबइ, आयत-6 व 7, पृष्ठ-969.
- 160 वही, तीसवाँ पार:- अम्म यतसाअलून, सूरा 21-सूरत-उल-आम्बिया, आयत-30, पृष्ठ-543.
- 161 'यह सिद्धांत रूसी वैज्ञानिक अलेक्जेंडर इवानोविच ओपेरिन ने 1924 में प्रस्तुत किया था.' https://samadhanrps.wordpress.com/2016/05/14/मनुष्य_की_उत्पत्ति_कहाँ_क्यों_कैसे, (18 October 2017).
- 162 तुलसीदास, रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड 11/02.
- 163 भगवद्गीता, 18:13.
- 164 भगवद्गीता, 2:20.
- 165 <https://www.thoughtco.com/current-world-population-1435270>, 18 October 2017.
- 166 रामचरित मानस, बालकाण्ड, 20/7.
- 167 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-149.
- 168 वही, पृष्ठ-152.
- 169 वही, पृष्ठ-94.
- 170 वही, पृष्ठ-190.
- 171 वही, पृष्ठ-146.
- 172 वही, पृष्ठ-156.
- 173 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-392.
- 174 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-304.
- 175 तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-84.
- 176 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-420.
- 177 तसलीमा नसरीन, औरत का कोई देश नहीं, पृष्ठ-168.
- 178 कुरान शरीफ, पृष्ठ-147.
- 179 वही, पृष्ठ-171.
- 180 वही, पृष्ठ-205.
- 181 वही, पृष्ठ-207.
- 182 वही, पृष्ठ-396.
- 183 वही, पृष्ठ-323.
- 184 वही, पृष्ठ-324.
- 185 वही, पृष्ठ-327.
- 186 वही, पृष्ठ-346.
- 187 वही, पृष्ठ-551.
- 188 वही, पृष्ठ-661.

- 189 वही, पृष्ठ-705.
- 190 शंकर सरन, जिहादी आतंकवाद, पृष्ठ-117.
- 191 तसलीमा नसरीन, नहीं, कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-226.
- 192 राजकिशोर, धर्म और धर्म सत्ता, पृष्ठ-110.
- 193 वही, पृष्ठ-110.
- 194 वही, पृष्ठ-112.
- 195 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो, पृष्ठ-181.
- 196 तसलीमा नसरीन, नहीं, कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-89.
- 197 तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-30.
- 198 Amina Wadood, Inside The Gender Zihad, पृष्ठ-82.
- 199 https://en.wikipedia.org/wiki/Devil's_advocate, (18 October 2017).
- 200 जिहादी आतंकवाद, शंकर सरन, पृष्ठ-129.
- 201 रमणिका गुप्ता, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-126.
- 202 तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-152.
- 203 वही, पृष्ठ-31.

चतुर्थ अध्याय

तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में पितृसत्ता

चतुर्थ अध्याय

तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में पितृसत्ता

भूमिका

4.1 पितृसत्ता : एक परिचय

- (क) स्त्री और पुरुष की उत्पत्ति सम्बन्धी मत
 - (अ) परम्परावादी मत
 - (आ) वैज्ञानिक मत
- (ख) लिंगभेद क्यों और कैसे प्रारम्भ हुआ
- (ग) मातृकुल से पितृकुल तक का सफर
 - (अ) मातृपोषक समाज का इतिहास और वर्तमान
 - (आ) मातृसत्ता में स्त्रियों का स्थान और उनके अधिकार
 - (इ) मातृसत्ता में पुरुषों का स्थान एवं अधिकार
 - (ई) पितृसत्ता का जन्म एवं अवधारणा के रूप में विकास
- (घ) पितृसत्ता का परिणाम
- (च) पितृसत्ता के समानांतर एवं पितृसत्ता के विरोध
 - (अ) पितृसत्ता के समानांतर : सामाजिक सुधार आन्दोलन
 - (आ) पितृसत्ता के विरोध में : स्त्री-मुक्ति आन्दोलन एवं नारीवाद

4.2 तसलीमा की आत्मकथा में पितृसत्ता

- (क) बांग्लादेश में पितृसत्ता का स्वरूप और स्त्रियों की स्थिति
- (ख) तसलीमा की आत्मकथा में पितृसत्ता से शोषित स्त्रियों का जीवन
 - (अ) स्त्री के रूप में तसलीमा का जीवन और उसमें पुरुष की भूमिका

- (आ) माँ के जीवन में पितृसत्ता
- (इ) नानी के जीवन में पितृसत्ता
- (ई) अन्य स्त्रियों का जीवन
- (उ) विदेश में स्त्रियों का जीवन
- (ग) आत्मकथेतर रचनाओं में स्त्रियों का जीवन
- (घ) स्त्रियों के विसंगतिपूर्ण जीवन का कारण
- (अ) पितृसत्ता
- (आ) धर्म और पितृसत्ता का गठजोड़
- (च) तसलीमा का स्त्री-विमर्श

निष्कर्ष

भूमिका

जिस समाज में स्त्री को धर्म के नाम पर देवी के समान पूजा जा रहा हो और दूसरी तरफ उसी स्त्री को पितृसत्ता के नाम पर घर की चाहरदीवारी में बंद कर पुरुष अपनी हवश का शिकार बना रहा हो, उस समाज में तसलीमा जैसी लेखिका, अपने लेखकीय और मानवीय दायित्व के तले अपनी कलम को स्वयं के मन में उठ रही भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए और उन शोषित होती स्त्रियों की आवाज़ के रूप में अवश्य ही माध्यम बनाएंगीं। तसलीमा ने भी यही किया है। तसलीमा ने आत्मकथा के माध्यम से समाज में शोषित और प्रताड़ित हो रही स्त्रियों के दर्द को तो अभिव्यक्त किया ही किन्तु उससे कहीं ज्यादा समाज से चुनौती लेने के लिए स्त्रियों को प्रोत्साहित करने का काम किया है।

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य यह देखना है कि तसलीमा ने आत्मकथा में किस प्रकार स्त्रियों की पीड़ा को उकेरा है। स्त्री-जीवन की विसंगतियों के कौन से कारकों को उत्तरदायी पाया है और उन कारकों से निपटने के लिए किस प्रकार स्त्री जाति का आह्वान किया है? पितृसत्ता और धर्म ऐसे दो तत्व हैं, जो तसलीमा की हर रचना में किसी न किसी रूप में दिखाई देते हैं। इन दो कारकों की स्त्री-जीवन में भूमिका का किस दृष्टि से तसलीमा ने मूल्यांकन किया है, यह देखना भी इस अध्याय का उद्देश्य है। चूँकि तसलीमा के लेखन के केंद्र में 'स्त्री' है, इसलिए स्त्री-सम्बन्धी उनका चिंतन 'स्त्री-विमर्श' को किस आयाम तक पहुँचाता है या क्या दिशा तय करता है, यह भी इस अध्याय के अंतर्गत स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में पितृसत्ता के स्वरूप और तत्सम्बन्धी उनके दृष्टिकोण को समझने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि 'पितृसत्ता' को लेकर साहित्य में किस प्रकार की बहस रही है; उससे सम्बन्धित कौन-कौन से मत स्थापित किये गये हैं; पितृसत्ता को लेकर की गयी इन बहसों का क्या निष्कर्ष निकला और स्त्री-जीवन में इस बहस का क्या मूल्य रहा इत्यादि।

4.1 पितृसत्ता : एक परिचय

'पितृसत्ता' स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों का यथार्थ है। पितृसत्ता ने कब से जन्म लिया और पितृसत्ता क्या है ? यह जानने से पहले यह देखना आवश्यक है कि इसके केंद्र में अवस्थित दो ध्रुवों - स्त्री और पुरुष, की उत्पत्ति कैसे हुई एवं उनके क्रमिक विकास और इस विकास के क्रम में पितृसत्ता का जन्म कब, क्यों और कैसे हुआ ?

(क) स्त्री और पुरुष की उत्पत्ति सम्बन्धी मत

मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो प्रकार के मत हैं- परम्परावादी और वैज्ञानिक। परम्परावादी या धार्मिक मत मनुष्य को किसी दैवीय शक्ति की रचना मानता है जबकि वैज्ञानिक मत के अनुसार मनुष्य कोशिकाओं से बना है और उसका क्रमिक विकास वानर से मनुष्य के रूप में हुआ। इस सम्बन्ध में मन्मथनाथ गुप्त का मत है, "ईश्वर ने मनुष्य को किसी पदार्थ से उत्पन्न किया, यह भाववाद और भौतिकवाद में एक समझौता-सा है। मालूम होता है बहुत सी जातियाँ सृष्टि तत्व के इसी सोपान में रह गयीं। स्पेंसर और गिलेन ने अरुंटा जाति (आस्ट्रेलिया) के सम्बन्ध में जो खोजें की हैं, उनसे पता चलता है कि वे भी इस सोपान में थे। उनमें यह माना जाता था कि मनुष्य किसी न किसी प्रकार किसी जानवर या पौधे का अवतार है।"। हिन्दू धर्म में एक तरफ चौरासी लाख योनियों में मनुष्य की श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयास किया गया तो विज्ञान ने प्राणी मात्र के क्रमिक विकास के दौरान यह पाया कि मनुष्य पृथ्वी पर पायी जाने वाली अन्य प्रजातियों से श्रेष्ठ है। मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के मत हैं -

(अ) परम्परावादी मत

(i) आदिम जनजातियों के अनुसार : टोटेमवाद के अनुसार मनुष्य की

उत्पत्ति : विश्व के विभिन्न भागों में पायी जाने वाली जनजातियों में पशु या पक्षी की या किसी प्राकृतिक तत्व की पूजा की परम्परा को 'टोटेमवाद' कहते हैं। मन्मथनाथ ने फ्रेज़र की पुस्तक

'क्रिएशन एण्ड इवोल्यूशन इन प्रिमिटिव कोस्मोगनिज़' के हवाले से विभिन्न जनजातियों में व्याप्त टोटम के स्वरूप को प्रदर्शित किया है। वे विभिन्न प्रकार के कबीलों और जनजातियों जैसे - ब्राजील के 'वारोरोरोस', बेचुआना के 'साही', इराकावा के 'कछुआ' कबीला, 'चोक्टवा' कबीला, ओसड़ो एवं कैलिफोर्निया के आदिम निवासी का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इन सभी कबीलों में से कोई लाल पंख वाले तोते तो कोई कछुआ, तो कोई मछली, कोई घोंघा या फिर भेड़िया या भैस आदि में अपना प्राण निहित मानता है या उनसे ही अपनी उत्पत्ति मानता है। उनकी पूजा की जाती है या उन्हें विशेष श्रद्धा दी जाती है और उनकी मृत्यु होने पर विशेष शोक मनाया जाता है।

देवताओं से उत्पत्ति : मेलबर्न के आसपास की आदिम जनजातियों में यह मत है कि उनके ईश्वर 'पुंडजेल' ने मनुष्य के शरीर को बनाया है। जबकि न्यूजीलैंड के 'माओरी' यह मानते हैं कि उनके देवता 'टीकी' ने अपने चेहरे का अनुकरण कर बनाया है अर्थात् वे स्वयं को ईश्वर की अनुकृति मानते हैं। मेलेनेसिया में भी देवता के द्वारा ही मनुष्य की रचना किये जाने की बात है उनके अनुसार 'क्वाट' नामक देवता ने लाल कीचड़ से मनुष्य की सृष्टि की। केइ द्वीप समूह के नुई रोआ निवासी यह मानते हैं कि 'डुआडलेरा' नामक देवता ने मिट्टी के पुतलों में साँस फूँक दी और इस प्रकार मनुष्य की सृष्टि हुई। सिलिवीस द्वीप के आदिम निवासी यह मानते हैं कि वाईलानवांको और वागी एक द्वीप पर दो ही लोग थे। दोनों ने मिलकर मिट्टी से आदम और इवा की रचना की। और अदरक से दोनों में साँस फूँक दी। इसी प्रकार योगोलैंड की 'यू' भाषी जाति हो या अलास्का के 'इन्वीट' या 'एस्किमो', लुइसाना के 'नाट्चे', मैक्सिको के 'मिकुआकन' सभी में यह आम धारणा है कि ईश्वर ने किसी न किसी द्रव्य से मनुष्य की सृष्टि की है। विशेषकर कीचड़ से मनुष्य की रचना किये जाने का मत सामान्य रूप से स्वीकृत है।¹²

स्त्री की उत्पत्ति सम्बन्धी मत : आदिम जनजातियों में सामान्यतः स्त्री या पुरुष की अलग-अलग उत्पत्ति का मत प्रचलित नहीं है। सामान्यतः यह स्वीकार किया गया कि दोनों की उत्पत्ति एक

ही तत्व से हुई है। स्पष्ट है कि "आदिम निवासियों में स्त्री की सामाजिक हैसियत बहुत हद तक पुरुषों के बराबर रही, उत्पादन के कार्य में वे भी हिस्सा लिती हैं - अवश्य युद्ध तथा शिकार के कारण और पशुपालन तथा कृषि कर्म की कम उन्नति के कारण उनकी हैसियत पुरुष से कम है, पर इतनी भी कम नहीं कि वे आत्माहीन या पशु मात्र करार दी जाएँ।"³

कोल जाति : इस जाति की मान्यताएँ ऋग्वेद के समान हैं। उनके अनुसार पहले केवल जल था। वे जल के साथ 'सिंगबोंगा' या सूर्य के अस्तित्व को भी स्वीकार करते हैं। सिंगबोंगा की इच्छा से पहले केकड़ा, जोंक और कछुआ का जन्म हुआ। उन्हें सिंगबोंगा ने सागर के नीचे से मिट्टी लाने को कहा जो केवल जोंक ही ला पाया। इसी मिट्टी से सिंगबोंगा ने पृथ्वी की सृष्टि की। इस पृथ्वी पर पहले घास-फूस हुए उसके बाद पशु अंत में पक्षी पैदा हुए। इनमें से एक पक्षी ने दो अंडे दिए, जिनमें से एक लड़का था और एक लड़की। इन दोनों को सम्बन्ध बनाने का अवसर दिया गया किन्तु जब उनमें संबंध न हुआ तो सिंगबोंगा ने 'इल्ली' नामक शराब पीना सिखा दिया, जिसे पीकर उन दोनों ने सम्बन्ध बनाये और उनकी आठ संताने हुईं।

अपने अध्ययन के दौरान फ्रेज़र को 'टाहिटी' जनजाति में यह मत मिला कि टरना नामक देवता ने लाल मिट्टी से पुरुष की उत्पत्ति की और उसके बाद उसे सुलाकर उसकी पसली (इवी) से स्त्री की रचना की। एक भिन्न मत क्लीन चार्ल्स द्वीप समूह की 'हेडा' जाति का प्राप्त होता है, जिसमें यह मान्यता है कि काले कौवे और काकल से मनुष्य की सृष्टि हुई। किन्तु इस रूप में पहली सृष्टि जो हुई वह एक बच्ची थी। अर्थात् हेडा समूह ऐसा इकलौता समूह है जो यह मानता है कि मनुष्य के रूप में पहले जन्म एक स्त्री का हुआ।

(ii) धर्मग्रंथों के अनुसार : टाहिटी जनजाति में व्याप्त मान्यता के कारण डबल्यू इलिस और सर जेम्स फ्रेज़र यह मानते हैं कि बाइबिल से यह कथा कि ईश्वर ने स्त्री को पुरुष की रीढ़ से बनाया है, किसी न किसी प्रकार बाहर गई।⁴

यहूदी मान्यता के अनुसार ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि मिट्टी से की। यहूदी भाषा में 'अदमा:' शब्द का अर्थ है 'ज़मीन'। इसलिए सबसे पहले बने प्राणी को 'आदम' नाम दिया गया और इस आदम की पसली से 'ईव' की उत्पत्ति हुई। इस अवधारणा का मंतव्य यह दिखाना है कि मूलभूत रूप से स्त्री पुरुष से पीछे है या उस पर निर्भर है। यहूदियों या बाइबिल में मिलने वाली यह अवधारणा प्राचीनतम संस्कृति के प्रतीक बेबीलोनियन⁵ और मिस्र⁶ की सभ्यताओं में भी मिलती है। उपरोक्त वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदिम जातियों में मनुष्य की उत्पत्ति सम्बन्धी जो धारणा विद्यमान थी वही आगे आने वाले तथाकथित सभ्य समाज में हूबहू स्वीकार कर ली गयी।

इस्लाम धर्म में अल्लाह की सृष्टि मनुष्य को 'अशरफ-उल-मखलूखात' कहा गया, जिसका अर्थ है कि 'मनुष्य अल्लाह द्वारा बनाई गयी सभी रचनाओं में श्रेष्ठ है'। यहाँ भी यहूदी धर्म के समान ही स्त्री (हव्वा) को पुरुष (आदम) की पसली से उत्पन्न माना गया है जिसे ईश्वर ने मिट्टी या कीचड़ से बनाया है।

ऋग्वेद में मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई ऋचाएँ हैं। मनुष्य की उत्पत्ति भौतिकवादी तरीके से किसी उपादान से स्वीकार की गयी। एक ऋचा के अनुसार पहले पानी उत्पन्न हुआ और उसी से सृष्टि हुई। इसमें 'अदिति' नामक आदि माता का जिक्र है, जिससे ही समस्त सृष्टि उत्पन्न मानी गयी है। इस अदिति को लेकर दो तरह के मत हैं। आध्यात्मवादियों के अनुसार अदिति ब्रह्मा की शक्ति थी जबकि अन्य मत के अनुसार अदिति कोई स्त्री थी, जिससे पाँच कबीलों की उत्पत्ति हुई, "समाज में पहले किसी को अपने पिता का ज्ञान न होता था, बहुत युगों तक पितृकुल या फादर राईट का उद्भव नहीं हुआ था। सब लोग अपना परिचय माता से ही देते थे। ऐसा ज्ञात होता है कि आर्यों के पाँच कबीलों की आदि माता अदिति सर्वोपरि देवी हो गयी, और देवताओं में श्रेष्ठ आदित्य उनकी संतान समझे गये।"⁷ ऋग्वेद में अदिति को आदित्यों की माता के अतिरिक्त उसकी बहिन भी बताया

गया है और इसी मन्त्र में 'दुहितावसु' अर्थात् वासु की बेटी भी बताया गया है।⁸ अन्यत्र अदिति को दक्ष की माता और कन्या भी कहा गया है।⁹ यह अदिति ही आर्यों में मातृ शासनतंत्र की प्रतीक है।

किन्तु आगे चलकर अदिति का अवमूल्यन हुआ। जब समाज में सृष्टि एक स्त्री से उत्पन्न हुई की अवधारणा को लेकर शर्म महसूस की जाने लगी तो बड़ी चालाकी से ऋग्वेद की कथा को ही पलट दिया गया। महाभारत में यही अदिति कश्यप की पत्नी बन गयी जो कि ऋग्वेद में उसके पुत्र के रूप में उल्लिखित है। महाभारत में सृष्टिकर्ता के रूप में ब्रह्मा के मानस पुत्र को सृष्टि का सर्जक घोषित कर दिया गया और इन मानस पुत्रों में से मरीचि के पुत्र कश्यप की पत्नी बना दी गयी अदिति। जिसकी अन्य ग्यारह बहने दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोध, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिता, मुनि और कद्रू थीं। और यह माना गया कि इनसे ही सभी पशुओं जैसे - गरुण, सर्प, गौ आदि का जन्म हुआ। इस सम्बन्ध में मन्मथनाथ लिखते हैं, "यह केवल अदिति का भाग्यविपर्यय नहीं है, बल्कि स्त्री जाति के भाग्य का विपर्यय है।"¹⁰

महाभारत में भी 'इला' को पुरुरवा की माता और पिता दोनों कहा गया है।¹¹ इसी प्रकार एक कथा यह भी प्रचलित है कि ब्रह्मा आधे हिस्से में स्त्री हो गये अर्थात् पुरुष का आधा हिस्सा स्त्री में परिवर्तित हो गया। मनुसंहिता में यह लिखा है कि हिरण्यगर्भ ने अपने शरीर के दो भाग किये और आधे में पुरुष और आधे में स्त्री बन गये। यहाँ ये सभी मान्यताएँ पुरुष से ही स्त्री की उत्पत्ति स्वीकार करती हैं। देवी भागवत पुराण में सृष्टि की उत्पत्ति के लिए देवी को उत्तरदायी माना गया, जिसने पहले ब्रह्मा, विष्णु और महेश की रचना की और बाद में उनके ही आदेश पर उन्होंने सृष्टि और मनुष्य की रचना की। उस देवी की उपासना किये जाने पर बल दिया गया, जिसने सृष्टि की रचना के लिए तीनों देवताओं को उत्पन्न किया।¹² ऐतरेयब्राह्मण के अनुसार ईश्वर ने (स), अम्भ (स्वर्ग), मरीचि (भूतलोक), मर (पृथ्वी), और आप (पृथ्वी के नीचे) नामक लोकों की स्थापना की। उसने जल से ही पुरुष की रचना की।

स्पष्ट है, लगभग सभी धर्मग्रंथों और आदिम व्याख्याओं में पुरुष से ही स्त्री की उत्पत्ति सम्बन्धी मत स्वीकार किया गया है। और जहाँ नहीं भी किया गया उसे बाद में आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर दिया गया।

(आ) वैज्ञानिक मत :

मैथुन के बिना भी प्रजनन सम्भव : सामान्यतः यह माना जाता है कि जीव का क्रम लिंग वर्गीकरण के कारण ही चल रहा है अर्थात् नर-मादा यदि नहीं होते तो सृष्टि का विकास संभव नहीं था। इनके आपसी सम्बन्ध (मैथुन) से ही सृष्टि का क्रम आगे बढ़ा है। किन्तु विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि आदिम युग में सृष्टि के विकास के समय बहुत सी ऐसी प्रजातियाँ थीं, जिनमें लिंग-भेद जैसी कोई चीज नहीं थी और न ही उनमें कोई मैथुन की प्रक्रिया हुई। इस बात का कुछ संकेत धार्मिक ग्रंथों में भी मिलता है। जैसे - महाभारत के शांतिपर्व में विष्णु से विश्व की उत्पत्ति मानते हुए कहा गया, "(सत्य) युग में संतान उत्पन्न करने के लिए भी उन्हें मैथुन धर्म में प्रवृत्त होने की आवश्यकता नहीं थी। वे संकल्प मात्र से प्रजा की उत्पत्ति कर सकते थे। इसके बाद त्रेता युग में भी मैथुन धर्म का प्रश्न नहीं उठा। उस समय स्पर्श मात्र से ही प्रजा उत्पन्न हो जाती थी। द्वापर में मैथुन द्वारा प्रजा उत्पन्न होने लगी, और कलियुग में सब लोग दांपत्य में रहने लगेंगे।"¹³ विष्णु पुराण में भी कहा गया है कि दक्ष के समय से ही प्रजा मैथुन के द्वारा उत्पन्न हुई। उससे पहले तो अत्यंत तपस्वी प्राचीन सिद्ध पुरुषों के तपोबल से, उनके संकल्प, दर्शन अथवा स्पर्श मात्र से ही प्रजा उत्पन्न होती थी।¹⁴ स्पष्ट है, ग्रंथों में भी मैथुन के बिना जीव उत्पत्ति को संभव बताया गया है। जीव विज्ञान में दो प्रक्रियाओं से मैथुन के बिना जीव उत्पत्ति संभव है - 'द्विधाकरण' (बाइनरी फिशन)- इसमें जीव मरता नहीं बल्कि दो भागों में बंट जाता है। इसके उदाहरण हैं- बैक्टीरिया, एनीमोन, पोलिय, प्लेनेरियन आदि। दूसरी प्रक्रिया है, 'बहुधाकरण'- इसके अनुसार जीव मरता नहीं बल्कि कई भागों में विभक्त हो जाता है और इसका हर भाग एक नया प्राणी बन जाता है। स्पन्जों की उत्पत्ति इसी प्रकार होती है। कई ऐसे जीव हैं, जिनमें लिंगभेद होते हुए भी मादाएँ नर के बिना ही प्रजनन करती हैं। इसे 'पार्थजिनेसिस या कुमारी उत्पादन'

कहते हैं। इसके उदाहरण हैं- नीली मक्खी, ग्रीनफ्लाई, जलकीट, वाटरफ्लाई, रोटीफर आदि। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक विभाजन के द्वारा दो जीवों या अनेक जीवों में बंट जाने को यदि कृत्रिम रूप से किया गया तब भी जीव अपने हर टुकड़े से नये जीव बनने में सफल रहे - प्लारियन, कोइलंटरेट, प्रोटोजोआ और पौधों में कलम की प्रक्रिया आदि इसके उदाहरण हैं। यह केवल अतिसूक्ष्म जीवों में ही नहीं है, बल्कि 'न्यूट' नामक गिरगिट भी ऐसा करने में सक्षम है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी तकनीक (जेम्स लोयेब और आर. ह्वेटीग, वताइयो, डॉ वैविक आदि के द्वारा) भी विकसित की गयी, जिससे नर जीव भी प्रजनन करने में सक्षम हुए। इस प्रक्रिया को नाम दिया गया 'एंड्रोजेनिसिस' या 'कुमारी उत्पादन प्रक्रिया'। इसके लिए अंडे, मेढक आदि पर सर्वप्रथम प्रयोग किये गये जो सफल रहे। इसी प्रकार वर्तमान में पुरुष और स्त्री के मैथुन के बिना भी प्रजनन संभव हो सका है और इस तकनीक का नाम है - 'टेस्ट ट्यूब बेबी'।

इन उदाहरणों से ईश्वर द्वारा सृष्टि के विकास के लिए लिंग-भेद का जो तर्क रखा जाता है वह पूर्णतः खारिज हो जाता है और फ्रायड की इस अवधारणा का भी पटापेक्ष होते देर नहीं लगती कि जीवों का प्रत्येक कार्य यौन इच्छामूलक होता है।

(ख) लिंग भेद क्यों और कैसे प्रारम्भ हुआ:

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रजनन के लिए यह आवश्यक नहीं कि दो लिंगों के बीच मैथुन हो ही। फिर यह प्रश्न उठता है कि यदि ऐसा सम्भव है तो लिंग भेद कैसे प्रारंभ हुआ और मैथुन की प्रक्रिया कैसे शुरू हुई? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का यह मत है कि जिन प्राणियों में द्विधाकरण और बहुधाकरण की प्रक्रिया का विकास हुआ, उनकी वंश वृद्धि की क्षमता असीम नहीं थी जैसे कि अमीबा की। इसके लिए दो विपरीत लिंगों का मेल आवश्यक हुआ। मैथुन को डॉ वाकर ने परिभाषित करते हुए कहा, "मैथुनिक प्रजनन का मतलब दो विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के सारभाग (nuclus) का एकीकरण है।"¹⁵ किन्तु अमीबा में यह मैथुन नहीं होता बल्कि उनका स्पर्श मात्र होता

है। इसी प्रकार बहुत से ऐसे जीव भी हैं, जिनमें लिंग-भेद स्पष्ट है और फिर भी दोनों के मैथुन के बिना, दोनों के स्पर्श के बिना भी प्रजनन संभव हो जाता है जैसे- छोटे गिरगिटों और कटल मछली में यह प्रक्रिया बिना किसी संसर्ग के होती है। इसी प्रकार महाभारत में उल्लिखित राजा युवनाश्व¹⁶ की कथा के समान आज यह संभव हो सका है कि पुरुष बिना गर्भाशय के ही उर्वरीकृत भ्रूण धारण कर सकता है और उसका ऑपरेशन कर बच्चे को बाहर निकाला जा सकता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि मैथुनहीन प्रजनन से ही मैथुनिक प्रजनन का प्रारंभ हुआ।

स्त्री और पुरुष के रूप में मनुष्य की उत्पत्ति भले ही हुई थी किन्तु उन्होंने अपने अलग-अलग लिंग को बहुत बाद में पहचाना होगा और इतना ही नहीं उनके बीच मैथुन सृष्टि को जारी रखने में संभव है यह भी बहुत बाद में ही समझा गया होगा (कई ऐसी प्रजातियाँ हैं, जिनमें यह मैथुन और प्रजनन के संबंधों का पता नहीं था जिसके कारण वे यह मानते थे कि मृत आत्माएँ ही स्त्री के गर्भ में प्रवेश कर उसे गर्भवती बना देती हैं, इसी प्रकार 'वैगा' और 'गोंड' जनजाति में मान्यताएँ हैं कि पुरुष के मूत्र से सिंचित साक खाकर ही स्त्रियाँ गर्भवती हो गयीं, कई जनजातियाँ जैसे कि 'माओरी' लोगों में यह मान्यता है कि चाँद ही स्त्री का पति है ऐसा इसलिए है क्योंकि रात में ही स्त्री का किसी व्यक्ति से संसर्ग होता होगा और उसके गर्भवती होने के लिए वे चाँद को उत्तरदायी मानने लगे) और इस प्रक्रिया में बहुत से अन्य प्रयोग किये गये होंगे, जिनमें से यही प्रयोग उनके वंश को जारी रखने में सक्षम रहा होगा तभी दो विपरीत लिंगों के बीच मैथुन को स्थान मिला और मनुष्य ने इसे अपनाकर यह सिद्ध किया कि 'योग्यतम की उत्तरजीविता' के लिए हर संभव प्रयास किये गये हैं। इसके पीछे किसी परमात्मा की इच्छा या टेलियोलॉजी हो यह बात नहीं बल्कि प्रकृति के अन्य तत्वों का जिस प्रकार विकास हुआ उसी प्रकार मनुष्य का भी विकास हुआ और लिंग-भेद भी इस क्रमिक विकास का ही परिणाम था। मन्मथनाथ के अनुसार "यह अत्यंत साधारण प्राकृतिक निर्वाचन प्रणाली है।"¹⁷

(ग) मातृकुल से पितृकुल तक का सफर :

"मातृकुल समाज से पितृकुल समाज में परिवर्तन इतनी बड़ी क्रांति है, जिसके आगे अन्य सब क्रांतियाँ फीकी पड़ जाती हैं, पर यह क्रांति किसी एक समय के बिंदु पर नहीं हुई।"¹⁸ इसी कारण मन्मथनाथ गुप्त इसकी एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया पर विस्तृत चर्चा करते हैं। उनके द्वारा प्रस्तुत तर्कों के आधार पर मातृकुल से पितृकुल तक के सफर को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है :-

(अ) मातृपोषक समाज का इतिहास और वर्तमान :

परिवार के रूप में मनुष्य के स्थापित होने को लेकर दो प्रकार के मत हैं। पहले से परिवार के रूप में जीव रहते आये हैं, इस अवधारणा में विश्वास करने वाले वेस्टरमार्क का मत है कि प्राणी विज्ञान की दृष्टि से उच्चतर प्राणी जोड़े में ही रहते थे। जबकि हेगल और मार्क्स ने सामाजिक विकास के अपने मत के आधार पर यह सिद्ध किया कि मनुष्य इतिहास में एक कड़ी रहा है और मनुष्य जाति का विकास उत्पादन के साधनों में विकास के फलस्वरूप हुआ। मारगन ने माना कि समाज के विकास का एक सिलसिला है, जिसे वाखोफेन ने अपने तर्क से पुष्ट किया। इस संबंध में वाखोफेन ने 'Mutterrecht' नामक पुस्तक लिखी। इसमें उन्होंने माना कि आदिम जातियों में 'Hetuerism' अर्थात् यौन स्वेच्छाचारिता विद्यमान थी ऐसे में पितृत्व का कोई अस्तित्व नहीं था केवल मातृसत्ता थी जिसे उन्होंने 'Gynaecoeracy' कहा है। इस मातृसत्ता में तभी परिवर्तन आया जब स्त्री किसी एक पुरुष की पत्नी होने लगी अर्थात् विवाह होने लगे।

मनुष्य के विकास क्रम पर यदि ध्यान दे तो डार्विन का विकासवाद मानव के विकास को चिम्पांजी जैसी आदिम प्रजाति से जोड़ता है और यह मानता है कि जो प्रजातियाँ परिवार या समूह के रूप में नहीं रहती थीं, उनमें से कोई भी मनुष्य के पूर्वज नहीं हो सकते। क्रोपार्टकीन ने इस सम्बन्ध में विश्व में मौजूद सभी आदिम ग्रंथों (वेद, अवेस्ता आदि) और सभी आदिम जनजातियों में व्याप्त

प्रथाओं और मान्यताओं एवं उनके क्रमिक विकास को समझने के बाद ही किसी नतीजे पर पहुँचने की राय दी है। जहाँ मारगन ने अमेरिका की असभ्य जातियों की खोज की तो बाल्डविन, स्पेंसर और गिलेन ने आस्ट्रेलिया की 'अरुंटा' जनजाति के सम्बन्ध में खोज की¹⁹ और इस नतीजे पर पहुँचे कि जिसे हम परिवार कहते हैं वह पहले से नहीं था बल्कि 'यौथ विवाह'²⁰ (सामूहिक विवाह) की पद्धति प्रचलित थी। यौथ प्रथा वाले समाज में मैथुन को लेकर किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं थी। स्त्रियों और पुरुषों को यह आजादी थी कि वे किसी के साथ भी सम्बन्ध बना लें। ऐसा इसलिए था कि उनमें प्रेम और घृणा जैसी कोई चीज नहीं थी। मिस्र के 'फरउन' अपनी सगी बहन से विवाह करते थे, अफ्रीका, पेरू और लंका द्वीप की कई जनजातियों में भी यह प्रथा थी, ऋग्वेद में कई ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिससे उस समय भी इस प्रथा वाले समाज के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए - ऋग्वेद में अदिति का उसके पुत्रों, भाइयों और पति के साथ सम्बन्ध, प्रजापति का अपनी कन्या से बलात्कार²¹, यम-यमी का विवाह, पुषाण का अपनी माँ से प्रेम निवेदन²², उषा का अपने पिता सूर्य के साथ रमण, देवी का शिव के साथ सम्बन्ध²³, विष्णुपुराण में ब्रह्मा के मानस पुत्रों को पुत्रियों का सौंपा जाना²⁴, महाभारत में मद्र देश में यौन संबंधों पर रोक टोक के अभाव का उल्लेख, मिहिर कुल के गांधारी ब्राह्मणों में निकट विवाह की प्रथा आदि। ईरानियों में भी 'रव्वायतदास प्रथा' (निकट सम्बन्धियों से विवाह करने की प्रथा) प्रचलित थी।

इस प्रकार कह सकते हैं कि प्राचीन कबीलों में जब तक परिवार की अवधारणा नहीं आई तब तक किसी के साथ भी संसर्ग किया जाना वर्जित नहीं था। बाद में परिवार और समाज के विकसित होने के शुरुआती समय में भी लम्बे समय तक यह प्रथा 'मातृगमन' और 'भगिनीगमन', 'गुरुभार्यागमन'²⁵, 'विमातागमन'²⁶ और 'पुनलुआ'²⁷ के रूप में मौजूद रही। प्रथम शताब्दी ईसापूर्व तक इस प्रकार की प्रथा के प्रचलन के संकेत मिलते हैं। ब्रिटेनवासियों (सिंजर के ओसार), ग्रीकों (हेरोडोटस के अनुसार), उज्जैन के तापसीय जाति में (फ्लीट के अनुसार) में यौथ प्रथा प्रचलित थी। डी. एन. मजूमदार आदि के द्वारा किये गये विस्तृत अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि देहरादून के

जौनसार-बाबर में एवं हिमांचल के सिरमौर आदि में बहुपतित्व विवाह की प्रथा आज भी मौजूद हैं। इस प्रकार की प्रथाओं से मातृसत्ता या मातृ केन्द्रित समाज की परम्परा के प्रचलन के ही संकेत मिलते हैं, "सभी यौथ विवाह पद्धतियों में - चाहे वह मातृगमन, भगिनीगमन या पुनलुआ हो, यह पता नहीं लग सकता था कि लड़के या लड़की का बाप कौन है। उस युग में लोगों का वंश माँ से गिना जाता था।"²⁸

इसके अतिरिक्त भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी देखें तो पितृकुल से पहले मातृकुल या मातृसत्ता के अस्तित्व के संकेत भी मिलते हैं। आदिम समाज में सबसे पहले जिस 'जेन्स संगठन' के प्रमाण मिलते हैं वह ग्रीक के 'gyen', 'स्लाव जेना', 'गोथिक', 'कोना', 'कूना' से आया है।²⁹ फारसी में 'जन' शब्द स्त्रीवाचक है, संस्कृत में इस शब्द का अर्थ 'पैदा करना' है। बाद में इसी शब्द से 'कींग', जर्मन के 'कोलिंग' आदि पुरुषवाचक शब्द भी आये हैं। इससे सारे जेन समाज की मातृमूलक उत्पत्ति के संकेत मिलते हैं। इसके अतिरिक्त 'ऋग्वेद' में 'मातराः'³⁰ शब्द माता-पिता दोनों के सन्दर्भ में आया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पहले लोग 'माँ' शब्द से ही परिचित हुए। इसी प्रकार 'छान्दोग्य उपनिषद्' में 'सत्यकाम जावाल' की कथा³¹ भी है, जिससे यह साबित होता है कि माता के नाम से परिचय भी दिया जा सकता था। साथ ही यज्ञ में अपने कुल के पहले की दस मातृपरम्पराओं के स्मरण की प्रथा भी उस युग की ओर ध्यान दिलाती है, जब मातृसत्ता रही होगी।

जयचंद विद्यालंकार ने जंगली द्रविण जातियों का उल्लेख किया, जिनमें एक-एक टोटम को मानने वालों की अलग-अलग टोली थी। इसमें एक ही टोटम को मानने वाली टोलियों के भीतर विवाह नहीं होता था। वे जोड़े में नहीं रहते थे बल्कि उनका एक सामूहिक परिवार होता था। सामूहिक उत्सवों में ही स्त्री और पुरुष मिलते थे और संसर्ग कर वापस अपनी-अपनी टोलियों में चले जाते थे। इसके बाद गर्भवती हुई स्त्रियों पर केवल स्त्रियों का ही अधिकार नहीं होता था बल्कि उसके पूरे समूह का अधिकार होता था। शिकार आदि के समय जाने पर गर्भवती या बीमार स्त्रियों का ध्यान रखना पुरुषों का नहीं बल्कि स्त्रियों का दायित्व था। इससे स्पष्ट है कि कोई पुरुष विशेष स्त्री पर अपने

अधिकार को नहीं जता सकता था। वर्तमान में इस प्रकार की व्यवस्था भारत के केरल में 'मारुमाक्काथोयाम'³² और 'मुप्पु'³³ की प्रथा, पंजाब की 'मओवर प्रथा', असम की 'जयंतिया' जनजाति में राजा के बाद बहिन जिसे 'कुमारी' कहते हैं, के उत्तराधिकारी बनने की प्रथा और अरबों की 'बदू' और अफ्रीका की 'तुआरी' जाति में, स्कॉटलैंड के 'पीक्ट' में मातृकुल परम्परा आदि मातृसत्ता के आधुनिक प्रमाण हैं।

(आ) मातृसत्ता में स्त्रियों का स्थान एवं उनके अधिकार :

आदिम समाज आर्थिक रूप से समाजवाद के समर्थक थे, जहाँ किसी की कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती थी बल्कि उस पर उस कबीले का अधिकार होता था और जो कुछ भी उस कबीले का उत्पादन होता था वह सभी में बराबर बाँट दिया जाता था। यदि कोई व्यक्तिगत संपत्ति होती भी थी तो उसे उस व्यक्ति के साथ ही दफना दिया जाता था। चीन की जनजातियों एवं इंग्लैण्ड की जिप्सी जातियों में यह प्रथा प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त भारत में 'मिताक्षरा कानून'³⁴, दक्षिण के तिरुवान्कुर में 'कारइयीद' प्रथा, उत्तर प्रदेश के बांदा में 'यौथ प्रथा', उत्तर-पश्चिम पंजाब में 'वेश या बाश' प्रथा के रूप में इस प्रकार की प्रथा प्रचलित थी। इन सबमें जोत के योग्य सारी ज़मीन गाँव की ही संपत्ति मानी जाती थी। इसी प्रकार जर्मनों में 'मर्गगेनोसेनशाफ्ट' व 'डोर्फ़मेनोसनशाफ्ट' तथा आलेमन्नी लोग भी इसी प्रथा का अनुपालन करते थे, जिसके अनुसार जमीन और पशु आदि सम्पत्ति का मालिक समाज होता था। ऐसे समाज में प्रशासनिक या निर्णय लेने सम्बन्धी अधिकार स्त्री के ही होते थे। कई ऐसे उल्लेख मिलते हैं, जहाँ स्त्रियों को उनके अपराध के लिए कम सज़ा या प्रायश्चित्त का प्रावधान था और पुरुषों के लिए कठोर सज़ा थी। 'फ्युजियन', 'हायदा' आदि जातियों में स्त्रियों को कई अधिकार प्राप्त थे। स्त्री यदि नाराज़ हो जाय तो अपने पति को घर से बाहर निकाल सकती थी।³⁵ कारीन जाति में जो नर माँस भक्षी हैं वे पुरुष का माँस तो खाते हैं किन्तु स्त्रियों का माँस नहीं। इसके अतिरिक्त सुमात्रा के बाठा प्रदेश, अफ्रीका के हब्शियों में, दक्षिण अमेरिका के पेरू की असभ्य जातियों में, भारत के टोड़ा लोगों में सम्पत्ति का उत्तराधिकार स्त्रियों की ओर ही होता है। इन

सबसे उन लोगों की विचारधारा को ठेस पहुँचेगी जिन्होंने यह माना कि स्त्रियाँ आदिम समय से ही प्रताड़ित होती आई हैं और अफ़सोस इसमें कई जाने माने विद्वान जैसे - शरतचंद, एच.जी.वेल्स³⁶ आदि सम्मिलित हैं। इस पर व्यंग करते हुए एंगल्स ने लिखा, "18वीं शताब्दी की नई रोशनी में यह भी एक फैशन हो गया कि लोग यह समझते थे कि समाज के प्रारंभिक युग से ही स्त्रियाँ पुरुषों की दासी रही हैं।"³⁷ इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को लेकर उनके पवित्र या पूजनीय रहने की अवधारणा अवश्य ही इन कबीलों में होगी। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों के सम्बन्ध में आदिम समाज अधिक उन्नत दिखता है।

आगे चलकर जब कबीलाई समूहों में 'गोत्र' की अवधारणा ने जन्म लिया तब भी गोत्र के आधार पर बंटे लोगों में महिलाओं का महत्व कम नहीं हुआ। ज्यादा से ज्यादा यह हुआ कि समान गोत्र में विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। गोत्र का निर्धारण पशु प्रतीक के आधार पर होता था। भारत की 'खोंद' और 'जयंतिया' और 'खासिया' जाति में इसी प्रकार का गोत्र विवाह होने लगा। महिलाओं और पुरुषों में तलाक या उनके अलग होने की प्रथा की भी शुरुआत हो गयी। दोनों के अलग होने पर बच्चे माँ के साथ ही रहते थे और उसकी संतान के गोत्र का निर्धारण स्त्री के गोत्र से ही होता था। विभिन्न मान्यताओं विशेषकर टोटम को लेकर कबीलों में विभाजन शुरू हुआ जो विश्व की ज्यादातर आदिम जातियों में दिखता है।

ऊपर यह सिद्ध किया जा चुका है कि यौथ समाज में स्त्रियों को कभी भी संपत्ति नहीं समझा गया। लेकिन यह कहना भी गलत नहीं होगा कि जैसे-जैसे समाज का आकार बढ़ा उसके स्वरूप में निश्चितता आई वैसे-वैसे स्त्रियों की महत्ता में कमी होती गयी और उनके अधिकारों का हस्तान्तरण पुरुषों की ओर होने लगा। इसके कारणों का विश्लेषण आगे किया गया है।

(इ) मातृसत्ता में पुरुषों का स्थान एवं उनके अधिकार :

मातृसत्तात्मक समाज में पुरुष की स्थिति स्त्री की अपेक्षा गौण थी। खेवसुरे³⁸ नामक कबीले में पुरुषों में जब भी विवाद बढ़ जाता था तो उनके बीच यदि कोई स्त्री आकर अपने सिर का रुमाल जिसे 'अन्य' कहते हैं, उछाल देती थी तो उसी समय लड़ाई बंद कर दी जाती थी।³⁹ पेरू के पुरुष चरखा कातते थे और स्त्रियाँ हल चलाती थीं। सुमात्रा के निवासी घर में भोजन बनाते हैं और स्त्रियाँ बाजार जाती हैं। अबीसीनिया के पुरुष तो बाजार जाने से कतराते हैं, उन्हें घर गृहस्थी का काम ही अच्छा लगता है।⁴⁰ सेलिंगमैन का इस सम्बन्ध में मत है कि मातृसत्ता वाले समाजों में पुरुष दूसरे स्थानों पर जाकर काम करता है तो वहाँ की स्त्रियाँ उसे एक प्रकार से पालतू बनाने लगती हैं और उस पुरुष के घरवाले उससे उदासीन हो जाते हैं। ऐसे समाजों में स्त्रियों का अपना घर होता है और पुरुष केवल स्त्री के एक सहायक के रूप में होता है।⁴¹ हीरालाल अजरबेजान की स्त्रियों के जीवन के विषय में बताते हैं, "अजरबेजान के स्त्री राज्यों में पुरुषों से कोई काम नहीं लिया जाता। स्त्रियाँ सबकुछ करती हैं। यदि कोई पुरुष निठल्लेपन से उकता कर कोई काम करे, तो स्त्रियाँ उसकी निंदा करती हैं और अपनी बेइज्जती समझती हैं। स्त्री के तीन बार 'चले जाओ, 'चले जाओ', चले जाओ' कह देने पर तलाक हो जाता है।"⁴² "इस प्रकार जो लोग समझते हैं कि स्त्रियाँ हर समाज में हमारे यहाँ की उच्च-मध्यवित्त श्रेणी की स्त्रियों की तरह अकर्मण्य होती हैं, वह गलत हैं। जिस भी समाज में स्त्रियों की मात्र दिखावटी नहीं बल्कि वास्तविक इज्जत है, वहाँ स्त्रियाँ वास्तविक रूप से सामाजिक उत्पादन में हिस्सा लेती हैं।"⁴³

सभी मातृसत्तात्मक समाजों में स्त्री को यह अधिकार था कि वह अपने पति का वरण स्वयं करे। यौथ प्रथा में वह जिस पुरुष से चाहे सम्बन्ध बना सकती थी। इसी परम्परा के आगे के युगों में जब स्त्रियाँ किसी कुल विशेष को विवाह आदि कर सौंप दी जाती थी तो उसे यह अधिकार था कि वह जिसे चाहे अधिक प्रेम करे। आगे चलकर स्वयंवर विवाह का भी प्रचलन दिखता है (द्रौपदी आदि के सम्बन्ध में)। तात्पर्य यह है कि पुरुषों को स्त्रियों को प्राप्त करने के लिए उन्हें रिझाना होता था और यह

रिझाना विभिन्न समाजों में विभिन्न प्रकार से था। किन्तु इसका कुल उद्देश्य पुरुष द्वारा अपने शौर्य का प्रदर्शन था, जिससे स्त्री का संसर्ग प्राप्त हो सके।⁴⁴ ऐसा हम पशु-पक्षियों में भी देखते हैं, जहाँ नर मादा को रिझाने के लिए तरह-तरह की केलि-कलाएँ करता है।

(ई) पितृसत्ता का जन्म और एक अवधारणा के रूप में विकास :

पितृसत्ता शब्द अंग्रेजी के 'पेट्रियार्की' का हिंदी रूपान्तरण है, जो यूनानी भाषा के 'पैटर' और 'आर्क' शब्दों के मेल से बना है, जिसका अर्थ होता है -'पिता का शासन'। स्पष्ट है पितृसत्ता का सम्बन्ध पुरुष प्रधान समाज से होता है, जिसमें संपत्ति सहित समस्त अधिकार और निर्णय लेने की शक्ति पुरुषों के हाथ में होती है। प्रमुख नारीवादी गार्दालर्नर ने यह प्रस्तावित किया कि पितृसत्ता इतिहास के किसी पड़ाव पर उत्पन्न नहीं हुई थी और न ही इसके पीछे किसी एक कारण का हाथ था। इसके आकार लेने में लगभग 2500 वर्ष लगे होंगे। आकार लेने की उसकी यह प्रक्रिया समाज की अन्य संरचनाओं के विकसित होने की प्रक्रिया से जुदा नहीं रही है। इसलिए, अलग-अलग समाजों में यह अलग-अलग रूप लिए होता है।

'सत्ता' शब्द लोलुपता से जुड़ा हुआ है, जो समाज में व्यक्ति के लिए एक अलग या यूँ कहें एक प्रमुख ओहदे की व्यवस्था करता है। यह एक व्यक्ति या वर्गविशेष के सर्वोच्च होने का प्रतीक है। दरअसल मनुष्य अपनी प्रवृत्ति से ही बहुत लोभी रहा है और उसकी हर पल यह आकांक्षा रही है कि वह सर्वोच्च रहे और अन्य उसके अधीन। इस विचार ने ही समाज में पितृसत्ता और मातृसत्ता की अवधारणा को जन्म दिया है। स्त्री और पुरुष समान दर्जे के होते हुए भी सभ्यता के प्रथम चरण से ही एक दूसरे पर विजय पाने का प्रयास करते रहें हैं और यह प्रयास कभी जान बूझकर किया गया और कभी अनजाने में। पर अंत में जीत हुई पुरुषों की। कुछ प्राकृतिक और कुछ तात्कालिक कारणों से एक बार सत्ता हाथ से निकल जाने के बाद कभी-भी स्त्री पुरुष के समकक्ष नहीं खड़ी हो सकी। परिणाम यह हुआ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपने अधीन मानना शुरू कर दिया और समस्त अधिकारों

का मालिक बन बैठा। यहीं से पुरुष सत्ता पर काबिज हो गया और उसका सत्ता पर काबिज होना 'पितृसत्ता' कहलाया।

पितृसत्ता एक ऐसी विचारधारा है, जो पुरुषों को श्रेष्ठ और समस्त अधिकारों के योग्य देखती है और स्त्रियों को एक निकृष्ट जीव के रूप में देखती है, जो यह अपेक्षा करती है कि स्त्री बिना कोई सवाल किये पुरुष की अधीनता स्वीकार करे और उसकी सेवा में उपस्थित रहे। इसके कारण के रूप में 'जैविक भौतिकवाद' को उत्तरदायी मानते हुए अभय कुमार दुबे लिखते हैं 'स्त्री-पुरुष असमानता को जिन दार्शनिक विचारों ने और पुष्ट किया उनमें जैविक भौतिकवाद की खास भूमिका रही। इनमें व्यक्तियों के एक समूह को जन्मना श्रेष्ठ और योग्य (पुरुष) और दूसरे समूह को जन्मना सामान्य (नारी) माना गया।"⁴⁵ पुरुष ने समाज के समस्त उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण कर स्त्री को पंगु बना दिया। स्टालिन ने इसी कारण लिखा कि 'जब तक स्त्रियों को सामाजिक उत्पादन के काम से अलग, केवल घर के निजी कामों तक ही सीमित रखा जाएगा, तब तक स्त्रियों का मुक्त होना और पुरुषों के साथ बराबरी का हक पाना असम्भव है और असम्भव ही बना रहेगा। स्त्रियों की मुक्ति तभी संभव होगी जब वे बड़े पैमाने पर, सामाजिक पैमाने पर उत्पादन में भाग ले सकेंगी, और जब घरेलू कामों में उनका कम से कम समय जाया होगा।"⁴⁶

'युग्म परिवार' की अवधारणा आने पर स्त्रियों को भगाना और खरीदना शुरू हुआ। क्योंकि जब तक कबीलाई विवाह प्रथा थी, तो पुरुषों को किसी भी और कई स्त्रियों से विवाह की स्वतंत्रता थी। किन्तु परिवार की जो अवधारणा आगे चलकर अस्तित्व में आई उसके मूल में परिवार का प्रारंभिक शाब्दिक अर्थ निहित है। परिवार का अंग्रेजी रूपांतरण है 'फैमिली'। इसका सम्बन्ध लैटिन 'फेमूलस' और 'फैमेलिया' से है। फेमूलस का अर्थ है 'गुलाम'। स्पष्ट है, प्रारंभ में परिवार गुलामों और मालिक के संबंधों से बना था, जिसमें बाद में स्त्री और संताने भी सम्मिलित कर लिए गये और इसके संचालन की बागडोर पुरुष रूपी मालिक ने अपने हाथों में रखी गयी। धीरे-धीरे परिवार के स्वरूप निश्चित होने के क्रम में और जब मनुष्य में प्रेम और घृणा जैसी भावनाएँ स्पष्ट होने लगीं तो परिवार का

दायित्व स्त्री से पुरुष की ओर खिसक गया। बाद में उपरोक्त उल्लिखित सभी प्रथाएँ छोड़ दी गयीं।
ऐसा होने के कई कारण हो सकते हैं। जैसे -

- सभ्यता के विकास के साथ-साथ भगिनीगमन, मातृगमन आदि सम्बन्धों का त्याग। क्योंकि लोगों को यह एहसास होने लगा था कि रक्त सम्बन्धी से किया गया शारीरिक सम्बन्ध कहीं न कहीं उनकी वंशावली को प्रभावित कर रहा था या उससे कोई न कोई शारीरिक विकृति हो रही थी। धीरे-धीरे एक स्त्री के लिए एक पुरुष के साथ ही संसर्ग करने और विवाह की परम्परा शुरू हुई। इसे मारगन ने 'प्राकृतिक निर्वाचन की विजय'⁴⁷ कहा, तो एंगल्स ने 'प्रगतिमूलक कदम'
- इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि दूसरे कबीलों या कुलों से विवाह या सम्बन्ध बनाने पर उनके सम्बन्धों में विस्तार हुआ, जिससे आदिम जातियों में सुरक्षा का एहसास हुआ होगा।
- इसका एक कारण जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार यह है कि ऐसे समय में जब बहुविवाह का प्रचलन था उस समय कुछ लोगों में एकपत्नीत्व या एकपतीत्व की भावना का जन्म हुआ। उस समय के अनुसार यह विचार सर्वथा भिन्न और स्वीकृत न किये जाने योग्य था। इसलिए उन्हें उनके इस प्रकार के कार्यों या विचारों के कारण बहिष्कृत कर दिया गया। धीरे-धीरे इन बहिष्कृत लोगों की संख्या बढ़ती गयी और उनके द्वारा व्यक्तिगत परिवार स्थापित किये गये। ये व्यक्तिगत परिवार प्रारंभ में हरण कर लायी गयी स्त्री (इसके उदाहरण हम होमर, इलियड जैसे पाश्चात्य लेखकों की रचनाओं के साथ भारतीय शास्त्रों महाभारत में सुभद्रा हरण, रुक्मणी हरण, भीष्म के द्वारा काशीराज की कन्याओं का हरण आदि के रूप में देख सकते हैं) के साथ विवाह कर बनाये गये। बाद में धीरे-धीरे एक पत्नीत्व या एक पतीत्व को स्वीकृति मिल गयी। इस प्रकार व्यक्तिगत परिवार, व्यक्तिगत संपत्ति की उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार एक पुरुष और स्त्री के आपस में बंध जाने से पुरुष में भी दायित्व बोध की भावना उत्पन्न हुई। वह स्वयं को स्त्री का रखवाला समझने लगा। स्त्री और उससे उत्पन्न बच्चों के प्रेम ने उसे

'परिवार' के रूप में रहने के लिए प्रेरित किया और उनकी सुरक्षा की भावना ने उसके मन में परिवारेत्तर के प्रति घृणा या असुरक्षा की दृष्टि पैदा कर दी और यहीं से शुरू हुआ पितृसत्ता का खेल ।

स्त्री और पुरुष के विवाह ने पुरुष के स्त्री पर अधिकार करने की राह खोल दी तो दूसरी तरफ उत्पादन के उन्नत साधनों की खोज ने पुरुष को उत्पादन के साधन पर अधिकार के साथ उत्पाद पर भी अधिकार दिलाया । इस प्रकार कह सकते हैं कि स्त्री पर पुरुष के आधिपत्य का मुख्य आधार या कारण आर्थिक साधनों पर आधिपत्य था ।

(घ) पितृसत्ता का परिणाम :

"जो चीजें पहले जैसी थीं, वैसी ही रह सकती थीं । केवल एक नियम की जरूरत हुई कि भविष्य में पुरुष सदस्यों की संताने जेन्स या गोत्र के अन्दर समझी जाएंगी । इस प्रकार मातृकुल में कुल परिचय तथा उत्तराधिकार का मातृकुलमूलक नियम खत्म हो गया और उसके स्थान पर उत्तराधिकार का पितृकुलमूलक नियम आ गया ।"⁴⁹ यह सार्वदेशिक स्तर पर स्त्री की पराजय थी । मातृसत्तात्मक समाज के अंत का सबसे प्राचीन उदाहरण हम परशुराम द्वारा अपनी माँ रेणुका की हत्या की घटना के रूप में देख सकते हैं । जाहिर है जिस समय मातृसत्तात्मक समाज होगा वहाँ एक स्त्री की हत्या किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकती । इस घटना से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्त्री की अहमियत क्रमशः कम होती गयी । हालाँकि भारतीय इतिहास में हड़प्पा की सभ्यता तक मातृसत्ता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है किन्तु इसके बाद क्रमशः इसका स्थान पितृकुल और पितृसत्ता ने ले लिया । अनामिका ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि 'पुरातात्विक गवेषणायें बताती हैं कि पितृसत्तात्मक समाज की स्थापना 3100 से 600 ई.पू. तक की क्लिष्ट प्रक्रिया थी, जिसमें शक्तिमंत देवियाँ पुरुष प्रधान साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा मंदिर से धीरे-धीरे अपदस्थ होती गयीं... और अंत तक आते-आते तो प्रजनन की देवी भी एक देवता द्वारा ही अपदस्थ कर दी गयी ।"⁵⁰ वैदिक और पौराणिक काल तक कुल, गोत्र और वर्ण का जैसे-जैसे स्वरूप निश्चित होता गया वैसे-वैसे पितृसत्ता का

स्वरूप भी जटिल होता गया। इस काल तक स्त्री को ज्ञान, वर चुनने आदि का अधिकार मिला था, उन्हें सरस्वती, सिन्धु आदि नदियों के रूप में तो अदिति देवी के रूप में पूजा जाता था। इस संदर्भ में घोषा, अपाला, विस्ववारा, पौलोमी आदि विदुषी स्त्रियों के नाम कैसे भुलाये जा सकते हैं। किन्तु अब स्त्री के कौमार्य की रक्षा का दायित्व स्त्री का नहीं बल्कि उसके पति का हो गया। उससे पुत्र ही उत्पन्न करने की आशा की जाने लगी - " हे नारी, तू प्रधान पुत्र को उत्पन्न कर...।⁵¹ इसी से अन्तःपुर, सतीत्व, सती प्रथा, दहेज, दासी प्रथा, नियोग प्रथा, बहुपत्नीत्व, पुत्रोत्पादन का महत्व आदि का क्रमिक विकास होता गया और आगे चलकर इसने रूढ़ी का रूप धर लिया। इस रूढ़ी ने स्त्रियों के स्थान को अवनति की ओर ले जाने का ही कार्य किया। इस अवनति को हम आगे चलकर बौद्ध, जैन धर्म के समय और महाजनपद काल, मौर्य काल में देख सकते हैं। यह अवनति मुस्लिम शासन और ब्रिटिश काल में भी जारी रही। इसके बाद जो कुछ भी हुआ वह अगले बिंदु स्पष्ट किया गया है।

(च) पितृसत्ता के समानांतर एवं पितृसत्ता के विरोध में :

पितृसत्ता के पनपने में जितना समय लगा, उतना ही उसके विस्तृत होने में भी। किन्तु इस विस्तार के दौरान पितृसत्ता से हो रही स्त्री की हानि को जैसे-जैसे समझा गया वैसे-वैसे स्त्रियों की स्थिति में सुधार, उनकी समाज में भूमिका को बढ़ाने का प्रयास भी किया गया। इस प्रयास को दो बिन्दुओं में समेटकर देख सकते हैं- सामाजिक सुधार आंदोलनों में स्त्रियों के लिए उठाये गये कदम और दूसरा नारीवाद या स्त्री-विमर्श के रूप में स्त्री मुद्दों पर चिंतन और बेहतर विकल्पों की तलाश का प्रयास।

(अ) पितृसत्ता के समानांतर : सामाजिक सुधार आन्दोलन

पितृसत्ता की जड़ों के फैलने के साथ स्त्री-उत्पीड़न का दौर भी शुरू हुआ। इस उत्पीड़न को हम स्त्री अधिकारों में निरंतर की जा रही कमी, शिक्षा का अभाव, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, देवदासी प्रथा, आदि के रूप में देख सकते हैं। इन कुप्रथाओं से निकलने के लिए एकजुट प्रयास उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आन्दोलन के दौरान दिखाई पड़ता है। वस्तुतः ये कदम

पितृसत्ता के समानांतर थे, जिनका उद्देश्य पितृसत्ता से मुक्ति नहीं बल्कि स्त्रियों की स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार था। उन्हें समाज में प्रस्तुत होने योग्य, घर को उचित तरीके से चलाने योग्य और कुछ सामाजिक प्रताड़नाओं से मुक्त करना था। यह माना गया कि 'अच्छी स्त्री ही अच्छे राष्ट्र का निर्माण कर सकती है', इसलिए यह आवश्यक हो गया कि स्त्रियों को 'अच्छा' बनाया जाय। इसके लिए ही उनकी शिक्षा पर बल दिया गया। यह प्रयास किसी देश या स्थान विशेष तक सीमित नहीं रहा बल्कि समस्त विश्व में इस प्रकार के सुधारवादी आन्दोलन शुरू हुए। अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुरूप कभी आगे, तो कभी पीछे।

यूरोप में धर्म और सामाजिक सुधार आन्दोलन को 'रेनेसा' का नाम दिया गया जब मध्यकालीन अन्धकार से निकलकर समाज और धर्म सुधार का प्रयास किया गया। इस प्रयास में स्त्रियों की दशा विशेषकर उनकी शिक्षा के लिए कुछ प्रयास किये गये। इसी प्रकार भारत में भी समाज सुधार का प्रयास किया गया। विपिन चन्द्र के अनुसार भारतीय समाज सुधार आंदोलनों के दो उद्देश्य थे, "(अ) स्त्रियों की मुक्ति तथा उनको समान अधिकार देना (ब) जाति प्रथा की प्रताड़नाओं को समाप्त करना तथा खास कर छुआछूत का खात्मा।"⁵² भारत में स्त्री-सुधार आन्दोलन 19वीं शताब्दी में जन्मे सामाजिक सुधार आन्दोलन का ही एक हिस्सा रहा है। राधा कुमार समाज सुधार आन्दोलन की पृष्ठभूमि मुगलों के समय से देखती हैं, जब मुगलकालीन शासन व्यवस्था के विरुद्ध छोटे रजवाड़े विद्रोह करने लगे थे। समय-समय पर अलग-अलग जगह पर हुए आंदोलनों ने नई व्यवस्था को लाने और दृष्टिकोण परिवर्तन का काम किया। 1950 के पूर्व तक स्त्री की छवि को 'माँ' के रूप में देखा गया। गांधी, मैडम कामा, सरोजनी नायडू आदि ने स्त्री को 'माँ' के रूप में देखे जाने पर बल दिया। मातृशक्ति को बयान करते हुए कहा 'जो हाथ पालना झुलाते हैं वही दुनिया पर राज करते हैं', गांधी ने नारी के मातृभाव के उद्धारक गुणों पर बल दिया। इन सुधार आन्दोलन से स्त्रियों को लेकर जो महत्वपूर्ण कदम उठाये गये वे हैं - सती प्रथा का अंत, स्त्री शिक्षा के लिए मार्ग प्रशस्तीकरण, बाल-विवाह की समाप्ति, विधवा विवाह, बहु विवाह पर रोक, स्त्रियों का उत्तराधिकार आदि। इन महत्वपूर्ण प्रयासों में

राजाराम मोहन राय⁵³, हेनरी डेरोजियो⁵⁴, देवेन्द्रनाथ ठाकुर⁵⁵, ईश्वरचंद्र विद्यासागर⁵⁶, ज्योतिबा फुले⁵⁷, फुले⁵⁸, विष्णु शास्त्री⁵⁹, करसोन दास मलजी⁶⁰, दादा भाई नौरोजी⁶¹ आदि का नाम उल्लेखनीय है बल्कि इसके अतिरिक्त भी कई अन्य नाम हैं जिनके महत्व को रेखांकित करते हुए, विपिन चन्द्र लिखते हैं, "उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारकों का महत्व उनकी संख्या के आधार पर नहीं तय किया जाना चाहिए। वास्तव में वे तो एक नयी धारा के प्रवर्तक थे।"⁶²

(आ) पितृसत्ता के विरोध में : स्त्री मुक्ति आन्दोलन और नारीवाद

(i) **स्त्री-मुक्ति आन्दोलन** : स्त्री जीवन में सुधारों का मार्ग और अधिक तेजी से तब खुलने लगा, जब उसने स्वयं आन्दोलन में कूदकर अपने लिए राह बनानी शुरू की। यही कारण है कि स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए स्त्रियों ने भी आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भागीदारी की, जिससे यह साबित हो सके कि भारत की आजादी केवल पुरुषों की आजादी नहीं है। इस सन्दर्भ में रमाबाई, निरुपमा देवी, ताराबाई शिंदे, काशीबाई कानितकर, आनंदी बाई जोशी, माई भगवती, मनोरमा मजूमदार, कादम्बिनी बाई गांगुली आदि स्त्रियों के नाम उल्लेखनीय हैं। यह समय था, जब स्त्री सम्बन्धी मुद्दों पर खुल कर बहस की गयी।

जहाँ स्त्रियों ने स्वतंत्रता आन्दोलन के समय यह दिखा दिया कि आजादी केवल पुरुषों की बपौती नहीं है, वहीं स्वतंत्रता के बाद आजाद भारत में स्त्रियों ने और कह सकते हैं कुछ पुरुषों ने भी स्त्रियों को लेकर एक प्रकार की बौद्धिक बहस की शुरुआत की। इस बहस का उद्देश्य पितृसत्तात्मक मानसिकता पर प्रहार था। इसे नाम दिया गया 'स्त्री-विमर्श'। यह एक उत्तराधुनिक अवधारणा के रूप में आज प्रतिस्थापित है। किन्तु इसकी जड़ें पिछले आंदोलनों से भी जुड़ती हैं। इस विमर्श का उद्देश्य केवल अधिकार पर चर्चा करना ही नहीं बल्कि व्यवहार में उसका उपार्जन भी है। राधाकुमार लिखती हैं, "पूर्ववर्तियों का ध्यान उसकी भूमिका की बजाए उसके स्त्रीत्व पर अधिक था जबकि बाद के नारीवादियों ने उसकी पुनरुत्पादक क्षमता के बजाए उत्पादक क्षमता को रेखांकित किया।"⁶³

राधा कुमार का मानना है कि स्वतंत्रतापूर्व जो भी महिला आन्दोलन हुए उस पर साम्राज्यवाद का असर है जबकि स्वतंत्रता के बाद हुए नारीवादी आंदोलनों पर लोकतंत्र के अनुभव का विशेष प्रभाव दिखता है। आंदोलनों के दो रूप दिखते हैं - पहला- इसमें कम्युनिस्टों का अन्न अभियान, शराब विरोधी आन्दोलन, चिपको आन्दोलन, मूल्यवृद्धि विरोधी महिला अभियान सम्मिलित किये जा सकते हैं, जबकि दूसरे पक्ष में वे आन्दोलन थे, जिसमें पुरुषों का वर्चस्व था किन्तु इसमें महिलाओं ने भी जमकर भागीदारी की थी, जैसे स्वाधीनता तिभागा और तेलंगाना आन्दोलन। प्रथम प्रकार के आन्दोलन में स्त्रियों की भूमिका केवल एक गृहणी के रूप में रह गयी जबकि दूसरे में पुरुषों की समस्या पर अधिक ध्यान दिया गया। किन्तु इसका लाभ यह हुआ कि इस समय स्त्रियों ने स्वयं को एकजुट करना सीखा।

(ii) **नारीवाद** : नारीवाद के लिए अंग्रेजी में 'फेमिनिज्म' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसे लिंगों के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और व्यक्तिगत समान अधिकार के लिए किये गये आन्दोलन के रूप में देखा जाता है। 'फेमिनिज्मे' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांसीसी दार्शनिक चार्ल्स फोरिए ने 1837 में किया।⁶⁴ वेबस्टर डिक्शनरी के अनुसार -1. यह लिंगगत राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता का सिद्धांत है। 2. यह स्त्रियों के अधिकारों और उनकी आवश्यकताओं पर आधारित व्यवस्थित आन्दोलन है।⁶⁵ "बीसवीं सदी के मुक्ति संघर्षों में स्त्री का मुक्ति संघर्ष शायद सबसे अधिक मूलगामी और सार्वभौमिक रहा है। सबसे अधिक अहिंसक, रक्तहीन और सत्याग्रही भी। इस संघर्ष की व्यापकता का महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि 'यह जितना अधिक बाहरी स्तर पर संगठित और घटित हुआ है, उतना ही आन्तरिक स्तर पर भी। वह एक साथ आत्मसंघर्ष भी रहा है। आत्मबोध, आत्मविश्लेषण और आत्माभिव्यक्ति का संघर्ष भी। दर्शन, मनोविज्ञान, इतिहास जैसी अनेक विधाएँ इस संघर्ष पर एकाग्र हुई हैं और स्त्री के मुक्ति संघर्ष का एक समृद्ध शास्त्र विकसित हुआ है, जिसे समग्र रूप से स्त्री-विमर्श कह दिया जाता है।"⁶⁶

वस्तुतः स्त्रीवाद एक राजनीतिक विचार है, जो समाज से स्त्री के लिए न्याय की माँग करता है और लैंगिक विभेद की मनोवृत्ति को समूल नष्ट करना चाहता है। आक्सफोर्ड एडवांस लर्नर डिक्शनरी में स्त्रीवाद को इस तरह से परिभाषित किया गया है, "इस बात में विश्वास कि औरत को भी पुरुषों के समान अधिकार और अवसर (संवैधानिक, कानूनी, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक आदि) मिलना चाहिए, नारीवाद है।"

एक आन्दोलन के रूप में यह पश्चिमी देशों फ्रांस, इंग्लैंड और अमेरिका में शुरू हुआ। "जब महिलाओं ने अपनी सामाजिक भूमिका को लेकर सोचना-विचारना आरंभ किया, वहीं से स्त्री आंदोलन, स्त्री-विमर्श और स्त्री-अस्मिता जैसे संदर्भों पर बहस शुरू हुई। स्त्री-आंदोलन में जहाँ एक ओर स्त्रियों की भूमिका को सामने लाने का प्रयास हुआ और उनकी सामाजिक, राजनीतिक भागीदारी को स्वीकार किया तो वहीं स्त्री-विमर्श ने स्त्री को बहस के केंद्र में लाने का प्रयास किया, जिसमें एक ओर समाज में उसकी दोगुनी दर्जे की स्थिति को बताया गया तो दूसरी ओर उससे जुड़े मुद्दों को बहस के जरिए केंद्र में रखा गया, जिसमें स्वतंत्रता, समानता और अस्मिता जैसे प्रश्नों को उठाया गया।"⁶⁷ विश्व में फेमेनिज्म को लेकर भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ सूदूर पश्चिमी फेमेनिस्ट इतिहासकारों का मत है कि स्त्रियों के लिए अधिकारों के लिए हुए सभी आंदोलनों को फेमेनिज्म के अंतर्गत सम्मिलित किया जाना चाहिए। जबकि कुछ का मत है कि इस शब्द का प्रयोग केवल आधुनिक स्त्रीवादी आंदोलनों के लिए ही किया जाना चाहिए और उससे पूर्व हुए आंदोलनों को वे 'प्रोटो-फेमेनिस्ट' कहते हैं।

जो भी हो स्त्रीवादी दर्शन के क्रम में सर्वप्रथम सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, हीगेल आदि के मत को भी देखा जा सकता है। 'समाज विज्ञान कोश' के अनुसार 'प्लेटो और अरस्तू से लेकर देकार्त के विमर्श को देखकर एकबारगी तो ऐसा लगता है कि जैसे इन दार्शनिकों ने स्त्री को दर्शन की सीमाओं से बाहर रखने की परियोजना चला रखी हो।'⁶⁸ रूसो ने स्त्री को बौद्धिक गतिविधियों से अयोग्य माना। हीगेल ने 'प्राइवेट' और 'पब्लिक स्फीयर' बना कर पब्लिक स्फीयर में जाने की स्त्री की क्षमता ही छीन ली।⁶⁹

स्त्री के लिए इस प्रकार के दमनकारी दृष्टिकोण का आंकलन करते हुए जेन फ्लेक्स ने इसके लिए पुरुषों की 'साइकोसेक्सुअलिटी' को उत्तरदायी मानते हुए पुरुष दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को उनकी 'मेस्क्युलिन' आग्रहों की वजह से असत्य घोषित किया।⁷⁰ दूसरी तरफ जैक देरिदा जैसे दार्शनिकों ने नारीवाद का ही खंडन किया। इसका कारण सम्भवतः स्त्री और पुरुष के रूप में जेंडर-द्विभाजन को अस्वीकार करना हो सकता है। उनका मत था कि 'स्त्री जब अपनी आवाज़ हासिल करने का दावा करती है तो उसकी कोशिश का अंत दरअसल पुरुष की तरह बोलने में होता है।'⁷¹

प्रभा खेतान के अनुसार नारीवाद के महत्वपूर्ण प्रश्न हैं - पति के वर्चस्व पर सवालिया निशान, यौनिकता का चुनाव, विवाहेतर संबंधों का दावा, तलाक की बढ़ती हुई संख्या और बड़ी संख्या में स्त्रियों का अकेले जीवन यापन करना, बच्चे माँ-बाप की सम्पत्ति और परिवार का औचित्य ? इस प्रकार 'नारीवाद', नारीवादी आन्दोलन से होता हुआ 'स्त्री-विमर्श' तक क्रमशः आगे बढ़ा और इस आगे बढ़ने के साथ-साथ उसके उद्देश्य और औचित्य के प्रश्न में भी परिवर्तन हुआ। इसीलिए इसे 'व्यवस्था परिवर्तन का समग्र प्रश्न'⁷² कहा गया है।

वस्तुतः यदि प्रसिद्ध नारीवादी आन्दोलनकर्ता अरुणा बुरटे के शब्दों में कहें तो 'नारीवादी आन्दोलन एक होमोजिनियस प्रवाह नहीं है, उसमें अनेक शेड्स हैं।'⁷³ इसी कारण आधुनिक पश्चिमी स्त्री-विमर्श निम्नलिखित मुख्य धाराओं या लहरों में विभक्त कर देखा गया है -

प्रथम लहर : नारीवाद की पहली लहर से तात्पर्य ब्रिटेन में शुरू किये गये आन्दोलन से है, जिसके माध्यम से स्त्री अधिकारों के लिए सर्वप्रथम आवाज़ उठाई गयी। पहले चरण का समय 1850 से 1920 के मध्य स्वीकार किया गया है। इस समय आर्थिक असमानता, महिलाओं को राज्य द्वारा सुविधा दिया जाना, समान वेतन, समान शिक्षा जैसे मुद्दों को उठाया गया। इसमें स्त्री के मताधिकारों को लेकर किये गये 'सफ्रेज आंदोलनों' को सम्मिलित किया गया। इसमें एक तरफ न्यूयार्क में एक कपड़ा मिल में काम करनेवाली महिला मजदूरों द्वारा काम के समय और भेदभावपूर्ण परिस्थितियों में

बदलाव को लेकर किया गया आन्दोलन सम्मिलित है तो दूसरी तरफ रूस के पेत्रेगाद की महिला मजदूर के आन्दोलन को भी सम्मिलित किया जाता है, जिन्होंने अपने अधिकारों और युद्ध की परिस्थितियों से निकल आने के लिए आन्दोलन किया। इस समय मेरीवोल्सटनक्राफ्ट, जॉन स्टुअर्ट मिल और हैरियट टेलर आदि प्रमुख नारीवादी हुए। इस समय तक नारीवाद का स्वरूप लिबरल था।

दूसरी लहर : नारीवाद की दूसरी लहर में 1960 के आसपास स्त्री स्वतंत्रता को लेकर किये गये आंदोलनों को सम्मिलित किया गया है। इसमें स्त्री के कानूनी और सामाजिक समानता के प्रश्न को प्रमुखता से उठाया गया। इस समय बेट्टी फ्राइडेन जैसी नारीवादी ने 'नारीवाद के अंत की घोषणा' कर दी। इस समय नारीवाद का स्वरूप रेडिकल हो गया। इस समय स्त्री की देह और उसकी मुक्ति जैसे प्रश्नों को उठाया गया। साथ ही उदारतावादी नारीवाद के सीमित दायरे को विस्तृत करते हुए हर वर्ग की स्त्री जैसे- लेस्बियन, अश्वेत, मजदूर वर्ग की स्त्रियाँ आदि को नारीवाद के दायरे में लाया गया। दूसरी लहर की नारीवादी सैद्धांतिकी का विकास अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस में हुआ। इस धारा में जूलिएट मिशेल, एन. ओकली, केट मिलेट, रॉबिन मारगेन, सुलामिथ फायरस्टोन, जर्मन ग्रीयर, सिमोन द बोउआर आदि प्रमुख नारीवादी हैं। इस समय जो महत्वपूर्ण कार्य हुए वे हैं - 1966 में राष्ट्रीय महिला संगठन की स्थापना, ब्रा बर्निंग आन्दोलन, 1970 में लंदन में आयोजित विश्व सुंदरी प्रतियोगिता का बहिष्कार, 1978 में नारीमुक्ति सम्मेलन में नारीवादी आन्दोलन का दो धड़ों - समाजवादी और रेडिकल में विभाजन आदि।

तीसरी लहर : तीसरी लहर का समय बीसवीं शताब्दी के अंत से स्वीकार किया जाता है। इस समय तीसरी दुनिया के स्त्री-विषयक मुद्दों जैसे अश्वेत और दलित नारीवाद को स्थान दिया गया। इसके अतिरिक्त पर्यावरणीय नारीवाद और इस्लाम को केंद्र में रखकर किया गया नारीवाद इसी धारा की देन है। इस समय की प्रमुख नारीवादियों में रेबेका वाकर, शैनन लिस, ग्लोरिया एंजलडुआ, बेल

हुक्स, शेला सैंडोवाल, चेरी मोरग, आड्रे लाड्रे, मैक्सैन हॉन्ग किंगस्टन, शर्मीला रेगे, उल्लेखनीय हैं। इस समय डोरोथी स्मिथ और पैट्रिसिया हिल कोलिन्स ने 'स्टैंड पॉइंट फेमिनिज्म' का सिद्धांत प्रस्तुत किया। इसके अनुसार स्त्री के ज्ञान और उसकी स्थिति पर उसके समाज का विशेष प्रभाव पड़ता है इसलिए उनको लेकर किये गये चिंतन का स्वरूप भिन्न-भिन्न हो सकता है और इस दायरे में उनकी जाति, प्रजाति, वर्ग, वर्ण आदि को भी लाना चाहिए। उसके अनुसार इसमें स्त्री की वैश्विक समस्याओं जैसे - बलात्कार, पारिवारिक दुराचार, वेश्यावृत्ति के साथ-साथ संस्कृति विशेष से सम्बंधित मुद्दों जैसे - अफ्रीका और मध्य-पूर्व के क्षेत्रों में स्त्री जननांगों से छेड़-छाड़ या खतना, और स्त्रियों को आगे बढ़ने से रोकने वाले कारकों (ग्लास सीलिंग) आदि को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। इस धारा में मीडिया की भूमिका पर जोर दिया गया।

इसी लहर में 1980 के आस-पास पूर्वी देशों में हो रहे स्त्रीवादी चिंतन की ओर ध्यान गया, जब नारीवादी लेखिका गायत्री स्विवाक ने तीसरी दुनिया के देशों के लेखकों की रचनाओं की उपेक्षा किये जाने की आलोचना की और विश्व के सभी नारीवादी लेखकों के रचना कर्म को सामने लाने की माँग की। इसी क्रम में भारत में नयन तारा सहगल, शशि देशपांडे, कमला दास, शोभना डे और अरुंधती राय के विचार और कार्य प्रकाश में आये। बांग्लादेश में सेलिना हुसैन, दिलारा हासिम, पूर्वी बासु, नाहिद हुसैन, नियाज़ ज़मान के साथ तसलीमा का लेखन भी प्रकाश में आया।

पोस्ट-फेमिनिज्म या उत्तर नारीवाद : उत्तर नारीवाद, द्वितीय लहर की आलोचना के उपरान्त उत्पन्न हुआ जबकि तृतीय लहर, द्वितीय लहर के इतिहास को संजोते हुए आगे बढ़ी। क्रिस्टीना होफ सोफर, नादइन स्ट्रोसन, एमेलिया जोन्स आदि इस समय की प्रमुख नारीवादी चिन्तक हैं।

चतुर्थ लहर : इसमें सन् 2012 के बाद स्त्री को लेकर किये गये चिंतन को सम्मिलित किया गया है, जो सोशल मीडिया पर आधारित रहा। प्रूडेंस चैम्बरलेन के अनुसार यह चरण मुख्यतः यौन उत्पीड़न, स्त्री विरुद्ध हिंसा, स्त्री जाति से द्वेष और लैंगिक समानता जैसे प्रश्नों पर केन्द्रित है ⁷⁴ और इन

मुद्दों को उठाने के लिए सोशल मीडिया के माध्यम से कई आन्दोलन खड़े किये गये जो काफी सफल भी रहे। उपरोक्त विभिन्न चरणों के दौरान नारीवाद के विभिन्न रूप दिखाई दिए। जैसे - 'लिबरल फेमिनिज्म', 'मार्क्सवादी फेमिनिज्म', 'रेडिकल फेमिनिज्म', 'साइको-एनालाटिकल फेमिनिज्म', 'इंडीविजुअल या अस्तित्ववादी फेमिनिज्म', 'इको-फेमिनिज्म', 'रिलेशनल फेमिनिज्म' आदि।

दूसरी तरफ यदि भारत के साथ-साथ दक्षिण एशियाई देशों की बात करें तो यहाँ नारीवाद की शुरुआत पश्चिम की देन के रूप में स्वीकार की जाती है। किन्तु भारत के सन्दर्भ में देखें तो उन्नीसवीं शताब्दी और उसके बाद किया गया लेखन इस बात का प्रमाण है कि भारतीय नारीवाद ने भले ही पाश्चात्य स्त्री आन्दोलन और विमर्श से प्रभावित होकर दिशा बदली हो किन्तु यह मूल में भारतीय ही था। इसीलिए प्रभा खेतान लिखती हैं, "नारीवाद आन्दोलन जिस रूप में भारत की जमीन पर प्रस्फुटित हुआ ऐतिहासिक रूप से वह अमेरिका की अश्वेत नारीवादी राजनीति से बिल्कुल भिन्न रहा है।"⁷⁵ और तसलीमा भी यही कहती हैं, "नारीवाद पश्चिम की जागीर नहीं है।"⁷⁶ क्योंकि "औरतों के साथ बदसलूकी किसी भौगोलिक सरहद तक सीमित नहीं है।"⁷⁷ हिंदी साहित्य में इसके उदाहरण के तौर पर 'सीमंतनी उपदेश', 'सरला एक विधवा की आत्मकथा', स्फुरना देवी और महादेवी वर्मा के लेखन को रखा जा सकता है, जिसमें स्त्रियों को लेकर चिंतन के प्रश्नों को सशक्त रूप से उस समय खड़ा किया गया, जब भारत में स्त्री-विमर्श जैसी कोई चीज ही नहीं थी। सुधा अरोड़ा ने अपने लेख '8 मार्च का महिला दिवस : इतिहास और वर्तमान'⁷⁸ में यह लिखा है कि भारत में स्त्री आन्दोलन की वास्तविक शुरुआत 1977 में आपातकालीन परिस्थितियों में हुई। स्त्रियों ने नेतृत्व विहीन घुटन भरे माहौल से निकल आने के लिए आपातकाल विरोधी आन्दोलन में तो हिस्सा लिया ही साथ ही कई संगठन भी बनाये गये, जिसमें सौन्दर्य प्रतियोगिताएँ, स्त्री-लिंग परीक्षण एवं महिलाओं के गिरते स्वास्थ्य के मुद्दों को प्राथमिकता से उठाया गया। इसी समय महाराष्ट्र में हुए मथुरा काण्ड के बाद स्त्री संगठनों की सक्रियता बढ़ी।

वस्तुतः भारतीय उपमहाद्वीप में उठे स्त्री-विमर्श को विश्व में प्रचलित रहे नारीवाद की तीसरी लहर के अंतर्गत रख कर देख सकते हैं, जो लैटिन अमेरिकी, एशियाई और अश्वेत नारियों से सम्बन्धित थी। इसमें समाज की विभिन्नता के अनुसार स्त्री-विमर्श के स्वरूप में भिन्नता का पुट मौजूद था। इस रूप में यह पाश्चात्य स्त्री-विमर्श से भिन्न था। यहाँ इतनी भिन्नता रही है कि समस्त स्त्रियों के लिए एक सिद्धांत के आधार पर यहाँ काम नहीं किया जा सकता। इसीलिए 'अल्पसंख्यक स्त्री', 'दलित स्त्री', 'आदिवासी स्त्री' और 'सवर्ण स्त्री' जैसे मुद्दे मुखरित हुए। इन मुद्दों एवं तत्संबंधी समस्याओं को साहित्य के माध्यम से मुखरित किया गया। इस साहित्य के रूप में उपन्यास, कहानी, कविता और आत्मकथा ने विशेष भूमिका का निर्वाहन किया। यह साहित्य स्वयं स्त्रियों के माध्यम से तो लिखा ही गया लेकिन इसमें पुरुषों ने भी काफी योगदान दिया।

एक तरफ विमर्शों के बीच पल-बढ़ रहे इसी साहित्य का महत्व रेखांकित करते हुए शम्भूनाथ लिखते हैं, "सामुदायिक विमर्शों पर आधारित साहित्य का एक योगदान यह है कि इसने साहित्य का केन्द्रीकरण खत्म किया और विविधता को प्रोत्साहित किया। इसने स्वयंभू साहित्यिक नेताओं की इजारेदारी तोड़ी। साहित्य बहुकेन्द्रित हुआ। एक बार लघु पत्रिकाओं ने साहित्य को बहु केन्द्रित किया था, इस बार विमर्शों ने इस काम को आगे बढ़ाया है।"⁷⁹ तो दूसरी तरफ विमर्शात्मक साहित्य पर बदले की भावना से लिखे जाने का आरोप भी लगाया जाता है। वस्तुतः विमर्शात्मक साहित्य के लेखन की शुरुआत पीड़ा से हुई है। वह पीड़ा जो उस वर्ग विशेष ने सदियों से सही है। स्त्री की स्वानुभूति पर आधारित साहित्य के सम्बन्ध में रमणिका गुप्ता लिखती हैं, "जब मनुष्य का मूल्य आँका जाने लगा और उसके हक़ का सवाल उठा तो मनुष्यों की ही एक प्रजाति स्त्री के हक़ का सवाल भी उठा, जिसे पितृप्रधान समाज ने दोगम-दर्जे का बना दिया था। उसकी मुक्ति कामना भी जागी। नारी स्वयं जागी। उसने अपने अनुभवों पर आधारित ऐसा साहित्य रचा जो उसके प्रति बरते गये भेदभाव को दर्शाने के साथ-साथ उसकी अनुभूतियों को दर्शाने लगा, जो प्रेम, घृणा, आपसी व्यवहार, सेक्स के रिश्ते, विवाह के बन्धनों और दुश्मनी तथा दोस्ती में भी एक अलग एहसास की पहचान कराता है।"⁸⁰

मलयाली कवि के. सच्चिदानन्द, "आज की स्त्री कवियों में स्त्री-मानस को एक भाषा मिली है। इन सबों ने मिलकर लिंग केन्द्रित (फेलोसेंट्रिक) व्यवस्था को ललकारा है, साहित्यिक विषय के प्रतिमानों को पुनः परिभाषित करने का प्रयत्न किया है, नारी देह केन्द्रित भाषा की एक सामानांतर संकेतिकी गढ़ी है।"⁸¹ राजेन्द्र यादव लिखते हैं, "यह सही है कि नारी मुक्ति आन्दोलन अनेक उलझनों और भटकनों के शिकार रहे हैं। सभी दलित आन्दोलन हो जाते हैं। कहीं वे मालिक पुरुषों से होड़ लेकर उन्ही की तरह हंटरवाली (हेमंत) बन जाने के रूप में आये हैं, तो कहीं पुरुष अस्तित्व को ही नकार कर स्वायत्त और स्वसम्पूर्ण हो जाने में। इन दोनों स्थितियों से होता हुआ नारी-मुक्ति आन्दोलन एक नई अवस्था में आ गया है, जहाँ स्त्री एक सह नागरिक की तरह अपनी पहचान स्थापित करना चाहती है और इसके लिए उसका सारा प्रयास अब तक प्रयुक्त भाषा और मानसिकता के अस्वीकार और स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में स्वीकृति का है।"⁸² इस पहचान को स्थापित करने में मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, अनामिका, कात्यायनी, प्रभा खेतान, रेखा कस्तवार आदि लेखिकाओं का समाज से भिड़ जाने वाला लेखन अति महत्वपूर्ण रहा है। इस सम्बन्ध में कई पुरुष लेखकों जैसे- मैथली शरण गुप्त, पन्त, निराला, प्रेमचंद, जैनेद्र, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय, राजेन्द्र यादव, ने भी अपने लेखन द्वारा स्त्री जीवन की व्यथा को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। किन्तु पुरुषों द्वारा किये जा रहे अधिकतर प्रयास को शीबा असलम फहमी 'लिप सर्विस'⁸³ (अर्थात् दिखावे की हमदर्दी) या 'गल-थोथरी'⁸⁴ कहकर एक सिरे से खारिज कर देती हैं। वे ऐसा इसलिए कहती हैं क्योंकि पुरुष जो अपने लेखन में स्त्रियों के लिए पीड़ा से भर उठते हैं और उनके अधिकारों के लिए उत्तेजित दिखते हैं, वही पुरुष अपने व्यवहारिक जीवन में घर की स्त्रियों को तमाम अधिकारों से वंचित करते नजर आते हैं। तसलीमा ने भी इस सन्दर्भ में पुरुष लेखकों पर कटाक्ष करते हुए लिखा, "वैसे प्रगति की हिमायत करना बेहद आसान बात है; समानता का परचम लहराना भी सहज है। लेकिन अपनी निजी जिन्दगी में इसे कबूल करना, अपनी जिन्दगी में उतारना बेहद मुश्किल होता है।"⁸⁵ इसलिए शीबा असलम पुरुष स्त्रीवादियों से यह कहती दिखती हैं कि 'अगली बार यदि स्त्री विमर्श सूझे'⁸⁶ तो

पहल अपने ही घर से की जाय। इसके साथ क्रिश्चन बेस समस्त नारीवादियों चाहे वे पुरुष हों या स्त्री को चेताते हुए लिखती हैं, "नारीवादियों का इरादा है, नारियों के बारे में अपना मत साधना" इसलिए वे कहती हैं नारी के बारे में नहीं 'इन्सान के बारे में सोचो'⁸⁷।

4.2 तसलीमा की आत्मकथा में पितृसत्ता :

तसलीमा की पितृसत्ता सम्बन्धी दृष्टि समझने के पूर्व यह देखना आवश्यक है कि बांग्लादेश में स्त्रियों की स्थिति क्या है और इस सम्बन्ध में संवैधानिक प्रावधान क्या हैं। क्योंकि तसलीमा का पितृसत्ता सम्बन्धी दृष्टिकोण और स्त्री-सम्बन्धी चिंतन देश में स्त्रियों की स्थिति को देखने के फलस्वरूप किये गये चिंतन की ही उपज है।

(क) बांग्लादेशी समाज में पितृसत्ता का स्वरूप और स्त्रियों की स्थिति :

फौरी तौर से देखें तो बांग्लादेश में स्त्रियों की स्थिति में स्वतंत्रता के बाद काफी सुधार हुआ है। 1988 से बांग्लादेश में कोई भी पुरुष प्रधानमंत्री नहीं चुना गया, जो किसी भी समाज और देश के लिए गर्व का विषय हो सकता है। ऐसे में यह अपेक्षा भी बढ़ जाती है कि स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत सुदृढ़ होनी चाहिए। इसके लिए यहाँ यह आवश्यक है कि यह देखा जाय कि बांग्लादेश का संविधान इस सम्बन्ध में कौन-कौन से प्रावधान करता है और व्यावहारिक स्तर पर स्त्रियों की वास्तविक स्थिति क्या है?

बांग्लादेश का संविधान सार्वजनिक जीवन में स्त्री और पुरुष के लिए समान अधिकार की घोषणा करता है। इसका उदाहरण उसके विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से देखा जा सकता है -

- अनुच्छेद 19 - इसमें राज्य सभी क्षेत्रों में स्त्रियों के लिए अवसर की समानता का प्रावधान करता है।⁸⁸
- अनुच्छेद 29 (2,3,4) इस के सभी उप-अनुच्छेद यह प्रावधान करते हैं कि स्त्रियों को जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों के समान ही अधिकार दिये जायेंगे, स्त्रियों के प्रति लिंग के आधार पर राज्य

किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगा और जरूरत पड़ी तो राज्य स्त्रियों के लिए विशेष व्यवस्था कर सकता है।⁸⁹

- अनुच्छेद 65 (3) के अनुसार 'महिलाओं के लिए 50 सीटें आरक्षित होंगी जिनपर उनका चुनाव एकल संक्रमणीय आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति के माध्यम से किया जाएगा।'⁹⁰

इसके अतिरिक्त महिलाओं के लिए विशेष कानून भी बनाये गये हैं। जैसे - दंड संहिता-1860, दहेज विरोधी दंड अधिनियम-1980, महिलाओं के विरुद्ध क्रूरता का दमन अधिनियम - 1983, महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध दमन की रोकथाम अधिनियम 2000 आदि। तसलीमा ने बांग्लादेश में लागू उत्तराधिकार कानूनों का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया। उनके अनुसार बांग्लादेश में 'मुस्लिम परिवार कानून' 1961 लागू है। इसके अनुसार पिता की सम्पत्ति में से पुत्री का हिस्सा पुत्र के हिस्से का आधा होगा। पति की सम्पत्ति में यह हिस्सा 1/8 और बेटे की सम्पत्ति में 1/16 होगा। बांग्लादेश के विरासती कानून के अनुसार किसी व्यक्ति की सन्तान यदि एक मात्र पुत्री है तो कानून के अनुसार सारी सम्पत्ति व्यक्ति के भाई को मिलेगी। यदि व्यक्ति अपनी पुत्री को सम्पत्ति देना चाहे तो उसे उसके नाम रजिस्ट्री करानी होगी। रजिस्ट्री के लिए उसे सम्पत्ति का दस प्रतिशत कर देना होगा। इसी प्रकार वे 'हिन्दू उत्तराधिकार कानून' की भी पड़ताल करती हैं और यह पाती हैं कि हिन्दू औरतों की स्थिति इस मामले में मुस्लिम औरतों से कहीं ज्यादा बदतर है। इस कानून के अनुसार मृत व्यक्ति की सम्पत्ति में बतौर उत्तराधिकारी पुरुष वर्ग में पोते-पड़पोते तक हकदार माने गये हैं लेकिन उस तालिका में औरत का कहीं नाम तक नहीं है! बीवी, बेटी, माँ को हिस्सा तब मिलता है जब कोई पुरुष उत्तराधिकारी जीवित न हो।

स्पष्ट है संवैधानिक प्रावधानों और व्यवहार में बांग्लादेश में स्त्रियों की स्थिति में बहुत फर्क है। यूनिसेफ के द्वारा किये गये विभिन्न सर्वेक्षणों के आधार पर प्रस्तुत एक रिपोर्ट⁹¹ के अनुसार बांग्लादेश के सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण में व्यापक लैंगिक भेदभाव होता है, इसलिए लड़कियों और महिलाओं के विकास में कई बाधाएँ आती हैं। लड़कियों को अक्सर अपने परिवार पर आर्थिक

बोझ ही माना जाता है और जन्म के समय से ही उनके स्वास्थ्य, देखभाल और शिक्षा आदि में भेद-भाव किया जाने लगता है। सीमाएँ और भेदभाव उनकी आजीविका, सीखने की क्षमता, मनोरंजन और सामाजिक गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। बाल विवाह, किशोर मातृत्व, अत्यधिक मातृ मृत्यु दर आदि सामान्य बात है। घर में, महिलाओं की भागीदारी बहुत सीमित है और उनकी निर्णय लेने की शक्ति वर्जित है। उदाहरण के लिए, लगभग 48% बांग्लादेशी महिलाओं का कहना है कि उनके पति अकेले अपने स्वास्थ्य के बारे में निर्णय लेते हैं, जबकि 35% का कहना है कि उनके पति केवल अकेले ही परिवार और मित्रों की यात्रा के संबंध में निर्णय करते हैं। महिलाओं के खिलाफ हिंसा महिलाओं के विकास के लिए एक और बड़ी बाधा है। स्त्री की स्थिति में सुधार के लिये शिक्षा महत्वपूर्ण है। हालाँकि बांग्लादेश ने स्त्रियों की प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर काफी सफलता प्राप्त की है किन्तु उनके रोजगार की दर अभी भी काफी कम है। स्त्रियों की मजदूरी पुरुषों की मजदूरी की 60 से 65 प्रतिशत तक ही है। हालाँकि बीस तीस वर्षों में बाल विवाह घटा है किन्तु अभी भी यह कहीं न कहीं दिखाई दे जाता है, ज्यादातर गरीब परिवारों में। जबकि लड़कियों के विवाह की कानूनी उम्र 18 वर्ष है। दहेज प्रथा बहुत ही सामान्य है। दहेज के बावजूद गरीब परिवार में बाल विवाह या कम आयु में विवाह को अधिक लाभप्रद माना जाता है क्योंकि इससे पिता को अधिक दिनों तक पुत्री का भार वहन नहीं करना पड़ता। किन्तु यह लड़कियों के स्वास्थ्य, शिक्षा और उनके सम्पूर्ण विकास की दृष्टि से उचित नहीं है। इसके अतिरिक्त बांग्लादेश में मातृ मृत्यु दर बहुत अधिक है। सरकारी आकड़ों के अनुसार एक लाख में से 320 माताओं की मृत्यु हो जाती है। जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ का अनुमान है कि यह दर एक लाख पर 570 है। घर पर ही बच्चे का जन्म, माँ की कम उम्र, कुपोषण आदि उच्च मातृ मृत्यु दर के लिए उत्तरदायी है। प्रति 51 में से एक बच्चे के जन्म के अवसर पर माँ की मृत्यु होती है। गर्भावस्था की जटिलताओं और उचित इलाज की अनुपलब्धता के कारण प्रति वर्ष पंद्रह हजार स्त्रियों की मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त बांग्लादेश किशोरावस्था में गर्भधारण की दृष्टि से भी विश्व के देशों में प्रमुख है। यहाँ तीन में से एक महिला किशोरावस्था में ही गर्भवती हो

जाती है। बीस की आयु से पहले ही वे गर्भवती हो जाती हैं। हालाँकि इस संख्या में पिछले वर्षों की तुलना में लगातार कमी हो रही है किन्तु इसकी गति अपेक्षाकृत बहुत धीमी है। महिलाओं का मानना है कि चूँकि घर के सभी मामलों के निर्णय पुरुष लेते हैं अतः उनके स्वास्थ्य और इलाज को लेकर भी उनका निर्णय ही महत्वपूर्ण होता है। इस कारण जब तक पति समर्थन नहीं करता या उन्हें इलाज के लिए नहीं ले जाता तब तक वे सारी सुविधाएँ होते हुए भी इलाज से वंचित रह जाती हैं। रिपोर्ट के अनुसार राष्ट्रीय स्तर के आकड़ों को देखें तो कुल प्रसव के 85% प्रसव घर पर ही होते हैं। उचित देखभाल के अभाव में महिलाएँ एनीमिया, कुपोषण आदि की शिकार हो जाती हैं।

इतना ही नहीं स्वास्थ्य के अतिरिक्त स्त्रियाँ घरेलू हिंसा की भी शिकार हैं। रिपोर्ट के अनुसार जब स्त्रियों और पुरुषों से बात की गयी तो एक तिहाई ने स्त्रियों को पीटने को उचित ठहराया। किशोरियाँ कई प्रकार के लैंगिक-विभेद और यौन-उत्पीड़न की शिकार होती हैं। 2007 में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 65 प्रतिशत महिलाएँ बेरोजगार थीं। हालाँकि महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए सरकार द्वारा समय-समय पर कई योजनाएँ बनाई गयी हैं किन्तु यह बहुत अधिक कारगर नहीं हो पा रहा है, इसका कारण पुरुषों का स्त्रियों या अपनी पत्नियों, बेटियों और बहनों पर वर्चस्व है। रिपोर्ट यह सिद्ध करती है कि जो भी वे कमाती हैं उनके पति, भाई या पिता ही निर्धारित करते हैं कि वह कैसे खर्च किया जाएगा। स्त्रियाँ निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं।

इतना ही नहीं वेश्यावृत्ति के उद्देश्य से महिलाओं की तस्करी के मामले यहाँ दिन पर दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। तलाक के लिए महिलाओं को अदालत के आदेश की आवश्यकता होती है जबकि पुरुषों को ऐसे न्यायालयी आदेश की आवश्यकता नहीं होती। इस वजह से वे जब चाहे अपनी पत्नियों को तलाक दे देते हैं। पैतृक संपत्ति में महिला पुरुष के भी आधे हिस्से की हकदार है। कई पारम्परिक प्रथाओं ने महिलाओं का दमन किया है। कई महिलाओं पर स्थानीय धार्मिक नेताओं के द्वारा नैतिक दृष्टि से पतित होने का आरोप लगाया जाता है, जिसके कारण उन पर फतवा जारी कर दिया जाता है, जिससे महिलाओं को सार्वजनिक रूप से सजा दी जाती है। गौरतलब है कि फतवा के

लिए कोई कानूनी व्यवस्था या उपबंध नहीं है यह केवल परम्परा का हिस्सा है, जिसे धार्मिक कट्टरपंथियों ने जारी रखा है, जो स्त्रियों को लेकर बहुत ही संकुचित दृष्टिकोण रखते हैं। इसके अतिरिक्त बांग्लादेशी महिलाएँ एसिड अटैक, पर्दा प्रथा, बलात्कार आदि अन्य समस्याओं से जूझ रही हैं। हालाँकि बांग्लादेश ने कई दशकों से प्रधानमंत्री के रूप में महिलाओं को ही देखा है किन्तु देश की संसद में 330 सदस्यों में से केवल 36 महिलायें ही संसद की सदस्य हैं।

महिलाओं की इस स्थिति का कारण यह है कि वहाँ धर्म का राज्य, समाज और परिवार पर बहुत अधिक दबाव है। हर चीज, हर निर्णय धर्म के द्वारा निर्देशित है। इस्लामिक राष्ट्रीयता के बीच संविधान से कहीं अधिक शरियत को प्राथमिकता दी जाती है। ऐसे में महिलाओं के सन्दर्भ में भी इस्लामिक कानूनों और धार्मिक पुस्तक कुरान का ही पालन किया जाता है। सामंती विचारधारा वाले इस्लाम में महिलाओं को एक वस्तु से अधिक कुछ नहीं समझा जाता। ऐसे में बराबरी का दर्जा तो बहुत दूर की कौड़ी है। दरअसल धर्म के आधार पर चलते हुए सामाजिक समानता स्थापित करना बहुत मुश्किल है। बांग्लादेश भी महिलाओं के सम्बन्ध में उन्ही समस्याओं से जूझ रहा है, जिससे ज्यादातर इस्लामिक राष्ट्र जूझ रहे हैं। 'द फ्रैक्चर्ड स्केल' की लेखिका फ्रॉस्टिना परेरा का मत है "नागरिकों के किसी भी पिछड़े वर्ग के साथ महिलाओं का रखा जाना, उनके प्रति सुरक्षात्मक दृष्टिकोण पितृसत्ता का द्योतक है। कानून की भाषा, सभी कानूनों की भाषा आज तक पितृसत्तात्मक ही रही है।"⁹²

स्पष्ट है, बांग्लादेश में स्त्रियों का जीवन बदहाल है और पितृसत्तात्मक मानसिकता और धर्म के शिकंजे में इस तरह फँसा हुआ है कि उससे पार पाना उसके लिए अत्यंत मुश्किल जाना पड़ता है।

(ख) तसलीमा की आत्मकथा में पितृसत्ता से शोषित स्त्रियों का जीवन

तसलीमा ने आत्मकथा में अपने जीवन के साथ-साथ कई स्त्रियों के जीवन की कथा को भी प्रस्तुत किया है। इन कथाओं में कभी तसलीमा की माँ हैं तो कभी नानी, कभी सहेली चन्दना तो

कभी बहन यास्मीन, कभी मोहल्ले की औरतें तो कभी देश की सीमा पार की औरतें भी हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि तसलीमा की आत्मकथा, केवल अपने देश की स्त्रियों को ही नहीं बल्कि सुदूर पश्चिम के तथाकथित स्वतंत्र समाजों की स्त्रियों को भी देखती हैं, जिनके जीवन को अपेक्षाकृत स्वतंत्र होने का दावा किया जाता है। दरअसल स्त्री के जीवन की त्रासदी जो पुरुषों के द्वारा उत्पन्न की जाती है उसका कोई अंत नहीं। हर स्त्री का जीवन भीतर से देखने पर एक समान ही लगता है, जैसा कि तसलीमा की पर-नानी, नानी, माँ और स्वयं तसलीमा के जीवन में भी दिखता है। सभी एक ही प्रकार की मानसिकता से त्रस्त हैं और वह है 'पितृसत्ता'।

(अ) स्त्री के रूप में तसलीमा का जीवन और उसमें पुरुष की भूमिका

चूँकि तसलीमा दो बेटों के बाद पैदा हुई इसलिए उनके पैदा होने पर कोई दुःख नहीं मनाया गया। इस सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "मेरे पैदा होने से पहले दो भाई जन्म ले चुके थे। बेटा पैदा करने के कारण माँ मुँह दिखाने लायक रह गयी थी। अन्यथा खानदान में चिराग कौन जलाता?"⁹³ लेकिन साथ ही 'बड़े भाइयों के पैदा होने के बाद मेरे नाना ने घर की सीढ़ियों पर खड़े होकर मुहल्लेवालों को सुनाकर 'अल्ला हो अकबर' की अज्ञान लगाई थी। मेरे पैदा होने पर अज्ञान नहीं दी गयी। बेटियों के पैदा होने पर अज्ञान नहीं दी जाती।⁹⁴ स्पष्ट है, तसलीमा ने समाज और परिवार के पितृसत्तात्मक स्वरूप को सर्वप्रथम अपने परिवार के भीतर ही देखा। नाना, पिताजी, मामाओं और दो भाइयों के बीच पलने-बढ़ने वाली तसलीमा ने लगभग हर दिन परिवार में पुरुष प्रभुत्व को महसूस किया। "छोटकू जा सकता है, तुम नहीं। तुम लड़की हो। लड़कियों को दुकान पर नहीं जाना चाहिए।"⁹⁵ 'पितृसत्ता के चलते स्त्रियों को बचपन से, घर से ही लैंगिक भेद-भाव झेलने की आदत डाल दी जाती है। बेटे को शिक्षा। खेलकूद, आहार, चिकित्सा और सामाजिक मेल जोल में प्राथमिकता दी जाती है। कन्याओं के लिए निषेधों की बड़ी लक्ष्मण रेखा खींच दी जाती है। स्त्री को पुरुष वर्चस्व वाले समाज से भय लगता है। बालक शाम को ट्यूशन पढ़ने जा सकता है पर बालिका नहीं जा सकती। उसे समाज की यौन-आक्रामकता से भय है। यह भय है पितृसत्ता का।"⁹⁶ तसलीमा

के लिए भी इसी प्रकार की लक्ष्मण रेखा खिंची गयी - "जब मैं छोटी थी, तब कहा जाता था, मैं छोटी हूँ, अकेले उतनी दूर जाना ठीक नहीं... जब मैं बड़ी हुई तो कहा जा रहा था कि बड़ी लड़कियों का बाहर निकलना ठीक नहीं।"⁹⁷ किन्तु तसलीमा ने कभी-भी इस लक्ष्मण रेखा के भीतर रहने की आज्ञा का पालन नहीं किया। उनके द्वारा लक्ष्मण रेखा के बाहर निकल आने के अनुभव काफी दर्द भरे और जटिल रहे। ब्रह्मपुत्र के तट पर ही नहीं जहाँ भी वे गयीं वहाँ उन्हें अपनी देह से खेलने वाले पुरुष ही मिले। स्त्री के लिए उसका घर ही सबसे सुरक्षित कहा जाता है। किन्तु पिता द्वारा घर को लाख सुरक्षित बनाए जाने के बावजूद घर के भीतर के पुरुष की कुत्सित मानसिकता से वे तसलीमा को नहीं बचा सकें। घर के भीतर ही रहने वाले उनके ही चाचा और मामा ने तसलीमा का शारीरिक शोषण किया। यहाँ तक कि अपने ही घर की छत पर भी तसलीमा सुरक्षित नहीं थीं। आस-पास के सिरफिरे मोहल्ले के लड़के अश्लील इशारे किया करते थे। उन लड़कों या अन्य पुरुषों ने बचपन में उनके साथ जो कुछ भी किया उसके लिए वे शर्म से बुझ गयीं उनका आत्मविश्वास समाप्त होता गया। वे लिखती हैं, 'मुझे शर्म आई, मानो उन लड़कों की करतूत के लिए पूरी तरह मैं ही जिम्मेदार थी।'⁹⁸ और 'अंदर ही अंदर सिकुड़ती गयी, जैसे इसके लिए मैं ही कसूरवार हूँ।'⁹⁹ जिस शर्म का एहसास उन पुरुषों को होना चाहिए था वह तसलीमा महसूस करती रहीं। इसका कारण समाज द्वारा उन पुरुषों में स्थापित की गयी पुरुषों की श्रेष्ठता का दंभ नहीं तो और क्या था ?

मासिक धर्म के रूप में स्त्री के साथ की गयी नियतिगत भिन्नता पर भी तसलीमा कोपित व्यक्त करती हैं और इसे 'पक्षपातपूर्ण कुत्सित नियति'¹⁰⁰ की संज्ञा देती हैं, जिसके कारण उन्होंने बची हुई आजादी को भी 'सेमल की रुई की मानिंद'¹⁰¹ उड़ते हुए देखा। तसलीमा लिखती हैं, 'मुझे बड़ा होने का बेहद शौक था... लेकिन इस रक्त पात ने मुझे इतना बड़ा कर दिया, सभी के इतने ओट में कर दिया कि मुझे डर लगने लगा। माँ ने ग्यारह साल की होते ही मेरा हाफपैट छुड़वाकर अपने हाथों से पाजामा सिलकर मुझे पहनाया था। बारह साल की होने पर ओढ़नी थमा दी। मेरी टाँगें लम्बी हो रही

थीं, सीना उभरने लगा था, इसलिए बड़ी होने वाली चीजों को अब छिपाए रखना था। अगर मैं ये चीजें न पहनूँ तो लोग मुझे बेशर्म, निर्लज्ज कहेंगे।"¹⁰²

जीवन में किसी 'अन्चीन्हा-अनजान इन्सान'¹⁰³ के प्रेम में कभी न पड़ने के बारे में सोचने वाली तसलीमा एक दिन प्रेम कर बैठी ऐसे ही अनचीन्हे अनजाने पुरुष रुद्र से। रुद्र जिसे वह कविताओं में तो बखूबी जानती थीं किन्तु उसके व्यवहारिक जीवन में वह कौन था, उसका परिवार उसका खानदान, उसकी आर्थिक स्थिति जाने बगैर ही उन्होंने रुद्र से विवाह कर लिया वह भी बिना किसी को बताये। किन्तु यह विवाह नहीं स्वयं के पैर में कुल्हाड़ी मार लेना साबित हुआ। जिस प्रेमी के लिए तसलीमा अपना सब कुछ छोड़कर घर से बाहर चल पड़ी थीं, उसी 'प्रेमी' को 'पुरुष' बनते देर नहीं लगी। एक हलफनामे पर हस्ताक्षर कर तसलीमा तो 'कागज़ की बहू' बन गयी और अपना समस्त प्यार, समय, पैसा उस कविता लिखने वाले पुरुष पर न्योछावर कर दिया किन्तु वही प्रेमी चंद दिनों में तसलीमा का संरक्षक और निदेशक बन बैठा। रुद्र ने तसलीमा में एक औरत देखी, जबकि तसलीमा रुद्र में एक प्रेमी, एक साथी, एक मित्र की तलाश कर रहीं थीं। रुद्र के साथ बिताई पहली रात तो जैसे उनके बलात्कार की तरह थी, जिसमें प्रेम नहीं शारीरिक तृप्ति का खेल होता रहा। वह तसलीमा के प्रेम को दरकिनार कर अन्य औरतों से भी संसर्ग करता रहा। इस शारीरिक अतृप्ति के अतिरिक्त तसलीमा को सामाजिक स्तर पर भी हानि ही झेलनी पड़ी। उन्हें लेखिका तसलीमा के स्थान पर हर जगह रुद्र की पत्नी के रूप में देखा जाने लगा। इतना ही नहीं रुद्र ने तसलीमा पर अपने सभी- भाई बहनों की जिम्मेदारी सौंप दी और स्वयं स्वच्छंद होकर अन्य स्त्रियों से संसर्ग करता रहा। तसलीमा को एहसास होने लगा कि विवाह केवल पौरुष को पुष्ट करने का माध्यम है। जैसे ही यह पुष्ट हो जाता है स्त्री केवल गृहस्थी समेटने वाली और बच्चे पैदा करने वाली मशीन बन कर रह जाती है। प्रारंभ में तसलीमा ने इन सबसे समझौता करने का प्रयास किया, क्योंकि वे रुद्र को प्रेम करती थीं। किन्तु जैसे ही उन्हें यह एहसास हुआ कि उनके प्रेम का कोई मूल्य नहीं है उन्होंने रुद्र से तलाक ले लिया।

तसलीमा ने तो यह कदम उठा लिया किन्तु अधिकांश स्त्रियाँ ऐसा कदम आजीवन नहीं उठा पातीं और समझौतों से भरा जीवन जीती रहती हैं।

इस तलाक के बाद तसलीमा ने अकेले रहने का संकल्प लिया। किन्तु यह संकल्प बहुत दिनों तक नहीं रह सका। क्योंकि अकेली स्त्री को ढाका जैसे शहर में कोई भी एक कमरा देने को तैयार नहीं था। उन्होंने इस परेशानी से तंग आकर नईम से और बाद में मीनार से विवाह किया। किन्तु दोनों ने भी वही रवैया अपनाया जो रुद्र ने अपना था। वे तसलीमा जैसी स्त्री को अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे और उससे अपने नियंत्रण में भी रखना चाहते थे। किन्तु तसलीमा ने इस बार भी स्वयं को इन पुरुषों की कैद से मुक्त कर लिया। अपनी मर्जी से ब्याह करने वाली तसलीमा अपने ही घर में 'अनचाही अतिथि'¹⁰⁴ बन कर रह गयीं। 'पति नामक सुरक्षा को जरूरी' समझ तसलीमा ने एकाधिक पुरुषों से ब्याह तो किया किन्तु ये विवाह उनके लिए 'अपने गले में खुद फाँसी लगाने' जैसा ही था इस फाँसी की रस्सी को 'लोग-बाग पसंद करते हैं' किन्तु तसलीमा तो स्वयं को 'कोल्हू के बैल की तरह गोल-गोल घूमता'¹⁰⁵ हुआ ही महसूस कर रही थीं। साथ ही एकाधिक विवाह के कारण उनकी देह से जो कलंक चिपक गया था उसे देखते ही लोग उन्हें 'कलंकिनी मान'¹⁰⁶ लेते हैं और माँ भी आरोप लगाने से बाज नहीं आती, "अउरतों के बारे में इतना-इतना लिखत हो, मरद लोगन की करतूत लिखत हो, लेकिन मरद बिना जी नाही सकती ?"¹⁰⁷ और वही तसलीमा जब सभी पुरुषों से तलाक लेकर अलग रहने का विचार बनाती हैं तो उन्हें 'पति-विहीना' की दृष्टि से देखा जाता है और स्वयं को ढके रखने के लिए पति रुपी 'बेशकीमती चादर'¹⁰⁸ की अनिवार्यता को महसूस करती हैं।

इसके बाद भी तसलीमा के जीवन में कई पुरुष आये। बांग्लादेश में मिलन और विदेशी धरती पर सुयेनसन और फ्रांस के लरों जैसे पुरुष उनके जीवन में आये किन्तु कोई पुरुष कभी सच्चे प्रेम के साथ नहीं आया। बल्कि तसलीमा के कथन 'जो इन्सान एक बार विश्वास तोड़ता है, वह हर बार विश्वास का खून करता है। तोड़-फोड़ करना ही उसका नशा बन जाता है'¹⁰⁹ के समान हर बार उनका विश्वास तोड़ने ही आए। तसलीमा ने ऐसी तमाम बड़ी-बड़ी शख्सियत का नाम आत्मकथा में लिया

है, जिन्होंने तसलीमा का किसी न किसी रूप में फायदा उठाने का प्रयास किया था। इसमें अबुहसन शहरयार, लेखक हाशन रशीद, हिलाल हाफिज़, सैय्यद शम्शुलहक़, इमदादुल हक़ मिलन, अताउल करीम शरीफ़, काजल शाहनवाज़, अब्दुल करीम, जनाब मोजम्मल, नईम, मेडिकल अधिकारी हारून-उर-रशीद, मानू (बांग्लादेश मेडिकल एसोशियेशन का नेता), सुनील गंगोपाध्याय, हबीबुल्ला जैसे पुरुष सम्मिलित हैं, जो आत्मकथा में समय-समय पर तसलीमा के विश्वास को तोड़ते नज़र आये हैं।

निर्वासन के बाद तसलीमा की सम्पत्ति पर उनके ही भाइयों ने कब्ज़ा कर लिया क्योंकि उन्हें इसके लिए बकायदा कानूनी संरक्षण प्राप्त था। बांग्ला कानून के अनुसार जिस स्त्री की गृहस्थी न हो उसकी सम्पत्ति पर भाइयों का ही हक़ होता है।

इस प्रकार तसलीमा ने अपने जीवन में कदम-कदम पर पितृसत्तात्मक मानसिकता को ही नहीं बल्कि पितृसत्तात्मक कानूनों की जकड़न को भी महसूस किया। उनका जीवन इस जकड़न से निकलने की लगातार की जाने वाली कोशिश का सबसे बेहतरीन उदाहरण है।

(आ) माँ के जीवन में पितृसत्ता : तसलीमा की माँ का जीवन एक आम स्त्री के पितृसत्ता से तहस-नहस हुए त्रासद जीवन का प्रमाण है - 'अम्मी को अभाव था मगर अभावबोध नहीं था।' ¹¹⁰ दरअसल यह अभावबोध ही तो स्त्री को वह सब करने पर विवश करता है, जो उसे नहीं करना चाहिए। इसी कारण माँ आजीवन पिता, भाई, पति और बेटों के रूप में पुरुषों के द्वारा बनाई चाहरदीवारी से घिरी रही और इस दीवार को महसूस करने के बावजूद इससे निकल पाने का साहस वह आजीवन बटोर नहीं पायी। उस माँ को जो निरंतर अपने पति के तिरस्कार और अपमान की शिकार बनी रही जब पिता के द्वारा मेहमानों के लिए भोजन पकाने के लिए फेहरिस्त गिनाई जाती तो वह गर्व से फूल उठती। 'अम्मी उनकी सारी बातें ध्यान से सुनती थीं, क्योंकि इसी वक्त उन्हें अपने मूल्यवान होने का एहसास होता था।' ¹¹¹ नानी के द्वारा दी गयी हिदायत 'थोड़ा बर्दाश्त कर, औरतों को बर्दाश्त करने की आदत होनी चाहिए' ¹¹² का पालन करते-करते बर्दाश्त करने की आदत इस हद तक बढ़ गयी कि

अपने भीतर पल रही भीषण बीमारी का कभी सही इलाज करने का कदम स्वयं नहीं उठा सकी । दरअसल घर गृहस्थी के बोझ से स्त्री 'बासी गुलाब की तरह हो जाती है हाथ लगाते ही झर पड़ेगी-कुछ इस तरह से ।'¹¹³ हर व्यक्ति का दर्द महसूस करती '... एक नामालूम-सी बेवकूफ लड़की का भी दिल होता है, उसमें भी उथल-पुथल होती रहती है, इसे कौन समझता है ?'¹¹⁴ पढ़ने में तेज माँ की पढ़ाई छुड़वाकर 'जैसे उनके पैरों में किसी ने अदृश्य जंजीर डाल दी । माँ के सपने एक बार फिर टूटकर बिखर गये ।'¹¹⁵ इस अशिक्षा और अज्ञान के ही कारण 'एक ही परिवार में माँ और बेटी लगभग एक ही समय गर्भवती हुईं ।'¹¹⁶

पढ़ने में तेज तसलीमा की माँ आजीवन केवल घर की नौकरानी बनकर रह गयीं । इस बात का एहसास उनकी माँ को हर क्षण होता रहा । 'अम्मी का ख्याल था औरत चाहे अमीर की बीवी हो या दरिद्र की, उसकी तकलीफ की सीमा नहीं होती... अमीर की बहुरिया होना और अमीर होना बिलकुल अलग-अलग बात है ।'¹¹⁷ यानी जब तक औरत के पास उसका अपना धन न हो पति या परिवार के धन के आधार पर उसे धनी नहीं कहा जा सकता । कुछ ऐसा ही तो वर्जीनिया वुल्फ ने 'अपना एक कमरा' में भी कहा था । यही कारण है कि असुरक्षा से घिरी तसलीमा की माँ आजीवन अभाव और शक के बीच जीती रही, जहाँ 'सम्मोहन के नीचे संशय, हर्ष के बगीचे में हताशा'¹¹⁸ विद्यमान थी । इस हताशा ने तसलीमा की माँ में कमतरी का एहसास भर दिया 'पिताजी की मोटी-मोटी चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तके माँ खोलकर देखती, फिर उन्हें झाड़-पोछकर करीने से रख देती । वह समझती थी कि अपने पति की तुलना में वे बेहद नगण्य हैं और तुच्छ हैं । उन्हें आशंका थी कि एक दिन पिता उन्हें छोड़कर चले जायेंगे । आशंका से नीले हुए चेहरे पर वे सफेद पाउडर लगातीं, अपनी छोटी-छोटी आँखों में काजल आँजती, जिससे वे बड़ी नज़र आयें और वे अपने पति की नज़रों में कुरूप न लगें ।'¹¹⁹ और इस भय को बढ़ाने का काम किया तसलीमा के नाना ने, जिन्होंने 'माँ के काले चेहरे को गोरा करने की दवा लाकर दी थी जिससे पिताजी की नज़रों में माँ का कुरूप न लगें और वह अपने बीवी बच्चों को छोड़कर दुबारा कहीं न चले जाएँ ।'¹²⁰ अपने बाहरी सांवले रंग के कारण माँ

आजीवन प्रेम के एक शब्द के लिए तरसती रही। इसके प्रमाण के रूप में तसलीमा ने पिता और माँ के शादी के बाद चिट्ठियों के माध्यम से हुए वार्तालाप को दिखाया है- "पिता की चिट्ठी, "नोमान, कमाल और नसरीन कैसी हैं ? चावल खत्म हो जाने पर नये बाज़ार के चावल के आढ़त से अपने अब्बाजान को भेजकर चावल खरीद लेना ...गैर जरूरती सामान न खरीदना ...इति रजब अली।" जबकि माँ की चिट्ठियों में प्यार होता, "प्रियतम तुम कैसे हो... तुम्ही मेरा सुख हो.. इस पृथ्वी पर मैं अब कुछ नहीं चाहती।" पिता का जवाब, "रोज दो ढाई रुपये से ज्यादा बाज़ार मत करना... जो कुछ सौदा खर्च करना उसे कापी में लिख लेना।"¹²¹ "ऐसे ही विचित्र व्यक्ति के साथ माँ दिन बिता रही थी। लोग यही सोचते थे कि वे डॉक्टर की पत्नी हैं, उनका जीवन सुख से भरपूर है। मगर उन्हें ही सिर्फ पता था कि पिता की देह से आने वाली एक दूसरी औरत की गंध ने उनकी खुशी छीन ली थी।¹²²

पति तो था ही उनके पिता जी और बेटों ने भी तसलीमा की माँ ईदुलआरा को सदैव हीन भावना से ही देखा। पिता ने पढ़ाई रोक दी, पति ने प्रेम और सम्मान नहीं दिया और बेटों ने सेवा से वंचित रखा। खाने की मेज़ पर जो माँ अपने बेटों को स्वादिष्ट खाना देने के लिए दिन-रात लगी रही वही माँ एक-एक धोती के लिए तरसती रही - 'उनकी दुनिया बेहद छोटी सी थी ! चीथड़ी साड़ी, चीथड़ा रजाई, चीथड़ा तोशक और मिट्टी के चूल्हे में फूँकनी फूँक-फूँककर, तेल हीन, साबुन हीन उनकी जिन्दगी !'¹²³ पितृसत्ता स्त्री के लिए अशिक्षा के माध्यम से जो जीवन तैयार करती है उसी का उल्लेख उन्होंने कुछ इस प्रकार किया - "आयशा खातून ने तुम्हारी माँ के साथ पढ़ाई की है यह जानने के बाद, तुम्हे दो औरतों को जोड़ना होगा। एक औरत मिट्टी के चूल्हे में सरसों के खोल ठूँसती थी, फूँकनी फूँकती थी; दूसरी सज धजकर दफ़्तर आती थी। यही औरत शायद पिछली बेंच पर बैठने वाली लड़की थी। टीचर अगर 'गोबर' का अंग्रेजी पूछते थे, तो वह सिर झुकाकर बैठी रहती थी। दूसरी तरफ से तेज़ छात्रा, ईदुलआरा ने झटपट जवाब दिया- 'काउडन्ग' ...वही इदुलआरा अब 'काउडन्ग' से उपले बनाकर, चूल्हा जलाने के लिए जमा करती थी।"¹²⁴ यही कारण है कि ऐसे

मूल्यहीन जीवन ने तसलीमा को कभी आकर्षित नहीं किया और निरंतर उपेक्षा सहती हुई उनकी माँ एक दिन दुनिया से गुजर गयीं।

(इ) नानी के जीवन में पितृसत्ता : नानी खैरुन्निसा के जीवन में भी कुछ इसी प्रकार की घटनाएँ हुईं। पढ़ना-लिखना जानने वाली लड़की को 'अचानक ही 'काला अक्षर भैस बराबर' मार्का लड़के के साथ उनका लाया रसगुल्ला खत्म होने से पहले ही फटाफट शादी कर दी गयी।'¹²⁵ इस विवाह में भी आशंका और हताशा ही थी - 'मनीरुद्दीन को पूरी तौर पर भले ही न सही, गृहस्थी की मोह-माया में किसी तरह उलझाए रखने में खैरुन्निसा सफल हो गयी। मगर उन्हें हमेशा डर लगा रहता था कि न जाने कब वह पक्षी फुर्र हो जाए।' ¹²⁶ इस आशंका को सच करते हुए एक दिन नाना दूसरी औरत से ब्याह कर उसे घर ले आये। नानी दूसरी औरत के आने पर 'छाती पीट-पीटकर रोई थी' और 'बगल के बिस्तर पर लेटकर रात-भर जागकर तकिया भिगोती' रही। उसी नानी ने तसलीमा के पिता के किसी दूसरी स्त्री से नाजायज सम्बन्ध होने पर जब तसलीमा की माँ रोई तो कहा, 'आँसू बहाकर क्या अपने मर्द को लौटा सकेगी?' ¹²⁷ नानी यह तो समझती थी कि 'मर्द भरोसे के लायक नहीं होते। इनकी जात बड़ी खराब होती है।' ¹²⁸ किन्तु वही नानी अपनी बेटी इदुलआरा के पति के दूसरी स्त्री के पास जाने पर उसे चुप कराने पहुँच जाती है। वह उसे किसी प्रकार के विद्रोह करने या अपने अधिकारों की बात करने के लिए नहीं प्रेरित करती। ऐसा ही आत्मकथा में तसलीमा को छोड़कर सभी स्त्रियों के साथ होता है। वे विद्रोह न कर यथास्थितिवादी बनी रहती हैं। इस यथास्थितिवाद का नाम ही है 'अनुकूलन'। इस अनुकूलन के सम्बन्ध में सुधा अरोड़ा ने एक बेहतरीन उदाहरण प्रस्तुत किया - 'एक वैज्ञानिक ने दो मेढक लिए। एक को उसने काफी गरम पानी में रखा। पानी के अत्यंत उच्च तापमान को ना सह पाने के कारण वह उससे कूदकर फ़ौरन बाहर आ गया। दूसरे मेढक को पहले उसने सामान्य पानी में रखा और धीरे-धीरे उसका तापमान बढ़ाया। इस धीरे-धीरे बढ़ते तापमान के प्रति उसने अपने शरीर को अनुकूलित कर लिया और उससे बाहर नहीं निकला। एक समय ऐसा

आया कि जब तापमान अत्यंत उच्च हो गया और उसकी तापमान को झेलने की फितरत के कारण वह बाहर नहीं निकला बल्कि उसी में मर गया। दरअसल समाज की सभी स्त्रियों के साथ भी सदियों से यही 'कंडीशनिंग' की गयी है।¹²⁹

तसलीमा की परनानी का जीवन भी इससे अलग नहीं था। असहायता और आशंका के बीच बीते अपने जीवन के अंतिम दिनों में पति और बेटों द्वारा साथ छोड़ दिए जाने पर उन्हें अंततः अपनी बेटी खैरुन्निसा यानी तसलीमा की नानी के यहाँ ही आकर रहना पड़ा - 'उन्हें भी अपने शिकारी बेटे के बजाय खैरुन्निसा के यहाँ रहना अच्छा लगता था, जबकि समाज ने औरतों को बचपन में पिता, यौवन में पति और उम्र हो जाने पर पुत्र के आश्रय में रहने की हिदायत दी है।'¹³⁰

(ई) अन्य स्त्रियों का जीवन : तसलीमा की आत्मकथा के सभी भागों में स्त्रियों के जीवन, उनके संघर्ष, उनकी तकलीफों और रोंगटे खड़ी कर देने वाली दास्ताँ सुनाई देती है। वे अपनी बहन, सहेलियों, खालाओं, घर पर काम करने वाली बाइयों, पड़ोस में रहने वाली औरतों के जीवन का उल्लेख कर स्त्री जीवन की एक सामान्य जीवन-गाथा का चित्र खींचती हैं। यह सामान्य गाथा यही दिखाती है कि बांग्लादेश की स्त्रियाँ चाहे वह हिन्दू हों या मुस्लिम सभी पितृसत्तात्मक मानसिकता में जकड़े समाज की ज्यादातियों की शिकार हैं। उदाहरण के तौर पर जो बहन यास्मीन ब्याह से पहले ऊँची आवाज़ में सुर बाँधकर रवीन्द्र संगीत गाया करती थी और जिस मित्र चंदना ने कभी न ब्याह करने की कसम खायी थी, वही दोनों ब्याह के बाद पूरी तरह से बदल गयीं। यास्मीन ने अपनी आवाज़ ही जैसे भुला दी थी और ससुराल में दबे स्वर में बोलती और चंदना अपनी ही गृहस्थी में मग्न हो गयी। कभी 'कृष्ण चूड़ा के घने खूबसूरत दरख्त के समान'¹³¹ लगने वाली और कभी ब्याह न करने का ऐलान करने वाली वही चंदना ब्याह के बाद भूल गयी कि कभी वह भी तसलीमा के समान छड़ा और कवितायें लिखा करती थी। इसी तरह हिसाबी जीवन जीने वाली शिप्रा भी 'बोध बुद्धिहीन मोहब्बत' पाकर सबकुछ भूल कर एकदम बदल गयी। यह भूल जाना और बदल जाना सहज और

स्वाभाविक नहीं दिखता। इसी चंदना ने जब बेटी को जन्म दिया तो उसके पति ने उसे कटार से मारने की कोशिश की। इसी प्रकार तसलीमा की खाला फजली भी अपनी सारी खूबियाँ छोड़ ब्याह के बाद पति और श्वसुर के इशारे पर नाचने लगी - 'फजली खाला मोहल्ले में घूमने फिरने वाली लड़की थी। दिनभर मोहल्ले में इधर-उधर घूमती रहती। उसी लड़की के हाथों में मेदिनीपुर के अमीरुल्लाह ने तस्बीह पकड़ा दी। उन्हें घूँघट में कैद कर दिया। उन्होंने अपने घर के चारों तरफ ऊँची दीवार बनवा दी जिससे की किसी बाहरी व्यक्ति की नज़र बहू पर न पड़े।'¹³² इसी फ़जली खाला की बेटी मुबस्शिरा की भी एक दिन मौत हो गयी। इसका कारण वही शराफ मामा थे, जिन्होंने तसलीमा के साथ भी यौन शोषण किया था। उस शराफ की वजह से मुबस्शिरा गर्भवती हो गयी। उस गर्भ को हटाने के लिए उसे तमाम जड़ी-बूटी और दवाएँ आदि दी गयीं, जिससे सेप्टिसेमिया के कारण उसकी मौत हो गयी। इस मौत ने मुबस्शिरा को तो बदनाम कर दिया, किन्तु शराफ मामा साफ-साफ बच निकले। किताबी कीड़ा ममता की तरह ही ब्याह के समय अधिकतर लड़कियाँ अपने होने वाले पति को ठीक से नहीं जानती-पहचानतीं। वही अनजान शख्स एक दिन 'किताब पढ़ने के उसके शौक को हाथी पर सवार व्यक्ति की भाँति झाड़ू मारकर फेंक' देता है।'¹³³

दरअसल इस प्रकार की प्रताड़ना का शिकार हर वर्ग की स्त्रियाँ हैं। इससे उनके पतियों या जिनके भी संरक्षण में वे हैं, उनकी आर्थिक क्षमता से कोई लेना देना नहीं है। हाँ, तसलीमा ने यह स्वीकार अवश्य किया है कि निम्न वर्ग की स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र हैं। वे कम से कम घूँघट उतार कर सड़क पर निकल सकती हैं। मेहनत-मजदूरी या छोटे-मोटे काम करने के लिए घर से बाहर निकल सकती हैं। सड़क पर अँधेरी रात में कुप्पी जलाकर सब्जी और तरह-तरह के सामान बेच रही स्त्रियों को देख वे लिखती हैं -

विस्तृत इलाके में फैली हुई औरतें आज
अपने-अपने रोजगार सजाये बैठी रहती हैं।
न, उनके पास देह सौन्दर्य, न रूप !

बस, वे अपने-अपने सामान, धूल में बिछाए बैठी रहती हैं-
कुम्हड़ा, परवल, लौकी, पोई और डंठल के साग, बैगन वगैरह !

सुदूर जाने कौन हर रोज़,
करुण स्वर में बांसुरी बजाता रहता है।
ये औरतें किसी की बीवी हैं, किसी की बहन,
किसी की माँ, तुम लोग जानते तो हो !
इन औरतों ने उघाड़कर फेंक दिया है अपना घूँघट...¹³⁴

किन्तु उच्च खानदान और उच्च जाति वाली स्त्रियों को आजीवन चाहरदीवारी में ही जीवन बिताना होता है। फिर भी, तसलीमा की आत्मकथा में कई निम्न वर्ग की स्त्रियों का भी जिक्र आता है, जो पुरुष द्वारा किये गये अत्याचार की शिकार हैं। जैसे-पड़ोस में रहने वाली गेटू को माँ; नौकरानी मनी, जिसकी भतीजी चीनी का शारीरिक शोषण किया गया; नौकरानी रेनू, जिसकी देह को तसलीमा के घर में ही शिकार बनाया गया; रुबीना-जज की बेटी, जिसे पीर के पास छोड़ कर उसकी सारी पढ़ाई बंद करवा दी गयी; अस्पताल में आने वाली औरतें आदि। डॉ. सईदा खातून इस सम्बन्ध में लिखती हैं, "Taslima ex-powers subaltern women in her new episteme, obsessively coming back to the question of the female body as the subaltern articulation."¹³⁵
अपनी मित्र शेफाली को याद करते हुए तसलीमा लिखती हैं :

‘तू कहाँ है, शेफाली ?
अब तू जहाँ है, वहाँ अब क्या दोनों जून तुझे खाना देते हैं ?
तुझे कपड़े लत्ते देते हैं ? रुपये कैसे देते हैं ?
या तुझे कपड़े देने भेजकर, पानी की मशीन चलाने को कहते हैं ?
ताकि तू जल मरे ! ताकि तू खाक हो जाय !
ताकि उन्हें हाथ न बढ़ाना पड़े, तुझे बचाना न पड़े !’¹³⁶

तसलीमा ने अपने चिकित्सक रहने के दौरान ऐसी कई घटनाएँ देखीं, जिन्होंने पुरुष मानसिकता के धिनौनेपन से परिचित कराया। वे लिखती हैं, "कक्ष के बहर प्रतीक्षारत नाते-रिश्तेदारों को लड़की के जन्म की खबर देते ही, मेरी आँखों के सामने ही, उन सबके चेहरे पर घोर विषद छा जाता। लड़की का जन्म किस कदर अप्रिय और अनचाहा है, मैं हर रोज अपनी ही आँखों से देखती रही।"¹³⁷ प्रसूति गृह में पुत्र के लिए कराहती स्त्री हो या लाइगेशन कैम्प में नसबंदी करवाती नव-वधुओं की असहाय आँखें या पुरुषों से स्त्रियों को मिला सिफिलिस रोग, जिसका कोई इलाज नहीं करवाया जाता आदि किसी भी संवेदनशील व्यक्ति में पितृसत्तात्मक मानसिकता के विरुद्ध रोष पैदा करने के लिए काफी हैं। स्पष्ट है, जो कष्ट तसलीमा के पहले की पीढ़ियाँ देखती आयीं थीं वही कष्ट, बिल्कुल उसी रूप में तसलीमा और उनकी पीढ़ी की अन्य स्त्रियाँ भी देख रही थीं। तो फिर बदलाव कहाँ हुआ ? लेखक रामशरण 'स्त्री मुक्ति का सपना' पुस्तक में संकलित अपने एक लेख में स्त्रियों के जीवन के इसी दुहराव की ओर इंगित करते हुए लिखते हैं, "स्त्रियों के लिए इतिहास कब्र से भी उठकर आ जाता है और अश्वत्थामा की तरह साबित होता है जो कभी नहीं मरता !"¹³⁸

तसलीमा की आत्मकथा में 'भात देने वाले को भतार'¹³⁹ कहकर स्त्री भले ही अपने लिए एक संरक्षण की तलाश करती है किन्तु वही भात देने वाला पुरुष भात देने के नाम पर स्त्री-अस्मिता से खिलवाड़ करने से बाज नहीं आता। ऐसे में, स्त्री में पुरुष बन जाने की इच्छा स्वाभाविक रूप से जन्म लेगी। किन्तु जब पुरुष जाति से ही घृणा हो जाय तब पुरुष जैसा हो जाने की चाहत भी काफूर हो जाती है। कुछ ऐसा ही तसलीमा के साथ भी हुआ, जिसके विषय में वे लिखती हैं, "मैंने एक अखबार में पढ़ा था कि उस दिन एक लड़की अचानक लड़का बन गयी। मुझे बेहद इच्छा हुई कि काश किसी दिन नींद से जागने पर मैं भी देखूँ कि मैं लड़की से लड़का बन गयी हूँ। सीने पर अब कोई बेडौल माँस पिंड नहीं है। तब एक पतला शर्ट पहनकर मर्जी मुताबिक घूमूँगी-फिरूँगी... मछली का सबसे बड़ा हिस्सा माँ मेरी थाली में परोसेंगी, इसलिए कि मैं लड़का थी।"¹⁴⁰ किन्तु घर पर काम करने वाली स्त्री की बेटी फूलबहारी की हालत देखकर स्त्री की 'स्वाभिमानि चाल'¹⁴¹ को पसंद करने वाला कौन मन

विचलित नहीं होगा। फूलबहारी का विवाह एक वृद्ध इन्सान से कर दिया गया और बाद में उसी ने गला घोटकर उसकी हत्या कर दी। ऐसे में, मन में लड़का बनने की इच्छा समाप्त हो जाना और पितृसत्ता से घृणा भर आना स्वाभाविक है। 'उत्ताल हवा' में 'औरत' शीर्षक से लिखे गये खण्ड में लेखिका का मत है, "औरत की जिंदगी, मुझे अपने में शामिल होने की दावत देने लगी। औरतों ने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया। मुझे आम औरत के दुःख-दर्द का एहसास होता रहा। मैंने अपनी निजी जिंदगी में जो दुःख-तकलीफ झेली थी, वह भी तो आम औरत की ही दुःख तकलीफ थी। सिर्फ मेरा ही क्यों यह दुःख-दर्द हज़ारों-लाखों औरतों का था।"¹⁴² इस दुःख को व्यक्त करने का बीड़ा तसलीमा ने उसी दिन उठाया था।

(उ) विदेश में स्त्रियों का जीवन : तसलीमा लिखती हैं, "जितना-जितना मैं इंसानों को देखती हूँ उतना ही मुझे लगता है कि दुनिया के सभी लोग एक जैसे हैं।"¹⁴³ स्त्रियों के सम्बन्ध में यह बात एकदम सटीक बैठती है। तसलीमा ने अपने अनुभव के आधार पर विश्व की सभी स्त्रियों के जीवन को एक-समान पाया है। आत्मकथा में तसलीमा ने निर्वासन के दिनों का जिक्र किया है। इस जिक्र में भी स्त्रियाँ हैं किन्तु वे स्त्रियाँ हैं विदेश की। विश्व के मानचित्र पर विस्तृत पश्चिमी जगत, जिसे अत्याधुनिक और समानतापूर्ण व्यवहार का द्योतक माना जाता है, वहाँ भी स्त्री-पुरुष के बीच भेद-भाव और स्त्री के शोषण को देख तसलीमा आश्चर्य चकित हुए बिना नहीं रह सकीं। यद्यपि पूरब के देश आर्थिक दृष्टि से पश्चिम से कमजोर हैं किन्तु पश्चिम और पूरब में स्त्रियों की संवेदना, उनके दर्द समान हैं। वह इस बात को कविता के रूप में कुछ इस तरह से व्यक्त करती हैं-

"मैं पूरब की, वह लड़की पश्चिम की,
लेकिन एक जैसे गहरे, हमारे तमाम दर्द,
मैं ठहरी काली-कलूटी, वह लड़की ललछौही दूधिया गोरी,
लेकिन एक जैसे नीले, हमारे तमाम दुःख,

रोने से पहले, हमें सुनने की ज़रूरत नहीं पड़ी एक-दूसरे की व्यथा,

हम तो जानती हैं, अपनी-अपनी कथा ।"¹⁴⁴

भारत या बांग्लादेश ही नहीं समूचा विश्व पितृसत्ता से प्रभावित है । तसलीमा को इस बात का एहसास तब हुआ जब वह अपना देश छोड़कर विदेश गयीं । स्त्रियों के वेश्या बनने के पीछे किसी स्त्री की इच्छा नहीं होती बल्कि यह पितृसत्ता ही है, जो स्त्रियों को अपने हाथ का खिलौना बनाना चाहती है । पितृसत्ता का यह घिनौना रूप पश्चिम में पूर्वी देशों से भी ज्यादा निकृष्ट और अश्लील रूप में विद्यमान है । यह देखकर तसलीमा स्त्रियों के प्रति असीम करुणा और पितृसत्ता के प्रति अपार क्रोध से भर उठीं । वे लिखती हैं, "मेरे मन में ख्याल आया कि उन अधिकांश औरतों को, लड़कियों का धंधा करने वाले दलाल, झूठ बोलकर किन्हीं और-और मुल्कों से पकड़ लाये होंगे । बिल्कुल वैसे ही जैसे बांग्लादेश की लड़कियों और औरतों को पकड़ लाते हैं और भारत या पाकिस्तान के वेश्यालयों में बेंच दिया जाता है... चारो तरफ चाहे जितनी भी झिलमिलाती रौशनी हो, मुझे यह, कतई विश्वास नहीं होता कि कोई भी औरत अपनी इच्छा से इस पेशे में आई होगी । ये औरतें राहगीरों की तरफ चाहे जितनी भी हँसी उछालती हों, अन्दर ही अन्दर तकलीफ और दर्द से उनकी छाती फटती होगी... इस दुनिया में औरतों के जिस्म का हाट बैठा है । अमेरिका, यूरोप, एशिया, अफ्रीका वगैरह देशों के मर्दों की जीभ मारे लोभ और भूख प्यास के लपलपा रही हैं ।"¹⁴⁵

फ्रांस में जॉन ऑफ़ आर्क और सूडान में लुब्ना एहमद को केवल इसलिए प्रताड़ना दी गयी क्योंकि वे लड़कों जैसे कपड़े पहनती थीं । ऐसी ही ना जाने कितनी घटनायें हैं जो हर रोज़ पूरे विश्व में घटती रहती हैं, जिनमें से ज्यादातर गुमनाम ही रह जाती हैं । पर इन घटनाओं से मनुष्य ने क्या कुछ सीख ली है ? नहीं, बिल्कुल नहीं ! यदि सीख ली होती तो भारत, बांग्लादेश ही नहीं समूचे विश्व में स्त्रियों के प्रति धर्म और पितृसत्ता का प्रकोप इस तरह नहीं गिरता जैसा आज के समय में दिख रहा है । तसलीमा लिखती हैं, "धर्म के लोग, सदी-दर-सदी इसी तरह औरतों पर अत्याचार करते रहे हैं; उन्हें जला-जलाकर मारते रहे हैं । आज न हो, इन सभी देशों में धर्म के अत्याचार का अवसान हो चुका है ।

लेकिन, हमारे देश में ही नहीं जिन सब देशों में मुसलमानों का वास है, निष्ठुरता अभी भी बहाल तबियत से अड्डा गाड़े बैठी है।"¹⁴⁶ देश और विदेश की स्त्रियों के दुःख-दर्द का वर्णन करने के कारण बात इयोर जैसी लेखिका ने तसलीमा के सन्दर्भ में लिखा, "आप असंख्य औरतों की असीम शक्ति के साथ एकात्म हो गयी हैं।"¹⁴⁷

(ग) आत्मकथेतर रचनाओं में स्त्रियों का जीवन : तसलीमा आत्मकथा में ही नहीं बल्कि अपने कलामों, उपन्यासों, कहानियों और कविताओं में भी स्त्रियों के जीवन की विसंगतियों को चित्रित करती हैं। यदि कलामों या आलेखों की बात करें तो वे 'मंजू-सुरेश प्रेम प्रसंग' में न्यायालय में मंजू को सुरेश के साथ रहने की अनुमति दिए जाने के बाद मंजू को सुरेश रुपी संरक्षण के दायरे से बाहर निकल एकाकी जीवन जीने की ही सलाह देती हैं। दूसरी तरफ स्त्री को शारीरिक रूप से कमजोर सिद्ध करने वालों के विरुद्ध तसलीमा ने कई प्रमाण प्रस्तुत किये। उदाहरण के लिए अल्जीरिया की खिलाड़ी हासिबा बुल्तेरकाह और आस्ट्रेलियाई क्रिकेट की निर्देशक जैकी। स्त्री अपने घर में भी सुरक्षित नहीं इसका प्रमाण सरकारी रिपोर्ट के आधार पर देते हुए लिखा कि देश में 53 प्रतिशत बच्चे किसी न किसी बलात्कार के शिकार होते हैं उनमें से 83% बालिकाओं का बलात्कार घर पर ही होता है। 50% मामले में वह अपराधी बच्ची का कोई सम्बन्धी ही होता है। एक आलेख में उन्होंने बॉलीवुड जिसे वैचारिक रूप से अत्यंत स्वतंत्र माना जाता है, वहाँ भी पितृसत्तात्मक मानसिकता किस प्रकार कार्य करती है यह दिखाने के लिए लिखा कि किसी ने भी ऐश्वर्या से यह जानना नहीं चाहा कि वे अभिषेक को अभिनय की अनुमति देंगी या नहीं।¹⁴⁸ सभी अभिषेक का ही रवैया देखने में जुटे हैं। 'विवाहेतर शारीरिक सम्पर्क के कारण स्त्री को 'असती' या 'पतिता' कहा जाता है और उससे उत्पन्न होने वाली सन्तान को 'जारज'। किन्तु पुरुष के लिए इस प्रकार का कोई सम्बोधन नहीं है।¹⁴⁹ स्त्रियों को पहनाई जाने वाली 'चेस्टटी बेल्ट' या 'सतीत्व को सुरक्षित रखने वाली बेड़ी' भले ही आज दिखाई नहीं देती किन्तु यह अदृश्य रूप में आज मौजूद है। हंस के 2012 के सितम्बर अंक में तसलीमा का एक लेख हैरानी में डालता है और पुरुष की मानसिकता का पर्दाफाश करता है। इस लेख में इंदौर की

उस घटना का जिक्र है, जिसमें एक पति ने शक के कारण अपनी पत्नी के यौनांग पर ताला लगा दिया। बाजारवाद और भूमंडलीकरण ने स्त्री जीवन को सौन्दर्य की प्रतियोगिता जैसा बना दिया है। स्त्री भय में है कि यदि वह अपना रूप खो देगी तो सब कुछ खो बैठेगी। इसके लिए तसलीमा ने फिल्म इंडस्ट्री का उदाहरण लिया है, "क्या किसी बेहद मोटी अभिनेत्री को दिलीप कुमार जैसा स्टार समझा जा सकता है? जिस शरीर के साथ गोविंदा हीरो बनता है, किसी स्थूलकाय लड़की या औरत को क्या हिरोइन बनने का मौका दिया जाता है? अमिताभ बच्चन अपनी त्वचा पर सैंकड़ों झुर्रियों के बावजूद आज भी मेगा-स्टार बने हुए हैं, लेकिन रेखा को अपने माथे की झुर्रियाँ मिटा कर ही टिके रहना पड़ता है।"¹⁵⁰ ऐसे तमाम आलेख तसलीमा ने लिखे हैं और उनके माध्यम से स्त्री जीवन के विविध प्रसंगों में पितृसत्ता की घुसपैठ और उसके दुःपरिणाम से समाज को चेताने की कोशिश की है।

उनके उपन्यासों में भी स्त्रियों का जीवन ही केन्द्र में है। उदाहरण के लिए 'शोध' उपन्यास की नायिका झुमुर भले ही भौतिकशास्त्र में एम.एस.सी है किन्तु उसकी पहचान एक बहू से ज्यादा कुछ नहीं है। उसे अपने मायके या कहीं बाहर जाने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। ऐसे प्रतिबंधित दायरे में रहते हुए वह अपना वास्तविक नाम ही बिसर जाती है। उसे जब कोई अपने नाम से बुलाता है तो वह चौंक जाती है। अपने अस्तित्व, अपने परिचय को खो देने का गुस्सा उसके भीतर बैठा होता है। और इसका बदला वह किसी और से शारीरिक सम्पर्क बनाकर और उससे गर्भ धारण कर लेती है। 'फेरा' की कल्याणी अपने मामा के बेटे की हवश का शिकार होती है। 'फ्रांसीसी प्रेमी' में नीला भी अपने पति की कैद में रहकर अकेली घूमने की अपनी ख्वाहिश को दबा कर बैठ जाती है और अपने भाई के मित्र सुनील की हवश का शिकार बनती है। नीला की माँ का व्यक्तित्व और पितृसत्ता की हदों में सिमटा जीवन तसलीमा की माँ के जीवन की याद दिलाता है। 'दो औरतों के पत्र' और 'ब्रह्मपुत्र के तट पर' जैसे उपन्यासों में स्त्रियाँ पुरुषतंत्र को चुनौती देते हुए नाजायज बच्चे को पैदा करती हैं।

कहानियों में भी स्त्री पितृसत्तात्मक मानसिकता के दायरे में बंधी नजर आती है। 'कौन है जो मुझे घर से निकाले' कहानी में नवविवाहिता द्वारा बिना पूछे बाहर निकल पड़ने पर घरवाले आपत्ति करने लगते हैं जिसके कारण उसे अपनी टहलने की रुचि को त्याग देना पड़ता है। इसलिए तो तसलीमा लिखती हैं, "व्यक्तित्व का विसर्जन देकर ही औरतों को 'भली औरतों' के खाते में अपना नाम लिखाना पड़ता है।"¹⁵¹ 'दुखियारी लड़की' कहानी की नायिका आलेया की तीन बेटियाँ होने के कारण उसे तलाक का सामना करना इस बात का प्रमाण है कि बेटियों को पालने से बेहतर उपाय है, तलाक। इसी कहानी में तसलीमा ने 'हलाला विवाह' का भी प्रसंग दिखाया है और इसके माध्यम से इमामों की वासना का भी चित्रण किया है। पुरुष स्त्री को पाने के लिए धर्म के आधार पर नई-नई तरकीबें खोजता है, उसमें से एक तरकीब है हलाला निकाह। 'बुझाओ जीवन डाह' कहानी में निलोफर ससुराल की प्रताड़ना से तंग आकर आत्महत्या कर लेती है। 'सीधी-सादी मृत्यु' दहेज के लालच में की गयी हत्या की कहानी है। इसमें स्त्री को पुरुष का प्रतिरोध करते हुए भी दिखाया गया है। ऋतु अपने पति के लाख कहने के बावजूद अपने पीहर से कुछ भी नहीं माँगकर पुरुष का प्रतिरोध करने का प्रयास करती है। इसी प्रकार स्त्री के प्रतिरोध को अभिव्यक्त करती कहानी है 'ब्याह का घर', जिसमें दोलन ब्याह के अवसर पर ही कुबूल है बोलने की जगह 'ना' कर सबको चकित कर देती है। 'दिन गुजरते हुए' कहानी में तसलीमा ने अनीस के रूप में एक आर्थिक आत्मनिर्भर और यौन स्वतंत्रता की धारणा को चरितार्थ करती हुई स्त्री का चित्र खींचा है, जिसमें वह अपने पति की पाबंदियाँ को नहीं मानती और उसकी सीमाओं के पार जाकर अपनी यौन स्वतंत्रता को चरितार्थ करते हुए कैस से शारीरिक सम्बन्ध भी बनाती है। स्त्रियों के घर में किये जा रहे इस्तेमाल के सन्दर्भ में तसलीमा उपमान देते हुए लिखती हैं, "पतियों के घर में स्त्रियाँ हैंगर में कपड़े की तरह टंगी रहती हैं, इस्तेमाल होना ही जिनका मुख्य काम है।"¹⁵² कहानी 'झरी हुई पत्ती' में अंगूरी द्वारा माँ से पूछे गये प्रश्न दरअसल तसलीमा के समाज के सामने खड़े किये गये प्रश्न हैं। अंगूरी का पूछना कि शादी क्यों की जाती है और माँ का उत्तर औरत का मुँह बंद करने के लिए और पुरुष का सेवा जतन करने के लिए और अंगूरी

का प्रतिप्रश्न 'दामाद लोग क्या बीमार रहते हैं ?' ये सभी दरअसल समाज की दकियानूसी व्यवथाओं पर प्रश्न है।

कुल मिलाकर तसलीमा ने आत्मकथा के साथ-साथ विविध विधाओं में स्त्रियों को केंद्र में रखते हुए जो कुछ भी लिखा और स्त्रियों के जीवन का जो कुछ भी चित्र खींचा है उसे उनकी ही कविता 'प्रगति की पृष्ठभूमि' के आधार पर संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है -

'उसने बाँझपन के कारण पहली बीवी को तलाक दे दिया
लड़की पैदा होने की वजह से दूसरी को
और तीसरी बीवी को तलाक दिया है दहेज न लाने के कारण
चौथी को घर लौटकर पीटता है
दो कच्ची मिर्च या एक मुट्ठी भात के लिए।'¹⁵³

(घ) स्त्रियों के विसंगतिपूर्ण जीवन का कारण :

तसलीमा ने स्त्री के शुष्क और कटीले तारों से घिरे जीवन का कारण ढूँढते हुए यह पाया कि इसकी जड़ पितृसत्ता और इसके धर्म से गठजोड़ में है।

(अ) पितृसत्ता : तसलीमा के अनुसार पुरुषतंत्र या पितृसत्ता, "एक तंत्र है जहाँ नियम कानून पुरुष के पक्ष में है, सामाजिक विधि व्यवस्था पुरुष के पक्ष में है, इस सामाजिक संसार में जो कुछ भी है, सभी कुछ पुरुष के अपने पक्ष में है। सब कुछ पुरुष केन्द्रित है।"¹⁵⁴ तसलीमा की आत्मकथा में जो भी पुरुष दिखे वे सभी स्वच्छन्द, हावी और शोषण करने वाले व्यक्ति के रूप में दिखते हैं और स्त्रियाँ उनके चंगुल में फँसी चिड़ियों की तरह बेसुध। वास्तव में 'अगर कोई औरत मुट्ठी में आ जाए तो कोई भी मर्द नहीं चाहता कि वह अपना सिर बचाकर भाग जाए।'¹⁵⁵ इसका सबसे बड़ा उदाहरण है तसलीमा के पिता रजब अली और पहले पति रुद्र। तसलीमा के पिता का जीवन और उनका चरित्र समाज के पुरुष का चरित्र साबित होता है क्योंकि रजब अली जो अपने जीवन में करते दिखते हैं वही

तसलीमा के जीवन में आने वाले अन्य पुरुष, पुरुष मित्र, पति और भाई आदि भी करते दिखते हैं। रजब अली ने स्वयं को परिवार का सर्वेसर्वा घोषित कर रखा था - 'मेरी इच्छा के विरुद्ध चलेगी तो घर से बाहर हो जा। यहाँ रहने की क्या ज़रूरत है ? मेरा ही खाती है, मेरा ही पहनती है, मेरी बातों को अक्षरशः मानकर ही इस घर में रह सकती है।' ¹⁵⁶ जितना उनके काम और बातों का मूल्य होता था उससे कई गुना कम उनकी माँ की बातों और कार्यों का मूल्य था। जहाँ तसलीमा की 'माँ की मर्जी से इस घर में पत्ता तक नहीं हिलाता था' वहीं पिता 'के पास हाजरहा इख्तियार थे। अगर वे चाहें, तो हम सबको उपासे रख सकते थे, अगर वे चाहे, तो सबको भर पेट सुख दे सकते थे। अगर वे चाहे तो अपने आतंक से समूचे घर में थराहट भरकर, सन्नाटे में बदल सकते थे।' ¹⁵⁷ पिता बाहर निकलकर अन्य स्त्रियों के साथ संसर्ग करते थे और लफ्फाजी भी करते - 'किसी का गोरा रंग देखते ही पिताजी चाहे वह साली हो या चकलादार की बीवी, उसके साथ लग जाते थे' ¹⁵⁸ किन्तु किसी स्त्री को ऐसा करता देख उसको बेहया या बदचलन की ही संज्ञा दी जाती। पुरुष अपनी यौन आकांक्षा के लिए स्त्री का शोषण करता है। जैसा कि मामा शराफ और चाचा ने तसलीमा के साथ किया। तसलीमा की आत्मकथा में लगभग सभी पुरुष 'खिलाड़ी मर्द' बनकर 'जिस तिस औरत से खेलते' ¹⁵⁹ हुए दिखते हैं। सारी सहूलियतें लड़कों के लिए ही होती है। जैसे कि 'माँ और बड़े मामा दोनों ने एक साथ पढ़ाई शुरू तो की किन्तु अंत नहीं किया। पढ़ाई के दौरान ही उनमें भेदभाव किया जाने लगा। माँ को भाई की मेज साफ रखनी पड़ती, फल नाना केवल मामा के लिए ही लाते वही मामा 'अचानक न जाने कब बड़े हो गये, बढ़ते-बढ़ते उन्होंने असमान छू लिया और माँ जहाँ थीं, वहीं रह गयी। माँ को आज भी ईर्ष्या होती थी पर क्या वह ईर्ष्या इस व्यक्ति के प्रति थी ?' दरअसल यह ईर्ष्या व्यवस्था के प्रति थी और यह व्यवस्था थी 'पितृसत्ता की व्यवस्था'। तसलीमा इस पुरुषतंत्र से निकलने की हिदायत 'ओ मन जागो' कविता में कुछ इस प्रकार देती हैं -

ऐसा पूरा का पूरा मर्द, कभी मत बसाये रखना दिल में,
पुरुष जब अंतस में दाखिल होता है, अकेले दाखिल नहीं होता,

दाखिल होता है समूचा पुरुषतंत्र !

XXXX

इस तंत्र के मोहक मन्त्र पर अगर तुम हुई मुग्ध, प्यार से पुलकित, तो,

समझ लो, तुम्हारी मौत हो गयी, निश्चित है तुम्हारी मौत !

ओ मन, तुम उठो, नाचो अपनी तरह,

तुम जिंदा रहो अपनी तरह !¹⁶⁰

इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था का एक अन्य उदाहरण वे बांग्लादेश की बसों में स्त्रियों के लिए व्यवस्था के आधार पर स्पष्ट करती हैं। बांग्लादेश की बसों में स्त्री यात्री के आने पर उसे किसी स्त्री या किसी वृद्ध के बगल में ही बैठने का ही नियम था। एक बार इस घटना से पाला पड़ते हुए तसलीमा ने जो महसूस किया वह लिखती हैं, "पराये मर्द के बगल में बैठना सुरक्षित नहीं है, इसलिए बसों में यह नियम चालू किया गया। लोगो का ख्याल है, औरतों के लिए सबसे सुरक्षित, अपना मर्द होता है ! सबसे सुरक्षित जगह, अपने मर्द का घर होता है यानी पति का घर ! काश !, कंडक्टर को यह जानकारी होती कि मेरे लिए वही घर सबसे असुरक्षित साबित हुआ है।"¹⁶¹ औरत को हर समय अपने बचाव के लिए तरकीबों से भरा रहना पड़ता है- हमारे मर्द जब ज़रूरत से ज्यादा समझने का नाटक न करें, तो सामूहिक विपत्ति की आशंका हर वक़्त रहती है। औरत की छठी इन्द्रिय चूँकि हर वक़्त चौकन्नी रहती है, इसलिए आशंका का अंदाजा लगाने में तकलीफ नहीं होती।"¹⁶²

पितृसत्तात्मक मानसिकता किस प्रकार हावी होकर मनुष्य को ही निकृष्ट बना देती है वह तसलीमा ने राष्ट्रपति इरशाद के माध्यम से दिखाया है, जिन्होंने पुत्र न होने की सामाजिक बदनामी और राजनीतिक वारिश के अभाव की पूर्ति के लिए क्या-क्या नहीं किया। तसलीमा लिखती हैं, "इरशाद को कोई बच्चा-कच्चा नहीं था। इसलिए कुसंस्कारी लोगो ने उन्हें निरबंसिया कहकर बुलाना शुरू कर दिया। जो मर्द बच्चे पैदा नहीं कर सकता वह भला कैसा मर्द ? ऐसा मर्द अगर देश चलाएगा तो देश की फसल कम हो जायेगी। वगैरह-वगैरह ! ये बातें हवा में तैरने लगीं। हवा पर काबू

पाने के लिए, उन्होंने एक अधकचरा नाटक किया, काफी कुछ कच्चे अंडे, पके अंडे कर देने जैसा। अचानक अपनी बीवी, रौशन को लोगों के सामने हाज़िर किया और उसकी गोद में एक बच्चा बिठाकर, ऐलान किया- लो, अब वे बाप बन गये हैं।"163

तसलीमा हर उस कार्य का परित्याग करने की सलाह देती हैं, जिसमें पितृसत्ता के तत्व मौजूद दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए 'तुम्हारा क्या' कविता में -

'कहा था तुमने, मैं जींस पहनकर न सोया करूँ

लेकिन मैं जींस पहनकर ही सोती हूँ।"164

"कोयले को लाख धोने के बाद जैसे उसकी कालिमा नहीं मिटती, मर्दों का चरित्र बिलकुल वैसा ही होता है, जर्जर बुढ़े होने के बावजूद वे शुद्ध पवित्र नहीं होते।"165 समाज में पितृसत्ता की पैठ के कारण ही मन्नू भंडारी लिखती हैं, "पिछले-पैंतीस चालीस वर्षों में स्त्री ने जड़ संस्कारों से अपने को बहुत कुछ अलग कर लिया है, पुरुष आज भी जिसमें बंधा बैठा है। अति-आधुनिकता का दम भरने वाले पुरुष भी व्यवहार के धरातल पर निहायत ही दकियानूसी सिद्ध होंगे। चमड़ी की एक परत उतारिये - रूढ़ संस्कारों से ग्रस्त वही सामंती पति विराजमान मिलेगा। यदि पुरुष इन संस्कारों से मुक्त हो जाय जिसके चलते हर बात और हर क्षेत्र में वर्चस्व उसका, अधिकार उसके, तो स्त्री को तो अपने आप मुक्ति मिल जायेगी।" इसीलिए वे यह विचार रखती हैं, "आज स्त्री-विमर्श से कहीं अधिक पुरुष विमर्श की आवश्यकता है।"166 दरअसल मैत्रेयी पुष्पा के शब्दों में कहें तो तसलीमा के विचार कुछ इस तरह के हैं कि ऐसा लगता है 'गुरुर से फूले हुए गुब्बारे में एक स्त्री ने कलम चुभो दी, भयानक विस्फोट हुआ।"167

(आ) धर्म और पितृसत्ता का गठजोड़ : 2005 में उत्तर प्रदेश में हुआ 'इमराना रेप केस' स्त्री जीवन में धर्म और पितृसत्ता की दखलंदाजी का सबसे बड़ा प्रमाण है। इस मामले में शरीयत का सहारा लेते हुए दारुल-उलूम-देवबंद ने बलात्कारी ससुर को ही इमराना का पति इस बिनाह पर घोषित

कर दिया जाना कि कुरान की आयत (सूरा 4: आयात 22 जिसमें मुहम्मद के अपनी बहू जैनब से शारीरिक सम्बन्ध बनाये जाने का जिक्र है) इसका हुक्म देती हैं, अत्यंत ही दुखद और खेद का विषय है। इसके अतिरिक्त वे धर्म ग्रन्थ 'मकसुदुल मो मोमिनीन' में औरतों के सम्बन्ध में किये प्रावधानों का जिक्र करती हैं¹⁶⁸ जिसमें औरतों के लिए पैतीस नसीहतें की गयी हैं। इन नसीहतों के अनुसार स्त्री को हर क्षण अपने पति की सेवा में तत्पर होना चाहिए चाहे वह जैसा भी हो। इसके अतिरिक्त वे हिंदू धर्म ग्रंथों में भी स्त्रियों की स्थिति का अवलोकन करती हैं। वेद, उपनिषद्, महाभारत, वृहदारण्यक उपनिषदों आदि के तमाम उदाहरण पेश कर वे दिखाती हैं कि स्त्रियों को किसी भी धर्म में पुरुष से श्रेष्ठ या कम से कम उसके बराबर होने का दर्जा नहीं दिया गया है। इस्लाम का सहारा लेकर बांग्लादेश और अन्य मुस्लिम देशों में कई बार स्त्रियों के विरुद्ध फतवा जारी कर उन्हें मार दिया गया है। इसके लिए तसलीमा कई घटनाओं का जिक्र करती है- नूरजहाँ¹⁶⁹ (जिसे जमीन में गाड़ कर ऊपरी भाग पर पत्थर से मार-मार कर हत्या कर दी गयी), फिरोजा¹⁷⁰ (जिसे हिन्दू लड़के से प्रेम के कारण झाड़ू से मार-मार कर मौत के घाट उतार दिया गया), सिम्मी¹⁷¹ जिसने सामाजिक अपमान के भय से ज़हर पी लिया, गाँव की तीस औरतों के विरुद्ध फतवा और जाति से बाहर किया जाना¹⁷² (क्योंकि इस्लाम में परिवार नियोजन प्रतिबंधित है और उन औरतों ने इसे अपनाया था) आदि-आदि घटनाएँ, जो तसलीमा की आत्मकथा, आलेखों और कविताओं सभी में किसी न किसी रूप में मौजूद हैं। वे धर्मग्रंथों जैसे कुरान में अल्लाहताला द्वारा स्त्री के लिए सम्बोधन - पान-पत्र, सुराही, प्रस्रवण, निसृत सुरापूर्ण प्याला, खेत आदि और सामान्य जीवन में स्त्रियों के लिए प्रयोग किये जाने वाले रमणीय शब्दों मसलन 'माल', 'रमणी', अन्तःपुर्वासिनी', पुरबाला, अनाघ्राता, पद्मिनी, अर्धांगिनी और पतित होने सम्बन्धी शब्द- नष्ट, पतित, असती, अलक्ष्मी, बंध्या, रक्षिता, भार्या, पतिव्रता आदि के आधार पर यह दिखाना चाहती हैं कि भाषाई स्तर पर स्त्री के लिए इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग का कारण यह है कि 'धर्म उन्हें उकसाता है और समाज और राष्ट्र उन्हें प्रश्रय देता है।'¹⁷³ कलकत्ता के साहित्य संसद द्वारा प्रकाशित शब्दकोष और बांग्लाभाषा के समानार्थी शब्दकोश के आधार पर तसलीमा ने लिखा

कि बांग्ला शब्दकोश में पुरुष शब्द का अर्थ 'मनुष्य' है किन्तु नारी को मनुष्य नहीं कहा गया।¹⁷⁴ दरअसल तरह चूसना चाहता है, अमरुद की तरह काटना चाहता और अनार की तरह निचोड़ना चाहता है।¹⁷⁵ और यदि पुरुष के लिए कुछ शब्दों का प्रयोग हुआ भी तो उसकी तुलना हमेशा शक्तिशाली चीजों से करते हुए उसे - पुरुषोत्तम, पुरुष-पुंगव कहा गया और बाघ, सिंह, पुंगव (सांड) से उसके पराक्रम को जोड़ा गया।

इससे साबित होता है कि धर्म की नींव में ही पितृसत्ता है और ईश्वर का भय दिखाकर या उनका आदेश बताकर कई बार स्त्रियों के साथ धोखा किया जाता है। ऐसे में इस बात की सम्भावना व्यक्त किया जाना कि जब मातृसत्ता का अंत हुआ तो यह भी सम्भव है कि पितृसत्ता का भी अंत हो ! पूर्ण होने के आसार नजर नहीं आते। जैसे-जैसे समाज वैज्ञानिकता और तकनीक की ओर बढ़ रहा है वैसे-वैसे स्त्री और पुरुष का भेद भी खत्म होना अपेक्षित है। किन्तु यह भेद खत्म होने के बजाय अलग-अलग रूपों में सामने आता रहता है। ऐसे में यह प्रश्न उठना लाजिमी है कि पितृसत्ता को इतना मजबूत आधार कहाँ से मिला ? क्यों पुरुषों ने तो स्त्रियों की नींव को हिलाकर अपनी सत्ता स्थापित तो कर ली किन्तु स्त्रियाँ पुनः उस स्थान को प्राप्त नहीं कर सकीं ? इस प्रश्न का उत्तर तसलीमा के अनुसार 'धर्म' है। उनके अनुसार धर्म ने पितृसत्ता को सींचा है और पितृसत्ता ने धर्म को खत्म नहीं होने दिया। दोनों ने गठजोड़ बना स्त्री को निरंतर ठगने का काम किया है - 'धर्म के कवच का इस्तेमाल करते हुए पितृसत्तात्मकता को बनाये रखने की साजिश काफी पुरानी है।'¹⁷⁶ पुरुष ने अपनी सहूलियत के लिए ही धर्म को संरक्षण दिया, जिससे उसकी सत्ता सदैव बरकरार रहे - "धर्म पूरी तरह पितृसत्तात्मक है। मैं धर्म का पालन करूँगी और स्त्रियों के अधिकारों को भी मान्यता दूँगी - यह कहना कुछ ऐसा है कि मैं शहद के साथ जहर पिऊँगी।"¹⁷⁷

ऐसे कई उदाहरण तसलीमा ने आत्मकथा और आत्मकथेतर रचनाओं में प्रस्तुत किये हैं, जिनसे धर्म और पितृसत्ता के गठजोड़ का पर्दाफाश होता है। तसलीमा ने 'कुरान में नारी' नाम से एक

पुस्तक लिखने की योजना बनाई और इस दौरान कुरान और हदीस के बहुत से संस्करणों जैसे - इस्लामिक फाउंडेशन का बांग्ला कुरान, कलकत्ता से प्रकाशित बांग्ला इस्लामी-फाउंडेशन ट्रस्ट का कुरान, मौलाना मउदिर का अनुवाद आदि को पढ़ा। ऐसा इसलिए ताकि धार्मिक विवेचन में किसी प्रकार की कोई त्रुटी न रह जाय। इस सन्दर्भ में अपने बड़े मामा की भी मदद ली। इस अध्ययन के दौरान उन्होंने पाया कि औरतों को लेकर कुरान की कट्टरता को छिपाने के मौलवियों और अनुवादकों ने कुरान के कई तथ्यों को बदल दिया या उनका अलग तरह से अनुवाद कर दिया है। वे इसका एक उदाहरण भी प्रस्तुत करती हैं - अनुवादक ने कुरान की आयत का अनुवाद करते हुए लिखा था कि 'लड़कियों को जब भी मारो, तो धीरे से मारो, चेहरे पर कभी मत मारो...' इस वाक्य के सम्बन्ध में उनके मामा ने बताया कि अरबी कुरान में 'धीरे से मारने' जैसी किसी बात का उल्लेख नहीं है, इसे तो अनुवादक ने अपनी तरफ से जोड़ दिया है। इसी सम्बन्ध में कटाक्ष करते हुए वे लिखती हैं, "जैसे-जैसे दिन गुजरते जा रहे हैं, समाज जितना-जितना आधुनिक होता जा रहा है, औरतों के अधिकार की बात उठने लगी है, इस्लामी मौलवी वर्ग इस्लाम में औरत को मर्यादा दी गयी है, यह दावा करने लगे हैं। मौलवियों के इसी वर्ग ने ही कुरान के अनुवाद के दौरान, अल्लाह की निष्ठुरता छिपाने की जिम्मेदारी उठाई है। मानो अल्लाह ने धीरे से मारने की बात कही है, तो बेहद संवेदनशील नजर आयेंगे।"¹⁷⁸ इसी प्रकार अन्य आयतों के साथ भी खिलवाड़ किया गया। सुरा-अल-नाजल की आयत 21 और 22 को भी यह कहकर बदल दिया गया कि पहले की आयतें शैतान की थीं। इस आयत में अल्लाह की तीन बेटियों 'अललात', 'अलजउजा' और 'अलमनात' का उल्लेख किया गया था। तसलीमा के बड़े मामा ने उन्हें इस सम्बन्ध में बताया कि सन आठ सौ में मुहम्मद की जीवनी लिखने वालों 'इब्ने जरीब', 'अल तबारी', 'अल वाहिदी', 'इब्ने शाद', 'इब्ने इसाक' ने लिखा कि मक्का में मुहम्मद के कोई खास भक्त नहीं थे, जिसके कारण उन्होंने 'कोराइश वंश' की तीन देवियों के आगे सर झुकाया। कोराइश वंश बहुदेववादी था और इसमें मूर्ति पूजा को महत्व दिया जाता था। वे अपने देवता को 'अल्लाह' कहते थे। मुहम्मद ने 'अल्लाह' शब्द इन्हीं मूर्तिपूजकों से लिया था। इसी प्रकार 'सूरा हज्ज'

की 52 और 53 आयत में भी शैतान का उल्लेख है। इसमें लिखा है कि अल्लाह ने मुहम्मद के पहले जितने भी नबी भेजे सभी शैतान थे। इसका यह तात्पर्य है कि मुहम्मद ने स्वयं को सर्वश्रेष्ठ साबित करने के लिए आयतों में अपने मुताबिक फेर-बदल किये। इसी कारण तसलीमा ने यह प्रश्न उठाया कि मुहम्मद की आयतों/अल्लाह की वाणी में भूल-सुधार की क्या जरूरत थी? ये सुधार अब्दुल्ला नामक व्यक्ति किया करता था। बाद में मुहम्मद ने इस अब्दुल्ला नामक शख्स का क़त्ल कर दिया।¹⁷⁹ स्पष्ट है कि कुरान में किया गया यह दावा कि पूरे विश्व में उसकी एक ही प्रति है गलत साबित होता है और यह भी सिद्ध होता है कि कुरान की आयतों में कई बार सहूलियत के अनुसार परिवर्तन किया गया है। ये सभी परिवर्तन पुरुषों के द्वारा किया गया है, जिससे स्त्रियों के पक्ष में बहुत ही कम बातें कुरान में दिखती हैं। इसी प्रकार अपनी सहूलियत के लिए की गयी कुरान की आयतों की व्याख्याओं के सन्दर्भ में पत्रकार और लेखक शीबा असलम फहमी ने भी हंस 2010 के मार्च के एक अंक में 'इक गोरा हो, इक काला हो, इक लम्बा हो, इक छोटा हो'¹⁸⁰ शीर्षक से लेख लिखकर मौलाना द्वारा की गयी इस्लाम की आयत की व्याख्या को प्रस्तुत किया। यह नामी-गिरामी मौलाना अशरफ अली थानवी साहब के द्वारा कुरान की उस आयत की व्याख्या थी, जिसमें पुरुषों को चार विवाह करने की अनुमति प्रदान की गयी है। इसमें चार विवाह के पक्ष में उन्होंने कई तर्क गढ़े - जैसे कि स्त्री के मासिक धर्म या 'अय्यामे हैज' में रहने के दौरान या गर्भवती या 'अय्यामे हमल' होने के बाद या बच्चा पैदा या 'वज़ये हमल' होने के तीन महीने के दौरान स्त्री अपवित्र होती है और शारीरिक सम्पर्क नहीं बनाया जा सकता। ऐसे में अल्लाह ने पुरुष को यह इजाजत दी है कि वह दूसरी औरत से शारीरिक सम्पर्क करे या उससे निकाह कर ले। दूसरी औरत से निकाह के बाद उसके गर्भवती होने के दौरान पहली औरत भी चूँकि गर्भवती होगी अतः वह तीसरी औरत से विवाह कर सकता है। इसी प्रकार उन्होंने चौथे विवाह के लिए और अन्य स्त्रियों से विवाह या पर-स्त्रीगमन या 'मुता: निकाह' के लिए बेतुके तर्क गढ़ लिए हैं। इन तर्कों का कुरान से कोई लेना देना नहीं है।

आत्मकथा में तसलीमा ने हदीस के अनुसार स्त्रियों की स्थिति का अवलोकन किया और पाया कि हदीस के अनुसार 'दुनिया में सब कुछ भोग के लिए है और दुनिया की सर्वोत्तम सामग्री नेक चरित्र औरत होती हैं', 'अगर मैं किसी को सिजदा करने का हुक्म देता तो सभी औरतों को जरूर हुक्म देता कि वे अपने पतियों को सिजदा किया करें', 'जब भी कोई स्त्री अपने पति से कहेगी कि तुम्हारा कोई भी काम मुझे पसंद नहीं, बस तभी उसकी सत्तर सालों की इबादत बर्बाद हो जायेगी, भले ही उसने दिन में रोज़ा रखकर और रात में नमाज़ पढ़कर सत्तर साल का पुण्य कमा रखा हो', 'पति अपनी औरत को चार कारणों से पीट सकता है - अगर वह अपनी पत्नी को श्रृंगार करके अपने पास आने के लिए कहे और उसकी पत्नी इनकार कर दे, सहवास के लिए पति के बुलावे की वह अनदेखी करे, अगर वह फर्ज़, गुसल और नमाज़ पढ़ना छोड़ दे; पति की अनुमति के बिना वह किसी के यहाँ घूमने जाए', 'जो औरतें पति की दूसरी शादी पर ईर्ष्या न करके सब्र करती हैं, उन्हें अल्लाह शहीदों के बराबर सबाब देते हैं।'¹⁸¹

इस प्रकार, पुरुष के पक्ष में किये गये प्रावधानों के कारण ही तसलीमा ने कुरान को 'पतियों के दल में शामिल पुरुषों की रचना' कहा है। दरअसल इस प्रकार का उल्लेख कर तसलीमा यह सिद्ध करना चाहती हैं कि स्त्रियों को धर्म के माध्यम से भय दिखाकर वह सब कुछ करने पर मजबूर किया जाता है, जो पुरुष भीतर ही भीतर स्त्री से अपेक्षा करता है। उदाहरण के लिए पीर अमीरुल्लाह ने पीरबाड़ी आने वाली लड़कियों को इस तरह से 'ब्लैक आउट' कर दिया था कि वे घर नहीं जाना चाहती थीं और न ही विवाह करना चाहती थीं। वे तो बस बहिश्त जाने के ख्वाब देखती। बहिश्त जाने वालों की सूची तैयार की गयी, जिसमें लड़कियों का क्रम बनाया गया था।¹⁸² यह क्रम बहिश्त का था या बिस्तर का यह तो वे ही जाने। पीरबाड़ी में लड़कियाँ "नौ-दस साल की उम्र से बुरका पहनने लगी थीं। वे स्कूल नहीं जाती थीं, घर के बाहर नहीं खेलती थीं, घर के बाहर अकेली नहीं निकलती थीं क्योंकि उनके मुरब्बियों ने कह दिया था कि यह सब करने से अल्लाह नाराज़ हो जायेंगे।"¹⁸³ इसी प्रकार तमाम मिथक गढ़ स्त्रियों के दायरे को सीमित करने की साजिश भी की गयी है। जैसे एक

मिथक यह कि 'पेड़ों पर लड़कियों के चढ़ने से पेड़ सूख जाते हैं'।¹⁸⁴ इसी कारण अनिल जैन ने 'धर्म के नाम पर' लेख में लिखा, "परलौकिक मृगमरीचिका में इन्सान को फंसाकर उसे दुनिया के यथार्थ से दूर ले जाने का नाम ही आज 'धर्म' है।"¹⁸⁵

पितृसत्ता और धर्म के गठजोड़ के कारण ही तसलीमा ने दोनों से दूरी बनानी शुरू की "मैं पिताजी से जितनी दूरी महसूस करती थी, उतनी ही अल्लाह के साथ भी। असल में मैं चाहती थी कि ये दोनों ही अनुपस्थित रहें। दोनों ही मुझे दो तरफ धकेल रहे थे कि मेरा अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता था, बस दो हिस्सों में बंटी चीरघर की लाश बनकर रह जाती थी।"¹⁸⁶ तसलीमा नहीं चाहती कि सभी स्त्रियाँ इस प्रकार से छिन्न-भिन्न व्यक्तित्व लिए चीरघर की लाश बनी रहें। इसीलिए वे धर्म और पितृसत्ता के गठजोड़ की इस कलई को खोलती हैं।

बांग्लादेश में विभिन्न प्रकार के संवैधानिक और राजनीतिक प्रावधान होने के बावजूद महिलाओं को बराबरी का हक नहीं मिला है और इसका सबसे बड़ा कारण है इस्लामिक मान्यताओं में विश्वास और पितृसत्ता को बरकरार रखना। आत्मकथा के दूसरे भाग 'उत्ताल हवा' में वह अपनी अम्मी से सवाल करती हैं, "मुझे यह समझ नहीं आता खुद औरत होकर तुम इतना अपमान कैसे कुबूल कर लेती हो? मर्द कुरान हदीस मानकर चल सकते हैं, उन्हें यह इज्जत बख्शी गयी है। लेकिन औरत होकर तुम, यह सब कैसे मान लेती हो? तुम्हारे शौहर को तुम्हे पीटने का हक है। तुम्हारे बाप की जायदाद में तुम्हारे भाई को जो मिलेगा, वह पाने की तुम हकदार नहीं हो। तुमने यह कैसे मान लिया कि मर्द अगर 'तलाक' कह दे तो तलाक हो जाता है? और तुम्हे तलाक कहने का कोई हक नहीं है। तुम्हे यह कैसे कुबूल है कि जन्नत में तुम्हे बहत्तर संगी-साथी नहीं मिलेंगे, सिर्फ तुम्हारे शौहर को बहत्तर हूरे मिलेंगी? इसलिए की वह मर्द है? कोर्ट में साक्षी देने जाओ तो तुम्हारी अकेली गवाही को गवाही नहीं माना जायेगा, दो-दो औरतों की गवाही चाहिए, हालांकि मर्द के मामले में दो-दो मर्दों की गवाही की बिलकुल ज़रूरत नहीं होती। एक ही मर्द की गवाही से काम चल जाता है। मर्द

इहलोक में भी ऐश से रहे और परलोक में भी ! तुम्हारे लिए, मेरे लिए, हर औरत के लिये, इस दुनिया में अल्लाह ने दुःख-दर्द झेलने का फरमान लिखा है और उस दुनिया में भी ! यह है तुम्हारे अल्लाह का न्याय!"¹⁸⁷ । तसलीमा का यह सवाल केवल अपनी अम्मी से ही नहीं बल्कि उन सभी औरतों से है, जो अपने समाज की दकियानूसी मान्यताओं का आँख मूँदकर पालन करती हैं और उस पर किसी भी प्रकार का तर्क-वितर्क नहीं करना चाहतीं । किन्तु तसलीमा मध्ययुगीन सामंती सोच की उपज धर्म और पितृसत्ता के संबंधों पर बात करने की आवश्यकता को महसूस करती हैं, "...औरतों की आज़ादी के बारे में लिखते हुए, जो सबसे बड़ी रुकावट है वह है धर्म और पुरुषतंत्र ! दोनों के खिलाफ अगर बात न की जाए, तो कैसे चलेगा ? बीच में रुकावट कायम रख कर क्या आज़ादी या अधिकार वसूल किया जा सकता है ?"¹⁸⁸

तसलीमा धर्म और पितृसत्ता के गठजोड़ के सम्बन्ध में लिखती हैं, "औरत पर हो रहे जुल्म-अत्याचार पर लिख रही थी, लोग वाहवाही करते रहे । लेकिन जैसे ही मैंने औरत पर होने वाले अत्याचारों की भीतरी वजहों की छानबीन शुरू करते हुए, धर्म का जिक्र उठाया, तब यह वाहवाही मिलनी बंद ही गयी, मैं कट्टरवादियों की बात नहीं कर रही हूँ । जो लोग पाँच बार नमाज़ नहीं पढ़ते, रोजा नहीं रखते, बकायदा हजामत बनवा कर, सूटेड-बूटेड होकर, अपने को प्रोग्रेसिव या प्रगतिशील कहते हुए घूमते-फिरते हैं; जो औरतें बेआबरू होकर निकलती हैं, पराये मर्दों के साथ अनायास ही मिलती-जुलती हैं, और सबसे बड़ी बात, जो औरतें युग-युगों से नारी-मुक्ति आन्दोलन करती रहीं हैं, जिन्होंने संस्थाएँ खोली हैं, समितियाँ स्थापित की हैं, उन औरतों ने भी नाक भौं चढ़ाकर कहा- लड़की की हिम्मत तो देखो ! धर्म को बदनाम करती फिर रही है ।"¹⁸⁹ स्पष्ट है कि धर्म और पितृसत्ता के द्वारा बुने हुए जाल में समाज के उन वर्गों के लोग भी फँस चुके हैं, जिन्हें तथाकथित प्रगतिशील की संज्ञा दी जाती है । पर क्या वास्तव में वे प्रगतिशीलता के अर्थ और उसकी गूढ़ता को समझते हैं ? क्या धर्म की बैसाखी थामे हुए प्रगतिशील हुआ जा सकता है ? क्या हमेशा पुरुषों के हाथ में सत्ता की बागडोर

थमाकर समाज और राज्य को प्रगति के मार्ग पर ले जाया जा सकता है ? तसलीमा की दृष्टि से तो बिलकुल भी नहीं !

तसलीमा ने धर्म और पितृसत्ता के इस गठजोड़ के विषय में बेगम रुकैया के विचार को आधार बनाया है, जिसे उन्होंने लगभग सौ साल पहले लिखा था, "हमारी यथासंभव अवनति होने पर भी दासत्व के विरुद्ध हम कभी भी सिर नहीं उठा पाए। इसका प्रधान कारण यही समझ में आता है कि जब भी किसी बहन ने सर उठाने की कोशिश की, तभी धर्म की दुहाई या शास्त्रों के वचनों के अस्त्राघातों से उसका मस्तक विचूर्ण हुआ है। हमें अँधेरे में रखने के लिए पुरुषों ने उन धर्म ग्रंथों को ईश्वर का आदेश-पत्र कहकर प्रकाशित किया है।"¹⁹⁰ स्पष्ट है तसलीमा ने बेगम रुकैया के इस कथन के माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहा है कि हमारा समाज सौ साल पहले जहाँ था, आज भी वहीं है। बदलाव के जितने प्रयास किये गये सभी को धर्म और पुरुष ने मिलकर कुचल डाला। तसलीमा के सम्बन्ध में भी यही करने का प्रयास किया गया। इस साजिश का ही तो परिणाम है तसलीमा का बहिष्कार और निर्वासन, जिसे वह आज तक झेल रही हैं।

स्त्री, धर्म का पालन तो करे पर न तो मस्जिद जाए, न मजार, किसी पुरुष के साथ इबादत भी न करे, वह घर की चाहरदीवारी को ही अपनी मस्जिद समझ ले, वहाँ रह रहे लोगो की सेवा ही को ही अपना धर्म समझ ले, इस्लाम धर्म की ये मान्यताएँ स्त्रियों के प्रति साजिश नहीं तो और क्या है ? यह धर्म और पितृसत्ता के ऐसे गठजोड़ का परिणाम है, जिसका सारा हानिकारक पक्ष स्त्रियों की झोली में ही आ गिरता है। दूसरी तरफ पुरुष धर्म-धर्म रटकर अपनी प्रभुसत्ता को यथावत् जारी रखने की साजिश में सफल हो जाता है। 'ये धर्मग्रन्थ पता नहीं, औरत को पुरुष का कितना ऋणी मानते हैं कि यहाँ तक लिखते हैं कि यदि किसी पुरुष के शरीर से सर्वदा पीप या मवाद बहता रहे तो उसके तमाम खून-पीप को औरत अपनी जीभ से चाटकर साफ कर दे, तब भी पुरुष का हक़ अदा नहीं होगा। हजरत अली एक जगह कहते हैं कि 'अगर कोई स्त्री अपने एक स्तन से कबाब और दूसरे स्तन से रसा

बनाकर पति को समर्पित करे और पति यदि इससे भी उससे संतुष्ट न हो तो वह स्त्री कितनी भी पुण्यवती क्यों न हो, नरक में फेंकी जायेगी।" ¹⁹¹ बांग्लादेश की वर्णवादी फासिस्ट पार्टी ने कुछ इस तरह का आह्वान किया, "औरतों ने जो इतनी लम्बी लड़ाई के बाद, जो आजादी हासिल की है। वह देश की खातिर, वर्ण के खातिर विसर्जित कर दें।" ¹⁹² इस विसर्जित होती आजादी को देख तसलीमा किस प्रकार चुप रह सकती थीं? किन्तु इस चुप्पी को तोड़कर तसलीमा देश निकाला, समाज से बहिष्कार, परिवार से बहिष्कार जैसी यातना मिली। ऐसे में सामान्य स्त्री भला इस तरह की प्रताड़नायें कैसे सहन कर सकती है। यही कारण है कि वह पितृसत्ता और धर्म के द्वारा दिए गये निर्देश का अक्षरशः पालन करती है।

पुरुष हमेशा से ही न जाने क्या-क्या तर्क गढ़कर धर्म को अपने पक्ष में कर स्त्रियों को अपनी मुट्ठी में जकड़ता आया है। यह बात नसबंदी कैम्प में आने वाली स्त्रियों के सन्दर्भ में दिखाई देती है। तसलीमा लिखती हैं, "वैसे मर्द चाहे जिस भी उम्र का हो अपनी क्षमता नहीं खोना चाहता। कैम्प में विभिन्न उम्र की औरतों की ही भीड़ होती है। तुम्हे पता चलता है, जिन औरतों को छह-सात बाल-बच्चे हो चुके हैं और बच्चे पैदा करते-करते जिनकी देह थक चुकी है, वे अगर आपरेशन के लिए राजी हो भी जाते हैं, तो उन्हें कैम्प में आने नहीं दिया जा रहा है! वजह? उनके पतिदेव! पति लोगों का ख्याल है, बच्चे अल्लाह की मर्जी से होती हैं, अल्लाहताला की मर्जी के खिलाफ कुछ करना गुनाह है।" ¹⁹³ दरअसल यह अल्लाह की नहीं बल्कि अल्लाह की दुहाई देने वाले पति की साजिश है। उनका मत है इसी प्रकार के 'धार्मिक कट्टरतावाद से ही इंसान प्रगति विरोधी, नारी विरोधी होता है।' ¹⁹⁴

कट्टरपंथ विभिन्न धर्मों के लोगों में आपसी वैमनस्य पैदा करता है और इस वैमनस्य का शिकार स्त्री किस प्रकार होती है यह उनके 'लज्जा' उपन्यास और 'लज्जा 2000' और 'लज्जा 2002' कविताओं में देखा जा सकता है। इनमें यह दिखाया गया है कि धर्म के नाम पर स्त्रियों का शारीरिक शोषण किया जाता है - 'उत्तेजित पुरुषांगों पर लहराती धर्म की ध्वजा!' ¹⁹⁵ और 'उसका एक

मुसलमानी नाम'¹⁹⁶ स्त्री का बलात्कार करने और उसकी अस्मिता से खेलने के लिए काफी हो जाता है। कैनेडियन लेखिका 'इरशाद माझी' अपनी पुस्तक 'द टूबल विद इस्लाम टुडे' में प्रश्न उठाती हैं कि आखिर इस्लाम को क्यों माना जाये ? तसलीमा भी मानती हैं 'धर्म की जंजीर तोड़कर बाहर निकले बिना भी औरतों की गति नहीं है' और यदि वह बाहर नहीं निकली तो 'औरत पर धर्म का बुलडोजर चलेगा। बुलडोजर तले औरत, औरत नहीं रहेगी, टुकड़े-टुकड़े मांस पिंड में तब्दील हो जायेगी'¹⁹⁷ और इस मांस पिंड से पुरुष खेलता नजर आयेगा, अनंत काल तक।

स्त्रियों के लिये बनाये गये कानून अपनी जड़ों में स्त्री विरोधी हैं। वे निरंतर धर्मशास्त्रीय मानदंडों के अनुसार ही निर्देशित किये जाते हैं। इसी कारण महिलाओं की सुरक्षा के लिए बनाए कानूनों को अरविन्द जैन 'उदारवादी और सुधारवादी मेकअप' के रूप में देखते हैं। वे लिखते हैं, "नारी सम्बन्धी अधिकांश फैसलों की आधार भूमि तो धर्मशास्त्र ही है जो मर्दों के लिए अफीम और औरतों के लिए जहर से भी अधिक खतरनाक सिद्ध हुए हैं।"¹⁹⁸ ममता कालिया धर्म की इसी भूमिका के सम्बन्ध में लिखती हैं, "भारतीय परम्परा ने जहाँ स्त्रियों को ऐसे दस-बीस आर्ष सूक्तों से विभूषित किया है कि वे अपने को देवी समझती रहें, वहीं तमाम ऐसे कटाक्ष भी कए हैं जिनसे वे दानवी सिद्ध हों। यानी मानवीय इन्हें रहने ही नहीं दिया गया है।"¹⁹⁹ केवल इस्लाम ही नहीं हिन्दू, ईसाई आदि धर्मों में भी स्त्री के प्रति की गयीं ज्यादतियों के साक्ष्य उनके धर्मग्रंथों में विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए प्रोटेस्टेंट धर्म में नारी साक्षरता को बढ़ावा इसलिए दिया गया ताकि स्त्रियाँ बाइबिल पढ़-समझ सकें। लूथर के अनुसार औरतें पुरुष के मुकाबले कमजोर थीं और उन्हें घर का काम-काज करना तथा बच्चों की देखभाल करनी चाहिए। लूथर महिलाओं की आध्यात्मिक बराबरी की वकालत तो करता है मगर राजनीति और चर्च में उनके भाग लेने को गलत मानता है। काल्विन आध्यात्मिक बराबरी की बात तो करता है मगर राजनीति और चर्च के मामले में हिस्सा लेना ठीक नहीं मानता। 1523 ई. में जब कैथोलिक धर्म में पुनः संत की घोषणा की गयी तो 55 में से 43 पुरुष थे केवल 12 स्त्रियाँ थीं। 'सिस्टर ऑफ़ चैरिटी' नामक भिक्षुणियों के संघ को स्थापित करके उन्हें एक स्वतंत्र भूमिका अदा करने

के लिए तैयार किया गया। प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक दोनों धर्मों में स्त्रियों का स्थान अधीनता का ही था। इसी प्रकार गीता भी स्त्री के ही दूषित होने सम्बन्धी प्रावधान करती है पुरुष यहाँ भी नदारद है -

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः

स्त्रीषु दुष्टाषु वाष्ण्येय जायते वर्णसंकरः॥40॥

अर्थात् जब कुल में अधर्म प्रमुख हो जाता है तो कुल की स्त्रियाँ भी दूषित हो जाती हैं और स्त्रीत्व के पतन से वृष्णवंशी ! अवांछित संताने उत्पन्न होती हैं।²⁰⁰

धर्म और पितृसत्ता के इस गठजोड़ की कलुषित मानसिकता से केवल पुरुष ही नहीं ग्रस्त हैं बल्कि स्त्रियाँ भी इसकी शिकार हैं। तसलीमा लिखती हैं, "नारी जब पुरुषों का प्रतिनिधित्व करती है और पुरुषतंत्र की समर्थक और सहायिका की भूमिका निभाने में सक्रिय होती है, तब नारी-पुरुष अलग-अलग पहचान में नहीं आते। कभी-कभी मुझे यह भी लगता है कि पुरुष को अगर औरत की सहायता न मिली होती, इतना सहयोग न मिला होता (तो) सिर्फ पुरुषों की साजिश और षड्यंत्र पर, सिर्फ पुरुषों की बुद्धि और शक्ति पर पुरुषतंत्र नहीं टिक पाता।"²⁰¹ अरुणा बुरटे इस पर चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखती हैं कि 'धर्मान्धता की शिकार स्त्रियाँ स्त्रियों के ही विरोध में खड़ी हो जाती हैं। इसके लिए उन्होंने कई उदाहरण प्रस्तुत किये जैसे - 2002 में मुस्लिमों पर जब जेनोसाइडल हिंसा हुई, तब औरतें हिन्दू (धर्मान्धता से तैयार होने वाली पहचान) होने के कारण हिंसा में शामिल थीं। इसी धर्मान्धता का शिकार हो 1987 में कई स्त्रियाँ शाहबानों के विरोध में भी उतरीं। भँवरी देवी के खिलाफ और बलात्कारियों के समर्थन में भी कई औरतें सम्मिलित थीं।²⁰²

स्पष्ट है, धर्म और पितृसत्ता के गठजोड़ ने स्त्री-पुरुष दोनों के चिन्तन और बौद्धिक स्तर को प्रभावित किया है। दरअसल पितृसत्ता और धर्म के इस जाल में फँसकर 'औरत अपनी अनंत सम्भावनाओं और स्वाधीनता के आगे खुद इति खींच देती है'।²⁰³

(च) तसलीमा का स्त्री-विमर्श :

सुधा अरोड़ा 'स्त्री से जुड़ी समस्याओं को देखना-परखना एक बर्से के छत्ते में हाथ डालने' के समान मानती हैं।²⁰⁴ ऐसा इसलिए कि विश्व और भारतीय उपमहाद्वीप में स्त्रियों को लेकर अनगिनत मुद्दे हैं और इसके लिए किसी एक मत या एक सिद्धांत के आधार पर निर्णय नहीं किया जा सकता है। राजेन्द्र यादव की नज़र में स्त्री एक 'फ्लोटिंग इकाई'²⁰⁵ है, जिसका अपना कुछ भी नहीं है। इस सबकुछ विहीन स्त्री के विषय में चिंतन करना या स्त्रीवादी बनना तसलीमा का कोई पूर्व निर्धारित प्रयोजन नहीं रहा। बल्कि यह तो अंतःकरण में उठ रही प्रतिक्रिया है, जिसे देखने और सुनने वालों ने स्त्रीवाद का नाम दिया और तसलीमा को स्त्रीवादी होने की उपाधि। तसलीमा का स्त्री चिंतन स्वयं से प्रारंभ होकर समाज के हर वर्ग की स्त्री के चिंतन तक जाता है। इस चिंतन में वे पाती हैं कि 'कोई भी औरत सुखी नज़र नहीं आती'²⁰⁶ और 'माफ़ करने के अपार धन से भरी पड़ी है'²⁰⁷। इस कारण वे सर्वप्रथम स्वयं के जीवन के द्वारा या उसका उदाहरण प्रस्तुत कर स्त्री को पितृसत्तात्मक संस्कारों के चंगुल से निकल आने के लिए प्रेरित करती हैं। रुद्र से अपना रिश्ता तोड़ते हुए वे मन ही मन कह उठती हैं, "ना, मेरी जिंदगी किसी की जिंदा बैसाखी बनने के लिए, हरगिज़ नहीं है। किसी दूसरे की बैसाखी बनने के लिए, मैं अपनी जिन्दगी कुर्बान नहीं कर सकती। रुद्र के लिए मुझे अफ़सोस है। उसके लिए मुझे हमदर्दी होती है। लेकिन इससे भी ज्यादा हमदर्दी मुझे अपने लिए होती है।"²⁰⁸ अपने लेखन के माध्यम से स्त्री के मन में इसी हमदर्दी को पैदा करने का प्रयास किया है ताकि स्त्री स्वयं के विषय में कुछ सोच सके।

वे स्त्रियों को समस्त पितृसत्तात्मक संस्कारों, गर्भाशयजनित दायित्वों, शारीरिक सीमाओं, सतीत्व की अवधारणा और स्त्रियोचित मानसिकता से बाहर निकल आने के लिए प्रेरित करती हैं। शुलामिथ फायरस्टोन ने तो 1960 के दशक में ही यह घोषित कर दिया था कि 'स्त्री की असली स्वतंत्रता तब घटित होगी जब वैज्ञानिक प्रगति उसे गर्भाशयजनित दायित्वों से मुक्त कर देगी।'²⁰⁹ वर्तमान में इसी कारण स्त्री-स्वातंत्र्य को उसके शारीरिक स्वातंत्र्य से जोड़कर देखा जाता है। स्त्री को

तो हमेशा अपने सतीत्व को ही बचाने की सलाह दी जाती है। "पान में अगर चूना मौजूद न हो, तो लोग बाग उसे फीका और बेरंग-बेस्वाद मान लेते हैं, वैसे औरत को, औरत में कुछ भी इधर-उधर हो जाए, तो उसे बर्बाद मान लेते हैं। मर्द कहते हैं कि औरत की मूल संपदा का नाम है- सतीत्व! ये सारे नियम मर्दों ने ही गढ़े हैं। औरतों को विवश किया जाता है कि विवाह से पहले वे अपना कुंवारापन और विवाह के बाद अपना सतीत्व अनछुआ रखें, हिफाजत करें। विवाह नामक सामाजिक नियम, औरत की देह और मन को मर्द की संपत्ति बना देता है। औरत इसी नियम के जाल में फँसी रहती है।"²¹⁰ समाज में कुछ इस तरह की व्यवस्था की गयी है कि स्त्रियाँ स्वयं को ही हेय दृष्टि से देखने लगती हैं। उन्हें यह नहीं पता होता कि यह सोच हर रोज समाज के द्वारा ही उनके मन में स्थापित किये जाने का प्रयास किया जाता है। उनके कमजोर पड़ने से पितृसत्तात्मक समाज को और अधिक बल मिलता है। इसी को लक्ष्य करते हुए तसलीमा लिखती हैं, "अपने जिस गुनाह की वजह से मैं इतने सब अत्याचार बर्दाश्त कर रही हूँ, वह वजह है- मैं औरत हूँ। मेरी शिक्षा-दीक्षा, मेरी रुचि, मेरी बुद्धि मुझे इंसान नहीं बना सकी, मुझे औरत बनाकर ही छोड़ दिया है। इस देश में औरत की कोई भी योग्यता, उसे इंसान में तब्दील नहीं कर सकती..."²¹¹

स्त्री के सम्पत्ति के अधिकार के सम्बन्ध में भी तसलीमा एक बहस खड़ी करती हैं। ऐसा करते हुए वे 'मार्क्सवादी स्त्रीवाद' की पक्षधर नज़र आती हैं। स्त्री के सम्बन्ध में मार्क्सवादी दृष्टि ने यह सिद्ध किया है कि उत्पादन के साधनों और संसाधनों पर अधिकार रखने वाला वर्ग ही सत्ता पर हावी रहा है। पुरुष ने अपनी शारीरिक क्षमता और चालाकी से समस्त सत्ता अपने हाथ में लेकर स्त्रियों को घर में कैद कर दिया। स्टालिन अपने लेख 'अराजकता और समाजवाद' में यह स्पष्ट करते हैं कि "स्त्रियों की मुक्ति तभी संभव होगी जब वे बड़े पैमाने पर, सामाजिक उत्पादन में भाग ले सकेंगी, और जब घरेलू कामों में उनका कम से कम समय जाया होगा।"²¹² यह उत्पादन केवल आर्थिक ही नहीं बल्कि राजनीतिक और सामाजिक भी है। इस सामाजिक उत्पादन में भाग लेने के लिए तसलीमा ने सदैव स्त्रियों को प्रेरित किया वे लिखती हैं, 'जो कुछ मेरा है, वह मैं शत-प्रतिशत चाहती हूँ। जहाँ बेटों के

सृजन में एक शुक्राणु और डिम्बाणु की जरूरत होती है, वहाँ इति गढ़ने में आधे शुक्राणु और आधे डिम्बाणु से काम नहीं चलता। फिर सम्पत्ति में आधा-अधूरा क्यों ?"²¹³ इसी प्रकार कई बार स्त्रियों को उनकी शारीरिक बनावट के आधार पर कमजोर सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। किन्तु वे इसे नहीं स्वीकार करतीं क्योंकि दोनों की उत्पत्ति एक ही प्रकार के तत्व से होती है और दूसरा गुणसूत्रों की अदला-बदली मात्र से यह सिद्ध नहीं हो जाता कि वे कमजोर हैं। हाँ, स्त्री शरीर में गर्भाशय जनित दायित्व उसे कई बार कमजोर बना देता है। ऐसे में तसलीमा और अन्य आधुनिक नारीवादी स्त्री को गर्भाशय और बच्चे पैदा करने के बोझ से ही मुक्त कर देने की माँग करती हैं। वे यौन स्वतन्त्रता में स्त्री को बच्चे पैदा करने या न करने का निर्णय स्वयं लेने की पक्षधर हैं। इसके लिए वे 'नाजन्म क्रांति'²¹⁴ की बात करती हैं, जिसके अनुसार स्त्रियों को बच्चे पैदा करना बंद कर देना चाहिए क्योंकि उनकी कोख से जन्म ले रही बच्चियों का समाज में यदि शोषण होना है तो इससे बेहतर है कि वे जन्म ही न लें। हालाँकि तसलीमा के इस विचार को मृणाल पाण्डेय ने 'विश्वव्यापी आत्महत्या'²¹⁵ की पैरवी करने वाला बताते हुए खारिज किया है।

तसलीमा को विवाह एक 'भूतहे कांड' और 'कलंक' के समान लगता है, इसीलिए वे लिखती हैं, 'विवाह करके भी कलंक, न करके भी कलंक ! अगर मुझे कोई एक कलंक वरण करना पड़े, तो विवाह का कलंक क्यों ?'²¹⁶ इसी प्रकार वे यह मानती हैं कि एक अकेली और अविवाहित स्त्री भी अपना जीवन उतने ही अच्छे तरीके से गुजार सकती है जितना कि पुरुष। वे भले ही यह मानती हों पर पितृसत्तात्मक समाज ऐसा कदापि स्वीकार नहीं करता बल्कि ऐसी स्त्रियों पर कई आरोप लगाकर उसे समाज से बाहर करके ही दम लेता है। वे लिखती हैं, "मुझे बार-बार यही लगता रहा है कि पति और गृहस्थी अगर ना भी हो, तो भी एक औरत बखूबी ज़िंदा रह सकती है, यह बात साबित करने का सिर्फ एक ही उपाय है- कुछ अर्जन या वर्जन ! कुछ अतिरिक्त योग्यता अर्जित करना ज़रूरी है। वर्जन के तौर पर पौष्टिक आहार आदि का वर्जन, साध-आह्लाद, ऐशो-आराम का वर्जन ! जैसे विधवाएँ रहती हैं या संन्यास या आत्महत्या वरण करती है या फिर चिता पर बैठ जाती है। अर्जन के तौर पर किसी

भी क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त करना।"²¹⁷ स्पष्ट है, स्त्री की राह पुरुष के बगैर कठिन जरूर है पर स्वतन्त्रता के सुख से भरी हुई है, जिसे प्राप्त करने की स्वतंत्रता हर स्त्री को होनी चाहिए तसलीमा इस की पक्षधर हैं।

तसलीमा पुरुषों की स्त्रियों के प्रति प्रतिस्पर्धात्मक मानसिकता की ओर भी ध्यान आकर्षित करती हैं। यह प्रतिस्पर्धा ईर्ष्या को जन्म देती है। वे लिखती हैं, "मर्द को ईर्ष्या की कदर भयंकर होती है इसका मुझे हाड़-हाड़ एहसास हो गया। जिंदगी में जिन कई मर्दों से मैंने रिश्ता बनाया, सिर्फ एक ही वजह से वह प्यार टूट बिखर गया- ईर्ष्या! लोग कहते हैं औरत ईर्ष्या- कातर होती है। लेकिन मर्दों की तुलना में औरतें रक्ती भर भी जलाधुर नहीं होतीं। आज देश-देश में जितने भी अपराध घट रहे हैं, उनका सिंह भाग पुरुषों की ईर्ष्या की वजह से है। मर्द औरतों की देह पर एसिड फेकते हैं, औरतों को गोली मारते हैं, चीर या कुचलकर या पीट-पीटकर, गला दबाकर हत्या कर रहे हैं। महज ईर्ष्यावश! ऐसे कितने मर्द हैं जिन्हें औरत की ईर्ष्या की वजह से अपनी जान देनी पड़ी? कितने मर्दों का सर्वनाश किया है, औरतों ने बताओं?"²¹⁸

नारीवाद की सैद्धांतिकी की दृष्टि से देखें तो तसलीमा को 'प्रो-फेमिनिस्ट' एवं 'रेडिकल फेमिनिस्ट' की श्रेणी में रखा जा सकता है। 'प्रो फेमिनिस्ट' शब्द उन नारीवादियों के लिए प्रयोग किया जाता है, जो नारीवाद में तो विश्वास करते हैं किन्तु इसके लिए किसी नारीवादी आन्दोलन का हिस्सा नहीं बनते। ज्यादातर यह शब्द पुरुष नारीवादियों के लिए प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार देखें तो तसलीमा स्त्री के पक्ष में खड़ी अवश्य हुई किन्तु उन्होंने किसी भी प्रकार के नारीवादी संगठन की न तो सदस्यता ली और न ही किसी भी प्रकार के नारीवादी आन्दोलन का हिस्सा रहीं। हनीफा दीन को दिए गये एक साक्षात्कार में तसलीमा बताती हैं, "I intentionally abstained from membership of any woman's organisation because I believed that as an individual I had the right to say what I wanted, a right that would get qualified if

I became part of any women's organisations compromise so much...All my anger and protest is through my writing."²¹⁹ इसी प्रकार तसलीमा के स्त्री-विमर्श को रेडिकल फेमिनिज्म की श्रेणी में इसलिए रखा जा सकता है क्योंकि वे लिबरल फेमिनिस्टों की तरह स्त्री अधिकारों के लिए लोकतान्त्रिक तरीके से इंतजार कर प्राप्त करने की राय नहीं देतीं। वे स्त्री को अपने अधिकारों के लिए जागरूक बनाती हैं और उसे समाज से छीन लेने के लिए प्रेरित करती हैं। उदाहरण के लिए 'फेस ऑफ़' कविता -

चेहरा अब नहीं है, और चेहरों जैसा !
मानो तलैया भर की कीचड़ पर, कोई राक्षस चलकर गुजर गया हो !'

XXXX

'वह तुम्हारा चेहरा नोचकर, तुम्हारे चहरे से अलग नहीं करेगी ...
लेकिन उसने दांत गड़ा दिए हैं
उसने तुम्हारे पुरुषांग को काट खाया
शी 'बाइट्स योर डिक-ऑफ'।²²⁰

इसका सबसे बेहतर उदाहरण है, तसलीमा की कविता 'विपरीत खेल', जिसे उन्होंने अपनी आत्मकथा के तृतीय खंड 'द्विखंडित' में सम्मिलित किया है -

मेरा अब मन करता है,
पाँच-दस रुपयों में खरीद लूँ कोई छोकरा !
छोकरा खरीदकर, उसकी छाती-पीठ पर
जबरदस्ती लात जमाकर कहूँ - जा स्साला !
छोकरा खरीदकर, उसके कुंचित अंडकोष पर,
लात जमाकर, कहूँ - जा स्साला !²²¹

किन्तु इस कविता के सम्बन्ध में वीर भारत तलवार का मत कुछ विपरीत है। वे लिखते हैं, "मगर जरा ठहर के सोचिए कि ये एक स्त्री शोषण के सवाल पर एक तात्कालिक आवेगपूर्ण प्रतिक्रिया, एक उग्र

प्रतिक्रिया के अलावा इसमें और क्या है? किस लड़के को खरीदकर ले आएंगी तस्लीमा नसरीन ? हमें आपको तो नहीं खरीद सकती ? किसी कमजोर गरीब घर के, किसी आदिवासी-दलित लड़के को लेके आएंगी, क्योंकि लड़कियाँ भी तो उसी प्रकार की पाते हैं पुरुष । तो आप एक कमजोर और गरीब लड़के को वैसे ही खरीद के ले आओगे, जैसे कमजोर और गरीब लड़कियों को लेकर कोई ले आता है ? ये कोई नारीवाद नहीं है । ये एक घटना की प्रतिक्रिया हो सकती है, लेकिन इसी उग्र प्रतिक्रिया में आप उस मर्दवादी अवधारणा को आत्मसात कर ले रही हैं, जो मर्दवादी धारणा शरीर का इस प्रकार का उपभोग करके लात मारके उसको भगा देती है ।"²²² दूसरी तरफ प्रख्यात स्त्रीवादी आलोचक और लेखिका रोहिणी अग्रवाल का मत है, "स्त्री विमर्श कटघरे में पुरुषवादी स्त्री को खड़ा नहीं करता, पुरुष तंत्र को खड़ा करता है । तब परीक्षण की अनिवार्य एवं संयुक्त प्रक्रिया में उसकी सकारात्मक भागीदारी कहाँ है ? शोषण की नींव पर खड़े खंडित घर ही क्या उसे प्रिय हैं जहाँ स्त्री रुदन पृष्ठभूमि संगीत की रचना कर उसके पौरुष और अहं को दीप्त करता है?... तस्लीमा नसरीन बिखरकर पुरुष की हिंसा का कोई भी साहित्यिक अनुष्ठान नहीं करना चाहतीं । इसलिए खबरों को आवेग की सघनता, आक्रोश की प्रखरता और विश्लेषण की तटस्थता दे वे नियम कायदों की बिसात ही पलट देना चाहतीं हैं ।"²²³ जो भी हो तस्लीमा के स्त्रीवाद को लेकर कई आलोचक संतुष्ट नहीं दिखते हैं, तो कई आलोचक उनके स्त्रीवाद की सराहना करते नहीं थकते । कुल मिलाकर तस्लीमा का स्त्री-विमर्श पुरुषोचित मानसिकता के विरुद्ध खड़ा किया गया एक व्यक्तिगत आन्दोलन है । यह आन्दोलन अपने आप में विशिष्ट है, जिसकी सूत्रधार स्वयं तस्लीमा हैं । कई बार उन पर पुरुष विरोधी होने का आरोप लगाया गया है । इस सम्बन्ध में लेखिका और अनुवादक सुशील गुप्ता को दिए अपने एक साक्षात्कार में तस्लीमा कहतीं हैं, "मुझे मर्दों की नीयत से शिकायत है कि वह औरतों को बराबरी का हक देने को राजी नहीं हैं । भई, अगर मर्दों के प्रति कड़वाहट होती, तो मैं उनसे अन्तरंग सम्बन्ध कैसे बनाती ? प्रेम कवितायें कैसे लिखती ? मेरा कहना है कि अगर औरत, मर्द की आजादी में दखल नहीं देती, तो मर्द भी उन की आजादी में दखल क्यों देते हैं ? असल में मर्दों की कथनी-करनी में भयंकर फर्क है । कहने

को तो वे उदार बनते हैं, मगर औरत, बीवी, प्रेमिका को किसी तरह की आजादी देने को तैयार नहीं होते। समूची की समूची मर्द जात ही एक जैसी है। मजा यह है कि हमारा समाज, सभ्यता और संस्कृति भी उन्हीं की पक्षधर है।"²²⁴

तसलीमा का स्त्री-विमर्श स्त्री की यौनेच्छा, गर्भधारण की स्वतंत्रता, अपनी देह पर स्वयं स्त्री के अधिकार की पैरवी कुछ इस प्रकार करता है- "एक चीज मेरे विश्वास के अन्दर पक्की तौर पर घर करती जा रही थी, वह थी अपनी चाहों की कद्र करना..., मेरी देह नितांत मेरी है। इस पर दखल करने का हक मेरे अलावा और किसी का नहीं हो सकता। इस शरीर को मैं कीचड़ में डुबो दूँ या सिर की शोभा बनाऊँ, इसका फैसला सिर्फ मैं करूँगी। मैंने एकाधिक मर्दों से शारीरिक संपर्क स्थापित किया है, यह जानकर अनगिनत मर्द मेरे तन-बदन की तरफ टुकुर-टुकुर देखते रहते हैं, मानो यह शरीर आसानी से सुलभ है, हाथ बढ़ते ही उपलब्ध हो जाएगा... उन लोगों को कभी यह ख्याल नहीं आता कि मर्द भी भोग की सामग्री हो सकते हैं। औरत भी मर्द का भोग कर सकती है और वे लोग कभी सपने में भी नहीं सोच सकते कि अगर मैं न चाहूँ तो एकमात्र बलात्कार करने के अलावा वे लोग मेरी देह नहीं पा सकते।"²²⁵ कुछ ऐसा ही तो अमरकांत के उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' की पात्र कनेरी, सदाशय व्रत से कहती है, "तुम जबरदस्ती करोगे ? कर लो, मैं तुम्हारे सामने हूँ। यह तो शरीर मिट्टी का है पर समझ लेना आत्मा नहीं मिलेगी। बिना आत्मा के शरीर चाहे जितना ले लो।"²²⁶

आज का स्त्री-विमर्श केवल सामाजिक मुक्ति की ही बात नहीं करता बल्कि देह मुक्ति की बात करता है। वास्तव में स्त्री की मुक्ति तभी होगी जब उसे देह मुक्ति और देह-शुचिता को संरक्षित रखने के दायित्व से मुक्ति मिले। मन्नू भंडारी का इस सम्बन्ध में मत है, "हाँ, इस बात को मैं केवल मानती ही नहीं बल्कि जरूरी भी समझती हूँ कि स्त्री-शरीर के साथ 'शुचिता' का जो तमगा लटका रखा है (पुरुष जिससे पूरी तरह से मुक्त है) उससे स्त्री को मुक्त होना ही है- करना ही है।"²²⁷ इस पहचान के लिए वह किसी के प्रति खुद को कृतज्ञ न महसूस करे बल्कि यह उस का हक समझ कर कुबूल करे। तसलीमा इसी 'देह मुक्ति' की बात करती हैं, और 'यौन स्वतन्त्रता' का पक्ष लेती हैं। किसी भी स्त्री को यह निर्णय

लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह अपना शरीर किसे सौंपे या न सौंपे। इस पर किसी भी मर्द का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। ये कुछ ऐसे विषय हैं जिसपर चर्चा करना ही पूर्वी देशों में अश्लील माना जाता है। अधिकारों की बात तो दूर है। तसलीमा इस पर खुल कर बात करती है। रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं, "बेशक समाज ने उन्हें इंसान का दर्जा नहीं दिया, शिक्षा ने डॉक्टर का ज्ञान तो दिया ही है। वे जानती हैं कि बदन पर हुए घाव को जब तक खोलकर न दिखाया जाय, उपचार सम्भव नहीं है। फिर निर्लज्जता और अश्लीलता की बात कहाँ? इसलिए आयु बढ़ने के साथ-साथ 'एक-एक तिलचट्टा होती चलती' लड़कियों को देख वे मिनमिनाती नहीं, चिल्लाती है कि सतीत्व' बड़े ही अशालीन ढंग से स्त्रियों पर आरोपित एक संस्कार है' (चारकन्या, दूसरापक्ष, पृष्ठ36); कि 'विवाह नामक सामाजिक नियम औरत की देह और मन को मर्द की संपत्ति बना देता है' (द्विखंडित, पृष्ठ 212); कि 'मैं हारून के शारीरिक सुख के लिए रखा द्विपदीय प्राणी मात्र हूँ। मुझे सुबह-दोपहर-शाम को खा पी कर जिंदा रहना पड़ता है क्योंकि वह मझे भोगेगा' (चारकन्या, प्रतिशोध, पृष्ठ143); कि 'मैंने इस नियम को भी अस्वीकार कर दिया है की अगर मेरी देह कोई छुए तो मैं सड़ जाऊंगी। मैंने तोड़ डाली है जंजीर। पान से पोंछ दिया है संस्कार का चूना।' (द्विखंडित, पृष्ठ 212)।" ²²⁸

आलोचकों के उन्हें अश्लील घोषित करने के बावजूद तसलीमा प्रश्न उठाती हैं, "पितृसत्ता कहती है कि स्त्री की देह कभी न जागे। यदि जाग भी जाए, तो उसे नींद में सुलाए रखने में ही मंगल है। स्त्री को बढ़कर सामने नहीं आना चाहिए। वह यौन दासी है। जो स्त्री काम वासना रखती है, उसे बुरी औरत माना जाता है, जबकि पुरुष यदि ऐसा करे, तो उसे वीर्यवान, शौर्यवान कहा जाता है। इस विषमता के चलते स्त्री-पुरुष में क्या कभी सच्चा और स्वस्थ सम्बन्ध हो सकता है?" ²²⁹ यह कथन ओमा शर्मा की कहानी 'बांग्लादेश' में रचना की माँ की हिदायत की याद दिलाता है, जिसमें वह कहती हैं, "...दुनिया बदलती है, वक्रत बदलता है मगर कुछ चीजे हमारे यहाँ कभी नहीं बदलती हैं और नहीं बदलेंगी... उनमें एक है औरत की हैसियत... नुमाइश के लिए वह चाँद पर चली जाए मगर देहरी के भीतर वह एक देह से ज्यादा कुछ नहीं। और देह भी ऐसी जो पति नाम के पुरुष के संसर्ग से

अपना निजी और सामाजिक वजूद हासिल करती है और उसी के द्वारा ठुकराए जाने पर ऐसी बासी जूठन मान ली जाती है कि उसका कोई मोल नहीं बचता ।"²³⁰ स्पष्ट है तसलीमा स्त्री की देह पर स्त्री के अधिकार की समर्थक हैं । उनका यह मत 'व्यक्तिवादी नारीवाद'²³¹ के विचार के समान है जो 'स्त्री का शरीर, स्त्री का अधिकार' की बात करता है और स्त्री के सभी यौन अधिकारों चाहे वे मातृत्व हों या वेश्यावृत्ति सभी का सम्मान करता है और इस सम्बन्ध में स्त्री के निर्णय को प्राथमिकता दिए जाने की पैरवी करता है । तसलीमा यह भी दिखाना चाहती हैं कि स्त्री का यौनांग 'पैसिव' नहीं होता । उसमें भी पुरुष के समान ही उत्तेजना होती है । शारीरिक सम्बन्ध केवल पुरुषों के लिए ही अनिवार्य नहीं हैं स्त्रियों को भी शारीरिक प्रेम की आवश्यकता होती है । इसके लिए उन्होंने 'सिहरन'/'कंपन' शीर्षक से कई कवितायें लिखी और स्त्री की यौन आकांक्षा को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त किया -

'मेरे मन की उम्र अभी सोलह के द्वार

देह ने किया, पिछले दिनों, बीस पार

इस बयालीस की उम्र ने कहा -

अभी तक तुम्हे पीस रहा, इश्क का ज़हरीला बुखार ।"²³²

कई बार तसलीमा इस शारीरिक तृप्ति के लिए किसी पुरुष की आवश्यकता को भी नकार देती हैं । ऐसे में वे समलैंगिकता की बात करती हैं । आत्मकथा में भी यह दिखाई देता है कि वे कई बार स्त्रियों के साथ शारीरिक सम्पर्क बनाती हैं और कई बार अपनी देह की तृप्ति के लिए हस्तमैथुन भी करती हैं । ऐसा करने के दौरान ही वे अपनी देह की कद्र करना सीखती हैं, जिसे पुरुष द्वारा केवल मसला-कुचला जाता महसूस किया । 'पद्मावती' और 'औरत जन्म' कविता में समलैंगिक रिश्तों के आधार पर यह दिखाया कि शारीरिक तृप्ति के लिए किसी पुरुष की आवश्यकता नहीं-

(पद्मावती कविता)

'होठों का होठों से होता रहा प्यार

प्यार होता रहा आकाश पार

जन्म ले रही थी, नारी से नारी !"²³³

एवं
(औरत जन्म कविता)
मैं खुद को प्यार करती हूँ।
औरत को !
औरत जन्म को !²³⁴

इस दृष्टि से तसलीमा को 'व्यक्तिवादी नारीवादी' कहना गलत नहीं होगा।

चाहे कितनी भी स्त्री मुक्ति की बात कर ली जाय या स्त्री-विमर्श को बढ़ावा दिया जाय, स्त्रियों की स्थिति तब तक यथावत बनी रहेगी, जब तक एक स्त्री स्वयं इस दलदल से निकलने की इच्छा जाहिर नहीं करेगी या जब तक वह स्वयं इसके लिए कदम नहीं बढ़ाएगी। तसलीमा ने यह भी महसूस किया कि कुछ तथाकथित बुद्धिजीवी स्त्रियाँ भी पितृसत्ता की सोच तले दबी हुई हैं, जो न स्वयं और न ही किसी और को इस दायरे से बाहर आने देना चाहती हैं। स्त्रियों पर पितृसत्तात्मक मानसिकता के प्रभाव का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए तसलीमा लिखती हैं, "मैंने बहुतेरी महिला चित्रकारों का काम भी देखा है। वे स्त्री को पुरुष की आँखों से देखती हैं। पुरुषों की सिखाई तुलिका से ही स्त्री को चित्रित करती हैं। मैं ऐसी महिला चित्रकार देखना चाहती हूँ, जो पुरुषों की सुडौल बाँहों, उनके नितम्बों, जाँघों और यौनांगों की तस्वीर बनाएँ। आखिर पुरुष अंगों के प्रति स्त्री में भी एक स्वाभाविक आकर्षण है ही।"²³⁵ तसलीमा जब गिरफ्तारी के भय से भूमिगत हो गयीं थीं, उसी दौरान प्रख्यात बांग्लादेशी लेखिका पूरबी बासु के पुस्तक विमोचन के कार्यक्रम में प्रबुद्ध मानी जाने वाली लेखिका सूफिया कमाल का वक्तव्य उन्होंने आत्मकथा में शामिल किया, जिसमें सूफिया तसलीमा की ओर इशारा करते हुए कहती हैं, "तसलीमा नारीवादी विषयों पर लिख रहीं हैं, यह अच्छी बात है, मगर वह लेखन उग्र नहीं होना चाहिए। हाँ, औरतें असल में माँ होती हैं। उन्हें सहनशील होना चाहिए। मर्द जब भूले से भी गुस्से से भड़क जाता है, नाराज़ होता है, तो गृहस्थी कायम रखने के लिए, औरतों को ही नरम होना पड़ता है। मर्द स्वभाव से ही गर्म होता है। ऐसे में अगर औरत भी ताव खा जाय, तो गृहस्थी कैसे चलेगी? माँ जात को ढेरों जिम्मेदारियाँ होती हैं... मर्दों के खिलाफ बोलना, उग्रता

दिखाना औरतों को शोभा नहीं देता। इससे औरत की कमनीयता भंग होती है।"²³⁶ इसके विपरीत सुमन राजे इस प्रकार के प्रकटीकरण का पक्ष लेती हुई लिखती हैं, "स्त्री मुक्ति के विमर्श में यौन-मुक्ति का विमर्श भी अनिवार्यतः जगह पायेगा क्योंकि स्त्री की अन्य गुलामियों में उसकी यौनिक गुलामी भी शामिल है।"²³⁷ और ग्लोरिया स्टाइनेम का मत है, "By telling the truth about her life as a doctor, an artist and a free women in a patriarchy that allows none of those things, Taslima exposes a false world for all to see."²³⁸

वस्तुतः तसलीमा का स्त्री-विमर्श उन्हें विश्व की शीर्ष स्त्रीवादियों के समक्ष खड़ा कर देता है और कई मायनों में वह उनसे भिन्न भी प्रतीत होती हैं। आत्मकथा 'द्विखंडित' में वे लिखती हैं, "मैं समूची मर्द जात से जंग भी नहीं कर रही हूँ। मैं तो सिर्फ समाज के सड़े-गले नियमों से लड़ रही हूँ; जो नियम औरतों को गुलाम बनाते हैं; उसे भोग की सामाग्री बनाते हैं; उसे 'सेक्स का माल' समझकर, इस्तेमाल करते हैं; औरत को बूँद भर भी मर्यादा नहीं देते, मैं इन मुद्दों पर समाज, धर्म और देश की साजिश के खिलाफ प्रतिवाद कर रही हूँ।"²³⁹ उनके जैसे बेबाक लेखन का साहस बहुत कम ही लेखकों ने किया है। इसी कारण बांग्लादेशी लेखक मीर नुरुल इस्लाम 'बांग्ला की वाणी' पत्रिका में उन्हें 'बिलकुल फर्क नज़रिए की, अनोखी कवि'²⁴⁰ कहा। विश्व में अन्य कई रचनाकारों ने तसलीमा की तरह ही सवाल उठाये, जिसके कारण उन्हें भी तमाम आलोचनाओं का सामना करना पड़ा, उदाहरण के लिए- ईरान की वफा सुलतान, कनाडा की इरशाद माँझी, पाकिस्तान की तहमीना दुरानी और रहील रज़ा, सोमालिया की अय्यान हिरसी अली, भारत की अरुंधती राय आदि। तसलीमा का स्त्री-विमर्श इन सबके समान होते हुए भी इन सबसे भिन्न और विशिष्ट इसलिए हैं क्योंकि इसमें स्त्रियों की मुक्ति का मार्ग उनके सभ्य बन जाने में नहीं बल्कि उनके 'नष्ट' हो जाने (अर्थात् किसी भी प्रकार की परम्परा का पालन न करना) में है। 'ए लड़की सुनो' कविता में तसलीमा स्त्रियों को हिदायत देती हैं, अपनी चुप्पी से आगे निकल आने की। चाहे उसके लिए उन्हें कितनी भी मुसीबत, लांछन आदि का सामना क्यों न करना पड़े।

'तुम्हे क्या करना है, पता है ?

अब, तुम उठकर खड़ी हो जाओ !

पीठ सीधी किये, सर ऊँचा उठाये, खड़ी हो जाओ ।

XXXXX

वहाँ मौजूद सभी औरते,

तुम्हारी ही तरह वेश्या होने के सपने देखेंगी ।²⁴¹

तसलीमा पितृसत्ता से मुक्ति के लिए स्त्री को 'नष्ट' होने की सलाह देती हैं । यह नष्ट होना है- समस्त मान्यताओं, समस्त संस्कारों, समस्त रीति-रिवाजों, समस्त दायित्वों को ठुकरा कर अपने अनुसार जीवन जीना, जिसमें परतंत्रता नहीं स्वतंत्रता हो, स्वाभिमान हो । इसीलिए उनका कहना है, 'नारी के शुद्ध होने की पहली शर्त है उसका नष्ट होना' ।"²⁴² तसलीमा का यह उद्देश्य उनकी कविता 'अगर कर सको, तो घर्षण करो' कविता से स्पष्ट हो जाता है -

'सुनो, अब घर्षिता न होना !

बल्कि बलात्कार को अमादा मर्द का पुरुषांग काटकर,

उसी के हाथ में पकड़ा दो ।

या झूला दो उसकी गर्दन में

मुन्ने राजा अब चूसते रहें अपना-अपना दिग्विजयी अंग !

चूसते रहें निरुपाय झूलता हुआ अंडकोष !

XXXX

चलो हम सब मिलकर बुरी औरतें बन जाएँ,

बुरी बनने जैसा भला काम, और कहीं है भला ?'²⁴³

तसलीमा पितृसत्ता से मुक्ति, औरतों के मन पर राज करने वाली अदृश्य सामाजिक बेड़ियों से मुक्ति, बराबरी और स्वतन्त्रता के लिए 'गोल्लाछूट दौड़' लगाने अर्थात् अपने निर्धारित दायरे से बाहर निकल आने की सलाह देती हैं -

"हम लडकियाँ खेल सकें, जो खेल
इसलिए उतरती थी शाम
उस खेल का नाम है- 'गोल्लाछूट'
...एक बार फिर, मेरा मन होता है, मैं भी खेलूं!
अभी भी कभी-कभी आकुल-व्याकुल होती हैं
पांवों की उंगलियाँ,
धूल में धस जाना चाहतीं है गुप्त एडियाँ!
मेरा मन होता है, जाऊँ
दुनिया की तमाम जवान-जहान लडकियाँ
लगा दे 'गोल्लाछूट' दौड़!'²⁴⁴

यह अपने साथ गोल्लाछूट लगाने का आह्वान ही स्त्रियों को मुक्त होने के लिए प्रेरणा का सूत्र वाक्य बन जाता है। इस सम्बन्ध में बंगाली लेखक शम्सुर रहमान लिखते हैं, "हमारे समाज में बहुतेरे लोग औरत की व्यक्तिसत्ता को विकसित होने देना नहीं चाहते... इस परिस्थिति से तालमेल बिठाकर, तसलीमा चल नहीं पातीं, इसलिए तसलीमा विद्रोही हो उठती हैं। उन्होंने अपने पैरों की बेड़ियाँ तोड़ फेंकी हैं और दूसरों को भी तोड़ फेंकने का आह्वान करती हैं।'²⁴⁵

इस प्रकार स्त्री के सम्बन्ध में जो कथ्य तसलीमा ने प्रस्तुत किये हैं उनका संक्षेप में विवरण उनके ही शब्दों में कहें तो यहाँ 'औरत के सुख की कथा, व्यथा-कथा, औरत के पाँव तले जमीन की बातें, जंजीर तोड़ने की कथा; समाज-देश-परिवार के नियम विधि तोड़कर बाहर निकल आने की

कथा। इंसानी हकों के साथ जिन्दा रहने का बयान'²⁴⁶ किया गया है। यहाँ निष्कर्ष रूप में रोहिणी अग्रवाल के मत को रखा जा सकता है। वे कहती हैं, "आक्रामक और कंटीले लेखन के लिए विख्यात बांग्लादेश की लेखिका तसलीमा नसरीन औरतों की आँसू भरी दास्तानें कह कर अपने वक्त और ऊर्जा का क्षय नहीं करना चाहतीं। "जंजीरें तोड़ दी हैं मैंने/ पान के पत्ते से हटा दिया है संस्कार का चूना" (तसलीमा नसरीन की प्रतिनिधि कविताएँ, समर्पण पृष्ठ) का उद्धोष कर वे उस लड़की की गतिविधियों में ज्यादा दिलचस्पी लेती जान पड़ती हैं जो लोगों की टेढ़ी नज़रों, कामुक सीटियों और 'बदचलन' सरीखा गालियों से बिना घबराए निर्द्वंद्व अपने रास्ते आगे बढ़ रही है। अलबत्ता इस लड़की को वे सावधान ज़रूर कर देना चाहती हैं कि रेबीज युक्त कुत्तों के आक्रमण की ही तरह हर देह के लिए घातक होता है सिफलिस युक्त मर्दों का आक्रमण। (वही, पृ० 14) लेकिन यही तसलीमा कविताओं और टिप्पणियों के संसार से बाहर आकर जब गाढ़ी रूमनियत के साथ अपने बचपन की यादों में डूबती हैं तो माँ ईदुल की कथा कहते-कहते बेहद वस्तुपरक ढंग से औसत औरत की नियति का बखान करने लगती हैं। हालाँकि 'मेरे बचपन के दिन' में किशोरी होती बच्ची की नज़र से माता-पिता के कलहपूर्ण सम्बंधों का चित्रण किया गया है, किंतु समूचा प्रकरण मुखर होकर इस बात की पुष्टि करता है कि माँ के श्याम वर्ण और कुरूपता तथा पिता के दाम्पत्येतर सम्बंधों के बीच माँ जिस असुरक्षा बोध से ताउम्र पगलाई रही, वह दो तथ्यों की उपज थे। एक, डॉक्टर पति की तुलना में अल्पशिक्षित होना, और दूसरा इस्लाम द्वारा पुरुष को बहुविवाह का अधिकार देना।"²⁴⁷

तसलीमा के स्त्री-विमर्श की तुलना यदि हिंदी साहित्य के स्त्री-विमर्श से करें तो यह पाते हैं कि विषय वही हैं, बातें वही हैं किन्तु अंतर है तो अभिव्यक्ति का। उस अभिव्यक्ति का, जिसमें भय नहीं साहस है। साहस है तमाम प्रतिष्ठित सत्ताओं - पितृसत्ता और धर्म से लड़ जाने का। बंगाली कवि शम्सुर्रहमान लिखते हैं, "तसलीमा के साहस की तारीफ करनी चाहिए। वे हमारे पुरुष शासित, पाश्चात्य उन्मुख, घुन खाए समाज पर बार-बार चाबुक बरसा रही हैं। अचल समूह को धकिया रही हैं। धार्मिक गँवारूपन, संकीर्णता और अमानवीयता के खिलाफ, दांतों तले ऊँगली दबाने जैसा मंतव्य

जाहिर करने में वे बूँदभर भी दुविधा नहीं करतीं। उनके उच्चार में कहीं दुराव-छिपाव नहीं है।"²⁴⁸

आत्मकथाओं जैसे- मलिका अमर शेख की 'मला उध्वस्त व्हायचय', बेनजीर भुट्टो की 'डॉटर ऑफ़ डेस्टिनी' (मेरी आप बीती), इस्मत चुगताई की 'कागजी है पैरहन', किश्वर नहीद की 'बुरी औरत की कथा', तहमीना दुरानी की 'मेरे आका', मैत्रेयी पुष्पा की 'गुड़िया भीतर गुड़िया', आशा अपराद की 'दर्द जो सहा मैंने' आदि में एक तरफ़ा तलाक, बाल यौन शोषण, बलात्कार, घरेलू हिंसा, पुनरुत्पादन का बढ़ता श्रम आदि चित्रित हैं। कुल मिलाकर जाहिदा हिना के शब्दों में कहें तो इन आत्मकथाओं में स्त्री का मुकाम 'कोरिया गैर'²⁴⁹ अर्थात् 'घरेलू कब्र' ही दिखता है। किन्तु इन आत्मकथाओं में कई बार व्यक्तिनिष्ठता इतनी अधिक रह गयी है कि तसलीमा की आत्मकथा से उसकी तुलना कर पाना कठिन हो जाता है। तसलीमा की आत्मकथा में आत्मनिष्ठता के साथ-साथ वस्तुनिष्ठता है क्योंकि एक तरफ यह स्वयं के जीवन के माध्यम से अपने जीवन से जुड़ती है तो वहीं दूसरी तरफ अन्य स्त्रियों के जीवन में भी झाँकती है। इसके माध्यम से स्त्री-विमर्श के नये मानकों को स्थापित करते हुए आगे बढ़ती है। तसलीमा की आत्मकथा अपने आप में मौलिक और एक 'ट्रेंड सेटर' के रूप में देखी जा सकती है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं, "यह वही स्त्री है, जिसके लेखकीय साहस पर तालियाँ बजाई जाती हैं और मिसाल देकर हमारा प्रबुद्ध वर्ग कराहता रहा है- काश हिंदी में कोई तसलीमा नसरीन होती।"²⁵⁰

स्पष्ट है, तसलीमा ने धर्म और पितृसत्ता के गठजोड़ को स्त्री की उन्नति और उसकी स्वतंत्रता की राह में सबसे बड़ा बाधक स्वीकार किया है। मोहन कृष्ण बोहरा के द्वारा इस गुत्थी को न सुलझा पाना कि एक तरफ ग्लोरिया स्टाइनेम (जिन्होंने यह कहा- 'अ वूमेन विदाउट मेन इज लाइक अ फिश विदाउट अ बाइसिकल') के साथ खड़ी हो वह स्त्री के जीवन में पुरुष के महत्व को नकारती हैं यानी पुरुष का साफ-साफ विरोध करती हैं वहीं नवनीता देवसेन द्वारा उन्हें पुरुष विरोधी कहने पर वह स्वयं को पुरुषतंत्र विरोधी साबित करने लगती हैं।²⁵¹ दरअसल मोहन कृष्ण बोहरा का इस प्रकार भ्रमित होना जायज है। कई बार तसलीमा पुरुष को खरीदकार लात मरकर भगा देना चाहती हैं तो उसी पुरुष के लिए कहीं वे तड़पती हुई नज़र आती हैं। ऐसे में भ्रम उत्पन्न होता है। किन्तु वे सहअस्तित्व और

समान आधिकार की बात कर पुरुष विरोधी होने की अपनी छवि का पटापेक्ष कर लेती हैं। दूसरी तरफ वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में व्यवस्थापकों को धर्मग्रंथों की प्रासंगिकता पर एक बार फिर से विचार करने के लिए प्रेरित करती हैं। यदि ऐसा न किया गया तो तो उनकी मान्यता है कि 'न स्त्री स्वतान्त्रयमर्हति' (मनुस्मृति 9.3), 'पुरुष स्त्री से श्रेष्ठ है' (सूरा बकर 2:228) और 'तेरी लालसा तेरे पति की होगी, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा' (बाइबिल उत्पत्ति 3:16) आदि-आदि कहकर और विभिन्न प्रकार से बर्गलाकर स्त्री को सदैव इसी प्रकार अधीनस्थ घोषित किया जाता रहेगा। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट भले ही यह कहती हो कि 'दुनिया की 98 प्रतिशत पूँजी पर पुरुषों का कब्जा है। पुरुषों के बराबर आर्थिक और राजनीतिक सत्ता पाने में औरतों को अभी हजार वर्ष और लगेंगे।' ²⁵² तसलीमा भी इस सम्बन्ध में लगने वाले लम्बे समय के प्रति आश्वस्त है किन्तु इसे नामुमकिन नहीं समझती। बस इसके लिए स्त्रियों को स्वयं उठकर सामने आने के लिए प्रेरित करती हैं और मुक्ति की राह में पाती हैं कि 'अकेली नहीं है वह/दल बाँधकर जाना होता है, तोड़ने प्रासाद....!' ²⁵³

निष्कर्ष

मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो भिन्न मत हैं - वैज्ञानिक और परम्परावादी । परम्परावादी मत टोटेमवाद, आदिमजातियों और धर्मग्रंथों के आधार पर मनुष्य को किसी प्राकृतिक शक्ति द्वारा उत्पन्न मानता है जबकि वैज्ञानिक मत मनुष्य को जैविक विकास का परिणाम मानता है । वैज्ञानिक मत तर्क पर आधारित होने के कारण अधिक उचित जान पड़ता है ।

जीवों के विकास के क्रम में कई ऐसी प्रजातियाँ हुईं, जिनमें बिना मैथुन के ही प्रजनन संभव हो सकता था- जैसे अमीबा । इस प्रक्रिया को 'द्विधाकरण' और 'बहुधाकरण' कहा गया । किन्तु कुछ जीव ऐसे थे, जिनमें लिंगों के सम्पर्क के बिना प्रजनन संभव नहीं हुआ, उनमें से एक मनुष्य भी है । हालाँकि वर्तमान में कई ऐसी तकनीक विकसित हुई है, जिसमें बिना मैथुन के प्रजनन सम्भव हो सका है । मनुष्य के विकास के शुरूआती दिनों में मनुष्य अपने लिंग की पहचान नहीं रखता था, जिसका प्रमाण कुछ जनजातियों (वैंगा, गोंड और माओरी आदि) में पाया गया, जिनमें सन्तान उत्पत्ति के लिए वे किसी अन्य ही तत्व (चाँद, पुरुष मूत्र से सिंचित भूमि से उत्पन्न खाद्यान्न आदि) को उत्तरदायी मानते रहे । धीरे-धीरे मनुष्य को लैंगिक विभेद का ज्ञान हुआ और वह पुरुष और स्त्री के रूप में पहचाना जाने लगा ।

वेस्टरमार्क जैसे दार्शनिकों का मत है कि मनुष्य जैसी प्रजातियाँ सदैव ही परिवार के रूप में रहती आयीं हैं, किन्तु मार्क्स और हेगल इसे एक उत्पादन के साधनों के विकास के बाद की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं । वोखोफेन जैसे विद्वान भी इसी मत का समर्थन करते हैं और यह सिद्ध करते हैं कि पहले मातृसत्ता विद्यमान थी, जिसमें उस समय परिवर्तन आना प्रारंभ हुआ जब से मनुष्य ने परिवार के रूप में रहना प्रारंभ किया । बाल्डविन, स्पेंसर और गिलेन के द्वारा किये गये अध्ययन यह साफ़ दिखाते हैं कि पहले परिवार नहीं था बल्कि 'यौथ प्रथा' थी । जयचंद विद्यालंकार, डी. एन. मजूमदार आदि के द्वारा किये गये अध्ययन भी यही सिद्ध करते हैं । 'मातृगमन', 'भगिनीगमन', 'गुरुभार्यागमन' और 'पुनलुआ' आदि प्रथाओं का अंत 'परिवार' की अवधारणा के जन्म के साथ होने लगा । ऐसे में स्त्रियों

की स्थिति में भी क्रमशः परिवर्तन होता गया और समाज मातृसत्ता से पितृसत्ता की ओर उन्मुख हुआ। इसे सामाजिक विकास क्रम में एक महान क्रांति के रूप में देखा गया है। गार्दालर्नर का मत है कि इस क्रांति के आकार लेने में ही तकरीबन पच्चीस सौ वर्ष लगे होंगे।

पितृसत्ता की स्थापना के कारण के रूप में एक तरफ 'जैविक भौतिकवाद' को उत्तरदायी माना गया तो स्टालिन इसे पुरुष द्वारा समस्त उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण के रूप में देखते हैं, जिसने स्त्री को पंगु बना दिया। इस क्रम में स्त्रियों को उसके हर एक पद से अपदस्थ कर दिया गया जिसे देवी मूर्तियों के साथ पुरुष मूर्तियों के निर्माण से लेकर परिवार में स्त्रियों के सीमित होते दायित्व तक में देखा जा सकता है। इसी क्रम में अन्तःपुर, सतीत्व, सती-प्रथा, दहेज, दासी-प्रथा, नियोग-प्रथा, बहुपत्नीत्व, पुत्रोत्पादन का महत्व आदि का क्रमिक विकास होता गया और आगे चलकर इसने रूढ़ी का रूप धर लिया।

स्त्रियों के महत्व को कम करने वाली सामाजिक रूढ़ियों को जब आधुनिक काल में महसूस किया गया तो एक तरफ पितृसत्ता के समानांतर 'सामाजिक सुधार आन्दोलन' कर कई कुप्रथाओं और स्त्री को जागरूक बनाने के लिए उनकी शिक्षा पर बल दिया गया और दूसरी तरफ पितृसत्ता के विरुद्ध 'नारीवादी आन्दोलन' और 'स्त्री-विमर्श' का प्रारम्भ हुआ। स्त्री-विमर्श के दर्शन की ओर देखने पर पता चलता है कि कई प्रारंभिक दार्शनिकों जैसे प्लेटो, अरस्तु, देकार्त और हीगेल आदि ने स्त्री को अयोग्य सिद्ध कर कुछ ही अधिकार दिए जाने के योग्य माना। इस प्रकार से पितृसत्तात्मक रवैये से प्रेरित प्रारंभिक स्त्री-चिंतन को जेन फ्लेक्स जैसे दार्शनिकों ने पुरुष की 'साइकोसेक्सुअलिटी' का परिणाम मानते हुए 'मेस्कुलिन' आग्रहों की वजह से खारिज कर दिया। हालाँकि स्टुअर्ट मिल जैसे पुरुष चिंतकों ने भी स्त्रियों के सम्बन्ध में तार्किक चिंतन किया। स्त्री के सम्बन्ध में स्त्री के चिंतन के फलस्वरूप ही कुछ सकारात्मक बदलाव दिखाई दिये।

नारीवादी आन्दोलन के प्रथम चरण से लेकर वर्तमान तक तमाम नारीवादियों के द्वारा प्रस्तुत मतों से स्त्री सम्बन्धी दृष्टिकोण में बदलाव आया। नारीवादी आन्दोलन वस्तुतः एक 'होमोजीनीयस

प्रवाह' है, जिसके कई रूप दिखते हैं और इसने 'सफ्रेज़ आन्दोलन' से होते हुए 'यौन स्वतंत्रता' तक का सफर तय किया है। इस सफ़र में नारीवाद को खारिज करने वाले (जैक देरिदा) और नारीवाद के अंत की घोषणा (बेट्टी फ्राइडेन) करने वाले नाद तक सुनाई दिए किन्तु इसकी प्रबलता के कारण इसने लम्बा सफ़र तय किया और विमर्श के रूप में स्थापित हुआ।

नारीवाद की तीसरी लहर के दौरान लैटिन अमेरिकी और एशियाई देशों का स्त्रीवाद केंद्र में आया। इसमें इतनी सांस्कृतिक विषमता थी कि एक तरफ 'अश्वेत आन्दोलन' चल रहा था तो दूसरी तरफ भारतीय उपमहाद्वीप में 'अल्पसंख्यक स्त्री', 'दलित स्त्री', 'आदिवासी स्त्री' और 'सवर्ण स्त्री' जैसे मुद्दे मुखरित हुए। भिन्नता के बावजूद एक बात में ये सभी समान हैं कि इन सभी ने अपने-अपने तरीके से 'फेलोसेंट्रिक' समाज को ललकारा। हिंदी में मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, अनामिका, कात्यायनी, प्रभा खेतान, रेखा कस्तवार आदि लेखिकाओं का समाज से भिड़ जाने वाला लेखन अति महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ तो पुरुष लेखकों जैसे- मैथली शरण गुप्त, पन्त, निराला, प्रेमचंद, जैनेंद्र, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय आदि के साहित्य में स्त्री सम्बन्धी चिंतन को खोज यह दिखाने का प्रयास किया गया कि पुरुषों ने भी स्त्रियों के सम्बन्ध में चिंतन किया है। राजेन्द्र यादव तो इस क्रम में अपनी एक अलग ही पहचान बनाते नज़र आये। किन्तु पुरुषों द्वारा स्त्रियों के सम्बन्ध में किये गये अधिकतर प्रयास को शीबा असलम फहमी जैसी लेखिकाओं ने 'गल थोथरी' या 'लिप सर्विस' कहकर खारिज भी किया है।

1990 के दशक में तसलीमा का लेखन उस समय केंद्र में आया जब उन्हें 'निर्वाचित कलाम' के लिए बांग्ला का सर्वप्रतिष्ठित 'आनंद पुरस्कार' प्राप्त हुआ। तसलीमा ने स्त्री को केंद्र में रख अपना लेखन किया और स्त्री की उपेक्षा या उसे सीमित करने वाले कारणों का अन्वेषण कर उसकी आलोचना की। इसके लिए तसलीमा ने अपने आलेखों और आत्मकथा में धार्मिक पुस्तकों के उन उपबंधों को खोज-खोज कर प्रस्तुत किया है, जिनमें स्त्री को दोयम दर्जे का सिद्ध करने का प्रयास

किया गया है। वे कुरान की उन तमाम आयतों का उदाहरण देती हैं, जिन्हें पुरुष धर्मज्ञों ने अपनी सहूलियत के अनुसार बदल दिया या हिन्दू और ईसाई धर्मग्रंथों के उन उपबंधों का जिक्र किया, जिसमें स्त्री पुरुष से निम्न सिद्ध की गयी है। तसलीमा का स्त्री सम्बन्धी चिन्तन उनके समाज में स्त्रियों की स्थिति की ही उपज है। बांग्लादेश में यद्यपि कई वर्षों से खालिदा जिया और शेख हसीना के रूप में स्त्री ही शासन कर रही है और संविधान भी स्त्रियों के सम्बन्ध में समानता, स्वतंत्रता आदि का उपबंध करता रहा है किन्तु व्यवहार के धरातल पर स्त्रियाँ अपने समस्त अधिकार से वंचित दिखती हैं। यूनिसेफ द्वारा किये गये विभिन्न सर्वेक्षणों से यह बात स्पष्ट होती है। स्त्रियों के सम्बन्ध में कानूनों की कोई कमी नहीं किन्तु व्यवहार में ये कानून शरीयत से आगे नहीं जाते। कानूनों का पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण स्त्री की प्रगति में बाधक है। यही कारण है कि तसलीमा फ़ॉस्टिना परेरा के समान सभी कानूनों की भाषा पितृसत्तात्मक मानते हुए उन्हें एक सिरे से अस्वीकार करती हैं।

तसलीमा का स्त्री सम्बन्धी चिन्तन एक स्त्री के रूप में अपने जीवन के अध्ययन, माँ, नानी, मौसियों, सहेलियों, घर में काम करने वाली बाइयों, अस्पताल में आने वाली मरीजों, सड़क पर सामान बेच रही स्त्रियों और सत्ता में रही स्त्रियों इन सब के जीवन की भीतरी परतों को देखते हुए ही आकार ग्रहण करता है, जिसका आत्मकथा में तसलीमा उल्लेख करती है। उनका चिन्तन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'स्त्री कहीं भी सुखी नहीं है'। इसके लिए वे धर्म और पितृसत्ता को उत्तरदायी मानते हुए स्त्री को इन दोनों की परिधि से बाहर निकल 'गोल्लाछूट दौड़' लगाने और स्वयं को 'नष्ट' कर लेने की बात कहती हैं। उनकी यह बात सीमोन द बोउआर के उस कथन की याद दिलाता है, जिसमें वे कहती हैं कि उसी स्त्री को स्वतंत्र कहा जा सकता है, जिसने विवाह से पूर्व शारीरिक सम्बन्ध बनाये हो और जो विवाह के बाद आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो।

तसलीमा का स्त्री-विमर्श धर्म की बेड़ियों को काटने के साथ पुरुष मानसिकता के त्याग का आह्वान करता है, जिसमें यौन स्वतंत्रता के साथ परिवार और विवाह जैसी संस्था के विघटन, और

'नाजन्म क्रांति' की बात की गयी है। तसलीमा ने अपने जीवन में इन क्रांतियों को लाकर यह तो सिद्ध कर दिया कि एक स्त्री के लिए समस्त मान्यताओं को तोड़ना संभव है।

तसलीमा के लिए स्त्रियों का जीवन भोगा हुआ यथार्थ है और यह यथार्थ अब उनके विचारों में घुल मिल गया है। बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेज, पुरुष का वहशीपन, कई स्त्रियों के साथ सम्बन्ध, घर की चाहरदीवारी में कैद स्त्री, पर्दा, बुर्का, वेश्याएँ, पढ़ी लिखी स्त्री, कामगार स्त्री, गरीब और बेसहारा स्त्रियाँ, धनी और अभिजात्य वर्ग की स्त्रियाँ आदि तमाम विषयों को तसलीमा ने अपनी आत्मकथा में स्थान दिया है।

कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि उन्होंने 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका की भाँति गुहार-मनुहार न करते हुए सभी उत्तरदायी लोगों और संस्थाओं को सीधे फटकारा, वे 'शृंखला की कड़ियाँ' की लेखिका महादेवी वर्मा की घोषणा कि 'हमारा उद्देश्य पुरुष से बदला लेना नहीं है' के विपरीत पुरुष से बदला लेने की प्रवृत्ति से सहमत हैं (क्योंकि पुरुष और पितृसत्ता कई बार एक होते दिखाई देते हैं), पितृसत्ता, धर्म और पुरुष की राजनीति से स्त्री अस्तित्व पर छाए अंधकार के बादलों को वे मनुहार करके नहीं बल्कि विरोध और बहिष्कार की मशाल जलाकर खत्म करना चाहती हैं। अन्यथा स्त्री 'सेकेण्ड सेक्स' के रूप में 'अन्या' घोषित की जाती रहेगी। 'स्त्री मुक्ति का सपना' लिए 'सपनों की मंडी' में चाहे साहित्य कितना भी घूम ले, किन्तु 'स्त्रीत्व के मानचित्र' से कोई दूर नहीं भाग सकता। तसलीमा का स्त्री-विमर्श सिमोन द बोउआर की तरह यह स्वीकार करता नजर आता है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बना दी जाती है', बेट्टी फ्राईडेन की तरह वे भी 'बेबी वुमेन' निर्मिति को तोड़ती नजर आती हैं, जेम्स स्टर्बा की भाँति हीगेल के पब्लिक और प्राइवेट के सिद्धांत को नकारते हुए 'सहस्तित्व' पर बल देती नजर आती हैं, मार्क्स और एंगल्स की भाँति स्त्री को भी पूँजीगत अधिकारों की प्राप्ति करते हुए देखना चाहती हैं, फ्रायड की तरह 'पुरुष ग्रंथि' और 'शिशु ईर्ष्या' का निरूपण भी करती हैं, तो जॉक लकाँ की भाँति वे भाषा के पितृसत्तात्मक स्वरूप की भी आलोचना करती हैं। शुलामिथ

फायरस्टोन की भाँति स्त्री-मुक्ति का स्रोत जैविकीय क्रांति अर्थात् प्रजनन की नई तकनीक और उसके विकल्प में देखती हैं, केट मिलेट और सिमोन की भाँति वे भी स्त्रियों को नारीत्व के विचार से मुक्त होते हुए देखना चाहती हैं। तसलीमा को 'प्रो-फेमिनिस्ट', 'व्यक्तिवादी नारीवादी', एवं 'रेडिकल फेमिनिस्ट' की श्रेणी में रखा जा सकता है। उनका स्त्री-विमर्श पश्चिम के विचारकों से काफी हद तक समानता रखता है बस अंतर है तो अभिव्यक्ति के स्वरूप का और यही अभिव्यक्ति उन्हें विशिष्ट और भिन्न बनाती है। तसलीमा को उनकी आत्मकथा और स्त्री सम्बन्धी चिंतन के लिए एक 'ट्रेंड सेटर' या 'पथ-प्रदर्शक' के रूप में देखा जा सकता है।

आवश्यक टिप्पणियाँ एवं संदर्भ सूची

- 1 मन्मथनाथ गुप्त, स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, पृष्ठ-23.
- 2 वही, पृष्ठ-35.
- 3 वही, पृष्ठ-21.
- 4 वही, पृष्ठ-21.
- 5 'बेबीलोनियन पुरोहित वैरोसस वहाँ के वेल नामक ईश्वर ने अपना सिर काट डाला और दूसरे देवताओं ने उस बहते हुए रक्त को रोक लिया और उसे मिट्टी से मिलाकर जो मिश्रण तैयार किया उसी से मनुष्य की सृष्टि हुई.' मन्मथनाथ गुप्त, स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, पृष्ठ-22.
- 6 'मिस्र पुराण में भी स्वीकार किया गया कि खनुमोन नामक देवता के पिता ने कीचड़ से मनुष्य को बनाया.' मन्मथनाथ गुप्त, स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, पृष्ठ-23.
- 7 वही, पृष्ठ-24.
- 8 ऋग्वेद :8/101/15.
- 9 ऋग्वेद :2/27/1, 10/72/4,5.
- 10 मन्मथनाथ गुप्त, स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, पृष्ठ-27.
- 11 महाभारत, पृष्ठ-69.
- 12 'नमो देव्यै जगन्मात्रे शिवायै सततं नमः' संक्षिप्त श्रीमद् देविभागवत-सं. हनुमान पोद्दार, चिन्मनलाल गोस्वामी, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ-26.
- 13 महाभारत, गीता प्रेस, पृष्ठ-1312.
- 14 विष्णुपुराण 1(15) 7880.
- 15 मन्मथनाथ गुप्त, स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, पृष्ठ-34.
- 16 'राजा युवनाश्व को कोई पुत्र नहीं हुआ. एक रात उन्हें बहुत प्यास लगी तो उन्होंने ऋषियों के आश्रम एक घड़े में रखा पानी पी लिया जिसे उन्होंने सिद्ध करके रखा था . इसके सौ वर्ष पश्चात् राजा की कोख से एक तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ जिसका नाम मान्धाता पड़ा.
- 17 मन्मथनाथ गुप्त, स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, पृष्ठ-35.
- 18 वही, पृष्ठ-132.
- 19 'इस सम्बन्ध में 'द नेटिव ट्राइब्स ऑफ़ सेन्ट्रल आस्ट्रेलिया' पुस्तक लिखी. उनके द्वारा किये गये शोध से यह पता चला कि अरुंटा जनजाति तो प्रस्तर युग की तरह रह रही थी. उन्हें धातु, कपड़े, मकान, खेती आदि का कोई ज्ञान नहीं था. और वे यह तक नहीं जानते थे कि स्त्री किस प्रकार गर्भवती होती है. उनका मानना था कि वह उसकी कोख में किसी देवता के प्रवेश से गर्भवती हो जाती है. समाज में यौथ प्रथा प्रचलित थी.
- 20 पुरुषों की एक टोली के साथ स्त्रियों की एक टोली का यौन संबंध.
- 21 ऋग्वेद-6/55/5.
- 22 ऋग्वेद-7/78/3.
- 23 देवी पुराण.
- 24 'तुम इनकी पत्नी बनो' -विष्णु पुराण-1/7 -पृष्ठ-54.
- 25 अर्थात् गुरु की पत्नी के साथ सम्बन्ध, इसके उदाहरण के रूप में महाभारत के उस प्रसंग को लिए जा सकता है जिसमें उल्लेख है कि चन्द्रमा ने अपनी गुरु पत्नी तारा के साथ व्यभिचार किया था.
- 26 अर्थात् सौतेली माँ के साथ शारीरिक सम्बन्ध, उदाहरण के लिए मुहम्मद के पहले के अरब में मुहम्मद इब्न जबन ने अपनी विमाता से विवाह किया था.

- 27 हवाई द्वीप की जनजातियों में प्रचलित प्रथा जिसके अनुसार बहने -चचेरी, ममेरी, फुफेरी आदि के पतिसमूह होते थे जिनमें भाई को हटाकर अभी पुरुष शामिल होते थे . इनके लिए 'पुनलुआ' शब्द प्रचलित था जिसका अर्थ है अन्तरंग साथी. सखालिन द्वीप की गिलियाक जनजाति एवं अमेरिका के इराकुआ कबीलों में प्रचलित प्रथा.
- 28 मन्मथनाथ गुप्त, स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, पृष्ठ-58.
- 29 Engles, Origin of family, p. 124.
- 30 ऋग्वेद, 3/33/3/7/2/5.
- 31 इसके अनुसार सत्यकाम से जब उनके गुरु ने पूछा कि तुम्हारे पिता का क्या नाम है, तो उसकी जानकारी न होने पर अपनी माँ से पूछा तो उनकी माँ ने उत्तर दिया कि चूँकि वह परिचारिका थीं इसलिए उन्हें उनके पिता की जानकारी नहीं है यदि वे चाहे तो अपनी माता जवाला के साथ अपना नाम जोड़ सकते हैं.
- 32 सम्पत्ति के उत्तराधिकार की प्रथा जिसमें उत्तराधिकारिणी स्त्री होती है.
- 33 सम्पत्ति के उत्तराधिकार की प्रथा जिसमें उत्तराधिकारिणी स्त्री होती है.
- 34 मिताक्षरा याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की टीका है, जिसकी रचना 11वीं शताब्दी में हुई। यह ग्रन्थ 'जन्मना उत्तराधिकार' के सिद्धान्त के लिए प्रसिद्ध है. हिंदू उत्तराधिकार संबंधी भारतीय कानून को लागू करने के लिए मुख्य रूप से दो मान्यताओं को माना जाता है- पहला है दायभाग स्कूल, जो बंगाल और असम में लागू है. दूसरा है मिताक्षरा, जो शेष भारत में मान्य है. मिताक्षरा के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से ही अपने पिता की संयुक्त परिवार सम्पत्ति में हिस्सेदारी हासिल हो जाती है. इसमें 2005 में कानून में हुए संशोधन के बाद लड़कियों को भी शामिल किया गया.
- 35 भारत की खासिया में प्रचलित में अभी भी प्रचलित.
- 36' Primitive women was a subjected, creature.'(Outline of World History, p.95.
- 37 मन्मथनाथ गुप्त, स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, पृष्ठ-63.
- 38 जार्जिया की जनजाति.
- 39 Peter Kropotkin, Mutual Aid: A Factor of Evolution, p.123.
- 40 शरत चटर्जी, नारी मूल्य, पृष्ठ-69.
- 41 मन्मथनाथ गुप्त, स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, पृष्ठ-66.
- 42 हीरालाल, भारतभूमि और उसके निवासी, पृष्ठ-17.
- 43 मन्मथनाथ गुप्त, स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, पृष्ठ-68.
- 44 बोरिनियो की डायक, ग्रीक-रोमन आदि जनजातियों एवं भारत की जयराम पेशा और गदवा जाति आदि में यह शौर्य प्रदर्शन की प्रथा किसी न किसी रूप में दिखाई देती है.
- 45 समाजविज्ञान विश्वकोश, पृष्ठ-781.
- 46 महिलायें और साम्यवाद, पृष्ठ-2.
- 47 मन्मथनाथ गुप्त, स्त्री पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, पृष्ठ-55.
- 48 Engles, Origin of family, p. 30.
- 49 Engles, Origin of family, p. 30. 47.
- 50 अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, पृष्ठ-10.
- 51 अथर्ववेद, अनुवाद -जयदेव शर्मा, 3/23/3-6.
- 52 विपिनचंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ-232.
- 53 सती प्रथा के अंत का प्रयास.
- 54 स्त्री शिक्षा पर बल.
- 55 स्त्री जीवन की विसंगतियों का चित्रण.
- 56 विधवा और बाल विवाह की समाप्ति के लिए प्रयास.

- 57 स्त्री शिक्षा के लिए स्कूल की स्थापना.
- 58 स्त्री शिक्षा के लिए तत्पर.
- 59 1850 में विश्व विवाह समाज की स्थापना की.
- 60 1852 में विश्व विवाह के समर्थन के लिए 'सत्य प्रकाश' पत्रिका का प्रकाशन.
- 61 उत्तराधिकार, विवाह और महिलाओं के कानूनी हक के लिए कार्य .
- 62 विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ-128.
- 63 राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास, पृष्ठ-14.
- 64 <https://en.wikipedia.org/wiki/Feminism>, (12 January 2018).
- 65 <https://www.merriam-webster.com/dictionary/feminism>, (12 January 2018).
- 66 सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ-302.
- 67 भावना मसीवाल, 'जेंडर की अवधारणा और अन्या से अनन्या', 'स्त्री काल', http://www.streekaal.com/2014/10/blog-post_29.html, (12 January 2018).
- 68 समाज विज्ञान विश्वकोश, खंड-1, अभय कुमार दुबे(सं), पृष्ठ-780.
- 69 वही, पृष्ठ-781.
- 70 वही, पृष्ठ-781.
- 71 वही, पृष्ठ-782.
- 72 अरविन्द जैन लीलाधर मंडलोई, स्त्री मुक्ति का सपना, पृष्ठ-112.
- 73 कथादेश, सं-हरिनारायण, अंक-1, दिल्ली, मार्च 2008, पृष्ठ-35.
- 74 <https://en.wikipedia.org/wiki/Feminism>, 12 January 2018.
- 75 कथादेश, सं-हरिनारायण, अंक-1, दिल्ली, मार्च 2008, पृष्ठ-42.
- 76 हंस, अगस्त-2011, पृष्ठ-108.
- 77 वही, पृष्ठ-109.
- 78 कथादेश, सं-हरिनारायण, अंक-1, दिल्ली, मार्च 2008, पृष्ठ-29.
- 79 शम्भूनाथ, हिंदी उपन्यास : राष्ट्र और हाशिया, पृष्ठ-305.
- 80 समकालीन भारतीय साहित्य, अंक-77, मई-जून, 1998, पृष्ठ-152.
- 81 सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ-314.
- 82 वही, पृष्ठ-318.
- 83 हंस, जनवरी-2011, पृष्ठ-71.
- 84 वही, पृष्ठ-72.
- 85 तसलीमा नसरीन, उताल हवा, पृष्ठ-483.
- 86 हंस, जनवरी-2011, पृष्ठ-72.
- 87 तसलीमा नसरीन, वे अँधेरे दिन, पृष्ठ-36.
- 88 'The State shall endeavour to ensure equality of opportunity and participation of women in all spheres of national life.' (Constitution of Bangladesh, pg-13, constituteproject.org.)

⁸⁹ '2. Women shall have equal rights with men in all spheres of the State and of public life.3. No citizen shall, on grounds only of religion, race, caste, sex or place of birth be subjected to any disability, liability, restriction or condition with regard to access to any place of public entertainment or resort, or admission to any educational institution. 4. Nothing in this article shall prevent the State from making special provision in favour of women or children or for the advancement of any backward section of citizens.'(Constitution of Bangladesh, pg-15, constituteproject.org.)

⁹⁰ 'There shall be reserved fifty seats exclusively for women members and they will be elected by the aforesaid members in accordance with law on the basis of procedure of proportional representation in the Parliament through single transferable vote: Provided that nothing in this clause shall be deemed to prevent a woman from being elected to any of the seats provided for in clause (2) of this article.'(Constitution of Bangladesh, pg-26, constituteproject.org.)

⁹¹ Women and girls in Bangladesh.docx | UNICEF Bangladesh.

⁹² <https://www.linkedin.com/pulse/women-rights-bangladesh-constitution-omar-faruk-stranger>, (12 December 2017).

⁹³ तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-28.

⁹⁴ वही, पृष्ठ-42.

⁹⁵ वही, पृष्ठ-14.

⁹⁶ प्रो.कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा : स्त्री मुक्ति का सपना, पृष्ठ-59.

⁹⁷ तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-283.

⁹⁸ तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-93.

⁹⁹ वही, पृष्ठ-95.

¹⁰⁰ तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-254.

¹⁰¹ वही, पृष्ठ-254.

¹⁰² वही, पृष्ठ-257.

¹⁰³ तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-73.

¹⁰⁴ वही, पृष्ठ-464.

¹⁰⁵ तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-185.

¹⁰⁶ वही, पृष्ठ-186.

¹⁰⁷ वही, पृष्ठ 175.

¹⁰⁸ वही, पृष्ठ-140.

¹⁰⁹ तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-478.

¹¹⁰ वही, पृष्ठ-151.

¹¹¹ वही, पृष्ठ-227.

¹¹² तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-29.

¹¹³ तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-155.

¹¹⁴ तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-62.

¹¹⁵ वही, पृष्ठ-60.

¹¹⁶ वही, पृष्ठ-66.

¹¹⁷ तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-221.

- 118 तसलीमा नसरीन , मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-34.
- 119 वही, पृष्ठ-35.
- 120 वही, पृष्ठ-61.
- 121 वही, पृष्ठ-63.
- 122 वही, पृष्ठ-90.
- 123 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-53.
- 124 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-13.
- 125 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-50.
- 126 वही, पृष्ठ-53.
- 127 वही, पृष्ठ-37.
- 128 वही, पृष्ठ-37.
- 129 कथादेश, हरिनारायण (सं), अंक-1, मार्च 2008, पृष्ठ-32.
- 130 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-53.
- 131 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ -115.
- 132 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-113.
- 133 वही, पृष्ठ-258.
- 134 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-376 .
- 135 Dr. S. Prasanna Sree, Psycho Dynamics of Women in post modern Literature, Sarup and Sons, New Delhi, 2008, pg-160.
- 136 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-45.
- 137 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-383.
- 138 लीलाधर मंडलोई(सं), स्त्री मुक्ति का सपना, पृष्ठ-32.
- 139 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-235.
- 140 वही, पृष्ठ-259.
- 141 वही, पृष्ठ-268.
- 142 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-376.
- 143 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो, पृष्ठ-92.
- 144 वही, पृष्ठ-185.
- 145 वही, पृष्ठ-105.
- 146 तसलीमा नसरीन, नहीं, कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-177.
- 147 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो, पृष्ठ-72.
- 148 तसलीमा नसरीन, औरत का कोई देश नहीं, पृष्ठ-124.
- 149 तसलीमा नसरीन, नष्ट लड़की नष्ट गद्य, पृष्ठ-44-47.
- 150 तसलीमा नसरीन, औरत का कोई देश नहीं, पृष्ठ-31.
- 151 तसलीमा नसरीन, औरत का कोई देश नहीं, पृष्ठ-76.
- 152 तसलीमा नसरीन, औरत के हक में, पृष्ठ-29.
- 153 तसलीमा नसरीन, तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-34.
- 154 मोहन कृष्ण बोहरा, तसलीमा संघर्ष और साहित्य, पृष्ठ-351.

- 155 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-150.
- 156 तसलीमा नसरीन , मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-123.
- 157 तसलीमा नसरीन, उताल हवा, पृष्ठ-53.
- 158 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-67.
- 159 तसलीमा नसरीन, उताल हवा, पृष्ठ-492.
- 160 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-111.
- 161 तसलीमा नसरीन, उताल हवा, 419.
- 162 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-89.
- 163 वही, पृष्ठ-218.
- 164 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-56.
- 165 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-118.
- 166 कथादेश, हरिनारायण (सं), अंक-1, मार्च-2008, पृष्ठ-34.
- 167 मैत्रेयी पुष्पा, सुनो मालिक सुनो, पृष्ठ-97.
- 168 तसलीमा नसरीन, औरत के हक में, पृष्ठ-147.
- 169 वही, पृष्ठ-176.
- 170 तसलीमा नसरीन, छोटे-छोटे दुःख, पृष्ठ-67.
- 171 वही, पृष्ठ-182-183.
- 172 वही, पृष्ठ-108.
- 173 तसलीमा नसरीन, औरत के हक में, पृष्ठ-13.
- 174 वही, पृष्ठ-7.
- 175 वही, पृष्ठ-86.
- 176 हंस, अगस्त-2011, पृष्ठ-109.
- 177 वही, पृष्ठ-109.
- 178 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-426.
- 179 वही, पृष्ठ-429.
- 180 हंस, मार्च:2010, पृष्ठ-90.
- 181 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-268-287.
- 182 वही, पृष्ठ-181.
- 183 वही, पृष्ठ-274.
- 184 वही, पृष्ठ-11.
- 185 राजकिशोर, धर्म और धर्मसत्ता, पृष्ठ-61.
- 186 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-286.
- 187 तसलीमा नसरीन, उताल हवा, पृष्ठ-393.
- 188 तसलीमा नसरीन, नहीं, कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-303.
- 189 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-295.
- 190 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-28.
- 191 तसलीमा नसरीन, औरत के हक में, पृष्ठ -170.
- 192 तसलीमा नसरीन, वे अँधेरे दिन, पृष्ठ-49.

- 193 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-16.
- 194 तसलीमा नसरीन, वे अँधेरे दिन, पृष्ठ-343.
- 195 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-94.
- 196 वही, पृष्ठ-95.
- 197 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-63.
- 198 लीलाधर मण्डलोई, अरविन्द जैन (सं), स्त्री मुक्ति का सपना, पृष्ठ-12.
- 199 ममता कालिया, भविष्य का स्त्री विमर्श, पृष्ठ- 23.
- 200 श्रीमद्भागवद्गीता यथारूप, ए.सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद, भक्तिवेदांत ट्रस्ट.
- 201 तसलीमा नसरीन, औरत का कोई देश नहीं , पृष्ठ-204.
- 202 कथादेश, हरिनारायण(सं), अंक-1, वर्ष-2008, पृष्ठ-35.
- 203 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, 116.
- 204 कथादेश, हरिनारायण(सं), अंक-1, वर्ष-2008, पृष्ठ-30.
- 205 राजेन्द्र यादव, कथा जगत की बागी मुस्लिम औरतें, पृष्ठ-12.
- 206 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-378.
- 207 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-492.
- 208 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-494.
- 209 सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ-308.
- 210 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-212.
- 211 वही, पृष्ठ-132.
- 212 प्रदीप झा (सं व अनुवाक), महिलायें और साम्यवाद, पृष्ठ-1.
- 213 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, 417.
- 214 https://www.bbc.com/hindi/india/2015/11/151123_taslima_nasrin_no_birth_women_revolution_du, (12 January 2018).
- 215 https://www.bbc.com/hindi/india/2015/11/151123_taslima_nasrin_no_birth_women_revolution_du, (12 January 2018).
- 216 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ- 186.
- 217 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-140.
- 218 तसलीमा नसरीन, नहीं, कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-190.
- 219 Haneefa Deen ,The Crescent and The Pen, pg.21.
- 220 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-112.
- 221 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-252.
- 222 वीर भारत तलवार, 'स्त्री विमर्श : इससे दयनीय कोई दूसरा विमर्श नहीं है हिंदी में', <https://tirchhispeeling.wordpress.com/tag/स्त्री-विमर्श/>, (22 February 2017).
- 223 वागर्थ, दिसंबर-2004, पृष्ठ-19.
- 224 कथादेश, अप्रैल, 2014, पृष्ठ-17.
- 225 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-213.
- 226 अमरकांत, इन्ही हथियारों से, पृष्ठ-129.
- 227 कथादेश, हरिनारायण (सं), अंक-1, वर्ष-2008, पृष्ठ-33.
- 228 वागर्थ, दिसंबर, 2004, पृष्ठ-22.

- 229 कथादेश, सितम्बर-2008, पृष्ठ-72.
- 230 कथादेश, फरवरी, 2006, पृष्ठ-52.
- 231 'feminists, or individualist feminists, say that the feminist slogan "a woman's body, a woman's right" should extend to every peaceful choice a woman can make. Ifeminists believe that freedom and diversity benefit women, whether or not the choices that particular women make are politically correct. They respect all sexual choices, from motherhood to porn. As the cost of freedom, ifeminists accept personal responsibility for their own lives. They do not look to government for privileges any more than they would accept government abuse. Ifeminists want legal equality, and they offer the same respect to men. In short, ifeminism calls for freedom, choice, and personal responsibility.' https://www.uah.edu/woolf/feminism_kinds.htm, (16 April 2017).
- 232 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-68.
- 233 वही, पृष्ठ-108.
- 234 वही, पृष्ठ-109.
- 235 तसलीमा नसरीन, नष्ट लड़की : नष्ट गद्य, पृष्ठ-34.
- 236 तसलीमा नसरीन, वे अँधेरे दिन, पृष्ठ-317.
- 237 सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ-317.
- 238 Taslima Nasrin, Exile : A memoir, Penguin publication, 2015, cover.
- 239 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-279.
- 240 वही, पृष्ठ-301.
- 241 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-104.
- 242 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-21.
- 243 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-115.
- 244 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-255.
- 245 वही, पृष्ठ-298.
- 246 वही, पृष्ठ-229.
- 247 रोहिणी अग्रवाल, 'भारतीय उपमहाद्वीप का स्त्री लेखन : स्त्री सशक्तीकरण की अनुगूंजें', <http://www.streekaal.com/2017/12/women-writhing-in-Indian-sub-continent.html>, (16 January 2018).
- 248 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-298.
- 249 समयांतर, जून 2015, पृष्ठ-45.
- 250 मैत्रेयी पुष्पा, सुनो मालिक सुनो, पृष्ठ-95.
- 251 मोहन कृष्ण बोहरा, तसलीमा संघर्ष और साहित्य, पृष्ठ-361.
- 252 लीलाधर मण्डलोई, अरविंद जैन, स्त्री मुक्ति का सपना, पृष्ठ-56.
- 253 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-381.

पंचम अध्याय

तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में राजनीति

पंचम अध्याय

तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में राजनीति

भूमिका

5.1 बांग्लादेश : एक इस्लामिक राष्ट्र बनाम धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक राष्ट्र की राजनीतिक पृष्ठभूमि

(क) बंगाल प्रान्त से बांग्लादेश तक : राजनीतिक परिदृश्य

(अ) बंगाल प्रान्त और राजनीति : एक सामासिक संस्कृति वाले प्रान्त से

साम्प्रदायिक आधार पर विकसित राष्ट्र तक

(आ) पाकिस्तान की स्थापना : छद्मउपनिवेशीकरण की राजनीति

(इ) बांग्लादेश : घोषित गणतान्त्रिक एवं अघोषित साम्प्रदायिक राष्ट्र का जन्म

(ख) धर्म और राजनीति का गठजोड़

(अ) सैद्धांतिक पक्ष

(आ) व्यवहारिक पक्ष

5.2 तसलीमा के विरुद्ध राजनीति

(क) निर्वासन का षड्यंत्र और ब्लासफेमी की राजनीति

(अ) निर्वासन की सैद्धांतिकी

(आ) तसलीमा का निर्वासन

(ख) प्रतिबंध की राजनीति

(अ) साहित्य पर प्रतिबंध और कानूनी प्रावधान

(आ) प्रतिबंधित साहित्य का इतिहास और वर्तमान

(इ) तसलीमा और प्रतिबंध

(ग) उपेक्षा की राजनीति : असाहित्यिकता और अश्लीलता के आरोपों के मध्य उपेक्षित

साहित्य

(अ) तसलीमा की रचनाओं में साहित्यिकता-असाहित्यिकता

(आ) तसलीमा के साहित्य में श्लीलता-अश्लीलता का प्रश्न

(घ) साहित्यिक प्रतिद्वंद्विता की शिकार लेखिका

निष्कर्ष

भूमिका

एक लेखिका को उसके लेखन के कारण किस प्रकार की राजनीतिक पाबंदियों से गुजरना पड़ सकता है, इसका सर्वोत्तम उदाहरण हैं, तसलीमा नसरीन । एक धर्म निरपेक्ष राज्य से इस्लामिक राष्ट्र के उदय की पृष्ठभूमि के बीच कलम को हथियार बनाने वाली लेखिका को राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किस प्रकार तरह-तरह के तिकड़मों के माध्यम से अपने दायित्व से विमुख करने का प्रयास किया जाता है, इसका प्रस्तुतीकरण ही इस अध्याय का उद्देश्य है ।

निर्वासन, ब्लासफेमी का आरोप, प्रतिबंध, अश्लीलता का आरोप, हर तरह से प्रतिरोध किया जाना आदि राजनीति नहीं तो और क्या है ? इस राजनीति का आधार धर्म की जड़ों से जुड़ा हुआ है । प्रस्तुत अध्याय इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर तसलीमा के जीवन और साहित्य में राजनीति के प्रवेश से उनके लेखन पर पड़े प्रभाव और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन के लिए रचे गये चक्रव्यूह का एक-एक कर उद्घाटन करता है और उसके पीछे की मनोवृत्ति को उजागर करता है । इस अध्याय में निर्वासन की पीड़ा, प्रतिबंध की राजनीति और अश्लीलता के आरोप के बीच घिरे तसलीमा के साहित्य का मूल्यांकन किया गया है ।

5.1 बांग्लादेश : इस्लामिक राष्ट्र बनाम धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक राष्ट्र की राजनीतिक पृष्ठभूमि

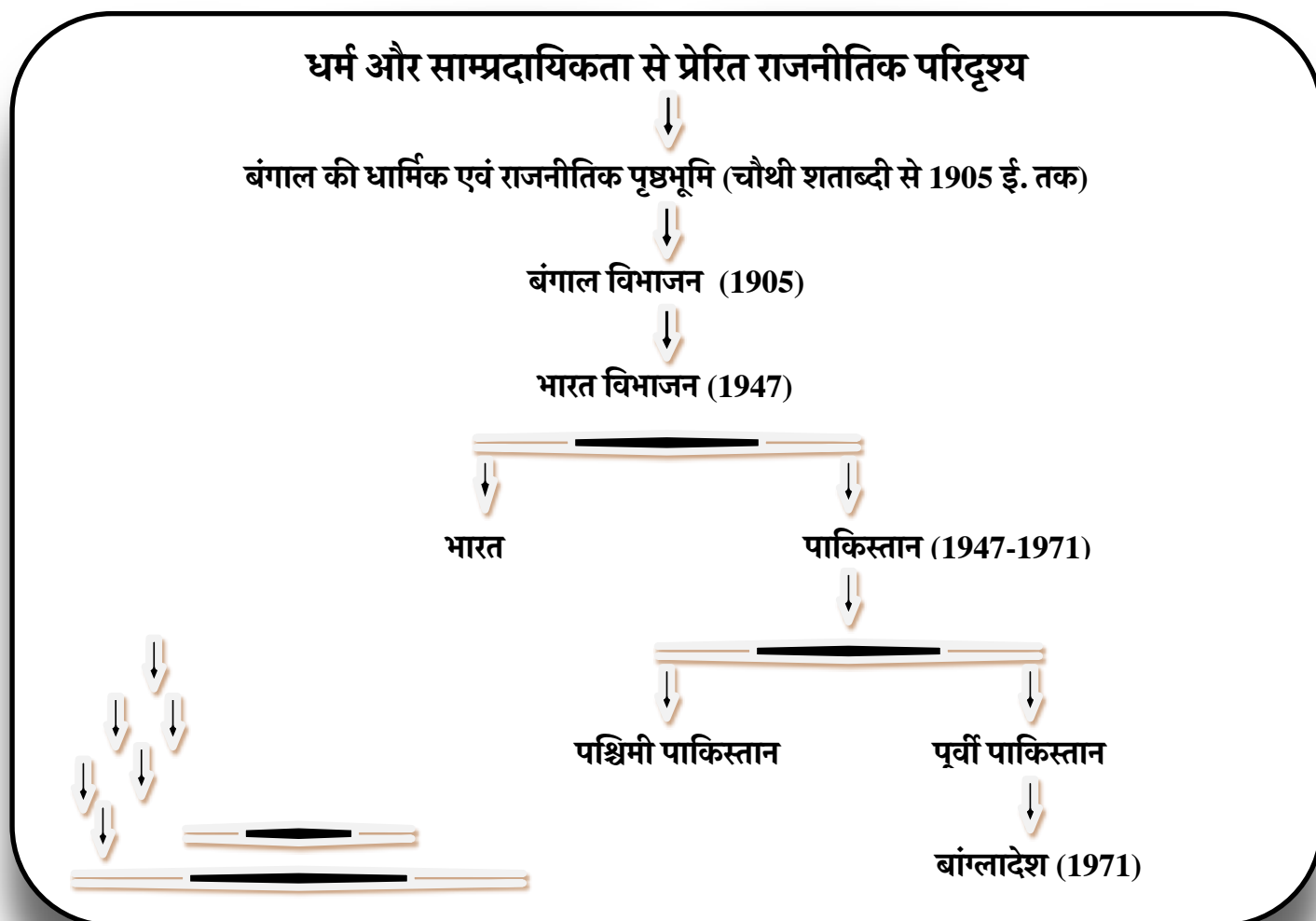
'राजनीति' शब्द अपने आप में बहुत ही व्यापक अर्थ रखता है। राजनीति दो शब्दों से बना है 'राज' और 'नीति' अर्थात् 'राज्य की नीति'। हर राज्य की अपनी कुछ नीतियाँ और नियम होते हैं। राज्य की आवश्यकता क्यों है इस सम्बन्ध में प्लेटो का मानना था कि 'सभी मनुष्य अपूर्ण हैं, इसलिए उन्हें राज्य के रूप में संगठित-सुनियोजित होने की आवश्यकता पड़ती है। चूँकि हर व्यक्ति प्रत्येक कार्य में निपुण नहीं हो सकता, इसलिए राज्य का कर्तव्य है कि व्यक्ति की रुचि, योग्यता और सामर्थ्य के आधार पर उसके अनुकूल कर्तव्य का निर्धारण करे।' ¹ प्लेटो का मानना था कि 'आदर्शराज्य में बहुत अधिक फेरबदल की संभावना नहीं होती। अगर नागरिक ऐसा महसूस करते हैं, तो समझना चाहिए कि उनमें असंतोष बना हुआ है, यानी वहाँ राज्य के स्तर पर कोई कमी बनी है।' ² प्राचीन भारतीय चिंतन में राज्य को 'सप्तांग राज्य' के रूप में परिभाषित किया गया है। ये सात अंग हैं :- (1) स्वामी, (2) अमात्य, (3) मित्र, (4) कोश, (5) राष्ट्र, (6) दुर्ग, (7) सेना। शुक्रनीति में कहा गया है, "राज्य के इन सात निर्माणक तत्वों में स्वामी सिर, अमात्य नेत्र, मित्र कर्ण, कोश मुख, सेना मन, दुर्ग भुजाएँ एवं राष्ट्र पैर हैं।" आधुनिक राजनीतिक विचारक गेटेल राज्य के चार निर्माणक तत्व - जनसंख्या, भू-भाग, सरकार एवं सम्प्रभुता मानते हैं। जो भी हो लेकिन किसी राज्य की राजनीतिक संरचना के लिए जनता/जनसंख्या/प्रजा का होना अनिवार्य है। इस प्रजा की आस्था और उसकी सहूलियतों का ध्यान रखना सरकार का दायित्व है। इससे स्पष्ट है कि राज्य की स्थापना जनता को संयमित और अनुशासित करने के लिए की गयी। यदि वही जनता राज्य की नीतियों के प्रति असंतोष व्यक्त करने लगे तो यह समझ लेना चाहिए कि नीतियाँ सही नहीं हैं और उनमें सुधार अपेक्षित है। स्पष्ट है कि जहाँ राज्य जनता को संयमित करता है वहीं जनता भी राज्य को अपनी नीतियों में सुधार और आवश्यकतानुसार, समयानुसार परिवर्तन की सलाह देती है। अर्थात् दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

राज्य जनता को अनुशासित करने के जो नियम बनाता है, उनमें धर्म एक महत्वपूर्ण सहायक के रूप में काम करता है। यह कहा जाता है कि धर्म पूर्णतः व्यक्तिगत मामला है। किन्तु जब व्यक्ति राज्य और समाज से सम्बंधित है तो उससे जुड़े हुए धर्म को व्यक्तिगत मामला कैसे कह सकते हैं ? प्राचीन से लेकर आधुनिक राजसत्ताओं ने धर्म ग्रंथों या धार्मिक रखवालों से निर्देश प्राप्त कर अपनी नीति को आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया है। भारतीय इतिहास के आदिकाल और मध्यकाल में ब्राम्हणों या धर्मज्ञों का वर्चस्व इसी कारण से था क्योंकि उन्हें ज्ञानी माना जाता था। भारत के इतिहास में चाणक्य, इसका सबसे उल्लेखनीय उदाहरण है।

वैसे तो तसलीमा ने आत्मकथा में कई बार यह उल्लेख किया है कि वे राजनीति के सैद्धांतिक पक्ष को बहुत अधिक नहीं समझती। वे लिखती हैं, "मेरी जुबान पर राजनीति के मुश्किल-मुश्किल शब्द कम ही आते थे। समीक्षा विश्लेषण में भी मैं निहायत कच्ची थी। आर्थिक-सामाजिक शब्द का अर्थ समझने में ही, मुझे काफी वक्त लगा।¹³ किन्तु यह उनके जीवन के प्रारंभिक दिनों की बात है। उनकी आत्मकथा को पढ़ते वक्त ऐसा नहीं लगता कि वे राजनीतिक समझ में कहीं कमजोर हैं। बल्कि ऐसा लगता है कि वे भले ही किसी भी राजनीतिक पार्टी की सदस्य नहीं हैं और न उससे जुड़े किसी कार्यक्रम में भाग लेती हैं, लेकिन उन्होंने अपने देश में हो रहे हर एक राजनीतिक बदलाव, राजनीतिक चालों पर बखूबी नज़र रखी और वे राजनीति को कम से कम उस स्तर तक समझती हैं जैसा कि एक बुद्धिजीवी से अपेक्षा की जाती है। तसलीमा के राजनीतिक मंतव्यों और उनके विरुद्ध की गयी राजनीति को देखने से पहले बांग्लादेश की राजनीतिक पृष्ठभूमि को देखना आवश्यक है। अतः यहाँ सर्वप्रथम उस राजनीतिक परिदृश्य को समझा गया है जो तसलीमा के विरुद्ध की गयी राजनीति के लिए आधार बना।

(क) बंगाल प्रान्त से बांग्लादेश तक : राजनीतिक परिदृश्य

वस्तुतः देखा जाय तो बांग्लादेश का इतिहास केवल बांग्लादेश का इतिहास नहीं है बल्कि यह भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश तीनों का इतिहास है। इसके धर्म और साम्प्रदायिकता से प्रेरित राजनीतिक परिदृश्य को विभिन्न चरणों में समझ सकते हैं, जिसे आरेख- 6.1 संक्षेप में स्पष्ट करता है।



(आरेख-6.1) (बांग्लादेश के राजनीतिक इतिहास का रेखाचित्र)

(अ) बंगाल प्रान्त और राजनीति : एक सामासिक संस्कृति वाले प्रान्त से साम्प्रदायिक आधार पर विभाजित राज्य तक

बंगाल के इतिहास में भारत के पश्चिम बंगाल के साथ बांग्लादेश का इतिहास भी सम्मिलित है जो कभी एक हुआ करते थे। यहाँ बीस हजार वर्ष पूर्व की लौह सभ्यता के साक्ष्य मिलते हैं। प्राचीन

ग्रीक और रोमन साम्राज्य के लोग इस क्षेत्र को 'गंगारिदई' के नाम से पुकारते थे। (देखें- परिशिष्ट 2 - मानचित्र-1)

कुछ सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि बंगाल के आदिम लोग आर्यावर्त के वैदिक लोगों से जातीयता और संस्कृति में भिन्न थे और उन्हें 'दस्यु' की संज्ञा दी जाती थी। भागवत पुराण में उन्हें 'पापी मनुष्य' कहा गया जबकि बौधायन का धर्म सूत्र 'पुंड्र' और 'वंगों' के समय कपटपूर्ण संस्कारों का उल्लेख करता है। महाभारत आदि हिन्दू ग्रंथों से ज्ञात होता है कि प्राचीन बंगाल को विभिन्न जनजातियों व राज्यों में विभाजित किया गया था। ये जनपद थे- वंग (दक्षिणी बंगाल), पुंड्र (उत्तरी बंगाल) और सुहमा (पश्चिमी बंगाल)। नन्द वंश प्रथम ऐतिहासिक राज्य था, जिसने समस्त बंगाल को इंडो-आर्य शासन का हिस्सा बनाकर राजनीतिक एकता स्थापित की।

इस क्षेत्र का प्रारम्भिक इतिहास भारतीय साम्राज्यों को लेकर किये गये उत्तराधिकार के युद्ध, आन्तरिक संघर्षों और प्रभुत्व के लिए हिन्दू और बौद्ध के आपसी संघर्ष का इतिहास समेटे हुए है। प्राचीन बंगाल कई जनपदों में विभाजित था जबकि इसके प्राचीन शहर के साक्ष्य वैदिक काल में जाकर मिलते हैं। बंगाल का गुप्त पूर्व इतिहास संदिग्ध और अस्पष्ट है। समुद्रगुप्त की विजय से पूर्व बंगाल दो भागों में विभाजित था - 'पुष्करण' और 'समताता'। समुद्री शक्ति और प्राचीन ऐतिहासिक सिल्क रूट का हिस्सा रहे प्राचीन बंगाल ने हिन्द महासागर और दक्षिण पूर्ण एशिया में कई बस्तियों की स्थापना की। इसका फारस, अरब और भूमध्य सागर के साथ मजबूत व्यापारिक सम्बन्ध था जो कपास और मलमल पर आधारित था। यह क्षेत्र कई प्राचीन भारतीय साम्राज्यों जैसे मौर्य और गुप्त आदि का भी हिस्सा था। प्राचीन से लेकर आधुनिक काल तक यह कई क्षेत्रीय और केन्द्रीय राज्यों का भी गढ़ था। यहाँ हिन्दू राजवंशों के साथ-साथ मुस्लिम राजवंशों का भी प्रभुत्व रहा। जैसे - प्राचीन काल में 'गौड़', 'मल्लभूम' और 'बरुं-भुइयाँ' जमींदार शासक थे तो वहीं मध्यकाल में 'पाल', 'सेन', 'चन्द्र', 'देव' राजवंश, 'गणेश' राजवंश, 'भूरिश्रेष्ठ', 'कोच-बिहार' राजवंश, 'भुशुट' साम्राज्य,

'त्रिपुरा राजवंश', 'वर्दवान राजवंश' जैसे हिन्दू राजवंशों के साथ मुस्लिम राजवंशों जैसे 'हुसैन शाही राजवंश', 'खिलजी', 'तुगलक' और 'गुलाम वंशों', 'मुहम्मद शाही', 'इलियास शाही', 'सोनारगांव सल्तनत', 'पश्तूनो के सूर', 'करानी वंश' के साथ 'मुगल वंश' और 'बंगाल के नवाबों' का शासन भी रहा। इसके बाद यह कुछ दिनों तक मराठों के आधिपत्य में रहा।

विलियम वैन स्केंडल की बांग्लादेश पर लिखी शोधपूर्ण पुस्तक 'अ हिस्ट्री ऑफ बांग्लादेश' में बांग्लादेश के इतिहास को कई दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया। धार्मिक दृष्टि से देखते हुए वे पाते हैं कि बांग्लादेश का धर्म सम्बन्धी इतिहास 2000 ई. के आस-पास जाकर स्पष्ट होता है।⁴ इस समय यहाँ हिन्दू, बौद्ध और जैन संस्कृति के साक्ष्य मिलते हैं। किन्तु आगे चलकर इस्लाम धर्म के आगमन ने यहाँ के राजनीतिक परिवेश को बदल दिया। इस्लाम का इस हिस्से में आगमन दो माध्यमों से हुआ - एक व्यापारियों के रूप में समुद्र मार्ग से और दूसरा आक्रमणकारियों के रूप में स्थल मार्ग से। इस्लाम के आगमन का यह प्रभाव पड़ा कि आगे आने वाले वर्षों में बंगाल पर इन मुस्लिमों का शासन रहा, जिसे मुगल शासन के नाम से जाना गया और यह भी कि यहाँ की काफी जनता विशेषकर पूर्वी बंगाल की जनता ने भारी संख्या में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।

पूर्वी बंगाल में ही इस्लाम का अधिक प्रचार किस वजह से हुआ इस विषय में रिचर्ड इटन का मत है कि ऐसा इसलिए हुआ कि उस समय पूर्वी बंगाल में कृषि सम्बन्धी प्राकृतिक परिवेश में सुधार होने के कारण राजनैतिक ध्यान अधिक बढ़ गया था। अतः मुस्लिम शासकों ने उधर अधिक ध्यान दिया और उनके प्रभाव में आकर ही जनता ने धर्म परिवर्तन किया। लेकिन इस दौरान बंगाल के डेल्टाई और पूर्वी इलाकों में इलाकों में रहने वाले आदिवासियों ने न तो इस्लाम ग्रहण किया और न ही बंगाली पहचान स्वीकार की। आज भी बांग्लादेश के 'चिटगांव हिल ट्रक्ट' में विभिन्न समुदाय विद्यमान हैं। समुदाय जैसे- मरु, खुमी और खेयंग, स्थानीय बौद्ध - मरमा और चकमा, तौंगचेंग और सक, ईसाई समुदाय के बाम, पंगखुआ, खेयेंग, मरु, लुशाई आदि। इसके साथ ही डेल्टाई इलाके के

गारो, खासी, हजोंग, संताल, ओरों, कोच, मालो, रखाइन आदि। इनमें से न तो कोई स्वयं को बंगाली मानता है और न ही बंगाली भाषा का प्रयोग ही करता है। किन्तु बांग्लादेश के निर्माण के बाद इन समुदायों को अल्पसंख्यक मान लिया गया।¹⁵ बहरहाल यह मुस्लिम शासन सोलहवीं शताब्दी तक अपने चरम पर रहा। इसका अंत उस समय हुआ जब अठारहवीं शताब्दी के मध्य में अंग्रेजों ने बंगाल पर विजय की।¹⁶ इस दौरान यहाँ कई स्वतंत्र राज्यों का भी उदय हुआ। एक बात यह उल्लेखनीय है कि इस्लाम और हिन्दू धर्म की मिश्रित संस्कृति वाले इस इलाके में राजसत्ताओं के दौर में साम्प्रदायिकता जैसी कोई चीज नहीं थी। इसे तो ब्रिटिश उपनिवेश के दौरान हवा मिली।

ब्रिटिशों के समय में बंगाल एक तरफ जहाँ शिक्षा, विज्ञान आदि की दृष्टि से उन्नति कर रहा था वहीं उनके द्वारा की गयी लूट ने ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति को बढ़ावा दिया विशेषकर वस्त्र उद्योग के सम्बन्ध में। वहीं दूसरी तरफ बंगाल में इस लूट ने औद्योगीकरण का हास ही नहीं किया यह कई अकालों का कारण भी बनी। 1905 में राजनैतिक लाभ के उद्देश्य से इस सामासिक संस्कृति वाले प्रान्त को साम्प्रदायिक आधार पर दो भागों में विभक्त कर दिया - पश्चिमी और पूर्वी बंगाल। पश्चिमी बंगाल में जहाँ हिन्दू बहुसंख्यक थे, वहीं पूर्वी बंगाल मुस्लिम बहुसंख्यक इलाका था। इस तरह साम्प्रदायिक राजनीति की नींव पड़ी। हिन्दू और मुस्लिम अलग-अलग हो गये और उनमें वैमनस्य की शुरुआत हुई। हालाँकि उस समय बंगाल विभाजन वापस ले लिया गया, किन्तु वहाँ रह रहे लोगों के दिलों में साम्प्रदायिक खाँचे बन गये थे, जो कभी खत्म नहीं हुए।

(आ) पाकिस्तान की स्थापना : छद्मउपनिवेशीकरण की राजनीति

बंगाल विभाजन की नीति से यह साफ़ हो गया था कि अंग्रेजों का मकसद हिन्दुओं और मुसलमानों में फूट डालना है, जिससे वे अपने शासन को बचाए रख सकें और उन्होंने आगे चलकर यही किया। परिणामस्वरूप अलग मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान की माँग की गयी। यह माँग 'अखिल भारतीय मुस्लिम लीग' के द्वारा की गयी थी। प्रारम्भ में मुस्लिम लीग की माँग स्वतंत्र भारत में

अल्संख्यक मुस्लिम अधिकारों को सुनिश्चित करने तक सीमित थी। किन्तु 1940 में मुस्लिम लीग ने 'लाहौर संकल्प' पारित किया। इस प्रस्ताव द्वारा ब्रिटिश भारत के उत्तर-पश्चिमी, पूर्वी क्षेत्रों में, जहाँ मुस्लिमों का बाहुल्य था, मुसलमानों के लिए 'स्वतंत्र रियासतों' की माँग की गई एवं उक्तकथित इकाइयों में शामिल प्रांतों को स्वायत्तता एवं संप्रभुता युक्त बनाने की भी बात की गई थी। तत्पश्चात् यह संकल्पना भारत के मुसलमानों के लिए पाकिस्तान नामक एक अलग स्वतंत्र स्वायत्त मुल्क बनाने की माँग करने में परिवर्तित हो गया।¹⁷ इस संकल्प के कारण अंतर-धार्मिक हिंसा बढ़ने से इसने 'संयुक्त भारत' या 'एक राष्ट्र भारत' की संकल्पना को ठेस पहुँचाई। इस प्रस्ताव को तत्कालीन बंगाल के मुख्यमंत्री, शेर-ए-बांग्ला के नाम से प्रसिद्ध, ए.के. फजलूल हक ने सामान्य सत्र में प्रस्तुत किया, जिसे 23 मार्च, 1940 को स्वीकृत कर लिया गया।

1946 के आम चुनाव में बंगाल विधानसभा में मुस्लिम लीग ने बहुमत प्राप्त किया, जिससे मुस्लिम लीग के समर्थन में नोआखली और कलकत्ता में साम्प्रदायिक हिंसा भड़क उठी। पूर्वी बंगाल में भी पृथक् पाकिस्तान की माँग बढ़ गयी। तसलीमा अपनी माँ की स्मृति के आधार पर उस समय की परिस्थिति का वर्णन करते हुए लिखती हैं - 'भारत से पाकिस्तान की आजादी के लिए पूर्वी बंगाल के लोग बौखला उठे थे। वे किसी भी कीमत पर भारत से स्वतंत्रता चाहते थे। इस संघर्ष के समय नारे लगाये जा रहे थे '...लड़कर लेंगे पाकिस्तान, वीर मुजाहिद नौजवान, न्योछावर कर देंगे अपनी जान, लाना होगा पाक़ कुरआन।'¹⁸

अंततः 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ और भारत व पाकिस्तान दो स्वतन्त्र देश बनाये गये और बंगाल के क्षेत्र का एक बार फिर से साम्प्रदायिक विभाजन किया गया। बंगाल का मुस्लिम बहुल पूर्वी क्षेत्र पाकिस्तान के हिस्से में आया, जिसे 'पूर्वी पाकिस्तान' नाम दिया गया और हिन्दू बहुल पश्चिमी क्षेत्र 'पश्चिमी बंगाल' के नाम से भारत का राज्य बन गया। जनमत संग्रह के बाद असम का मुस्लिम बहुल क्षेत्र, सिलहट भी पूर्वी पाकिस्तान में सम्मिलित हो गया। इस विभाजन से छिन्न-भिन्न हुई

भारतीय उपमहाद्वीप की पहचान के सम्बन्ध में कृष्णा सोबती का दर्द कुछ इस प्रकार उभरता है -
"कैसे पढ़ा जाएगा इस नई लिपि को । नई रियासती वर्णमाला ! क्या पहचान में आ रहा है नया
लैंडस्केप ।"⁹

किन्तु इस स्वतंत्रता के बाद भी परिस्थितियाँ बहुत अधिक नहीं बदलीं । तसलीमा उस दुखद
घटना को याद करते हुए लिखती हैं, "माँ का जीवन जैसा था पाकिस्तान बनने के बाद भी वैसा ही
रहा... बस इस बीच हुआ यह कि अमला के परिवार के लोग रोते-रोते हिंदुस्तान चले गये... पूरे
स्कूल में अब कोई भी हिन्दू लड़की नहीं थी । खाली कक्षाओं में दो-चार मुसलमान लड़कियाँ बैठकर
इतिहास की पुस्तक में जुड़े एक नये अध्याय से 'पाकिस्तान हमारा मुल्क है, कायदे आजम मुहम्मद
अली जिन्ना हमारे राष्ट्रपिता हैं' रटती रहतीं । अब कविताओं की नई-नई किताबें छपकर आने लगीं ।
सत्येन्द्रनाथ दत्त, यतीन्द्र मोहन बागची की कविताओं की जगह गुलाम मुस्तफा, बन्दे अली मियाँ
आदि की कवितायें पढ़ाई जाने लगीं । रवीन्द्रनाथ की जगह काजी नजरुल इस्लाम ।"¹⁰ पाकिस्तान
निर्माण के बाद, "देश बदल गया था पर लोग कहाँ बदले थे ! अब अँगरेजों के बदले सड़क पर
काबुलीवाले नज़र आते ।"¹¹

1947 से 1971 के पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) का इतिहास राजनीतिक अस्थिरता
और आर्थिक बदहाली का दौर था । 1956 में एक कानून पारित कर पश्चिमी पाकिस्तान के साथ पूर्वी
पाकिस्तान को भी एक 'इस्लामिक राज्य' घोषित कर दिया गया । सैन्य हस्तक्षेप से 1958 में
लोकतान्त्रिक व्यवस्था स्थापित की गयी और 1958 से 1962 और 1969 से 1971 तक मार्शल लॉ
लागू किया गया । 1947 में पाकिस्तान के उद्भव के साथ ही पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान में भेद-भाव
किया जाने लगा था । एक हजार मील की दूरी के साथ इन दोनों की सांस्कृतिक और भाषाई विविधता
ने इन दोनों के बीच की खाई को बढ़ाने का काम किया और उस पर पश्चिमी पाकिस्तान की सरकार
द्वारा किये जा रहे भेद-भाव और शोषणपूर्ण रवैये ने पूर्वी पाकिस्तान के लोगों के असंतोष को बढ़ाने
का ही काम किया । इस शोषण के विरुद्ध पूर्वी पाकिस्तान में जो सबसे पहला आन्दोलन हुआ वह

था, 'बंगाली भाषा आन्दोलन' 1952, जिसके माध्यम से यह माँग की गयी कि 'बांग्ला' को पाकिस्तान की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दी जाय। तसलीमा अपनी माँ के सन्दर्भ से लिखती हैं, "जिस साल बेटा जन्मा था, सन 52 में, उसी साल बांग्ला भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने की माँग को लेकर जुलूस निकालने वालों पर उर्दू भाषियों ने गोली चलाई थी। माँ सोचने लगी कि अगर मुसलमान ही मुसलमान को मारे तो फिर मुसलमानों का एक अलग देश बनाने की ज़रूरत क्या थी। ?"¹² दरअसल यह प्रश्न किसी भी नागरिक के मन में उठना स्वाभाविक है।

पाकिस्तान के जन्म के समय बंगाल को धर्म के आधार पर बाँट तो दिया गया किन्तु दोनों बंगालों की भाषा एवं संस्कृति एक थी। जबकि पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान धर्म के आधार पर भले ही एक थे किन्तु भाषा और संस्कृति की दृष्टि से पूरी तरह भिन्न थे। इस भिन्नता ने दोनों के बीच की खाई को बढ़ाना शुरू कर दिया था। 23 फ़रवरी 1948 को ही पाकिस्तान ने उर्दू को राष्ट्रीय भाषा घोषित किया और इसे पूर्वी पाकिस्तान के लिए भी अनिवार्य कर दिया। ऐसे में बंगाली भाषा में रचा बसा पूर्वी पाकिस्तान और आज का बांग्लादेश अपनी भाषा की उपेक्षा को कैसे सहन कर सकता था। परिणामस्वरूप ढाका विश्वविद्यालय के छात्रों एवं अन्य राजनीतिक दलों के कार्यकर्ताओं ने 21 फ़रवरी, 1952 को एक व्यापक विरोध प्रदर्शन प्रारम्भ किया। कई वर्षों के संघर्ष के बाद पाकिस्तानी सरकार ने 1956 में बांग्ला को राजभाषा का दर्जा दिया।

भले ही पाकिस्तान की सरकार ने पूर्वी पाकिस्तान की माँग स्वीकार कर ली थी किन्तु इससे पाकिस्तान के इन दो धड़ों के बीच की खाई बढ़ती ही गई। इसी कारण "जिस सड़क से पहले 'लड़कर लेंगे पाकिस्तान' का जुलूस निकला था, उसी सड़क से अब 'अयूबशाही का नाश हो', 'अयूब मोनेम भाई दो, साथ ही उन्हें फाँसी दो' का नारा लगाते हुए जुलूस निकलता।"¹³ इस खाई को बढ़ाने में तत्कालीन राजनीतिक नीतियों ने भी अहम् भूमिका अदा की। उदाहरण के लिए, जबकि पश्चिम पाकिस्तान की जनसँख्या पूर्वी पाकिस्तान से कम थी फिर भी राजस्व आवंटन, औद्योगिक विकास, कृषि सुधार एवं नागरिक विकास परियोजनाओं में पश्चिमी पाकिस्तान को ही तवज्जो दी जा रही थी।

पाकिस्तान की सिविल और सैन्य सेवाओं में पंजाबियों का प्रभुत्व था। पाकिस्तानी सेना में केवल एक रेजिमेंट ही बंगाली थी। बहुत से बंगाली पाकिस्तानी कश्मीर मुद्दे को लेकर बहुत अधिक उत्साह नहीं दिखाते थे, इसी कारण पूर्वी पाकिस्तान के बंगालियों को नजरंदाज किया जा रहा था। पाकिस्तान ने पूर्वी पाकिस्तान को एक तरह से उपनिवेश ही बना लिया था। इस उपनिवेशीकरण की राजनीति से तंग आकर ही 1966 में आवामी लीग के नेता शेख मुजीब-उर-रहमान ने लाहौर में विपक्षी दलों के राष्ट्रीय सम्मेलन में छह बिन्दुओं वाला एक 'चार्टर ऑफ़ सर्वाइवल' प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने पाकिस्तान की असफलता को देखते हुए पूर्वी पाकिस्तान के लिए स्वायत्त सरकार के साथ राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य स्वायत्ता की माँग की।

25 मार्च, 1969 को जनरल याहया खान ने पाकिस्तान का शासन अपने हाथों में लेते ही देश में हो रही सभी राजनीतिक गतिविधियों को रोकते हुए तानाशाही जैसा माहौल तैयार किया। इस माहौल में पूर्वी पाकिस्तान के कुछ छात्रों ने पाकिस्तान विरोधी आन्दोलन को गुप्त रूप से जारी रखा। 'स्वाधीन बंगाली न्युक्लस' नाम के संगठन के सदस्यों सिराजुल आलम खान और काजी आरिफ अहमद ने '15 फ़रवरी बाहिनी' नामक एक संगठन का निर्माण किया। दूसरी तरफ पश्चिमी पाकिस्तान से आर्थिक और सांस्कृतिक भेदभाव के कारण उभरे गुस्से ने 'आवामी लीग' को पूर्वी पाकिस्तान में एक मजबूत राजनीतिक पार्टी बना दिया। 7 मार्च, 1971 को सुहरावर्दी पार्क में आवामी लीग के अध्यक्ष शेख मुजीब-उर-रहमान ने पूर्वी पाकिस्तान के लोगों को अपनी स्वतंत्रता के लिए तैयारी करने का आह्वान कर बांग्लादेश मुक्ति संघर्ष का आगाज़ किया।

(इ) बांग्लादेश : घोषित गणतांत्रिक, अघोषित साम्प्रदायिक राष्ट्र का जन्म

घोषित गणतांत्रिक देश : 1970-71 के चुनाव में आवामी लीग को पूर्वी पाकिस्तान की सभी सीटों पर विजय प्राप्त हुई। किन्तु पाकिस्तान की नेशनल असेम्बली में भी बहुमत प्राप्त करने के बावजूद एवम् पूर्वी पाकिस्तान में हार के कारण राजनीति करते हुए पाकिस्तान के

राष्ट्रपति याहया खान ने 1 मार्च 1971 को पूर्वी पाकिस्तान में नेशनल असेम्बली के सत्र को ही अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित कर दिया। जिससे रोष में आकर स्वतंत्रता संग्राम की शुरुआत की गयी और ऐसे में शेख मुजीब ने अपनी जनता को निर्देशित किया। इस समय दिया गया शेख मुजीब का भाषण जनता के लिए प्रेरणा स्रोत था। उन्होंने कहा -

'ए बारेर सोंग्राम अमादेर मुक्तिर सोंग्राम, एबारेर सोंग्राम सोधीन्तोर सोंग्राम'¹⁴

अर्थात् इस बार का संघर्ष हमारी मुक्ति का संघर्ष है, इस बार का संग्राम हमारी स्वतंत्रता का संग्राम है।

इस मुक्ति युद्ध की भयावह परिस्थितियों के वर्णन के साथ ही तसलीमा की आत्मकथा की शुरुआत होती है, "युद्ध छिड़ने वाला था। हर मुहल्ले में इसी की चर्चा थी। किसी के माथे पर, तो किसी की नाक के नीचे, किसी के खुले मुँह में, तो किसी के गालों पर, कानों पर, सर पर आँखे ही नजर आतीं... लोग शहर छोड़कर गाँवों की तरफ भाग रहे थे... जिन्हें अपना घर छोड़कर दो कदम भी हिलना पसंद नहीं था वे भी बोरिया बिस्तर लपेटने में जुट गये। गिद्धों की चोंचों से मृत देह की दुर्गन्ध आती थी। कबूतरों के बेचैन पंखों की फड़फड़ाहट से गोलियों की आवाज़ सुनाई पड़ती थी। लोग पैदल, रेलगाड़ियों से, नावों से भाग रहे थे। उनके पीछे पड़ा रह जाता था- खाली मकान, आँगन के पेड़-पौधे, जलचौकी, हँसियाँ-हँसुआ और काली बिल्ली।"¹⁵ 26 मार्च 1971 को पाकिस्तानी सेना ने भी सैनिक कार्यवाही शुरू कर दी। शेख मुजीब को गिरफ्तार कर लिया गया और अन्य राजनीतिक नेता जान बचाकर भारत की ओर भागे जहाँ उन्होंने एक 'अस्थायी सरकार' का गठन किया।

5 अप्रैल को जनवादी बांग्लादेशी गणतंत्र की 'अस्थायी सरकार' का गठन मेहरपुर (जिसे बाद में मुजीब नगर नाम दिया गया) में किया गया। शेख मुजीब को राज्य का प्रमुख घोषित किया गया। ताजुद्दीन अहमद प्रधानमंत्री बने, सैयद नजरुल इस्लाम कार्यवाहक राष्ट्रपति और खोदकर मुश्ताक अहमद बांग्लादेश के विदेशमंत्री बनाये गये। वहाँ पर बांग्लादेश की सेना के साथ युद्ध की रणनीति तैयार की गयी और इस सेना को नाम दिया गया 'मुक्तिफौज'। बाद में इसका नाम 'मुक्तिवाहिनी' रख

दिया गया। पाकिस्तानी सेना और मुक्तिवाहिनी के मध्य युद्ध के दौरान एक अनुमान के मुताबिक करीब दस लाख बंगाली विशेषकर हिन्दुओं को देश छोड़कर भारत के राज्यों असम, बंगाल और त्रिपुरा में शरण लेनी पड़ी क्योंकि पाकिस्तानी फौजी एक-एक कर सबको मौत के घाट उतार रहे थे। निर्दोषों की हत्या के साथ इस समय लाखों महिलाओं के साथ बलात्कार भी किया गया। एक अनुमान के मुताबिक करीब चार लाख महिलाओं के साथ ज्यादतियाँ की गईं जिनमें उनके साथ बलात्कृत सम्बन्ध बनाना, सैनिक कैण्ट मे महिलाओं को सेक्स वर्कर के रूप में रखना एवं सामूहिक बलात्कार जैसी हरकतें शामिल थीं। पाकिस्तानी फौज का निरपराध, हथियार विहीन लोगों पर अत्याचार जारी रहा, जिससे लोगों का विशेषकर वहाँ के अल्पसंख्यक हिन्दुओं का भारत की ओर भारी संख्या में पलायन होता रहा।

पाकिस्तानी सेना के द्वारा सताए गये शरणार्थियों की संख्या भारत में जैसे-जैसे बढ़ने लगी भारत आर्थिक दबाव महसूस करने लगा। परिणामस्वरूप इस मामले में भारत को भी हस्तक्षेप करना पड़ा। शुरुआत में भारत ने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से अपील की कि पूर्वी पाकिस्तान की स्थिति सुधारी जाए लेकिन कोई विशेष प्रयास न होता देख अप्रैल 1971 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरागाँधी ने मुक्तिवाहिनी को समर्थन देकर, बांग्लादेश की स्वतंत्रता में सहयोग करने का निर्णय लिया। भारत की सहानुभूति पूर्वी पाकिस्तान के साथ थी, इसी कारण 3 दिसम्बर, 1971 को भारत ने इस युद्ध में हस्तक्षेप किया और इस प्रकार एक नये युद्ध का प्रारम्भ हुआ जिसे 'भारत-पाक युद्ध 1971' के नाम से जाना जाता है। यह युद्ध अल्पावधि (लगभग दो सप्ताह) का था किन्तु यह भीषण हिंसक था। इस युद्ध में पाकिस्तान की हार हुई। परिणामस्वरूप 16 दिसंबर, 1971 को पाकिस्तानी सेना के कमांडिंग ऑफिसर लेफ्टिनेंट जनरल ए. के. नियाजी ने समर्पण पत्र पर हस्ताक्षर किये और आखिरकार अगले दिन बांग्लादेश को एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में पहचान मिल गयी (परिशिष्ट-2, मानचित्र- 2)। नब्बे हजार से भी अधिक पाकिस्तानी सैनिकों ने आत्मसमर्पण किया जो कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सबसे बड़ा आत्मसमर्पण था।

11 जनवरी 1972 को पूर्वी पाकिस्तान के स्थान पर देश का नया नाम 'बांग्लादेश' रखा गया और संविधान के तहत इसे 'संसदीय लोकतंत्र' घोषित किया गया। इस सम्बन्ध में जसवंत सिंह का मत है कि 'पाकिस्तान का अपनी एक शाखा से अलग हो जाना पाकिस्तान में रहे मूर्खतापूर्ण प्रतिनिधित्व का परिणाम था।¹⁶ मुक्ति युद्ध के सम्बन्ध में तसलीमा का मानना है कि 'इस युद्ध ने यह साबित कर दिया था कि सिर्फ मुसलमान होने भर से पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान में एकता स्थापित नहीं की जा सकती और द्विजातित्व के आधार पर भारत और पाकिस्तान का विभाजन एक गलत फैसला था।' महुआ माझी का उपन्यास 'मैं बोरिशाइल्ला', वीरेन्द्र कुमार गौड़ के 'यूँ जन्मा बांग्लादेश', सलाम आजाद की 'बांग्लादेश में हिन्दू नरसंहार' और '1971 बांग्लादेश की मुक्तियुद्ध की कहानियाँ' जैनुल आबदीन की 'हजारों डूबते सूरज' और जसवंत सिंह की 'खतरे में भारत' आदि पुस्तकों से मुक्तियुद्ध के इतिहास, राजनीति और सांप्रदायिक आधार पर हुई ज्यादतियों की पुष्टि होती है।

अघोषित साम्प्रदायिक देश : धर्म की राजनीति या राजनीति का धर्म - 'राजनीति' एक कुटिल शब्द है और धर्म उसका साथ देने वाला कुटिल व्यवहार। बांग्लादेश या कह सकते हैं विश्व के किसी भी देश के इतिहास को देखा जाय, तो इन दोनों ने मिलकर बड़ी-बड़ी सत्ताओं, बड़े-बड़े महानुभावों के अस्तित्व को हिला कर रख दिया है। इन दोनों के गठजोड़ का सबसे अधिक शिकार हुआ है, आम इन्सान, विशेषकर स्त्री। राजनीति के शुष्क रास्ते में धर्म रस भरने का काम करता है, तो धर्म राजनीति की मदद से अपने उद्देश्यों को प्राप्त करता है।

बांग्लादेश स्वतंत्र तो हुआ किन्तु उसका राजनीतिक वातावरण पाकिस्तान के राजनीतिक वातावरण से बहुत अधिक भिन्न नहीं रहा, जिसके कारण धीरे-धीरे जनता स्वयं को ठगा हुआ सा महसूस करने लगी। इस त्रासदी के लिए कृष्णा सोबती के शब्द सटीक बैठते हैं - "जाती सरकार ने सजा दी हमें और आती सरकार ने हमीं से कर ली वसूली।"¹⁷ आजादी के पूर्व जब बांग्लादेश

पाकिस्तान का हिस्सा था तब भी वह मुस्लिम राष्ट्र था। आजादी के बाद भी वह इस्लामिक मूल्यों पर ही कायम रहा।

कृष्णा सोबती के अनुसार "जब इतिहास बदलते हैं तो भूगोल भी बदल जाते हैं।"¹⁸ यह बात भारत उपमहाद्वीप के सन्दर्भ में बिल्कुल सटीक है। जैसे-जैसे भारत का इतिहास बदला वैसे-वैसे उसका भूगोल भी बदला। इस बदलते भूगोल में पाकिस्तान और बांग्लादेश के रूप में दो नये राष्ट्रों का जन्म हुआ। पाकिस्तान अपनी नीतियों के कारण बांग्लादेश को अपने हाथों से गँवा बैठा। और बांग्लादेश की विभिन्न सरकारों ने अपनी नीतियों के कारण लोकतान्त्रिक देश की छवि को खराब कर लिया। वह घोषित तौर पर लोकतंत्र तो है किन्तु व्यवहार में एक कट्टर इस्लामिक राष्ट्र भी बनता जा रहा है।

इसके राजनीतिक इतिहास पर यदि दृष्टि डाले तो कई बार धर्म और सम्प्रदाय केन्द्रित राजनीति करते हुए विभिन्न सरकारों ने अपने हित साधे हैं। उदाहरण के लिए - बांग्लादेश की सबसे पहली सरकार में शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में 1974 में तीन महीने का आपातकाल घोषित किया जाना और इस दौरान 'जातीय रक्षा वाहिनी' के माध्यम से विद्रोहियों के दमन के नाम पर आम जनता का किया गया शोषण, संसदीय प्रणाली को भंग करना, राष्ट्रीय अखबारों पर प्रतिबंध। इन नीतियों के कारण मुजीब की इस प्रकार आलोचना की जाने लगी जिसके विषय में पत्रकार एंथनी मस्केरनहास लिखते हैं कि '1975 के अंत तक उन्हें 'राष्ट्र के पिता के पद' से उतारकर 'बांग्लादेश के सबसे ज्यादा घृणित व्यक्ति' के रूप में देखा जाने लगा था'।¹⁹ हालाँकि तसलीमा शेख मुजीबुर्रहमान को अत्यंत सम्मान की दृष्टि से देखती हैं। तसलीमा 24 जनवरी 1969 की एक घटना का उल्लेख करती हैं जिस दिन उनके पड़ोस में रहने वाले मामूली से व्यक्ति मिंटू के स्वतंत्रता की माँग को लेकर हुए संघर्ष में, गोली लगने से मृत्यु हो जाने पर शेख मुजीब सांत्वना देने के लिए उसके घर तक पहुँच गये।²⁰ ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के प्रति श्रद्धा हो उठना स्वाभाविक है। उनका यह मत है कि देश की सत्ता

संभालने वाले शेख मुजीबुर्हमान में भले ही बहुत सारी कमियाँ रही हों, किन्तु उनके द्वारा संविधान निर्माण के निर्णय ने उन्हें खासा लोकप्रिय बना दिया। संविधान निर्माण ने धर्मनिरपेक्षता के उसी बीज को सींचने का काम किया था, जिसे 1971 के स्वाधीनता संग्राम में सम्मिलित लोगों ने मिलकर बोया था। संविधान ने बंगाली जातीयतावाद को तो जगह दी ही, साथ ही समाजतंत्र और धर्मनिरपेक्षता को भी मजबूती प्रदान की। लेकिन अफ़सोस यह कि इन्ही शेख मुजीब के पूरे परिवार का क्रल्ल करने वालों ने आगे चलकर 'फ्रीडम पार्टी' नाम से एक नयी पार्टी भी बना ली और 'युव कमांड' नाम से एक छात्र संगठन भी गठित किया। शेख मुजीब की हत्या के बाद "वक्त एक ही रात में बदल गया। शेख मुजीब का नाम लेने पर पाबन्दी लग गयी। जय बांग्ला कहने पर भी... बैठकखाने में रह-रहकर पिताजी की आवाज़ कानों में सुनाई पड़ती, 'पता नहीं, भविष्य अब क्या होगा?'²¹ भविष्य की उनकी वह दुश्चिंता सत्य साबित हुई।

आगे की सरकारों का रवैया तानाशाही पूर्ण रहा। मुस्ताक अहमद ने मार्शल लॉ लागू कर सैन्य तानाशाही का मार्ग प्रशस्त किया। मुजीबुर्हमान के बाद मेजर जियाउर्रहमान ने सत्ता क्या संभाली, उसे आर्थिक दृष्टि से गर्त में पहुँचा दिया। इन्होंने गुलाम आयम जैसे देशद्रोही को राष्ट्र में कदम रखने की इजाजत ही नहीं दी, बल्कि संविधान में 'बिस्मिल्लाह' शब्द भी जोड़ दिया। राजनेता बहुसंख्यक मुस्लिमों के क्रोध का पात्र नहीं बनना चाहते इसलिए हर सरकारी काम की शुरुआत 'बिस्मिल्लाह-उर-रहमान-उर-रहीम' से करते हैं और दूसरी तरफ अल्पसंख्यक हिन्दुओं, बौद्धों और सिखों आदि की सहानुभूति पाने के लिए, अपने देश को धर्मनिरपेक्षता का लबादा उढ़ाये रखना चाहते हैं। बांग्लादेशी संविधान के भाग एक के अनुच्छेद-2अ में स्पष्ट रूप से उल्लेख है, "इस गणतंत्र का राष्ट्रीय धर्म 'इस्लाम' होगा पर अन्य धर्मों का भी पालन गणतंत्र की शांति और साहचर्य को ध्यान में रखते हुए, किया जा सकता है।"²² इसके अतिरिक्त भाग 3 के अनुच्छेद 28(1) में धर्म के आधार पर होने वाले विभेद के सम्बन्ध में कहा गया है, "राज्य किसी भी नागरिक से धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्मस्थल के आधार पर किसी भी तरह का कोई भेद भाव नहीं करेगा।"⁴² किन्तु व्यावहारिक

धरातल पर इसका बिल्कुल भी पालन होता नहीं दिखता। जियाउर रहमान ने अपनी पार्टी बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बी.एन.पी.) के तले देश की राष्ट्रवादी पहचान को बढ़ाने के उद्देश्य से कट्टरपंथी पार्टी 'जमात ए इस्लामी' से प्रतिबंध हटा दिया, देश की छवि एंटी-कम्युनिष्ट राष्ट्र के रूप में स्थापित करने के लिए रूस का विरोध किया, इसके बाद इरशाद ने सैन्य तख्तापलट करते हुए मार्शल लॉ लागू किया बांग्लादेश की छवि सोवियत रूस विरोधी निर्मित की, आन्तरिक तानाशाही का माहौल तैयार किया और राजनीतिक दलों और ट्रेड यूनियनों पर प्रतिबंध लगा दिया, राजनीतिक आन्दोलन करने और भ्रष्टाचार करने पर मौत की सज़ा दिए जाने का प्रावधान किया गया, स्थानीय प्रशासनिक परिषद् में एक सैन्य पद का प्रावधान किये जाने की नीति से व्यापक विरोध और 1987 में पुनः आपातकाल, जून 1988 में संविधान में संशोधन कर इस्लाम को 'राष्ट्रधर्म' घोषित किया गया जैसी अजीबोगरीब नीतियों के कारण देश घोर आर्थिक क़र्ज़ में डूब गया। इरशाद के धर्म प्रेरित निर्णय की आलोचना करते हुए तसलीमा लिखती हैं, "अब तक मस्जिद गढ़-गढ़ कर, देश का बेड़ा गर्क कर रहे थे। लोगों की आँख में धूल झोकने के लिए जहाँ-तहाँ, जब-तब पीर पनप रहे थे। अब इरशाद खुद ही मजहब का ढोल लेकर, मैदान में उतर पड़े हैं।"²³ उनके इस निर्णय पर उन्होंने 'पारलौकिक मूली' नाम की कविता

'झुला दी है सामने एक अदद पारलौकिक मूली
 भीति और लालसा, नाक की नोंक पर, सिर्फ उड़ती है धूल !
 इस बार आँखों पर चढ़ा लो सियाह अंधेपन की ढेपी
 जो है, जितना ज्यादा अंधा, उतना ज्यादा उसका विश्वासी में नाम
 यकीन मानों तभी होगी, मिलेगी रोशनाई
 इसी विश्वास के साथ उछाल दो अपनी युगल आँखें इहलोक में
 और दिमाग के सजग कोशों में जड़ दो ताला चाबी
 शाबास ! यही तो...अब तुम सचमुच ईमानदार हो।"²⁴

यह घटना बांग्लादेश के पतन की एक बहुत बड़ी तारीख के रूप में इतिहास में दर्ज है और यह अभी तक बांग्लादेश को प्रभावित कर रही है। इसी के विषय में तसलीमा लिखती हैं, "हाय री तकदीर ! देश के नसीब में यही कुछ था? बांग्ला के हिन्दू, बांग्ला के बौद्ध, बांग्ला के ईसाई, बांग्ला के मुसलमान - हम सभी बंगाली हैं।' यह गाना गीत लायक, अब शायद कोई मंच नहीं रहा।"²⁵

राजनीति के एक दाँव-पेच में से एक यह भी है कि सत्ता पर काबिज होने के उद्देश्य से दो विरोधी दल भी आस-पास आ जाया करते हैं। जिसे 'अवसरवादी राजनीति' की संज्ञा दी जाती है। इसका उदाहरण हैं शेख हसीना और खालिदा जिया। तसलीमा इस सम्बन्ध में लिखती हैं, "दोनों एक दूसरे का मुँह तक नहीं देखती हम सब तो यही देखने के अभ्यस्त थे, लेकिन इन दिनों, वे दोनों ही गाली-गलौज भूलकर, देश की भलाई के लिए एकजुट हो गयी हैं।"²⁶ वे एक साथ 'इरशाद हटाओ' की माँग करने लगी। इरशाद के विरुद्ध जुलूस निकले जिसमें विद्यार्थियों ने बढ़-चढ़कर भागीदारी की किन्तु सत्ता पर काबिज रहने के लिए वे कुकृत्य पर कुकृत्य किये जा रहे थे। ढाका विश्वविद्यालय के जुलूस पर ट्रक चढ़ाकर काफी लोगों की हत्या कर दी गयी। "बांग्लादेश की राजनीति में कई तरह से धर्म घुल मिल गया था। इसका एक रूप था पीरों की ओर राजनीतिज्ञों का झुकाव और पीरों का राजनीति में आगमन। इरशाद स्वयं अन्धविश्वास के शिकार थे और अपनी सत्ता को बचाने के लिए तरह-तरह के टोटके करने से भी नहीं हटते थे। राजनीति के क्षेत्र में हफ्फेजी पीर, अतारसी का पीर, शर्बीना के पीर, सईदाबादी पीर न जाने कौन-कौन से पीरों का प्रभाव दिख रहा था। किन्तु इरशाद का पीरों वाला हथियार काम नहीं आया और न ही आचानक अपनी बीबी रौशन और बच्चे को पेश करना ही काम आया। लगातार तीन वर्ष तक विरोधी आन्दोलन चला और अंत में इरशाद की सत्ता 'सन नब्बे के तुमुल ज्वार में बह गयी'।"²⁷

इसके बाद प्रथम कार्यवाहक सरकार (1990-1991) आई और उसके बाद देश का शासन बारी-बारी से दो स्त्रियों के हाथ में ही रहा है। इन दोनों स्त्रियों के द्वारा सत्ता प्राप्त करने के लिए चली गयी कूटनीतिक चालों को राजनीतिक गलियारे में 'बेगमों का संघर्ष' कहा गया। इरशाद की सत्ता की

समाप्ति के बाद, दो दल जो अब तक साथ-साथ खड़े दिख रहे थे एक दूसरे के धुर-विरोधी के रूप में आमने सामने आ गये। बी.एन.पी की तरफ से खालिदा जिया तो आवामी लीग की ओर से शेख हसीना। इन दोनों ने धर्म को जरिया बनाकर अपनी राजनीति को चमकाने का प्रयास किया। इस सम्बन्ध में तसलीमा लिखती हैं, "राष्ट्रधर्म इस्लाम के देश में धर्म भी हथियार बन गया। खालिदा जिया अगर मजहब की दो बातें करती थीं, हसीना चार बातें ! आवामी लीग कभी इस बात के लिए बदनाम थी कि वह पार्टी धर्म की परवाह नहीं करती। धर्मनिरपेक्षता, आवामी लीग सरकार के राज्य गठन की चार नीतियों में से एक थी। इस बदनामी से हसीना मुक्त होने की जितनी-जितनी कोशिश कर रही थीं, खालिदा उतनी ही तदबीर से इसे इस्तेमाल कर रही थीं।"²⁸ परिणाम यह हुआ कि धर्म को हथियार बनाकर खालिदा जिया की पार्टी बी. एन. पी. ने चुनाव में जीत हासिल की। उन्होंने आवामी लीग के विरुद्ध भारत समर्थक होने का प्रचार किया, धर्म विरोधी होने का प्रचार किया। ऐसे में धर्म के आधार पर विभाजित जनता अपने राष्ट्रीय मूल्यों को खो देने और देश के भारत के हाथों बिक जाने के भय से खालिदा जिया को जिताने का निर्णय कर बैठी। और अब्दुर रहमान जैसे रजाकार को प्रेसिडेंट के पद पर आसीन किया जाना भी इस धर्म आधारित की राजनीति का एक हिस्सा था।

अगले चुनाव में विजय आवामी लीग की हुई। तसलीमा लिखती हैं, "इस देश में पहली बार कोई महिला प्रधानमंत्री गद्दी पर आसीन हुई और विरोधी लीडर भी एक महिला थी। इस वजह से मैं खुश थी। लेकिन उसी खुश-खुश तन-बदन में एक अजगर भी फन काढ़कर, सिर उठा रहा था ! मेरा तन बदन आतंक से सिहर उठा।"²⁹ यह आतंक था, राजनीति में धर्म का आतंक। शुरूआती दिनों में तसलीमा आवामी लीग की शेख हसीना की काफी पक्षधर दिखाई पड़ती हैं क्योंकि इरशाद की सरकार की अपेक्षा लोग मुजीबुर्रहमान की बेटी से अधिक आशा रखते थे और उन्हें भी उस बेटी से कुछ आशा हुई थी। वे लिखती हैं, "मैं किसी भी राजनैतिक दल की, किसी भी किस्म की सदस्य नहीं हूँ। लेकिन जिन लोगों ने यह प्रतिश्रुति दी है कि मुसीबत के ये दिन गुजर जायेंगे और हम किसी खूबसूरत

भविष्य की ओर बढ़ने लगेंगे, उन पर अपना भरोसा टिकाकर, मैं एक संभावना के अंकुर की जड़ों को सींचने लगी, उसमें खाद पानी देने लगी।"³⁰ इस आशा को चूर-चूर होते ज्यादा देर नहीं लगी। शेख हसीना के हज करके आने के बाद अपने बालों को काली पट्टी से बाँध रखना राजनीति में धर्म के इस्तेमाल के सबसे बड़े प्रमाण के रूप में तसलीमा ने प्रस्तुत किया है।

खालिदा जिया ने 1991 में अपनी पार्टी बी.एन.पी का नेतृत्व करते हुए कट्टरपंथी पार्टी जमात-ए-इस्लामी के साथ मिलकर सरकार बनाई। इससे पूर्व वे इस कट्टरपंथी पार्टी की आलोचना करते नहीं थकती थीं। स्पष्ट है धर्म को लेकर की जाने वाली राजनीति में किसी तरह का कोई अंतर नहीं आया। वे लिखती हैं, "सत्ता मिल जाने के बाद, कोई भी, कोई वादा पूरा करने का मन नहीं बनाता। संविधान से जातीय धर्म को हटाकर, धर्मनिरपेक्षता बहाल करने की बात किसी की जुबान पर नहीं उभरी। इस देश की राजनीति, देश के लोगों का कल्याण करने की दृष्टि से नहीं, बल्कि राजनीतिक सत्ता की राजनीति थी।"³¹ तसलीमा का मानना है कि देश में कट्टरपंथी दल जमात-ए-इस्लामी को लगातार मिल रही राजनीतिक बढ़त इस बात का प्रमाण है कि अवामी लीग और बी. एन. पी. सत्ता के लिए जमाते इस्लामी को यह अवसर दे रही थीं। इसका एक प्रमाण यह भी है कि 1971 के मुक्तियुद्ध के विरुद्ध खड़े होने वाले गुलाम आयम के विरुद्ध जब 'इकहत्तर के घटक दलाल निर्मूल कमिटी' बनाकर उसका विरोध का प्रयास किया गया तो सरकार ने उनका साथ न देकर जनसमूह को ही तितर-बितर कर दिया और अदालत के निर्देशों को न मानते हुए फाँसी की जगह केवल लोक दिखावे के लिए उसे जेल में बंद कर दिया।

1990 के अक्टूबर में 'इन्कलाब' अखबार की एक गलत खबर कि बाबरी मस्जिद का विध्वंस हो गया है के कारण लोगों ने बिना सच जाने हुए ही हिन्दुओं के घर फूँक डाले थे। कई लोगों की हत्या कर दी गयी थी। फिर 6 दिसंबर 1992 में जब कि सचमुच बाबरी मस्जिद को ढहा दिया गया था, अब क्या हो सकता है इसकी कल्पना करके ही तसलीमा काँप उठीं ! एक-एक दिन बहुत भय और आतंक के बीच गुजर रहा था। पड़ोसी ही पड़ोसी की हत्या कर रहा था। ढाका के आस-पास के

इलाके ही नहीं दूर दराज के क्षेत्र भी इस साम्प्रदायिक हिंसा के शिकार हुए। बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद अस्पतालों में हजारों की भीड़ में घायल लोग आने लगे, जिनको यह तक नहीं पता था कि उन्हें किस लिए मारा गया, बाबरी मस्जिद कहाँ है ? इसी पर रोष प्रकट करते हुए तसलीमा लिखती हैं, "मेरा मन हो रहा था कि इंसान के बदन से झरता हुआ खून राजनीति के चेहरे पर मल दूँ।"³² सभी बांग्लादेशी राजनीतिक पार्टियाँ शांति के लिए जनता से अपील कर रही थीं, छात्र संगठन शांति जुलूस निकाल रहे थे किन्तु कोई भी कट्टरवादी गुटों को रोकने में समर्थ नहीं हो पा रहा था। चिल्ला-चिल्ला कर ये नारा दिया जा रहा था, "एक-एक, दो-दो हिन्दू धर, सुबह-शाम नाश्ता कर।"³³ ये कट्टरतावादी 'इन्सान का रूप धरे आदमखोर' ही नज़र आ रहे थे। हिन्दुओं के विरुद्ध किये जा रहे दंगों के सम्बन्ध में सरकार और विरोधी पार्टियों की उदासीनता के सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "मुझे लगता रहा, बी. एन. पी. सरकार के खिलाफ आन्दोलन करने की सुविधा हासिल करने के लिए, आवामी लीग भी हिन्दुओं पर जोर-जुल्म बरसाना चाहती है। इस मुद्दे के साथ, सरकारी आन्दोलन चलाने के लिए, बड़ी शान से मैदान में उतरा जा सकता है। मुझे इन राजनीतिक पार्टियों पर बेतरह गुस्सा आता रहा।"³⁴ बांग्लादेशी सरकार की नीरसता के विषय में लिखती हैं, "मुझे नेताओं के कीर्ति कलाप से नफरत हो आई। अगर वे लोग चाहते तो यह साम्प्रदायिक आतंक रोक सकते थे। भारत सरकार ने फटाफट कदम उठाया और दंगा रोक दिया। भारत में दंगा होता है, तो वहाँ मुसलमान भी हिन्दुओं पर टूट पड़ने का दम-खम रखते हैं लेकिन बांग्लादेश में दंगे नहीं, संत्रास होता है। मुसलमान हिन्दुओं पर जुल्म करते हैं।"³⁵

ऐसे माहौल में सांस्कृतिक धरोहर का भी बँटवारा किया जाने लगा। 21 फ़रवरी को गीत गाया जाता 'मेरे भाई के खून में रंगी, इक्कीस फ़रवरी क्या हम भूल सकते हैं।'³⁶ राजनीतिक लाभ के लिए किये गये कार्यों की हद तो तब हो गयी जब 'सन इकहत्तर के युद्ध के दौरान जो गीत स्वाधीन बांग्ला बेतार केंद्र से बजाए जाते थे, जो गीत सुनकर मुक्तियोद्धा प्रेरणा ग्रहण करते थे ; जो गीत सुन-सुनकर देश को आज़ाद कराने का जोश लिए, लोग आगे बढ़ते रहे ; देश को बचाने के लिए पाकिस्तानी

फौजों के हाथों, अपनी जान गँवाने में भी नहीं झिझके, उन्हीं गीतों को आज हमने, अपने गीत, सबके गीत कबूल करने से इनकार कर दिया³⁷ स्वाधीनता संघर्ष के समय गाये जाने वाले गीतों तक पर राजनीति होने लगी, "गीतों का पार्टीकरण कोई नया नहीं है। जियाउर रहमान जब हुकूमत में थे, उन दिनों शहनाज रहमतुल्लाह का गाना - 'पहला बांग्लादेश, मेरा शेष बांग्लादेश' रेडियो-टेलीविजन पर खबरों से पहले और बाद में अक्सर बजाया जाता रहे, इसलिए इस गीत ने सम्प्रदायवादी पार्टी के गानों में अपना नाम लिखा लिया। इरशाद ने भी जिया के नक्शे कदम पर चलते हुए, देश भक्ति का एक गीत, अपनी पार्टी के लिए चुन लिया, हाय री तकदीर ! गीतों की भी मुक्ति नहीं है। गीत को भी किसी न किसी पार्टी में अपना नाम लिखाना पड़ता है।"³⁸ स्पष्ट है 'धर्म और राजनीति के गठजोड़ ने स्थितियों की स्वार्थपूर्ण और मनमानी व्याख्या को जन्म दिया।"³⁹

इसके बाद आवामी लीग की हसीना सरकार में कुछ प्रगतिशील कार्य होते दिखाई दिए, जिसके कारण उन्हें यूनेस्को शांति पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। अपनी दूसरी पारी में खालिदा जिया भी कुछ प्रगतिशील कदम उठाते हुए नज़र आयीं और आतंकवाद के खात्मे के लिए अमेरिका का सहयोग किया। लेकिन उनकी इस छवि को उस समय ठेस पहुँची जब विकिलीक्स के खुलासे में उनके ही पुत्र तारिक रहमान पर भ्रष्टाचार के आरोप लगे। इसी समय जमात-उल-मुजाहिदीन जैसा आतंकवादी संगठन बांग्लादेश में प्रभावी हो उठा और कई आतंकवादी घटनाओं को अंजाम दिया। जनवरी 2007 में स्थितियाँ काबू के बाहर हो गयीं और आपातकाल लागू हुआ। इसके बाद 2008 में शेख हसीना की आवामी लीग पुनः सत्ता में आई जो वर्तमान तक शासन में है। इस समय उन्होंने 1971 में इस्लामी ताकतों का साथ देने वालों के विरुद्ध मुकदमा चलाने के लिए 'अन्तर्राष्ट्रीय अपराध न्यायाधिकरण' की स्थापना की। हालाँकि 2010 में बांग्लादेश सर्वोच्च-न्यायालय ने धर्मनिरपेक्षता को संविधान का मूल सिद्धान्त घोषित किया और सरकार ने भी चटगाँव के आदिवासियों से शांति समझौता करने में सफलता प्राप्त की किन्तु 2014 में शेख हसीना के पुनः शासन में आने के बाद से लेकर अब तक बांग्लादेश में धार्मिक आधार पर हो रही हत्याओं का दौर बढ़ता ही दिखा है।

बांग्लादेश में स्थिति यह है कि अल्पसंख्यक हिन्दुओं, बौद्धों और सिखों के साथ धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण रखने वाले लोगों, एल. जी. बी. टी कार्यकर्ताओं, एशियाई प्रवासियों, सूफी मुस्लिम, ब्लागर्स और लेखक आदि की हत्याएँ की जा रही हैं।

स्पष्ट है कि बांग्लादेश में राजनीति धर्म को और धर्म राजनीति को पोषित करते रहे हैं। इस पोषण से जनता नहीं बल्कि सत्तानसीन ही फायदा उठा रहे हैं। तभी तो प्रफुल्ल कोलख्यान 'धर्म की सत्ता और सत्ता का धर्म लेख में लिखते हैं, "राजनीतिक सत्ता और धर्म सत्ता ने एक दूसरे के साथ मिलकर समाज सत्ता का दुरुपयोग किया है।"⁴⁰ तत्कालीन समय में देश के धार्मिक दृष्टिकोण के विषय में तसलीमा लिखती हैं, "देश में दो तरह के गुट थे एक कट्टरवाद के साथी और दूसरे कट्टरवाद के विरोधी।"⁴¹ समाजतांत्रिक मूल्यों पर चलने का दावा करने वाले लोग भी धर्म से पृथक नहीं रहे। समाजतांत्रिक दल के रवैये के सम्बन्ध में तसलीमा लिखती हैं, "यह पार्टी तो दिनोदिन जमाते इस्लामी से भी लघुतर रूप धारण करती जा रही है। कामरेड फरहाद का जब इंतकाल हो गया तो इस्लामी नियम के मुताबिक विशाल जनाजे की तैयारी की गयी। लोक दिखावे के लिए ही सही, कम्युनिस्ट लोग ही अगर धार्मिक कार्यक्रमों से बाहर नहीं निकल पायें, तो बाकी पार्टियाँ कैसे बाहर निकलेंगी?"⁴² वे लिखती हैं, "मेरे मन में सवाल जाग उठा- अगर सारे मुसलमान नास्तिक हो जाएँ, तो क्या सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा? मेरे मन ने कहा नहीं होगा। मुझे पक्का विश्वास है कि गुलाम आयम नास्तिक बन्दा है, मुझे तो जमात के सारे ही नेता नास्तिक लगते हैं। आस्तिक तो वे लोग हैं, जो गुलाम आयम के अनुगामी हैं, मूर्ख और बुद्धू हैं, जिनकी नाक में धर्म की नकेल डालकर, गुलाम आयम राजनीति के करतब सिखा रहा है।"⁴³

जमाते इस्लामी जैसी कट्टरपंथी पार्टी को मिल रही पश्चिमी मदद और बढ़ावे के सम्बन्ध में बहारुद्दीन को दिए साक्षात्कार में वे कहती हैं, "समूचे देश में जमाते इस्लामी की राजनीति पर पाबंदी लगाये जाने की माँग चल रही है। धर्म के इन कारोबारियों के हाथ में मध्य-प्राच्य रुपये और हथियार मौजूद हैं, वही लोग नई पीढ़ी के हाथों में ढेरों रूपए और अस्त्र सौंप रहे हैं, हमारी नौजवान पीढ़ी को

गुमराह कर रहे हैं।"44 पाकिस्तान के शासन और स्वतंत्र बांग्लादेशी शासन के 42 वर्ष के दौरान देश में कई ऐसे नेता हुए जिन्होंने धर्म को अपना हथियार बनाने के अतिरिक्त कोई काम नहीं किया और इसमें सबसे बड़ा योगदान रहा इरशाद की सरकार का। इसी पर कटाक्ष करते हुए तसलीमा के बड़े मामा ने अपने लेख में लिखा, "ये लोग क्या मोमिन मुसलमान हैं ? या मुस्लिम नामधारी, आधुनिक भावधारा के पृष्ठपोषक मोहम्मद अली जिन्ना, सर सैय्यद अहमद, सर मोहम्मद इकबाल वगैरह के भविष्य हैं ? बहरहाल, चाहे जो भी हो, इन आधुनिकतावादी, धर्म के धंधेबाजों ने कट्टरवाद का अगला छोर तो काट दिया, मगर जड़ों को सींचते रहे, नतीजा यह हुआ कि कट्टरवाद का पेड़, धीरे-धीरे तरोताजा होकर फल-फूल रहा है... और बढ़ता जा रहा है।"45

इस प्रकार धार्मिक कट्टरपंथियों को सरकार के द्वारा प्रश्रय मिलने के कारण ही बांग्लादेश में कट्टरपंथ बढ़ रहा है। कट्टरपंथ को बढ़ाने वाले मौलानाओं के सम्बन्ध में तसलीमा ने लिखा, "टिड्डियाँ जैसे पूरी फसल बर्बाद कर देती हैं, इन मौलाना लोगों ने इसी तरह से 'सोनार बांग्ला' के गांवों को तबाह कर डाला है। अगर इन्हें निर्मूल नहीं किया गया, तो एक दिन पूरा का पूरा बांग्लादेश ध्वंसस्तूप में परिणत हो जाएगा।"46 हालाँकि विलेम वैन स्केनडेल का मत है कि बांग्लादेश के उदारवादी इस मत से सहमत है कि बांग्लादेश में इस्लामीकरण तेजी से बढ़ा है जिसे सरकार और आतंकवादी संत्रास और भय के कारण मदद मिल रही है। दूसरी तरफ उदारवादी बांग्लादेश का दायरा वैश्विक सम्पर्क के कारण भी बढ़ रहा है।47

वस्तुतः बांग्लादेश की प्रत्येक सरकार ने धर्म का प्रयोग अपनी सहूलियतों के अनुसार किया है। इसलिए तसलीमा लिखती हैं, "जो लोग इस देश को गणतांत्रिक देश कहते हैं, मैं उन लोगों को धिक्कार देती हूँ। धर्म मुक्त होना गणतंत्र की पहली शर्त है। यह शर्त पूरी न हो, तो गणतंत्र का नाम धारण करने का मतलब, जाति को बुद्धू बनाना।"48 तसलीमा उन बांग्लादेशी प्रगतिशील विचारकों से भिन्न मत रखती हैं जो यह मानते हैं कि यदि कट्टरता खत्म हो गयी तो धर्म के रहते हुए भी शांति रह

सकती है। वे लिखती हैं, "मेरा ख्याल है कि जितने दिन तक धर्म रहेगा, कट्टरवाद भी मौजूद रहेगा। कमरे में अगर साँप छोड़ दिया जाए और घरवालों को समझा दिया जाए कि उन्होंने साँप को अच्छी तरह से समझा-बुझा दिया है कि वह किसी को दंश न मारे, यह बात क्या विश्वास योग्य है? साँप ने आज दंश नहीं मारा तो कल मारेगा ही।"⁴⁹ इसी कारण वे एक प्रकार से चेतावनी देती नज़र आती हैं, "राष्ट्र धर्म इस्लाम को अगर अलविदा नहीं किया गया तो यह देश गणतांत्रिक बांग्लादेश से इस्लामिक प्रजातंत्र बनने में ज्यादा वक़्त नहीं लेगा.. देश-धर्म इस्लाम होने की वजह से, हिन्दू, बौद्ध, ईसाई धर्म में विश्वासी लोगों को या जिन्हें इस धर्म में विश्वास न भी हो, लेकिन जो लोग उन धर्मावलम्बियों की संतान हैं, उन्हें दूसरे दर्जे के नागरिकों के तौर पर जिंदगी गुजारनी होगी।"⁵⁰

धर्म और राजनीति के इस गठजोड़ को ख़त्म करने के प्रयास भी हुए हैं। मध्य यूरोप में राजनीति में धर्म के प्रभुत्व के विरुद्ध, एक सांस्कृतिक राजनीतिक आन्दोलन उठा जिसे 'कौन्सीलियर आन्दोलन' कहा जाता है। 'सेक्युलर' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम उसी समय किया गया। जिन देशों में धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और समाज पर सामंती-पुरोहित वर्ग का शिकंजा कमजोर होता गया, वहाँ धर्म का दायरा सीमित होता नज़र आता है। इसके विपरीत, दक्षिण एशिया में या तो धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया शुरू ही नहीं हुई और या फिर अधूरी रह गई। इसके खतरनाक परिणाम की ओर इंगित करते हुए फ्रांसीसी दार्शनिक दिदरो का मत है, "धर्म के नाम पर बने पागल सबसे खतरनाक होते हैं। और जो लोग समाज में गड़बड़ी फैलाना चाहते हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि किसी विशेष अवसर पर इन पागलों का इस्तेमाल कैसे करना चाहिए।"⁵¹ धर्म और राजनीति के गठजोड़ के सम्बन्ध में जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं, "यदि धर्म ने संस्थाबद्ध रूप ले लिया हो और राज्य संगठित ढंग से धर्म विशेष या सभी धर्मों की मदद कर रहा हो तो धर्म अपने को स्वाभाविक दायित्व और भूमिका से मुक्त कर लेता है और फिर धीरे-धीरे सामाजिक दबाव ग्रुप की तरह कार्य करने लगता है, अपने अनुयायियों को संघबद्ध करने लगता है और अन्य धर्मावलम्बियों में प्रतिस्पर्धा पैदा कर देता है... इससे राज्य का धर्म निरपेक्ष रूप और गैर धार्मिक भूमिका प्रभावित होती है।"⁵²

स्पष्ट है कि बांग्लादेश में लम्बे समय से राजनीतिक दलों के द्वारा धर्म को प्रश्रय दिया जा रहा है जिसके कारण साम्प्रदायिक वैमनस्य और कट्टरतावाद को बढ़ावा मिला है।

(ख) धर्म और राजनीति का गठजोड़ :

तसलीमा राज्य के सन्दर्भ में धर्म को एक 'नकारात्मक तत्व' के रूप में देखती हैं। कारण? 'धर्मसत्ता खुद सदियों से एक आततायी चीज है, ऊपर से राजनीति से उसके आधुनिक सम्बन्ध ने खून की नदियाँ बहायी, दंगों से भय और असुरक्षा का माहौल तैयार किया, इसने वज्रपात यह किया कि धर्म को जीवन से बाहर निकाल दिया। यही वजह है कि आज चारों ओर धर्म की जगह पर निर्बुद्धिपरकताएँ हैं या धर्म के नाम पर मनोरंजन है।"⁵³ इसलिए वे धर्म को एक 'पारलौकिक मूली' करार देती हैं, जो जनता को लुभाने के लिए सरकार और राजनीति द्वारा लटका दी जाती है और इसके लोभ में आकर जनता अपनी सुध-बुध खो बैठती है। धर्म और राजनीति के गठजोड़ के सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "हजरत पैगम्बर के झब्बे की आड़ में छिपा हुआ है अल्लाह नाम का धोखा ! इसी इस्लाम को दुनिया भर के करोड़ों-करोड़ बुद्धुओं ने आज भी टिकाये रखा है। इसके पीछे और कुछ नहीं, महज राजनीति का खेल है।"⁵⁴

राममनोहर लोहिया ने कहा था, "राजनीति अल्पकालिक धर्म है और धर्म दीर्घकालिक राजनीति।"⁵⁵ अन्य शब्दों में कहें तो राजनीति और धर्म मिलकर एक प्रकार का 'कॉकटेल' बनाते हैं। परलौकिक निष्ठा के रूप में धर्म राजनीति को मर्यादित करता है एवं राजनीति उसके लिए अप्रत्यक्ष रूप से उपकारी होती है। स्वरूपतः धर्म के कारण राजनीतिक संघर्ष संभव नहीं है, जब तक धर्म और राजनीति का मिश्रण न हो। धार्मिक व्यवस्था को राजनीति का आधार मानने पर असहिष्णुता, हिंसा और सत्ता लोलुपता रूपी विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। इन दोनों के सम्बन्ध को दो आधारों पर समझा जा सकता है :

(अ) **सैद्धांतिक पक्ष :** धर्म और राजनीति का अंतर्संबंध दो तरह से दिखाई देता है। 'धर्म का राजनीतिकरण' और 'राजनीति के लिए धर्म'। प्राचीन ग्रन्थ जहाँ राजनीति में धर्म के प्रयोग को सही ठहराते हैं, वहीं आधुनिक आलोचनाओं ने इसके नकारात्मक पक्ष को भी उजागर करना शुरू किया है।

अराजके हि लोकेअस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात् ।

रक्षार्थमस्य लोकस्य राजानामसृजत्प्रभुः ॥⁵⁶

अर्थात् 'जब संसार में कोई राजकीय संस्था न थी, तो भय और आतंक के मारे लोग त्रस्त रहते थे ! तब इस (मानव संस्था) की रक्षा के लिए ईश्वर ने शासन सत्ता को जन्म दिया। ईश्वर ने ऐसी बुद्धि दी जिस से मनुष्य ने संसार में शासन सत्ता स्थापित की।' यह सत्ता स्थापित की गयी थी लोगों में भय कम करने के लिए, उन्हें सुशासित रखने के लिए, उन्हें मार्गदर्शित करने के लिए।

धर्मसापेक्षता को मानने वाले लोगों की मान्यता है कि धर्म को राजनीति से पृथक करना सर्वथा असम्भव है। इसलिए इस मान्यता के लोग धर्म और राजनीति के परस्पर सामंजस्य से ही लोक का कल्याण करना चाहते हैं। 'सेकुलर' लोग इन्हें साम्प्रदायिक शक्तियाँ अथवा 'कम्युनल फोर्सेज' कहकर पुकारते हैं।

धर्म और राजसत्ता का सम्बन्ध बहुत पुराना है। शायद उतना ही पुराना जितना पुराना धर्म है और जितनी पुरानी सत्ता के प्रति मनुष्य की लालसा की कहानी। धर्म के अनुसार जीवन को मर्यादित करने की सर्वप्रथम कोशिश स्मृतियों में दिखाई पड़ती है। धर्म के संस्थानीकरण की राजनीति वहीं से शुरू होती है। इन स्मृतियों और ब्राह्मणों को रचा था, समाज में प्रभुत्व रखने वाले ब्राह्मण वर्ग ने, जिससे तत्कालीन शासक भी भय खाते थे। धरती पर लगभग एक ही समय में जन्म लेने वाले चाणक्य और अरस्तु जैसे राजनीतिज्ञों के मत को इस सम्बन्ध में देखना आवश्यक है। एक तरफ जहाँ अरस्तु 'शुभत्व' की स्थापना जीवन का उद्देश्य मानता था, दूसरी तरफ चाणक्य का विश्वास 'सुदृढ़ राजतन्त्र' स्थापित करने में था, जिसके लिए वह साम-दाम-दंड भेद किसी का भी सहारा लेने का

हिमायती था। बहरहाल दोनों को अलग-अलग शासकों के माध्यम से बड़ी सत्ताओं की स्थापना में सफलता मिली। किन्तु "कोरी कूटनीति से सत्ता तो हथियाई जा सकती थी। इसके जरिये राजनीतिक दुश्मनों को ठिकाने लगाया जा सकता था, लेकिन महाशक्तिशाली सम्राट भी संगठित जनशक्ति से भय खाते थे, जानते थे संगठित जनक्रोध से बचना कठिन और कभी-कभी तो असंभव हो जाता है। इस भय से मुक्ति में धर्म राजसत्ता का मददगार बना। वह इहलौकिक दुखों के सापेक्ष पारलौकिक सुखों को लाकर सामाजिक असंतोष को कम करने तथा इसके माध्यम से जीव में आभासी संतुलन बनाये रखने में सक्षम था। धर्म के इसी गुण के कारण धर्मसत्ता और राजसत्ता का गठजोड़ हुआ।"⁵⁷

धर्म और राजनीति के सम्बन्ध पर गाँधी और विवेकानंद के विचार उल्लेखनीय हैं। पूर्व केन्द्रीय मंत्री जगमोहन ने अपने लेख 'धर्म-राजनीति का गाँधी दर्शन' में लिखा है, "यह विवेकानंद के विचारों का ही प्रभाव था कि गाँधीजी यह कहने में समर्थ रहे कि जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है वे यही नहीं जानते हैं कि धर्म का असली अर्थ क्या है? गाँधीजी ने यह भी कहा कि मेरे अंदर के राजनेता को मैं कभी भी अपने निर्णयों पर हावी होने का मौका नहीं देता हूँ। यदि मैं राजनीति में भाग लेता नजर आ रहा हूँ तो सिर्फ इसलिए, क्योंकि आज राजनीति ने साँप की कुंडली की तरह हमें जकड़ लिया है, जिससे कोई कितनी भी कोशिश कर ले, बचकर नहीं निकल सकता। इसीलिए मैं इस साँप से लड़ना चाहता हूँ। उन्होंने यह भी महसूस किया कि इस साँप से लड़ने का सबसे अच्छा तरीका है वास्तविक धर्म के उच्च आदर्शों को विकसित करना। बार-बार गाँधीजी ने यह रेखांकित किया कि सिद्धान्तहीन राजनीति मौत के फंदे के समान है, जो राष्ट्र की आत्मा को ही मार डालती है।"⁵⁸ कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि गाँधी जी ने धर्म को राजनीति के साथ जोड़ने का प्रयास किया, किन्तु यह धर्म था मानवता का धर्म जहाँ 'ईश्वर ही सत्य है' नहीं बल्कि 'सत्य ही ईश्वर है' की अवधारणा में विश्वास किया जाता है।

किन्तु तसलीमा का मत उपरोक्त सभी से भिन्न है। वे राष्ट्र के लिए किसी भी प्रकार के धार्मिक प्रश्रय को आवश्यक नहीं मानतीं। उनका मत है, "राष्ट्र को क्या कभी किसी धर्म की ज़रूरत

होती है ? इंसान को भले धर्म को जरूरत होती है, मगर देश क्या कोई इंसान है ? देश तो सभी संस्कृति, सभी भाषा के लोगों की हिफाजत के लिए होता है । देश अगर निरपेक्ष न हो, देश सारे विविध सम्प्रदायों के बीच, किसी एक सम्प्रदाय का पक्ष ले, तो उस देश के लोगों में विरोध और विश्रृंखलता जरूर सिर उठाएगी ।"⁵⁹

(आ) व्यावहारिक पक्ष : यदि वर्तमान में राजनीति और धर्म के गठजोड़ का कारण क्या हो सकता है, इस प्रश्न पर विचार करें, तो हम पाते हैं कि सत्ता पर काबिज लोग जब हिटलरी रुतबे की तमन्ना रखते हैं, तुष्टिकरण के बहाने छलने का प्रयास करते हैं, जनता को भय और दहशत में रखना चाहते हैं, तो वे धर्म के साथ मिलकर एक ऐसा 'कॉकटेल' तैयार करते हैं, जिसकी तासीर से आम लोगों का निकल पाना मुश्किल हो जाता है । कह सकते हैं, ऐसे में धर्म, लोगों को भावनात्मक रूप से छलने के एक माध्यम से अधिक कुछ नहीं होता । जब रामचंद्र शुक्ल भक्ति के उद्भव के सम्बन्ध में लिखते हैं, "पौरुष से हताश जाति के लिए ईश्वर की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही और क्या था ?"⁶⁰ तो इससे यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि जनता निराशा में सैदव ईश्वर का सानिध्य ढूँढती रही है और इस बात का फायदा उठाकर सत्तानशीनों ने ईश्वर को बेचना और खरीदना शुरू किया । इसके हजारों-हज़ार उदाहरण हैं । भारत और बांग्लादेश ही नहीं बल्कि समस्त विश्व इस धर्म और राजनीति की आपसी चालबाजी में फँसा हुआ है, जिसने न केवल तमाम नरसंहार करवाए बल्कि इंसानों के आपसी विश्वास और मानवता से जुड़े सद्भाव को भी समाप्त करने का प्रयास किया है ।

सामंती और प्राक्-औद्योगिक समाज में पुरोहित वर्ग और सत्ताधारियों के बीच गठजोड़ हुआ करता था । पुरोहित वर्ग ने ही सर्वप्रथम इस अवधारणा को प्रस्तुत किया कि राजाओं को शासन करने का दैवीय अधिकार है । यूरोप में राजा और पोप हमराही हो गए । इस्लामिक दुनिया के बड़े हिस्से में नवाब और शाही इमाम में दोस्ती हो गई और हिंदू धर्म के प्रभाव वाले क्षेत्रों में राजा और राजगुरु एक

साथ खड़े दिखने लगे। इस गठजोड़ का लाभ यह हुआ कि शासक अब अधिक से अधिक सत्ता अपने हाथों में केंद्रित करने के लिए धर्म का इस्तेमाल कर सकते थे। आश्चर्य नहीं कि राजाओं ने अपनी विस्तारवादी महत्वाकांक्षाओं को धार्मिक आधार पर औचित्यपूर्ण ठहराना शुरू कर दिया। अगर कोई ईसाई राजा अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था तो उसके लिए किए जाने वाले युद्ध को वह 'क्रूसेड' बताता रहा। इसी तरह, मुस्लिम शासकों ने युद्ध नहीं 'जिहाद' किया। हिंदू राजाओं की लड़ाई सदैव 'धर्मयुद्ध' हुआ करती थी। इन सबके अतिरिक्त धर्म और राजनीति के गठजोड़ के ढेरों उदाहरण आज भी मौजूद हैं।

लेखिका तसलीमा नसरीन के सम्बन्ध में बांग्लादेश सरकार ने जो भी निर्णय लिए वे सभी तथाकथित इस्लामिक धर्मज्ञों के आदेश के अनुसार ही लिए गये। इस निर्णय के पीछे तात्कालिक परिस्थितियाँ तो हैं ही किन्तु इसके पीछे लम्बे समय से चली आ रही इस्लामिक राष्ट्र की मानसिकता भी है, जिसका विकास इतिहास के गर्भ में धीरे-धीरे होता रहा। धर्म के विरुद्ध कुछ सुन और सह न पाने की मानसिकता किसी एक दिन की देन नहीं है। इसकी नींव तो उस बंगाल-विभाजन के समय ही पड़ गयी थी जब हिन्दू और मुस्लिमों के मध्य संस्कृति और भाषा की एकता के बावजूद धर्म की गहरी खाई खोद दी गयी थी। तसलीमा आत्मकथा के माध्यम से अपने समय के राजनीतिक सच को बयाँ करती हैं, जो उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखे थे और जो उनकी माँ या पिता ने देखे थे। इसमें पाकिस्तान के निर्माण से लेकर बांग्लादेश के मुक्तियुद्ध और उसके बाद के बांग्लादेश में सत्ताओं की पलटवार, खेमेबाजी, अवसर की राजनीति सम्मिलित है। इस राजनीतिक परिदृश्य में बदलती सत्ताओं के साथ वे पूरे बांग्लादेश को भी खोखला होता हुआ देखती हैं। यही कारण है कि उनके उपन्यास के पात्र जब बांग्लादेश वापस जाकर अपने देश को देखते हैं, तो उन्हें देश खोखला और पिछड़ा हुआ नज़र आता है। उदाहरण एक लिए 'फेरा' की कल्याणी को, "ब्रह्मपुत्र की तरह ही उसके जन्मस्थान के शहर के लोग भी गंदे, कमजोर और बड़े दुखी लगे।"⁶¹

भारतीय परिदृश्य : भारत में, इस धर्म सम्बन्धी राजनीतिक चालबाजियों को हम प्राचीन काल से ही देखते आ रहे हैं। जब समाज में वर्ग बने और यही वर्ग जाति में तब्दील हो गये, उस समय ब्राह्मण जिनके हाथ में ज्ञान और बुद्धि की शक्ति थी, उन्होंने स्वयं को सर्वश्रेष्ठ घोषित कर क्षत्रियों को शासन करने का अधिकार देते हुए भी, उनकी नकेल अपने हाथों में रखी। जबकि वैश्यों और शूद्रों को धर्म और जाति के नाम पर सदैव समाज में निकृष्ट बनाये रखा। यह एक राजनीतिक चालबाजी ही कही जा सकती है। मध्यकाल में मुस्लिम सत्ताओं के आगमन से धर्म परिवर्तन की राजनीति शुरू हुई, जिसका उद्देश्य एक तो सत्ता हथियाना और अधिक से अधिक सत्ता समर्थकों को पैदा करना था। इसके लिए उनके धर्म के अधिक से अधिक अनुयायी पैदा किये जाने आवश्यक थे। इस कार्य के लिए धार्मिक और ईश्वरीय लोभ देकर लोगों का धर्म-परिवर्तन करने का सिलसिला शुरू हुआ, जो ब्रिटिशों के समय में आकर और अधिक तेज हो गया और इसने बाद में साम्प्रदायिक रूप ले लिया। ब्रिटिशों ने इस साम्प्रदायिक मतभेद का किस तरह से फायदा उठाया इससे हम सभी वाकिफ हैं। लेकिन इस तरह के कार्यों से एक बात तो स्पष्ट हो गयी कि सत्ता और राजनीति में बने रहने के लिए धर्म एक हथियार की ही भाँति कार्य कर सकता है और उसने किया भी।

भारत की स्वतंत्रता के बाद इस सम्बन्ध में स्थिति बद-से-बदतर होती चली गयी। सत्ता लोलुप राजनीतिज्ञों ने जनता में अन्धविश्वास को कम करने के बजाय उसे बनाये रखने का काम किया। लोगों को धर्म के नाम पर आपस में लड़वाने के लिए दंगे करवाए। इस सम्बन्ध में बाबरी मस्जिद विध्वंस, मुजफ्फरनगर के दंगों, बीफ के नाम पर हो रहे दंगों को उदाहरण के तौर पर पेश किया जा सकता है। भारत का वर्तमान एक ऐसा संक्रांति काल है जिसमें हिंदू धर्म की पहचान की राजनीति परवान चढ़ रही है। इस धर्म आधारित राजनीति के सम्बन्ध में अखिलेश मिश्र लिखते हैं, "कुछ धार्मिक प्रतीकों को राष्ट्रीय अस्मिता बताने में भी कमाल हुआ है। लाल कृष्ण आडवाणी ने रामजन्म भूमि को राष्ट्रीय 'अस्मिता' का सवाल बना दिया। उन्हें कौन समझाए राम का जन्म नहीं अवतार हुआ था। प्रथम

रामावतार अयोध्या में नहीं नैमिषारण्य में हुआ था जहाँ मनु शतरूपा ने तपस्या की थी। वह स्थल तो है वहाँ मंदिर नहीं है। बने तो कोई रोकेगा नहीं। इसलिए उससे राजनीतिक लाभ नहीं होगा।"⁶²

तसलीमा लिखती हैं कि, "कट्टरता का चरित्र हर मुल्क में एक जैसा होता है।"⁶³ बांग्लादेश और भारत दोनों जगह धर्म की राजनीति के शिकार लोग देखने को मिल जाते हैं किन्तु उनके अनुसार यह दोनों देशों में अलग-अलग तरह से है। पश्चिम बंगाल में जहाँ बंगाली होते हुए भी हिन्दुओं और मुसलमानों की अलग-अलग बस्ती है और वहाँ हिन्दुओं को 'बंगाली' और मुसलमानों को 'गैर बंगाली' के रूप में देखने का चलन है। बांग्लादेश में हिन्दू और मुसलमान बंगालियों की अलग-अलग बस्तियाँ नहीं थीं। सब एक साथ रहते थे और एक साथ एक दूसरे के त्योहारों, सुख-दुःख आदि में भाग लेते थे। किन्तु सरकारी स्तर पर किये गये प्रयासों में पर्याप्त अंतर दिखता है। जहाँ भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने बांग्लादेश के अल्पसंख्यक मुसलमानों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त कदम उठाए थे वहीं बांग्लादेश में हिन्दुओं को दूसरे दर्जे का नागरिक समझा जाता रहा है। उनके अनुसार, "बांग्लादेश सम्प्रदाय मुक्त धर्ममुक्त देश हो सकता था, क्योंकि इस देश में हिन्दू-मुसलमान पास-पास रहते सहते हैं, क्योंकि मुसलमानों के धर्मग्रन्थ कुरान में क्या लिखा है, यह निन्यानबे प्रतिशत मुसलमान ही नहीं जानते, क्योंकि उन लोगों की भाषा अरबी नहीं है, चूँकि उन्हें जानकारी नहीं है, इसलिए उन लोगो को यह पता नहीं कि विधर्मियों की उपेक्षा करने की बात कही गयी है... क्योंकि आस-पास रहते-सहते, इन दोनों जातियों के बीच सहधर्मिता रच-बस गयी है।"⁶⁴ बालकृष्ण भट्ट 'इंदु' जनवरी 1893 के अंक में लिखते हैं, "सच पूछो तो हिंदुस्तान की अधोगति का एक हेतु हमारा धर्म भी, मजहब भी हो रहा है। जिससे हम ऐसे जकड़ लिए गये हैं कि आगे सर फैला ही नहीं सकते।" "धर्म में सब महत्व ही महत्व पाओगे। जरा आँख खुली की वह महत्व धर्म में निरी पेल-पेल हो जायेगी। यह महत्व नहीं है बल्कि निरी गवाही है कि हिन्दू कौम कहाँ तक शीतला भवानी से लेकर भूत-प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी वाले मियाँ गाजी मिर्जा इमाम हुसैन तक को पूजती है और फिर

अपने धर्म के महत्व के सम्बन्ध में हम फूले नहीं समाते... हर तरह की चपकुलिशों में पड़ काँख रहे हैं सही, पर उस बंधी लकीर से बाहर न होंगे !"⁶⁵

वैश्विक परिदृश्य : विश्व में भी इस गठजोड़ के उदाहरण कम नहीं हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण यह कि वर्तमान में विश्व के 43 देशों ने अपना-अपना राष्ट्रधर्म घोषित कर रखा है और 40 देश ऐसे हैं जो किसी न किसी धर्म विशेष का पक्ष लेते हैं। (देखें-परिशिष्ट-2, मानचित्र-3)। इसके अतिरिक्त विश्व के इतिहास के पन्नों को पलटते हुए हम धार्मिक नरसंहारों के तमाम काले बादलों को देख सकते हैं। फिलिस्तीन और इजराइल के मध्य यहूदी और मुस्लिमों का संघर्ष, अबीसीनिया और सोमालिया के बीच इस्लाम को लेकर विवाद और युद्ध, नाइजीरिया में संघर्ष, दक्षिणी वियतनाम में बौद्धों को लेकर विवाद, चीन में डंगन और पैन्थाय विद्रोह, लेबनीज सिविल वार, यूगोस्लाविया में क्रोएशियन और बोस्नियन युद्ध, फतह-हमास युद्ध, अफगानिस्तान युद्ध, म्यांमार की रोहिंग्या समस्या आदि का आधार कहीं न कहीं धर्म ही रहा है। ईरान में अयातुल्लाह खुमैनी के सत्ता में आने के बाद तो पश्चिमी मीडिया में हलचल मच गई और इस्लाम को 'आने वाले समय का सबसे बड़ा खतरा' बताया जाने लगा। म्यांमार में अशिन विरथू जैसे लोगों का उदय हुआ, जिसे बर्मा का बिन लादेन कहा जाने लगा। परिणामतः लाखों मुस्लिमों और हिन्दुओं को म्यांमार से विस्थापित होना पड़ा। श्रीलंका में बौद्ध पुरोहित वर्ग ने धर्म के नाम पर राजनीति में घुसपैठ शुरू कर दी। इसी दौर में अमरीका में ईसाई कट्टरवाद का बोलबाला बढ़ा। न्यूयार्क के डब्ल्यूटीसी टावर पर 9/11 के हमले के बाद, अमरीकी मीडिया के 'इस्लामिक आतंकवाद' शब्द से आम धारणा बनी- बल्कि मजबूत हुई- कि इस्लाम और मुसलमान, आतंकवादी हिंसा की जड़ में हैं। इस्लाम का राजनीति में उपयोग और कुछ सिरफिरे लोगों द्वारा अपने हितों की रक्षा के लिए इस्लाम के नाम का इस्तेमाल करने के कारण इस धारणा को मजबूती मिली और पूरी दुनिया में मुसलमानों की छवि खराब हुई।

कह सकते हैं, लगभग सभी धर्म, अपने-अपने संदर्भों में, मानवतावाद की बात करते हैं परंतु विभिन्न धर्मों के दार्शनिक पक्ष के बजाए उनके तथाकथित पुरोहितों की मनगढ़ंत बातें ही उस धर्म की पहचान बना दी गयीं हैं, जिससे धर्मों का मूल-उत्स कहीं खो गया है। और इस परिस्थिति का फायदा उठा इन धार्मिक लंबरदारों ने राजनीति से गठजोड़ कर आम-जन को मूर्ख बनाने के सिवा कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया। वरिष्ठ पत्रकार रवीश कुमार व्यंगात्मक शब्दों में लिखते हैं, "जिन लोगों ने अभी तक राजनीति को कुँवारा रखा, वही अब वैज्ञानिक दृष्टिकोण को लेकर हंगामा कर रहे हैं। हमारी राजनीति की बारात निकल गई है और हम हैं कि बारातघर में हंगामा कर रहे हैं। मैं तो प्रसन्न हूँ कि राजनीति की धर्म से शादी हो गई। राजनीति अब अपने पति के संरक्षण और अनुशासन में रहेगी। मल्लब, घर में रहेगी, मुनि जी, मौलवी जी और संत जी बाहर जाकर चुनाव लड़ आएँगे। मुझे नहीं पता कि तमाम पत्नियों को नई सखी राजनीति की यह हैसियत पसंद आई है या नहीं। वह तो अभी तक इसी राजनीति से अपने लिए आजादी माँग रही थी कि हमें पतियों और पिताओं की चौकीदारी से मुक्त करो। लो, कल्लो बात... अब उनकी राजनीति भी पत्नी हो गयी है... हाथ भी पीले कर दिए गये हैं।⁶⁶

5.2 तसलीमा के विरुद्ध राजनीति

(क) निर्वासन का षड्यंत्र और ब्लासफेमी की राजनीति :

तसलीमा नसरीन ने देश के राजनीतिक परिवेश और माहौल के साथ-साथ आत्मकथा में उनके विरुद्ध तैयार किये गये राजनीतिक माहौल का जिक्र भी किया है। एक अकेली स्त्री के विरुद्ध कैसे पूरा राजनीतिक महकमा और कट्टरपंथी वर्ग एक साथ आया और उसके पीछे किस प्रकार की रणनीतियाँ रहीं, दोनों ने इस परिस्थिति में एक दूसरे का साथ कैसे दिया, उनके विरुद्ध कूटनीतिक चालों में कौन-कौन से दल शामिल रहे और किस तरह से उन्हें देश से निर्वासित करने का पूरा माहौल तैयार किया गया इसका उल्लेख वे आत्मकथा में करती हैं।

(अ) निर्वासन की सैद्धांतिकी : 'निर्वासन', अर्थात् अपने स्थान से दूर भेज दिया

जाना, जिसमें होता है एकाकीपन, छटपटाहट, और निःसंगतता। ऐतिहासिक परिपेक्ष्य से यदि देखें तो लेखक के निर्वासन की बात संभवतः सबसे पहले प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'इओन' में की थी। उनका कहना था, चूँकि लेखक 'अनुकरण का अनुकरण' करता है, अतः उसे आदर्श राज्य से निष्कासित कर दिया जाना चाहिए।¹ किन्तु यह बात उसने कला के संदर्भ में कही थी। क्योंकि साहित्य या कला अनुकरण होने के कारण 'त्रिधा अपेत' अर्थात् सत्य से तीन गुना दूर होता है। यह बात उसने किसी राजनीतिवश कही होगी, ऐसा नहीं लगता।

डब्ल्यू ई. लेविस की पुस्तक 'एनसेस्टरी ऑफ़ मैन : द थियरी ऑफ़ एक्साइल' के अनुसार तो प्रत्येक मनुष्य निर्वासित मनुष्य है। इस पुस्तक के अनुसार 'पृथ्वी एक जेल है और इस दुनिया का हर व्यक्ति यहाँ एक कैदी है।'⁶⁷ इस पुस्तक में प्रस्तुत किये गये 'निर्वासन के सिद्धान्त' की माने तो मनुष्य का सम्बन्ध पृथ्वी के बाहर से है और मनुष्यों को यहाँ निर्वासित कर भेजा गया है। अब तक हुई वैज्ञानिक खोजों के आधार पर अभी इस सम्बन्ध में किसी निर्णय पर पहुँचना कठिन है। लेकिन एक बात तो है कि जैसे ही हमें यह पता चलता है कि हम निर्वासित हैं, तो हम उसके कारणों की तलाश करने में जुट जाते हैं। क्योंकि हमें दुःख और अफ़सोस होता है कि हम अपनी जड़ों से दूर चले आये हैं।

लियोन यू अपने लेख 'पोलिटिकल डिसकोर्स : थियरीज ऑफ़ कालोनाइजेशन एण्ड पोस्ट कोलोनाइजेशन' में लिखते हैं, 'निर्वासन प्रायः जबरन किसी स्थान पर भेज दिए जाने के रूप में देखा जाता है। व्यवहार में किसी न किसी व्यक्ति की राजनीतिक असंतुष्टि के बाद किस दूर-दराज इलाके में भेज दिए जाने या प्रवासी बन जाने पर मजबूर कर दिए जाने को ही निर्वासन के रूप में देखते हैं। ऐसे में यह स्वीकार किया जाता है कि 'निर्वासन', 'प्रवजन' से भिन्न होता है। जहाँ प्रवजन में व्यक्ति अपना स्थान छोड़कर दूसरे स्थान पर सदा के लिए चला जाता है और धीरे-धीरे उसे ही अपना समझने लगता है, जबकि निर्वासन में अपनी धरती, अपनी जड़ों से प्रेम बाकी रहता है और एक प्रकार से वहाँ लौटने

की छटपटाहट भी बाकी रहती है।⁶⁸ लेकिन इस प्रकार की धारणा उत्तर-औपनिवेशिक काल की राजनीति और सिद्धान्त में स्वीकार नहीं की गयी। उनके अनुसार उत्तर-औपनिवेशिक काल में निर्वासन के लिए कई अन्य तत्व भी उत्तरदायी हो सकते हैं :

1. भौतिक स्थान, जो किसी व्यक्ति के सांस्कृतिक उत्पादन के लिए उत्तरदायी होता है। उदाहरण के लिए, नाइजीरिया से विस्थापित होकर ब्रिटेन में रहने वाला व्यक्ति जब साहित्य लिखता है, तो उसके साहित्य में उसके पहले वाले देश की संस्कृति, अनुभव आदि भी समाहित होते हैं। अतः ऐसे में वह न तो अपने को पूरी तरह से नाइजीरिया का समझ पाता है और न ही ब्रिटेन का। यह भी एक प्रकार का 'निर्वासन' ही है। इसे कृष्णा सोबती 'दो चित्ता परायापन' कहती हैं, जिसमें अपनों से दूर न जाने और परायों के नजदीक हो जाने का भय एक साथ रहता है।⁶⁹

2. इसके अतिरिक्त कई बार व्यक्ति अपने स्थान (जन्मभूमि या जहाँ वह अधिकतर रहा है) से निकले बिना भी, निष्कासित महसूस कर सकता है। जिसे एक प्रकार से 'आत्मनिर्वासन' कह सकते हैं। इसके लिए व्यक्ति को उसके स्थान से निकल जाने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा उपनिवेशीकरण और आधुनिकीकरण के कारण होता है। इस सम्बन्ध में उस स्थान पर रहते हुए व्यक्ति यह महसूस करता है कि उपनिवेशीकरण के कारण उस स्थान विशेष की संस्कृति, पारम्परिक भाषा आदि का नाश हो चुका है या उनमें काफी बदलाव हो चुका है। ऐसे में वह वहाँ रहते हुए भी निष्कासित ही महसूस करता है। यह उस व्यक्ति में खोने और मातृभूमि से अलग या विस्थापित होने का भाव पैदा करता है।

लियोन यू ने एडवर्ड सईद के निर्वासन के सिद्धान्त का हवाला देते हुए बताया कि 'एडवर्ड का मानना था कि निर्वासन 'वास्तविक' और 'रूपक' एवं 'स्वैच्छिक' एवं 'अनैच्छिक' हो सकता है। यह इंगित करता है कि निर्वासन के लिए शारीरिक हिंसा ही केवल उत्तरदायी नहीं होती बल्कि विवशता भी सूक्ष्म रूप में कार्य करती है। इस प्रकार का निर्वासन विदेशों में शिक्षा और शोध के लिए रह रहे बुद्धिजीवियों में देखा जा सकता है। एडवर्ड सईद के अनुसार बुद्धिजीवियों के संदर्भ में निर्वासन उनकी

बौद्धिकता से सम्बंधित होता है। इस सम्बन्ध में इसका उत्तर-औपनिवेशिक परिवेश से सम्बन्ध एकदम प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता। यह बुद्धिजीवियों का उनसे विभेद करता है जो या तो लीक पर चलते हैं और या जो अधिकारियों का लगातार प्रतिरोध करते हैं। सईद के अनुसार ये लोग अपने ही समाज से पृथक् लोग हैं, जिसके कारण वे विशेषाधिकार, शक्ति और सम्मान में निर्वासन के पात्र हो जाते हैं।⁷⁰

जॉन डी बार्बर अपने लेख 'एडवर्ड सईद एण्ड द स्पेस ऑफ़ एक्साइल' में लिखते हैं, "अपने संस्मरण 'आउट ऑफ़ प्लेस' (1999) में एडवर्ड सईद ने निर्वासन की स्थिति को स्वयं और विश्व के बारे में स्थापित सबसे गहन अनुभूतियों के रूप में प्रस्तुत किया। एक रूपक के रूप में निर्वासन शब्द का उसका प्रयोग विभिन्न धार्मिक समुदायों की देश और काल को लेकर प्रस्तुत विचारधाराओं के अनुरूप दिखाई देता है। यद्यपि सईद पवित्र स्थान या जन्मभूमि की पवित्रता जैसी विचारधारा का विरोध करता था, किन्तु निर्वासन उसके जीवन में कुछ धार्मिक मिथकों के समान रहा जैसा कि उसने अपनी आत्मकथा में कहा है।"⁷¹ निर्वासन के सम्बन्ध में यदि एडवर्ड सईद के सिद्धान्त को देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि वे निर्वासन को एक राजनीतिक घटना मानने के साथ-साथ बुद्धिजीवियों की बौद्धिक पृथक्ता, जो उन्हें अपनी संस्कृति के मूल्यांकन की दृष्टि प्रदान करती है, के रूपक के रूप में भी देखते हैं। वे निर्वासन को एक राजनीतिक स्थिति और आलोचनात्मक विचार के रूप में देखते हैं।

'निर्वासन' शब्द अंग्रेजी के 'एक्साइल' का पर्यायवाची है, जिसका अर्थ है 'देश निकाला' या 'अपने देश से लम्बे समय के तक दूर रहना'⁷²। किन्तु 'शरणार्थी' या 'प्रवासी' शब्द से इसका तात्पर्य भिन्न है। व्यवहार में, इस शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिए किया जाता है, जिन्हें अपने मूल निवास या मातृभूमि से अलग कर दिया जाता है। इसमें अब उन लोगों को भी सम्मिलित किया जाने लगा है, जो स्वेच्छा से अपना मूल स्थान छोड़ देते हैं। निर्वासन, एक स्थान विशेष पर इस भावना के साथ रहना है कि वह अपने घर या मातृभूमि से दूर है। 'निर्वासन एक ऐसी कथा है, जिसमें निर्वासित अपने

घर से दूर की कठिन यात्रा को याद करता है और कभी-न-कभी घर वापसी की आशा के साथ आगे बढ़ता रहता है ।'⁷³ अपने निबंध 'रिफ्लेक्शन ऑन एक्साइल' (1984) में सईद लिखते हैं," निर्वासन हमें चिंतनशील बनाता है, लेकिन इसे अनुभव करना बहुत पीड़ादायक है ।" एडवर्ड निर्वासन में अकेले जी रहे व्यक्ति की विवशता को किसी वीर कार्य या किसी रोमांचकारी कार्य के रूप में देखे जाने की आलोचना करते हैं । उनका मत है, "इसके लिए आपको पहले नोबोकोव और जॉयस को पढ़े रखकर उन असंख्य लोगों के बारे में सोचना होगा जिनके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेंसियाँ बनाई गयी हैं । निर्वासन को मानवतावादी, सौन्दर्यबोधपरक, या धार्मिक दृष्टि से देखना इस दंड की पीड़ा को कम करके देखना है : 'क्या यह सत्य नहीं है कि साहित्य और धर्म इस निर्वासन के सम्बन्ध में अस्पष्ट हैं, जो कि अपने आप में बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है; या यह मनुष्यों के द्वारा अन्य मनुष्यों के लिए ही उत्पन्न किया गया है; या फिर मृत्यु की तरह, लेकिन मृत्यु की दया रहित इस निर्वासन ने लाखों लोगों को अपनी परम्परा, परिवार और स्थान से अलग कर खत्म कर दिया है ?'⁷⁴ इस चेतावनी के बावजूद एडवर्ड यह भी बताते हैं कि निर्वासन उत्पादक के रूप में कार्य करते हुए बौद्धिक विचारशक्ति को आकार देता है । इसके लिए वह थियोडोर एडोर्नो और एरिक आरबक का उदाहरण देते हैं, जिन्हें नाजियों के द्वारा अपने देश से भगा दिया गया था और जिसके कारण उनकी रचनाओं में इस अनुभव को महसूस किया जा सकता है । सईद का मनना है कि निर्वासन एक व्यक्ति में ईमानदार व्यक्तिपरकता, मन की स्वतंत्रता, आलोचनात्मक दृष्टि और दृष्टिकोण की मौलिकता को प्रोत्साहित करता है । इस प्रकार एडवर्ड ने निर्वासन में भी सकारात्मकता की तलाश की है । सईद ने यह भी कहा कि लोगों में युद्ध तभी शुरू होते हैं, जब लोग या समूह यह मानना प्रारम्भ कर देते हैं कि उनका किसी स्थान विशेष पर अधिकार है, जो उन्हें ईश्वर प्रदत्त है । इसी कारण एडवर्ड ने 'पवित्र स्थान' जैसी अवधारणा का खंडन किया है ।

थॉमस ट्वीड अपनी पुस्तक 'इन क्रोसिंग एण्ड ड्वेलिंग : अ थियरी ऑफ़ रेलिजन' में धर्म से सम्बंधित सिद्धान्त प्रस्तुत करते हुए यह बताते हैं कि धर्म एक तरफ मनुष्य को एक देश या स्थान

विशेष तक तो बाँधता ही है किन्तु शरीर, घर, मातृभूमि और ब्राम्हाण्ड के बन्धनों से निकल आने का भी मार्ग दिखाता है। उनके इस सिद्धान्त के तीन बिंदु हैं - स्थिति, गति और सम्बन्ध। उन्होंने विश्व का धार्मिक मानचित्रण तीन प्रकार से किया है -

1. लोकेटिव या स्थानीय :- इसके अंतर्गत उस स्थान को रखा है, जहाँ से धर्म की शुरुआत होती है और उस स्थान विशेष को 'पवित्र स्थान' घोषित कर दिया जाता है। इसे वे एक तरह से आध्यात्मिक मानचित्रकारी या क्षेत्रीयकरण कहते हैं।

2. यूटोपिया/सुपरालोकेटिव/परा-स्थानीय :- इससे तात्पर्य स्थानीयता से परे के स्थान से है जिसमें मान्यताएँ किसी एक स्थान विशेष से सम्बंधित नहीं होतीं। इसमें किसी नगर या स्थान का महत्व नहीं होता। ट्वीड की मान्यता है कि इससे मातृभूमि या सम्बंधित स्थान की महत्ता समाप्त हो जाती है।

3. ट्रांस-लोकेटिव :- यह उन तरीकों को बताता है कि प्रवासी धर्म किस तरह से अनुयायियों को पीछे और आगे के इतिहास और भूगोल की ओर देखने, उनकी जन्मभूमि और उनके द्वारा अपनाई गयी भूमि और भूत एवं वर्तमान के बीच बने रहने में सहायता करता है।⁷⁵

सईद की निर्वासन सम्बन्धी व्याख्या इस तीसरी श्रेणी के अंतर्गत आती है, जो किसी प्रकार की किसी स्थानीय पहचान को महत्व दिए जाने का निषेध करता है। लेकिन सईद निर्वासन के अनुभव को कम नहीं करना चाहते बल्कि इसे चेतना में रखने का समर्थन करते हैं। सईद के अनुसार 'निर्वासन में होना कोई भाग्य का मामला नहीं है बल्कि यह दृष्टिकोण और प्रतिबद्धता का मामला है, जो व्यक्ति विशेष के मूल्यों को प्रदर्शित करता है।'⁷⁶

स्पष्ट है कि निर्वासन कई प्रकार का हो सकता है और इसके कई रूप हो सकते हैं जैसे - आत्मनिर्वासन, निर्वासन और विस्थापन। मूल सन्दर्भ एक होते हुए भी, ये सब एक नहीं हैं। इसीलिए कृष्णा सोबती लिखती हैं "पुराने ठिये से उखड़ना, पुराने लगावों से दूर होना और वतन को पीछे

छोड़ना क्या एक ही बात है ?⁷⁷ मिस्र मूल की लेखिका ईमान मर्सल के आत्मकथ्य के अनुसार, "कुछ कवियों को निर्वासन मिलता है, कई विस्थापित हो जाते हैं, लेकिन कई ऐसे कवि होते हैं, जो बिना घर-बार, देश-दुआर छोड़े ही एलियनेशन, विस्थापन या तमाम राजनीतिक संघर्ष झेल लेते हैं। इसीलिए मैं निर्वासन शब्द का इस्तेमाल करने से बचती हूँ क्योंकि इस शब्द के सारे अर्थ समझे बिना इसका गलत इस्तेमाल धड़ल्ले से किया जाता है। मेरे लिए 'रेक्वीअम' में अन्ना आख्मातोवा का निर्वासन, चेस्वाव मिवोश द्वारा 'नेटिव रेलम' में झेले निर्वासन से कहीं भी अलग नहीं है। मैं अपने संदर्भ में निर्वासन की जगह विस्थापन शब्द का प्रयोग करती हूँ, क्योंकि मुझ पर इजिप्ट छोड़ने का कोई दबाव ही नहीं था। बोस्टन, और उसके बाद कनाडा के एडमॉन्टन के अपने शुरुआती दिनों में मैं भी उन्हीं सब चीजों से गुजरी, जिनसे विस्थापित लोग गुजरते हैं - नॉस्टैल्जिया, घर की याद, क्रोध, दो स्थानों की तुलना। मुझे सर्रियल या अतियथार्थवादी किस्म के स्वप्न भी आते थे, जिनमें मैं शहरों, लोगों, भाषाओं सबको आपस में जोड़ दिया करती थी। इस पूरे दौर में कविता लिखने के प्रति कोई मोह भी नहीं था। पाँच साल तक तो मैंने एक भी कविता नहीं लिखी।"⁷⁸

निर्वासन और विस्थापन में अंतर को अभिव्यक्त करते हुए रेनाता चेकालस्का कहते हैं 'निर्वासन का अनुभव अलग है और दूसरी संस्कृतियों का आपकी जमीन पर आकर बस जाना, घुल-मिल जाना बिलकुल अलग अनुभव है।'⁷⁹ इसे तसलीमा और बांग्लादेश के हिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं। तसलीमा बांग्लादेश से निर्वासित की गयीं जबकि बांग्लादेश के हिन्दू वहाँ की परिस्थितियों से तंग आकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विस्थापित हुए। स्पष्ट है विस्थापन मजबूरी में या जरूरत के अनुसार होता है किन्तु निर्वासन थोपा हुआ राजनीतिक कदम है।

(आ) तसलीमा का निर्वासन : तसलीमा का निर्वासन एक प्रकार का राजनीति क निष्कासन है। यह निष्कासन न तो सलमान रुश्दी की तरह है (जिन्होंने कट्टरपंथियों से बचने के लिए देश छोड़ दिया) न ही नोबेल पुरस्कार प्राप्त एलेक्जेंडर सोल्जेनित्सिन की तरह (जिन्होंने एक प्रकार से

आत्मनिर्वासन स्वीकार किया)। तसलीमा के निर्वासन की राजनीतिक घटना का केवल बांग्लादेश से ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व से सम्बन्ध है, क्योंकि ऐसे समय में जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की माँग अपने चरम पर पहुँच रही है, किसी को 'अभिव्यक्ति' के कारण आजीवन अपने देश ने निष्कासित कर देना, समस्त विश्व की तथाकथित अभिव्यक्ति की आज़ादी और चुप्पी दोनों पर प्रश्न खड़ा करती है। शाजिया उमर ने 'डार्क डायमंड' पुस्तक में बांग्लादेश को एक अशांत क्षेत्र के रूप में देखते हुए यहाँ साहित्य सृजन को बहुत बड़ी चुनौती के रूप में देखा है। और उनका मानना है कि इसका प्रमाण है पिछले कुछ वर्षों में बांग्लादेश में तीस से अधिक लेखकों का कत्ल होना।

ऐसा नहीं है कि समस्त विश्व में तसलीमा ही एकमात्र निर्वासित हैं। इससे पूर्व भी कई लेखकों को विभिन्न कारणों से निर्वासित किया गया या उन्हें विस्थापित हो जाना पड़ा। जैसे - ओविड⁸⁰, बोधा⁸¹, विक्टर ह्यूगो⁸², मिलान कुंदेरा⁸³, सोल्झेनित्सिन⁸⁴, शर्मीला सैयद⁸⁵, अरुन्धती राय⁸⁶, ओरहान पामुक⁸⁷, निकोलस मैकियावाली⁸⁸, ब्लादिमीर लेनिन⁸⁹ आदि। किन्तु एक बात यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि समस्त विश्व में किसी लेखिका के इतने लम्बे राजनीतिक निर्वासन का प्रथम और इकलौता उदाहरण हैं, तसलीमा नसरीन। उनकी आत्मकथा से स्पष्ट होता है कि उनके निर्वासन का मुख्य कारण है, 'ब्लासफेमी'।

(i) ब्लासफेमी सम्बन्धी कानूनी और धार्मिक प्रावधान

कानूनी प्रावधान : तसलीमा को निर्वासित करने की जो भी राजनीतिक चालें चली गयी और अंततः उनके निर्वासन के सम्बन्ध में जो भी निर्णय लिया गया, उसका सबसे बड़ा आधार था 'ब्लासफेमी'। ब्लासफेमी अर्थात् 'ईश निंदा'। अंग्रेजी शब्द 'ब्लासफेमी' ग्रीक शब्द 'blasphemein' से निःसृत है। अंग्रेजी शब्द ब्लासफेमी का अर्थ विभिन्न शब्द-कोश 'ईश्वर को अपमानित करना' बताते हैं। हाल के वर्षों में ब्लासफेमी के बहुत सारे मामले दिखाई दिए हैं और इसके विरुद्ध दी जाने वाली सजा में भी इजाफा हुआ है। सीरिया में एक चौदह वर्षीय बच्चे को सिर्फ इसलिए जान से मार दिया

गया कि उसने पैगम्बर हजरत मोहम्मद की शान के खिलाफ कुछ अपमानजनक टिप्पणी कर दी थी। इसी प्रकार पाकिस्तान में एक ईसाई व्यक्ति को केवल इसलिए मौत की सजा दी गयी कि उसने अपने दोस्त को व्हाट्सएप पर एक ऐसी कविता भेजी, जिसमें इस्लाम निंदा की गयी थी।⁹⁰ इस प्रकार की अनेक घटनाएँ पूरे विश्व में समय-समय पर दिखाई देती रहीं हैं। दुनिया के कई मुल्कों पाकिस्तान, सऊदी अरब, आयरलैंड, अमेरिका और इंग्लैंड जैसे देशों में इस से जुड़े दंडात्मक प्रावधान हैं। लेकिन अमेरिका और इंग्लैण्ड जैसे देशों में ब्लासफेमी के लिए बहुत ही कम मुकदमे चले हैं और दंड तो और भी कम दिए गए हैं। डेनमार्क जैसा एक ऐसा भी देश है, जहाँ ईशनिंदा कानून बनने के 50 सालों के भीतर कोई मामला ही दर्ज नहीं हुआ है। किन्तु मुस्लिम देश इस मामले में अधिक संवेदनशील हैं। वहाँ कानो सुनी बातों पर भी दंड दे दिए जाते हैं।

भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में ईश निंदा सम्बन्धी प्रावधान : ईशनिंदा के सम्बन्ध में, इन तीनों देशों में सबसे अधिक बर्बरता वाला देश है, पाकिस्तान। मिलिट्री तानाशाह जिया उल हक ने पाकिस्तान पीनल कोड में धारा 295बी और 295सी जोड़ दी, जिसके तहत व्यवस्था दी गई कि पैगम्बर मोहम्मद साहब की निंदा करने पर उम्रकैद की सजा हो सकती है। फिर 1992 में इसमें बदलाव करते हुए 295 सी के तहत उम्रकैद के बजाय सजा-ए-मौत की व्यवस्था की गई। पाकिस्तान के 'नेशनल कमिशन फॉर जस्टिस एण्ड पीस' (एनसीजेपी) की स्टडी के मुताबिक धारा 295सी के तहत 1986 से अब तक 1058 लोगों को दंडित किया गया है, जिनमें 51 फीसदी मुसलमान हैं। पाकिस्तान में एक ईसाई बच्ची रिमशा को मौत की सजा दी गयी, 2010 में पाँच बच्चों को ईशनिंदा करने के कारण मौत की सजा सुनाई गयी, वहीं 2011 में पंजाब प्रान्त के गवर्नर को ईशनिंदक होने के कारण गोली मारकर हत्या कर दी गयी। ऐसी घटनाएँ जारी हैं।

इन तीन देशों में ईशनिंदा सम्बन्धी प्रावधानों की पृष्ठभूमि ब्रिटिशकाल से देखी जा सकती है। ब्रिटिश शासनकाल के दौरान वर्ष 1860 में ईश निंदा कानून को संहिताबद्ध किया गया था और इसमें वर्ष 1927 में विस्तार किया गया। ब्रितानी शासनकाल के दौरान बनाया गया ये आम कानून था।

इसके तहत अगर कोई व्यक्ति जानबूझकर किसी पूजा करने की वस्तु या जगह को नुकसान या फिर धार्मिक सभा में खलल डालता है तो उसे दंड दिया जाएगा। साथ ही अगर कोई किसी की धार्मिक भावनाओं का अपमान बोलकर या लिखकर या या अन्य किसी आधार पर करता है तो वह भी गैरक्रानूनी माना गया। विभाजन के बाद पाकिस्तान ने इसे अपना लिया।

पाकिस्तान में करीब सभी गैर-इस्लामी पार्टियों के एजेंडे में ईशनिंदा क़ानून में संशोधन करना शामिल है, लेकिन अभी तक किसी भी पार्टी ने इसमें संशोधन लाने को लेकर कोई प्रगति नहीं की है। पाकिस्तान पीपल्स पार्टी की सांसद शेरी रहमान ने वर्ष 2010 में ईशनिंदा क़ानून में संशोधन लाने के लिए निजी बिल पेश किया था। इस बिल में ईशनिंदा के अभियुक्तों के क़ानूनी अधिकारों को बेहतर करने का प्रस्ताव था। लेकिन बाद में इस बिल को वापस ले लिया गया था। इसका कारण यह रहा कि यह एक संवेदनशील मामला है और कोई भी बड़ी पार्टी धार्मिक पार्टियों से दुश्मनी मोल नहीं लेना चाहती।

भारत में ब्लासफ़ेमी के सम्बन्ध में कानून है किंतु इसके लिए किसी भी प्रकार के मृत्युदंड का प्रावधान नहीं है। भारतीय दंड संहिता की धारा 153-A, 295-A और 296, 297, 298 के तहत दूसरे की धार्मिक भावनाओं को आहत करने या निंदा करने या लोगों को भड़काने आदि के सम्बन्ध में जेल और जुर्माने का प्रावधान है। भारत इस सम्बन्ध में बहुत अधिक कठोर नहीं है क्योंकि यहाँ सभी को अपने-अपने धर्म का पालन करने की स्वतंत्रता है।

राज्य धर्म के बावजूद बांग्लादेश एक धर्म निरपेक्ष दंड संहिता का पालन करता है जो अंग्रेजों के समय में 1860 में बनाई गयी थी। इस दंड संहिता के एक खंड में ब्लासफ़ेमी को हतोत्साहित करने के लिए प्रावधान है इस प्रकार है - 'किसी की धार्मिक भावनाओं को आहत न किया जाय।' कानून सरकार को यह अधिकार देता है कि वे ईश निंदक सामग्री या लेखन को कब्जे में ले सके या प्रतिबंधित कर सके। सरकार के अधिकारी और कर्मचारी को भी ईश निंदा को हतोत्साहित करने का अधिकार है। ब्लासफ़ेमी से सम्बन्धित कानून के उदाहरण :-

- बांग्लादेश की दंड संहिता (1850) की धारा 295-A के अनुसार, "यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर या दुर्भावनापूर्ण तरीके से किसी व्यक्ति की 'धार्मिक भावनाओं को आहत करने का इरादा' करता है, तो उसे कारावास दिया जाएगा।"
- बांग्लादेश की दंड संहिता की धारा 99 (a), (b), (c), (d), (e) और (f) के अनुसार, "सरकार किसी अखबार की प्रतियों को जब्त कर सकती है यदि वह राज्य के विरुद्ध या नागरिकों में उत्तेजना या नफरत फैलाता है या धार्मिक भावनाओं की निंदा करता है। मजिस्ट्रेट ऐसी जगहों पर पुलिस को वारंट के साथ भेज सकता है जहाँ इस प्रकार की सामग्री प्राप्त होगी। पीड़ित व्यक्ति हाईकोर्ट की नोटिस में मामले को ले जा सकता है। खंड 108 के तहत, 'मजिस्ट्रेट ऐसे व्यक्ति से स्पष्टीकरण माँग सकता है जिसने जन भावनाओं को आहत किया हो या वर्ग संघर्ष पैदा किया हो। धारा 144 के तहत मजिस्ट्रेट एक पत्रकार को अपने काम पर वापस जाने से रोक सकता है।"
- 1993 में बांग्लादेश की सबसे बड़ी इस्लामिक पार्टी-जमात ए इस्लामी के महासचिव मोती उर रहमान ने संसद में 'ब्लासफेमी बिल' प्रस्तुत किया। इस बिल के तहत पीनल कोड में दो अन्य उपबंधों 295 B और 295 C जोड़ने के लिए कहा गया। 295 B में एक नया पद जोड़ा गया 'कुरान की निंदा' को नया अपराध घोषित करने और इसके लिए अधिकतम मौत की सजा का प्रावधान करने की माँग की गयी और 295 C में 'पैगम्बर का अपमान' करने को अपराध घोषित करने और मौत की सजा दिए जाने की माँग की गयी।
- 2004 में एक निजी सदस्य ने एक विधेयक तैयार किया जिसमें यह प्रावधान था कि किसी भी शब्द, इशारे, किसी भी चित्र, फिल्म या कलाकृति या व्यवहार जो किसी भी धर्म का अपमान करता है या कुरान, सुन्नह, या हदीस का अपमान करता है के लिए दो वर्ष का कारावास होगा।

- 2008 में जमात ए इस्लामी ने यह वादा किया कि यदि वह सत्ता में आई तो वे भी पाकिस्तान की भाँति 'ब्लासफेमी क़ानून' लागू करेंगे।
- 2013 में 84 ब्लॉगर्स को सजा दिए जाने की माँग की गयी और ब्लासफेमी क़ानून बनाये जाने की माँग की गयी और इसके लिए शाहबाज़ में विशाल रैली निकली गयी। हालाँकि हसीना सरकार ने यह कहा जो क़ानून पहले से विद्यमान हैं वे ही दोषियों को पकड़ने के लिए काफी हैं और नये क़ानून बनाने से इनकार किया। चार ब्लॉगर्स को दोषी ठहराया गया और उन्हें सज़ा दी गयी।
- इस्लामिक कट्टरपंथियों के विरोध को देखते हुए सरकार से 2013 में आई.सी.टी एक्ट में संसोधन करते हुए धर्म की निंदा को अपराध घोषित किया गया। इस संसोधन के द्वारा ब्लासफेमी के मामले में अभियुक्त के विरुद्ध पुलिस को एक ही समय में जज और पुलिस दोनों का अधिकार देते हुए उनके अधिकार बढ़ा दिए गये।

स्पष्ट है कि बांग्लादेश में कोई पृथक ब्लासफेमी क़ानून नहीं है, बल्कि सामान्य आपराधिक क़ानून में धर्म की निंदा करने पर दंड का प्रावधान किया गया है। इसके लिए मौत की सजा का प्रावधान नहीं है। किन्तु क़ानून इतनी कट्टरता न होने के बावजूद तसलीमा के निर्वासन के पूर्व भी और निर्वासित होने के पश्चात् भी बांग्लादेश में ब्लासफेमी के कारण सज़ा देने की कई घटनाएँ दिखाई देती हैं। जैसे दाउद हैदर ने 1973 में मुहम्मद, ईसामसीह और बुद्ध की निंदा करते हुए एक कविता लिखी, जिसके कारण उनके विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट जारी हुआ। फलस्वरूप उन्हें अपना देश छोड़कर भारत की शरण लेनी पड़ी। इसके अतिरिक्त इनामुल हक़ (1974), अहमद शरीफ (1992) के विरुद्ध कार्यवाही, सरकार ने 1995 में हुमायूँ आज़ाद द्वारा लिखी 'नारी' पुस्तक को प्रतिबंधित कर दिया क्योंकि उसमें धार्मिक सिद्धांतों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया था। हालाँकि 2000 में उनपर लगा प्रतिबंध हटा लिया गया था, किन्तु 2004 में धार्मिक उन्मादियों ने हुमायूँ आज़ाद पर हमला कर दिया, जिसके कारण वे गंभीर रूप से घायल हो गये और उन्हें अपना देश छोड़कर जर्मनी

पलायन करना पड़ा जहाँ उनकी जल्द ही मौत हो गयी। इसी प्रकार लेखक मोनिर हुसैन सागर को 2000 में उनकी पुस्तक 'नारी तुमि मानुष छिले कोबेई' (नारी कभी तुम मनुष्य थी) के लिए मौत के घाट उतार दिया गया। अप्रैल 2013 में अपने अपने ब्लॉग पर अपमानजनक शब्दों के प्रयोग के कारण ब्लोगर्स मोशिउर रहमान बिप्लब, रसेल परवेज़, सुब्रत अधिकारी, आसिफ मोइउद्दिन को गिरफ्तार किया गया, 2014 में अशुगंगा जिले में हिन्दुओं के कई मंदिरों को यह कहकर गिरा दिया गया कि एक हिन्दू ने उनकी धार्मिक भावनाओं को आहत किया है, 2015 में ही तीन धर्मनिरपेक्ष, मानवतावादी लेखकों अविजित राय, वासिकउर रहमान, अनंत विजय दास की हत्या कर दी गयी, 17 सितम्बर 2017 को एक कार्टून पत्रिका 'आलपिन' में मुस्लिमों में पुरुष के नाम के आगे मुहम्मद लगाए जाने पर व्यंग किये जाने के कारण पत्रिका के कार्टूनिस्ट अरिफुर रहमान को कारवास दिया गया। इसके अतिरिक्त भी बहुत से नाम हैं जिन्हें फेसबुक, या ब्लॉग या पत्रिका में लिखने के कारण किसी न किसी प्रकार की सज़ा दी गयी या फिर उनकी हत्या कर दी गयी जैसे- अहमद रजीब (2013 में ब्लॉग लेखन के कारण हत्या), लतीफ़ सिद्दीकी (2014 में, न्यूयार्क में हज के विपरीत कुछ बोल देने के कारण मंत्रिपद से हटा कर जेल भेज दिया गया), युनुस अली (2012 में अपनी स्कूल लाइब्रेरी में लज्जा पुस्तक रखने के कारण गिरफ्तार किया गया), युवा ब्लॉगर काज़ी महबूबउर रहमान और उल्लास दास (2014 में को लोगों के द्वारा पीता गया और जेल भेज दिया गया), ओंग सिंग मरमा (2014 में फेसबुक पर इस्लाम विरुद्ध टिप्पणी करने के कारण गिरफ्तार किया गया) आदि।

स्पष्ट है, भले ही बांग्लादेश में ईशनिंदा के लिए मौत की सज़ा का प्रावधान नहीं है, किन्तु व्यवहार में कट्टरपंथी मानसिकता के लोगों द्वारा ही समय-समय पर लेखकों के लिए सरकार द्वारा मौत की सज़ा देने की माँग की है और कई बार तो आवाम ने ही धर्माधता में हत्या को अंजाम दिया है।

धार्मिक प्रावधान : पाकिस्तान और बांग्लादेश में एक बड़ा तबका ईशनिंदा के लिए दंड दिए जाने के विचार का समर्थन करता है। ज्यादातर लोग ये मानते हैं कि पाकिस्तान में जनरल जिया-उल-हक के शासनकाल में जो क़ानून संहिताबद्ध किया गया था, वह सीधा क़ुरान से लिया गया है और

उसे किसी व्यक्ति ने नहीं बनाया है।⁹¹ इस सम्बन्ध में यह देखा जाना आवश्यक है कि ईशनिंदा को लेकर विभिन्न धर्म ग्रन्थ क्या कहते हैं ?

'ईश-निंदा' की अवधारणा मूलतः सेमेटिक धर्मों जो पैगंबरवाद पर आधारित हैं, जैसे यहूदी, ईसाई और इस्लाम में है। भारतीय धर्मों, सनातन या हिन्दू, बौद्ध और जैन में यह प्रावधान नहीं है। बाइबिल में इसे दूसरे रूप में दिखाया गया है। ब्लासफेमी, न्यू टेस्टामेंट में 55 बार प्रयुक्त हुआ है। दोनों ही टेस्टामेंट्स में इसका भाव 'ईश्वर को शापित' करने या 'निंदात्मक टिप्पणी' करने को ले कर है। साथ ही बाइबिल में 'पवित्र आत्मा' की निंदा करने वाले को माफ़ न करने की चेतावनी दी गयी है (मैथ्यू - 12 : 31-32)।

दूसरी तरफ इस्लाम में ब्लासफेमी के लिए अरबी में जो शब्द बताये गए हैं, वे हैं- 'सब्ब', यानी अपमान, 'शत्म' यानी अपशब्द, 'तज्दीफ' यानी इनकार, 'कुफ्र' अर्थात् जिसे अल्लाह पर यकीन न हो। कुरान में ईशनिंदकों के लिए नरक की बात की गयी है। इस्लाम में ईशनिंदा के कई रूपों में 'उपहास उड़ाना' और 'उस पर संदेह करना' भी है।

कुरान ईशनिंदा की आलोचना करता है जिसके लिए विभिन्न आयतें जैसे- 2: 88⁹², 5:17⁹³, 5:68⁹⁴, 5:73⁹⁵, 9:74⁹⁶, 11:19,20⁹⁷ आदि ईशनिंदकों को अल्लाह के द्वारा सजा दिए जाने का उल्लेख करती हैं। कुरान से यह ज्ञात होता है कि अल्लाह ने समय-समय पर कई खलीफाओं को मनुष्य को निर्देशित करने के लिए भेजा है। जबकि प्रत्येक खलीफा के समय में उनके समकालीन लोगों ने कई बार उनके विरुद्ध नकारात्मक दृष्टिकोण रखा और कुछ न कुछ विपरीत बातें की हैं। कुरान में दो सौ से अधिक आयतें हैं, जिनमें इन काफिरों द्वारा खलीफाओं के विरुद्ध कुछ न कुछ कहा गया है। उदाहरण के लिए, कुरान की आयतें 7: 66⁹⁸, 36:30⁹⁹, 40:24¹⁰⁰, आदि। कुछ इस्लामिक न्यायविद हदीस के अनुसार ऐसे कृत्य के लिए मृत्यु दंड की बात करते हैं। हदीस इस्लामिक न्यायशास्त्र का एक महत्वपूर्ण श्रोत ग्रन्थ है। इनके अनुसार ईश्वर की निंदा तो क्षम्य है, क्योंकि वह क्षमा कर देगा, लेकिन पैगम्बर मुहम्मद की निंदा अक्षम्य और दंडनीय है।

इस्लामिक न्यायविद चाहे कितना भी दावा कर लें कि कुरान दंडात्मक प्रावधान नहीं करता फिर भी कुरान में कई ऐसी आयतें हैं जो धर्म या ईश्वर की आलोचना करने के कारण दंडात्मक प्रावधान करती नजर आती हैं। उदाहरण के लिए कुरान की आयत 5: 33-34¹⁰¹, 33 : 57-61¹⁰² आदि के अतिरिक्त हदीस में काब-इब्न-अल-अशराफ और अबू रफ़ी को मुहम्मद साहब की निंदा के कारण दंड देने की बात की गयी है। इसके अतिरिक्त ईशनिंदा को लेकर विभिन्न इस्लामिक वर्गों में अलग-अलग मत है -

हनफी : इस समुदाय में यह मान्यता है कि यदि कोई व्यक्ति गैर मुस्लिम है और अल्लाह या खलीफ़ाओं की निंदा करता है तो उसे मृत्युदंड दिया जाना चाहिए और यदि वह मुसलमान है या कोई स्त्री है तो उसे कारावास में तब तक पीटा जाना चाहिए जब तक वह इस्लाम के प्रति पुनः अपनी श्रद्धा न स्पष्ट कर दे।

मालिकी : इस समुदाय में पुरुषों द्वारा की गयी ईशनिंदा के लिए मृत्युदंड को स्वीकार किया गया है और यदि कोई स्त्री ईशनिंदा करती है तो उसको कारावास दिए जाने का नियम है। और तब तक शारीरिक दंड देने की मान्यता है जब तक वह इस्लाम के प्रति पुनः अपनी श्रद्धा व्यक्त न कर दे।

हनबली : इसमें स्त्री और पुरुष दोनों के द्वारा की गयी ईशनिंदा के लिए मृत्युदंड को अनिवार्य माना गया है और वे किसी प्रकार का कोई प्रायश्चित्त स्वीकार नहीं करते।

जाफरी (शिया) : शिया सामान्य तौर पर इस्लाम, पैगम्बर या इमाम की निंदा के लिए मृत्युदंड को स्वीकार करते हैं जबकि ईशनिंदक मुसलमान हो। यदि वह गैर-मुस्लिम है तो उसे या तो सुधरने का अवसर दिया जाएगा या मृत्युदंड।¹⁰³

स्पष्ट है कि इस्लाम और ईसाई धर्म ईशनिंदक को दंड दिए जाने के प्रावधान के सम्बन्ध में एकदम से स्पष्ट नहीं है। कई बार ईशनिंदकों की सजा का दायित्व ईश्वर पर तो कई बार उन्हें माफ़ करने और कई बार कठोर सजा यहाँ तक कि जान से मार देने का भी प्रावधान दिखाई देता है।

हालाँकि इसके मूल में शांति स्थापित करने की भावना हो सकती है किन्तु यह काफिरों के सन्दर्भ में भ्रामक स्थिति तो पैदा ही करता है। तसलीमा इसी भ्रामक स्थिति की शिकार हुई हैं।

(ii) तसलीमा और ब्लासफेमी : निर्वासन के षड्यंत्र का आधार

तसलीमा ने जब भी धर्म के विरुद्ध कुछ भी लिखा या उसकी आलोचना की तो उसकी पृष्ठभूमि में स्त्री की स्थिति का मूल्यांकन करना रहा है। तसलीमा के इसी मूल्यांकन को धार्मिक कट्टरपंथियों ने अपने धर्म पर खतरा महसूस करते हुए तसलीमा की दृष्टि को 'ब्लासफेमी' का रूप दे दिया। इस ब्लासफेमी के आरोप में सरकार भी उनके साथ हो गयी। तसलीमा धर्म से उपजी समस्याओं से गर्त में जाते अपने देश को देख चिंतित होती हैं इसलिए लोगों को धर्म के विरुद्ध चेताती हैं। अन्धकार युग या मध्ययुग की विभीषिका से परिचित कराती हैं और यह संभावना जताती हैं कि बांग्लादेश भी जल्द ही ऐसी विभीषिका से जूड़ेगा, "मुझे आशंका होती है कि यह देश भी धीरे-धीरे अँधेरे अतल गर्त में समाता जा रहा है। मुझे यह आशंका होती है कि धर्म नामक कालव्याधि के कीटाणु छितरा गये हैं, देश की जनता इनसे भयंकर रूप में आक्रांत होने वाली है।"¹⁰⁴ धर्म को लेकर की गयी उनकी टिप्पणियों, आलोचनाओं और चेतावनियों को नाम दिया गया 'ब्लासफेमी'।

इस तथाकथित ब्लासफेमी के कारण उनपर तरह-तरह की ज्यादातियाँ की गयीं। उदाहरण के लिए उन्हें कमजोर करने के लिए सरकारी चिकित्सक के रूप में उनका स्थानान्तरण दूर-दराज के इलाके में कर दिया गया। ढाका में तैनाती के लिए तसलीमा ने शेख हसीना तक से सिफारिश की। किन्तु शेख हसीना ने तसलीमा के सम्बन्ध में कोई सहायता करने से इनकार करते हुए कहा, "उसका लेखन तो मुझे भी पसंद नहीं है। लेखक निर्मलेंदु गुन ने जब इसका कारण पूछा, 'क्यों ? पसंद नहीं है ?' तब शेख हसीना ने कहा, 'धर्म के बारे में कुछ जाने बिना ही वह लिखती है। इस्लाम में औरत-मर्द के समान अधिकार हैं। इस्लाम में औरत का सम्मान सबसे ज्यादा किया गया है- इन सबसे

इनकार करती है।¹⁰⁵ अर्थात् उनका स्थानान्तरण दूरस्थ स्थल पर केवल इसलिए किया गया क्योंकि वे धर्म के विरुद्ध लिखती थीं और वह शेख हसीना को अतार्किक जान पड़ा।

औरत का हिस्सा हमेशा कम होगा। वह आधे की हकदार नहीं है। तसलीमा ने कुरान के इस असमानतापूर्ण प्रावधान पर प्रश्न खड़ा किया। इस प्रश्न ने धार्मिक लंबरदारों के बीच खलबली पैदा कर दी। इसे अल्लाह के निर्णय में दखलंदाजी के रूप में देखा गया। इन प्रश्नों को उठाने का उद्देश्य यह दिखाना था कि इस्लाम में जो स्त्री को विशेष अधिकार देने की बात की जाती है वह कहीं भी नहीं है बल्कि हर तरफ असमानता और पक्षपात दिखाई देता है। इस पक्षपात से सामान्य जन को परिचित कराना ही तसलीमा का उद्देश्य रहा है।

वे इस्लाम के प्रवर्तक मुहम्मद साहेब के व्यक्तित्व पर भी प्रश्नचिन्ह लगाती हैं जिन्होंने कई शादियाँ की और उसके पीछे हर बार अल्लाह की इच्छा बताकर अपना बचाव किया। उनका मानना है आम जनता तो बड़े-बड़े लोगों के भाषण और जुलूसों को देख और सुनकर ही उनके पीछे हो लेती है। उसमें तर्क करने की क्षमता कहाँ है? इसे वे एक घटना के माध्यम से स्पष्ट भी करती हैं। जब वे एक रिक्शे पर सवार होकर अपने ही विरोधी जुलूस के बीच से गुजर रहीं थीं तो उन्होंने रिक्शेवाले से जो प्रश्न पूछे उसपर उसकी प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार थी -

"तसलीमा का जुलूस था।"

'तसलीमा का जुलूस मतलब?'

'लोग तसलीमा की फाँसी चाहते हैं।'

'क्यों? फाँसी क्यों चाहते हैं? तसलीमा ने क्या किया है?'

तसलीमा ने मस्जिद तोड़ा है।'

'कौन सी मस्जिद? आप जानते हैं?'

'बाबरी मस्जिद!'

'एक औरत ने मस्जिद कैसे तोड़ डाला ?'

'कैसे तोड़ा यह मुझे नहीं पता.'

'आपने यह सब कहाँ से सुना?'

'हम सब सुनते हैं। दिलावर हुसैन सीडी का कैसेट तो रास्ते-घाट पर भी बजता रहता है।'

'आप भी तसलीमा की मौत चाहते हैं?'

'हाँ ! चाहूँगा क्यों नहीं ? जब सभी लोग चाहते हैं, तो हम भी चाहता हूँ ?'"¹⁰⁶

स्पष्ट है आम जनता बिना किसी सच्चाई को जाने धर्म के नाम भर से तसलीमा के विरुद्ध खड़ी हो गयी थी।

इसके अतिरिक्त उन पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने भारत के संघ परिवार के हाथ में 'लज्जा' के रूप में एक हथियार थमा दिया है। यह बांग्लादेश की सरकार के साथ विश्वासघात है। वही तसलीमा जिन्हे बचपन में देशगान बजने पर रोंगटे खड़े हो जाते थे, या जो अपने राष्ट्र को तिल-तिल कर मरते हुए देखना नहीं चाहती थीं इसलिए समस्त अराजकताओं के विरुद्ध कलम उठाई थी, उन्हें ही 'राष्ट्रद्रोही' करार दिया गया। तसलीमा ने लज्जा में लिखा, "उस दिन एक आदमी ने कहा, भारत में अब तक चार हजार दंगे फसाद हुए हैं। फिर भी भारत के मुसलमान देश नहीं छोड़ रहे। लेकिन यहाँ के हिन्दुओं का एक पैर बांग्लादेश में रहता है तो दूसरा भारत में। यानी भारत के मुसलमान लोग जूझ रहे हैं और यहाँ के हिन्दू भाग रहे हैं।"¹⁰⁷ सम्भवतः इसी प्रकार के कई सत्यों को उजागर करने के कारण उन्हें 'राष्ट्रद्रोही' कहा गया।

जिस तरह डॉक्टर से इलाज करवाने के लिए गुप्त अंगों को भी सामने उघाड़ कर दिखाना होता है वैसे ही यदि देश को रोगमुक्त करना है तो उसकी गंदगियों, वहाँ हो रहे गलत कार्यों आदि को सामने लाना ही होगा ऐसा दायित्व समझते हुए तसलीमा ने लेखन किया। वे देश के मुसलमानों के प्रति भी सहानुभूति रखती हैं तभी तो लज्जा में लिखती हैं, "यदि तुम अमीर हो तो तुम हिन्दू हो या मुसलमान, यह फैक्टर नहीं है। पूँजीवादी समाज व्यवस्था का तो यही नियम है। जाकर देखो, दरिद्र

मुसलमानों की हालत भी ऐसी ही है। धनी व्यक्ति चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, दरिद्र का शोषण कर रहा है।¹⁰⁸ जो लोग उन्हें 'भारत का एजेंट' कहते हैं वे उन सन्दर्भों को सामने रखने से बचते हैं जहाँ तसलीमा ने भारत के हिन्दू कट्टरपंथ व कट्टरपंथी पार्टी की आलोचना की है। उदाहरण के लिए लज्जा में सुरंजन कहता है, "मैं सचमुच का इंसान हूँ, उनको आपत्ति तो इसी बात पर है। उग्र-कट्टरपंथी हिन्दू और मुसलमान में कोई विरोध नहीं है। यहाँ के जमात नेता के साथ भारत की भारतीय जनता पार्टी की दोस्ती नहीं देख रहे हो?"¹⁰⁹ स्पष्ट है, तसलीमा पर 'भारत का एजेंट' और 'राष्ट्रद्रोही' होने जैसा आरोप हवा में मारे गये तीर से अधिक कुछ नहीं था किन्तु अफ़सोस कि यह तीर सध गया।

तसलीमा की पुस्तक 'निर्वाचित कलाम' में लिखे गये कलामों के जवाब में, बांग्लादेश 'सृजनशील लेखक परिषद' के सहयोगी सम्पादक मो. मुक़द्दस हुसैन ने 'उचित जवाब' नाम से एक पुस्तक लिखी। इसमें उन्होंने तसलीमा की किताब को हूबहू छापकर उसके हर पृष्ठ पर तसलीमा की बातों का जवाब दिया। इस किताब को लेकर तसलीमा ने कोर्ट में 'स्वत्वाधिकार' के सम्बन्ध में याचिका दायर की। तसलीमा की इस याचिका को यह कहकर खारिज कर दिया गया कि बांग्लादेश की दंडविधि की 292 धारा¹¹⁰ के तहत इस किस्म की पुस्तक का लेखन, प्रकाशन और वितरण दंडनीय अपराध है। अतः पुस्तक के लिए किसी भी प्रकार के स्वत्वाधिकार का दावा नहीं किया जा सकता। पूरे बांग्लादेश में स्वत्वाधिकार को लेकर दायर किया गया यह पहला केस था। इससे स्पष्ट है कि बांग्लादेश में लेखन को जब्त करने या प्रतिबंधित करने में सरकार तेजी से निर्णय लेती थी किन्तु उसके अधिकार के सम्बन्ध में उदासीनता थी। लेखक से ही यह अपेक्षा की गयी कि वह सीमित होकर लिखे।

तसलीमा नसरीन पर बांग्लादेश के दो इस्लाम विशेषज्ञों ने 'तसलीमा नसरीन की इस्लाम दुश्मनी और अपव्याख्या' नाम से किताब लिखी, जिसके अंतिम पन्नों पर यह बयान किया गया था कि मुसलमान होते हुए भी इस्लाम की निंदा करने पर कौन-कौन सी सजाएँ मिलती हैं। इस सम्बन्ध में तसलीमा के बड़े मामा (pg 421, द्विखंडित) ने भी इस्लामिक कट्टरवादी कहे जाने वाले नेताओं की

आलोचना करते हुए एक लेख में लिखा कि तथाकथित इस्लामिक नेता दिखावे के लिए सफ़ेद कुर्ता और पैजामा तो पहन लेते हैं, किन्तु दाढ़ी मूँछ जो बुखारी हदीस और मुस्लिम हदीस में मुड़ाना हराम है, ऐसा करने से क्या वे धर्म की अवहेलना नहीं करते ?¹¹¹ तसलीमा की आलोचना में लिखी गयी पुस्तक के जवाब में उनके बड़े मामा ने कई तर्क पेश किये, जिसे तसलीमा ने द्विखंडित में सम्मिलित किया है। उनके आलोचनात्मक लेख से यह साबित होता है कि धार्मिक मुल्लाओं ने जबरन तसलीमा को धार्मिक रूप से अल्पज्ञानी बताने का प्रयास किया है। वस्तुतः ये विधर्मी स्वयं धर्म की असलियत को नहीं जानते और अपने को इस्लाम के रक्षक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसके लिए कई उदाहरण प्रस्तुत किये जैसे - कट्टरपंथियों ने यह आरोप लगाया कि तसलीमा ने जिस 'नमाज' शब्द का प्रयोग अपने लेखों में किया है, वह तो कुरान में है ही नहीं इसकी जगह 'सलात' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके आधार पर उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया कि तसलीमा धर्म के मामले में अल्पज्ञ हैं। जबकि कुरान में 'नमाज' के अर्थ में ही 'सलात' शब्द का भी प्रयोग किया गया है (सूरा-सूरत-बनी-इसरा-ईल, आयत-78 -"अकिमिस्सिलात लिदुलूकिश-शमसि इला गस्किल्लैलि व कुरआनल्-फज़रि -इन्न कुरआनल्-फज़रि कान मशहूदन अर्थात् रात के एक हिस्से में जागकर (सत्संग) करो (और नमाज़ तहज्जुद पढो) और तुम्हारे लिए यह फ़र्ज़ से ज़ियादः बात (नफ़ल) है।¹¹² उन्होंने लिखा कि आज तक किसी ने भी इस शब्द (नमाज) पर ऐतराज नहीं किया बल्कि अरब और मक्का के बड़े-बड़े विद्वान भी इसी शब्द का इस्तेमाल करते आ रहे थे। टेलीविजन, रेडियो आदि में इन शब्दों का प्रयोग किया गया। अचानक तसलीमा को लेकर इस तरह से बवाल मचाना उनके प्रति उचित सोच न होने का परिचायक था। इसी तरह 'साउम' शब्द का प्रयोग न करके व्यवहार में 'रोजा' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है जबकि यह भी कुरान के खिलाफ था। फिर भी किसी ने प्रश्न नहीं खड़ा किया। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि व्यवहार में 'मुसलमान' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका कोई अर्थ नहीं है। मूल शब्द 'मुस्लिम' है जिसका अर्थ है 'आत्मसमर्पित' या 'अनुगत'। किताब में एम. एन राय, ए. जी. आर. बेरी, आर. ओ. निकोलस, डॉ. मौरिस बुकाइली की तारीफ़ की गयी और तसलीमा को

उनकी किताब पढ़ने की सलाह दी गयी, क्योंकि उन्होंने इस्लाम धर्म की तारीफ की थी। लेकिन असलियत यह है कि भले ही उन्होंने इस्लाम की तारीफ की, लेकिन उन लोगों ने इस्लाम ग्रहण नहीं किया। इससे यह जाहिर है कि कथनी और करनी में समानता न होने के कारण उन लोगों ने स्वयं भयंकर मुनाफिक किया था। इसके साथ ही लेखों के दौरान जिस हदीस का तसलीमा ने प्रयोग किया उसका हवाला या सन्दर्भ भी नहीं दिया, ऐसा आरोप लगाया गया। लेकिन हदीस के सूत्रों का हवाला न देना यह कोई अकादमिक बेईमानी नहीं थी क्योंकि लेख में किसी तरह के सन्दर्भ देने की आवश्यकता नहीं होती। यह कार्य तो शोध आलेख में किया जाता है। और साथ ही तमाम टीवी, रेडियो आदि जो धर्म सम्बन्धी बातें की जाती हैं, उनके संदर्भों का तो कहीं कोई उल्लेख नहीं करता और न ही कोई उनपर सवाल उठाता है।

स्पष्ट है तसलीमा पर होने वाली धर्म प्रेरित राजनीति का कहीं भी कोई अंत नहीं था। आगे उनके पासपोर्ट को उनके लेखन की वजह से जब्त कर लिया गया। स्वास्थ्य मंत्रालय, गृह मंत्रालय सभी उनके विरुद्ध साजिश में शामिल हो गये। इसके लिए इकहत्तर के युद्ध में पाकिस्तान का साथ देने वाले मौलाना अन्नान के अखबार 'इन्कलाब' का सहारा लिया गया। इन्कलाब ने तसलीमा को नकली पासपोर्ट बनाने का आरोपी बताया, इस्लाम विरुद्ध अनाप-शनाप लिखने का आरोप लगाया, सरकार के विरुद्ध लिखने का दोषी मानकर उनके लिए फाँसी की सजा की माँग की और आश्चर्य की बात यह कि सरकार भी उसका अक्षरशः पालन करने पर उतर आई। तत्कालीन गृह मंत्री अब्दुल मतीन चौधरी एक रजाकार रह चुके थे। इन्होंने भी मुक्तियुद्ध के समय पाकिस्तानी फ़ौज की तरफ से पहरा देने का काम किया था। उन्होंने तसलीमा को बेहद फूहड़ लिखने वाली लेखिका कहा और उनकी किताबों को प्रतिबंधित करने की धमकी भी दी। जिसकी शुरुआत उन्होंने लज्जा को प्रतिबंधित करने के साथ की। स्पष्ट है कि तसलीमा के विरुद्ध वे ही लोग गुटबंदी कर रहे थे जो या तो पाकिस्तान समर्थक रहे हैं या धर्म को सबसे बड़ा राजनीतिक हथियार मानते हुए उसके पक्ष में खड़े थे।

तसलीमा को इन सब राजनीतिक प्रपंचों के चलते अपनी सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा देना पड़ा। उन्होंने सोचा था जिस तरह से सरकार के अधीन काम करते हुए उन्हें अपने हर कार्य के लिए सरकार से अनुमति लेने के लिए दबाव डाला जा रहा है, वह इस्तीफ़ा देने के बाद बंद हो जाएगा। किन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। न ही उनका पासपोर्ट वापस दिया गया, न उनका इस्तीफ़ा मंजूर किया गया। इसके विपरीत उनका पद रिक्त घोषित करते हुए किसी और की नियुक्ति कर दी गयी और यहाँ तक कि उनकी कई महीनों की तनख्वाह भी नहीं दी गयी और गृह मंत्रालय की ओर से उनकी एक-एक किताब पढ़कर उसकी जाँच करने का आदेश दिया गया। उनपर निगरानी रखने के लिए स्पेशल फ़ोर्स को तो पहले से ही रख दिया गया था अब स्पेशल फ़ोर्स के लोग इनके घर तलाशी के लिए भी आने लगे थे। वह जो कुछ भी लिखती या जो कुछ भी कहतीं उसके ऊपर तुरंत एक जाँच कमिटी बना दी जाती और फिर वही इन्वेस्टिगेशन का सिलसिला, प्रश्नों की झड़ी - आपने ऐसा क्यों कहा? क्यों लिखा? आदि। वे लिखती हैं, "मैंने कहाँ, क्या कहा, अब इसकी भी जाँच की जाएगी? असल में ये लोग मेरे आस-पास कोई हद बाँधना चाहते हैं कि मैं क्या कहूँ, क्या लिखूँ!"¹¹³

दरअसल सरकार का मुख्य उद्देश्य तसलीमा को पूरी तरह से धर्म और सरकार विरुद्ध न लिखने के लिए मजबूर करना था या उन पर कुछ ऐसे आरोप सिद्ध करना था, जिससे उन्हें रोका जा सके। किन्तु तसलीमा ने भी किसी मजबूरी को अपने आड़े नहीं आने दिया। फिर भी इस घेराबंदी और कलम पर तलवार चलाने के सम्बन्ध में वे लिखती हैं, "देश की स्वाधीनता का दुश्मन, हमारा दंड-मुंड विधानकर्ता बन बैठा है। आज उसके भारी नितंबों तले, लेखकों की लिखने की स्वाधीनता, अपनी राय ज़ाहिर करने का हक़ दब-पिसकर रह गया है।"¹¹⁴ इस लामबंदी के भय के कारण ही उनकी माँ तसलीमा पर बार-बार धर्म और सरकार विरोधी बातें न लिखने के लिए दबाव डालती रहीं। किन्तु तसलीमा ने एक ही चीज़ को चुना था, और वह है, उनका लेखन। वे लिखती हैं, "मुझे सच का बयान करना ही अच्छा लगता है। उस वक़्त मैं यह नहीं सोचती कि कौन लोग इस सच को अपने

स्वार्थ में इस्तेमाल करेंगे, कौन लोग इसका अनुवाद करेंगे और कौन लोग, दूसरों द्वारा इस्तेमाल करने का फायदा उठाएँगे, फूहड़ अफवाहें फैलायेंगे।"¹¹⁵ 'माफ़ी, मैं कभी, किसी दिन भी नहीं मागूँगी।'¹¹⁶

फलतः सरकार के साथ-साथ धार्मिक कट्टरपंथी भी सड़क पर उतर आये। धार्मिक कट्टरवादियों ने आन्दोलन छेड़ दिया, जो भीतर ही भीतर राजनीतिक प्रश्रय प्राप्त कर रहे थे। मस्जिदों में हर शुक्रवार तसलीमा के विरुद्ध खुतबा पढ़ा जाता, उनके नाम पर गाली-गलौज की जाती, उनके विरोध में पोस्टर और लीफलेट पूरे शहर में बाँटे जाते और हद तो तब हो गयी जब सिलहट की 'सहाबा सैनिक परिषद्' के सभापति मौलाना हबीबुर रहमान ने उनके विरुद्ध फतवा जारी करते हुए, सिर की कीमत पचास हजार रूपए घोषित कर दी और उनकी फाँसी की माँग करते हुए हड़ताल की। पैसों के लिए कोई भी तसलीमा का सिर आसानी से क्लम कर सकता था, इसी भय से तसलीमा का बाहर निकलना लगभग बंद हो गया। एक खौफ़ भरा माहौल तैयार हो गया। तसलीमा को अपनी सुरक्षा के लिए पुलिस सुरक्षा की माँग करनी पड़ी। किन्तु यह सुरक्षा उन्हें काफी दिनों बाद प्राप्त हुई (14 अक्टूबर, 1993) और वह भी एमनेस्टी इंटरनेशनल और अन्य मानवाधिकार संस्थाओं के दबाव बनाने के बाद।

इस बीच उन्हें फ़्रांस की आर्ते टेलीविजन की ओर से फ़्रांस जाने का मौका मिला। वहाँ उन्होंने देखा कि फ़्रांसीसी लोगों को यह लगता है कि 'लज्जा' की वजह से बांग्लादेश के कट्टरपंथी उनके विरुद्ध हैं। किन्तु सत्य तो यह था कि उनकी पुस्तक 'निर्वाचित कलाम' में सम्मिलित लेखों के कारण यह उन्माद फैला था। फ़्रांस में विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेने के बाद तसलीमा भारत होते हुई बांग्लादेश लौट आयीं। किन्तु भारत में 'द स्टेट्समैन' को दिया एक साक्षात्कार जो कि 9 मई 1994 को प्रकाशित हुआ उनके विरुद्ध एक हथियार बन जाएगा यह उन्हें भी नहीं पता था। दरअसल इस इंटरव्यू में यह लिख दिया गया था कि तसलीमा कुरान में संशोधन करना चाहती हैं, जबकि तसलीमा ने शरीयत को खत्म करने की बात कही थी।

यह खबर जब बांग्लादेश पहुँची तो वहाँ बवाल मच गया। इस बीच मोतीझील थाने के एक अफसर ने उनके विरुद्ध इस्लाम की निंदा करने के कारण मुकदमा कर दिया, जिसके कारण 4 जून 1994 को उनके विरुद्ध गैर जमानती वारंट जारी किया गया। ऐसे में तसलीमा को अपना जीवन बचाने के लिए भूमिगत होना पड़ा। ये भूमिगत होने के दो महीने तसलीमा के जीवन के सबसे खौफनाक दिन थे, जिसे तसलीमा ने 'अँधेरे दिन' नाम दिया। कट्टरपंथियों और सरकार के भय के कारण उन्हें कोई भी अपने साथ रखने को राजी नहीं था और जिन्होंने उन्हें शरण देना मंजूर किया भी उनके यहाँ वे कई दिन तक नहीं रह सकीं। इसी कारण भूमिगत होने के दौरान तसलीमा ने कई घर बदले।

तसलीमा के फतवे के विरुद्ध और पक्ष में काफी कुछ लिखा जा रहा था। कट्टरवादी नेता, पत्रकार, सब एकजुट होकर तसलीमा विरोध में जन सभाएँ कर रहे थे। मस्जिदों और मदरसों में लोगों और युवाओं को तसलीमा के विरोध के लिए 'ब्लैक आउट' किया जा रहा था। मस्जिद में तरह-तरह की सभाओं के लिए लीफलेट बाँटे जा रहे थे, जिसमें तसलीमा के लिए कुछ इस तरह के शब्दों का प्रयोग किया गया- "पवित्र कुरान, दीन इस्लाम और महानबी (सा.) के खिलाफ घृणित कटाक्ष करनेवाली, देश की अटूट प्रीति और स्वाधीनता के खिलाफ गंभीर साजिश में लिप्त, कुख्यात-मक्कार, खुदाद्रोही, रसूल की दुश्मन, शैतान रुशदी की जोड़ीदार, भारत की उग्र साम्प्रदायिक पार्टी, बीजेपी की बिसात का मोहरा, नारी जाति की कुलंगार..."¹¹⁷। इस सम्बन्ध में तसलीमा लिखती हैं कि "ढाल प्रस्तुत है। तलवार भी प्रस्तुत है। तमाम दीवारों पर पोस्टर चिपकाये गये हैं, मानों तसलीमा को अभी सजा नहीं दी गयी, तो इस्लाम का सर्वनाश हो जाएगा, देश जलकर खाक हो जाएगा।"¹¹⁸

ऐसे में तसलीमा के बचने का उपाय यह सुझाया गया कि यदि ढाका में तसलीमा को लोगों का समर्थन मिल जाय तो इस मुकदमे को कमजोर किया जा सकता है किन्तु धार्मिक उन्मादियों के भय के कारण यह सम्भव नहीं हो सका। इस बीच फ्रांस में तसलीमा की लज्जा 'पुस्तक' के अनुवाद का दायित्व लेने वाले क्रिश्चन बेस ने एक खत तसलीमा को लिखा कि उन्होंने पुस्तक की रायल्टी

उनके खाते में भेज दी है। किन्तु तसलीमा को यह धनराशि नहीं प्राप्त हुई लेकिन यह खत उनके विरोधियों तक पहुँच गया और उन्होंने यह प्रचार कर दिया कि तसलीमा को इस्लाम के विरुद्ध लिखने के लिए पश्चिमी देशों से धन मिल रहा है। इतना ही नहीं यह आरोप भी लगाया गया कि 'लज्जा' लिखने के लिए भारत की बी.जे.पी से उन्हें पैतालीस लाख रुपये मिले हैं। इस तरह के आरोपों के साथ 30 जून 1994 को ढाका में एक तसलीमा के विरुद्ध एक विशाल जनसभा की गयी। दूसरी तरफ विदेश से लागातार तसलीमा के समर्थन में दबाव बनाया जाता रहा। विदेश से तसलीमा के मुद्दे को कवर करने के लिए आने वालों पर प्रतिबंध लगा दिया गया, जिससे कट्टरपंथियों का हौसला बुलंद होता गया और परिणाम यह हुआ कि 'मुस्लिम सोसाइटी' के द्वारा 30 जुलाई 1994 को एक लॉन्ग मार्च यह कहते हुए कहा गया कि यदि इस दिन तक तसलीमा की गिरफ्तारी न हुई तो ढाका के घर-घर की तलाशी ली जायेगी। इस मुहीम में 'खिलाफत मजलिस' और 'इस्लामी जिहाद संगठन' (जिसने तसलीमा की हत्या के लिए स्क्वायड गठित किया था) भी सम्मिलित हो गये।

ऐसे माहौल में तसलीमा के लिए यह आवश्यक हो गया कि उन्हें किसी भी तरह से कोर्ट से जमानत मिले। उन्हें कोर्ट से जमानत इस अलिखित शर्त पर मिली की जमानत मिलने के बाद वे देश छोड़कर चली जायेगी क्योंकि उनके रहने से देश में शांति और अव्यवस्था होगी। तसलीमा इस शर्त को मानने के लिए तैयार नहीं हुईं क्योंकि वे अपना देश छोड़कर नहीं जाना चाहती थीं। किन्तु वकील सारा हुसैन, डॉ. कमाल हुसैन और अमीरुल इस्लाम के दबाव और सलाह के बाद वे अपनी जान बचाने के उद्देश्य से और यह सोचकर कि कुछ दिनों में माहौल शांत हो जाएगा तो वे देश वापस आ जाएँगी, देश छोड़कर जाने को तैयार हो गयीं। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय भी नहीं था। अन्यथा कुछ ही दिन में उनकी गिरफ्तारी हो जाती और उन्हें जेल में बंद कर दिया जाता और बहुत सम्भव था कि जेल में ही उनकी हत्या कर दी जाती या उन्हें इतनी यातना दी जाती कि उनकी मृत्यु हो जाती। न चाहते हुए भी उन्हें रातों-रात उन्हें अपना देश छोड़ देना पड़ा।

(iii) विदेशी धरती पर निर्वासित लेखिका :

यूरोप में तसलीमा : निर्वासन के बाद तसलीमा को स्वीडन जाना पड़ा। यहाँ तसलीमा का जीवन जैसे एक कैद से छूटकर दूसरी कैद में पहुँच गया। उनके लिए आलीशान व्यवस्था तो की गयी, उन्हें बहुत से सम्मान भी दिए गये किन्तु इन सभी ने तसलीमा को जैसे बाँध दिया था। स्वीडेन की 'पेन' संस्था ही यह निर्धारित करती कि वह कहाँ जाएँगी, किससे मिलेगी, कौन से कार्यक्रम में भाग लेगी आदि। ऐसे दमघोटू परिवेश में तसलीमा का रहना असम्भव हो रहा था। इस दौरान उन्होंने नार्वे, स्टॉकहोम, एम्सटर्डम, फिनलैंड, स्विट्जरलैंड, स्काटलैंड, हालैंड, आयरलैण्ड, जर्मनी, इटली, अमेरिका जैसे देशों में विभिन्न कार्यक्रमों में प्रतिभाग किया और दुनिया के तमाम देशों की संस्कृति से परिचित हुई। इस भ्रमण और अवलोकन का जिक्र उन्होंने आत्मकथा के पाँचवें खंड 'मुझे घर ले चलो' में किया है, जिससे यात्रावृत्तांत जैसा अनुभव होता है।

इस विदेशी धरती पर एक तरफ सम्मान और सुरक्षा थी तो दूसरी तरफ उन्हें कड़वे अनुभवों से भी गुजरना पड़ा - जैसे - सुरक्षा के कारण उन्होंने अपनी स्वतंत्रता खो दी थी, ये देश तसलीमा के नाम पर अपने मानववादी होने का ठप्पा लगाना चाहते थे यही कारण है कि तसलीमा को लेकर नार्वे और स्वीडन में होड़ मची थी और वे दोनों ही तसलीमा को बांग्लादेश से अपने देश लाने के लिए बांग्लादेशी सरकार पर दबाव डालते रहे, उनकी पुस्तकों के अनुवाद को लेकर होड़ मची रही, स्वीडेन पेन के गैबी ग्लाइसगेन ने तसलीमा को अपने फायदे के लिए इस्तेमाल किया, फ्रांस के 'एडिशन द फाम' प्रकाशक संस्था ने उनके निर्वाचित कलाम का फ्रेंच अनुवाद करते हुए धर्म सम्बन्धी बातों को छांट दिया, फ्रेंच लेखक ज-दार्न आलिए ने आरोप लगाया कि लज्जा किसी और की पुस्तक है और बांग्लादेश में स्त्रियों के सम्बन्ध में जो कुछ भी तसलीमा ने लिखा वह झूठ है। इसका अफ्रीकी लेखक ताहिर बेन नूर ने भी इसका समर्थन किया, बांग्लादेश के दाउद नामक व्यक्ति से विवाह की अफवाह (जिसने पैगम्बर की आलोचना करते हुए कविता लिखी थी और इसके कारण उसे देश से निष्कासित कर दिया गया था) फैलाई गयी, उनपर यह दबाव डाला गया कि वे एक व्यावसायिक लेखक की तरह

व्यवहार करें, लोगों का अभिवादन करें, प्रकाशक तसलीमा को धन के एक माध्यम के रूप में देखते रहे और उनका दोहन करते रहे आदि। कुल मिलाकर तसलीमा को पश्चिम के अनुरूप ढालने का भरसक प्रयास किया गया। किन्तु तसलीमा स्वयं को इस माहौल के लिए 'मिसफिट' महसूस करती रहीं और वहाँ से निकल आने का प्रयास करती रहीं जो आज भी जारी है।

भारत में तसलीमा : 1999 में तसलीमा को भारत का अस्थायी वीजा मिला, जिसके अनुसार वे कुछ दिनों तक ही भारत में रह सकती थीं। यहाँ आकर तसलीमा ने कलकत्ता में रहना शुरू किया। किन्तु यहाँ भी तसलीमा विरोधी माहौल तैयार हो चुका था। 'आनंद पब्लिशर्स' ने तसलीमा की आत्मकथा का प्रथम भाग प्रकाशित करने से इनकार कर दिया, इस भाग को बांग्लादेश में शेख हसीना ने अश्लील कहकर प्रतिबंधित कर दिया, मुंबई में तसलीमा के 'शोध' उपन्यास के मराठी संस्करण के अनुवाद के अवसर पर आमंत्रण का कट्टरपंथियों द्वारा विरोध किया गया, 'मेरे बचपन के दिन' के लिए दूसरा आनंद पुरस्कार लेने के लिए भारत आने के लिए वीजा कई शर्तों के साथ दिया गया जैसे- कलकत्ता के अतिरिक्त कहीं नहीं जाना होगा, पाँच दिन से ज्यादा भारत में नहीं ठहरना होगा, साहित्य के अलावा किसी विषय पर बात नहीं करेंगी और कोई साक्षात्कार नहीं देना आदि, इसके अतिरिक्त आत्मकथा का तीसरा खंड 'द्विखंडित' भी बांग्लादेश के साथ-साथ पश्चिम बंगाल में भी प्रतिबंधित कर दिया गया और इस प्रतिबंध के लिए लेखकों ने ही सरकार को सलाह दी, कई लेखकों का नाम लेने के कारण कलकत्ता में उनपर मानहानि का केस दर्ज किया गया, कलकत्ता में तसलीमा की उपस्थिति ज्यादा दिन बर्दाश्त नहीं की जा सकी जबकि वहाँ उस समय बुद्धदेव भट्टाचार्य की नेतृत्व वाली वामपंथी सरकार थी, शोध उपन्यास के तेलगू संस्करण के लोकार्पण के कार्यक्रम के दौरान हैदराबाद में तसलीमा पर हमला किया गया, जिसमें स्थानीय विधायक सम्मिलित थे, पश्चिम बंगाल में तसलीमा पर फतवा जारी किया गया, इसी समय नंदीग्राम और सिंगुर में किसानों के विद्रोह और रिजवान प्रेम-प्रसंग के कारण अस्थिर स्थितियों का हवाला देते हुए पश्चिम बंगाल सरकार ने उनको कलकत्ता से चले जाने के लिए दबाव बनाना शुरू किया। उन्हें तीन महीने तक नज़रबंद रखा

गया। बढ़ते दबाव की वजह से उन्हें जयपुर ले जाया गया, जहाँ राजस्थान सरकार ने उन्हें अपने राज्य में रहने की अनुमति प्रदान नहीं की, इसके बाद उन्हें दिल्ली में चार महीने अज्ञातवास में रखा गया, जिसे तसलीमा ने 'मौत की कोठरी' कहा क्योंकि इस दौरान उन्हें किसी से भी मिलने की अनुमति नहीं दी गयी, उन लोगों को धमकाया गया जिन्होंने तसलीमा से सम्पर्क करने का प्रयास किया, सरकार की मंशा यह थी कि तसलीमा को अकेलपन में रखकर उन्हें विदेश जाने के लिए बाध्य किया जा सकेगा। इस दौरान स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या आने पर सरकार ने उनके इलाज में कोताही की एवं उन्हें अस्पताल में भर्ती करने की अनुमति नहीं दी, जिससे उनका स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता गया और अंत में हार कर तसलीमा ने भारत छोड़ने का फैसला किया, भारत के पूर्व राजदूत मदनजीत ने तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को तसलीमा को सुरक्षा और संरक्षण देने के सम्बन्ध में खत लिखा था और किन्तु उन्होंने लाचारी भरा खत लिखने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं किया, कर्नाटक में 'आउटलुक' पत्रिका में तसलीमा का लेख बिना तसलीमा की अनुमति के प्रकाशित किया गया, जिससे वहाँ भी तसलीमा विरोधी माहौल बन गया।

2010 से उनके वीजा की अनुमति बढ़ाकर एक वर्ष तो कर दी गयी किन्तु उनके पश्चिम बंगाल जाने के रास्ते बंद कर दिये गये, पत्र-पत्रिकाओं में तसलीमा के लेख प्रकाशित करना बंद कर दिया, प्रिंट के साथ-साथ डिजिटल मीडिया में भी वे निषिद्ध कर दी गयीं। तसलीमा के इस तरह निषिद्ध किये जाने पर भारत सरकार मौन है। वे लिखती हैं, "यह कैसी विडम्बना है कि भारत उपमहादेश में जन्म लेकर भी वह यहाँ मुँह खोल नहीं पातीं। मुँह खोलने के लिए उन्हें यूरोप और अमेरिका जाना पड़ता है।"¹¹⁹

(iv) एक निर्वासित लेखिका की पीड़ा :

तसलीमा को अपने देश से निर्वासित कर दिया, विदेश उनका दोहन करता रहा और भारत उनके साथ सौतेला व्यवहार करता रहा। ऐसे में, निर्वासित लेखिका की पीड़ा रह-रह कर उसके

साहित्य में छलक पड़ती है। यह पीड़ा इतनी संवेदना उत्पन्न करती है कि उसे अभिव्यक्त करने के दौरान कई बार 'निःशब्दता' की स्थिति से गुजरना पड़ता है।

'निर्वासन' यह शब्द ही अपने आप में भयानक है। एक प्रकार का निष्कासन या कह सकते हैं अपना जो कुछ भी है वह सब छोड़ कर चले जाना! कितना कठिन है यह सब, एक दुःस्वप्न की तरह? निर्वासित व्यक्ति से विशेषकर जब वह लेखिका हो या एक स्त्री हो तब समाज, देश और दुनिया यही प्रश्न करती दिखती है 'तुम कहाँ जाओगी यह घंघरिया पहनकर।¹²⁰ कहाँ जा सकती है एक स्त्री जिसे निर्वासन मिला हो, अपने अस्तित्व से, अपने घर से, अपने राष्ट्र से? निर्वासन में जीवन बिताने वालों का भी कोई जीवन होता है, उनका अस्तित्व क्या बार-बार अपने होने पर प्रश्न नहीं करता? यह देखा जाना आवश्यक है।

तसलीमा नसरीन ऐसे ही निर्वासन का दंश पिछले चौबीस वर्षों से झेल रही हैं। अपनी मातृभूमि से पृथक्, अपने देश से निष्कासित, अपने परिजनों से बिछड़ी, विश्व के किसी भी कोने में अपने लिए छटाक-भर जगह की तलाश में हैं। और दूसरी तरफ तथाकथित भूमंडलीकरण और मानवतावाद में विश्वास करने वाला हमारा समाज मुँह खोले उसके हथ्र का इंतजार कर रहा है। यही नहीं लेखिका को एक निषिद्ध वस्तु के रूप में देख आव-बाव उगल रहा है। तसलीमा लिखती हैं, "निषिद्ध वस्तु को गड्ढे में गाड़ रखा है राजा लोगों ने। धर्म का ध्वंस करने वाली चुड़ैल को आखिर पकड़ ही लिया गया है... धर्मान्धों के खुले मुँह में डाला जा रहा है स्वादिष्ट भोजन आतंकवादियों की जीभ से बहने दिया जा रहा है खौलता लावा।"¹²¹

आत्मकथा के प्रत्येक भाग में तसलीमा ने अपने निर्वासन से मिली पीड़ा और दुःख को व निर्वासन के अनौचित्य के प्रश्न को बेहद ही संगीन तरीके उठाया है। विश्व में संभवतः यह पहला मामला है, जिसमें किसी लेखिका को उसके ही देश के लेखकों के द्वारा निर्वासित किये जाने की माँग

की गयी हो, इतने लम्बे समय तक अपने देश से निर्वासित होकर दर-दर भटकता पड़ा हो। कुल मिलाकर निर्वासन के साथ उनकी "आजादी को धर पकड़कर बक्सा बंद कर दिया गया।"¹²²

तसलीमा का निर्वासन किसी एक दिन की घटना नहीं है बल्कि यह उसी समय प्रारम्भ हो गया था, जब तसलीमा ने तार्किक दृष्टि से सोचना प्रारम्भ किया। जब उन्हें पहली बार विश्वास हुआ कि धर्म से इतर 'तर्क' और 'विज्ञान' नाम की कोई चीज भी है, उन्होंने स्त्री होने के कारण जब पहली बार अपमान और यौन शोषण झेला तब ही निर्वासन के बीज बोये जा चुके थे -

"बचपन में "मेरा वक्ष दबाकर/

दौड़कर हो गया हवा/

अपमान से नीली पड़ी मैं/

घर लौटकर रोई रातभर"¹²³

इस अपमान को महसूस किये जाने के बाद तसलीमा पितृसत्तात्मक सोच वाले व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के दायरे से बाहर हो गयीं। इसके बाद परिपक्व होते मन ने जब धर्म और धार्मिक लंबरदारों की परम्परावादी सोच और कट्टर विचारधारा पर प्रहार किया तो वे धार्मिक दृष्टिकोण रखने वाले समुदाय और देश से भी बहिष्कृत कर दी गयीं, जब उन्होंने राजनीतिक विसंगतियों के विरुद्ध कलम उठाई, तब वे राजनीतिज्ञों की आँखों की किरकिरी बन गयीं। धीरे-धीरे परिवार की अनैतिक और अतार्किक मान्यताओं को ठुकरा देने के कारण उन्हें अपने परिवार से भी बहिष्कृत होना पड़ा।

तसलीमा ने एक ऐसे राष्ट्र में जन्म लिया जो घोषित रूप से तो लोकतांत्रिक है, किन्तु उसकी जड़ें धर्म के जल से सींची जाती रही हैं। वे लिखती हैं, "उद्धट ऊँट की पीठ पर सवार था स्वदेश ! समाजतंत्र न सही, यथासंभव गणतंत्र तक देश में नसीब नहीं था।"¹²⁴ ऐसे माहौल में धर्म की आलोचना करने वाले को कैसे स्वीकार किया जा सकता है और राजनीतिक हस्तक्षेप के माध्यम से धार्मिक लंबरदारों ने तसलीमा को अपना देश छोड़ने पर मजबूर कर दिया।

देश छोड़कर विदेश की ओर कदम रखना तसलीमा के लिए सरल न था। यहाँ का माहौल उन्हें 'नाक में कसी नकेल'¹²⁵ की भाँति हर समय चुभता है। विदेशी धरती, अपरिचित लोग, विदेशी राजनीति आदि ने तसलीमा को नितांत अकेला कर दिया और ऐसे में पलायन के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं सूझता -

"कभी-कभी तीखी चाह जागती है, फरार हो जाऊँ
बर्च के सागर तट, ओक और पाइन के खूबसूरत अरण्य से
शीतल शांत बाल्टिक सागर से घिरे,
सजे सजाये नगर से !
लेकिन फरार होकर जाऊँ कहाँ
दुनिया में कहाँ है और कोई नगर,
जो मेरे इंतजार में हो ?..."¹²⁶

यूरोप, अमेरिका, भारत और विश्व के कई देशों में रहने के दौरान तसलीमा इसी प्रकार की निःसंगतता की शिकार हुई हैं। उनमें यह बात घर करने लगी कि जब अपनी धरती पर सम्मान नहीं मिला तो दूसरे लोग उन्हें क्यों सम्मान देंगे ? प्रारम्भ में एक तारिका की भाँति उनका स्वागत किया गया, उन्हें सम्मान दिया गया, सभी ने उन्हें हाथों-हाथ लिया, किन्तु तसलीमा महसूस करने लगी कि "यहाँ भी एक बांग्लादेश घात लगाए बैठा है।"¹²⁷ जब तक प्रकाशकों को उनकी रचनाओं के अनुवाद से पैसा कमाने का लालच रहा तब तक वे उनके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते रहे, राजनीतिक पार्टियाँ मानवाधिकार के नाम पर वोट बटोरती रहीं, किन्तु धीरे-धीरे "...विदेश मुझे थोड़ा-थोड़ा करके निगलना सीख गया है"¹²⁸ कि अनुभूति उन्हें होने लगी। यह एहसास होने लगा कि वे विदेशी लोगों के लिए केवल एक आकर्षण हैं जो कुछ दिनों में समाप्त हो जाएगा। ऐसे में उन्हें अपने अस्तित्व पर आशंका होने लगी। वे लिखती हैं, "एक बात बखूबी मेरी समझ में आ गयी है कि धर्मान्ध उग्रवादियों ने मुझे खदेड़ते-खदेड़ते जहाँ पहुँचा दिया है, बिलकुल अनात्मीय परिवेश में, अनचीन्हे-अनजान जगत

में, ताकि मैं अकेले-अकेले कष्ट-तकलीफ पाते-पाते दम तोड़ दूँ, ताकि मैं भयंकर विरुद्ध स्रोत में यह भूल जाऊँ कि किस वजह से मैं हूँ !"¹²⁹ किन्तु तसलीमा ने उनके इस उद्देश्य को पूरा नहीं होने दिया । अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अपने लेखन को और अधिक धार दी, अपनी अभिव्यक्ति की आजादी को अपनी मुट्ठी में एक बार फिर समेटा और बांग्ला भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । आत्मावलोकन किया और अपने भीतर की लेखिका को विश्वास दिलाया कि 'लिखती हूँ, इसलिए पुरस्कार भी नसीब हुआ'¹³⁰

भारत जैसे देश ने अपनी 'अतिथिदेवो भवः' की अवधारणा पर कायम रहते हुए तसलीमा को 'एक्स वीजा' प्रदान तो किया किन्तु यह वीजा कई प्रतिबंधों से युक्त है, जिसके विषय में तसलीमा लिखती हैं, "वीजा प्राप्त करने के लिए, जो मुझे मंजूर करना था, वे शर्तें थीं- भारत की राजनीति के बारे में मैं अपनी जुबान पर एक भी शब्द नहीं लाऊँगी, कलकत्ता के आलावा अन्य किसी शहर में कदम नहीं रखूँगी..."¹³¹ अर्थात् पूर्ण प्रतिबंध के साथ निवास की स्वतंत्रता । किन्तु तसलीमा ने इस प्रतिबंध के साथ भारत में रहना स्वीकार कर लिया। कारण? वे भारत को बांग्लादेश की तरह अपनी मातृभूमि समझती हैं, उन्हें यहाँ की संस्कृति में बांग्लादेशी संस्कृति की झलक मिलती है । विशेषकर कलकत्ता उन्हें विशेष प्रिय है । वहाँ के बंगाली समुदाय से मिलकर वे अपनत्व से विभोर हो उठती हैं और 'कलकत्ता का प्रेम' कविता में लिखती हैं-

"...अब अगर न भी करे प्यार, शायद, भले दुरदुराकर भगा दे

तब भी कलकत्ता का आँचल थामे, खड़ी रहूँगी बेअदब लड़की की तरह !

अगर धकियाकर हटा भी दे, तो भी मेरे कदम नहीं होंगे टस से मस !"¹³²

किन्तु हाय दुर्भाग्य ! हजारों सपने और आशाएँ लेकर आए अतिथि को जाना होगा ! निर्वासित व्यक्ति के सपनों के विषय में ग्रीक कवि एस्क्युलस लिखते हैं, "मैं जानता हूँ कि एक निर्वासित व्यक्ति कैसे केवल अपने सपनों के बल पर ही जीवित रहता है ।"¹³³ अनिश्चयता की स्थिति

के विषय में लिखती हैं, "उधर मुझे पश्चिम बुला रहा है और मैं नहीं जा रही हूँ... मैं किस तरफ जाऊँगी? जगत कह रहा है उधर जाओ बचो ! वहाँ सहानुभूति है, स्वर्णपदक है, इधर अवज्ञा और अपमान है । मैंने इधर को ही चुन लिया, पर इधर की राजनीति के आगे मेरा सपना पराजित हो गया है ।"¹³⁴ इस भूमि को भी छोड़कर जाना होगा ! क्यों ? क्योंकि उन्होंने कलम को अपना हथियार बना रखा है । जहाँ भी समाज के अस्तित्व के लिए अनुचित तत्वों को देखती हैं, उसे सामने प्रस्तुत कर देती हैं चाहे वह सत्य कितना भी कटु क्यों न हो । उदाहरण के लिए उनकी कविता 'अमेरिका' का एक अंश-

"तुम्हे शर्म कब आएगी, अमेरिका ...

तुम्हारे विस्फोट से आज नष्ट हैं संभावनाएँ !

तुम्हारे विस्फोट से आज विलुप्त हैं सपने !

तुम कब नज़र डालोगे, अपने हत्या-यज्ञ की तरफ ?"¹³⁵

इस प्रकार के लेखन के कारण वे भारत के कई राज्यों और स्थानों में प्रतिबंधित और निषिद्ध वस्तु बन गयीं हैं । सब उन्हें अछूत मानकर दूर कर देना चाहते हैं । इसलिए वे लिखती हैं -

'देश कहने को क्या कुछ भी नहीं होना चाहिए मेरा ?

ऐसी हूँ मैं अपराधी, ऐसी हूँ मानवता की दुश्मन

ऐसी हूँ देशद्रोही कि

देश कहने को क्या कुछ भी नहीं होना चाहिए मेरा ।

भारतीय लेखक समुदाय के कई 'दिग्गज' उनके लेखन को अश्लील साहित्य के रूप में देखते हैं, बंगाली संस्कृति से वे बहिष्कृत की जा चुकी हैं, दिल्ली में मकान की तलाश में भटक रही हैं, साहित्यकारों की मंडली से उन्हें निकाल फेंका गया है, उनके पक्ष में लिखने की हिम्मत किसी में नहीं जुटती ! इसलिए कि उन्होंने रात के अँधेरे में कही जाने वाली बातों को दिन के उजाले में ला खड़ा

किया या फिर इसलिए कि उन्होंने पितृसत्ता, धर्म और राजनीति के त्रिकोण को तोड़कर समाज में सहस्तित्व, समानता और मानवधिकारों की बात की ? वे लिखती हैं, "जो देश निकट भविष्य में 'सुपर पावर' होने की योग्यता रखता है, वह देश मेरे जैसे स्वदेशहीन, स्वजनहीन एक असहाय लेखक को जगह नहीं दे पा रहा है... सिर्फ इसलिए कि हाथ गिने हुए कुछ मौलवादी नहीं चाहते हैं!"¹³⁶ इसकी वजह यह है कि वे ऐसे विचारों की अभिव्यक्ति करती हैं जिसे समाज में 'टैबू' के रूप में स्वीकार किया जाता है। और हद तो तब हो गयी जब समाज ने उनकी भावनाओं, उनके संदेशों और उनके उद्देश्यों को न समझते हुए जैसे को तैसा करते हुए उन्हें ही 'टैबू' घोषित कर दिया। नाओमी वुल्फ के शब्दों में कहें तो 'जेंडर क्वेक' की भाँति वे लगातार लिखती रही हैं किन्तु यह प्रश्न तसलीमा के मन को बार-बार झकझोरता रहता है -

"यह जो मैं बहती रहती हूँ, एक देश से दूसरे देश
 एक द्वीप से दूसरे द्वीप ! एक आकाश से दूसरे आकाश
 या फिर एक समुन्दर से दूसरे समुन्दर तक
 यूँ बहते-बहते कहाँ जा भिड़ेगा मेरा जीवन।"¹³⁷

अपनी स्वतंत्रता की माँग करते-करते लगातार संघर्ष करती तसलीमा भले ही यह कहकर कि 'मेरे अंतस में है, वह देश'¹³⁸ या "पृथ्वी ही मेरा इस पार, पृथ्वी ही मेरा उस पार"¹³⁹ स्वयं को सांत्वना दे रही हैं फिर भी वे भय और अस्थायित्व के साये में दिन-रात यह अवश्य महसूस करती हैं, "मैं घुप अँधेरे में, निराशा की तेज रफ्तार नदी में तैरते-तैरते, उम्मीद की एक कमजोर सी लौ की रोशनी की तरफ बढ़ती जा रही हूँ। यह लौ सचमुच रोशनी की है या मरीचिका है।"¹⁴⁰

तसलीमा ने स्वयं के निर्वासन को कभी आत्मकथा के रूप में, तो कभी थोड़ी कल्पना का आधार लेकर विभिन्न पात्रों के माध्यम से अपने उपन्यासों (फेरा, ब्रह्मपुत्र के तट पर), कहानियों (दुखियारी लड़की) और कविताओं में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इस निर्वासन की पीड़ा

इतनी गहन है कि वह उनकी हर रचना हर आलेख में कहीं न कहीं नज़र जरूर आ जाती है। जिसके कारण रचनाओं में विषयगत दोहराव दिखाई पड़ता है। किन्तु उस स्थिति को भी समझा जा सकता है, जब एक लेखिका के डर, उसके अकेलेपन के विषय में कोई नहीं लिखना चाहता तो मजबूर होकर उसे स्वयं के जीवन, स्वयं की पीड़ा जैसे विषय को दोहराना पड़ता है। खुद ही कलम चलाकर खुद की ही बात करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए हंस में लिखे उनके अधिकतर लेखों में वे अपने प्रति की गयीं ज्यादातियों की बात जरूर करती हैं। जैसे - "मेरा कोई दल नहीं, राजनीति नहीं, कोई संगठन नहीं है। मेरे साथ कोई बुद्धिजीवी नहीं है। ये बुद्धिजीवी किसी न किसी राजनीतिक दल के सुविधावादी समर्थक होते हैं। मैं पूरी तरह से अकेली, अपने आदर्शों और विश्वास पर आस्था रख भारत में जी रही हूँ। क्या मेरे पाँव के नीचे जमीन है? न, नहीं है। फिर भी यहाँ हूँ, सिर्फ़ प्यार की वजह से। इस देश में न रहने पर, अपने देश की तरह की जगह और कहाँ पाऊँगी?"¹⁴¹ तसलीमा ने तो कलकत्ता को अपार प्रेम और श्रद्धा दी है किन्तु कलकत्ता से उन्हें जो मिला वह कविता में इस रूप में अभिव्यक्त हुआ है -

‘इस बार कलकत्ता ने मुझे काफी कुछ दिया,

लानत-मलामत, ताने-फिकरे,

छिः-छिः धिक्कार,

निषेधाज्ञा

चूना-कालिख, जूतम-पजार¹⁴²

इस निर्वासन में एक तरफ अस्तित्वहीनता का एहसास है - "मृत्यु तो खैर, मेरे साथ चलती ही रहती है, अपने किसी बेहद अपने का 'न-होना' भी साथ-साथ चलता रहता है!"¹⁴³ एवं 'न होना' कविता में -

"न होना" साथ होता है।

XXXXXX

छत पर बेलौस बैठे रहने की मस्ती में, बैठे-बैठे चाँद निहारते हुए,

चाँद को देखते-देखते चुम्बन लेने में, निभृत में

रहता है साथ-साथ यह 'न होना' ।"¹⁴⁴

तो दूसरी तरफ नितांत अकेलापन भी है । 'वह लड़की' कविता में तसलीमा अपने अकेलेपन की ओर इंगित करती हैं । इस अकेलेपन से उसे केवल एक ही चीज मुक्ति दिला सकती है और वह है 'कलकत्ता' -

"वह लड़की अकेली है

असहनीय तरीके से अकेली है वह लड़की !

...

एकमात्र कलकत्ता ही उठाता है लहरें, उस लड़की के शांत-थिर जल में,

एकमात्र कलकत्ता ही उसे नदी कर देता है ।"¹⁴⁵

अकेलेपन के अतिरिक्त इस निर्वासन में तमाम अपमान और तिरस्कार भी है । 'कलकत्ता का प्रेम' कविता में कलकत्ता का मानवीकरण किया गया है । तसलीमा को आशा थी जिस कलकत्ता में वे कई वर्षों तक रहीं, जिसके समाज के साथ उन्होंने अपना समाज बना लिया, वह कलकत्ता उन्हें जाता हुआ देख कुछ प्रतिक्रिया करेगा, वहाँ के उनके साथी साहित्यकार कुछ कहेंगे किन्तु उन सबने उन्हें निराश किया । यह निराशा इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है -

"तीस-तीस साल के लगनेवाले मेरे एहसासों की तरफ तुमने,

देखा है कई-कई बार,

लेकिन कुछ कहा नहीं !

जब मैं फुर्र हो रही थी, सिर्फ तभी

तुमने मेरे दोनों हाथों में भर दिए गुलाब ही गुलाब !

xx

'लेकिन मुझे तुम्हारे कुछ कहने का इन्जार था!'¹⁴⁶

पश्चिम का बनावटी जगत और वहाँ की उनकी तकलीफों को 'आयी हूँ अस्त होने' कविता में तमाम बिम्बों के माध्यम से बयाँ किया है । जिस स्त्री ने अपना सारा जीवन, सारा कुछ पूरब से सीखा

और उसी को अपना सब कुछ समर्पित कर दिया, उसे निर्वासन के दंड ने भीतर से तोड़ दिया है। वह पश्चिम की चमकदार गलियों में अपने लिए कुछ नहीं पाती और महसूस करती है कि उसका यहीं अंत हो जाएगा-

"पूरब में तो जन्मी थी, पूरब में ही तो नाची थी, दिया था यौवन,
जो भी था ऊँडेलना, ऊँडेल दिया पूरब में !
अब, जब कुछ भी नहीं रहा, जब बाल हुए कच्चे-पक्के,
जब आँखों में मोतियाबिंद, धूसर-धूसर नजर ;
जब सब कुछ खाली-खूली, चहुँओर भाँय-भाँय -
आई हूँ ढलने पश्चिम में ।"¹⁴⁷

'बर्फ़बारी में' कविता में विदेशी धरती पर ठूँठ की भाँति निष्क्रिय होने के एहसास की अभिव्यक्ति की गयी है -

"अचानक जाने किसने मुझे उछाल फेंका यहाँ, बर्फ़बारी में...
बाहें फैलाए जारी है नृत्य, बर्फ की बेटा का !"

...

"सारा कुछ श्वेत-सफ़ेद ! मौत की तरह !"

...

'ओ देश, ओ कलकत्ता, थोड़ी सी आग देगा ?'¹⁴⁸

निर्वासन से आहत मन और छिन्न-भिन्न व्यक्तित्व :-

'अकाज' कविता में -

"मैं दूर हूँ, बहुत दूर, कहीं भी, किसी भी जगह,
अभी भी लेती हूँ साँस !

निर्जन परिवेश में, अपनी ही साँसों की आवाज़,
अचानक-अचानक मुझे चौका जाती है ।"¹⁴⁹

निर्वासन के कारण अपने देश, अपनी भूमि और अपनी संस्कृति से बढ़ते प्रेम की अभिव्यक्ति 'प्रिय चेहरा' कविता में हुई है। कलकत्ता को पाने के लिए पुलक उठती है लेखिका। किन्तु यह कलकत्ता तो उनके हाथों से दूर है।

"जब भी देखती हूँ आप का चेहरा आप मुझे कलकत्ता लगते हैं ।"¹⁵⁰

'आखिरकार' कविता में, :-

"तुमसे मन उचटने का मतलब है, ब्रह्माण्ड से मन उचाट,
तुम्हारे न होने का मतलब है, आखिरी तीली-तिनका तक उजाड़ !"¹⁵¹
निर्वासन के बावजूद देश के सुखी रहने की कामना कुछ इस तरह करती हैं -

देश तुम कैसे हो ? कैसे हो तुम देश ?

तुम देश कैसे हो ? कैसे हो तुम देश ?

मेरा दिल तड़पता है तुम्हारे लिए, तुम्हारा नहीं तड़पता ?

मेरा जीवन छीज रहा है तुम्हे याद करते हुए, और तुम्हारा ?

खोई रहती हूँ सपनों में, तुम ?

अपने घाव, अपने आँसू छिपाए रखती हूँ गोपन में

गोपन में छिपाए रखती हूँ उड़ते बाल, फूल, गहरी साँस

मैं कुशल नहीं हूँ, तुम कुशल रहना प्रिय देश ।"¹⁵²

"बहुत बुरा समय आने पर बस प्रश्न रह जाते हैं, उत्तर नहीं"¹⁵³ तसलीमा का जीवन भी प्रश्नों का जीवन हो गया है- कब समाज में स्त्री-पुरुष समानता स्थापित होगी ? कब राजनीति धर्म की जकड़ से बाहर निकल अपने नागरिकों की भलाई के लिए सोचेगी ? कब धर्म की रूढ़िवादिता का अंत होगा ? कब सब एक साथ मिलकर सहभाव से सामाजिक उन्नति के लिए चिंतन करेंगे ? कब मनुष्य, मनुष्य होगा ? या उनके ही शब्दों में कहें तो, "मेरा बहुत मन करता है कि यह जान सकूँ कि कितने दिन, ठीक कितने माह या सालों तक मुझे मेरी आजादी वापस नहीं मिलेगी ।"¹⁵⁴ उनके ये प्रश्न यह सोचने पर मजबूर करते हैं कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकारों की बात करने वाले तथाकथित आधुनिक व प्रगतिशील कहे जाने वाले विश्व में राजनीति, पितृसत्ता और धर्म के गठजोड़ की शिकार एक लेखिका के जीवन का यह हश्र क्या हमें मंजूर है ?

(ख) प्रतिबंध की राजनीति :

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आधुनिक युग की माँग नहीं, बल्कि यह प्राचीन सभ्यता के उद्भव के साथ ही अपनी महत्ता स्थापित करती आई है। सुकरात जब यह कहते हैं, 'समाज की उदारवादी संस्थाओं से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अलग करने की तुलना में सूर्य को ब्रह्माण्ड से अलग करना संभवतया अधिक आसान है', तब वह इसी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की महत्ता को स्थापित करते हैं। विश्व की विभिन्न राजव्यवस्थाओं में यह प्रश्न सदैव चुनौतीपूर्ण रहा है कि कौन-सी सूचना या जानकारी जनता के बीच जाए और कौन-सी न जाय। इस निर्धारण के दौरान कई बार आवश्यक अभिव्यक्तियों को भी बाधित करने का प्रयास किया गया है। राज्य के द्वारा स्वयं के संदर्भ में खतरा महसूस करते ही वह नागरिकों के अभिव्यक्ति के अधिकार को बाधित करने में कभी पीछे नहीं हटा। किन्तु दूसरी तरफ नागरिकों या समाज के व्यक्तियों के किसी आवश्यक ज्ञान या जानकारी से अनभिज्ञ रहना भी कहीं से उचित नहीं जान पड़ता। अपने समाज के यथार्थों से जो जन भिन्न न हो वह समाज का हिस्सा भी कैसे हो सकता है। Vrije University Amsterdam के मार्क स्कुएलेन्बर्ग के द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र 'Behave or Be Banned ? Banning Orders and Selective Exclusion from Public Space' से यह स्पष्ट होता है कि प्रतिबन्ध के पीछे 'रेस्पोंसबिलाइजेशन' की नीति काम करती है।¹⁵⁵ इसके कारण नागरिकों की सुरक्षा के दायित्व और शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिए कई बार ऐसे मुद्दों को दबाने का प्रयास किया जाता है जो समाज को उकसाते हैं या सरकार के लिए खतरा महसूस होते हैं। स्पष्ट है, सरकार या राज्य के द्वारा जो भी साहित्य प्रतिबंधित किया जाता है, वह कहीं न कहीं राज्य, व्यवस्था या समाज के यथार्थ को समाने रखता है और उसमें अंतर्निहित सत्य से घबराकर, या उसे राज्य में अस्थिरता फैलाने या लोगों में भ्रम फैलाने के नाम पर प्रतिबंधित कर दिया जाता है।

"दमनकारी सत्ता का सामना करते हुए जनता का साहित्य लिखना खतरनाक काम है। लेकिन ऐसे खतरनाक समय में ही साहित्य की शक्ति और सार्थकता की पहचान होती है और जनता के

लेखकों के साहस की परीक्षा भी।"¹⁵⁶ प्रश्न यह उठता है कि इस प्रतिबंधित साहित्य, विचार या व्यक्ति से समाज के अन्य लोगों का क्या कोई सरोकार नहीं ? यदि नहीं तो इस तरह की अभिव्यक्तियों का कोई मूल्य नहीं और यदि हाँ, तो लोग प्रतिबंध को कैसे स्वीकृति कर सकते हैं और क्यों किसी लेखक को प्रतिबंधित होने के लिए छोड़ दिया जाता है ? उस लेखक को जो उनकी ही बात कर रहा होता है। तसलीमा का साहित्य ऐसे ही प्रतिबंधित साहित्य के अंतर्गत आता है।

(अ) साहित्य पर प्रतिबन्ध और कानूनी प्रावधान : साहित्य पर प्रतिबंध बौद्धिक तबकों को चुप कराने एवं धमकाने के लिए सत्ताधारी गुटों की एक राजनीतिक कोशिश है। राजनीतिक तुष्टिकरण के लिये सरकार ऐसे कदम उठाती है। गौरतलब है कि भारत और बांग्लादेश में बुक सेंसरशिप या साहित्य प्रतिबंधित करना बहुत ही सरल है। इस मामले में न्यायायिक प्रतिरोध शून्य है। भारत में आपराधिक संहिता की धारा 95 सरकार को किसी भी अखबार, किताब या दस्तावेज की प्रतियों को ज़ब्त करने के लिये अधिकृत करता है, जो कि भारतीय दंड संहिता के कुछ प्रावधानों जैसे कि धारा 124ए, धारा 153 ए और बी, धारा 292 और धारा 295ए का उल्लंघन करते हैं। विदित हो कि भारतीय दंड संहिता की धारा 124ए राजद्रोह, धारा 153ए और बी साम्प्रदायिक आवेग या असंतोष भड़काने, धारा 292 अश्लीलता फैलाने और धारा 295ए धार्मिक मतानुयायियों के अपमान से संबंधित है।

वस्तुस्थिति यह है कि इन कानूनों का सरकार एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करती है। सत्ता क्यों साहित्य को लेकर राजनीति करती है, इस सम्बन्ध में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, "लेकिन जब साहित्य के शब्द सामाजिक यथार्थ के दर्पण बनते हैं, तब यथार्थ को छुपाने के लिए और सच को झुठलाने के लिए सत्ता साहित्य पर आक्रमण करती है।"¹⁵⁷ लेकिन मैनेजर पाण्डेय के ही अनुसार साहित्य के इस प्रतिबंध का उल्टा असर होता है। वे लिखते हैं, "साहित्य पर प्रतिबंध का उल्टा असर होता है, क्योंकि प्रतिबंधित साहित्य पाठकों को अधिक आकर्षित और प्रभावित करता है।

लेकिन आत्मप्रवंचना के शिकार शासकों को निरर्थकता के रास्ते पर दौड़ने से कौन रोक सकता है?"¹⁵⁸ तसलीमा के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। जब उनके उपन्यास 'लज्जा' को बांग्लादेश में प्रतिबंधित कर दिया गया तो उसकी पायरेटेड प्रतियाँ बिकने लगी। भारत में उसका प्रसार हो गया और देखते ही देखते लाखों प्रतियाँ बाज़ार में आ गयीं। जितना अधिक सरकार ने लज्जा को छिपाने की कोशिश की उतना ही उसे लोगों ने पढ़ा।

(आ) प्रतिबंधित साहित्य का इतिहास और वर्तमान : एम. जेराल्ड बैरीयर ने अपनी किताब 'बैण्ड कंट्रोवर्सियल लिटरेचर एंड पोलिटिकल कंट्रोल इन ब्रिटिश इंडिया' (1976) में सिर्फ हिंदी की प्रतिबंधित किताबों की संख्या 1700 के करीब बताई है। यदि प्रतिबंधित साहित्य के इतिहास पर नज़र डाले तो ज्ञात होता है कि इस प्रतिबंध का सिलसिला बहुत पुराना है। यह केवल भारत ही नहीं विश्व के लगभग हर साहित्य में दिखाई पड़ता है। ग्रीस विचारक डिमोस्थेंस ने कहा, "व्यक्तियों के लिए बोलने की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध से बढ़कर कोई आपदा नहीं हो सकती।" रोमन और ग्रीस साम्राज्य ऐसे प्राचीनतम उदाहरण हैं, जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ-साथ प्रतिबंध की राजनीति भी सर्वप्रथम दिखाई देती है। रोमन इतिहासकार टेसियस के अनुसार सम्राट आगस्टस, वह प्रथम रोमन शासक था, जिसने राज्य के विरुद्ध लिखे या बोले गये प्रत्येक शब्द को दण्डित करने का प्रयास किया। उसने लेबेनियस के लेखों को सार्वजनिक रूप से जला डालने का आदेश दिया। इसी प्रकार चीन के शी-हुआंग-ती ने 213 ईसा पू. में कन्फ़्युशियस के विचारों से सम्बंधित सभी पुस्तकों को जला दिया था। इसी प्रकार बाद के मंचू साम्राज्य ने भी उनके निर्देशानुसार इतिहास न लिखने के कारण कई लोगों को दण्डित किया और पुराने इतिहास को जला दिया। मिल्टन अपने प्रसिद्ध निबंध 'एरोपेजेटिका' में लिखते हैं कि एथेंस दो प्रकार के लेखन को ही प्रतिबंधित करता था - प्रथम- ईश निंदा और दूसरा-मानहानि। इस पर भी दंड तभी होता था, जब वह प्रकाशित रूप में हो। स्पार्टा में प्रारम्भ में पुस्तक प्रकाशित करवाने के लिए किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु आगे

चलकर कई पुस्तकों पर प्रतिबंध लगाया गया। एस्काइलेस, एरिस्टोफेन्स की रचनाओं की आलोचना की गयी। प्रोटेगोरस की एक पुस्तक जो कि इस वाक्य के साथ प्रारम्भ हुई, "जहाँ तक ईश्वर का सम्बन्ध है, मैं नहीं जानता कि वह है या नहीं" के कारण एथेंस में इस पुस्तक को प्रतिबंधित कर दिया गया।

यदि तीसरी दुनिया के देशों में देखें तो ज्ञात होता है कि यहाँ सबसे अधिक साहित्य को प्रतिबंधित करने का प्रयास किया गया है, जो आज भी जारी है। इस सम्बन्ध में मैनेजर पाण्डेय ने तीसरी दुनिया के देशों में जन साहित्य पर सरकार की नीति के सम्बन्ध में 'वह कलम की नोक से डर रहा है' लेख में इसे 'तीसरी दुनिया की दुर्गंगी चाल'¹⁵⁹ और 'दमनकारी सांस्कृतिक नीति'¹⁶⁰ की संज्ञा दी। और इस दमन के कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत किये, जैसे - इंडोनेशिया के नाटककार विली-बोडस रेंड्रा¹⁶¹, केन्या के उपन्यासकार, नाटककार और रंगकर्मी न्गुगी व थिओंगो¹⁶² के साहित्य पर प्रतिबंध।

स्पष्ट है, तीसरी दुनिया की सरकारें साम्राज्यवाद विरोधी होने का केवल ढोंग कर रही हैं। दरअसल वे इस ढोंग के पीछे एक नया खेल खेल रही हैं, नव-उपनिवेशवाद का। इस ढोंग में पूर्व में उपनिवेश के रूप में रह चुके देश, अब स्वयं उन देशों की भाँति कार्य-प्रणाली अपना रहे हैं। इस सम्बन्ध में न्गुगी ने लिखा "अब केन्या की नव-उपनिवेशवादी सत्ता के जुल्मों के बारे में चुप रहना सामाजिक बुराई से सहयोग करना है।"¹⁶³ लैटिन अमेरिका के चिली, अलसल्वाडोर तो लेखकों के दमन के लिए कुख्यात हैं ही, इसमें एशिया के भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश के साथ अफ्रीका के देश भी सम्मिलित हैं।

भारत में लेखकों के दमन का यह खेल स्वतंत्रता के पूर्व स्वाधीनता आन्दोलन के समय से चला आ रहा है। स्वाधीनता संग्राम के समय पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों पर प्रतिबंध के साथ प्रेस पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया था, किन्तु स्वाधीनता के बाद संविधान ने जिस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दावा किया था, वह सरकारों ने सत्ता की खुशफहमी बनाये रखने के लिए उस दावे को निराधार कर दिया। एक तरफ जहाँ स्वाधीनता संग्राम के दौरान 'सैनिक', 'चाँद', 'स्वदेश', 'वर्तमान', 'विप्लव',

'क्रांति', 'वालंटियर', 'अभ्युदय' जैसी हिंदी की पत्रिकाएँ प्रतिबंधित की गयीं, वहीं वृन्दावन लाल वर्मा की रचना 'सेनापति उद्धव', सुन्दरलाल की 'भारत में अंग्रेजी राज', नवजादिक लाल श्रीवास्तव की 'पराधीनों की स्वाधीन यात्रा' आदि पुस्तकों पर भी अंग्रेजों ने पाबंदी लगा दी। माधवराव सप्रे की लिखी 'स्वदेशी आंदोलन और बायकाट', प्रेमचंद की 'सोजे वतन' एवं 'समर यात्रा' जैसी पुस्तकों को भी प्रतिबंधित किया गया।

पुस्तकों के प्रतिबंध का यह क्रम स्वतंत्रता के बाद हुए तेलंगाना आन्दोलन, नक्सलबाड़ी आन्दोलन और आपातकाल से होता हुआ वर्तमान तक जारी है। सरकार अब भी वही दमनकारी संस्कृति लेकर चल रही है। विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों को प्रतिबंधित किया गया है जैसे - यशपाल, लक्ष्मीचंद्र वाजपेयी 'चन्द्र', लीलावती बीए, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', आचार्य चतुर सेन शास्त्री, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक तथा प्रेम बंधु ब्रजेन्द्र नाथ गौड़ का उपन्यास 'पैरोल पर', कैथरीन मेयो की 'मदर इंडिया', तेलगू कवि चेरवंड राजु पर प्रतिबंध, लेखकों पर सिकंदराबाद षड्यंत्र मुकदमा, तेलगू कवि वरवर राव पर की पुस्तक 'भविष्यातु चित्रपटम्' पर प्रतिबंध, सलमान रश्दी की 'द सिनेटिक वर्सेस' व 'द मूर लास्ट साइन', जोसेफ़ लेलिवेल्ड की 'ग्रेट सोल: महात्मा गाँधी एंड हिज स्ट्रगल विद इंडिया', जसवंत सिंह द्वारा लिखित मोहम्मद अली जिन्ना की जीवनी 'जिन्ना: इंडिया-पार्टिशन-इंडिपेन्डेन्स', जेम्स लेन की किताब, 'शिवाजी: हिन्दू किंग इन इस्लामिक इंडिया', डीएच लॉरेन्स की किताब, 'लेडी चैटरलीज़ लवर', राम स्वरूप की अंडरस्टैंडिंग इस्लाम थ्रू हदीस, वेंडी डोनिगर की द हिंदूज: एन अल्टरनेटिव हिस्ट्री, ऑब्रे मेनन की द रामायना ऐज टोल्ड, जसवंत सिंह की जिन्ना: इंडिया-पार्टिशन-इंडीपेंडेंस, सेमर हर्श की 'द प्राइज ऑफ़ पॉवर', वी एस नायपाल की 'एन एरिया ऑफ़ डॉर्कनेस', एलेक्जेंडर कैम्पबेल की 'द हार्ट ऑफ़ इंडिया', जेम्स लेन की, 'शिवाजी: हिन्दू किंग इन इस्लामिक इंडिया', स्तेलनी वेल्पोर्ट की 'नाइन आवर्स टू रामा', हमीश मैकडोनाल्ड की 'द पोलिस्टर प्रिंस : द राइज ऑफ़ धीरुभाई अम्बानी', रोहिंटन मिस्ट्री की 'सच अ लॉन्ग जर्नी', जोसेप लिलीवेल्ड की 'द ग्रेट सोल', कुर्त फ़िशकेलर की 'आयेशा' आदि। भारत में प्रतिबंध का ताजा

उदाहरण बाबा रामदेव के जीवन पर लिखित 'गॉडमैन टू टाइकून' एवं हाँसदा सोवेंद्र शेखर के कहानी संग्रह 'द आदिवासी विल नॉट डांस' पर प्रतिबंध है। भारत में पुलिस, मार्क्सवादी साहित्य को तो प्रतिबंधित साहित्य का दर्जा देने लगी है।

भारत की तरह बांग्लादेश में पुस्तकों पर प्रतिबंध का सिलसिला जारी है। इब्न बराक की पुस्तक 'व्हाई आई एम नॉट ए मुस्लिम', मोतीउर रहमान की 'आमर फाँसी चाय', हुमायूँ आज़ाद की 'नारी', सलमान रुश्दी की 'सेटेनिक वर्सेज' आदि को प्रतिबंधित किया गया है। इस क्रम में सरकार द्वारा 2004 में अहमदिया समुदाय के सभी प्रकाशनों पर भी प्रतिबंध लगाया गया।

स्पष्ट है, पुस्तक प्रतिबंध का राजनीतिक हथियार कई देशों ने अपनी सहूलियतों के लिए अपनाया है। ऐसे में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर संकट तो मंडराता ही है साथ ही एक स्वस्थ राजनीतिक परिवेश के खो जाने का भय भी बना रहता है।

(इ) तसलीमा और प्रतिबंध : तसलीमा के लेखन का उस समय सर्वप्रथम विरोध किया गया, जब उनकी पुस्तक 'निर्वासित बाहर-भीतर' आई। इस पुस्तक में सम्मिलित कविता 'नियति' को अश्लील कहा गया। किन्तु जब यह कविता बांग्लादेश की प्रतिष्ठित पत्रिका 'रविवार' में शामिल की गयी, तो उसे प्रतिबंधित नहीं किया गया बल्कि तसलीमा की पुस्तक में प्रकाशित होने पर ही इसपर विरोध प्रारम्भ हुआ। तसलीमा के अनुसार नियति कविता में प्रयोग किये गये शब्दों को अश्लील उन्ही ने कहा जो स्वयं उस तरह की हरकते करने में नहीं हिचकते। तसलीमा का मानना है कि उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग प्रेम की सुखद और रोमांचक अनुभूति की अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने के लिए किया है। कविता की कुछ पंक्तियाँ निम्नवत् हैं -

‘हर रात मेरे बिस्तर पर आकर लेट जाता है,

एक नपुंसक मर्द !

आँखें

अधर

चिबुक

पागलों की तरह चूमते-चूमते,

अपनी दोनों मुट्टियों में भर लेता है- स्तन !

मुँह में भरकर चूसता रहता है

मारे प्यास के जाग उठता है मेरा रोम-रोम..."¹⁶⁴

इस कविता में एक स्त्री के मन में उठने वाली काम भावना का जिक्र है, जिसे उसके शरीर से खेलने वाला पुरुष नहीं समझ पाता। वह तो केवल अपने ही शरीर की तृप्ति में लगा रहता है। इस प्रकार स्त्री बिस्तर से लेकर उसके समस्त जीवन तक उपेक्षित रहती है।

तसलीमा के प्रतिबंध का यह सिलसिला लगातार बढ़ता ही गया। 'लज्जा' को 1993 में सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया। उनके विरुद्ध कट्टरपंथियों के दिन-पर-दिन बढ़ते विरोध प्रदर्शन को देखते हुए, सरकार के निर्देश पर इंटेलिजेंस ब्यूरो ने उन पर नज़र रखनी शुरू कर दी। उनका बाहर निकलना या किसी कार्यक्रम में प्रतिभाग करना भी प्रतिबंधित कर दिया, उनका वीज़ा ज़ब्त कर लिया गया। इसके अतिरिक्त 1999 में, नसरीन की आत्मकथा 'मेरे बचपन के दिन' को पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश दोनों में प्रतिबंधित कर दिया। 2002 में, गृह मंत्रालय द्वारा इसके प्रकाशन, बिक्री, और वितरण को अवैध घोषित करने के बाद बांग्लादेश सरकार ने नसरीन की आत्मकथा के द्वितीय भाग 'उत्ताल हवा' की सभी प्रतियों को ज़ब्त करने का आदेश दिया। इसके अतिरिक्त उनकी आत्मकथा के सभी भागों को बांग्लादेश में प्रतिबंधित किया गया है। तसलीमा का मत है कि कई लोगों ने उनपर आरोप लगाया है कि 'द्विखंडित' में उन्होंने नाम ही नाम उल्लेख किया है। अपने एक साक्षात्कार में वे लिखती हैं, "पश्चिम बंगाल में भी मुझे वैसी ही घृणा, वैसे ही आरोप-प्रत्यारोप का सामना करना पड़ रहा है, जैसा कि बांग्लादेश में। पश्चिम बंगाल में मेरी पुस्तकों निर्वाचित कलाम, नष्ट लड़की, नष्ट गद्य और मेरे बचपन के दिन और यहाँ तक कि उत्ताल हवा पर प्रतिबंध लगाने की माँग

नहीं की गयी जब कि मैंने उसमें इस्लाम विरोधी बातें की हैं। फिर द्विखंडित पर प्रतिबंध की माँग क्यों की जा रही है ? ये बड़े-बड़े पाखंडी लोग अपने झूठ के पकड़े जाने से भयभीत हैं इसलिए। मुझे आश्चर्य होता है लोगों के इस तरह के आरोपों पर। हम किसी काल्पनिक व्यक्ति पर आरोप प्रत्यारोप करें तो कोई बात नहीं, मैं अपना नाम लेकर लिखूँ तो कोई बात नहीं तो फिर मैं उन लोगों का नाम क्यों नहीं ले सकती जो मुझसे सम्बंधित रहे हैं या जिन लोगों ने मेरा साथ दिया है या मेरा शोषण करने का प्रयास किया है ? कुछ भी छिपाना मेरी प्रवृत्ति के खिलाफ है। मैंने अपनी आत्मकथा में प्रसिद्ध और आम दोनों को लोगों को समान महत्व दिया है और दोनों का ही नाम लिया है। कोई प्रसिद्ध है तो इसलिए मैं उनका नाम क्यों छुपाऊँ? ...द्विखंडित या का को पढ़कर कोई भी यह जान सकता है कि मेरा उद्देश्य किसी व्यक्ति विशेष का नाम उछालना नहीं अपनी खुशियों अपने दुखों और अपने संघर्षों को प्रस्तुत करना है ...मैं यह महसूस करती हूँ कि आत्मकथा अर्ध नहीं हो सकती- अर्ध सत्य और अर्ध झूट पर आधारित तो कतई नहीं।"

स्पष्ट है कि इस्लाम विरोधी बातें और कुछ तथाकथित बुद्धजीवियों व राजनीतिक पार्टियों और सत्तानसीनों का नाम लेने के कारण ही तसलीमा की पुस्तकों को प्रतिबंधित किया गया। भारत के अतिरिक्त श्रीलंका में भी 'लज्जा' को प्रतिबंधित किया गया। तसलीमा को सेनावाहिनी के कमांडर इन चीफ एम. ए. हलीम का लिखा हुआ खत प्राप्त हुआ जो उन्होंने गृह मंत्रालय और सूचना मंत्रालय को लिखा था। यह तसलीमा के लिए एक तरह से हुक्मनामा था, जिसमें यह दिखाने का प्रयास किया गया कि बांग्लादेश में हिन्दुओं की स्थिति बहुत अच्छी है और तसलीमा ने जबरन हिन्दुओं को भड़काने का प्रयास किया। उनके इस प्रयास से विश्व में बांग्लादेश की छवि खराब होगी। इसी कारण सेनावाहिनी ने सरकार को लज्जा पुस्तक प्रतिबंधित करने का आदेश दिया। सेनावाहिनी और सरकार के इस रवैये और दोनों के गठजोड़ पर व्यंग्य करते हुए तसलीमा ने लिखा, "सेनावाहिनी के नितम्ब ने ही इस देश की इस स्वाधीन बांग्लादेश की गद्दी को सबसे ज्यादा स्पर्श किया है। कुछेक गैर फौजी सरकारों के पीछे बन्दूक की नली थी यह हम सभी जानते हैं ...जो प्रधानमंत्री आजकल सत्ता पर

आसीन हैं, उनकी गाड़ी की शान-शौकत भी सेनानिवास से ही यात्रा करती है। वे फैज की बीबी हैं। जनता को फ़ौज से छुटकारा नहीं।" ¹⁶⁵

स्पष्ट है, तसलीमा के विरुद्ध दुष्प्रचार करने वालों की और प्रतिबंधों की कमी नहीं रही। इस सम्बन्ध में तसलीमा लिखती हैं, "एक बार दुर्घटना घटनी शुरू हो जाए तो घटती ही जाती है। एक राज्य में घटने पर दूसरे राज्य में घटती है। यह बहुत कुछ कालरा या मलेरिया की तरह, या कहेँ डेंगू या चिकनगुनिया की तरह संक्रामक है। किसी निर्दिष्ट जगह पर रुका नहीं रहता।" ¹⁶⁶ अशोक बाजपेयी इसके पीछे के कारण को प्रकट करते हुए लिखते हैं, "सरकार छोटे-छोटे समुदाय की बात मानती है क्योंकि बड़ा समुदाय चुप रहता है।" ¹⁶⁷ 'नई दुनिया' के संपादक आलोक मेहता प्रतिबंध न लगाये जाने का पक्ष लेते हुए लिखते हैं, "साम्प्रदायिक संगठनों चाहे विश्व हिंदू परिषद, बजरंग दल या फिर इस्लामिक संगठन हो ये धर्म के नाम पर मुद्दा तो उठाते हैं लेकिन जनता में इनको समर्थन हासिल नहीं होता ऐसे में सरकारों को देखना चाहिए कि जिस लेखन से मासूमों के मारे जाने का खतरा न हो सरकार को इस तरह के प्रतिबंध नहीं लगाए जाने चाहिए।" ¹⁶⁸

(ग) उपेक्षा की राजनीति : असाहित्यिकता और अश्लीलता के आरोपों के मध्य उपेक्षित साहित्य :

(अ) तसलीमा की रचनाओं में साहित्यिकता-असाहित्यिकता

एक तरफ कई आलोचकों ने तसलीमा के समस्त लेखन को साहित्य मानने से इंकार किया और दूसरा उनकी रचनाओं को अश्लील साहित्य कहकर उसकी उपेक्षा की जाती रही है। इसलिए सर्वप्रथम यह देखा जाना आवश्यक है कि तसलीमा का लेखन साहित्य की कोटि में आता है या नहीं। प्रश्न यह उठता है कि कोई रचना साहित्यिक है या नहीं यह किस प्रकार निर्धारित होगा और किस साहित्य को श्लील या अश्लील कहा जा सकता और उसे निर्धारित करने वाले कारक कौन-कौन से हैं ?

(i) **साहित्य और उसका उद्देश्य :** प्रेमचंद ने 'साहित्य का उद्देश्य' (1936) नामक अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि साहित्य का उद्देश्य 'जीवन की आलोचना' है और 'साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफ़िल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना ही नहीं है, उसका दरजा इतना न गिराए। वह देश भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।'¹⁶⁹ तात्पर्य यह है कि साहित्य की भूमिका एक पथ प्रदर्शक की है। गणपति चन्द्र गुप्त के 'साहित्य की आत्मा' नामक आलेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य के लिए किन तत्वों का होना आवश्यक है। भारतीय साहित्य के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता है उसे 'काव्य की आत्मा' कहा जाता है। काव्य के छह साधन - रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य, काव्य की आत्मा-सौन्दर्यानुभूति, काव्य का फल-रसानुभूति। साहित्यकार रसानुभूति के ये आकर्षण उत्पन्न करने के लिए जिन द्रव्यों का सहारा लेता है वे हैं -भाव, विचार और कल्पना। हर साहित्य में इन तीनों की मात्रा अलग-अलग होती है। अतः साहित्य के प्रति आकर्षण का रूप भी अलग-अलग हो जाता जैसे -भावात्मक आकर्षण, बौद्धिक आकर्षण और कलात्मक आकर्षण। साहित्य की यह आकर्षण शक्ति पाठक और साहित्यकार के मन में चार प्रक्रियाओं से होकर गुजरती है- संयोजन, सम्प्रेषण, द्रवण और अभिव्यक्ति। इन चारों से गुजरकर ही पाठक का 'साधारणीकरण' होता है। गणपतिचन्द्र गुप्त ने आकर्षण शक्ति को ही साहित्य की आत्मा माना है और इस संबंध में उन्होंने पाश्चात्य आचार्य होरेस का मत उद्धृत किया है -"काव्य का सुन्दर होना ही पर्याप्त नहीं है, वह आकर्षक भी होना चाहिये - उसमें ऐसी शक्ति होने चाहिए कि श्रोता के मन को जिधर चाहे खींच सके।"¹⁷⁰ इस दृष्टि से देखने पर तसलीमा के साहित्य में तीनों प्रकार के आकर्षण मौजूद दिखते हैं।

रामचंद्र शुक्ल ने 'चिंतामणि-3' में सम्मिलित एक निबंध 'साहित्य' में यह स्वीकार किया कि 'साहित्य शब्दों में आबद्ध विचारों का प्रकटीकरण है'।¹⁷¹ यह निबंध न्यूमन के लेख 'लिटरेचर' पर आधारित है। न्यूमन ने लिखा 'Literature is personal use or exercise of language'।¹⁷² स्पष्ट है कि साहित्य के सन्दर्भ में न्यूमन ने 'यूनिवर्सल' की जगह 'पर्सनल' पर जोर दिया है। अर्थात्

व्यक्ति विशेष के मन को उद्वेलित करने वाले भाव जब शब्दों में गुथकर प्रकट होते हैं तो वे साहित्य की श्रेणी में आते हैं। यहाँ गणपतिचन्द्र गुप्त के द्वारा प्रस्तुत साहित्य के भेदक लक्षणों का उल्लेख प्रासंगिक है, जिससे रचना की साहित्यिकता और असाहित्यिकता का निर्धारण किया जा सकता है। ये लक्षण हैं - 'स्थायित्व', 'व्यक्तित्व का प्रतिफलन' और 'रागात्मकता'। ये तीनों तत्व कृति के मौलिक और अन्य से विशिष्ट होने को प्रतिपादित करते हैं, जैसा विज्ञान के संदर्भ में सम्भव नहीं हो पाता क्योंकि विज्ञान में एक प्रतिपादित सिद्धान्त को काटकर नवीन का प्रतिपादन किया जाता जबकि साहित्य में प्रत्येक अभिव्यक्ति का महत्व है।

"विचारों का चित्रण उसी सीमा तक होना चाहिए, जहाँ तक वे रचना के भाव सौन्दर्य में बाधक न हों। साहित्य की आत्मा या उसका प्राण भाव है, अतः उसे किसी भी स्थिति में ठेस नहीं लगनी चाहिए। भाव शून्य विचारों का वर्णन साहित्य की संज्ञा से वंचित करके उसे दर्शन, नीतिशास्त्र या उपदेश ग्रन्थ का रूप दे देता है।"¹⁷³ प्रो. नित्यानंद तिवारी के मतानुसार, "जब कोई अपने और पराये की संकुचित सीमा से ऊपर उठकर सामान्य मनुष्यता की भूमि पर पहुँच जाए तो समझना चाहिए कि वह साहित्य धर्म का निर्वाह कर रहा है। पुराने आचार्य अपनी विशेष शब्दावली में इसी को लोकोत्तर और अलौकिक कहते थे। आचार्य रामचन्द्र ने इसी को 'हृदय की मुक्तावस्था' कहा है।"¹⁷⁴

अरस्तु शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत 'अनुकृति' को साहित्य कहते हैं, कालरिज का मत है कि 'साहित्य काव्य रचना वह विशिष्ट प्रकार है, जिसका तात्कालिक लक्ष्य प्रसन्नता प्रदान करना होता है।' हडसन ने भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति को साहित्य माना है। मैक्सिम गोर्की की कहानी 'एक पाठक' साहित्य के उद्देश्य के विषय में पाठक कहता है, "साहित्य का उद्देश्य है खुद अपने को जानने में इन्सान की मदद करना, उसके विश्वास को दृढ़ बनाना और उसके सत्यान्वेषण को सहारा देना।"¹⁷⁵ यदि संरचनावादियों की दृष्टि से देखें तो उनका मत है कि आज के जमाने में साहित्य क्या है से बेहतर यह जानना है कि साहित्य कैसे बनता है? साहित्य की सर्वभौम विशेषताओं की खोज करने

के बदले साहित्य के निर्माण की दशाओं पर विचार करना अधिक आवश्यक है। संरचनावादी मिशेल फूको का यह मत था कि 'साहित्यिक कृति की स्वायत्तता और वस्तुनिष्ठता की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।' ¹⁷⁶

स्पष्ट है साहित्य में महत्वपूर्ण है - जीवन की आलोचना और उसकी वस्तुनिष्ठता, सौन्दर्य की उत्पत्ति और मनुष्य का उद्धार।

(ii) तसलीमा की रचनाओं की साहित्यिकता : तसलीमा की रचनाओं को साहित्य न मानने का कोई कारण नहीं नज़र आता। बात जब ऐसी लेखिका की हो जिसने अपनी 'तदबीर से अपनी तस्वीर खुद बनाई' हो तो रूढ़िवादी समाज के लिए यह तय करना कठिन हो जाता है की रचनाकार को किस पायदान पर रखा जाए। तसलीमा की रचनात्मक अंतरात्मा से निकली आवाज का एक पुस्तक के रूप में आना पितृसत्ता, धर्म और राजनीति के गठजोड़ को झकझोरता है। तमाम आलोचनाओं और झंझावातों को कमजोर साबित करते हुए तसलीमा का लेखन अब भी जारी है जो निसन्देह प्रशंसा का विषय है। यह जानना रोचक होता है कि तसलीमा सामाजिक यथार्थ को अब किस नये कलेवर के साथ पेश करने जा रही हैं। उनके साहित्य में वे सभी तत्व मौजूद हैं, जो एक लेखक के साहित्य में होना चाहिए। विषय, शैली, भाषा, बिम्ब और प्रतीकों का उचित स्थान पर और कई बार अनोखा प्रयोग उनकी रचनाओं को साहित्यिक पुट देते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं का उद्देश्य भी साहित्यिकता के मानदंडों के अनुरूप है। निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर तसलीमा की रचनात्मकता को समझा जा सकता है-

विषय वैविध्य : तसलीमा की रचनाओं का मूल विषय और उद्देश्य ही तसलीमा की रचनाओं को साहित्य सिद्ध कर देता है। उनके साहित्य का उद्देश्य है 'मानव कल्याण'। यह मानव कल्याण वे मानव जीवन की आलोचना के माध्यम से करती हैं। निश्चित रूप से इस आलोचना में कुछ कटु सत्यों को बाहर आना ही था। इन कटु सत्यों की अभिव्यक्ति से बचकर साहित्यिक उद्देश्य की पूर्ति नहीं की जा

सकती। और न ही वे स्वयं भी इन सत्यों से बचकर अपने साहित्य को केवल कपोल-कल्पना के धरातल पर खड़ा करना चाहती हैं। अपने समूचे साहित्य में तसलीमा ने 'मानववाद' को प्रतिष्ठापित किया है। उनका रचनात्मक उद्देश्य है कि वे विश्व को शांत और सुन्दर देखना चाहती हैं। इसकी शुरुआत वे स्त्री जीवन की विसंगतियों की ओर इंगित करने से करती हैं। प्रो. कृपाशंकर चौबे लिखते हैं कि "स्त्री के बारे में तसलीमा की कवितायें अपने-आप को इतने बेहतर ढंग से अभिव्यक्त कर देती हैं कि उनपर अलग से टिप्पणी करने की कोई आवश्यकता ही नहीं।"¹⁷⁷ इससे होते हुए वे पितृसत्ता, धर्म, राजनीति, मृत्यु, जीवन, प्रेम, घृणा, नास्तिकता, ईश्वर, कोलकाता, राजनीति, निःसंगतता, निर्वासन आदि को विषय के रूप में लेकर अपना साहित्य रचती हैं। विशेषकर उनकी कविताओं में विविधता और विषय के प्रस्तुतीकरण की नवीनता है। स्त्री को मनुष्य समझे जाने का उद्देश्य लिए वे कभी, कविता, कभी कहानी, कभी उपन्यास, कभी आलेख और कभी आत्मकथा विधा को माध्यम बनाती हैं। किन्तु हर बार अभिव्यक्ति का स्वरूप भिन्न और प्रभावित कर देने वाला रहा है। उदाहरण के लिए-

स्त्री के सम्बन्ध में :

क्या जानती है स्त्री
कि रूप दरअसल
खुद के नीचे बनाता है
अँधेरे का कूप¹⁷⁸

सम्बन्धों की जटिलता - 'कुत्ता और बिल्ली को प्रेम करना आसान है, मनुष्य को नहीं।' ¹⁷⁹

अहैतुक प्रेम -

'प्यार पाकर
बैंगन का भुर्ता

दो ठो मिर्च भात

फुटपाथ पर रात

तब भी एक तृप्ति मिलती है जीने की'¹⁸⁰

या

जब तुम मेरे साथ नहीं होते तब तुम होते हो मेरे साथ सबसे ज्यादा

मैं चलती हूँ तो लगता है, तुम भी चल रहे हो संग-संग'¹⁸¹

देश प्रेम : 'देश तुम कैसे हो/कैसे हो देश तुम ? तुम देश कैसे हो ? कैसे हो तुम देश/ मेरा दिल तड़पता है तुम्हारे लिए, तुम्हारा नहीं तड़पता ?'

व्यवस्था से विद्रोह - 'नष्ट लड़की' कविता - 'ये लड़कियाँ किसी की भी बात पर कान नहीं देतीं, जो मन होता है वही करती हैं/किसी के आदेश-उपदेश की परवाह नहीं करतीं' या 'ओ, मन जागो' कविता में 'ओ मन तुम उठो नाचो अपनी तरह/ तुम अपनी तरह जिंदा रहो'¹⁸²

मृत्यु और जीवन - 'लौकिक जीवन' कविता में- 'मृत्यु के उस पार कुछ नहीं - मैं जानती हूँ ...अँधेरा सन्नाटा और अकेलापन कट जाते हैं/सिर्फ नहीं कटता है इस छोटे से जीवन का मोह ।'¹⁸³

'मृत्यु -एक' कविता में -

'बाथरूम में पानी की आवाज़ तक में,

बजती रहती है मौत की आहट !

शाम उतरते ही चुपके-चुपके आ खड़ी होती है मृत्यु,

कानों में फुसफुसाकर, दे जाती है अपना नाम पता ।'¹⁸⁴

ईश्वर के सम्बन्ध में - 'ईश्वर पर भरोसा नहीं/ प्रकृति को देखती हूँ मुग्ध आँखों से ।'¹⁸⁵

विज्ञान और तर्क के सम्बन्ध में - 'इहलौकिक' कविता में -

'दूर हटो चाँद, सोडियम की बत्ती जल रही है आज ।

लैम्प पोस्ट के नीचे खड़ी हूँ राह पर

चुम्बन लूँगी वैज्ञानिक ढंग से ।

...

निर्माण, सिर्फ निर्माण समझती हूँ आज

डायनोसोर विलुप्त हो चुका है

देह और मन की जंजीरों को खोलकर

चलो, जी उठें वैज्ञानिक ढंग से ।¹⁸⁶

नज़रबंद किये जाने पर कविता : तसलीमा अपने कविता संकलन में सात महीने की शोक गाथा लिखती हैं, जिनमें उनके जीवन के अकेलेपन और निःसंगतता का आभास मिलता है । वे इसमें भी आशा के बिंदु खोजती नज़र आती हैं -

'यदि आज जिंदा होते गाँधीजी

बंदी शिविर से चाहे जैसे भी हो

मेरा उद्धार करते ।'¹⁸⁷

एक तरफ तसलीमा की कविताओं और आलेखों में विषयों की विविधता है जबकि उपन्यास, कहानी, और आत्मकथा स्त्री को केंद्र में रखकर उसके अधिकारों, समानता और सहस्तित्व के लिए सम्भावनाओं की खोज करते नज़र आते हैं । कई बार तसलीमा की रचनाओं के विषय में दुहराव नज़र आता है ।

यह देखा जा सकता है कि जो विषय गद्य में हैं कई बार उन्हीं विषयों को आधार बनाकर पद्य भी लिखे गये हैं, जिसके कारण उनपर पुनरावृत्ति का आरोप भी लगाया जा सकता है । किन्तु उन्हीं समस्याओं से बार-बार झूझते हुए, उन्हीं घटनाओं से बार-बार रूबरू होते हुए, रचना के फलक पर

चाहे वह गद्य हो या पद्य, विषयों में समानता और एकरूपता होना स्वाभाविक है। यह समानता या दोहराव नकारात्मक न होकर सकारात्मक है। यहाँ गद्य और पद्य में उठाये गये समान विषय एक-दूसरे के पूरक बन गये हैं। जो रचना को सम्पूर्णता प्रदान करती है। उदाहरण के लिए बांग्लादेश पर लिखे गये आलेख के लिए 'भाषा दिवस' कविता और धर्म पर लिखे आलेख के लिए 'ईश्वर' कविता और बिल्ली पर लिखे आलेख के लिए 'बिल्ली के साथ आत्मीयता' और 'बिल्ली चाहती है चिंताहीनता' जैसी कवितायें, स्त्रीवाद पर लिखे गये लेख की विद्रोहात्मकता को कविताओं में पूरक के रूप में देखा जा सकता है। इस पुनरावृत्ति से तसलीमा स्वयं भी परिचित हैं और इस सम्बन्ध में अपना पक्ष साफ़ करते हुए यह बताना नहीं भूलती कि चूँकि उन्होंने औरतों के दुःख को नज़दीक से देखा है, चूँकि वे राजनीति का शिकार हुई हैं, धर्म को नज़दीक से देखा है, इसलिए वे बार-बार इन मुद्दों को उठाती हैं और साथ ही यह भी स्पष्ट करती हैं कि वे ग्रामीण या काल्पनिक लेखन करने में इसलिए सहज महसूस नहीं करतीं, क्योंकि एक तो, उन्हें कल्पना से ज्यादा यथार्थ का धरातल पुख्ता लगता है और दूसरा उन्होंने कभी भी ग्रामीण जीवन नज़दीक से नहीं देखा। उनके जेहन को जीवन की वास्तविक घटनाएँ ही अपील करती हैं। यथार्थ तो बार-बार आवृत होगा ही, अब इसमें जिन्हें पुनरावृत्ति नज़र आती है तो आती रहे। उनके भीतर की रचनात्मकता विषय पुराना होने के बावजूद उसे हर बार नई अभिव्यक्ति देती है। इस सम्बन्ध में कृपाशंकर चौबे का मत है, "लेकिन ध्यान देने योग्य यह है कि विषय पुराना होने पर भी तसलीमा ने उसे नये ढंग से कहा है। कवयित्री की साहित्यिक देन की कसौटी इस बात में है कि जिस तरह उनके यहाँ पुराने विषय नये बन जाते हैं, उसी तरह पुराने शब्द भी नये बन जाते हैं। नयापन को सिद्ध कर ही वे पुराने विषयों पर कलात्मक समाधान प्रस्तुत करती हैं।"¹⁸⁸ उदाहरण के लिए - कलकत्ता विषय पर ही उन्होंने लगभग 16 कवितायें लिखी। इसी प्रकार- 'सिहरन', 'दूरी', 'खेल', 'मृत्यु' शीर्षक से भी कई कवितायें लिखीं। किन्तु हर बार अभिव्यक्ति में नवीनता दिखाई पड़ती है। दरअसल उनकी पुस्तकें 'शुगर कोटिंग नहीं यथार्थ की तस्वीर है', जिसमें नवीन की ओर बढ़ने का

आग्रह है। वे लिखती हैं, "प्रेम कविता का एक बड़ा विषय है, फिर भी एक तरह की जंजीर भी है ... दूर करती जा रही हूँ पुराना, प्राचीन जो कुछ है उस सबको। नवीन की तरफ जाना चाहती हूँ प्रतिदिन।¹⁸⁹

इसके साथ-साथ तसलीमा अपने समय से कभी भी तटस्थ नहीं दिखतीं। उनकी कवितायें और आलेख इसमें उनके सहायक बन समकालीन विषयों पर उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम बनते हैं। जैसा कि हाल ही में आई उनकी पुस्तक 'कुछ गद्य, कुछ पद्य' और 'निषिद्ध' में देख सकते हैं। गद्य में संकलित किये गये कलामों (लेखों) में तसलीमा ने विश्व को 'मानचित्र विहीन'¹⁹⁰ मानते हुए कई बार एक ही पटल पर ला खड़ा किया है। यहाँ भारत और बांग्लादेश ही नहीं अमेरिका, तुर्की, अरब, चीन, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, म्यामार, श्रीलंका, मंगोलिया, सोमालिया, फलस्तीन, स्वीडन आदि देशों के समकालीन सन्दर्भों को सामने लाने प्रयास किया गया है जो समकालीन अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर उनकी समझ का ही प्रमाण हैं।

भाषा-शिल्प :

सहज भाषा : तसलीमा की भाषा सीधी और सरल है, जिसमें एक प्रकार का माधुर्य और प्रवाह है। तसलीमा की सभी रचनाओं की भाषा इतनी सहज है कि उनकी सभी रचनाएँ पाठक से संवाद करती नज़र आती हैं। तसलीमा की रचनाओं के अनुवाद भी इसी कारण से सहज बन पड़े हैं। उनमें तसलीमा के साहित्यिक उद्देश्य या रचनाओं का मूल उत्स बरकरार है। उदाहरण के लिए 'पण्य' या 'विक्रय वस्तु' कविता - 'बिल बोर्ड में किसकी तस्वीर टंगी है? नारी की/जोर से किसका शरीर चल रहा है ? नारी का/ऊपर से नीचे कौन ढकी हुई है ? नारी...।' ¹⁹¹ या 'नारी' कविता - 'नारी निर्वासित है पूरब-पश्चिम में, उत्तर दक्षिण में।' ¹⁹² कविताओं के साथ-साथ उपन्यास, कहानी, आलेख और आत्मकथा में भी भाषा की सहजता है- गद्य में भी एक प्रकार की लयबद्धता मौजूद है जो उनके साहित्य को नीरस और उबाऊ होने से बचाती है। उनकी भाषा पर पकड़ और नियत शब्दों के प्रयोग

की कुशलता के सम्बन्ध में प्रयाग शुक्ल लिखते हैं, "तसलीमा शोषक और अत्याचारी शक्तियों का प्रतिरोध करती हुई मुखर हैं, पर, इस मुखरता में भी शब्द स्फीति नहीं है।"¹⁹³

बिम्ब और प्रतीक : तसलीमा ने अपने साहित्य में कई बार सुन्दर और अनोखे बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग किया है। उनके बिम्ब इतने सशक्त हैं कि उनकी मूल भावना यथाशीघ्र पाठक तक पहुँच जाती है। यही कारण है कि समाज की जटिलता को भी वे सरलता से पाठकों तक पहुँचा पायी हैं। 'डर' कविता में - 'अब स्वप्न में नहीं जागते हुए देखती हूँ चन्द्रबोड़ा साँप', या 'औरत का जन्म लिए और प्रतिभा का पाप लिए/ हर रोज़ नियत चट्टान हटाकर चलती हूँ'¹⁹⁴ या 'वे आलता की एक शीशी पाकर मारे खुशी के /तीन दिन बिना सोये बिता देती हैं' या 'घर का मरियल कुत्ता भी जरूरत पड़ने पर भौंक उठता है/पर सस्ती लड़की के मुँह पर एक क्लिप लगा रहता है/ सोने का क्लिप'¹⁹⁵ या फिर 'बड़ी होने पर लड़कियाँ एक-एक तिलचट्टा क्यों बन जाती हैं?', पुरुष 'दिनभर झूलता है चमगादड़ की तरह किसी के भी जीवन में'¹⁹⁶, 'जीवित रहना बहुत कुछ बस के दरवाजे पर, खड़े रहने जैसा'¹⁹⁷ 'भूल जाओगे तो लगेगा जैसे, पैर में काटने वाला जूता उतर गया'¹⁹⁸, 'पत्नी सुन्दर कपड़ों में सजी-धजी एक उन्नत किस्म की दासी होती है'¹⁹⁹, 'औरत जंजीर तोड़ कर बाहर निकल आई है यह मेरे लिए एक बेजोड़ कविता है, जंजीर टूटने की आवाज मेरे लिए सबसे मधुर संगीत है'²⁰⁰, 'एक्स और वाई के बीच अस्सी और बीस, ऊँच और नीच, ज्यादा और कम की कोई तुक नहीं/फिर भी 'एक्स' के कंधे पर चढ़कर बैठा है वाई'²⁰¹, 'अच्छा किया है' कविता में - 'एक लम्बा जीवन अकेले ही चलूँगी, यह सोचकर/जूते का सोल मोटा करके मजबूत धागों से सिल लिया है'²⁰², 'नहीं' शब्द छाती, कलेजे के मांस और पसलियों को चीरता हुआ/निःशब्द प्रलय ले आता है'²⁰³, 'प्रतिदिन दक्षिण-पश्चिम दिशा से सलेटी रंग की पोशाक पहनकर स्वप्न घूमने आता है'²⁰⁴ आदि तमाम प्रयोग हैं जो तसलीमा के काव्य में ही नहीं उनकी गद्यात्मक अभिव्यक्तियों को भी सहज प्रेषणीय बनाते हैं।

शैली : तसलीमा की रचनाओं में एक प्रकार का आवेग और आक्रोश दिखता है, जिसके भीतर छुपी भावनाओं को वे आवश्यकतानुसार कभी संयत तो कभी उग्रता के साथ प्रस्तुत करती हैं। इसे सुन्दर और संप्रेषणीय बनाने के लिए वे छन्द, तुक, अलंकार के प्रयोग के साथ-साथ मुक्त छन्द का प्रयोग करती हैं और इसी में अपनी अधिकाधिक अभिव्यक्तियाँ की हैं। 'स्त्री-पुरुष छन्द' शीर्षक कविता में तुकबंदी का उदाहरण -

रुई-नारी साथ पुरुष के
पुरुष ने उसको धुना
नग्न देह, भग्न माथा
नारी के मुँह पर चूना।²⁰⁵

वे 'बैलेंस की नीति' से आगे बढ़ आना चाहती है और लिखती हैं "बैलेंस बढ़ी खतरनाक चीज है। बैलेंस करना पड़े तो अपनी प्रतिभा, ईमानदारी और साहस सभी को छोड़ना होगा"²⁰⁶। इसे वे किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ना चाहती। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में एक प्रकार की ईमानदारी निरंतर दिखाई पड़ती है।

आत्मकथा के सात भागों में जीवन की तमाम उथल-पुथल, संघर्ष और विभत्सता के चित्रण के बावजूद उनकी कथा क्रम में एक लयात्मकता है, एक कहन शैली है जो प्रभावित करती है। एक सच्ची और ईमानदार आत्मकथा का रोचक रूप में प्रस्तुत किया जाना उनकी विशिष्टता है। अन्यथा जीवन की कटुता की अभिव्यक्ति करते-करते लेखन में लयबद्धता एवं रस कहीं विलुप्त हो जाता है। तसलीमा की प्रस्तुतीकरण की शैली विभत्सता और सौन्दर्य के बीच खूबसूरती से तारतम्य स्थापित करती है। परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती है। उदाहरण के लिए देश छोड़ने के समय अपनी पीड़ा अभिव्यक्त की तो उसमें भी एक प्रकार की लयात्मकता दिखती है और जो तसलीमा की दुःख को तमाम बिम्बों के माध्यम से सामने प्रकट कर देने की शैली और विशिष्टता का ही प्रमाण है। 'वे अँधेरे दिन' के अंतिम पृष्ठ पर लिखा है, "जैसे-जैसे मैं ऊपर चढ़ती गयी, मेरा देश धूसर पड़ता गया।

मेरा देश बूँद-बूँद करके अदृश्य होता गया। मेरी नजरों से अदृश्य होते गये, हवाई अड्डे पर खड़े, मेरे अब्बू, शांतिनगर के बरामदे में खड़ी, आसमान की तरफ नजरें गड़ाए, मेरी अम्मी !...बादलों का यह रेला, शायद ज़रा दूर खिसक जाए, इस उम्मीद से मैं टकटकी बाँधे आसमान की तरफ देखती रही - 'हट जाओ, मेघ, ज़रा, हट-बढ़ जाओ, ज़रा परे खिसक जाओ, मुझे ज़रा देर और देख लेने दो...'।²⁰⁷

आज तक लिखे गये साहित्य में माँ के प्रति जितनी भी अभिव्यक्तियाँ की गयीं हैं उनमें तसलीमा की अभिव्यक्ति भी उल्लेखनीय हो सकती है, जिसे तसलीमा ने आत्मकथा के छठवें भाग 'नहीं, कहीं कुछ भी नहीं' में अभिव्यक्त किया है। माँ जो कि एक स्त्री भी है कि जीवन भर उपेक्षा किये जाने का पश्चाताप, स्त्री के रूप में अपने ही घर की प्रमुख स्त्री को नज़रन्दाज किये जाने का पश्चाताप इस भाग में जिस तरह से उभरा है वह सामान्य व्यक्ति के बस की बात नहीं। उदाहरण -

आत्मकथा में माँ के लिए लिखी एक कविता का अंश -

"मेरा बस, एक आग्रह है,
करती हूँ अनुरोध हाथ जोड़कर,
मुझे यह भरोसा करने को मत कहो कि 'तुम नहीं हो'!"²⁰⁸

'दुखवती' कविता का अंश-

"माँ को दुःख के हाथों सौंपकर घरवाले असम्भव राहत पाते,
दुखों को बैठने के लिए पीढ़ी देते,
नीम्बू का शरबत पेश करते, पनडब्बे का पान देते,
दुखों की उँगलियों के पोरों पर चूना लगा रहता...
वे तमाम दुःख, माँ से, सूत भर भी कभी परे नहीं हटें !
मेरा मन था, लोहे के संदूकों में दीमक
नन्हे तिलचट्टों के साथ, और भी तिलचट्टे,

नेपथलीन के साथ, उन्हें भी भर रखूँ
मेरा मन था, सैर कराने के बहाने ले जाकर,
ब्रम्हपुत्र के जल में, बहा दूँ किसी दिन !"²⁰⁹

तसलीमा ने आत्मकथा के छठवें भाग 'नहीं, कहीं कुछ भी नहीं' में एक अनूठी शैली का प्रयोग किया है। माँ को एक लम्बे पत्र के रूप में लिखी यह आत्मकथा एक बेटी के माँ की सेवा न कर पाने के प्रायश्चित और अपने जीवन की हर बात एक सहेली से बताने के रूप में लिखी गयी है और यह सहेली और कोई नहीं तसलीमा की माँ ही हैं। आत्मकथा की शुरुआत 'तुम्हारी अयोग्य नकारा बेटी' से करते हुए 'माँ, तुम कैसी हो तुम ?' से शुरू होती है और अंत होता है कुछ इन शब्दों में, 'मैं चाहती हूँ जो ग्लानि मैं भुगत रही हूँ, जो अपराध बोध, मुझे निरंतर कष्ट भोगने को विवश करता रहा है, इसी तरह मैं बाकी जिन्दगी भी कष्ट झेलूँ। मैं जितने दिनों भी जियूँ मेरी मुक्ति न हो। यह प्रायश्चित नहीं है, यह मेरी स्वीकारोक्ति है। मैं जितनी भी भली हूँ, वह तुम्हारी वजह से ! जितनी भी बुरी हूँ मैं, वह अपनी वजह से ! मेरे बुरे होने की जिम्मेदारी मुझे ही लेने दो !"²¹⁰ यह प्रायश्चित, यह दुःख और ग्लानि इसमें डूबते हुए हम 'सरोज स्मृति' की छवि महसूस करने लगते हैं।

इसी प्रकार प्रेम को लेकर की गयी अभिव्यक्तियाँ, प्रेम में डूबकर पार होना जैसा सूफी प्रेम में दिखाई पड़ता है कुछ वैसा चित्रण किया है तसलीमा ने। उदाहरण - "जितना मैं कहती "चलो, हम प्यार करें।" वह उतनी ही जिद पर आ जाता, चलो सोने चलें।"²¹¹ प्रेम में पड़कर "जड़ जमाकर बैठी हुई इच्छाएँ, ढीठ बच्ची की तरह, जाने कैसे तो हड़बड़ाकर बाहर निकल आती थीं।"²¹² और वे प्रेम को शर्तहीन और सीमाहीन स्वीकार करती हैं इसी कारण उन्हें एक ऐसे लड़के से प्रेम हो जाता है जिसे उन्होंने कभी नहीं देखा लेकिन उसकी कविताओं को पढ़ा है, उसी एक माध्यम से उसे महसूस किया है - "मेरा प्यार रुद्र के शब्दों के साथ था। 'उपद्रुत-उपकूल' की कविताओं और अक्षरों और उसके खतों के साथ था। इसके पीछे के इन्सान को मैं नहीं पहचानती थी।"²¹³ इसी प्रकार, "इन्सान जिन्दगी में शायद एक ही बार प्यार करता है, इसे वह बार-बार दुहरा नहीं पाता। और किसी के लिए तो सीने

में इतना दर्द जमा नहीं होता; और किसी के लिए तो आँखों से आँसू नहीं झरते ...मैंने जी-जान से रुद्र से नफरत करने की कोशिश की है, लेकिन नाकाम रही। उसकी कविताओं के हर शब्द ने मेरी उस कोशिश को दूर-दूरांतर तक उड़ा दिया।'²¹⁴ इसके अतिरिक्त 'लज्जा' उपन्यास कहा गया वह वाक्य कैसे भूला जा सकता है - 'सुरंजन खुद को एक आधुनिक मनुष्य मानता था लेकिन अब उसे अपने को हिन्दू-हिन्दू लगता है' '²¹⁵ उपन्यास के समस्त कथ्य को एक पंक्ति में समेटकर 'सूत्र वाक्य' सा बन जाता है।

तसलीमा अपनी रचनाओं में बार-बार एक प्रयोग करती दिखती हैं वह है शब्दों का दोहराव या किसी शब्द विशेष पर बल या वाक्यों में सर्वथा अवांछनीय शब्दों का प्रयोग या वाक्य संरचना में विचलन। उदाहरण के लिए - 'तुम्हारे पीछे मर्दों का झुण्ड लगा है ? याद रहे ? सिफलिस'।²¹⁶ इसमें सिफलिस शब्द का अचानक से आ जाना ध्यान आकर्षित करता है। इसी प्रकार 'देश तुम कैसे हो ?/ कैसे हो तुम देश?/तुम, देश कैसे हो ?/ कैसे हो देश तुम ?'²¹⁷, 'मनुष्य का पूरा इतिहास ही शायद कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं है'²¹⁸ आदि। यह सहज है या सोच समझकर किया गया है यह तो स्पष्टतः नहीं कहा जा सकता किन्तु इसमें 'फोरग्राउंडिंग' या 'अग्रगामिता' की वही साहित्यिक तकनीक दिखाई देती है, जिसे रूसी भाषाविद मुकरोव्सकी ने प्रस्तुत किया था। बच्चन सिंह का मत है 'अग्रगामिता एक शैलीवैज्ञानिक शब्द है। इसे भाषिक विचलन के समकक्ष समझा जा सकता है। इसमें सामान्य भाषा का घिसी-पिटी अभिव्यक्तियों और सम्प्रेषणों के नियमों को तोड़ता हुआ कवि ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो पाठकों को नये परिप्रेक्ष्य के प्रति सचेत करती है'।²¹⁹ ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी के अनुसार - 'Foregrounding is the action of emphasizing something by means of linguistic devices.'²²⁰ हैलिडे ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया - 'as a part of the functional theory of language, or what cannot be expressed statically is foregrounding.'²²¹

स्पष्ट है, तसलीमा का समस्त साहित्य विचारों के साथ शैलीगत प्रयोग भी करता है। इस प्रयोग में सर्वथा नवीनता है। अभिव्यक्ति इतनी शक्ति है कि पाठक उनकी भावनाओं से निरंतर जुड़ाव महसूस करता है। तसलीमा के करीबी और उनके दिल्ली में नजरबंद रहने के दिनों में उनके संपर्क में रहे कृपाशंकर चौबे लिखते हैं, "मेरी समझ में नहीं आता कि तसलीमा ने अपने साहित्य में नारी मुक्ति से लेकर धर्मनिरपेक्षता तक अपने स्वतंत्र और एक हद तक जो मौलिक विचार व्यक्त किये हैं और बेबाकी से जो सवाल खड़े किये हैं, उनसे असहमति की गुंजाइश कहाँ है?"²²² ऐसे में नामवर सिंह के कथन "यदि शब्दों द्वारा अंतःकरण के गुप्त रहस्य प्रगट किये जाते हैं; चित्त की वेदना को शांति दी जाती है; हृदय में बैठा हुआ शोक बाहर निकल दिया जाता है; दया उत्पन्न की जाती है और बुद्धि चिरस्थायी बनाई जाती है; यदि बड़े ग्रंथकारों द्वारा बहुत से मनुष्य मिलकर एक बनाये जाते हैं; जातीय लक्षण स्थापित होता है; भूत और भविष्य तथा पूरब पश्चिम एक दूसरे के सम्मुख उपस्थित किये जाते हैं; ऐसे लोग मनुष्य जाति में अवतार स्वरूप माने जाते हैं - तो साहित्य की अवहेलना करना और उसके अध्ययन से मुख मोड़ना कितनी बड़ी कृतघ्नता है"²²³ के अनुरूप तसलीमा के साहित्य की उपेक्षा करना या उससे मुँह मोड़ना समाज के लिए उपयोगी एक सशक्त अभिव्यक्ति को खो देना होगा।

(आ) तसलीमा के साहित्य में श्लीलता-अश्लीलता :

तसलीमा के साहित्य को 'अश्लीलील साहित्य' कहकर भी खारिज करने का प्रयास किया गया है। इस आरोप-प्रत्यारोप के दौरान वे यह देखना भूल गये कि अश्लीलता का साहित्य से कहाँ तक सम्बंध है। क्या अश्लील शब्दों या वाक्यों के प्रयोग के कारण साहित्य की महत्ता खत्म हो जाती है? इस संबंध में सर्वप्रथम यह देखना आवश्यक है श्लीलता-अश्लीलता क्या है एवं इसका साहित्य से कहाँ तक सरोकार है?

(i) **श्लीलता एवं अश्लीलता : साहित्य से सरोकार :-** श्लील शब्द का अर्थ है - 'उत्तम', 'शुभ', 'भद्र' जबकि अश्लीलता का अर्थ है, अशुभ, गन्दा, अनुचित, अशोभनीय, घृणास्पद, भोंडा या जुगुप्सा उत्पन्न करने वाला। इसके लिए अंग्रेजी में 'Obsenity' शब्द का प्रयोग किया जाता है जो लैटिन के 'obscures' से बना है जिसका एक अर्थ है 'छुपाना'। अश्लील के अंतर्गत मल-मूत्र जैसी गन्दी चीजें और गाली-गलौज जैसी अभद्र चीजें भी आती हैं तो दूसरी ओर स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्ध जैसी गोपनीय चीज भी। मानक हिंदी कोश में इसका अर्थ 'फूहड़पन, भद्दापन, लज्जस्पदता' बताया गया है।²²⁴

प्राचीन आचार्यों जैसे मम्मट, विश्वनाथ, वामन, भामह आदि ने अश्लील को साहित्य का एक दोष माना है। भारतीय काव्यशास्त्र में इसके लिए 'ग्राम्यत्व दोष' पद का प्रयोग करते हुए अश्लीलता को इसी में सम्मिलित किया है। जहाँ किसी 'लज्जाजनक' या 'अमंगल' का भाव होता है वहाँ यह दोष माना जाता है। अश्लीलता को रचना के सौन्दर्य में बाधक माना है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में लिखा, "नाटक में जब इन ग्राम्य या लज्जाजनक बातों का प्रयोग किया जाता है तब इसमें रस भंग होने का भय होता है क्योंकि नाटक परिवार व अन्य सदस्यों के साथ देखा जाता है यदि इसमें कहीं भी लज्जाजनक दृश्य हो तो संकोच महसूस होगा जिससे रसभंग होने का भय बराबर बना रहेगा। अतः इन चीजों का निषेध आवश्यक है।"²²⁵

श्लीलता-अश्लीलता के मानदंड के सम्बन्ध में विश्वनाथ तिवारी का मत है कि इसके निर्धारण के लिए कोई एक विशेष मानदंड नहीं बनाया जा सकता क्योंकि वे मानदंड केवल एक देशकाल विशेष से सम्बंधित होते हैं वे दूसरे देशकाल विशेष पर लागू नहीं होते। उदाहरण के लिए जो कार्य भारत में अश्लील समझा जाता है, जैसे सार्वजनिक स्थल पर चुम्बन लेना वह इंग्लैण्ड या अन्य यूरोपीय देशों में किसी भी तरह से अश्लील नहीं माना जाता। यही बात शब्दों के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं। कुछ शब्द ऐसे हैं जो एक भाषा विशेष में तो अश्लील हैं किन्तु दूसरी भाषा में वे अश्लील नहीं हैं। लक्ष्मीकान्त वर्मा का मत भी कुछ इसी प्रकार है। उनका मत है, "कोई भी कलाकृति सुन्दर या असुन्दर

तो हो सकती है किन्तु वह श्लील-अश्लील नहीं हो सकती। वस्तुतः श्लील-अश्लील साहित्यिक या कलात्मक मानदंड नहीं है।"²²⁶

इस प्रकार कह सकते हैं भाषा की विविधता और सांस्कृतिक विविधता के कारण प्रत्येक देश और समाज के अश्लीलता और श्लीलता के मानदंड भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते हैं, "नीति-अनीति के निर्धारण में दृष्टि का विशेष महत्व होता है। एक ही दृश्य एक की दृष्टि में अश्लील हो सकता है और दूसरे की दृष्टि में नहीं।"²²⁷ रचना की श्लीलता-अश्लीलता के निर्धारण के सम्बन्ध में वे लिखते हैं, "किसी रचना की जाँच पड़ताल के सम्बन्ध में यह देखना जरूरी है कि लेखक ने जो चित्रण किया है वह उसकी रचनात्मक ईमानदारी के लिए जरूरी था या उसने यों ही प्रदर्शन, चमत्कार अथवा मजा लेने के लिए कर दिया है। यदि वह रचनात्मक वास्तविकता के लिए जरूरी था तो उसे हम अनैतिक या अश्लील नहीं कह सकते।"²²⁸ वे श्लीलता-अश्लीलता का निर्धारण करने की तीन दृष्टियों का उल्लेख करते हैं, "एक दृष्टि तो वह है जो चीजों के नाम रूप की सीमाओं को भेदकर तह तक जाने का प्रयास करती है। ऐसी दृष्टि मुक्त होती है और इसके लिए श्लीलता-अश्लीलता जैसी कोई चीज नहीं होती है। दूसरी दृष्टि वह है जो नितांत संकीर्ण तथा अधूरी है और जो ट्रांजिस्टर बजाने या अपनी बीबी के साथ बातचीत करने को अश्लील मानती है। भारतीय गांवों में यही दृष्टि नीति-अनीति का निर्धारण करती है। अधूरी और संकीर्ण दृष्टि सदा अश्लील होती है चाहे वह कलाकार की हो या पाठक की शासन की। तीसरी दृष्टि इन तीनों के बीच की दृष्टि है जो एक सामाजिक परिवेश में अपने वैयक्तिक पूर्वाग्रहों से बहुत कुछ मुक्त होकर श्लीलता-अश्लीलता का निर्धारण करती है।"²²⁹ स्पष्ट है, विश्वनाथ तिवारी इस सम्बन्ध में एकदम स्पष्ट हैं कि कहीं पर अनावश्यक ही अश्लीलता की खोज करना नितांत संकीर्ण विचारधारा का द्योतक है। तसलीमा को भी इसी संकीर्ण दृष्टि से देखने का प्रयास करने के कारण ही उनके साहित्य को 'पोर्न साहित्य' की श्रेणी में रखने का प्रयास किया गया।

तसलीमा ने अपने साहित्य में 'लिंग', 'सेक्स' या 'यौन सम्बन्ध', 'देह' आदि की बात अधिकतर की है, जिसके कारण कई लोगों को यह अश्लील नज़र आता है। किन्तु वास्तविकता में देखें तो ये

शब्द स्त्री-जीवन और स्त्री-विमर्श की एक प्रकार से पारिभाषिक शब्दावलियाँ हैं, जिनसे गुजरे बिना स्त्री सम्बन्धी चिंतन से न्याय नहीं किया जा सकता। विश्वनाथ तिवारी के अनुसार, "जिस प्रकार सेक्स का दमन मनुष्य में नाना प्रकार की विकृतियों और कुंठाओं को जन्म देता है उसी प्रकार साहित्य में सेक्स का गोपन चित्रण भी उसे यथार्थ से दूर करता है और उसकी सर्जनात्मक क्षमता को मारता है।"²³⁰ वे इस सम्बन्ध में भक्ति काल (सूर और विद्यापति) और रीति काल की रचनाओं का उदाहरण देते हैं, जिनमें भक्ति के नाम पर कई बार अश्लीलता दिखती है जबकि कई साहित्य ऐसे हैं जो खुले रूप से सेक्स का चित्रण करते हैं किन्तु उनमें अश्लीलता नहीं दिखाई देती। डॉ. हाँसदा सोर्वेन्द्र शेखर के भी साहित्य को अश्लील कहकर प्रतिबंधित किया गया। एक साक्षात्कार में वे कहते हैं, "लोग अगर दर्शन खोजेंगे तो मेरी कहानी में दर्शन मिलेगा। लेकिन अगर लोगों के मन में ही मैल भरा हुआ है, लोग सेक्स को बुरा मानते हैं, जो हरेक चीज में धूल के कण में सेक्स खोज रहे हैं तो उन्हें सेक्स ही दिखेगा। हम चाहे हरि भजन लिख लें या फिर से महाभारत लिख लें, उन लोगों को मेरी लेखनी में सेक्स ही नजर आयेगा...! हमें जो मन आयेगा, हम लिखेंगे। हम सब सेक्स से ही पैदा हुए हैं तो क्या दिक्कत है उससे।"²³¹ रूसी लेखक सोल्जेनित्सिन के शब्दों में, "स्वीकृत और अस्वीकृत - ऐसा तुम लिख सकते हो, ऐसा नहीं - की श्रेणियों में साहित्य का विकास नहीं हो सकता। साहित्य यदि अपने समकालीन समाज की आत्मा नहीं है, समाज को उसके सुख-दुःख नहीं पहुँचाता, आसन्न नैतिक और सामाजिक संकटों के विरुद्ध चेतावनी नहीं देता तो वह साहित्य नाम का अधिकारी नहीं है, वह एक आभार भर है।"²³² जगदीश्वर चतुर्वेदी के अनुसार, "लेखक या रचनाकार की मर्यादा का फैसला लेखक स्वयं करता है। वह सिर्फ एक ही मर्यादा मानता है और वह है सृजन की मर्यादा। इस क्रम में वह समाज की मर्यादाओं को तोड़ता है... रचनाकार की मर्यादा को यदि सत्ता तय करने लगे, संगठन तय करने लगे, धर्म गुरु तय करने लगे या संघ परिवार तय करने लगेगा तब तो यह सीधे-सीधे रचनाकार के कामकाज में हस्तक्षेप होगा।"²³³ जगदीश्वर इसे 'दाब की राजनीति' या 'जनता का फासीवाद' कहते हैं। कलाओं में जीवन का सौन्दर्य या कुरूपता व्यक्त हो यह तो रचनाकार ही तय करेगा। इसमें पाठक की आस्था हो

या अनास्था इससे लेखक का कोई सरोकार नहीं। जैसा कि अज्ञेय का मत है, "कला का नैतिकता के प्रचलित रूप से कोई लगाव नहीं है - उसे तो नैतिकता के बुनियादी स्रोतों से मतलब है।"²³⁴ उनके अनुसार "श्लील-अश्लील का प्रश्न सामाजिक नैतिकता का प्रश्न है। साहित्य का प्रश्न वह नहीं है।"²³⁵ दूसरी तरफ नरेंद्र कोहली जैसे लेखकों का मत है, "पाठक की रतिक्रिया मर्यादित होनी चाहिए पर इसके लिए यह आवश्यक है कि कलाकार की रचना की भी कोई मर्यादा होनी चाहिए।"²³⁶

स्पष्ट है साहित्य में कई बार मर्यादित लेखन को प्रोत्साहित किया गया है तो कहीं समस्त मर्यादाओं से आगे निकलकर एक बेहतर स्तर तक साहित्य को ले जाने के लिए प्रेरित किया गया है।

(ii) तसलीमा का साहित्य और श्लीलता-अश्लीलता : तसलीमा के समस्त साहित्य को यदि देखें तो कई सन्दर्भ ऐसे नज़र आते हैं जिन्हें एक दृष्टि विशेष के आधार पर 'अश्लील' कहा जा सकता है। किन्तु यदि उस संकुचित दृष्टि से निकलकर देखा जाया तो वही शब्द तसलीमा के साहित्य को विशिष्ट और सशक्त बनाते नज़र आने लगते हैं।

बांग्लादेश में जहाँ एक तरफ भाषा के इस्लामीकरण का खेल खेला जा रहा था वहाँ तसलीमा के लेखन को अश्लील साबित करने के लिए सैकड़ों हाथ आगे बढ़ उठे। इस सन्दर्भ में तसलीमा लिखती हैं "चंद बुरे लोग, किसी बुरे इरादे से भाषा का खतना करके यह सोच रहे हैं कि वे लोग इस देश में इस्लामी पताका लहरायेंगे। सिर्फ भाषा में ही नहीं राजनीति के दिमाग में भी मुट्ठी-मुट्ठी इस्लाम ठूँसा जा रहा है।"²³⁷ जो बांग्ला भाषा पूर्वी और पश्चिमी बंगाल में एक है, उसे तोड़कर कट्टरपंथी पूर्वी बांग्ला को इस्लामी बांग्ला बनाने पर तुले हुए हैं। फरहाद मजहर जैसे बांग्लादेशी लेखकों की सोच है, "इस देश की बांग्ला, इस्लामी बांग्ला है और पश्चिम बंगाल की बांग्ला, हिन्दू बांग्ला है। हम लोगों की संस्कृति इस्लामी संस्कृति है। हमें अपनी भाषा में पर्याप्त अरबी-उर्दू शब्द मिलाना चाहिए।"²³⁸ इस सम्बन्ध में तसलीमा लिखती हैं, 'इस्लामपंथी लोग इस देश को एक इस्लामी राष्ट्र बनाने की योजना बना रहे हैं। ये लोग कभी, बांग्लादेश की आजादी के खिलाफ थे। अब इस आजाद बांग्लादेश में

बांग्ला भाषा और संस्कृति को निश्चिंह करके, जोर जबरदस्ती इसे इस्लामी बांग्ला बनाने की साजिश रच रहे हैं- इसी आशंका से मैंने तथाकथित इस्लामी भाषा पर रोक लगानी चाही थी।"²³⁹ उन्होंने एक ही भाषा के इस प्रकार के बंटवारे का विरोध ही नहीं किया बल्कि उस बांग्ला भाषा में कुछ ऐसी अभिव्यक्तियाँ की जिससे सामान्य लोग ही नहीं बल्कि बुद्धिजीवी भी अश्लील मानते हैं।

तसलीमा के साहित्य को 'कोकशास्त्र' या 'इरोटिका' की श्रेणी में रखा गया। इसका कारण है उनकी बेबाक अभिव्यक्ति की शैली जो किसी शब्द की अश्लीलता या श्लीलता को नहीं देखती बल्कि उसके सटीक प्रयोग और उससे उत्पन्न होने वाले प्रासंगिक भावों को देखती है।

उनके साहित्य में प्रयुक्त शब्दों, अन्तरंग प्रसंगों आदि के कारण उसे अश्लील कहा गया है। एक तरफ आत्मकथा में तसलीमा ने कई ऐसे अन्तरंग प्रसंगों का उल्लेख किया है तो दूसरी ओर उनकी कविताओं, कहानियों और उपन्यासों में भी सेक्स का खुलकर चित्रण हुआ है।

'आई हूँ अस्त होने' कविता की इन पंक्तियों को भाषा प्रयोग की दृष्टि से अश्लील कहा जा सकता है, किन्तु संदर्भ ज्ञात होते ही इस भ्रम का निवारण हो जाता है -

'अस्त होने दो ! अस्त होने दो ! होने दो अस्त!

अगर न होने दो, तो करो स्पर्श,

हौले से स्पर्श करो, स्पर्श करो ज़रा-सा

रोम-रोम में, छाती पर,

स्पर्श करो पोर-पोर, झाड़कर जंग, चूम लो त्वचा को,

कसकर दबोच लो कंठदेश, मार डालो मृत्यु की चाह को,

उछालकर फेंक दो, सत्मंजिले से ! मुझे सपने दो ! मुझे बचा लो !"²⁴⁰

इसी प्रकार 'प्रिय चेहरा' कविता में कलकत्ता से आये किसी व्यक्ति को देखकर उसे ही कलकत्ता के समान महसूस करने लगती है। और पाना चाहती है प्रेम। वह उस इन्सान से भी उतना ही प्यार करती हैं, जितना कलकत्ता से। इस कविता पर भी सन्दर्भ जाने बिना अश्लीलता का आरोप लगाया जा सकता है -

'आपको खबर नहीं, क्यों मेरे होठ बड़ जाते हैं,
आपके होठों तक,

...

आपको तो अंदाज़ा भी नहीं, जब मैं आपसे कहती हूँ-
मैं आप से प्यार करती हूँ,
दरअसल मैं किसे प्यार करती हूँ
आप नहीं जानते इसलिए अब भी उम्मीद लगाए हैं !"241

'सुनते हो' कविता -

कुछ करो ! कुछ तो करो ! मुझे स्पर्श करो, मुझे चूम लो,
सिर्फ होठ नहीं, समूचा अंग-प्रत्यंग चूम लो,
तुमुल चुम्बनों से भर दो,

....

लाओ दो मुझे थोड़ी सी गर्माहट !
तुम आग हो ! मेरी अमल आग ! आओ मैं तुम्हे तपा दूँ !242
या

'दुविधाहीन' कविता -

'एक नदी भर पानी है, मैं उतरूँगी
भले ही न आता हो तैरना
साठ साल में प्रेमासक्त हो सकते हैं मर्द
प्रेम में मैं उम्र का कोई बंधन नहीं मानती ।'243

'कम्पन' कविता में -

'कहते हैं- तीस बरस में घटने लगता है
मुहब्बत का शीत
लेकिन मैं देख रही हूँ तीस के ऊपर देह विपरीत ।'244

'जल में तैरना' कविता में -

प्यार के जल में तैरने की बात पर
मैंने तुम से खुद कहा था आगे बढ़कर
तुमने कहा, 'सरदी लगेगी, भीगने से क्या लाभ !

इससे अच्छा है दो मुझे अपनी कोमल देह का स्वाद ।'²⁴⁵

किन्तु आगे की पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यही स्त्री जो किसी के प्रेम में पड़ धोखा खाती रही । ऐसे में उसे प्रेम में बिताये पल याद आना स्वभाविक है ।

'बरसों तक स्वाद और गंद बांटकर धोखा खाती रही
प्यार के जल में तैरने का स्वप्न गया डूब'²⁴⁶

कहीं-कहीं गाली-गलौज का भी प्रयोग किया गया किन्तु वह अभिव्यक्ति को शसक्त बनाने के उद्देश्य से ही हुआ है और इसके अतिरिक्त इसका एक कारण यह है कि पीड़ित या चोटिल व्यक्ति के लिए सहज होकर लिखना संभव नहीं । इसके सम्बन्ध में कँवल भारती लिखते हैं -

'यह बताओ बलात्कार की शिकार
तुम्हारी माँ की भाषा कैसी होगी ?
कैसे होंगे गुलामी की जिंदगी जीने वाले
तुम्हारे बाप के विचार ?
ठाकुर की हवेली में दम तोड़ती
तुम्हारी बहिन के शब्द
क्या वे सुन्दर होंगे ?'²⁴⁷

चूँकि तसलीमा भी भुक्तभोगी हैं, उन्हें यथार्थवादी लेखन ही रुचिकर है इसलिए वे अपने क्रोध को शब्दों में संवारकर कम नहीं करना चाहतीं ।

'कलकत्ता कल्चर' कविता- 'तुम कल्चर साले के बाप के बाप हो'²⁴⁸,

'रातें' कविता - 'मन ही मन मैं किसी को लाकर, अपने बिस्तर पर लिटा लेती हूँ '²⁴⁹

'दुःख' कविता - स्त्री मन में सहवास या काम की भावना होती है इसका प्रमाण इसके अतिरिक्त दुःख में एक अदद सुख की तलाश की मानवीय प्रवृत्ति का चित्रण --

"दुःख जब मुझे किसी अँधेरे की तरफ खींचे लिए जाता है,
उस वक्त मेरी देह चाहती है, कोई और देह,
भले कोई भी देह, चाहे जैसे भी हो ।"²⁵⁰

'तीन चार पाँच' कविता - बलात्कार की भावना की अभिव्यक्ति के लिए लिखी पंक्तियाँ -

'म्यान में बौखलाई

सेनापति की तलवार की तरह निकला आ रहा था मर्द का अंग ! पुरुषांग !'²⁵¹

'पद्मावती' कविता में समलैंगिक रिश्तों को सहमति दी गयी है -

'होठों का होठों से होता रहा प्यार

प्यार होता रहा आकाश पार

जन्म ले रही थी, नारी से नारी !'²⁵²

'फेस ऑफ़' कविता - इसमें पुरुष से बदला लेने की तीव्र उत्कंठा अभिव्यक्त हुई है -

लेकिन उसने दांत गड़ा दिए हैं ।

उसने तुम्हारे पुरुषांग को काट खाया ।

शी बाइट्स योर डिक-ऑफ'²⁵³

'अगर कर सको, तो घर्षण करो' कविता - बलात्कार न सहने और चुप रहने के विरुद्ध स्त्रियों का प्रोत्साहन करते हुए लिखा -

'सुनो, अब घर्षिता न होना !

बल्कि बलात्कार को अमादा मर्द का पुरुषांग काटकर,

उसी के हाथ में पकड़ा दो ।

या झुला दो उसकी गर्दन में ।

मुन्ने राजा अब चूसते रहें अपना-अपना दिग्विजयी अंग !

चूसते रहें निरुपाय झूलता हुआ अंडकोष !'²⁵⁴

'नियति' कविता -

'मेरा समूचा तन तब तेज़ प्यास से

नींद में डूबे पुरुष का शरीर छूकर

एक बूँद पानी माँगता, रोता है ।'²⁵⁵

'उलटा खेल' या 'विपरीत खेल' -

'मैंने उस दिन 'रमना' में देखा एक लड़का

लड़की खरीद रहा है ।

मेरी भी बड़ी इच्छा होती है दस-पाँच रुपये में लड़का खरीद लाऊँ

...

घर ले जाऊँ और हील वाली जूती से

ताबड़तोड़ पीटकर छोड़ दूँ -
जा ससाले !

...

उन्हें खरीद कर, पूरी तरह रौंदकर
सिकुड़े अंडकोश पर जोर से लातमार कर कहूँ -
भाग ससाले !²⁵⁶

प्रो. सरस्वती भल्ला लिखते हैं, "वस्तुतः जब नियति कविता तसलीमा ने लिखी तो समूचा पुरुष समाज उन पर आक्रामक हो गया। यह सब स्वाभाविक था क्योंकि कविता में 'नपुंसक' पुरुष का चित्रण था। जो शब्द आज स्त्रियों के लिए वर्जित थे, उसका साहस पूर्ण ढंग से खुलकर कवियत्री ने प्रयोग किया। उसपर अनैतिकता, अभद्रता व अश्लीलता के आरोप लगे क्योंकि पुरुषों के तथाकथित स्वाभिमान का प्रश्न था। यद्यपि इस कविता में यौन व्यापार का चित्रण है परन्तु क्या वह भी केवल पुरुष के अधिकार क्षेत्र में है ? यह प्रश्न यह कविता खड़ा कर देती है।"²⁵⁷

आत्मकथा के सभी खंडों में कई बार ऐसे प्रसंग आये हैं जिन्हें अश्लील कहकर आलोचना की गयी है। 'मेरे बचपन के दिन' में वे चाचा अमानुद्दौला द्वारा किये गये बलात्कार का चित्र कुछ इस प्रकार करती हैं - "मैंने देखा चाचा के पेडू के निचले हिस्से में एक बहुत बड़ा साँप मेरी ओर फन उठाये हुए था, मुझ पर हमला करने के लिए तैयार। मैं भय से सिमट गयी। मुझे और ज्यादा डराते हुए मेरी दो जाँघों के बीच में वह साँप फन मारने लगा... चाचाजी बोले... इस बात का जिक्र तुम किसी से न करना कि तुमने मेरी नूनी देखी है और मैंने तुम्हारी चिज्जी देखी है।"²⁵⁸ इसी प्रकार 'द्विखंडित' में कई पुरुषों के द्वारा जबरन उनसे बनाये गये रिश्ते या उनकी कामुकता के सम्बन्ध में उन्होंने विस्तार से लिखा है। इनमें कारोबारी अल फारुक, हासन रशीद, हिलाल हाफिज, शम्सुल हक आदि के प्रसंग हैं। इसके अतिरिक्त 'उत्ताल हवा' में शरीरिक सम्बन्ध का दृश्य जो एक प्रकार से बलात्कार ही महसूस होता है - "मेरे स्तनों की घुंडियों को उसने अपने होठों से सिर्फ भिंगोया ही नहीं, दाँतों से काटता-बकोटता भी रहा। अपनी दोनों मुट्टियों में मेरे वक्ष इतना कसकर दबाता-मसलता रहा मानो वह उन्हें

पीसकर, बिलकुल पानी बनाकर पी जाएगा... अपने दोनों पाँवों से वह मेरे दोनों पैर चौड़े करने में झूझता रहा। मैंने कसकर अपनी आँखें मूँद लीं, मानो आँखें खुल न जाएँ... मैं चीख उठी।"²⁵⁹ तसलीमा द्वारा इस प्रकार के ठेरो प्रसंग आत्मकथा में उल्लिखित हैं। इनके परिप्रेक्ष्यों और उद्देश्यों को समझें बिना तसलीमा पर अश्लीलता का आरोप लगाया जा सकता है। किन्तु कोई लेखिका अपने जीवन में पुरुषों द्वारा की गयी ज्यादतियों या उनके द्वारा किये गये शोषण का उल्लेख नहीं करती तब उसकी अभिव्यक्ति कमजोर पड़ जाती है। तसलीमा ने इस मसले में स्वयं को कमजोर नहीं होने दिया बल्कि इसके स्थान पर उन सभी अन्तरंग घटनाओं का बारीक चित्रण और वर्णन किया है, जिससे स्त्री पीड़ा मुखर हो सकी है।

फ़िल्मकार और प्रवक्ता रुबाइयत हुसैन का मत है कि 'मैं यह कहना चाहता हूँ कि तसलीमा की साहित्य जगत में इसलिए निंदा की गयी क्योंकि वह बांग्ला साहित्य में स्त्री की यौनिकता पर बात करने वाली पहली लेखिका है। और वह दूसरे लेखकों के साथ शारीरिक सम्बन्धों (जो कि सत्य या मनगढ़ंत हो सकते हैं) को स्पष्ट रूप से लिखने वाली पहली लेखिका है। द्विखंडित में तसलीमा का पक्ष वास्तविकता पर आधारित था या नहीं यह एक अलग मुद्दा है किन्तु उस पुस्तक पर हुई बेकार की बातें और कुत्सित प्रतिक्रिया एक बार फिर यह सिद्ध करती हैं कि यदि कोई भी स्त्री अपनी यौनिकता या यौन सम्बन्धों पर खुलकर बात करती है तो उसे सहज स्वीकार नहीं किया जाता।'"²⁶⁰ "दरअसल वर्तमान स्थिति में स्त्री अगर सच बोलती है, अपने जीवन और लेखन में पारदर्शिता बरतती है तो लोग उसे अश्लीलता मानने लगते हैं, जबकि इस अश्लीलता को ज़िन्दगी में हर व्यक्ति, विशेषकर औरतें हर रोज़ भोगती हैं। पुरुष-मन अपने संदर्भ में उसे अश्लील नहीं मानता, लेकिन स्त्री के सन्दर्भ में वह उसे न सिर्फ अश्लील कहता है बल्कि उसे रस और चटकारे लेने के लिए लिखा गया लेखन भी कहता है।" आगे वे कहते हैं, "तसलीमा सच बोलती हैं और अपने रिश्तों की परतें भी खोलती हैं तो वह अश्लील मानी जाती हैं। उन्होंने ज़िंदगी में झेली सारी शर्म की परतों को खोलकर रख दिया है जो उनपर लादी गयीं थीं या जिनमें वह स्वयं शरीक थीं।"²⁶¹

स्पष्ट है कि तसलीमा नसरीन ने जिन शब्दों का प्रयोग अपने लेखन में किया है उसके कोई न कोई सन्दर्भ और अर्थ हैं। उन्होंने यूँ ही तथाकथित 'पोर्न' लेखन करने के लिए अश्लील शब्दों का प्रयोग किया है यह कहना उचित नहीं प्रतीत होता है। जरूरत उनके संदर्भों और विषयवस्तु को समझे जाने की है न कि उनके साहित्य को उपेक्षित कर लेखिका से बदला लेने की।

(घ) साहित्यिक प्रतिद्वंद्विता की शिकार लेखिका :

तसलीमा ने बहुत ही कम उम्र में वह शोहरत प्राप्त कर ली थी, जिसका कई वरिष्ठ लेखक खूबाब देखा करते हैं। वे दो बार बांग्ला के सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक 'आनंद पुरस्कार' ने नवाजी गयीं। इस ईर्ष्या का आभास तसलीमा को बहुत पहले ही हो गया था, "हाय गजब ! बड़े-बड़े पर्वताकार पेड़ तिनके से ईर्ष्या करने लगे थे।"²⁶² लेखक समुदाय के भीतर लिंगगत अन्तर्विरोध और पितृसत्तात्मक मानसिकता को तसलीमा कुछ इस प्रकार स्पष्ट करती हैं "कवि निर्मलेंदु गुन, रफीक आज़ाद आदि कोई भी कवि यदि 'नियति' कविता लिखता या पढ़ता है तो पाठक या श्रोता को कोई ऐतराज नहीं होता। ऐतराज दरअसल कविता ही नहीं, बल्कि रचयिता के लिंग का है।"²⁶³ साहित्यिक महकमें में उन्हें 'ब्याह टुट्टी अकेली लड़की'²⁶⁴ कहा जाने लगा। इस अकेली लड़की को कई बार बड़े-बड़े साहित्यकारों ने अपनी हवस का शिकार बनाने का भी प्रयास किया। स्पष्ट है तसलीमा का सानिध्य सभी चाहते थे किन्तु उसे आगे बढ़ता कोई देखना नहीं चाहता था। यही कारण है कि तसलीमा के संकट के दिनों में उनके विरुद्ध वे ही लेखक खड़े हो गये जो कभी उनकी वाहवाही करते नहीं थकते थे। इनमें उनके खास संपर्क में रहे लेखक तो थे ही और ऐसे भी कई लेखक थे जिनसे वे कभी नहीं मिलीं। इसी प्रतिद्वंद्विता के चलते कई लेखकों ने तसलीमा के निर्वासन के समय या तो सरकार और कट्टरपंथियों का पक्ष लिया या मौन हो गये। बांग्ला साहित्यकार एक खास किस्म की साहित्यिक प्रतिद्वंद्विता के शिकार दिखाई देते हैं, जिन्होंने कलकत्ता में तत्कालीन सरकार को तसलीमा के साहित्य को प्रतिबंधित करने की सलाह दी।

आत्मकथा में तसलीमा के पक्ष, विपक्ष में लिखने वाले और तटस्थ रहे लेखकों और बुद्धिजीवियों की एक लम्बी सूची प्राप्त होती है और उनके मत भी प्राप्त होते हैं। जहाँ एक तरफ उन्हें बांग्लादेश के और भारत के महाश्वेता देवी, मैत्रेयी पुष्पा आदि लेखिकाओं का समर्थन प्राप्त हुआ वहीं बांग्लादेश, यूरोप और भारत में उनके कई प्रतिद्वंदी उभर आये थे, जिन्होंने कई बार तसलीमा को अश्लील घोषित कर उन्हें निंदनीय लेखिका की श्रेणी में फेंक दिया। बांग्लादेश की 'सुगंधा' जैसी पत्रिकाएँ 'तसलीमा नसरीन अब उड़ती फिर रही हैं'²⁶⁵ जैसे लेख लिख उनके विरुद्ध अनर्गल प्रलाप कर रहीं थीं। पश्चिम बंगाल में भी कई पत्रिकाएँ जैसे - 'साप्ताहिक कलम', 'मियान' भी तसलीमा की निंदक बनी रहीं। सस्ती पत्रिकाओं में उन्हें 'चिंदी-चिंदी कर काटा-पीटा' जाता रहा और व्यक्तिगत जीवन को खंगालने और कुरेदने का काम किया जाता था।

आनंद बाजार पत्रिका से 'निर्वाचित कलाम' पुस्तक के लिए प्राप्त होने वाले 'आनंद पुरस्कार' प्राप्त होने के बाद तो विरोधियों की संख्या लगातार बढ़ती गयी। तसलीमा यह मानती हैं 'लोकप्रियता के जहाँ सैकड़ो अच्छे पक्ष हैं, उतने ही बुरे पक्ष भी हैं'।²⁶⁶ साहित्य जगत दो गुटों में बंट गया। एक तसलीमा समर्थक और दूसरा तसलीमा विरोधी। समर्थकों ने जहाँ तसलीमा को 'एक योग्य लेखिका' कहा, 'जो वह सोचती हैं वही लिखती हैं', 'सबसे उल्लेखनीय लेखिका', 'बिल्कुल फर्क नज़रिए की लेखिका' कहा, वहीं विरोधी लेखकों ने 'छिछोरी' और 'नक़ल करने वाली लेखिका' कहा। उन्हें 'हास्यास्पद', 'भ्रामक', 'अवैज्ञानिक', 'प्रतिद्वंद्विता चाहने वाली औरत', 'दुस्साहसी, दुर्विनीत और दुर्दांत' कहा गया और पत्रिकाओं में उनके पक्ष-विपक्ष में कलाम लिखने का दौर चल पड़ा। पत्रिकाएँ भी दो गुटों में बंट चुकी थीं। जहाँ 'आनंदबाजार', 'देश', 'बंगला की वाणी' पक्ष में थीं वहीं 'विचिन्ता', 'इन्कलाब', 'दैनिक संग्राम', 'दिनकाल', 'मिल्लत', 'बांग्ला बाजार', 'साप्ताहिक कलम', 'मियान' विपक्ष में लिख रहीं थीं। तसलीमा विरोधी गुट में बांग्लादेश के अहमद हूफा, रफीक आजाद, बांग्ला बाजार पत्रिका के सम्पादक मोतिउर रहमान, अबू फैजल, डॉ. गुलाम मोयायम, फ़रिश्ता आदि थे। तो पक्ष में लिखने वालों में बांग्लादेश के विरूपाक्ष पाल, शम्सुर रहमान, जाहाँ नारा इमाम, रशीद करीम, नाजिम

महमूद, मयहारुल इस्लाम जैर, सनत कुमार साहा (राजशाही विश्वविद्यालय के प्रोफेसर), हुसैन आजीजुल हक़ आदि और पश्चिम बंगाल के शंख घोष, भवतोष दत्त, केतरी कुशारी डाइशन, शिवनारायण राय, आनंद बागची, विजया मुखोपाध्याय, सुतपा भट्टाचार्य, मीर नुरुल इस्लाम, नीरद चौधरी आदि रहे।

उन पर विभिन्न प्रकार के आरोप-प्रत्यारोप लगाये गये। किसी ने यह कहा चूँकि तसलीमा मुसलमानों के विरुद्ध, मुसलमान कट्टरपंथियों के विरुद्ध लिखती हैं इसीलिए उन्हें यह पुरस्कार हिन्दू कट्टरपंथियों ने दिया। मुहम्मद मुक्कदस हुसैन ने निर्वाचित कलाम के प्रत्युत्तर में 'उचित जवाब' नाम से किताब लिखी और हुमायूँ आज़ाद तो तसलीमा के जैसे ही स्त्री केन्द्रित पुस्तकें लिखने लगे। मैत्रेयी चट्टोपाध्याय जैसी स्त्रीवादी लेखिका भी उनके विपक्ष में जा खड़ी हुई। इन जैसे लेखक तो तसलीमा की नकल करके ही बांग्लादेश में विख्यात हो गये।

दरअसल आलोचना किया जाना और प्रतिद्वंद्विता में षड्यंत्र के तहत आलोचना किया जाना दोनों अलग-अलग चीजे हैं। तसलीमा इसी प्रतिद्वंद्विता की शिकार हुई हैं। इस प्रतिद्वंद्विता के सम्बन्ध में विरूपाक्ष पाल ने लिखा, "तसलीमा नसरीन जो सोचती हैं, वही पूरे साहस के साथ कहती भी हैं। कछुआ जैसे अन्य बुद्धिजीवियों की तरह, वे तलैया समझकर, अपना सिर बाहर नहीं निकालतीं। वे तो हमेशा ही सिर बढ़ाये रहती हैं। शायद इसीलिए मौसमी साहित्यकारों को लगता है कि उनमें कांडज्ञान की कमी है।"²⁶⁷ कुलमिलाकर 'चारो तरफ से पुरातनपंथी और दुर्मुख लेखकों के वाक्य बाणों'²⁶⁸ से तसलीमा नेस्तनाबूत होती रहीं।

इन सब विरोध के बावजूद दूसरा पक्ष भी था जहाँ तसलीमा को अपने लेखन के लिए विभिन्न लोगों का सहयोग और पाठकों विशेषकर स्त्री पाठकों का बहुत प्यार भी मिल रहा था। यूरोप में तो तसलीमा के पक्ष में लेखक सड़कों पर उतर आये और कई लेखकों जैसे - सलमान रुश्दी, बरनार-अंरी लेबी, नदिन गार्डिंमर, फिलिप सोलेर, लैला सब्बार, सुजान सटांग, रादा इबेकोविच आदि ने उनके समर्थन में खुला-पत्र लिखा जिसे 'प्रिय तसलीमा नसरीन' पुस्तक के रूप में संकलित भी किया गया है।

इसी प्रकार भारत में जहाँ कई बंगाली लेखकों ने इर्ष्यावश तसलीमा का विरोध किया तो वहीं कई बड़े लेखक जिनमें हिंदी के लेखक जैसे मैत्रेयी पुष्पा, नामवर सिंह, राजेंद्र यादव आदि सम्मिलित हैं ने भी तसलीमा के पक्ष में कई प्रयास किये। शायद पाठकों और लेखकों का यह समर्थन ही था, जिसने तसलीमा को लड़ने का साहस और आत्मविश्वास दिया। वे लिखती हैं, "चारों तरफ की बदनामी, अफवाह, निग्रह, निशंसता, ईर्ष्या, परश्रीकातरता के घने-घने कीचड़-कादा पर, मुझे मेरुदंड सीधे रखकर चलना होगा, मैं जानती हूँ. अगर मैं तनकर नहीं चली, तो किसी भी पल ठोकर खाऊँगी। टूट फूट जाऊँगी।"²⁶⁹ इसलिए 'बाहर की थूक के सैकड़ों छीटें'²⁷⁰ उनपर भले ही पड़ें किन्तु उन छींटों को पोछ उन्होंने अपने सिद्धांतों का परित्याग नहीं किया। पंडित शिव नारायण राय के शब्दों में कहें तो, "झूठी अफवाह फैलाकर किसी तेज-तर्रार कलम को भोथरा नहीं बनाया जा सकता है।"²⁷¹ तसलीमा की कलम की धार इसीलिए कभी कम नहीं हुई।

निष्कर्ष

भारतीय उपमहाद्वीप में बंगाल उन प्रान्तों में से एक रहा है, जिसने सबसे अधिक बार विभाजन देखा है। बंगाल का इतिहास एक सामासिक संस्कृति वाले प्रान्त से शुरू होकर एक साम्प्रदायिक राष्ट्र के जन्म लेने तक विस्तृत है। जिसमें कभी हिन्दू और मुस्लिम राजवंशों का शासन रहा था। एक ही भाषा और संस्कृति वाले इस प्रान्त को सांप्रदायिक आधार पर विभाजित किया जाना इसके लिए हानिकारक साबित हुआ। यही कारण है कि आज बंगाली संस्कृति से समृद्ध यह प्रान्त दो भागों में दिखता है - पश्चिमी बंगाल (यह भारत का प्रान्त है) और बांग्लादेश (यह पहले पूर्वी बंगाल था जिसे विभाजन के समय पाकिस्तान के हिस्से में आने के कारण 'पूर्वी पाकिस्तान' नाम दिया गया और बाद में यह पूर्वी पाकिस्तान से 'बांग्लादेश' के रूप में एक स्वतंत्र देश बन गया)। विलियम वैन स्केंडल की पुस्तक 'अ हिस्ट्री ऑफ़ बांग्लादेश' से यह ज्ञात होता है कि यहाँ 2000 ई.में जाकर धार्मिक परिवेश स्पष्ट होता है, जिसमें हिन्दू, बौद्ध और जैन संस्कृति के साक्ष्य मिलते हैं। वे यह मानते हैं कि मुग़लों के रूप में इस्लाम के आगमन से इस प्रान्त के राजनीतिक और सांस्कृतिक ढाँचे में परिवर्तन आया। विशेषकर पूर्वी बंगाल के अधिकतर लोग इस्लाम से प्रभावित हुए और इस्लाम धर्म ग्रहण किया। ब्रिटिश काल में इस इस्लाम और हिन्दू धर्म पर आधारित साम्प्रदायिकता की नीति ने बंगाल को विखंडित कर दिया।

जिस राष्ट्र की नींव ही साम्प्रदायिक आधार पर पड़ी हो वहाँ आजीवन उसकी छाप दिखाई देती है। बांग्लादेश के साथ भी यही हुआ। बांग्लादेश में मुस्लिम बहुसंख्यक हैं। इसके राजनीतिक इतिहास को देखने से स्पष्ट होता है कि यहाँ कि विभिन्न सरकारें निर्णय लेते समय इन बहुसंख्यकों के तुष्टिकरण का प्रयास करती रही हैं और उनकी रुचि-अरुचि के आधार पर ही अधिकतर निर्णय लिए गये हैं। इस साम्प्रदायिक मानसिकता और तुष्टिकरण की नीति का परिणाम ही है कि देश को एकतरफ़ लोकतान्त्रिक और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया है तो दूसरी तरफ़ इस्लाम को 'राष्ट्रीय धर्म' घोषित कर बांग्लादेश की सामासिक संस्कृति की छवि को प्रभावित किया है।

ऐसे परिवेश में तसलीमा बांग्लादेश में उपेक्षित और प्रताड़ित हो रहे अल्पसंख्यकों के पक्ष में खड़ी हुई। उन्होंने आत्मकथा में बांग्लादेश की निरंतर बदलती हुई परिस्थितियों और राजनीतिक निर्णयों पर कटाक्ष किया है। बांग्लादेश के निर्माण से पूर्व हुए भाषा आन्दोलन, मुक्तियुद्ध और फिर साम्प्रदायिक राष्ट्र के रूप में बढ़ते बांग्लादेश के कदम और इसमें विभिन्न सरकारों की भूमिका इन सबका आलोचनात्मक ब्यौरा तसलीमा की आत्मकथा में है। इस आत्मकथा से यह ज्ञात होता है कि जो परिस्थितियाँ पाकिस्तान शासन के समय थीं वही बांग्लादेश के निर्माण के बाद भी रहीं। शेख मुजीबुररहमान के देश से अल्पसंख्यक हिन्दुओं का पलायन, लाखों औरतों का बलात्कार, धर्म आधारित शिक्षा, साम्प्रदायिक नीतियाँ- राष्ट्रधर्म घोषित किया जाना, सरकार और कट्टरपंथियों का गठजोड़- गुलाम आयाम जैसे रजाकारों को सजा न मिलना, इस्लामिक पार्टी - जमात-ए-इस्लामी का बढ़ता प्रभुत्व आदि के आधार पर कमजोर होते अपने देश को देख तसलीमा ने अपने लेखन के माध्यम से तमाम राजनीतिक और कट्टरपंथियों के विरुद्ध अपनी विरोधी और विद्रोही आवाज़ को दर्ज किया।

परिणाम यह हुआ कि सरकार, कट्टरपंथी और कट्टरपंथी लेखक वर्ग सभी तसलीमा के विरोध में उठ खड़े हुए। इस विरोध के कारण ही तसलीमा के विरुद्ध निर्वासन का षड्यंत्र रचा गया। इसके लिए आधार बनाया गया 'ब्लासफेमी' यानि 'ईश निंदा' को। बांग्लादेश यद्यपि ऐसा देश है जिसमें ईशनिंदा कानून नहीं है किन्तु यहाँ की दंड संहिता की धारा 295-A इस बात का प्रावधान करती है कि धार्मिक भावनाओं को आहत करने वाली अभिव्यक्तियों को प्रतिबंधित किया जा सकता है और इसके लिए अधिक से अधिक कारावास की सजा है। ईशनिंदा की धारणा वस्तुतः पैगम्बरवादी धर्मों की देन है। ब्लासफेमी के लिए अरबी में 'सब्ब', 'शत्म', 'तज्दीफ', 'कुफ्र' जैसे शब्दों का प्रयोग है एवं कुरान ईशनिंदकों को नरक में जाने की बात करती है। धर्मग्रन्थ और धर्मावलम्बी इस सम्बन्ध में भ्रमात्मक स्थिति में दिखते हैं। तसलीमा ने हिन्दू अल्पसंख्यकों का पक्ष लेते हुए यह सिद्ध किया कि यदि धर्म को ही समाप्त कर दिया जाय तो अल्पसंख्यकों का शोषण स्वतः समाप्त हो जाएगा। इसके लिए इस्लाम की तमाम आयतों को आधार बनाकर यह दिखाया कि यह धर्म के नाम पर किये जाने

वाला 'जिहाद' वस्तुतः अल्पसंख्यक विरोधी मानसिकता की जड़ है। इस्लाम धर्म की निंदा करने कारण फतवा, मुकदमा, मुस्लिम कट्टरपंथियों का विरोध, सरकार द्वारा उनका समर्थन और कठिन भूमिगत जीवन आदि के साथ तसलीमा को देश छोड़ने पर बाध्य किया गया।

निर्वासित होना एक बुरे सपने की तरह है। देश दुनिया में तमाम लेखकों को कई बार अपने लेखन या क्रांतिकारी विचारों के कारण या तो जान बचाने के लिए निर्वासित होना पड़ा है या उन्हें वहाँ कि सरकारों ने ही निर्वासित किया है। उदाहरण के लिए - ओविड, बोधा, विक्टर ह्यूगो, मिलान कुंदेरा, सोल्जेनित्सिन, निकोलस मैकियावली, शर्मीला सैय्यद, ओरहान पामुक, सलमान रुश्दी आदि। इस निर्वासन के सम्बन्ध में एडवर्ड सईद की थियरी यह कहती है कि निर्वासन एक राजनीतिक कदम है, जिससे यद्यपि कष्ट होता है किन्तु यह लेखक की बौद्धिक क्षमता को समृद्ध करता है। यह आत्म निर्वासन या थोपे हुए निर्वासन के रूप में हो सकता है। यह व्यक्ति विशेष की प्रतिबद्धता का प्रतीक है। तसलीमा का निर्वासन आत्मनिर्वसन न होकर थोपा हुआ राजनीतिक कदम है, जिससे वे जल्द से जल्द उबरना चाहती हैं। निर्वासन के दौरान तसलीमा के अनुभव समृद्ध होते दिखते हैं। पश्चिमी संस्कृति से मोहभंग और भारत से विशेष लगाव उन्हें कलकत्ता तक ले आता है किन्तु कलकत्ता उनकी शरण स्थली नहीं बन पाता क्योंकि यहाँ भी बांग्लादेश जैसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं - फतवा, नज़रबंदी, अज्ञातवास और निर्वासन के रूप में।

विश्व में प्रतिबंध की राजनीति के प्राचीन साक्ष्य रोमन और ग्रीस साम्राज्य के समय से ही दिखते हैं जब सर्वप्रथम आगस्टस के मत को प्रतिबंधित किया गया। एस्काइलेस, एरिस्टोफेन्स और प्रोटेगोरस इसी कड़ी से जुड़ते हैं। तीसरी दुनिया के देशों में प्रतिबंधित किये जाने के सब से अधिक उदाहरण मिलते हैं जिनमें भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, केन्या, लैटिन अमेरिकी देश सम्मिलित हैं। प्रतिबंध के पीछे दरअसल सत्ता खोने के भय की मानसिकता कार्य करती है। इस प्रतिबंध की राजनीति को मैनेजर पाण्डेय ने 'तीसरी दुनिया की दुर्गंगी चाल' और 'दमनकारी सांस्कृतिक नीति' की

संज्ञा दी है। निर्वासन के पूर्व और बाद में भी बांग्लादेश की सरकार ने तसलीमा की कई पुस्तकों को प्रतिबंधित किया है। किन्तु जैसा कि मैनेजर पाण्डेय का मत है 'साहित्य पर प्रतिबंध का उल्टा असर होता है' वैसा ही कुछ तसलीमा के साथ भी हुआ। उनका साहित्य जितना अधिक प्रतिबंधित किया उतना ही उसका प्रचार हुआ और उसे पढ़ा गया।

यदि किसी साहित्यकार को खत्म करना है तो उसके लिए सबसे बेहतर उपाय यह है कि उसके साहित्य की उपेक्षा की जाय। तसलीमा नसरीन के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ है। सपाट लेखन और बेतुकी बातों जैसा आरोप लगाकर उनकी रचनाओं को असाहित्यिक घोषित कर उपेक्षित करने का प्रयास किया गया। किन्तु यदि साहित्य के उद्देश्य की दृष्टि से देखें तो तसलीमा की आत्मकथा और आत्मकथेतर साहित्य सभी साहित्यिक उद्देश्य को पूर्ण करते नज़र आते हैं। भाषा, शैली, प्रतीक और बिम्ब योजना के साथ विषय वैविध्य तसलीमा की रचनाओं को साहित्यिक कहने के लिए पर्याप्त हैं। प्रेमचंद द्वारा सुझाये गये मत के अनुसार देखें तो यह महफ़िल सजाता या मनोरंजन का सामान नहीं जुटाता बल्कि सच्चाई की मशाल ले कर आगे बढ़ता है। न्यूमन के मत के आधार पर देखें तो यह 'युनिवर्सल की जगह 'पर्सनल' होकर व्यक्ति विशेष के मन को उद्वेलित करने वाला साहित्य है और इसमें गणपतिचन्द्र गुप्त द्वारा बताये गये रस के अनुरूप उत्पन्न 'भावनात्माक', 'कलात्मक' और 'बौद्धिक आकर्षण' की क्षमता भी है। साथ ही यह मैक्सिम गोर्की के मत के समान यह आत्मान्वेषण का अवसर भी देता है और संरचनावादी फूको ने जिस 'स्वाययत्ता' और 'वस्तुनिष्ठता' की बात की वह भी इसमें विद्यमान है।

तसलीमा के साहित्य को तत्थाकथित अश्लील शब्दों के प्रयोग के कारण कई बार 'पोर्न साहित्य' या 'कोकशास्त्र' या 'इरोटिका' कहकर खारिज किया गया है। अश्लीलत्व के भाव को दोष मानने की यह परम्परा मम्मट, विश्वनाथ, वामन, भामह आदि काव्यशास्त्रियों की चिंतन परम्परा में दिखाई देती है। किन्तु विश्वनाथ तिवारी का मत है कि श्लीलत्व और अश्लीलत्व निर्धारण की यह

परम्परा हर संस्कृति में एक जैसी नहीं हो सकती । क्योंकि जो बातें किसी एक समाज विशेष में अश्लील हैं वही बातें दूसरे समाज या संस्कृति में हो सकता है अश्लील न मानी जाती हों । इसलिए अश्लीलत्व के निर्धारण के लिए कोई एक मानक नहीं बनाया जा सकता । इसके लिए वे जिस 'रचनात्मक ईमानदारी' को मानक के रूप में देखते हैं उस दृष्टि से तसलीमा के साहित्यिक उद्देश्यों की दृष्टि और अभिव्यक्ति की उग्रता की दृष्टि से उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द या वाक्य या भावनाओं को अश्लील नहीं कहा जा सकता । यह उस साहित्य की आवश्यकता कही जा सकती है । अज्ञेय के अनुसार श्लील-अश्लील तो सामाजिक मान्यता से सम्बंधित है उसका साहित्य से कोई सरोकार नहीं । तसलीमा ने अपने साहित्य में 'लिंग', 'सेक्स' या 'यौन सम्बन्ध', 'देह' आदि की बात अधिकतर की है, जिसके कारण कई लोगों को यह अश्लील नज़र आता है । किन्तु वास्तविकता में देखें तो ये शब्द स्त्री-जीवन और स्त्री-विमर्श की एक प्रकार से पारिभाषिक शब्दावलिyaँ हैं, जिनसे गुजरे बिना स्त्री सम्बन्धी चिंतन से न्याय नहीं किया जा सकता । कुल मिलाकर जगदीश्वर चतुर्वेदी के मत को आधार बनाकर कह सकते हैं कि तसलीमा ने 'सृजन की मर्यादा' के अपने दायित्व का निर्वहन किया है अब इसमें श्लीलता या अश्लीलता है या नहीं यह पाठक या आलोचक की दृष्टि पर निर्भर करता है । तसलीमा ने जिन शब्दों का प्रयोग अपने लेखन में किया है उसके कोई न कोई सन्दर्भ और अर्थ हैं । उन्होंने यँ ही 'पोर्न' लेखन करने के लिए तथाकथित अश्लील शब्दों का प्रयोग किया है यह कहना उचित नहीं प्रतीत होता है । जरूरत उनके संदर्भों और विषयवस्तु को समझे जाने की है न कि साहित्यिक प्रतिद्वंद्विता में पड़कर उनके साहित्य को उपेक्षित करने की ।

आवश्यक टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ सूची

- ¹ <https://omprakashkashyap.wordpress.com/category/प्लेटो-के-आदर्श-राज्य-की-शिक्षानीति>, (21 October 2017).
- ² <https://omprakashkashyap.wordpress.com/category/प्लेटो-के-आदर्श-राज्य-की-शिक्षानीति>, (21 October 2017).
- ³ तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-46.
- ⁴ 'The picture become more clearer when, over 2000 yers ago, deities came to exhibit iconographical characterstics that place them within broader religious traditions found in other parts of South and South-East Asia.', Willem Van Schendel, A History of Bangladesh, University Printing House, Cambridge, Year, 2009, pg.-26.
- ⁵ वही, pg.-30-33.
- ⁶ वही, pg.-29.
- ⁷ https://hi.wikipedia.org/wiki/लाहौर_संकल्पना, (21 October 2017).
- ⁸ तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-81.
- ⁹ कृष्णा सोबती, गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान, पृष्ठ-27.
- ¹⁰ तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-81.
- ¹¹ वही, पृष्ठ-82.
- ¹² वही, पृष्ठ-82.
- ¹³ वही, पृष्ठ-82.
- ¹⁴ https://en.wikipedia.org/wiki/History_of_Bangladesh, (20 October 2017).
- ¹⁵ तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-9.
- ¹⁶ जसवंत सिंह, खतरे में भारत, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, संस्करण-2013.
- ¹⁷ कृष्णा सोबती, गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान, पृष्ठ-31.
- ¹⁸ वही, पृष्ठ-56 .
- ¹⁹ https://en.wikipedia.org/wiki/History_of_Bangladesh, (20 October 2017).
- ²⁰ तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-85.
- ²¹ वही, पृष्ठ- 295.
- ²² https://en.wikipedia.org/wiki/Constitution_of_Bangladesh, (16 July 2016).
- ²³ तसलीमा नसरीन, द्विखंडित-पृष्ठ-54.
- ²⁴ वही, पृष्ठ-66.
- ²⁵ वही, पृष्ठ56.
- ²⁶ वही, पृष्ठ-47.
- ²⁷ वही, पृष्ठ-218.
- ²⁸ वही, पृष्ठ 219.
- ²⁹ वही, पृष्ठ-219.
- ³⁰ तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-57.
- ³¹ वही, पृष्ठ-219.
- ³² वही, पृष्ठ-339.
- ³³ वही, पृष्ठ-341.

- 34 वही, पृष्ठ-345.
- 35 वही, पृष्ठ-345.
- 36 वही, पृष्ठ-59.
- 37 वही, पृष्ठ-59.
- 38 वही, पृष्ठ-60.
- 39 राजकिशोर, धर्म और राजसत्ता, पृष्ठ-85.
- 40 वही, पृष्ठ-38.
- 41 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-151.
- 42 वही, पृष्ठ-63.
- 43 वही, पृष्ठ-385.
- 44 वही, पृष्ठ-401.
- 45 वही, पृष्ठ-425.
- 46 वही, पृष्ठ-419.
- 47 'Today, liberal Bangladeshis feel increasingly embattled. Many are convinced that Islamism is growing dangerously, supported by an accommodating government as well as terrorist intimidation. On the other hand, liberal Bangladesh forms a vibrant, feisty and vocal community with ever-stronger global links.' Willem Van Schendel, A History of Bangladesh, University Printing House, Cambridge, Year, 2009, pg.-262.
- 48 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, 419.
- 49 वही, पृष्ठ-420.
- 50 वही, पृष्ठ-63.
- 51 <https://samaybuddha.wordpress.com/2015/02/18/dharm-ke-naam-par-har-galat-sahi-ho-jata-hai/>, (12 April 2016).
- 52 जगदीश्वर चतुर्वेदी, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद और जनमाध्यम, पृष्ठ-53.
- 53 राजकिशोर, धर्म और राजसत्ता, पृष्ठ-18.
- 54 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-66.
- 55 <https://samaybuddha.wordpress.com/2015/02/18/dharm-ke-naam-par-har-galat-sahi-ho-jata-hai/>, (12 April 2016).
- 56 महाभारत, शांतिपर्व -12-14-18.
- 57 सं-राजकिशोर, धर्म और राजसत्ता, पृष्ठ-85.
- 58 <http://www.jagran.com/editorial/apnibaat-8828606.html>, (9 November 2017).
- 59 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-54.
- 60 रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-60.
- 61 तसलीमा नसरीन, फेरा, पृष्ठ-100.
- 62 अखिलेश मिश्र, धर्म का मर्म पृष्ठ-41.
- 63 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-345.
- 64 वही, पृष्ठ-270.
- 65 जगदीश्वर चतुर्वेदी, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद और जनमाध्यम, पृष्ठ-165.

⁶⁶<https://khabar.ndtv.com/news/blogs/ravish-kumar-writes-about-the-relation-between-religion-and-politics-1451529>, (9 November 2017).

⁶⁷ 'Earth is a prison planet, and humans are prisoners.', <https://www.ancestryofman.com>, (31 October 2017).

⁶⁸ "exile" has been deployed as a concept beyond simply a forced removal from a given physical location. Exile in everyday use invokes images of individual political dissidents sent overseas or large groups of people banished to distant lands, forming various diasporas. In these cases there is sometimes a presumption that the exiled are different from casual migrants who forget their original homelands and form new allegiances with the places in which they settle. Exiles retain a sense of (be)longing to/ for a real or imagined homeland.', www.postcolonialweb.org/poldiscourse/exile.html, (31 October 2017).

⁶⁹ कृष्णा सोबती, गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान, पृष्ठ-28.

⁷⁰ 'Exile, according to Said in *Representations of the Intellectual*, is fundamentally tied to the notion of the intellectual. The connection with postcolonialism is not easily discernible in this case because exile becomes a larger political gesture to separate intellectuals from those who "toe the line" and those who remain critically resistant to the authorities. For Said these are "the nay-sayers, the individuals at odds with their society and therefore outsiders and exiles in so far as privileges, power, and honors are concerned.", www.postcolonialweb.org/poldiscourse/exile.html, (31 October 2017).

⁷¹ 'In his memoir, *Out of Place* (1999), Edward Said described the condition of exile as the source of his most deeply held beliefs about himself and the world. His use of exile as a metaphor is in several ways analogous to the ways in which diasporic religious communities orient themselves in relation to space and time. Although Said was critical of the dangerous idea of sacred space, the space of exile is in certain respects similar to a religious myth in its shaping influence on his life, as revealed in his autobiography.' *Literature & Theology*, Vol. 21. no.3, september 2007, Published by Oxford University Press, pp 293-301.

⁷² Oxford Hindi-English Dictionary, Ed. S. K. Verma, R. N. Sahai, Oxford University Press, New Delhi, April, 2013, pg.-260.

⁷³ 'The original meaning of exile is banishment, the political action that forces a person to depart from his country. Exile resembles but is not the same as being a refugee, expatriot or member of a diaspora. In practice, however, these terms are now often used interchangeably to refer to people displaced from their original home, even when they leave it willingly. Exile is a way of dwelling in space with a constant awareness that one is not at home. The exile is oriented to a distant place and feels that he does not belong where he lives. Exile is also an orientation to time, a plotting of one's life story around a pivotal event of departure and a present condition of absence from one's native land. An implicit travel narrative is central to the exile's identity; she remembers a difficult journey away from home and looks forward to returning some day.', *Literature & Theology*, Vol. 21. no.3, september 2007, Published by Oxford University Press, pp 293-301.

⁷⁴ 'Is it not true that the views of exile in literature and, moreover, in religion obscure what is truly horrendous: that exile is irremediably secular and unbearably historical; that it is produced by human beings for other human beings; and that, like death but without death's ultimate mercy, it has torn millions of people from the nourishment of tradition, family, and geography?', E. Said, 'Reflections on Exile,' p. 175.

- 75 T. Tweed, *Our Lady of the Exile: Diasporic Religion at a Cuban Catholic Shrine in Miami* (New York and Oxford: Oxford University Press, 1997), pp. 93–98, *Literature & Theology*, Vol. 21. no.3, september 2007, Published by Oxford University Press, pp 296.
- 76 'Being an exile is not simply a fate inflicted on him, but a matter of vision and commitment that expresses his ultimate values.', *Literature & Theology*, Vol. 21. no.3, september 2007, Published by Oxford University Press, pp 297.
- 77 कृष्णा सोबती, गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान, पृष्ठ-27.
- 78 <http://www.hindisamay.com/content/7231/1/लेखक-ईमान-मर्सल-का-आत्मकथ्य-कुछ-पुर्जियां-कुछ-चिन्दियाँ.aspx>, (17 November 2017).
- 79 कुंवर नारायण, ना सीमायें, ना दूरियाँ- 'कुंवर नारायण से रेनाता चेकाल्स्का की बातचीत', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण -2017, पृष्ठ-261.
- 80 रोमन कवि जिसे सम्राट आगस्टस के द्वारा आजीवन निर्वासन दिया गया. उसमें मेटामोर्फिस पुस्तक के अंत में लिखा 'पैर साईकुला ओमिनिया विवाम-मैं जिऊंगा सदा के लिए'. <https://hi.wikipedia.org/wiki/ओविद>, (30 November 2017).
- 81 दरबार की नर्तकी पर आसक्त होने के कारण निर्वासन मिला और इसी निर्वासन में उन्होंने माधवानलकामकंदला चरित्र पुस्तक लिखी.
- 82 फ्रांस के लेखक जिन्होंने 15 वर्ष निर्वासन में व्यतीत किये.
- 83 चेकगणराज्य मूल के लेखक जिन्होंने फ्रांस में रहना शुरू किया.
- 84 रूस से निर्वासित लेखक.
- 85 श्रीलंका की तमिल मुस्लिम लेखिका जिन्हें वेश्याओं के लिए कानून बनाने के पक्ष में बात करने के कारण अपने स्थान से विस्थापित हो जाना पड़ा.
- 86 अंग्रेजी की लेखिका जिन्हें आत्मनिर्वासन में रहना पड़ा.
- 87 तुर्की के लेखक जिन्हें राजनीतिक दबावों के कारण अपना देश छोड़ना पड़ा और उन्होंने कहा, "लेखक का काम अनदेखी पीड़ाओं को व्यक्त करना है". <https://kafila.online/2017/06/01/>, (17 August 2016).
- 88 इटली का दार्शनिक और लेखक.
- 89 रूसी बोलशेविक क्रांति के नेता.
- 90 <https://navbharattimes.indiatimes.com/world/pakistan/christian-man-sentenced-to-death-for-blasphemy-in-pakistan/articleshow/60703085>, (24 November 2017).
- 91 http://www.bbc.com/hindi/news/2012/08/120828_blasphemy_laws_qa_ss.shtml, (23 November 2017).
- 92 "और वह (यहूदी घमंड से) कहते हैं कि हमारे दिल कवच से सुरक्षित हैं। नहीं, उनके कुफ्र के कारण उनपर अल्लाह की फिटकार है.", कुरान शरीफ, पृष्ठ-43.
- 93 "जो लोग मरियम के बेटे मसीह को ही अल्लाह कहते हैं, वह बेशक कफिर हैं." कुरान शरीफ, पृष्ठ-165.
- 94 (ऐ पैगम्बर ! यहूदियों व ईसाइयों से) कहो कि ऐ किताबवालों ! जब तक तुम तौरात और इंजील और जो (शहीफे) तुम्हारे परवरदिगार की तरफ से तू पर उतारे गये हैं उन्हें कायम न रखोगे, तब तक तुम कुछ भी राह पर नहीं हो. और (ऐ पैगम्बर) जो तुम पर तुम्हारे परवरदिगार की तरफ से (कुरान) उतरा है उससे इन लोगों में डाह होने के कारण) उनसे से बहुतेरों की सरकशी और कुफ्र बढ़ेगा. सो तू इन काफिरों की कौम पर अफ़सोस न करना." कुरान शरीफ, पृष्ठ-211.
- 95 "बेशक वह लोग काफ़िर हो गये हैं जो यह कहते हैं कि अल्लाह तआला इन्ही तीनों में से एक हैं. हालाँकि अल्लाह के अलावा और कोई माबूद नहीं और जैसी-जैसी बातें ये लोग (अल्लाह के बारे में) कहते हैं अगर उनसे बाज नहीं आयेगें तो जो लोग इनमें से कुफ्र करते रहेंगे उन्हें दुखदायी अजाब होगा.", कुरान शरीफ, पृष्ठ-211.

- 96 "...और अगर न मानें तो अल्लाह इनको दुनिया और आखिरत में दुखदाई सजा देगा और जमीन पर न इनका कोई साथी होगा और न मददगार.", कुरान शरीफ, पृष्ठ-337.
- 97 "...ऐ पैगम्बर इनको दोहरी सजा होगी क्योंकि (इनका कुफ्र इस कदर बढ़ा था कि हमारा पैगाम) न ये लोग सुन सकते थे और न देख सकते थे. ", कुरान शरीफ, पृष्ठ-377.
- 98 "उसकी जाति के सरदार जो काफ़िर (धर्म विमुख) थे कहने लगे कि हमको तुम अहमक मालूम होते हो और हम बेशक तुमको झूठा समझते हैं.", कुरआन शरीफ, पृष्ठ-273.
- 99 "(ऐसा कभी न हुआ कि) जब कोई पैगम्बर उनके पास आया उन्होंने उनकी हँसी न उड़ाई हो.", कुरान शरीफ-पृष्ठ-731.
- 100 "फिरऔन, हमान और कारून की तरफ तो वह कहने लगे कि (यह मूसा तो) जादूगर और झूठा है.", कुरान शरीफ, पृष्ठ-777.
- 101 "जो लोग अल्लाह और उसके पैगम्बर से लड़ते और फसाद फैलाने की गरज से मुल्क में दौड़े फिरते हैं, उनकी सजा तो यही है कि मार डाले जाएँ या उनको सूली दी जाए या उनके हाथ-पाँव खिलाफ जानिब से काट दिए जाएँ या उनको देश निकाला दिया जाय.", कुरान शरीफ, पृष्ठ-199.
- 102 सूरा 33 आयत 61 -"फिटकारे हुए कि जहाँ पाए गये पकड़े गये और जान से मारे गये.", कुरान शरीफ, पृष्ठ-705.
- 103 https://en.wikipedia.org/wiki/Islam_and_blasphemy, (23 November 2017).
- 104 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-55.
- 105 वही, पृष्ठ-238.
- 106 वही, पृष्ठ-391.
- 107 तसलीमा नसरीन, लज्जा, पृष्ठ-68.
- 108 वही, पृष्ठ-43.
- 109 वही, पृष्ठ-93.
- 110 bangladesh penal code article -292 -http://bdlaws.minlaw.gov.bd/print_sections_all.php?id=11, (26 November 2017).
- 111 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-421.
- 112 कुरान शरीफ, पृष्ठ-482-483.
- 113 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, 446.
- 114 वही, पृष्ठ-441.
- 115 वही, पृष्ठ-398.
- 116 वही, पृष्ठ-401.
- 117 वही, पृष्ठ-467.
- 118 वही, पृष्ठ-466.
- 119 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-90.
- 120 रूसी लेखिका मेरी बाशकिर्त्सेव का प्रसिद्ध कथन.
- 121 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-104.
- 122 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो, पृष्ठ-25 .
- 123 तसलीमा नसरीन, नहीं कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-188.
- 124 तसलीमा नसरीन, उत्ताल-हवा, पृष्ठ-273.
- 125 तसलीमा नसरीन, नहीं कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-48.
- 126 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो, पृष्ठ-59.
- 127 वही, पृष्ठ-177.
- 128 वही, पृष्ठ-180.

- 129 तसलीमा नसरीन, नहीं कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-223.
- 130 वही, पृष्ठ-224.
- 131 वही, पृष्ठ-223.
- 132 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-19.
- 133 <https://www.brainyquote.com/quotes/keywords/exile.htm>, (12 December 2017).
- 134 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-228.
- 135 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-92.
- 136 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-214.
- 137 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो-पृष्ठ-105.
- 138 वही, पृष्ठ-9.
- 139 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-73.
- 140 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित-पृष्ठ-62.
- 141 'अजन्ता-एलोरा भ्रमण का मेरा अनुभव', हंस, वर्ष-32, अंक-2, सितम्बर-2017, सं-संजय सहाय, पृष्ठ-95.
- 142 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-17.
- 143 वही, भूमिका.
- 144 वही, पृष्ठ-37.
- 145 वही, पृष्ठ-23.
- 146 वही, पृष्ठ-19.
- 147 वही, पृष्ठ-24.
- 148 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-31.
- 149 वही, पृष्ठ-65.
- 150 वही, पृष्ठ-25.
- 151 वही, पृष्ठ-33.
- 152 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो, पृष्ठ-362.
- 153 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-185.
- 154 वही, पृष्ठ-51.
- 155 Marc Schuilenburg, 'Behave or be banned? Banning orders and selective exclusion from public space', https://www.researchgate.net/profile/Marc_Schuilenburg?, (12 February 2018).
- 156 निर्वासन, पृष्ठ-148.
- 157 वही, पृष्ठ-149.
- 158 वही, पृष्ठ-150.
- 159 वही, पृष्ठ-147.
- 160 वही, पृष्ठ-147.
- 161 इंडोनेशिया के लोकप्रिय नाटककार और कवि, जिनकी रचनाओं में इंडोनेशिया की समाज-व्यवस्था की विकृतियों और सत्ता के चरित्र की विसंगतियों पर व्यंग्य किया गया है. इसके कारण उन्हें सुकर्नो और सुहार्तो जैसे शासकों के काल में प्रतिबन्ध और कारावास का सामना करना पड़ा.

- 162 केन्या के रंगकर्मी और लेखक जिनको केन्या के शासकों जोमो केन्याटा और दिन्यल मोई के समय में प्रतिबन्ध और कारावास झेलना पड़ा. और उन्हें केन्या में जाने से प्रतिबंधित कर दिया गया. इसका कारण यह बताया गया कि एक तो वे वहाँ की सरकारी भाषा अंग्रेजी में नहीं लिखते बल्कि केन्या की ही एक स्थानीय भाषा 'गिकियू' में लिखते हैं और दूसरा उनकी रचनाओं में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष का चित्र किया गया है .
- 163 मैनेजर पाण्डेय, अनभै सांचा, पृष्ठ-147.
- 164 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-119 .
- 165 वही, पृष्ठ-363.
- 166 'अजन्ता-एलोरा भ्रमण का मेरा अनुभव', हंस, वर्ष-32, अंक-2, सितम्बर-2017, सं-संजय सहाय, पृष्ठ-94.
- 167 http://www.bbc.com/hindi/india/2012/02/120203_tasleema_politics_ss, (10 July 2016).
- 168 http://www.bbc.com/hindi/india/2012/02/120203_tasleema_politics_ss, (10 July 2016).
- 169 डॉ. सत्येन्द्र, निबंध निलय, पृष्ठ-117.
- 170 डॉ गणपति चन्द्र गुप्त, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत, पृष्ठ-27.
- 171 रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग-3, पृष्ठ- 27.
- 172 वही, पृष्ठ-7.
- 173 डॉ गणपति चन्द्र गुप्त, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत, पृष्ठ-9.
- 174 http://saahityaalochan.blogspot.in/2008/08/blog-post_2139.html, (19 November 2017).
- 175 <http://hindisamay.com/kahani/Ek%20pathak.htm>, अनु.-अनिल जनविजय, (18 July 2017).
- 176 मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, google book, पृष्ठ-49.
- 177 कृपाशंकर चौबे, नज़रबंद तसलीमा, पृष्ठ-64.
- 178 तसलीमा नसरीन, तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-44.
- 179 तसलीमा नसरीन, कुछ गद्य, कुछ पद्य, पृष्ठ-243.
- 180 तसलीमा नसरीन, तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-138.
- 181 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-78.
- 182 वही, पृष्ठ-113.
- 183 तसलीमा नसरीन, पृष्ठ-108.
- 184 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, पृष्ठ-15.
- 185 तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-30.
- 186 तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-84.
- 187 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, पृष्ठ-89.
- 188 कृपाशंकर चौबे, नज़रबंद तसलीमा, पृष्ठ-68.
- 189 तसलीमा नसरीन, कुछ गद्य, कुछ पद्य, पृष्ठ-127.
- 190 वही, पृष्ठ-47.
- 191 मुझे मुक्ति दो, पृष्ठ-30.
- 192 वही, पृष्ठ-29.
- 193 तसलीमा नसरीन, मुझे देना और प्रेम, भूमिका से.
- 194 तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-23.
- 195 वही, पृष्ठ-18.
- 196 तसलीमा नसरीन, कुछ गद्य, कुछ पद्य, पृष्ठ-197.
- 197 वही, पृष्ठ-218.

- 198 वही, पृष्ठ-225.
- 199 तसलीमा नसरीन, औरत का कोई देश नहीं, पृष्ठ-17.
- 200 वही, पृष्ठ-25.
- 201 तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-22.
- 202 वही, पृष्ठ-104.
- 203 वही, पृष्ठ-113.
- 204 वही, पृष्ठ-159.
- 205 वही, पृष्ठ-78.
- 206 तसलीमा नसरीन, कुछ गद्य, कुछ पद्य, पृष्ठ-172.
- 207 तसलीमा नसरीन, वे अँधेरे दिन, पृष्ठ-465.
- 208 तसलीमा नसरीन, नहीं कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-249.
- 209 वही, पृष्ठ-208.
- 210 वही, पृष्ठ-311.
- 211 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-283.
- 212 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-42.
- 213 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-205.
- 214 वही, पृष्ठ-360.
- 215 तसलीमा नसरीन, लज्जा, पृष्ठ-169.
- 216 तसलीमा नसरीन की कविताएँ, पृष्ठ-14.
- 217 तसलीमा नसरीन, मुझे मुक्ति दो, पृष्ठ-46.
- 218 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-256.
- 219 बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द, पृष्ठ-7.
- 220 literarism.blogspot.com, (16 July 2017).
- 221 literarism.blogspot.com, (16 July 2017).
- 222 कृपाशंकर चौबे, नज़रबंद तसलीमा, पृष्ठ-63.
- 223 रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग-3, सं-नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1983, पृष्ठ-8.
- 224 मानक हिंदी कोश, रामचंद्र वर्मा(सं), प्रथम खंड, राजपाल एंड संस, पृष्ठ-217.
- 225 डॉ मालती जावले, साठोत्तर हिंदी कहानी और अश्लीलता, विनय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण-1996, पृष्ठ-10.
- 226 लक्ष्मीकान्त वर्मा, आधुनिक हिंदी कहानी के संदर्भ में अश्लीलता : एक विवेचन, साहित्य भवन, इलाहाबाद, पृष्ठ-15.
- 227 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, रचना के सरोकार, पृष्ठ-94.
- 228 वही, पृष्ठ-95.
- 229 वही, पृष्ठ-95.
- 230 वही, पृष्ठ-97.
- 231 <http://www.joharkhabar.com/culture/interview-ramesh-bhagat-and-hansda-sowvendra-shekhar>, (12 January 2018).
- 232 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, रचना के सरोकार, पृष्ठ-99.
- 233 जगदीश्वर चतुर्वेदी, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद और जनमाध्यम, पृष्ठ-166.
- 234 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, रचना के सरोकार, पृष्ठ-97.

- 235 वही, पृष्ठ-97.
- 236 जगदीश्वर चतुर्वेदी, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद और जनमाध्यम, पृष्ठ-166.
- 237 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-164.
- 238 वही, पृष्ठ-161.
- 239 वही, पृष्ठ-163.
- 240 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-24.
- 241 वही, पृष्ठ-47.
- 242 वही, पृष्ठ-52.
- 243 तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-173.
- 244 वही, पृष्ठ-176.
- 245 वही, पृष्ठ-172.
- 246 वही, पृष्ठ-172.
- 247 जय सिंह मीणा, 'दलित साहित्य : शालीनता का प्रश्न', <http://www.debateonline.in/301113/>, (18 November 2017).
- 248 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-28.
- 249 वही, पृष्ठ-73.
- 250 वही, पृष्ठ-53.
- 251 कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-101.
- 252 वही, पृष्ठ-108.
- 253 वही, पृष्ठ-112.
- 254 वही, पृष्ठ-114.
- 255 तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-29.
- 256 वही, पृष्ठ-77.
- 257 प्रो. श्रीराम शर्मा, समकालीन हिंदी साहित्य के विविध विमर्श, पृष्ठ-45.
- 258 तसलीमा नसरीन, मेरे बचपन के दिन, पृष्ठ-102.
- 259 तसलीमा नसरीन, उत्ताल हवा, पृष्ठ-320.
- 260 'Rubaiyat Hossain is an independent film-maker and Lecturer at Brac University., "I want to argue that Taslima Nasrin is condemned, especially in the literary circle, because she is the first woman to talk openly about female sexuality in Bangla literature. She is also the first one to write openly about her sexual encounters with other writers (may they be true or fabricated). Whether Taslima's accounts in Dwikhondita were based on reality is an entirely separate debate, but from the ill reaction towards the book, we come to understand once again that when a female talks openly about her sexuality it is not well received.', <http://archive.thedailystar.net/forum/2006/december/taslima.htm>, (24 April 2016).
- 261 रमणिका गुप्ता, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-129.
- 262 तसलीमा नसरीन, द्विखंडित, पृष्ठ-134.
- 263 वही, पृष्ठ-47.
- 264 वही, पृष्ठ-122.
- 265 वही, पृष्ठ-274.
- 266 वही, पृष्ठ-325.

267 वही, पृष्ठ-297.

268 वही, पृष्ठ-298.

269 वही, पृष्ठ-325.

270 वही, पृष्ठ-326.

271 वही, पृष्ठ-294.

षष्ठ अध्याय

तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म, पितृसत्ता और
राजनीति के विकल्प की तलाश : मानवतावाद के रूप में

षष्ठ अध्याय

तसलीमा नसरीन की आत्मकथा में धर्म, पितृसत्ता और राजनीति के विकल्प की तलाश : मानवतावाद के रूप में भूमिका

6.1 मानवतावाद : मनुष्य को मनुष्य स्वीकार करने की अवधारणा

- (क) मानवतावाद का शाब्दिक अर्थ एवं परिभाषा
- (ख) मानवतावादी दर्शन
- (ग) मानवतावादी अवधारणा का क्रमिक विकास
- (घ) मानवतावाद के प्रकार

6.2 मानवतावादी तसलीमा : विकल्प के रूप में मानवतावाद की स्थापना

- (क) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की पक्षधर
- (ख) थियोसेंट्रिक समाज के स्थान पर एन्थ्रोपोसेंट्रिक समाज की स्थापना पर बल
- (ग) धर्मनिरपेक्षता की समर्थक
- (घ) नास्तिकतावादी
- (च) नस्लवाद का विरोध
- (छ) अहैतुक प्रेम, स्त्री-पुरुष समानता और स्वतंत्रता पर बल
- (ज) निर्वासितों और विस्थापितों की पक्षधर
- (झ) मानवतावाद पर आधारित राजनीति की पक्षधर

6.3 मानवतावादी मूल्यों पर आधारित समाज - यूटोपिया या यथार्थ ?

निष्कर्ष

भूमिका

पिछले अध्यायों में यह देखा गया कि तसलीमा के अनुसार स्त्री-जीवन धर्म, पितृसत्ता और राजनीति के त्रिकोण में कुछ इस प्रकार जकड़ा है कि उससे निकल पाना अत्यंत कठिन है। तसलीमा नसरीन आत्मकथा में स्त्री-जीवन के दायरे को सीमित करने वाले कारणों के वर्णन के साथ-साथ उनसे बाहर निकल आने के कई विकल्प भी बीच-बीच में प्रस्तुत करती हैं, जिन्हें समग्र रूप में 'मानवतावाद' कह सकते हैं।

प्रस्तुत अध्याय तसलीमा की आत्मकथा में इन्हीं विकल्पों की तलाश करता है। मानवतावाद के सैद्धांतिक पक्ष को देखने के साथ-साथ आत्मकथा में उन्होंने किस रूप में मानवतावाद की स्थापना की है, इसका भी मूल्यांकन है। मानवतावादी मूल्यों को विकल्प के रूप में स्थापित करने में तसलीमा की अन्य रचनाएँ उनकी पूरक जान पड़ती हैं। इसलिए यहाँ उनके सन्दर्भों को देखते हुए तसलीमा के मानवतावादी पक्ष का मूल्यांकन किया गया है।

धर्म, पितृसत्ता और राजनीति के गठजोड़ की बेड़ियों में फँसी स्त्री को इससे बाहर निकाल लाने की अकुलाहट तसलीमा की आत्मकथा में स्पष्ट दिखाई देती है। वे स्त्रियों का शोषण कर रहे पितृसत्तात्मक समाज, धर्म के आधार पर बंटे समाज और कुत्सित राजनीति से कुंठित होते समाज को मानवतावादी मूल्यों के सहारे सीमित मानसिकताओं के दायरे से निकल आने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। वे 'मानवतावाद' को एक बेहतरीन विकल्प के रूप में स्थापित करती नज़र आती हैं। इस मानवतावाद का उद्देश्य है मानवीय अस्मिता और मानवीय गरिमा को बनाए रखना। जैसा कि नामवर सिंह का मत है, "महान कला, सच्चा यथार्थवाद और मानवतावाद, अविभाज्य ढंग से परस्पर जुड़े होते हैं और इन्हें जोड़नेवाला सिद्धांत वही है जिस पर हम बल देते रहे हैं, अर्थात् मानव अस्मिता की हिफाजत।"¹ तसलीमा का समग्र साहित्य अपने स्तर पर मानव अस्मिता की हिफाजत की ही बात करता है - जिसका विशेष आग्रह है - स्त्री को मनुष्य स्वीकार किया जाना।

तसलीमा 'अकाज' कविता में लिखती हैं, "मैंने अपने सपने नेपथलीन में मरोड़कर, बड़े जतन से रख छोड़े हैं !"² और ये सपने हैं- कलकत्ता वापस लौटने के सपने, एकमेव भारत के सपने, सभी लोगों को प्रेम से रहते हुए देखने के सपने, स्वतंत्रता-समानता के सपने । तसलीमा इन सभी सपनों को 'मानववादी मूल्यों' के माध्यम से पूर्ण होते देखना चाहती हैं और घोषित कर देती हैं, " मैं अपने लेखन के माध्यम से सत्ता और मानवाधिकार के लिए संघर्ष कर रही हूँ ।"³ इसके लिए सर्वप्रथम यह देखना आवश्यक है कि मानवतावादी मूल्य और तत्संबंधी सिद्धांत और विश्व में प्रचलित मान्यताएँ क्या है ? यह अग्रलिखित बिन्दुओं में स्पष्ट हो जाता है -

6.1 मानवतावाद : 'मनुष्य को मनुष्य स्वीकार करने की अवधारणा'

मानवतावाद एक आधुनिक दर्शन है जो अपनी ज्ञान मीमांसा में 'प्रत्यक्षवाद', तत्वमीमांसा में 'भौतिकवाद' और नीति मीमांसा में 'उपयोगितावाद' जैसे सिद्धांतों को स्वीकारता है । यह पारम्परिक धर्मों का विरोधी है क्योंकि इसके अनुसार उनकी अलौकिकता, रूढ़िवादिता तथा मजहबी मानसिकता विश्व का विकास कम, विनाश अधिक कर रही है । डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार, "जब मानव मस्तिष्क को पता लगता है कि जिन अवलम्बों पर वह बहुत समय से झुककर सहारा लेता आया है वे जीर्ण एवं जर्जर हैं; जब संशय होता है कि पारंपरिक धर्म या सम्प्रदाय निराधार हैं, जब जीवन से उसका अर्थ खो गया सा लगता है, और वह सिकुड़कर एक अवधि, एक लम्बाई, एक प्रसार भर रह जाता है, जब भयानक अरक्षा एवं आत्मा के अकेलेपन का भाव हम पर अधिकार कर लेता है, तब हम अनुभव करते हैं कि विवेकपूर्ण जीने का केवल एक मार्ग है, वह है उन तात्त्विक, अनिवार्य वस्तुओं को बलपूर्वक ग्रहण किये रहना जो आज भी निश्चित हैं : सत्य की सरलता और नैतिक नियमों की महनीयता ।"⁴ इस सत्य का निहितार्थ है मनुष्य की शक्ति को पहचानना । जैसा कि सुमित्रानंदन पन्त ने उद्धोषणा की 'सुन्दर है सुमन विहग सुन्दर मानव तुम सबसे सुन्दरतम्' । मनुष्य की इसी शक्ति को पहचानने और उसके महत्व को स्थापित करने का सिद्धांत 'मानवतावाद' में प्रस्तुत किया गया है ।

(क) मानवतावाद का शाब्दिक अर्थ एवं परिभाषा :

'मानवतावाद' अंग्रेजी के 'ह्युमनिज्म' शब्द का हिंदी रूपांतरण है, जो कि इतालवी शब्द 'युमनिस्ता' से निःसृत है। इस शब्द का अर्थ है 'इतालवी साहित्य का नैतिक दर्शन'। पंद्रहवीं शताब्दी में सर्वप्रथम प्रयोग किये गये इस शब्द (युमनिस्ता) का आधुनिक काल में 'ह्युमनिज्म' के रूप में प्रयोग करने के दौरान इसका अर्थ विस्तार हुआ।¹⁵ 'हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली' पुस्तक में 'ह्युमेनिज्म' शब्द लैटिन भाषा के 'ह्युमंस' शब्द से निःसृत बताया गया है, जिसने पहले 'ह्युमन' शब्द का रूप ग्रहण किया तथा जिसका सम्बन्ध 'होमो' जाति से है। इस 'ह्युमन' शब्द का अर्थ 'मानव' है एवं प्रत्यय लगाकर इसे 'मानवतावाद' बनाया गया है।¹⁶ फ्रांसीसी पुनर्जागरण के समय 'ह्युमनिस्ट' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया। तबसे इसका अर्थ 'मानव की भलाई' के सन्दर्भ में लिया जाने लगा। इस शब्द का मूल तात्पर्य 'मानव का मानव के प्रति प्रेम' है। इसकी विभिन्न परिभाषाएँ दी गयी हैं जो निम्नवत् हैं -

बाल्डविन की 'डिक्शनरी ऑफ़ फिलोसोफी एंड साइकोलॉजी' के अनुसार "यह विचार, विश्वास, अथवा कर्म सम्बन्धी वह पद्धति है, जो ईश्वर का परित्याग करके मनुष्य तथा सांसारिक वस्तुओं पर ही केन्द्रित रहती है।"¹⁷

मानवतावादियों के अंतर्राष्ट्रीय संगठन 'इंटरनेशनल ह्युमेनिस्ट एंड एथिकल यूनियन' के अनुसार, "मानवतावाद एक लोकतान्त्रिक और नैतिक जीवन मुद्दा है जो दृढ़तापूर्वक यह कहता है कि मानव को अपने जीवन को अर्थ और आकार प्रदान करने का उत्तरदायित्व है। यह मानवीय क्षमताओं द्वारा बुद्धि और अन्वेषण की मनोवृत्ति से, मानवीय और अन्य प्राकृतिक मूल्यों पर आधारित नैतिकता द्वारा एक अधिक मानवोचित समाज बनाये जाने का समर्थन करता है। यह ईश्वरवादी नहीं है, और यह वास्तविकता के अतिप्राकृतिक दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करता।"¹⁸

अमेरिकी मानवतावादी दार्शनिक कार्लिस लामोंट के अनुसार, "मानवतावाद इस प्राकृतिक विश्व में समस्त मानवता के अधिकतर शुभ के लिए सहर्ष सेवा का दर्शन है। यह बुद्धि, विज्ञान, और लोकतंत्र की विधियों का समर्थन करता है।"

स्पष्ट है, मानवतावाद जीवन के प्रति एक लोकतान्त्रिक एवं नैतिक नजरिया है जो मानव के साथ, मानव जैसा व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है।

(ख) मानवतावादी दर्शन : मानवतावाद का दर्शन निम्नलिखित तीन तत्वों के आधार पर समझा जा सकता है -

ज्ञानमीमांसा : मानवतावाद की ज्ञानमीमांसा मूलतः मानवीय अनुभव और तर्कबुद्धि पर आधारित है। इसी आधार पर मानवतावादी ईश्वर, आत्मा आदि सभी अलौकिक सत्ताओं के अस्तित्व का निषेध करते हैं। इसके अंतर्गत 'प्रत्यक्ष' को ही ज्ञान का महत्वपूर्ण प्रमाण माना जाता है।

तत्वमीमांसा : इस दृष्टि से मानवतावाद मूलतः प्रकृतिवाद, भौतिकवाद, विकासवाद और निरीश्वरवाद को स्वीकार करता है। यह ईश्वरवाद का स्पष्ट शब्दों में खंडन करते हुए 'भौतिकतावाद' को स्थापित करता है।

आचारमीमांसा : इसमें अलौकिक शक्तियों के निषेध के साथ ही मनुष्य की शक्ति की महत्ता को स्थापित किया गया है। यह जीवन का लक्ष्य 'मानव कल्याण' मानता है। इसमें कला, संस्कृति, साहित्य के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीयतावाद और विश्व-बंधुत्व को मूल आदर्श के रूप में स्वीकार किया गया है।

कह सकते हैं, मानवतावाद पूर्णतः मानवकेन्द्रित दर्शन है जो अलौकिक के स्थान पर भौतिक की स्थापना करता है और मनुष्य को अपनी उन्नति के लिए स्वयं उत्तरदायी मानता है।

(ग) मानवतावादी अवधारणा का क्रमिक विकास : मानवतावाद का विकास मानव

चिन्तन के इतिहास के साथ ही हुआ है किन्तु उस समय यह किसी अवधारणा के रूप में नहीं रहा। इसका आधुनिक सन्दर्भों में प्रयोग तो फ्रांस की क्रांति के बाद ही हुआ। मानवतावाद के प्राचीन प्रमाण चीन के कन्फ्युशियस, ताओ और भारत के बौद्ध के साथ ग्रीक दर्शनों आदि में मिलते हैं। मानवतावाद की पृष्ठभूमि उस समय से देखी जा सकती है 'जब सोफ्रीवादियों और सुकरात ने दर्शन का स्वर्ग से पृथ्वी पर आह्वान किया था।'⁹ मानवतावाद के सम्बन्ध में अब तक प्रस्तुत मतों को एक साथ रखकर देखें तो मानवतावाद के दो रूप दिखाई पड़ते हैं - 'धर्मसंगत मानवतावाद' और 'धर्मविरोधी मानवतावाद'। 'धर्मसंगत मानवतावाद' का अर्थ है, वह मानवतावाद, जो सामान्य प्रचलित अर्थ में प्रयुक्त धर्म का निषेध नहीं करता हो या भावात्मक रूप से, धर्म पर आधारित होने के कारण ही मानववादी विचार को स्वीकार करता हो। जैसे- बौद्ध धर्म एवं प्रोटेस्टेंट धर्म। 'धर्मविरोधी मानवतावाद' समकालीन मानववादी दर्शन है। इसकी परम्परा का आरम्भ प्रोटेगोरस से हुआ जिनका स्पष्ट कहना था कि 'होमो मेंसुरा' या 'मनुष्य माप है सभी पदार्थों का'। प्रोटेगोरस की भाँति जिन दार्शनिकों ने मानववाद का समर्थन किया वे सब 'सॉफिस्ट्स' कहलाये। इसके बाद हिराक्लिटस, डेमोक्रीटस, थेल्स आदि ने भी भौतिकतावाद का समर्थन किया। सुकरात ने उक्ति 'अपने को जानो' आदि कहकर मनुष्य सम्बन्धी चिन्तन को प्रोत्साहित किया गया।¹⁰ भारतीय दर्शन परम्परा में चार्वाको ने भी धर्मविरोधी मानवतावाद का समर्थन करते हुए यह मत दिया कि 'निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ व्यक्ति ही ईश्वर की संज्ञा से विभूषित है।'¹¹ बौद्धों ने स्वयं के द्वारा निर्वाण प्राप्ति के मार्ग को खोलकर व्यक्ति की महत्ता स्थापित की। गीता का 'निष्काम कर्म' व्यक्ति को नैतिकता और कर्म का पाठ पढ़ाता नज़र आता है। इस दृष्टि से इन सभी को मानवतावादी मूल्यों का पोषक कहा जा सकता है।

पुनर्जागरण काल में मानवतावाद सैद्धांतिक रूप में सामने आया। पाश्चात्य परम्परा के प्रमुख मानववादी चिन्तक - इमेनुअल कांट, डेविड ह्यूम, थॉमस पेन, वोल्टेयर, मैरी वोलास्टन क्राफ्ट, बैरन

डी होल्बख, जेरेमी बेन्थम, चार्ल्स डार्विन, थॉमस हार्डी, ऑगस्ट कॉम्ट, जॉन ड्यूवी, एरिक फ्राम, कोलिस लामोंट, मार्क्स, स्पेंसर, बैथम, जूलियन हक्सले, जॉन स्टुअर्ट मिल, बर्ट्रेंड रसेल, जॉर्ज सेंटयाना, जे. पी. सार्त्र, ई. एम. फोस्टर, सिगमण्ड फ्रायड, जी. ई. मूर आदि हैं। भारतीय पुनर्जागरण और आधुनिक काल में राजा राम मोहन राय, विवेकानंद, महात्मा गाँधी, मानवेन्द्र नाथ राय, जवाहर लाल नेहरू, राधाकृष्णन, पंडित दीनदयाल उपाध्याय उल्लेखनीय हैं। भारतीय परम्परा में मानवतावाद ईश्वरीय और अनिश्चरीय दोनों है। राजा राम मोहन राय, विवेकानंद, गाँधी ने जहाँ ईश्वरीय मानवतावाद को प्रतिस्थापित किया वहीं मानवेन्द्रनाथ राय ने 'रेडिकल मानवतावाद' तो दीन दयाल उपाध्याय ने 'एकात्म मानवतावाद' एवं नेहरू ने 'वैज्ञानिक मानवतावाद' को सिद्ध किया। मानवतावाद को पश्चिम की देन कहा जाता है क्योंकि सर्वप्रथम वहीं ह्यूमेनिज्म के रूप में इस पर चिंतन प्रारंभ हुआ। वस्तुतः यह सही नहीं है क्योंकि मानवतावादी विचारधारा तो भारतीय उपमहाद्वीप में बौद्ध और चार्वाकों के समय से ही है। यही कारण है कि तसलीमा का मत है, "समानाधिकार और मानवाधिकार का कोई पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण नहीं होता।"¹²

(घ) मानवतावाद के प्रकार :

मानवतावाद को लेकर प्राचीन से आधुनिक काल तक विभिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं। मध्ययुग में 'ईश्वर केन्द्रित मानवतावाद' की स्थापना हुई तो आधुनिक युग में ईश्वर की सत्ता को नकार 'इहलौकिक मानवतावाद' का समर्थन किया गया। फ्रायरबाख के प्रतिपादन के अनुसार 'आधुनिक मानवतावाद ने यह बात स्वीकार की है कि... मनुष्य को ही सब कुछ बनना हो तो ईश्वर को विसर्जित करना होगा।'¹³ इसका परिणाम यह हुआ कि मैक्सिम गोर्की ने आगे चलकर 'द लोअर डेप्थ' नामक अपने नाटक में एक पात्र से यह कहलवा ही दिया कि 'सब बातें मनुष्य का ही भाग हैं। सभी बातें मनुष्य के लिए ही हैं। मनुष्य ही केवल सत्य है।'¹⁴

मानवतावाद को लेकर पाश्चात्य जगत में व्यापक बहस हुई जिसमें हाईडेगर और सार्त्र के बीच विवाद उसके प्रारंभ को लेकर था। सार्त्र ने डेकार्टियन 'कोजिटो' को मानववाद का आधार माना तो हाईडेगर ने तत्वमीमांसा को उसका आधार माना एवं सीमोन दि बोउआर और सार्त्र के मध्य बहस इस बात को लेकर हुई कि सार्त्र के अस्तित्ववाद में मर्दवादी रवैया है। इसके बाद 'थमाए गये मानवतावाद' की जगह 'सच्चे मानवतावाद' की स्थापना की बात की गयी।¹⁵ इन विभिन्न मतों के आधार पर मानवतावाद के विभिन्न प्रकार समाने आते हैं, जो निम्नवत् हैं -

ईश्वरवादी मानवतावाद या धार्मिक मानवतावाद या क्लासिक ह्यूमेनिज्म : इस प्रकार के मानवतावादी विभिन्न धर्मों में दी गयी मानव कल्याण सम्बन्धी बातों को आधार बनाकर मानव कल्याण से जुड़े मानवतावाद को प्रस्तावित करते हैं। वस्तुतः सभी धर्मों का मूल उत्स मानवतावादी ही है किन्तु भ्रमात्मक स्थितियों और धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिक सोच के चलते यह कहीं खो सा गया है। धार्मिक मानवतावादी इसी मूल उत्स को आधार बनाकर ही धर्म का पक्ष लेते हैं। इनका मानना है कि मानव कल्याण के लिए ईश्वरीय प्रेरणा आवश्यक है। जी. बी. फास्टर, जॉन ड्यूवी, जूलियन हक्सले, एरिक फ्रॉम, मिल, विलियम जेम्स, आर्थर कीथ, ह्वाइटहेड, एफ. सी. एस. शिलर, फोस्टर स्वाइत्सर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी इसी प्रकार के मानवतावादी हैं। इन्होंने 'धर्मनिष्ठता' या 'Religiosity' को मानव हितों के लिए आवश्यक माना है। यहाँ धर्म या धार्मिकता का सम्बन्ध किसी अलौकिक से नहीं बल्कि मानवीय मूल्यों और मानवीय भलाई पर आधारित सिद्धांतों से है, जो मानवीय बुद्धि और मुक्त सहयोग में आस्था रखता है।

आध्यात्मिक मानवतावाद : इस प्रकार का मत भारतीय दर्शन के जैन और बौद्ध दर्शन में मिलता है जहाँ किसी ईश्वर की दखलंदाजी न स्वीकार करते हुए भी मनुष्य को अपने आध्यात्मिक विकास में सक्षम स्वीकार किया गया। मूल मान्यता यह है कि मनुष्य सब कुछ कर सकता है किन्तु मनुष्य अंततः

किसी परम तत्व से सम्बंधित है। आधुनिक काल में सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने इस प्रकार के मानवतावाद का समर्थन किया।

धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद : इसमें मानवतावाद को धर्म से स्वतंत्र एक जीवन-दर्शन माना गया है। धर्म का आधार आस्था है और परलोकवाद को महत्व दिया गया है, जबकि मानवतावाद में बुद्धि और वैज्ञानिक चिंतन को महत्व देते हुए इहलोकवाद को महत्व दिया जाता है। इस मान्यता के अनुसार मानवतावाद का बुद्धिवाद से निकट सम्बन्ध है। पॉल क्रज़ ने इस मानवतावाद की वकालत की है।

लोकतान्त्रिक मानवतावाद : अमेरिकी दार्शनिक कॉर्लिस लामोंट ने अपनी पुस्तक 'द फिलोसोफी ऑफ़ ह्यूमेनिज्म' में 1949 में यह मत सर्वप्रथम प्रस्तुत किया। उसके अनुसार, "मानवतावाद इस प्राकृतिक विश्व में समस्त मानवता के अधिकतर शुभ के लिए सहर्ष सेवा का दर्शन है। यह बुद्धि विज्ञान और लोकतंत्र की विधियों का समर्थन करता है।"¹⁶ वह लोकतान्त्रिक मानवतावाद के प्रकृति तत्व का समर्थन और हर प्रकार के अतिप्रकृतिवाद का विरोध करता है, जिसमें ईश्वर की सत्ता भी सम्मिलित है। इसके अनुसार मानव में सब कुछ बदलने की क्षमता है उसके लिए उसे किसी प्रकार की अप्राकृतिक शक्ति को खोजने की आवश्यकता नहीं है। इसी कारण वह भाग्यवाद और नियतिवाद का भी प्रतिरोध करता है। उनका मत है कि लोकतान्त्रिक व्यवस्था से मानवतावाद के मूल्यों की प्राप्ति की जा सकती है। यहाँ लोकतंत्र से तात्पर्य केवल राजनीतिक ही नहीं बल्कि सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों में भी लोकतान्त्रिक मूल्यों के पालन से है।

समाजवादी मानवतावाद : यह मार्क्सवाद पर आधारित है, जिसमें पूँजीवादी, उदारतावाद और स्टालिनवाद का विरोध किया गया। इसके प्रतिपादक दार्शनिक मार्क्स, लूकाच, गोल्डमान, लेफेब्र हैं एवं नवमानवतावादी जैसे एरिक फ्रॉम, हर्बर्ट मारक्यूज आदि इसके समर्थक हैं। 'The Political and Economic Manuscript of 1884' में मार्क्स ने मानवतावाद सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये। मार्क्स ने कहा 'मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है।' वस्तुतः यह भौतिकतावाद को मानवतावाद का

आधार मानता है। भौतिक प्रक्रियाएँ क्या हैं इस सम्बन्ध में नामवर सिंह लिखते हैं, "वर्ग समाजों का श्रम विभाजन शहर से देहात का, तथा शारीरिक श्रम से बौद्धिक श्रम का अलगाव, मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण एवं दमन, पूँजीवादी उत्पादन का विशेषीकरण ये सब भौतिक और आर्थिक प्रक्रियाएँ हैं।"¹⁷ इसके साथ ही मार्क्सवादी मानवतावाद विशेषीकरण की समाप्ति की बात करता है और यह आशा करता है कि असली मानवतावाद तभी स्थापित होगा जब मानव बाहरी प्रकृति पर नियंत्रण के साथ-साथ अपनी मानवीय प्रकृति के नियमों के अनुसार जी सके।

वैज्ञानिक मानवतावाद : नेहरू इस मत के प्रबल समर्थक थे। उनका मत था कि इस युग के दो प्रबल तत्व हैं - 'मानवतावाद' और 'वैज्ञानिक परम्परा'। उन्होंने दोनों का समन्वय कर 'वैज्ञानिक मानवतावाद' का प्रतिपादन किया। वैज्ञानिक मानवतावाद के अनुसार, नैतिक जड़ की विकासात्मक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप मानव का उद्विकास हुआ है और इसलिए प्रकृति का अंग रहकर, बिना आधिदैविक शक्ति की दुहाई दिए, अपनी ही शक्ति और बुद्धि पर भरोसा रखकर मानव अपना उत्थान कर सकता है।¹⁸ उनकी मान्यता है कि यदि मनुष्य अपनी वैज्ञानिक मनोवृत्ति के साथ धर्मनिष्ठता की भावना को जोड़ सके तो वैज्ञानिक धर्म विकसित हो सकेगा और यही मनुष्य के लिए एकमात्र वैश्विक धर्म हो सकता है।

नव मानवतावाद या रेडिकल मानवतावाद : मानवेन्द्र नाथ राय ने पश्चिम के सभी विचारों को खारिज करते हुए अपने ही प्रकार का मानवतावादी दर्शन प्रतिस्थापित किया जिसे 'आमूलीय मानवतावाद' की संज्ञा दी जाती है। यह आध्यात्मिकतावाद, राष्ट्रवाद और साम्यवाद की एक समीक्षा थी। उन्होंने 'आर्थिक मानव' की छवि को पूरी तरह से खारिज दिया। आमूलीय मानवतावाद के तीन तत्व थे - स्वतंत्रता, विवेक और नैतिकता। उन्होंने इस मत को रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी के घोषणा पत्र 'न्यू ह्यूमेनिज्म' में प्रस्तुत किया। इस पत्र के आखिरी तीन पैराग्राफ बदलकर '22 थीसिस' नामक घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ। उनके अनुसार व्यक्ति और व्यक्ति की स्वतंत्रता ही सर्वोच्च है, जिसके

लिए सब कुछ छोड़ दिया जाना चाहिए। वे व्यक्ति को साध्य और राज्य को साधन के रूप में प्रतिस्थापित करते हैं और व्यक्तिवाद और मानवीय स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक हैं। वे इस सम्बन्ध में साम्यवाद को भी एक उपयोगी विचारधारा नहीं मानते। वे मार्क्सवाद के माध्यम से इतिहास की आर्थिक व्याख्या की आलोचना करते हुए उनके इस सिद्धांत का विरोध करते हैं कि विचारधाराएँ और नैतिक मूल्य समाज के आर्थिक ढाँचे की अधिरचना मात्र हैं। वे राजनीतिक दृष्टि से लोकतंत्र के समर्थक हैं और उन्होंने मानवतावाद को एक लोकतांत्रिक सामाजिक राजनीतिक दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया।¹⁹

उपरोक्त वर्णन के आधार पर मानवतावाद के कुछ तत्व निर्धारित किये जा सकते हैं, जो लगभग सभी आधुनिक मानवतावादियों के दृष्टिकोण में अनिवार्य हैं। ये तत्व हैं - लोकतान्त्रिक मूल्य, संयमन, मानव कल्याण, सहयोग, सहानुभूति, भ्रातृत्व, विश्वबंधुत्व की भावना, समानता और स्वतंत्रता, साधन की पवित्रता, आशावाद, सम्यक् विकास, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, व्यक्ति विशेष का कल्याण, धर्मनिरपेक्षता, निरीश्वरवाद एवं नास्तिकता, बुद्धि, तर्क और वैज्ञानिक चिंतन आदि। 1980 में विश्व के कई मानवतावादियों जैसे पॉल कर्ज, ए. जे. एयर, मिलोवान जिलास, अर्नेस्ट नगेल, वी. एम. तारकुंडे आदि के हस्ताक्षर से जारी किये गये 'धर्मनिरपेक्ष मानवतावादी घोषणा पत्र' में भी मानवता को 'बुद्धि, मुक्त अन्वेषण, स्वतंत्रता, धार्मिक संदेहवाद, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र से जोड़ा गया है।'²⁰

6.2 मानवतावादी तसलीमा : विकल्प के रूप में मानवतावाद की स्थापना

तसलीमा अपने विचारों के सम्बन्ध में एक आलेख में लिखती हैं, "मैंने अपने विश्वास के लिए मानवतावाद या मानवतंत्र को चुन लिया है। मुझे मुस्लिम रिफार्मर समझने की गलती नहीं करनी चाहिए। मैं सुधारवादी नहीं हूँ। किसी धार्मिक गोष्ठी की भी नहीं हूँ, मेरी पहचान, मेरी गोष्ठी, धर्ममुक्त मानवतावादी की है।"²¹ एक मानवतावादी के रूप में उनके क्या लक्ष्य हैं उस विषय में स्पष्ट करते हुए

वे लिखती हैं, "मेरे विषय हैं - समाजतंत्र, समता, सच्चाई और समानाधिकार वगैरह । आजकल सबकुछ होता है, इंसानों में यह आदर्श ही गायब होता है । इन्सान धीरे-धीरे मानवता बोध से नीचे गिरता जा रहा है ।"²² दरअसल इन विषयों के माध्यम से वे 'इन्सान और इंसानियत के पक्ष में इन्सान की कथा रचती हैं'²³ और निर्वासन के बीच फँसी अपनी ज़िन्दगी के निगेहबानों से आग्रह करती हैं - 'निपटा लेने दो, हाथ में बचे बाकी काम।'²⁴ ये बाकी बचे काम हैं लोगों में एक दूसरे के लिए जीने की इच्छा देखना, स्त्रियों की समानता और स्वतंत्रता का साक्षी बनना और इसके लिए अपनी लेखनी से लिखते रहना आजीवन -

'बस, दो कलम लिख लूँ

उसके बाद, भले मर जाऊँ ।'²⁵

तसलीमा की रचनाओं में वे सभी तत्व उपलब्ध हैं, जो एक मानवतावादी व्यक्ति या विचारक के लिए आवश्यक हैं । ये सभी तत्व धार्मिक रूढ़िवादिता, पितृसत्तात्मक मानसिकता और कुत्सित राजनीति के विकल्प बन एक बेहतर समाज की संकल्पना गढ़ते हैं । तसलीमा की आत्मकथा एवं आत्मकथेतर रचनाओं में मानवतावादी मूल्यों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है -

(क) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की पक्षधर : तसलीमा आत्मकथा में सत्य को हथियार बनाती हैं । वे वर्जना और सीमा के पार देखने का प्रयास करती हैं और पूरी कोशिश करती हैं कि समाज भी किसी दायरे में रहकर ना सोचे । इस दायरे को तोड़ने के लिए उनके अनुसार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता महत्वपूर्ण हो सकती है । लेखक अली रिआज़ कहते हैं, "जो भी उन्होंने किया, वह शीघ्र हो सकता है पर इसने सामाजिक रूप से संगठित चुप्पी को तोड़ा, बांग्लादेश को उसके रूढ़िवादी सोच से निकालकर और वर्चस्ववादी सोच का विरोध करके असम्बद्ध व्यवहारों को प्रतिबंधित किया ।"²⁶ वे भारत और बांग्लादेश ही नहीं बल्कि वह समस्त विश्व में इस अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की पक्षधर हैं । उनका मत आदम देमाची (युगोस्लाविया सखारोव पुरस्कार विजेता) के मत से कितना मिलता है - "अगर तुम ज़ुबान से जो कहते हो कि तुम आज़ादी के लिए जंग कर रहे हो लेकिन आज़ादी के लिए

अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार नहीं हो तो या तो तुम अपने से झूठ बोल रहे हो या दूसरों से झूठ बोल रहे हो।"²⁷

वे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में इस हद तक विश्वास करती हैं कि अपने विरोधी को भी उनके विरुद्ध बोलने की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने को तत्पर हैं। उनका यह मत ईवलिन स्ट्रेसर हॉल के उस मत के समान है जिसके अनुसार, "मैं तुम्हारे विचार से सहमत नहीं हूँ, पर मैं मरते दम तक लड़ूँगी उसे व्यक्त करने के तुम्हारे अधिकार के लिए।"²⁸ तसलीमा अपने जीवन में भी स्वयं की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए कोर्ट तक जाती हैं और इस स्वतंत्रता से किसी प्रकार का समझौता न करने के कारण ही देश त्याग करने को विवश कर दी जाती हैं।

(ख) थियोसेंट्रिक समाज के स्थान पर एन्थ्रोपोसेंट्रिक समाज की स्थापना पर बल :

तसलीमा ने आत्मकथा में अपने जीवन और अन्य स्त्रियों के जीवन में धर्मसत्ता के द्वारा उत्पन्न व्याधियों को इंगित किया है। इस अभिव्यक्ति में कहीं न कहीं यह आग्रह है कि हमें इस धर्म और धर्मसत्ता के विकल्प की तलाश करनी चाहिए। इस कोशिश में वे 'मानवतावाद' पर जाकर रुकती हैं। इसके लिए वे मानवतावादी मूल्य जिसे - धर्मनिरपेक्षता, लौकिकता और नास्तिकता की स्थापना करती हैं। यदि "धर्म का आधार सृष्टि का निर्माण और ध्वंस से उपजा सहजबोध था"²⁹ तो तसलीमा का कहना है कि इस सहजबोध को तार्किक रूप दिये जाने की आवश्यकता है। धर्म के नाम पर अब तक हुई मार-काट, अत्याचार और राजनीति का तभी त्याग हो सकता है जब हम मानवतावादी मूल्यों में विश्वास करने लगे। सृष्टि के सभी प्राणी मानव हैं और आपस में एक समान हैं। किसी के अधिकार किसी से कम नहीं हैं, इस प्रकार की मान्यताएँ ही मानव के शांतिपूर्वक सहअस्तित्व के लिए सर्वाधिक सुरक्षित हैं। अन्यथा धर्म जैसी व्यवस्था के झाँसे में पड़कर मानव एक दूसरे का ही सर्वनाश कर रहा है। अतः आवश्यकता है धर्म पर संदेह करने की। यह मानवतावाद का एक महत्वपूर्ण तत्व

'धार्मिक संदेहवाद' ही तो है। पीटर अबेलार्ड का मत है, "संदेह के द्वारा हम जाँच-पड़ताल तक पहुँचते हैं और जाँच-पड़ताल हमें सच तक ले जाती है।"³⁰

इसीलिए तसलीमा 'मसजिद-मंदिर' कविता में लिखती हैं -

‘धूल में मिल जाएँ धर्म के दरो-दीवार
अंधी आग में राख हो जाए मस्जिद-मंदिर

...

मानवकल्याण के लिए अब प्रार्थनालय हों-

अस्पताल, अनाथालय, विद्यालय और विश्वविद्यालय

...धर्म का दूसरा नाम हो आज से मानवता।'³¹

तसलीमा की आत्मकथा एवं आत्मकथेतर रचनाओं से हम यह समझ पाते हैं कि धर्म किस तरह एक सामाजिक आतंक और मनुष्य को संकुचित और सीमित करने में भागीदार है। इस सीमित सोच और सामाजिक आतंक से मुक्ति के लिए ही धर्म की आलोचना और उसके विकल्प की आवश्यकता है। विवेकानन्द का मत है, "मैं यह नहीं स्वीकार करता कि जो ईश्वर मुझे यहाँ रोटी नहीं दे सकता, वह स्वर्ग में मुझे अनंत सुख देगा। उफ़ ! भारत को ऊपर उठाया जाना है ! गरीबों की भूख मिटाई जानी है ! पंडा-पुरोहितों को हटाया जाना है ! हमें पण्डे पुरोहित नहीं चाहियें। हमें सामाजिक आतंक नहीं चाहिए।"³² इस सामाजिक आतंक से मुक्ति का मार्ग है 'मानवतावाद'। इसीलिए विवेकानंद अपने प्रसिद्ध भाषण 'कास्ट, कल्चर एंड सोशलिज्म' में क्रमिक रूप से धर्म के आतंक से मुक्ति का राह सुझाते नज़र आते हैं, "पहले पुजारी प्रपंच का नाश करो, अपने संकीर्ण संस्कारों को तोड़ो, मनुष्य बनो और बाहर की ओर झाँकों।"³³ यह बाहर की ओर झाँकना दरअसल अपने इतर मनुष्यों को देखना है, उनको महत्व देना और उनके कष्टों को समझना और उसमें सम्मिलित होना है। तसलीमा जानती हैं कि इस सामाजिक आतंक का इतिहास पुराना है -

'कमोबेश, हजारहा सालों से,
इन्सान करता आया है इन्सान की हत्या,
धर्म को बचाने के लिए।' ³⁴

इसलिए इसे खत्म करना इतना सरल नहीं है। इसे खत्म होने में भले ही लम्बा समय लगे किन्तु उसके लिए अभी से प्रयास करने की ज़रूरत है। इस प्रयास को प्रबल बनाने में तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टि महत्वपूर्ण हो सकते हैं। "सत्य ही जीतता है, लेकिन विलोम सही नहीं। जो भी जीते वह सत्य नहीं। यह अर्थ का अनर्थ होगा। सत्य की कसौटी जीत नहीं तर्क है।" ³⁵ यही कारण है कि तसलीमा स्वयं भी तर्क और विज्ञान को सर्वोपरि व 'लौकिकता' को ही सर्वस्व मानती हैं। इसमें किसी ईश्वरीय शक्ति के स्थान पर उन्हें प्रकृति से अधिक लगाव है -

'मुझे रहने दो इसी नश्वर धरती पर,
बसी रहने दो मुझे वन में पहाड़, उताल सागर में

...

पृथ्वी ही मेरा इस पार

पृथ्वी ही मेरा उसपार।' ³⁶

इस आधार पर उन्हें 'प्रकृतिवादी मानववादी' कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। मदन मोहन मालवीय 'देशभक्ति का धर्म' आलेख में लिखते हैं, "धर्म वह है कि प्राणी को प्राणी के साथ सहानुभूति हो, एक दूसरे को अच्छी अवस्था में देखकर प्रसन्न हो और गिरी हुई अवस्था में सहायता दें।" ³⁷ यह धर्म दरअसल 'मानवता का धर्म' है। "वास्तविक धर्म है मानवता और संस्कृति है मानवमात्र को भयमुक्त करने का प्रयास। यही रामभक्ति है, यही देशभक्ति भी है। लेकिन जोंक समान जल में भी टेढ़े-मेढ़े चलती है, भैंस के भी थन से लग जाय तो भी दूध नहीं खून पीती है।" ³⁸ तसलीमा इस वास्तविक धर्म अर्थात् मानव जीवन का कल्याण को ही मूल्य उद्देश्य मानती हैं, जिसके लिए सभी को एक साथ उठ आगे बढ़ने का आग्रह भी वे करती हैं।

तसलीमा का मत है कि जो लोग इस प्रयास में साथ छोड़कर अलग हट जाते हैं वे समाज के लिए घातक हैं। उनकी तुलना आतताइयों से करते हुए 'अतल में नज़रबंद' कविता में वे लिखती हैं -

'जिस दिन मैंने जाना,
तुम्हारे घर न आने की असली वजह
मारे दहशत के मैं सिमटी-सिकुड़ी पड़ी हूँ, शब्दातीत
आततायी से ज्यादा, मैं तुमसे हूँ भयभीत !'³⁹

'भयंकर व्यस्त मानस और मानसनुमा प्राणी'⁴⁰ तो है किन्तु तसलीमा रूपी कवि इस अहसास से धीरे-धीरे महरूम हो रहा है कि 'धरती पर रहता है ऐसा कोई इन्सान/जिसके पास मौजूद है दिला'।⁴¹ ऐसे में इन्सान रहित कलकत्ता भी पराया लगने लगता है -

'जिसे कहा था अपना शहर, मेरा नहीं !
वह शहर जुबान पर कुछ मन में कुछ पालने वालों का शहर !
बस्ती के उपासे, बिन खाए लोगों से कतराकर निकल जाने वालों का शहर !
फुटपाथ पर मरे पड़े भिखमंगों को लांघकर चल देने वाला शहर !
मुसीबत की आँच लगते फटाफट बदन चुराने वालों का शहर !
अन्याय के ढेर पर बैठे, जुबान बंद रखने वालों का शहर,
यह मेरा नहीं !'⁴²

इसके अतिरिक्त तसलीमा धर्म जनित 'साम्प्रदायिकता' की भी निंदा करती हैं। साम्प्रदायिक मानसिकता को परिभाषित करते हुए वे लिखती हैं, "धर्म के आधार पर यह जो इंसान को किसी सम्प्रदाय में शामिल कर लेना, अलग कर देना, यह मामला और यह मानसिकता ही तो सांप्रदायिक है।"⁴³ तसलीमा साम्प्रदायिकता और उसके कारण उत्पन्न विसंगतियों की स्वयं गवाह रहीं हैं। इसलिए वह बार-बार सांप्रदायिक भेदभाव पर अपनी कलम चलाती रहीं हैं। असगर अली इंजीनियर का मत है, 'साम्प्रदायिकता के पीछे धर्म नहीं बल्कि राजनीति होती है और इसी क्षेत्र

में साम्प्रदायिकता का ग्राफ, उस क्षेत्र के राजनैतिक समीकरणों के साथ ऊपर-नीचे होता रहता है।"⁴⁴ डॉ. याकूब मसीह भी लिखते हैं, "जब तक सेक्युलरिज्म का अर्थ 'धर्मों का सह अस्तित्व माना जायेगा, तब तक भारत में धार्मिक तनाव बना रहेगा, जिससे राष्ट्रीयता के भाव को धक्का पहुँचता है। इसलिए आवश्यक है कि 'सेक्युलरिज्म' का अर्थ या तो धर्म निरपेक्षता या इहलौकिकता समझा जाय।"⁴⁵ असगर अली इंजीनियर साम्प्रदायिकता की त्रासद परिणति को इस रूप में देखते हैं, "साम्प्रदायिकता का चरम फासीवाद होता है।"⁴⁶ इस मानवजनित फासीवादी अवस्था से निकल आने के लिए तसलीमा की रचनाएँ प्रेरित करती हैं। इसी कारण वे बांग्लादेश के अल्पसंख्यक वर्ग (हिन्दू) की न होते हुए भी उनके पक्ष में खड़ी होती हैं। वे उन लाखों हिन्दुओं की आवाज़ बनती हैं जो साम्प्रदायिक मानसिकता के शिकार हो यातनापूर्ण जीवन जीने पर मजबूर हुए हैं। जैसा कि उनके उपन्यास 'लज्जा' या आत्मकथा के विभिन्न खण्डों में घटनाओं के उल्लेख के दौरान देखा जा सकता है।

कह सकते हैं तसलीमा का उद्देश्य 'थियोसेंट्रिक' (धर्म केन्द्रित) समाज को 'एँथ्रोपोसेंट्रिक' (मानव केन्द्रित) समाज की ओर ले जाना है। वे एक 'धर्मनिरपेक्ष मानवतावादी' हैं। इस दृष्टि से तसलीमा को 'व्यक्तिवादी' कहा जा सकता है।

(ग) धर्मनिरपेक्षता की समर्थक :

तसलीमा की यह इच्छा और लक्ष्य दोनों है कि दुनिया के लोग इस जाति, धर्म, सम्प्रदाय की संकुचित दुनिया से निकलकर सौहार्द के एक विस्तृत क्षेत्र में रहें। जहाँ हर कोई समान हो और एक दूसरे के प्रति सम्मान रखता हो। इसके लिए तसलीमा धर्मनिरपेक्षतावादी मूल्यों को सबसे अधिक सहायक मानती हैं। धर्मनिरपेक्षता को लैटिन में 'सेक्युलर' कहा जाता है, जिसका अर्थ है 'इस दुनिया का'। इसे धार्मिकता का विलोम कहा जा सकता है। अर्थ से स्पष्ट है कि धर्मनिरपेक्षता इहलौकिकता में विश्वास करती है जिसके अंतर्गत भौतिक जगत और मनुष्य ही ज्यादा महत्व रखता है। यहाँ किसी भी अलौकिक सत्ता के लिए कोई भी स्थान नहीं है। जार्ज जैकब होलीयोक ने अपनी पुस्तक 'इंग्लिश सेकुलरिज्म' में कहा, "धर्मनिरपेक्षता इस जीवन से सम्बंधित एक व्यवहार है, जिसे

पवित्र लोगों के द्वारा स्थापित किया गया है और उन लोगों के लिए नियोजित किया गया है जो धार्मिक विश्वासों को अनिश्चित, अविश्वसनीय मानते हैं।"47

'धर्म निरपेक्षता' की अवधारणा वस्तुतः पश्चिमी जगत की देन है, जिसकी शुरुआत चर्च और राज्य की अलग-अलग सत्ता की माँग के साथ हुई। जबकि भारत और बांग्लादेश जैसे देशों में धर्मनिरपेक्षता धर्म से तटस्थता की नहीं बल्कि सरकार से यह अपेक्षा करती है कि सभी धर्मों को समान मानते हुए समस्त धर्मावलम्बियों के साथ समान व्यवहार किया जाएगा। यहाँ धर्म को व्यवस्थित करने की विचारधारा के बजाय धर्मनिरपेक्षता एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में स्वीकृत की गई है। किन्तु तसलीमा का मत इस राजनीतिक अर्थ से भिन्न है। वे धर्मनिरपेक्षता को किसी भी धर्म में भेदभाव न किये जाने से नहीं बल्कि धर्म के समूल नाश से लेती हैं। तसलीमा ने धर्म के आधार पर होने वाले मतभेदों और उसकी परिणति को अपनी आँखों से देखा था जिसकी वजह से वह हमेशा ऐसे समाज की हिमायती रहीं, जिसमें कोई धर्म न हो, सभी को केवल मनुष्य के रूप में देखा जाए।

(घ) नास्तिकतावादी :

नास्तिकता वह सिद्धांत है, जो यह स्वीकार करता है कि किसी भी रूप में ईश्वर का अस्तित्व नहीं है। भारतीय दर्शन में नास्तिक शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है - प्रथम - जो वेदों की प्रमाणिकता में विश्वास नहीं करते, दूसरा - जो परलोक या मृत्यु के पश्चात् जीवन में विश्वास नहीं करते और तीसरा - जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। ऐसे नास्तिकों को ही 'अनीश्वरवादी' कहा गया है। इस आधार पर तसलीमा को घोर नास्तिक कहा जा सकता है। क्योंकि वे न तो वेदों की प्रमाणिकता में विश्वास करती हैं, न ही उन्होंने किसी अलौकिक शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार किया और न ही वे परलोक जैसी किसी अवधारणा में विश्वास करती हैं। उनके नास्तिक होने के पीछे कारण यह हो सकता है कि यह तर्क, वैज्ञानिक सोच पर आधारित है, जिसमें धर्म या ईश्वर जैसी किसी

अवधारणा को किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता। वे लिखती हैं, "कम से कम दुनिया में 110 करोड़ लोग नास्तिक हैं। कोई भी नास्तिक समाज में पाखंडी व्यक्ति के रूप में परिचित नहीं है और न कोई समाज के लिए हानिकारक ही है। आस्तिक लोग ईश्वर या अलौकिक शक्ति के डर से अच्छा काम करते हैं, लेकिन नास्तिक लोग अपने विवेक और मानवीय मूल्यबोध के बल पर सच्चे और महान होते हैं।"⁴⁸

डॉ रणजीत सिंह के लेख 'निरीश्वरवाद की परम्परा' में यह दिखाया गया है कि नास्तिकता की यह परम्परा पूरे विश्व में व्याप्त है। इसके लिए उन्होंने विभिन्न जातियों-जनजातियों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जैसे- अफ्रीका की कुछ पिग्मी जातियों में कोई निश्चित प्रथा या अनुष्ठान नहीं था। श्रीलंका के वेदाह लोग भी किसी निश्चित अनुष्ठान को नहीं मानते आदि। पश्चिमी दर्शन जिसका विकास यूनान में छठी शताब्दी ई. पू. में हुआ, प्रारंभ में नास्तिक नहीं थे किन्तु धीरे-धीरे ईश्वरवादियों की आलोचना से नास्तिकता की ओर भी लोगों का ध्यान गया। जेनोफनेस ने ईश्वर की मूर्तियों का मजाक उड़ाते हुए कहा कि यदि घोड़ों और गायों के भी हाथ होते तो वे ईश्वर को घोड़े और गाय के रूप में चित्रित करते। भारत में भी इस समय चार्वाक और बौद्ध मत में भी ऐसी ही मान्यताएँ पनप रही थीं। इसके बाद सुकरात आए जिसका मत था 'सही करने के लिए सही सोचना जरूरी है।' यूरोप में नास्तिकता की अवधारणा पुनर्जागरण 'रिनेशा' के समय से ही दिखाई पड़ने लगी। फ्रांसीसी क्रांति, प्रथम विश्वयुद्ध के बाद हुई सोवियत क्रांति आदि से नास्तिकता का व्यापक प्रचार हुआ। प्रबोधन काल में रूसो ने ईसाई विश्वास का खंडन किया और उनका मानना था कि मनुष्य मूलतः अच्छे थे, पर सभ्यता ने उन्हें भ्रष्ट कर दिया। वाल्टेयर को फ्रांसीसी क्रांति और उससे उभरे नास्तिकतावाद का उत्तरदायी माना जाता है। आधुनिक युग में नास्तिकता को बढ़ावा देने के लिए स्पष्ट रूप से लिखी गयी पुस्तक थी फ्रांसीसी कैथोलिक पादरी ज्यां मेक्लियर की 'संसार के सभी धर्मों के धर्म और झूठ का निरूपण'। उसके बाद 1970 में द होलबाख की पुस्तक प्रकाशित हुई 'प्रकृति की व्यवस्था'। आगे चलकर फ्रांसीसी क्रांति ने रही सही कसर पूरी कर दी और धार्मिक सत्ता को पलट कर नास्तिकता का ध्वज फहराया।

ब्रिटेन में यदि देखें तो नास्तिकता के संदर्भ में 'मैथ्यू टर्मद द्वारा लिखे गये पत्रों को नास्तिकता का प्रथम घोषणा पत्र माना जाता है। अंग्रेजी के रूमानी कवि शैली को 1811 में पेम्फलेट 'नास्तिकता की आवश्यकता' लिखने के कारण आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से बाहर कर दिया गया। जर्मनी में लुडविग फायरबाख के द्वारा लिखी पुस्तक 'ईसाइयत का सार' ने आगे चलकर मार्क्स, मैक्स स्टर्नर, आर्थर शापनहावर, फ्रेडरिक नीत्से आदि को प्रभावित किया। बीसवीं शताब्दी में अनेक निरीश्वरवादी दर्शनों को मान्यता मिली जैसे - 'मार्क्सवाद', 'लेनिनवाद', 'माओवाद', 'अस्तित्ववाद', 'वास्तविकतावाद', 'धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद', 'तार्किक प्रत्यक्षवाद', 'निषेधवाद', 'अराजकतावाद' आदि।

भारत में बौद्ध, जैन और लोकायत और चीन में ताओवाद के रूप में पूर्व में निरीश्वरवाद की अवधारणा स्थापित हुई। भारतीय दर्शन की शाखाओं में केवल लोकायत या चार्वाक ही नास्तिक थे। हिन्दू षड्दर्शन में सांख्य और मीमांसा स्पष्ट रूप से निरीश्वरवादी थे क्योंकि वे ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं करते थे। चोल प्रान्त में जन्म लेने वाले धर्मकीर्ति बौद्ध परम्परा के प्रखर नास्तिक दार्शनिक थे उन्होंने अपनी पुस्तक 'प्रमाणवार्तिक' में कहा -

वेदं प्रमाणयम कस्यचित् कृतवादः

स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः।

संतापरंभ पापहानाय चेति

ध्वस्त प्रज्ञानां पंचालिङ्गानि जाङ्ग्ये।

अर्थात्, वेद को प्रमाणिक मानना, किसी ईश्वर को श्रृष्टि का कर्ता समझना, स्नान करने से धर्म होता है, ऐसा मानना, ऊँची जाति का घमंड करना और पाप दूर करने के लिए संताप देना, ये पाँचों अकाल के मारे लोगों की मूर्खता की निशानियाँ हैं।

वर्तमान में 'लिबरेशन थियोलॉजी' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है जिसका अर्थ है- शोषण के विरुद्ध संघर्ष में धर्म का उपयोग करना। लैटिन अमेरिका तथा अमेरिकी महादेश में अमेरिकी

सम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई में लिबरेशन थियोलॉजी अस्तित्व में आया। फिडेल कास्त्रो ने आह्वान किया कि जो गरीबों का शत्रु है, वह यीशू का भी शत्रु है। इस प्रकार आर्थिक असमानता और ईश्वर का सम्बन्ध स्थापित कर ईश्वर की सत्ता को चुनौती देने का प्रयास किया गया। इस आधार पर तसलीमा को लिबरेशन थियोलॉजी का समर्थक भी कहा जा सकता है। क्योंकि उन्होंने अपने विचारों को सिद्ध करने और स्त्रियों के शोषण को स्पष्ट करने के लिए धर्म का सहारा लिया है। किन्तु उन्होंने इसके लिए धर्म की नकारात्मक छवि को आधार बनाया।

'न्यू एथिज्म या नव-नास्तिकवाद' बीसवीं शताब्दी के नास्तिक दार्शनिकों के लिए यह शब्द प्रयोग किया गया। नव-नास्तिकवादियों के अनुसार धर्म की अतार्किक बातों की खुलकर आलोचना की जानी चाहिए। इस मत के अंतर्गत सैम हेरिस, डेनियल डेनित, रिचर्ड ड्वाकिंस और क्रिस्टोफर हिचंस सम्मिलित हैं। इन सभी ने धर्म को समाज के द्वारा अपनी सहूलियत के लिए बनाये गये एक सिद्धांत के रूप में परिभाषित किया है। तसलीमा को भी नव-नास्तिकवादियों में सम्मिलित किया जा सकता है क्योंकि उन्होंने भी धर्म की खुलकर आलोचना की। उनके द्वारा धर्म की आलोचना में प्रस्तुत तर्कों का उल्लेख 'तृतीय अध्याय' में किया गया है।

(च) नस्लवाद का विरोध :

सामान्यतः व्यक्ति की प्रजाति और जैविक संरचना के आधार पर होने वाली हिंसा, विभेद और अत्याचार को 'नस्लवाद' के रूप में देखा जाता है। इस विभेद से वैश्विक शांति में व्यवधान उत्पन्न होता है। तसलीमा आत्मकथा के पाँचवें भाग में इसी नस्लवाद की समस्या को प्रस्तुत करती हैं। यूरोप में प्रवास के दौरान उन्हें और उनकी ही तरह अश्वेत लोगों को नस्ल के आधार पर कई प्रकार की असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। वे इस पर कटाक्ष करते हुए लिखती हैं, "श्वेतांग मूर्ख सांवलें रंग की बुद्धि को कभी स्वीकार नहीं करते।"⁴⁹ वे नस्लवाद की निंदा कर समस्त

विश्व के मानवों की समानता के विचार को स्थापित करना चाहती हैं और यहाँ वे 'अंतर्राष्ट्रीयतावाद' और 'वैश्विक भाईचारे' की समर्थक दिखाई देती हैं।

(छ) अहैतुक प्रेम, स्त्री-पुरुष समानता और स्वतंत्रता का समर्थन :

विश्व में मनुष्य पर किया जाने वाला सबसे प्राचीन अत्याचार सम्भवतः 'गुलामी' है। यह गुलामी आज स्त्रियों पर हो रहे यौनाचार, वेश्यावृत्ति, निर्यात आदि के रूप में जारी है। इसे तसलीमा 'पतिता प्रथा'⁵⁰ कहती हैं। स्त्रियों की इस गुलामी के लिए उत्तरदायी है पितृसत्तात्मक मनसिकता। तसलीमा पितृसत्तात्मक मानसिकता के कारणों को ही नहीं तलाशती बल्कि उससे उबर आने का उपाय भी खोजती हैं। यह उपाय उन्हें 'प्रेम' की स्वतंत्रता और स्त्रियों के समानाधिकार और उनकी स्वतंत्रता में दिखाई पड़ता है।

तसलीमा ने जिस प्रेम की बात की है वह शर्त पर आधारित न होकर 'अहैतुक प्रेम' है, मानवतावादी प्रेम है। इस प्रेम में केवल प्रेमी-प्रेमिका का प्रेम ही नहीं बल्कि मानव का मानव के प्रति प्रेम, मानव का अपने समाज और देश के प्रति और समाज का अपने मनुष्यों और राष्ट्र का अपने नागरिकों के प्रति प्रेम भी सम्मिलित है। अर्थात् तसलीमा की रचनाओं में प्रेम के विविध रूप दिखते हैं लेकिन सबका एक ही उद्देश्य है, 'मानव मात्र की भलाई' और 'आपसी सौहार्द' की स्थापना।

यद्यपि पुरुष की पाबंदियों का कोई अंत नहीं - 'जिंदा रहती हूँ' कविता में -

'आदमी का चरित्र ही ऐसा है,

बैठो तो कहेगा- नहीं, बैठो मत।

खड़े होओ तो कहेगा- यह क्या बात हुई, कहीं चलो भी

और चलो तो कहेगा - छिः, बैठो !'⁵¹

ऐसे पुरुष के लिए 'विषघर' कविता में उपमा दी - 'दोमुँहे साँप से ज्यादा जहरीला होता है दोमुँहाँ आदमी'⁵²।

'प्रेरित नारी' कविता में -

प्रकृति ने स्त्री को मनुष्य कहा है-

पुरुषों ने एकजुट होकर कहा है - 'नहीं'।⁵³

फिर भी उनका मत है कि दोनों के मध्य समानता और स्वतंत्रता का दायरा एक ही होना चाहिए ।
इसलिए 'पुरुषों की दान-दक्षिणा' कविता में वे लिखती हैं -

'स्वाधीनता क्या तुम्हारे खेत की फसल है

जिसे उपजाते हो तुम ?

तब क्यों मुझे यों मुट्ठी भर देना चाहते हो !

बेवकूफ लड़के !

स्वाधीनता सिर्फ तुम्हारी चीज नहीं मेरी भी है

जन्म की पहली साँस से ही मैंने पायी थी जो ऑक्सीजन

उसका नाम स्वाधीनता है ।'⁵⁴

वे प्रेम को बाँटने की पक्षधर हैं किन्तु उस प्रेम में भय और छल कपट हो यह उन्हें स्वीकार नहीं क्योंकि
ऐसा प्रेम कुछ ऐसा कहर करता है जो स्त्री को 'कैसा तो केचुआ बनाकर, उस पर नमक छिड़ककर'
धकेल देता है खड्डे में !'⁵⁵

वे स्त्री को पुरुष के मिथ्याचार से बचकर रहने की सलाह देती हैं क्योंकि वे जानती हैं 'सबके
हृदय में प्यार का बीज नहीं होता, सबकी माटी तो उर्वर नहीं होती ।'⁵⁶ सीमोन द बोउआर ने इसीलिए
लिखा, "सर्वोच्च विजय के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि स्त्री और पुरुष अपने प्राकृतिक
विभाजन को बनाये रखते हुए भी आपसी सौहार्द स्थापित कर सकें ।"⁵⁷ तसलीमा भी दो लोगों को
लड़ते हुए देखने से बेहतर यह मानती हैं कि दो व्यक्ति प्रेम करें । यह प्रेम केवल दो विपरीत लिंगों का
ही नहीं बल्कि समान लिंगों का भी सकता है । इस रूप में वे 'होमो-सेक्सुएलिटी' की भी समर्थक हैं ।

क्योंकि समलिंगी व्यक्ति भी इन्सान ही हैं। उनका मत है कि इन्सान को किसी श्रेणी में बाँटकर देखना ठीक नहीं और जो भी इन्सान हैं सभी को अपने अधिकार मिलने चाहिए। विश्व के सभी लोगों में प्रेम और सौहार्द के लिए के लिए ही वे लिखती हैं, "पूरब की साड़ी का आँचल बाँध रखो पश्चिम की धोती की चुन्नट से।"⁵⁸

'अकाज' कविता -

'सभी लोग भूल जाएँ, मैं नहीं भूलूँगी।

चलो, भले और कोई प्यार न करे, निभृत में, मैं ही प्यार कर लूँगी।

इस दुनिया को, दुनिया में बसे दिलवाले लोगों को प्यार करते हुए,

किसी और को नहीं, मैं अपने को ही धन्य करती हूँ!"⁵⁹

तसलीमा 'अहेतुक प्रेम' की पक्षधर हैं। उनका रुद्र से प्रेम अहेतुक प्रेम है, उनका मानव से प्रेम अहेतुक है, देश से प्रेम अहेतुक है। 'मनुष्य - यह शब्द मुझे बहुत उद्वेलित करता है' कविता में -

'कंचनजंघा के सूर्योदय से भी सुन्दर लगते हैं लोग

कश्मीर के आसमानों को चूमते हुए शिखरों

से भी सुन्दर हैं लोग

मैनहट्टन की ऊँची-ऊँची इमारतों से भी

ऊँचे हैं इन्सान

नियाग्रा के जलप्रपात से भी अच्छे लगते हैं

मनुष्य; जब उनके मन में प्रेम की धारा बहती है।"⁶⁰

'मनुष्य इससे सुंदर कोई और शब्द

मुझे इस धरती पर नहीं मिला।"⁶¹

'आँखें' कविता में शारीरिक प्रेम के स्थान पर भीतर के प्रेम की महत्ता स्थापित करते हुए प्रश्न उठाया गया है 'शरीर स्पर्श किये बिना क्या नहीं होता प्यार?'⁶² यह प्रेम इस प्रकार का है कि 'मैंने गौर किया

है, मैं तुम्हारे माथे की झुर्रियों को भी प्यार करती हूँ !"⁶³ "प्यार जब खत्म हो जाता है, तभी इन्सान हिसाब-किताब करने बैठता है।"⁶⁴ ये सब पंक्तियाँ तसलीमा अपने अनुभव के आधार पर लिखती हैं। उनका प्रेम जो पहले प्रेम के 'रूमानी आदर्शवाद' से सम्पृक्त था किन्तु रुद्र और उसके जैसे अन्य पुरुषों के साथ संसर्ग ने उन्हें सिखा दिया कि आदर्श अवस्था कुछ नहीं है, रूमानियत कुछ नहीं है उसके स्थान पर केवल यथार्थ है। प्रणय कृष्ण आलेख 'प्यार क्या है ? एक कल्पना, एक स्वप्न, एक फैंटेसी' में लिखते हैं, "पुरुष के प्रेम ने उन्हें सिखाया है कि 'इस खेल में मेरे सुख के बावजूद उनका सुख ही अहम रहा' लिहाजा वो इन संबंधों को 'आकर्षण', 'खेल' या 'देह विनिमय' जैसे शब्द देती हैं - प्यार कहना नहीं चाहतीं।"⁶⁵ प्रेम यदि शर्तहीन होगा तो वह उत्तम है किन्तु नितांत बोध-बुद्धिहीन प्रेम भी घातक है। वे मातृसत्ता को पितृसत्ता के विकल्प के रूप नहीं देखती बल्कि स्त्री-पुरुष के समानाधिकार की बात करती हैं।

(ज) निर्वासितों और विस्थापितों की पक्षधर :

तसलीमा ने बचपन से ही अपने देश के लोगों विशेषकर हिन्दुओं को बेघर होते देखा था। उसके पीछे सांप्रदायिक और राजनीतिक जो भी कारण रहे हों किन्तु इससे लाखों लोगों को अपने देश से विस्थापित हो जाना पड़ा। चाहे वह 1971 बांग्लादेश मुक्तियुद्ध हो या बाबरी मस्जिद विध्वंस की घटना हो लाखों लोग अपनी मातृभूमि को छोड़कर जाने के लिए विवश हो गये। इसलिए वह बार-बार सांप्रदायिक राजनीति का विरोध करती हैं। आत्मकथा के साथ अन्य रचनाओं में भी वे उनके और उन जैसे लोगों के बेघर और पहचान विहीन होने का मुद्दा उठाती हैं। अपने लेखन के कारण देश और समाज से बहिष्कृत तसलीमा ने आत्मकथा में उन बुनियादी कारणों को ढूँढ़ने का प्रयास किया जो किसी को विस्थापित हो जाने के लिए उत्तरदायी हैं। तसलीमा के मामले में तो यह उनके लेखन के कारण हुआ पर उन हजारों बांग्लादेशी हिन्दुओं का क्या जो बांग्लादेश की आज़ादी के संघर्ष और बार-बार हो रहे सांप्रदायिक दंगों के कारण देश छोड़ने को बाध्य हुए? तसलीमा शारीरिक, भौतिक, सामाजिक और भावनात्मक असुरक्षा से घिरे लोगों के इस यथार्थ को अपनी

रचनाओं में पेश करती हैं और आत्मकथा में पर्याप्त साक्ष्यों के साथ इन पर सवाल खड़ा करती हैं। वे यह स्वीकार करती हैं कि, "निर्वासन एक निहायत ही बुरा सपना है।"⁶⁶

तसलीमा ने अपने निर्वासन के साथ अन्य व्यक्तियों के निर्वासन की पीड़ा को आत्मकथा में स्थान दिया है। जहाँ तसलीमा का निर्वासन ब्लासफेमी के कारण एक राजनीतिक निर्णय का परिणाम है, वहीं बांग्लादेश में अल्पसंख्यकों का विस्थापन धार्मिक और साम्प्रदायिक आधार पर होने वाले भेदभाव और राजनीतिक लाभ के लिए हो रही उनकी उपेक्षा का परिणाम है। इस विस्थापन में भारत विभाजन के बाद विस्थापित हिन्दू और मुस्लिम के साथ बांग्लादेश के निर्माण के समय से लेकर बाबरी मस्जिद के बाद बनी परिस्थितियों के कारण हुए विस्थापन को सम्मिलित किया गया है। विस्थापन के सम्बन्ध में कृष्णा सोबती लिखती हैं, "विभाजन - एक शब्द, शरणार्थी - एक विशेषण। लुटा-पुटा गरीब। कैम्पों में रहने वाला। विस्थापितों को राशन मुफ्त मिल सकता है फार्म भरा होना चाहिए तो कम्बल के भी हकदार हो सकते हैं... यह तो एक स्थिति है। अपनी जड़ों से उखड़ने की। नई जगहों पर जमने की।"⁶⁷

इतिहास पर नज़र डाले तो जब भी कोई देश गृहयुद्ध या बाह्य युद्ध में फँसा है तो उसके यहाँ की जनता को अपने स्थान या कई बार देश से विस्थापित हो जाना पड़ा है। विश्वयुद्ध इसका सबसे बड़े उदाहरण है। लेकिन बांग्लादेश में स्थिति थोड़ी भिन्न है। यहाँ पर जब भी अल्पसंख्यक विस्थापित हुए हैं तो उसके पीछे धार्मिक उन्मादियों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। हिंदू अल्पसंख्यकों को काफ़िर मानकर देश से निकला जाता रहा है।

कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा से अपनी भूमि से कटना नहीं चाहता उसके पीछे बहुत से मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक और आर्थिक कारण कार्य करते हैं। उन्होंने उन परिस्थितियों को समझने की कोशिश की है जिसमें इन्सान देश त्याग जैसे फैसले लेने पर मजबूर हो जाता है, "खुद को हिन्दुओं की जगह बिठाकर मैंने यह समझने की कोशिश की कि असुरक्षा का बोध कितना तीखा होने पर, इन्सान देश त्याग जैसा फैसला लेता है या ले सकता है।"⁶⁸ इसी असुरक्षा, साम्प्रदायिक संत्रास और

विभीषिका के परिणाम के रूप में आई उनकी पुस्तक 'लज्जा'। विभाजन के बाद हुए विस्थापन के सन्दर्भ में लिखा, "जब किसी भी चिड़िया या कौवे या कोयल के बच्चे के पंख निकल आते हैं तो उसे चोंच मार-मारकर घोंसलें से बाहर कर दिया जाता है - यानी यह पता चल जाता है कि बच्चा अपने पैरों पर खड़ा होने के लायक हो गया। पर देश के विभाजन के कारण उखड़े हुए लोगों के बारे में यह बात पूरी तरह से लागू नहीं होती। अच्छी तरह से जमे-जमाये, विकसित होते और फलते-फूलते लोगों को उखाड़ फेंक दिया गया था।"⁶⁹ कृष्णा सोबती कुछ इस तरह से लिखती है, "जब कबीले जड़ों से उखड़ते हैं, भूचाल की तबाही से बिखरते हैं तो सब कुछ उलट पुलट हो जाता है। नीचे का ऊपर, ऊपर का नीचे। तभी हँसी और रुलाई की एक मुद्रा उद्घाटित होती है। उच्छवास का भी कोई अर्थ होता होगा। अलहदगी। अपनों और परायों से। नाते-रिश्तों से। सगे-सम्बन्धियों और मित्रों से। सबसे बढ़कर तो स्वयं अपने से। इसे व्यक्त करने के सामर्थ्य को हिन्दू-मुसलमान के नाम पर रियाया कई-कई बेरहम मौसम जी चुकी। कोई हरा भरा मौसम जैसे जंगलों की आग में झोंक दिया गया हो। इससे बचकर दौड़ने पर पीठ में चुरा घोंप दिया गया हो। समय की पीठ। बचने वाला आगे आगे मरने वाला पीछे-पीछे। वहशत। हिंसा की वह दहशत।"⁷⁰ विस्थापित हुए लोगों की संवेदना की तरफ भी तसलीमा नजर दौड़ाती हैं, "मैंने एक बात महसूस की जो लोग देश विभाजन के बाद, पूर्वी बंगाल छोड़कर पश्चिमी बंगाल में चले आये हैं, वे लोग पूर्वी बंगाल के व्यक्ति को देखकर बेहद अपना और सगा मानते हैं। पीछे छूट गयी जिंदगी को वे मुड़-मुड़कर देखने लगते हैं।"⁷¹

(झ) मानवतावाद पर आधारित राजनीति की पक्षधर :

तसलीमा आत्मकथा में धर्म प्रेरित राजनीति पर प्रहार ही नहीं करती बल्कि सत्ता लोलुप राजनीतिज्ञों की कलाई खोलती हैं। उनका मानना है कि "इंसानों के सन्दर्भ में अनुकूल परिवेश के अभाव के कारण प्राकृतिक नहीं हैं। अभाव का कारण है- इन्सान द्वारा रची इंसानों की कुत्सित राजनीति।"⁷² वे देश और राष्ट्र को दिशा देने वाली राजनीति को हर प्रकार की संकुचित मानसिकता से आगे निकालकर जनता को समानता और स्वतन्त्रता देने की हिमायत करती हैं। वे लिखती हैं,

"सभी राजनीतिक दलों का उद्देश्य होता है छल-बल-कौशल से बस सत्ता हथिया लो । शासन का आनंद भोग करना ही राजनीतिक लोगों का चरम उद्देश्य होता है । देश की ऐसी राजनीति मुझे चिंता के दलदल में डुबाए रही ।"³⁵ असगर अली इंजीनियर भी कुछ इसी प्रकार की चिंता प्रकट करते हुए लिखते हैं, "पश्चिमी सहित दुनिया के सभी देशों में विशेषकर एशियाई और अफ्रीकी देशों में, धर्म ही नैतिक घटनाक्रम की दिशा तय करता है ।"⁷³ ऐसे में जब सरकार धर्म से निर्देशित होकर चलने लगती है तो क्या होता है उसके विषय में तसलीमा का मत है, "पश्चिम की राजनीतिक और सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था, सुनियोजित शिक्षा व्यवस्था इन्सान को आत्मनिर्भर होने की हजारों सुविधा देती है... जबकि दुनिया के हजारों दरिद्र और धर्म पीड़ित देशों में इन संभावनाओं की करुण मौत हो जाती है ।"⁷⁴

जब राजनीतिक और प्रशासनिक अधिकार रखने वाले लोगों के उद्देश्य धर्म प्रेरित हो जाते हैं तो वे जनता के संदर्भ में नैतिक दृष्टि खो बैठते हैं । इस स्थिति में समाज और राष्ट्र के सुधार की समस्त संभावनाओं का अंत हो जाता है । इस पर कटाक्ष करते हुए तसलीमा लिखती हैं, "कुनैन तो बुखार ठीक कर देती है पर कुनैन को कौन ठीक करेगा ।"⁷⁵ राष्ट्र को दिशाहीन बनाने में सरकारों की साजिश धर्मप्रेरित होती है । ऐसे में शासन का कोई भी रूप चाहे वह राजतन्त्र हो या प्रजातंत्र, फासीवाद में बदल जाता है । 'धूसर शहर' कविता में वे लिखती हैं -

'पता नहीं कौन हैं वे लोग जिन्होंने ढाका को

बेवकूफी की तिरपाल से ढँक दिया है ।'⁷⁶

'अस्वीकार' कविता भारतीय उपमहाद्वीप की एकता के सम्बन्ध में -

'भारत कागज का कोई टुकड़ा नहीं

जिसे चिंदी-चिंदी कर फेंका जा सके ।

सैंतालीस एक शब्द है, जिसे मैं

रबर से मिटा देना चाहती हूँ

...

उद्धार करना कहती हूँ
अपने पुरखों की अखंड भूमि'⁷⁷

'ईशनिंदा-कानून' कविता में धर्म और राजनीतिक गठजोड़ के सम्बन्ध में -

'खाते-खाते जब पेट भर गया अजगर का
जब कोई और आदमी नहीं बचा देश में
सिर्फ कुछ कुत्ते ही रह गये
तब कुत्ते और अजगर में गहरी दोस्ती हो गयी
वे काफी लम्बे समय तक जिंदा रहे ।'⁷⁸

राजनीतिक कुटिलता से निकलकर वे अमेरिका जैसे देशों को विश्व में शांति, सहस्तिव और समानता के मूल्यों को प्रसारित करने के लिए प्रेरित करती हैं । उदाहरण के लिए 'अमेरिका' कविता में वे लिखती हैं -

'...तुम तो जेफरसन के अमेरिका हो,
लिंगन के अमेरिका,
तुम मार्टिन लूथर किंग के हो, अमेरिका !
तुम पाँव जमाकर एक बार उठ खड़े हो,
आखिरी बार ! मानवता के लिए !'⁷⁹

स्पष्ट है, तसलीमा मानवता पर आधारित राजनीति की पक्षधर हैं । मानवता पर आधारित राजनीति से तात्पर्य समानता, स्वतंत्रता, सहस्तिव पर आधारित राजनीति से है । इसके लिए वे कई बार स्वयं को 'कम्युनिस्ट' घोषित करती हैं और 'समाजवाद' को शासन का एक बेहतर विकल्प मानती हैं । पूँजीवाद पर कटाक्ष करते हुए 'कलकत्ता तेरा हृदय' कविता में लिखती हैं -

"सब तरफ चल-फिर रहे हैं, पूँजीवाद के हाथी

सब कहीं माथे पर पगड़ बांधे, बैठा है साम्राज्यवाद !

तुम ठहरी बुंदकी भरी चींटी, डंक मारो,

तो भी किसी को होता नहीं एहसास !"

XXXXXX

"अब तुम्हे नज़र नहीं आता इन्सान का तन-बदन

तन बदन तो अब कागज़ी डॉलर-यूरो-पाउंड बनकर,

लिमोजिन में सवारी करते हैं, कनकॉर्ड में चढ़ते हैं,

महीने-महीने ख्वाहिश खरीदते हैं, गर्मी के मौसम में समुन्दर निपटा आते हैं,

इनका सीना चीरकर देखा है तुमने ? उनमें दिल नहीं होता !"80

विश्व में व्याप्त पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त होते देखने की ख्वाहिश के कारण वे विश्व की आर्थिक महाशक्ति कहलाने वाले देशों को दिखावे की सहानुभूति से बाहर निकल मानवमात्र की भलाई के विषय में सोचने के लिए उनपर कटाक्ष करते हुए 'ग्यारह सितम्बर' कविता में लिखती हैं - 'ग्यारह सितंबर को एफिल टावर का ध्वस्त होना अमेरिका के अभिमान का टूटना था वह कई वर्षों तक इस पर आँसू बहाता रहा ।' किन्तु तसलीमा इन आँसुओं को 'घड़ियाली आँसू' कहती हैं क्योंकि अमेरिका ने कभी छोटे देशों या छोटे लोगों की मौत पर आँसू नहीं बहाए चाहे वह ईराक में यूरेनियम की वजह से हुए विकिरण से हुई मौत हो, या रुआंडा का गृह युद्ध या फिर बोस्निया या सोमालिया या तीसरी दुनिया के देश हों -

'ऊँची-ऊँची दो इमारतों के पतन का मतलब है, किसी ऊँची

चीज का पतन होना ! अहंकार का पतन !

तिमंगल मछली की खाल पर, अगर कोई छोटी मछली दांत गड़ा दे,

तो क्या तिमंगल मछली का मान नहीं जाता ?'

XXXX

‘जब टूटती है कोई बड़ी इमारत, तभी तुम्हारी नज़र जाती है ?

छोटे घर, बस्ती, सड़कों के बेघर इंसानों की मौत,

इन्सान की मौत भी वीभत्स तरीके से

राजनीति के चक्कर में फँस गयी है।’⁸¹

तसलीमा यद्यपि कम्युनिज्म की समर्थक हैं और उसे बेहतर विकल्प के रूप में देखती हैं किन्तु यह भी जानती हैं कि इस विचारधारा की आड़ लेकर कई बार जनता का शोषण किया गया है। ऐसे में इसकी छवि खराब हुई है। इसलिए वे लिखती हैं "कम्युनिस्ट जब सड़ते हैं तो भयानक रूप से सड़ जाते हैं। देह भर जाता है दुर्गन्ध से।"

कम्युनिज्म के अतिरिक्त वे गणतंत्र और लोकतान्त्रिक मूल्यों में भी विश्वास करती हैं और इसके लिए 'एक विशाल जनजागरण की आवश्यकता'⁸² को भी महसूस करती हैं। साथ ही लोकतांत्रिक मूल्यों के नाम पर चलने वाले राष्ट्र में व्याप्त असमानता से खिन्न होकर वे लिखती हैं, "इंसान की तो बस एक ही जात होती है, फिर भी इनमें कितना-कितना फर्क !... किसी के लिए ज़िन्दगी मौज मजा खुशियों की छाँव है, किसी के लिए जहरबुझी असहनीय !"⁸³

तसलीमा का मानना है कि उनका लेखन मानवता के पक्ष में एक अति सूक्ष्म प्रयास है। इसलिए वे 'तोप दागना' कविता में लिखती हैं -

‘सरकार के पास तोप और कमान हैं

और मुझ जैसी मामूली मच्छर के पास है डंक।’⁸⁴

किन्तु उनका यह प्रयास सार्थक हो या न हो उन्हें बस यह आशा और अपेक्षा है कि विश्व में शांति, सहभागिता और प्रेम हो। '1500 बंगाब्द' कविता में वे लिखती हैं -

‘सौ साल बाद खुशहाल बंगाल में

अगर मेरी कविता धूल भी चाटे, तो भी

बंगाली जीये मछली-भात के साथ
गुलाब की खुशबू से जिंदा रहे स्वप्नदृष्टा मनुष्य
शुद्ध और स्निग्ध प्रेम जिंदा रहे ।⁸⁵

किन्तु "मनुष्य बुद्धिमान है । अपनी बुद्धि का उदाहरण बहुत सी चीजों में छोड़ रहा है । मंगल ग्रह तक मशीन भेजी है । लेकिन इस छोटे से ग्रह में समता से, समानाधिकार से, सहानुभूति से, सुख से, निश्चिन्ता से, सुख से स्त्री और पुरुष के रहने का परिवेश आज भी बना नहीं पा रहा है क्यों ? क्या बुद्धि नहीं है इसलिए या इच्छा नहीं है इसलिए ? मुझे तो लगता है इच्छा नहीं है इसलिए ।"⁸⁶ 'ऐसा एक देश' कविता में - 'पहले मेरा देश ऐसा नहीं था !...मौजूद थे कुछेक इन्सान जैसे इन्सान ।'⁸⁷ लेकिन अब 'पंद्रह करोड़ लोग मजे लेकर देखते हैं - मर्मान्तक मृत्यु'⁸⁸ इसलिए वे वर्तमान युग को 'कबंध युग' कहती हैं । और आशा करती हैं, "काश उर्वर हो उठे यहाँ की माटी, कभी किसी दिन !/जन्म ले इन्सान'⁸⁹ या 'हारकर घिर आता है अँधेरा, मगर नहीं आता कोई इन्सान !'⁹⁰

उनका मत है कि इन्सानियत विहीन- 'यह दुःसमय अकेले मेरा नहीं, हम सबका है दुःसमय !'⁹¹ और अमानवीयता और अन्याय के खिलाफ यह जंग 'कौन कहता है, यह जंग अकेली मेरी है ?'⁹² तसलीमा इस सम्बन्ध में मार्टीन लूथर के वाक्य 'Our life begin to end the day we become silent about that things that matter', अल्बर्ट आइन्स्टीन के कथन 'The world is dangerous place to live, not because of the people, who are evil, but because of the people, who don't do anything about it '⁹³ या जॉर्ज बर्नार्ड शा का मत 'A reasonable man adopts himself to the world. An unreasonable man persist in trying to adopt the world to himself. Therefore, all progress depends upon the unreasonable man.'⁹⁴ आदि को उद्धृत कर मनुष्य को अपनी चुप्पी तोड़ने और अपने समाज की भलाई के लिए प्रयास करने के लिए एक जुट होने के लिए प्रेरित करती हैं ।

वे कभी भी विश्व को गर्त में जाते हुए नहीं देखना चाहतीं । इसलिए 'गुडबाइ इण्डिया' कविता में लिखती हैं -

'जिस दिन इंसानियत को पैरों तले कुचलकर
इन्सान उड़ाएगा, शहर नगर में धर्मान्धता के निशान !

...उस दिन, गहराई हो, आधी रात !

मुझे देखना न पड़े देश का चेहरा !'⁹⁵

तसलीमा जानती हैं कि इस कबंध युग में 'किसे गरज है, आँसुओं से बहते इन्सान की'⁹⁶ यही इन्सान तसलीमा की कविताओं में कभी - 'औंधे मुँह गिरता है' तो कभी 'मर रहा है इन्सान' कभी 'नया जीवन/ रच रहा है इन्सान'⁹⁷ के रूप में दिखता है । और ऐसी अनिश्चयता के बीच - '...इन्सान ? कह दिया है उन लोगों ने- नामुमकिन ?/अपना मानव जीवन, बस, इसी तरह /गुजारना होगा- मानवहीन !'⁹⁸ इस मानवहीन जीवन की पूर्ति वे रचनात्मकता के माध्यम से करती हैं । 'आश्रय' कविता में वे लिखती हैं - 'आदमी के पास नहीं,/अंततः मैं कला के पास लौटती हूँ'⁹⁹ या इसका एक अन्य मार्ग दिखाती हैं और वह है लोगों की एकजुटता - 'धर्मवाद' कविता में

'इस महामारी को कौन रोकेगा

मैं ? तुम ? या वे लोग ?

ऐसा भी तो हो सकता है कि सबसे पहले

हम, तुम और वे सब मिलकर इकट्ठे हों

और फिर पत्थरों को हटायें ।'¹⁰⁰

शंकर शरन 'स्त्रियों पर आतंक' शीर्षक आलेख में लिखते हैं, "एक अर्थ में तसलीमा रूपी यह अकेली, निर्वासिता नारी एक दर्पण है जिसमें हम अपना और सब का चेहरा देख सकते हैं । हमारा लोकतंत्र, सेक्युलरिज्म, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, कानून का शासन, मीडिया का अहंकार, न्यायधीशों का रौब, इस्लामी कट्टरपंथियों का (मुट्ठी भर) होना, उदारवादी मुस्लिमों का हवाई

अस्तित्व, फेमिनिस्टों की उग्र दयनीयता और राष्ट्रीय मानवाधिकार के अधोवस्त्र -सभी इस दर्पण में देखे जा सकते हैं।'¹⁰¹ आगे वे लिखते हैं, 'तसलीमा मानवतावादी हैं मात्र आत्मप्रचार चाहने वाली 'मानवाधिकारवादी', 'ग्लोबल नागरिक' या 'गांधीवादी' नहीं। उन्होंने अपनी सत्यनिष्ठा के लिए कष्ट सहा और आज भी उसका परिणाम भुगत रही हैं।'¹⁰²

कह सकते हैं कि कुमार विकल्प के मत "चीजों को बहुत विवादास्पद न बनाया जाय और अतार्किक हठधर्मिता न पाली जाय तो बात कुल एक पंक्ति की है : 'धर्म' का विकल्प 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' हो सकता है तथा 'धर्म में विश्वास' का विकल्प 'मनुष्य प्रजाति की ऐतिहासिकता में विश्वास' में मुमकिन है"¹⁰³ के समान तसलीमा भी धर्म के लिए विकल्प तार्किक चिंतन, मनुष्य की शक्ति में विश्वास और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के माध्यम से ही खोजना चाहती है।

6.3 मानवतावादी मूल्यों पर आधारित समाज की कल्पना : यूटोपिया या यथार्थ ?

भले ही 'मानवतावाद' शब्द समाज के लिए बहुत ही उपयोगी लगे और उसके आधार पर की गयी कल्पनाएँ भी सम्भव प्रतीत हों किन्तु बहुत से ऐसे दार्शनिक भी हैं, जो मानवतावादी मूल्यों को कई बार समाज के लिए पूर्णतः उचित नहीं मानते। उदाहरण के लिए संरचनावादियों ने स्वयं को मानवतावाद के आलोचक के रूप में प्रस्तुत किया। इसमें लकाँ, फूको, लेवी-स्त्रास, अलथुसे प्रमुख हैं। "ये लोग मानवीय आत्मपरकता के किसी अनिवार्य और तात्त्विक रूप को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने एक सार्वभौम कर्ता के रूप में मनुष्य की भूमिका को खारिज कर दिया। सार्त्र को एक बार फिर आलोचना का निशाना बनाते हुए संरचनावादियों ने कहा मानवतावादी कर्ता को केंद्र बनाकर तजवीज की गयी जड़ मीमांसा का नतीजा है।"¹⁰⁴ 'द सेवेज माइंड' में लेवी-स्त्रास ने कहा 'मानव विज्ञानों का अंतिम लक्ष्य विधेयक तत्वों की खोज के जरिये मनुष्य को रचने के बजाय उसका विसर्जन होना चाहिए।'¹⁰⁵ दूसरी तरफ मनोवैज्ञानिक जुंग ने 'मॉडर्न मैन इन सर्च ऑफ़ सोल' में बताया

कि वर्तमान यूरोप में धर्म के प्रति उदासीनता बढ़ी है। इसके बावजूद धार्मिक विश्वास को समाप्त करना मुश्किल है। क्योंकि व्यक्तियों के जीवन और मन में धर्म की गहरी पैठ होती है।

मानवतावाद के सम्बन्ध में 'बहस की कला' (पोलोमिक्स) की विचारधारा भी है, जिसमें मानवतावाद को लेकर तर्क-वितर्क किया गया है। बीसवीं सदी के शुरुआती आलोचक जैसे कि एजरा पाउंड, टी. ई. हुल्मे और टी. एस. इलियट ने मानवतावाद को एक 'भावनात्मक ढलान' (हुल्मे) या 'ज़रूरत से ज्यादा नारी सुलभ' (पाउंड) होने का विचार रखा और अधिक पुरुषोचित, सत्तावादी समाज की ओर लौटने की इच्छा जताई, जैसा कि मध्य काल में था।

उत्तर आधुनिक आलोचक जो 'स्व-घोषित मानवतावाद' के विरोधी हैं, जैसे कि जीन फ्रंकोइस ल्योटाई और मिशेल फोकोल्ट ने दावा किया है कि मानवतावाद, मानवीयता या सार्वभौम मानव प्रकृति की पहुँच से परे और अत्यंत अमूर्त धारणा का विचार करता है, जिसको साम्राज्यवाद के छल के लिए और मानव से कमतर समझे जाने वालों पर प्रभुत्व के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। फ्रांसीसी विचारक जोसेफ दी मैस्त्रे एक स्थान पर लिखते हैं, "जहाँ तक 'मानव' का सम्बन्ध है, मैं प्रकट रूप से बताता हूँ कि अपने जीवन में मेरी उससे भेंट नहीं हुई। यदि वह कहीं अस्तित्व में होगा भी तो उसकी मुझे कोई जानकारी नहीं है।"¹⁰⁶

स्पष्ट है, मानवतावाद को 'अमूर्त' एवं अनावश्यक कहने वाले आलोचकों की कमी नहीं है। किन्तु इस सम्बन्ध में दार्शनिक केट सोपर ध्यान दिलाते हैं कि अपने सद्भावपूर्ण आदर्शों तक न पहुँच सकने के लिए मानवतावाद की कमी बताकर मानवतावाद विरोधी इस तरह अक्सर एक 'मानवीय शब्दाडम्बर स्रावित' करते हैं। अपनी पुस्तक 'ह्युमेनिज्म' में टोनी डेवीस ने इन आलोचकों को 'मानवतावाद विरोधी मानवतावादी' कहकर संबोधित किया है। मानवतावाद विरोधियों के आलोचक, विशेषकर जुरगेन हेबरमास जवाबी तर्क देते हैं कि हालाँकि मानवतावाद विरोधी

मानवतावादियों के अपने मुक्तिदायी आदर्शों को पूरा न कर पाने की नाकामी पर ध्यान दिला सकते हैं लेकिन वे स्वयं अपनी कोई वैकल्पिक मुक्तिदाई परियोजना नहीं प्रस्तुत करते हैं।

उपरोक्त मत के आधार पर कह सकते हैं कि मानवतावादी आलोचक भले ही मानवता को एक कल्पना मात्र मानकर खारिज कर देते हों किन्तु वे इस सम्बन्ध में किसी बेहतर विकल्प का सुझाव नहीं दे सके हैं। इसलिए नवीन मतवाद स्थापित होने तक मानवतावाद को बेहतर विकल्प माना जा सकता है।

निष्कर्ष

तसलीमा का लेखन स्त्रियों का शोषण कर रहे पितृसत्तात्मक समाज, धर्म के आधार पर बंटे समाज और कुत्सित राजनीति से कुंठित होते समाज को मानवतावादी मूल्यों के सहारे सीमित मानसिकताओं और दायरों से निकल आने के लिए प्रोत्साहित करता है। नामवर सिंह का कथन 'महान कला का उद्देश्य मानव अस्मिता की हिफाजत करना है' के समान तसलीमा की आत्मकथा और आत्मकथेतर साहित्य अपने स्तर पर मानवअस्मिता की हिफाजत की ही बात करते हैं, जिसका विशेष आग्रह है स्त्री को मनुष्य स्वीकार किया जाना।

तसलीमा मानवतावाद को किसी पश्चिम और पूरब में बाँटकर देखने का समर्थन नहीं करती। तसलीमा के समस्त लेखन पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट हो जाता है कि तसलीमा एक 'रेडिकल' और 'धर्म निरपेक्ष मानवतावादी' हैं। रेडिकल मानवतावादी इस अर्थ में कहा जा सकता है क्योंकि उन्होंने भौतिकतावाद का समर्थन किया, धर्म की आलोचना की और किसी परलौकिक सत्ता के अस्तित्व को नकारा और लोकतान्त्रिक मूल्यों का समर्थन किया किन्तु साम्यवाद या मार्क्सवाद की समर्थक के नजरिये से देखें तो उन्हें रेडिकल मानवतावादी नहीं कहा जा सकता। बल्कि इस आधार पर उन्हें 'समाजवादी मानवतावादी' की श्रेणी में रखा जा सकता है। जो भी हो तसलीमा ने मानवतावाद के विभिन्न तत्वों को धर्म, पितृसत्ता और राजनीति के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए धर्म के लिए धर्म निरपेक्ष मानवतावाद, पितृसत्ता के लिए मानवतावादी प्रेम, समानता और स्वतंत्रता एवं राजनीति के लिये समाजवादी शासन प्रणाली को बेहतर विकल्प के रूप में देखा है।

आवश्यक टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ सूची

- 1 नामवर सिंह(सं), कार्ल मार्क्स :कला और साहित्य चिंतन, पृष्ठ-53.
- 2 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-65.
- 3 तसलीमा नसरीन, नहीं कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-109.
- 4 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, सत्य की खोज, पृष्ठ-35
- 5 <https://hi.wikipedia.org/wiki/मानवतावाद>, (12 September 2017).
- 6 डॉ.अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ-396.
- 7 वेद प्रकाश वर्मा, धर्मदर्शन की मूल समस्याएँ, पृष्ठ-459.
- 8 वही, पृष्ठ-450.
- 9 समाजविज्ञान विश्व कोश, अभय कुमार दूबे, पृष्ठ-1431.
- 10 अशोक कुमार शर्मा, प्रारम्भिक समाज एवं राजनीति दर्शन, पृष्ठ-321.
- 11 प्रो. पाल कर्ज, धर्मनिरपेक्ष मानववादी घोषणापत्र, अनु.-रमेंद्र, पृष्ठ-14.
- 12 तसलीमा नसरीन, निषिद्ध, पृष्ठ-9.
- 13 दत्तोपंत ठेंगडी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खंड-1, पृष्ठ-114.
- 14 वही, पृष्ठ-111.
- 15 समाजविज्ञान विश्वकोश, अभय कुमार दुबे, पृष्ठ-1432.
- 16 डॉ रमेंद्र, धर्म दर्शन सामान्य एवं तुलनात्मक, पृष्ठ-199.
- 17 नामवर सिंह, कार्ल मार्क्स :कला और साहित्य चिंतन, पृष्ठ-53.
- 18 डॉ. याकूब मसीह, तुलनात्मक धर्म दर्शन, पृष्ठ-289.
- 19 डॉ रमेंद्र, धर्म दर्शन सामान्य एवं तुलनात्मक, पृष्ठ-202.
- 20 रमेंद्र, समाज एवं राजनीतिदर्शन एवं धर्म दर्शन, पृष्ठ-271.
- 21 तसलीमा नसरीन, निषिद्ध, पृष्ठ-12.
- 22 तसलीमा नसरीन, नहीं, कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-198.
- 23 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, पृष्ठ-10.
- 24 वही, पृष्ठ-16.
- 25 वही, पृष्ठ-18.
- 26 https://en.wikipedia.org/wiki/Devil's_advocate, (12 January 2017).
- 27 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो, पृष्ठ-193.
- 28 तसलीमा नसरीन, निर्वासित, पृष्ठ-22.
- 29 राजकिशोर, धर्म और धर्म सत्ता, पृष्ठ-83.
- 30 वही, पृष्ठ-93.
- 31 तसलीमा नसरीन, यह दुःख, यह जीवन, पृष्ठ-28.
- 32 तरुण कुमार, निराला की विचारधारा और विवेकानंद, पृष्ठ-20.
- 33 राजकिशोर, धर्म और धर्म सत्ता, पृष्ठ-61.
- 34 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, पृष्ठ-18.
- 35 अखिलेश मिश्र, धर्म का मर्म, पृष्ठ-62.
- 36 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, अनु.सुशील गुप्ता, पृष्ठ-19.
- 37 जगदीश्वर चतुर्वेदी, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद और जनमाध्यम, पृष्ठ-87.

- 38 अखिलेश मिश्र, धर्म का मर्म, पृष्ठ-65.
- 39 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, पृष्ठ-29.
- 40 वही, पृष्ठ-34.
- 41 वही, पृष्ठ-38.
- 42 वही, पृष्ठ-41.
- 43 तसलीमा नसरीन, वे अँधेरे दिन, पृष्ठ-344.
- 44 असगर अली इंजीनियर, धर्म और साम्प्रदायिकता, पृष्ठ-146.
- 45 वागर्थ, सितम्बर-2006, पृष्ठ-53.
- 46 असगर अली इंजीनियर, धर्म और साम्प्रदायिकता, पृष्ठ-89.
- 47 www.gyutenburg.org, (12 January 2018).
- 48 तसलीमा नसरीन, नष्ट लड़की, नष्ट गद्य, पृष्ठ-83.
- 49 तसलीमा नसरीन, नहीं कहीं कुछ भी नहीं, पृष्ठ-291.
- 50 तसलीमा नसरीन, निषिद्ध, पृष्ठ-43.
- 51 तसलीमा नसरीन, तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-141.
- 52 वही, पृष्ठ-153.
- 53 तसलीमा नसरीन, यह दुःख, यह जीवन, पृष्ठ-115.
- 54 वही, पृष्ठ-58.
- 55 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, पृष्ठ-22.
- 56 वही, पृष्ठ-22.
- 57 सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ-316.
- 58 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-24.
- 59 वही, पृष्ठ-65.
- 60 तसलीमा नसरीन, यह दुःख, यह जीवन, पृष्ठ-80.
- 61 वही, पृष्ठ-81.
- 62 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-58.
- 63 वही, पृष्ठ-70.
- 64 वही, पृष्ठ-85.
- 65 दक्षिण कोशल, सम्पादक -उत्तम कुमार, वर्ष-1, अंक-5, पृष्ठ-29.
- 66 तसलीमा नसरीन, निर्वासन, पृष्ठ-98.
- 67 कृष्णा सोबती, गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान तक, पृष्ठ-43.
- 68 द्विखंडित, पृष्ठ-346.
- 69 विश्वमित्र शर्मा, औरतें पाकिस्तान बनाम हिंदुस्तान, पृष्ठ-116 .
- 70 गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान, पृष्ठ-55.
- 71 द्विखंडित, पृष्ठ-126.
- 72 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो, पृष्ठ-68.
- 73 असगर अली इंजीनियर, धर्म और सांप्रदायिकता, पृष्ठ-48.
- 74 तसलीमा नसरीन, मुझे घर ले चलो, पृष्ठ-184.
- 75 वही, पृष्ठ-279.

- 76 तसलीमा नसरीन, यह दुःख, यह जीवन, पृष्ठ-77.
- 77 वही, पृष्ठ-88.
- 78 वही, पृष्ठ-138.
- 79 तसलीमा नसरीन, कुछ पल साथ रहो, पृष्ठ-93.
- 80 वही, पृष्ठ-34.
- 81 वही, पृष्ठ-97.
- 82 तसलीमा नसरीन, निषिद्ध, पृष्ठ-57.
- 83 वही, पृष्ठ-52.
- 84 तसलीमा नसरीन, यह दुःख, यह जीवन, पृष्ठ-110.
- 85 वही, पृष्ठ-121.
- 86 तसलीमा नसरीन, निषिद्ध, पृष्ठ-56.
- 87 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, पृष्ठ-55.
- 88 वही, पृष्ठ-56.
- 89 वही, पृष्ठ-63.
- 90 वही, पृष्ठ-42.
- 91 वही, पृष्ठ-72.
- 92 वही, पृष्ठ-72.
- 93 तसलीमा नसरीन, छोटे-छोटे दुःख, पृष्ठ-244.
- 94 वही, पृष्ठ-254.
- 95 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, पृष्ठ-110.
- 96 वही, पृष्ठ-50.
- 97 तसलीमा नसरीन, यह दुःख, यह जीवन, पृष्ठ-42.
- 98 तसलीमा नसरीन, बंदिनी, पृष्ठ-48.
- 99 तसलीमा नसरीन, तसलीमा नसरीन की कवितायें, पृष्ठ-129.
- 100 तसलीमा नसरीन, यह दुःख, यह जीवन, पृष्ठ-90.
- 101 शंकर सरन, जिहादी आतंकवाद, पृष्ठ-118.
- 102 वही, पृष्ठ-128.
- 103 राजकिशोर, धर्म और धर्मसत्ता, पृष्ठ-101.
- 104 समाजविज्ञान विश्वकोश, अभय कुमार दुबे, पृष्ठ-1432.
- 105 वही, पृष्ठ-1432.
- 106 दत्तोपंत ठेंगडी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खंड-1, पृष्ठ-111.

उपसंहार

उपसंहार

आत्मकथा स्वयं के विश्लेषण का माध्यम है, जिसके माध्यम से स्वयं को एक बार फिर से जानने का प्रयास किया जाता है। इस प्रयास में आत्मनिष्ठता के साथ वस्तुनिष्ठता भी होती है, जिसमें तत्कालीन समाज का भी चित्रण होता जाता है।

इसका कोई न कोई प्रयोजन होता है, जिसे बच्चन ने 'सायुज्य' मुक्ति' के रूप में देखा है। आत्मकथा के सम्बन्ध में उपयोगितावादी मत ही अधिक उचित जान पड़ता है क्योंकि कोई भी आत्मकथा अचानक नहीं लिखी जाती। यह एक उद्देश्य लेकर चलती है। जैसे कि यश प्राप्ति, आत्मप्रकाशन, निष्पक्ष परीक्षण, प्रतिशोध, मिथ्या प्रतिष्ठा आदि। वस्तुतः आत्मकथा एक सोद्देश्य लेखन है।

आत्मकथा में पाठक की महत्ता भी है क्योंकि यह पाठक पर ही निर्भर करता है कि वह किसी व्यक्ति की आत्मकथा को किस तरह से देखे। यदि पाठक आत्मकथा पढ़ते हुए स्वयं को पुनरुपलब्ध करता है तो उस आत्मकथा को सफल कहा जा सकता है।

आत्मकथा समान लगने वाली अन्य आधुनिक विधाओं जैसे जीवनी, यात्रावृत्तांत, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथात्मक उपन्यास, आत्मकथ्य से पर्याप्त भिन्न है। आत्मकथा में कहने और न कहने के बीच जिस अंतराल का जन्म होता है उसके कारण उसकी प्रामाणिकता पर भी प्रश्न उठता है। किसी आत्मकथा में प्रामाणिकता का पूर्णतः निर्धारण तो नहीं किया जा सकता किन्तु गैब्रियल गार्सिया मार्केज़ के मत को मानते हुए 'जादुई यथार्थवाद' के आधार पर उसमें अंतर्निहित थोड़े से सत्य के आधार पर ही उसकी महत्ता को स्वीकार किया जा सकता है। ईमानदारी और साहस आत्मकथा की प्रामाणिकता के आधुनिक मापदंड हैं। किसी आत्मकथा में कल्पना और यथार्थ एवं ईमानदारी और साहस का प्रतिशत ही उसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता को निर्धारित करने में सहायक हो सकते हैं।

हिंदी साहित्य आत्मकथा के सम्बन्ध में समृद्ध है। उसके इस विस्तार में हिंदी मूल में लिखी आत्मकथाओं के साथ-साथ अनूदित आत्मकथाओं का विशेष योगदान है। हिंदी में लिखित और अनूदित आत्मकथा की संख्या वर्तमान में पाँच सौ से ऊपर है। किन्तु इनमें से सभी आत्मकथा के मानकों पर खरी नहीं उतरतीं, इस कारण हिंदी आत्मकथा को मानकों के आधार पर और अधिक समृद्ध किये जाने की आवश्यकता महसूस होती है।

हिंदी में एक विधा के रूप में आत्मकथा की स्थापना काफी बाद में हुई। किन्तु यह कहना कि यहाँ आत्मकथा लेखन का पूर्णतः अभाव रहा है, यह वाक्य अपूर्ण अध्ययन का परिणाम है। वस्तुतः प्राचीन से लेकर आधुनिक काल तक हिंदी और उसके पूर्व की भाषाओं संस्कृत, पालि, अपभ्रंश में आत्मकथा लेखन के कई प्रयास किये गये हैं। इसमें बौद्ध थेर-थेरी गाथा से लेकर आधुनिक दलित और स्त्री आत्मकथाओं तक की परम्परा सम्मिलित है। हाँ ! यह कहना गलत नहीं होगा कि प्रारंभिक प्रयास वर्तमान आत्मकथा विधा से भिन्न रहे हैं। सभी प्राचीन संदर्भ स्पष्ट करते हैं कि एक तरफ भारतीय संस्कृति आत्माभिव्यक्ति को असंभव मान रही थी, वहीं दूसरी ओर 'आत्मानं विद्धि' कहकर आत्मा को जानने के लिए भी प्रेरित करती रही। इस प्रेरणा का ही परिणाम था कि 'स्व' और 'आत्म' को जानने का प्रयास एवं उसे अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया। ये प्रयास कभी 'गाथा' के रूप में कभी 'आत्मकथ्य' या 'आत्मचरित' और 'आत्मजीवनी' के रूप में समय-समय पर अभिव्यक्त होते रहे। इस प्रयास में बनारसीदास की 'अर्धकथानक' मील का पत्थर साबित हुई।

आधुनिक काल में, पाश्चात्य आत्मकथाओं और आत्मकथा लेखन की शैलियों से परिचय होने पर भारतीय आत्मकथा-लेखन की शैली में परिवर्तन आया और यह परिवर्तन हिंदी आत्मकथा में भी दिखता है। इस परिवर्तन का ही परिणाम है कि हिंदी में स्त्री और दलित आत्मकथाएँ लिखी गयीं। अतः आत्मकथा लेखन को पाश्चात्य प्रभाव के रूप में स्वीकार करने में कोई गुरेज नहीं होना चाहिए जैसा कि हजारी प्रसाद ने भी प्रभावित होना मनुष्य प्रवृत्ति कहकर स्वीकार किया है।

इसके अतिरिक्त हिंदी में अनूदित आत्मकथा की परम्परा भी काफी समृद्ध है, जिसमें भारतीय भाषाओं बांग्ला, मराठी, तमिल, मलयालम, उर्दू से लेकर विदेशी भाषाओं अंग्रेजी, फारसी, जापानी आदि भाषाओं की आत्मकथायें सम्मिलित हैं। इनमें मराठी आत्मकथा के अनुवाद ने ही हिंदी में दलित आत्मकथा विधा को स्थापित होने में विशेष सहयोग किया है और अंग्रेजी से अनूदित आत्मकथाओं ने विदेशी महानुभावों के जीवन से न केवल परिचित होने का अवसर दिया बल्कि हिंदी आत्मकथा विधा को लेखन शैली की दृष्टि से मजबूत होने का अवसर दिया।

बांग्ला से अनूदित आत्मकथा में तसलीमा नसरीन की सात भागों में लिखी आत्मकथा का हिंदी में अनूदित होना, आत्मकथा के दायरे, मानक और उसके स्तर को बढ़ा देने जैसा है। उनकी आत्मकथा को आत्मकथा के मानकों पर परखने पर यह ज्ञात होता है कि अब तक लिखी गयी आत्मकथाओं में सबसे अधिक विस्तृत होने के बावजूद यह कहीं भी आत्मकथा के तत्वों से इतर नहीं जाती बल्कि कुछ नये मानक गढ़ती है। वैयक्तिकता और वस्तुनिष्ठता के साथ-साथ इस आत्मकथा में आत्माभिव्यंजना और आत्मविश्लेषण के प्रति एक विशेष ईमानदारी दिखाई देती है जो किसी भी आत्मकथा के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। यह ईमानदारी तसलीमा ने स्वयं के जीवन के साथ-साथ अन्य के जीवन, समसामयिक समाज या राजनीति को अभिव्यक्त करते हुए भी बरती है। इस ईमानदार अभिव्यक्ति के लिए जिस साहस की आवश्यकता है वह तसलीमा की आत्मकथा में कहीं भी कम होता नहीं दिखता।

तसलीमा आत्मकथा में साहस और ईमानदारी के साथ-साथ कई नये प्रयोग करती हैं - जैसे - आत्मकथा के साथ मन की अभिव्यक्तियों को सशक्त बनाने के लिए कविताओं को सम्मिलित किया जाना, दूसरा - तसलीमा की आत्मकथा का छठवाँ भाग माँ को एक लम्बे खत के रूप में लिखना और तीसरा पाँचवे भाग में यात्रावृत्तांत और संस्मरणात्मक शैली का प्रयोग। कह सकते हैं, धार्मिक,

पितृसत्तात्मक और राजनीतिक सत्ताओं के खिलाफ खड़ी हो उठने वाली लेखिका का जीवन, सत्य से टकराता हुआ, एक मिसाल प्रस्तुत करता है, जिसका प्रयोजन उपयोगितावादी जान पड़ता है।

तसलीमा के व्यक्तित्व को फ्रायड की व्याख्या के अनुसार यदि देखें तो ज्ञात होता है कि पाँच वर्ष की अवस्था तक उनका रचनात्मक रुझान समझ में आने लगता है। यह स्पष्ट होने लगता है कि यह व्यक्तित्व कला और रचनात्मकता की ओर ही जाएगा। इसी प्रकार युंग के द्वारा सुझाये गयी व्यक्तित्व की दो श्रेणियाँ (अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी) तसलीमा के व्यक्तित्व में भी दिखती हैं। गणपति चन्द्र गुप्त ने साहित्यकार के निर्माण में जिन तीन तत्वों (वंश परम्परा, वातावरण और द्वंद) को उत्तरदायी माना वे सभी तसलीमा के व्यक्तित्व को बनाने में उत्तरदायी रहे हैं।

तसलीमा का रचनात्मक व्यक्तित्व और उनके विचार किसी एक दिन की घटना नहीं हैं, बल्कि उसने तमाम सामाजिक दबावों के फलस्वरूप आकार ग्रहण किया है। उन्होंने अपने जीवन की घटनाओं से सीखकर अपने विचारों को दिशा दी है। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व सामाजिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया है।

तसलीमा का जीवन दो ध्रुवों को समानांतर रूप से लेकर चलने वाला रहा है, जहाँ एक ओर उनका व्यावहारिक जीवन है, जो किसी भी आम स्त्री की तरह गुजरता है, जहाँ वह उन सभी समस्याओं से जूझती हैं, जिसका किसी भी आम स्त्री को सामना करना पड़ता है और दूसरी ओर साहित्यिक जीवन है, जहाँ ख्याति के साथ-साथ आलोचना भी है; जहाँ लेखन के लिए प्रशंसा और सम्मान है, तो उसी लेखन के लिए असंख्य आलोचना, निंदा और देश निष्कासन है। ऐसे दोहरे जीवन को लेकर चलने की राह सरल नहीं रही है। अतः कह सकते हैं, तसलीमा नसरीन एक जटिल एवं संघर्षपूर्ण व्यक्तित्व का नाम है।

तसलीमा के लेखन से गुजरते यह ज्ञात होता है कि जीवन से सीखे गये अनुभवों को उन्होंने लेखन का विषय बनाया। बचपन के आँगन से प्रौढ़ावस्था के परदेश तक, जीवन में जिन कुरीतियों

को देखा और जिनका विरोध करना चाहा, लेकिन सामाजिक दबाव के कारण और स्वयं की झिझक के कारण तत्काल उसका विरोध नहीं कर सकीं, उन्हीं कुरीतियों और सामाजिक समस्याओं को उन्होंने आत्मकथा और अन्य रचनाओं में वृहद् रूप में प्रस्तुत कर, उनपर प्रश्न उठाया है। एक ओर तसलीमा उसी जीवन को जीने को विवश रहीं और दूसरी ओर समस्त विवशता को परे रख, लेखन के माध्यम से उसका कड़ा विरोध किया।

तसलीमा की आत्मकथा के माध्यम से हम यह देख सकते हैं कि बचपन के दिनों में बेहद डरपोक रहीं तसलीमा के डर ने उन्हें लिखने का साहस दिया। निरंतर अनचाहे कार्यों को करते रहने की कुंठा ने तसलीमा को कलम उठाने पर मजबूर किया। कुरीतियों को दूर न कर पाने की अक्षमता ने लेखन के माध्यम से उनको सामने लाने और उन पर सवाल उठाने का बल दिया।

तसलीमा का लेखन निर्वासन के पूर्व जहाँ केवल बांग्लादेश की स्त्रियों के सम्बन्ध में चिन्तन तक ही सीमित था वहीं निर्वासन के बाद उस दृष्टि में विस्तार हुआ, जिसके कारण उनकी रचनाओं में विश्व की स्त्री भी नज़र आने लगी, उसकी समस्याओं का भी जिक्र होने लगा और धार्मिक, पितृसत्तात्मक और राजनीतिक सत्ताओं की समस्त विश्व की स्त्रियों के जीवन में भूमिका का भी मूल्यांकन किया गया।

इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि तसलीमा को 'तसलीमा' बनाने में बांग्लादेश की परिस्थितियों और मीडिया की बहुत बड़ी भूमिका रही है। परिवार, समाज और देश की कुरीतियों ने एक 'विद्रोही तसलीमा' को जन्म दिया। साथ ही, मीडिया के एक बड़े हिस्से ने उनका समर्थन किया। यदि अंतर्राष्ट्रीय मीडिया ने तसलीमा के मामले को हाथों-हाथ नहीं लिया होता, तो शायद आज तसलीमा की बांग्लादेश के कट्टरपंथियों द्वारा या तो हत्या कर दी गयी होती या फिर वे एक गुमनाम जीवन व्यतीत कर रही होतीं।

तसलीमा ने कुछ विषयों को ही केंद्र में रखकर लेखन किया है। यही कारण है कि सभी रचनाओं का उद्देश्य और प्रयोजन एक जैसा ही नज़र आने लगता है। ये विषय हैं - धर्म, पितृसत्ता, राजनीति, मानवता और प्रेम। ये विषय घूम फिरकर हर रचना और हर आलेख में दिखाई पड़ते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि विषय का दोहराव सा महसूस होता है। किन्तु इस विषय के दोहराव का कारण यह है कि तसलीमा बार-बार उन्हीं विषयों को उठाकर उसकी संवेदनशीलता और उनपर चिन्तन किये जाने की आवश्यकता पर बल देती हैं। वे स्वयं को कुछ विषय में सीमित इसीलिए कर लेती हैं, जिससे अभिव्यक्ति का स्तर प्रबल हो और जो बात वह कहना चाहती है, वह कई विधाओं से होती हुई उसी रूप में पाठक तक पहुँचे और दूसरा यह कि स्त्रियों का जीवन उन्हें 'बेभाव प्रभावित' करता रहा है।

धर्म की अवधारणा अत्यंत प्राचीन है। यह उस समय से ही मनुष्य के साथ पलती-बढ़ती रही है, जब से मनुष्य ने भय के कारण प्रकृति की उपासना करना शुरू किया। प्रकृति की उपासना के लिए बनाए गये नियम और मनुष्य को संयमित करने के लिए बनाये गये नियम ही धीरे-धीरे रूढ़ होकर धर्म में बदल गये। धर्म की उत्पत्ति के विविध सिद्धान्तों में से उदविकासवादी - फ्रेजर, मैक्समूलर और टॉयलर ने तो यही स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त प्रकार्यवादियों दुर्खीम और मैलिनासकी ने इसे सामाजिक उत्तेजना का परिणाम माना। दूसरी तरफ सामाजिक संरचनावादियों डेनियल डबसन, टिमोथी फिज़राल्ड आदि ने ईसाइयत को ही धर्म माना और गैर-पश्चिमी देशों के सम्बन्ध में इसे अनुपयुक्त ढंग से लागू किये जाने की बात कही। धर्म की उत्पत्ति की मार्क्सवादी व्याख्या इसे आर्थिक संघर्ष से जोड़कर देखती है। किन्तु सभी मतों के आधार पर यह समझा जा सकता है कि धर्म की उत्पत्ति भय, नियंत्रण और सत्ता कायम रखने के उद्देश्य से ही हुई।

धर्म ने उत्पत्ति के बाद से भय और संयमित करने वाले नियम के रूप से आगे बढ़ते हुए 'राजधर्म' का रूप भी धरा। प्राचीन कल में राजसत्ताओं ने जनता को नियंत्रित करने के लिए धर्म का

सहारा लिया। मध्ययुग तक पहुँचते-पहुँचते इसने मनुष्य को भाग्यवादी बना दिया और आधुनिक काल में भाग्यवाद के स्थान पर भौतिकतावाद की स्थापना हुई। किन्तु इसके साथ ही समानांतर रूप में धर्म की सभी मान्यताएँ एक साथ आज भी कायम हैं।

'रिलिजन' और 'धर्म' में अन्तर होते हुए भी कई बार उसे पर्यायवाची के रूप में ग्रहण किया जाता है। रिलिजन धर्म सम्बन्धी पाश्चात्य मत का द्योतक है, जिसके अनुसार इसे पूजा उपासना और व्यक्तिगत क्रियाकलापों से जोड़कर देखा जाता है वहीं धर्म प्राच्य मत का द्योतक है, जहाँ इसे मनुष्य को नैतिकता और कर्तव्य का पाठ पढ़ाने वाले पथप्रदर्शक के रूप में देखा गया है।

धर्म की विभिन्न परिभाषाओं में विद्यानिवास मिश्र की परिभाषा सर्वोत्तम प्रतीत होती है, जिसके अनुसार धर्म को अभ्युदय एवं परमार्थ सिद्धि का माध्यम माना गया है और सत्य, अहिंसा, ताप और आर्जव चार पैर माने गये हैं, जिनसे यह संचरण करता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार यह दस लक्षणों - धृति, क्षमा, अचौर्य, सत्य, शांति आदि से युक्त है। किन्तु धर्म का यह स्वरूप इतना सरल भी नहीं है। इसकी जटिलता तब स्पष्ट होती है, जब विश्व में प्रसारित विभिन्न धर्मों की ओर नजर जाती है। विभिन्न प्रकार के धर्म जैसे - इब्राहिमी धर्म - यहूदी, ईसाई और इस्लाम, गैर सिमेटिक धर्म - पारसी धर्म, गैर पैगम्बरी धर्म या भारतीय मूल के धर्म - बहाई धर्म, पूर्व-एशियाई धर्म, स्थानीय धर्म - शामानिज्म, ऑस्ट्रोनेशी धर्म, आस्ट्रेलियाई आदिवासी परम्पराएँ, पोस्टवार शिन्तो या कामी-नो-मिची बोन धर्म, नर्मियाज्म, कुर्द धर्म, 'डूज', 'यजीदी', 'मेंडेंड्यंस' और 'एलमाइश' आदि एवं धर्म के सम्बन्ध में विभिन्न विचारधाराएँ जैसे - पेगेनिज्म (बुतपरस्ती), मोनोथीस्टिक (एकेश्वरवादी धर्म), पोलिथीज्म (बहुदेववादी धर्म), पैन्थीज्म (देव पूजा करने वाले), एथीस्ट (नास्तिक), थीस्ट (आस्तिक), एनोस्टिसिज्म (अज्ञेयवाद/अनीश्वरवाद) आदि धर्म की जटिलता को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त हैं।

वैसे तो धर्म का विभिन्न आधारों जैसे - भौगोलिकता, नृजातित्व, संरचना आदि के आधार पर वर्गीकरण किया गया है किन्तु सामान्यतः पैगम्बरीय और गैर-पैगम्बरीय धर्मों के आधार पर

वर्गीकरण किया जाता है, जिसके अनुसार प्रमुख धर्म हैं - ईसाई, यहूदी, इस्लाम, हिन्दू और बौद्ध धर्म। विभिन्न धर्म हैं और उनसे सम्बंधित मान्यताएँ तो हैं ही इसके साथ उनमें पनपने वाले विवाद, मतभेदों या कुरीतियों को सुलझाने के लिए धर्म सुधार आन्दोलन भी किये गये। इसके साथ ही सभी धर्मों में समभाव और सहअस्तित्व के लिए भी कई साझा प्रयास किये गये, जिसकी शुरुआत 1893 के 'शिकागो विश्वधर्म सम्मेलन' से हुई और वर्तमान में 'C-1 वर्ल्ड डायलॉग' के रूप में जारी है। 'हफिंगटन पोस्ट' (स्वतंत्र अमेरिकी न्यूज वेबसाइट) का लेख 'द एवर गोइंग रेलिजस मूवमेंट दैट डज नॉट गेट इनफ अटेंशन' यह सिद्ध करता है कि धर्म सुधार के तमाम प्रयासों के बाद धार्मिक असहिष्णुता अभी-भी एक अहम मुद्दा बना हुआ है।

राहुल सांकृत्यायन ने 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' पुस्तक में धर्म को 'बेकार' सिद्ध किया और उसके लिए तमाम सैद्धांतिक मतवादों को प्रस्तुत करते हुए उसे खारिज किया। किन्तु तसलीमा नसरीन का मामला इससे इतर है। उनकी आत्मकथा पढ़ते हुए यह ज्ञात होता है कि उन्होंने धर्म की सैद्धांतिकी को पढ़ा अवश्य किन्तु उसकी आलोचना के लिए वे व्यावहारिक स्तर पर उतरती हैं। परिवार, समाज, राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उन्हें धर्म जिस प्रकार की भूमिका अदा करता दिखा उन्होंने उसे हूबहू अपनी आत्मकथा में लिख दिया। उनकी धर्म के सम्बन्ध में आलोचनात्मक दृष्टि सर्वप्रथम अपने आस-पास के माहौल से पैदा होती है। उसके बाद धार्मिक ग्रंथों और मान्यताओं की आलोचना का सिलसिला शुरू होता है।

तसलीमा धर्म की आलोचना इसलिए करती हैं क्योंकि वे पाती हैं कि धर्म मनुष्य द्वारा निर्मित एक अनावश्यक, अतार्किक, अवैज्ञानिक व्यवस्था है, जो स्त्रियों के साथ-साथ समाज को भी गर्त में ले जा रही है। इसलिए वे धर्म को पूरी तरह समाप्त कर देना चाहती हैं। धर्म रूपी रोग को सबके समक्ष एक-एक कर खोलती हैं, जो कभी उनके परिजनों के जीवन को प्रभावित करता दिखता है, कभी

समाज में अल्पसंख्यकों की प्रताड़ना का माध्यम बनता है, तो कभी देश को एक साम्प्रदायिक राष्ट्र बन जाने पर विवश करता है।

तसलीमा ने सभी धर्मों की आलोचना की। किन्तु इस्लाम के प्रति वे अधिक कटु हैं। इसका कारण यह है कि एक तो उन्होंने इस्लामिक जीवन को बहुत नजदीक से देखा है और दूसरा वे इस्लाम को अन्य धर्मों की अपेक्षा अधिक कट्टर और असहिष्णु धर्म मानती हैं। इसलिए वे कुरान की आयतों की आलोचना करती हैं, जो उनके अनुसार अतार्किक हैं और अशांति के लिए उत्तरदायी हैं। इसके साथ वे हिन्दू धर्म ग्रंथों मनुस्मृति, ब्राह्मण ग्रंथों आदि की आलोचना करती हैं। इस आलोचना का मूल उद्देश्य यह दिखाना है कि यदि संसार से धर्म की समाप्ति हो जाय तो व्यक्ति अधिक सहिष्णु हो सकता है और विश्व को बेहतर बनाया जा सकता है।

तसलीमा के द्वारा इस्लाम एवं अन्य धर्मों की आलोचना में प्रस्तुत तर्क कई बार धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन के बाद सही जान पड़ते हैं। किन्तु इसके साथ ही कई ऐसे बिंदु हैं, जिससे तसलीमा की धर्म की आलोचना भी आलोचना की पात्र होती दिखने लगती है। उनके मत की आलोचना का आधार यह दिखता है कि उन्होंने विभिन्न धर्मों के भीतरी बंटवारे और मतवाद को एक तरह से नजरंदाज करते हुए धर्म को खारिज किया है। इतनी विभिन्नता होने के कारण एक ही आधार पर धर्म को खारिज करना उचित नहीं जान पड़ता। इसके अतिरिक्त उनके समस्त लेखन में इस्लाम धर्म की ही अधिक आलोचना है। अन्य धर्मों और ईसाई धर्म की आलोचना के बिंदु बहुत कम ही दिखते हैं। फिर भी यह अवश्य है कि उन्होंने धर्म की आलोचना जो तर्क प्रस्तुत किये वे अन्य आलोचकों से काफी-हद तक मिलते-जुलते हैं। विशिष्टता यह है कि उन्होंने एक तो इस्लाम धर्म को ही विशेषतः केंद्र में रखा है और उसकी आलोचना में तमाम प्रमाण प्रस्तुत किये और दूसरा यह कि उनकी आलोचना की शैली अन्य आलोचकों से अधिक उग्र है। इसका कारण यह है की तसलीमा ने जैसा दंश झेला वैसा ही लिखा है।

मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो भिन्न मत हैं - वैज्ञानिक और परम्परावादी । परम्परावादी मत टोटेमवाद, आदिमजातियों और धर्मग्रंथों के आधार पर मनुष्य को किसी प्राकृतिक शक्ति द्वारा उत्पन्न मानता है जबकि वैज्ञानिक मत मनुष्य को जैविक विकास का परिणाम मानता है । वैज्ञानिक मत तर्क पर आधारित होने के कारण अधिक उचित जान पड़ता है ।

जीवों के विकास के क्रम में कई ऐसी प्रजातियाँ हुईं, जिनमें बिना मैथुन के ही प्रजनन संभव हो सकता था-जैसे अमीबा । इस प्रक्रिया को 'द्विधाकरण' और 'बहुधाकरण' कहा गया । किन्तु कुछ जीव ऐसे थे, जिनमें लिंगों के सम्पर्क के बिना प्रजनन संभव नहीं हुआ, उनमें से एक मनुष्य भी है । हालाँकि वर्तमान में कई ऐसी तकनीक विकसित हुई है, जिसमें बिना मैथुन के प्रजनन सम्भव हो सका है । मनुष्य के विकास के शुरूआती दिनों में मनुष्य अपने लिंग की पहचान नहीं रखता था, जिसका प्रमाण कुछ जनजातियों (वेंगा, गोंड और माओरी आदि) में पाया गया, जिनमें सन्तान उत्पत्ति के लिए वे किसी अन्य ही तत्व (चाँद, पुरुष मूत्र से सिंचित भूमि से उत्पन्न खाद्यान्न आदि) को उत्तरदायी मानते रहे । धीरे-धीरे मनुष्य को लैंगिक विभेद का ज्ञान हुआ और वह पुरुष और स्त्री के रूप में पहचाना जाने लगा ।

वेस्टरमार्क जैसे दार्शनिकों का मत है कि मनुष्य जैसी प्रजातियाँ सदैव ही परिवार के रूप में रहती आयीं हैं, किन्तु मार्क्स और हेगल इसे एक उत्पादन के साधनों के विकास के बाद की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं । वोखोफेन जैसे विद्वान भी इसी मत का समर्थन करते हैं और यह सिद्ध करते हैं कि पहले मातृसत्ता विद्यमान थी, जिसमें उस समय परिवर्तन आना प्रारंभ हुआ जब से मनुष्य ने परिवार के रूप में रहना प्रारंभ किया । बाल्डविन, स्पेंसर और गिलेन के द्वारा किये गये अध्ययन यह साफ़ दिखाते हैं कि पहले परिवार नहीं था बल्कि 'यौथ प्रथा' थी । जयचंद विद्यालंकार, डी. एन. मजूमदार आदि के द्वारा किये गये अध्ययन भी यही सिद्ध करते हैं । 'मातृगमन', 'भगिनीगमन', 'गुरुभार्यागमन' और 'पुनलुआ' आदि प्रथाओं का अंत 'परिवार' की अवधारणा के जन्म के साथ होने लगा । ऐसे में स्त्रियों

की स्थिति में भी क्रमशः परिवर्तन होता गया और समाज मातृसत्ता से पितृसत्ता की ओर उन्मुख हुआ। इसे सामाजिक विकास क्रम में एक महान क्रांति के रूप में देखा गया है। गार्दालर्नर का मत है कि इस क्रांति के आकार लेने में ही तकरीबन पच्चीस सौ वर्ष लगे होंगे।

पितृसत्ता की स्थापना के कारण के रूप में एक तरफ 'जैविक भौतिकवाद' को उत्तरदायी माना गया तो स्टालिन इसे पुरुष द्वारा समस्त उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण के रूप में देखते हैं, जिसने स्त्री को पंगु बना दिया। इस क्रम में स्त्रियों को उसके हर एक पद से अपदस्थ कर दिया गया जिसे देवी मूर्तियों के साथ पुरुष मूर्तियों के निर्माण से लेकर परिवार में स्त्रियों के सीमित होते दायित्व तक में देखा जा सकता है। इसी क्रम में अन्तःपुर, सतीत्व, सती-प्रथा, दहेज, दासी-प्रथा, नियोग-प्रथा, बहुपत्नीत्व, पुत्रोत्पादन का महत्व आदि का क्रमिक विकास होता गया और आगे चलकर इसने रूढ़ी का रूप धर लिया।

स्त्रियों के महत्व को कम करने वाली सामाजिक रूढ़ियों को जब आधुनिक काल में महसूस किया गया तो एक तरफ पितृसत्ता के समानांतर 'सामाजिक सुधार आन्दोलन' कर कई कुप्रथाओं और स्त्री को जागरूक बनाने के लिए उनकी शिक्षा पर बल दिया गया और दूसरी तरफ पितृसत्ता के विरुद्ध 'नारीवादी आन्दोलन' और 'स्त्री-विमर्श' का प्रारम्भ हुआ। स्त्री-विमर्श के दर्शन की ओर देखने पर पता चलता है कि कई प्रारंभिक दार्शनिकों जैसे प्लेटो, अरस्तु, देकार्त और हीगेल आदि ने स्त्री को अयोग्य सिद्ध कर कुछ ही अधिकार दिए जाने के योग्य माना। इस प्रकार से पितृसत्तात्मक रवैये से प्रेरित प्रारंभिक स्त्री-चिंतन को जेन फ्लेक्स जैसे दार्शनिकों ने पुरुष की 'साइकोसेक्शुअलिटी' का परिणाम मानते हुए 'मेस्कुलिन' आग्रहों की वजह से खारिज कर दिया। हालाँकि स्टुअर्ट मिल जैसे पुरुष चिंतकों ने भी स्त्रियों के सम्बन्ध में तार्किक चिंतन किया। स्त्री के सम्बन्ध में स्त्री के चिंतन के फलस्वरूप ही कुछ सकारात्मक बदलाव दिखाई दिये।

नारीवादी आन्दोलन के प्रथम चरण से लेकर वर्तमान तक तमाम नारीवादियों के द्वारा प्रस्तुत मतों से स्त्री सम्बन्धी दृष्टिकोण में बदलाव आया। नारीवादी आन्दोलन वस्तुतः एक 'होमोजीनीयस प्रवाह' है, जिसके कई रूप दिखते हैं और इसने 'सफ्रेज़ आन्दोलन' से होते हुए 'यौन स्वतंत्रता' तक का सफर तय किया है। इस सफ़र में नारीवाद को खारिज करने वाले (जैक देरिदा) और नारीवाद के अंत की घोषणा (बेट्टी फ्राइडेन) करने वाले कमज़ोर स्वर तक सुनाई दिए किन्तु इसकी प्रबलता के कारण इसने लम्बा सफ़र तय किया और विमर्श के रूप में स्थापित हुआ।

नारीवाद की तीसरी लहर के दौरान लैटिन अमेरिकी और एशियाई देशों का स्त्रीवाद केंद्र में आया। इसमें इतनी सांस्कृतिक विषमता थी कि एक तरफ 'अश्वेत आन्दोलन' चल रहा था तो दूसरी तरफ भारतीय उपमहाद्वीप में 'अल्पसंख्यक स्त्री', 'दलित स्त्री', 'आदिवासी स्त्री' और 'सवर्ण स्त्री' जैसे मुद्दे मुखरित हुए। भिन्नता के बावजूद एक बात में ये सभी समान हैं कि इन सभी ने अपने-अपने तरीके से 'फेलोसेंट्रिक' समाज को ललकारा। हिंदी में मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, अनामिका, कात्यायनी, प्रभा खेतान, रेखा कस्तवार आदि लेखिकाओं का समाज से भिड़ जाने वाला लेखन अति महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ तो पुरुष लेखकों जैसे- मैथिली शरण गुप्त, पन्त, निराला, प्रेमचंद, जैनेंद्र, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय आदि के साहित्य में स्त्री सम्बन्धी चिंतन को खोज यह दिखाने का प्रयास किया गया कि पुरुषों ने भी स्त्रियों के सम्बन्ध में चिंतन किया है। राजेन्द्र यादव तो इस क्रम में अपनी एक अलग ही पहचान बनाते नज़र आये। किन्तु पुरुषों द्वारा स्त्रियों के सम्बन्ध में किये गये अधिकतर प्रयास को शीबा असलम फहमी जैसी लेखिकाओं ने 'गल थोथरी' या 'लिप सर्विस' कहकर खारिज भी किया है।

1990 के दशक में तसलीमा का लेखन उस समय केंद्र में आया जब उन्हें 'निर्वाचित कलाम' के लिए बांग्ला का सर्वप्रतिष्ठित 'आनंद पुरस्कार' प्राप्त हुआ। तसलीमा ने स्त्री को केंद्र में रख अपना लेखन किया और स्त्री की उपेक्षा या उसे सीमित करने वाले कारणों का अन्वेषण कर उसकी

आलोचना की। इसके लिए तसलीमा ने अपने आलेखों और आत्मकथा में धार्मिक पुस्तकों के उन उपबंधों को खोज-खोज कर प्रस्तुत किया है, जिनमें स्त्री को दोयम दर्जे का सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। वे कुरान की उन तमाम आयतों का उदाहरण देती हैं, जिन्हें पुरुष धर्मज्ञों ने अपनी सहूलियत के अनुसार बदल दिया या हिन्दू और ईसाई धर्मग्रंथों के उन उपबंधों का जिक्र किया, जिसमें स्त्री पुरुष से निम्न सिद्ध की गयी है। तसलीमा का स्त्री सम्बन्धी चिन्तन उनके समाज में स्त्रियों की स्थिति की ही उपज है। बांग्लादेश में यद्यपि कई वर्षों से खालिदा जिया और शेख हसीना के रूप में स्त्री ही शासन कर रही है और संविधान भी स्त्रियों के सम्बन्ध में समानता, स्वतंत्रता आदि का उपबंध करता रहा है किन्तु व्यवहार के धरातल पर स्त्रियाँ अपने समस्त अधिकार से वंचित दिखती हैं। यूनिसेफ द्वारा किये गये विभिन्न सर्वेक्षणों से यह बात स्पष्ट होती है। स्त्रियों के सम्बन्ध में कानूनों की कोई कमी नहीं किन्तु व्यवहार में ये कानून शरीयत से आगे नहीं जाते। कानूनों का पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण स्त्री की प्रगति में बाधक है। यही कारण है कि तसलीमा फ़ॉस्टिना परेरा के समान सभी कानूनों की भाषा पितृसत्तात्मक मानते हुए उन्हें एक सिरे से अस्वीकार करती हैं।

तसलीमा का स्त्री सम्बन्धी चिन्तन एक स्त्री के रूप में अपने जीवन के अध्ययन, माँ, नानी, मौसियों, सहेलियों, घर में काम करने वाली बाइयों, अस्पताल में आने वाली मरीजों, सड़क पर सामान बेच रही स्त्रियों और सत्ता में रही स्त्रियों इन सब के जीवन की भीतरी परतों को देखते हुए ही आकार ग्रहण करता है, जिसका आत्मकथा में तसलीमा उल्लेख करती है। उनका चिन्तन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'स्त्री कहीं भी सुखी नहीं है'। इसके लिए वे धर्म और पितृसत्ता को उत्तरदायी मानते हुए स्त्री को इन दोनों की परिधि से बाहर निकल 'गोल्लाछूट दौड़' लगाने और स्वयं को 'नष्ट' कर लेने की बात कहती हैं। उनकी यह बात सीमोन द बोउआर के उस कथन की याद दिलाता है, जिसमें वे कहती हैं कि उसी स्त्री को स्वतंत्र कहा जा सकता है, जिसने विवाह से पूर्व शारीरिक सम्बन्ध बनाये हो और जो विवाह के बाद आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो।

तसलीमा का स्त्री-विमर्श धर्म की बेड़ियों को काटने के साथ पुरुष मानसिकता के त्याग का आह्वान करता है, जिसमें यौन स्वतंत्रता के साथ परिवार और विवाह जैसी संस्था के विघटन और 'नाजन्म क्रांति' की बात की गयी है। तसलीमा ने अपने जीवन में इन क्रांतियों को लाकर यह तो सिद्ध कर दिया कि एक स्त्री के लिए समस्त मान्यताओं को तोड़ना संभव है।

तसलीमा के लिए स्त्रियों का जीवन भोगा हुआ यथार्थ है और यह यथार्थ अब उनके विचारों में घुल मिल गया है। बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेज, पुरुष का वहशीपन, परिवार और अन्य मर्दों का कई स्त्रियों के साथ सम्बन्ध, घर की चारदीवारी में कैद स्त्री, पर्दा, बुर्का, वेश्याएँ, पढ़ी लिखी स्त्री, कामगार स्त्री, गरीब और बेसहारा स्त्रियाँ, धनी और अभिजात्य वर्ग की स्त्रियाँ आदि तमाम विषयों को तसलीमा ने अपनी आत्मकथा में स्थान दिया है।

कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि उन्होंने 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका की भाँति गुहार-मनुहार न करते हुए सभी उत्तरदायी लोगों और संस्थाओं को सीधे फटकारा, वे 'श्रृंखला की कड़ियाँ' की लेखिका महादेवी वर्मा की घोषणा कि 'हमारा उद्देश्य पुरुष से बदला लेना नहीं है' के विपरीत पुरुष से बदला लेने की प्रवृत्ति से सहमत हैं (क्योंकि पुरुष और पितृसत्ता कई बार एक होते दिखाई देते हैं), पितृसत्ता, धर्म और पुरुष की राजनीति से स्त्री अस्तित्व पर छाए अंधकार के बादलों को वे मनुहार करके नहीं बल्कि विरोध और बहिष्कार की मशाल जलाकर खत्म करना चाहती हैं। अन्यथा स्त्री 'सेकेण्ड सेक्स' के रूप में 'अन्या' घोषित की जाती रहेगी। 'स्त्री मुक्ति का सपना' लिए 'सपनों की मंडी' में चाहे साहित्य कितना भी घूम ले, किन्तु 'स्त्रीत्व के मानचित्र' से कोई दूर नहीं भाग सकता। तसलीमा का स्त्री-विमर्श सिमोन द बोउआर की तरह यह स्वीकार करता नजर आता है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बना दी जाती है', बेट्टी फ्राईडेन की तरह वे भी 'बेबी वुमेन' निर्मिति को तोड़ती नजर आती हैं, जेम्स स्टर्बा की भाँति हीगेल के पब्लिक और प्राइवेट के सिद्धांत को नकारते हुए 'सहअस्तित्व' पर बल देती नजर आती हैं, मार्क्स और एंगल्स की भाँति स्त्री को भी पूँजीगत अधिकारों की प्राप्ति करते

हुए देखना चाहती हैं, फ्रायड की तरह 'पुरुष ग्रंथि' और 'शिशु ईर्ष्या' का निरूपण भी करती हैं, तो जॉक लॉक की भाँति वे भाषा के पितृसत्तात्मक स्वरूप की भी आलोचना करती हैं। शुलामिथ फायरस्टोन की भाँति स्त्री-मुक्ति का स्रोत जैविकीय क्रांति अर्थात् प्रजनन की नई तकनीक और उसके विकल्प में देखती हैं, केट मिलेट और सिमोन की भाँति वे भी स्त्रियों को नारीत्व के विचार से मुक्त होते हुए देखना चाहती हैं। तसलीमा को 'प्रो-फेमिनिस्ट', 'व्यक्तिवादी नारीवादी', एवं 'रेडिकल फेमिनिस्ट' की श्रेणी में रखा जा सकता है। उनका स्त्री-विमर्श पश्चिम के विचारकों से काफी हद तक समानता रखता है बस अंतर है तो अभिव्यक्ति के स्वरूप का और यही अभिव्यक्ति उन्हें विशिष्ट और भिन्न बनाती है। तसलीमा को उनकी आत्मकथा और स्त्री सम्बन्धी चिंतन के लिए एक 'ट्रेंड सेटर' या 'पथ-प्रदर्शक' के रूप में देखा जा सकता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में बंगाल उन प्रान्तों में से एक रहा है, जिसने सबसे अधिक बार विभाजन देखा है। बंगाल का इतिहास एक सामासिक संस्कृति वाले प्रान्त से शुरू होकर एक साम्प्रदायिक राष्ट्र के जन्म लेने तक विस्तृत है। जिसमें कभी हिन्दू और मुस्लिम राजवंशों का शासन रहा था। एक ही भाषा और संस्कृति वाले इस प्रान्त को सांप्रदायिक आधार पर विभाजित किया जाना इसके लिए हानिकारक साबित हुआ। यही कारण है कि आज बंगाली संस्कृति से समृद्ध यह प्रान्त दो भागों में दिखता है - पश्चिमी बंगाल (यह भारत का प्रान्त है) और बांग्लादेश (यह पहले पूर्वी बंगाल था जिसे विभाजन के समय पाकिस्तान के हिस्से में आने के कारण 'पूर्वी पाकिस्तान' नाम दिया गया और बाद में यह पूर्वी पाकिस्तान से १९७१ में 'बांग्लादेश' के रूप में एक स्वतंत्र देश बन गया)। विलियम वैन स्केंडल की पुस्तक 'अ हिस्ट्री ऑफ़ बांग्लादेश' से यह ज्ञात होता है कि यहाँ 2000 ई. में जाकर धार्मिक परिवेश स्पष्ट होता है, जिसमें हिन्दू, बौद्ध और जैन संस्कृति के साक्ष्य मिलते हैं। वे यह मानते हैं कि मुगलों के रूप में इस्लाम के आगमन से इस प्रान्त के राजनीतिक और सांस्कृतिक ढाँचे में परिवर्तन आया। विशेषकर पूर्वी बंगाल के अधिकतर लोग इस्लाम से प्रभावित हुए और इस्लाम धर्म

ग्रहण किया। ब्रिटिश काल में इस इस्लाम और हिन्दू धर्म पर आधारित साम्प्रदायिकता की नीति ने बंगाल को विखंडित कर दिया।

जिस राष्ट्र की नींव ही साम्प्रदायिक आधार पर पड़ी हो वहाँ आजीवन उसकी छाप दिखाई देती है। बांग्लादेश के साथ भी यही हुआ। बांग्लादेश में मुस्लिम बहुसंख्यक हैं। इसके राजनीतिक इतिहास को देखने से स्पष्ट होता है कि यहाँ कि विभिन्न सरकारें निर्णय लेते समय इन बहुसंख्यकों के तुष्टिकरण का प्रयास करती रही हैं और उनकी रुचि-अरुचि के आधार पर ही अधिकतर निर्णय लिए गये हैं। इस साम्प्रदायिक मानसिकता और तुष्टिकरण की नीति का परिणाम ही है कि देश को एकतरफ लोकतान्त्रिक और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया है तो दूसरी तरफ इस्लाम को 'राष्ट्रीय धर्म' घोषित कर बांग्लादेश की सामासिक संस्कृति की छवि को प्रभावित किया है।

ऐसे परिवेश में तसलीमा बांग्लादेश में उपेक्षित और प्रताड़ित हो रहे अल्पसंख्यकों के पक्ष में खड़ी हुईं। उन्होंने आत्मकथा में बांग्लादेश की निरंतर बदलती हुई परिस्थितियों और राजनीतिक निर्णयों पर कटाक्ष किया है। बांग्लादेश के निर्माण से पूर्व हुए भाषा आन्दोलन, मुक्तियुद्ध और फिर साम्प्रदायिक राष्ट्र के रूप में बढ़ते बांग्लादेश के कदम और इसमें विभिन्न सरकारों की भूमिका इन सबका आलोचनात्मक ब्यौरा तसलीमा की आत्मकथा में है। इस आत्मकथा से यह ज्ञात होता है कि जो परिस्थितियाँ पाकिस्तान शासन के समय थीं वही बांग्लादेश के निर्माण के बाद भी रहीं। शेख मुजीबुररहमान के देश से अल्पसंख्यक हिन्दुओं का पलायन, लाखों औरतों का बलात्कार, धर्म आधारित शिक्षा, साम्प्रदायिक नीतियाँ- राष्ट्रधर्म घोषित किया जाना, सरकार और कट्टरपंथियों का गठजोड़- गुलाम आयाम जैसे रजाकारों को सजा न मिलना, इस्लामिक पार्टी- जमात-ए-इस्लामी का बढ़ता प्रभुत्व आदि के आधार पर कमजोर होते अपने देश को देख तसलीमा ने अपने लेखन के माध्यम से तमाम राजनीतिक और कट्टरपंथियों के विरुद्ध अपनी विरोधी और विद्रोही आवाज़ को दर्ज किया।

परिणाम यह हुआ कि सरकार, कट्टरपंथी और कट्टरपंथी लेखक वर्ग सभी तसलीमा के विरोध में उठ खड़े हुए। इस विरोध के कारण ही तसलीमा के विरुद्ध निर्वासन का षड्यंत्र रचा गया। इसके लिए आधार बनाया गया 'ब्लासफेमी' यानि 'ईश निंदा' को। बांग्लादेश यद्यपि ऐसा देश है जिसमें ईशनिंदा कानून नहीं है किन्तु यहाँ की दंड संहिता की धारा 295-A इस बात का प्रावधान करती है कि धार्मिक भावनाओं को आहत करने वाली अभिव्यक्तियों को प्रतिबंधित किया जा सकता है और इसके लिए अधिक से अधिक कारावास की सजा है। ईशनिंदा की धारणा वस्तुतः पैगम्बरवादी धर्मों की देन है। ब्लासफेमी के लिए अरबी में 'सब्ब', 'शत्म', 'तज्दीफ', 'कुफ्र' जैसे शब्दों का प्रयोग है एवं कुरान ईशनिंदकों को नरक में जाने की बात करती है। धर्मग्रन्थ और धर्मावलम्बी इस सम्बन्ध में भ्रमात्मक स्थिति में दिखते हैं। तसलीमा ने हिन्दू अल्पसंख्यकों का पक्ष लेते हुए यह सिद्ध किया कि यदि धर्म को ही समाप्त कर दिया जाय तो अल्पसंख्यकों का शोषण स्वतः समाप्त हो जाएगा। इसके लिए इस्लाम की तमाम आयतों को आधार बनाकर यह दिखाया कि यह धर्म के नाम पर किये जाने वाला 'जिहाद' वस्तुतः अल्पसंख्यक विरोधी मानसिकता की जड़ है। इस्लाम धर्म की निंदा करने कारण फतवा, मुकदमा, मुस्लिम कट्टरपंथियों का विरोध, सरकार द्वारा उनका समर्थन और कठिन भूमिगत जीवन आदि के साथ तसलीमा को देश छोड़ने पर बाध्य किया गया।

निर्वासित होना एक बुरे सपने की तरह है। देश दुनिया में तमाम लेखकों को कई बार अपने लेखन या क्रांतिकारी विचारों के कारण या तो जान बचाने के लिए निर्वासित होना पड़ा है या उन्हें वहाँ कि सरकारों ने ही निर्वासित किया है। उदाहरण के लिए - ओविड, बोधा, विक्टर ह्यूगो, मिलान कुंदेरा, सोल्जेनित्सिन, निकोलस मैकियावली, शर्मीला सैय्यद, ओरहान पामुक, सलमान रुश्दी आदि। इस निर्वासन के सम्बन्ध में एडवर्ड सईद की थियरी यह कहती है कि निर्वासन एक राजनीतिक कदम है, जिससे यद्यपि कष्ट होता है किन्तु यह लेखक की बौद्धिक क्षमता को समृद्ध करता है। यह आत्म निर्वासन या थोपे हुए निर्वासन के रूप में हो सकता है। यह व्यक्ति विशेष की प्रतिबद्धता का प्रतीक है। तसलीमा का निर्वासन आत्मनिर्वसन न होकर थोपा हुआ राजनीतिक कदम है, जिससे वे जल्द से

जल्द उबरना चाहती हैं। निर्वासन के दौरान तसलीमा के अनुभव समृद्ध होते दिखते हैं। पश्चिमी संस्कृति से मोहभंग और भारत से विशेष लगाव उन्हें कलकत्ता तक ले आता है किन्तु कलकत्ता उनकी शरणस्थली नहीं बन पाता क्योंकि यहाँ भी बांग्लादेश जैसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं - फतवा, नज़रबंदी, अज्ञातवास और निर्वासन के रूप में।

विश्व में प्रतिबंध की राजनीति के प्राचीन साक्ष्य रोमन और ग्रीस साम्राज्य के समय से ही दिखते हैं जब सर्वप्रथम आगस्टस के मत को प्रतिबंधित किया गया। एस्काइलेस, एरिस्टोफेन्स और प्रोटेगोरस इसी कड़ी से जुड़े हैं। तीसरी दुनिया के देशों में प्रतिबंधित किये जाने के सब से अधिक उदाहरण मिलते हैं जिनमें भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, केन्या, लैटिन अमेरिकी देश सम्मिलित हैं। प्रतिबंध के पीछे दरअसल सत्ता खोने के भय की मानसिकता कार्य करती है। इस प्रतिबंध की राजनीति को मैनेजर पाण्डेय ने 'तीसरी दुनिया की दुर्गंगी चाल' और 'दमनकारी सांस्कृतिक नीति' की संज्ञा दी है। निर्वासन के पूर्व और बाद में भी बांग्लादेश की सरकार ने तसलीमा की कई पुस्तकों को प्रतिबंधित किया है। किन्तु जैसा कि मैनेजर पाण्डेय का मत है 'साहित्य पर प्रतिबंध का उल्टा असर होता है' वैसा ही कुछ तसलीमा के साथ भी हुआ। उनका साहित्य जितना अधिक प्रतिबंधित किया उतना ही उसका प्रचार हुआ और उसे पढ़ा गया।

यदि किसी साहित्यकार को खत्म करना है तो उसके लिए सबसे बेहतर उपाय यह है कि उसके साहित्य की उपेक्षा की जाय। तसलीमा नसरीन के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ है। सपाट लेखन और बेतुकी बातों जैसा आरोप लगाकर उनकी रचनाओं को असाहित्यिक घोषित कर उपेक्षित करने का प्रयास किया गया। किन्तु यदि साहित्य के उद्देश्य की दृष्टि से देखें तो तसलीमा की आत्मकथा और आत्मकथेतर साहित्य सभी साहित्यिक उद्देश्य को पूर्ण करते नज़र आते हैं। भाषा, शैली, प्रतीक और बिम्ब योजना के साथ विषय वैविध्य तसलीमा की रचनाओं को साहित्यिक कहने के लिए पर्याप्त हैं। प्रेमचंद द्वारा सुझाये गये मत के अनुसार देखें तो यह महफ़िल सजाता या मनोरंजन का सामान नहीं

जुटाता बल्कि सच्चाई की मशाल ले कर आगे बढ़ता है। न्यूमन के मत के आधार पर देखें तो यह 'युनिवर्सल की जगह 'पर्सनल' होकर व्यक्ति विशेष के मन को उद्वेलित करने वाला साहित्य है और इसमें गणपतिचन्द्र गुप्त द्वारा बताये गये रस के अनुरूप उत्पन्न 'भावनात्माक', 'कलात्मक' और 'बौद्धिक आकर्षण' की क्षमता भी है। साथ ही यह मैक्सिम गोर्की के मत के समान यह आत्मान्वेषण का अवसर भी देता है और संरचनावादी फूको ने जिस 'स्वायत्तता' और 'वस्तुनिष्ठता' की बात की वह भी इसमें विद्यमान है। इसके चलते तसलीमा के लेखन की उपेक्षा करने वाले अपने उद्देश्य में असफल रहे।

तसलीमा के साहित्य को तथाकथित अश्लील शब्दों के प्रयोग के कारण कई बार 'पोर्न साहित्य' या 'कोकशास्त्र' या 'इरोटिका' कहकर खारिज किया गया है। अश्लीलत्व के भाव को दोष मानने की यह परम्परा मम्मट, विश्वनाथ, वामन, भामह आदि काव्यशास्त्रियों की चिंतन परम्परा में दिखाई देती है। किन्तु विश्वनाथ तिवारी का मत है कि श्लीलत्व और अश्लीलत्व निर्धारण की यह परम्परा हर संस्कृति में एक जैसी नहीं हो सकती। क्योंकि जो बातें किसी एक समाज विशेष में अश्लील हैं वही बातें दूसरे समाज या संस्कृति में हो सकता है अश्लील न मानी जाती हों। इसलिए अश्लीलत्व के निर्धारण के लिए कोई एक मानक नहीं बनाया जा सकता। इसके लिए वे जिस 'रचनात्मक ईमानदारी' को मानक के रूप में देखते हैं उस दृष्टि से तसलीमा के साहित्यिक उद्देश्यों की दृष्टि और अभिव्यक्ति की उग्रता की दृष्टि से उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द या वाक्य या भावनाओं को अश्लील नहीं कहा जा सकता। यह उस साहित्य की आवश्यकता कही जा सकती है। अज्ञेय के अनुसार श्लील-अश्लील तो सामाजिक मान्यता से सम्बंधित है उसका साहित्य से कोई सरोकार नहीं। तसलीमा ने अपने साहित्य में 'लिंग', 'सेक्स' या 'यौन सम्बन्ध', 'देह' आदि की बात अधिकतर की है, जिसके कारण कई लोगों को यह अश्लील नज़र आता है। किन्तु वास्तविकता में देखें तो ये शब्द स्त्री-जीवन और स्त्री-विमर्श की एक प्रकार से पारिभाषिक शब्दावलियाँ हैं, जिनसे गुजरे बिना स्त्री सम्बन्धी चिंतन से न्याय नहीं किया जा सकता। कुल मिलाकर जगदीश्वर चतुर्वेदी के मत को आधार बनाकर

कह सकते हैं कि तसलीमा ने 'सृजन की मर्यादा' के अपने दायित्व का निर्वहन किया है अब इसमें श्लीलता या अश्लीलता है या नहीं यह पाठक या आलोचक की दृष्टि पर निर्भर करता है। तसलीमा ने जिन शब्दों का प्रयोग अपने लेखन में किया है उसके कोई न कोई सन्दर्भ और अर्थ हैं। उन्होंने यूँ ही 'पोर्न' लेखन करने के लिए तथाकथित अश्लील शब्दों का प्रयोग किया है यह कहना उचित नहीं प्रतीत होता है। जरूरत उनके संदर्भों और विषयवस्तु को समझे जाने की है न कि साहित्यिक प्रतिद्वंद्विता में पड़कर उनके साहित्य को उपेक्षित करने की।

तसलीमा का लेखन स्त्रियों का शोषण कर रहे पितृसत्तात्मक समाज, धर्म के आधार पर बंटे समाज और कुत्सित राजनीति से कुंठित होते समाज को मानवतावादी मूल्यों के सहारे सीमित मानसिकताओं और दायरों से निकल आने के लिए प्रोत्साहित करता है। नामवर सिंह का कथन 'महान कला का उद्देश्य मानवअस्मिता की हिफाजत करना है' के समान तसलीमा की आत्मकथा और आत्मकथेतर साहित्य अपने स्तर पर मानवअस्मिता की हिफाजत की ही बात करता है, जिसका विशेष आग्रह है स्त्री को मनुष्य स्वीकार किया जाना।

तसलीमा मानवतावाद को किसी पश्चिम और पूरब में बाँटकर देखने का समर्थन नहीं करती। तसलीमा के समस्त लेखन पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट हो जाता है कि तसलीमा एक 'रेडिकल' और 'धर्म निरपेक्ष मानवतावादी' हैं। रेडिकल मानवतावादी इस अर्थ में कहा जा सकता है क्योंकि उन्होंने भौतिकतावाद का समर्थन किया, धर्म की आलोचना की और किसी परलौकिक सत्ता के अस्तित्व को नकारा और लोकतान्त्रिक मूल्यों का समर्थन किया किन्तु साम्यवाद या मार्क्सवाद की समर्थक के नजरिये से देखें तो उन्हें रेडिकल मानवतावादी नहीं कहा जा सकता। बल्कि इस आधार पर उन्हें 'समाजवादी मानवतावादी' की श्रेणी में रखा जा सकता है। जो भी हो तसलीमा ने मानवतावाद के विभिन्न तत्वों को धर्म, पितृसत्ता और राजनीति के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया है। उदाहरण के

लिए धर्म के लिए धर्म निरपेक्ष मानवतावाद, पितृसत्ता के लिए मानवतावादी प्रेम, समानता और स्वतंत्रता एवं राजनीति के लिये समाजवादी शासन प्रणाली को बेहतर विकल्प के रूप में देखा है।

तसलीमा को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने के क्रम में कई ऐसे बिंदु भी नज़र आते हैं जिनके आधार पर तसलीमा की आलोचना की जा सकती है। मसलन- दोहराव। तसलीमा ने कुछ विषयों को ही केंद्र में रखकर लेखन किया है। यही कारण है कि सभी रचनाओं का उद्देश्य और प्रयोजन एक जैसा ही नज़र आने लगता है। ये विषय हैं - धर्म, पितृसत्ता, राजनीति, मानवता और प्रेम। ये विषय घूम फिरकर हर रचना और हर आलेख में दिखाई पड़ते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि विषय का दोहराव सा महसूस होता है। किन्तु इस विषय के दोहराव का कारण यह है कि तसलीमा बार-बार उन्हीं विषयों को उठाकर उसकी संवेदनशीलता और उनपर चिन्तन किये जाने की आवश्यकता दिखाना चाहती हैं जिसे 'अग्रगामिता' या 'फोरग्राउंडिंग' के रूप में देखा जा सकता है। वे अपने को कुछ विषय में सीमित इसीलिए कर लेती हैं, जिससे अभिव्यक्ति का स्तर प्रबल हो, जो बात वह कहना चाहती है, वह कई विधाओं से होती हुई उसी रूप में पाठक तक पहुँचे। इसके अतिरिक्त उनके अपने विचार ही कई बार एक दूसरे को खंडित करते नज़र आते हैं। जैसे पुरुषतंत्र और पुरुष को लेकर उनकी बातों में मतभेद है। कहीं वे पुरुष विरोधी दिखती हैं तो कई बार केवल पुरुषतंत्र विरोधी हैं। हालाँकि उन्होंने भ्रमात्मक स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है किन्तु इस समस्या का समाधान नहीं हो पाता। उनकी आलोचना इस बात के आधार पर भी की जा सकती है कि वे कहीं भी पुरुष का पक्ष समझती दिखाई नहीं देतीं। ऐसे में, उनकी पुरुष-विद्वेषी छवि बनना स्वाभाविक है। इन सबके अतिरिक्त कई बार उनके विचारों में अतिशयोक्ति जैसा भाव नज़र आता है। जैसे जब वे परिवार जैसी संस्था के अंत या स्त्री की यौन-स्वतंत्रता या नाजन्म क्रांति की बात करती हैं तो व्यावहारिक धरातल पर यह कैसे सम्भव होगा इसके लिए कोई मार्ग सुझाती नज़र नहीं आतीं और कई बार उनकी स्वतंत्रता की माँग स्वच्छन्दता जैसी महसूस होने लगती है। इसके साथ ही धर्म की आलोचना के सम्बन्ध में कई बार ऐसा महसूस होता है कि यह केवल एक उग्र प्रतिक्रिया मात्र है। व्यावहारिक

धरातल पर धर्म को समाप्त करना इतना सरल नहीं है। वे कई बार विभिन्न धर्मों में व्याप्त विभेद और बँटवारे जैसे- इस्लाम के विभिन्न पंथों - सुन्नी, हनफी, देवबंदी, मालिकी, शाफई, हंबली, सल्फी, वहाबी, अहमदिया, शिया, इस्ना अशरी, जैदिया, नुसैरी, खोजा आदि में मतभेद, ईसाईयों के मध्य मतभेद, हिन्दू धर्म की जाति व्यवस्था आदि आंतरिक मतभेदों को नजरअंदाज कर एक सरल सा उत्तर दे देती हैं कि धर्म को समाप्त किया जाना चाहिए। किन्तु धर्म को समाप्त करने के लिए क्या प्रक्रिया अपनाई जाय या इसकी शुरुआत कहाँ से की जाय इस अपेक्षित उत्तर का अभाव अखरता है। इसके अतिरिक्त ईसाई धर्म की आलोचना में न के बराबर बात करना काफी अखरता है। हालाँकि तसलीमा की आत्मकथा ईमानदारी के स्तर पर प्रशंसनीय है किन्तु इसके पूर्णतः सत्य होने का दावा नहीं किया जा सकता क्योंकि कई बार घटनाओं के उल्लेख के दौरान कुछ बातों को या तो जानबूझकर छुपाया गया है या अनजाने में कुछ छूट गया सा लगता है। फिर भी, यह कह सकते हैं कि तसलीमा की आत्मकथा और जीवनोल्लेख न केवल आत्मकथा के वृहद् साहित्य के लिए बल्कि धर्म, पितृसत्ता और राजनीति की तिकड़ी में फँसी स्त्री के जीवन के सम्बन्ध में एक मिसाल हो सकता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का महत्व यह है कि यह सम्भवतः हिंदी में तसलीमा पर अकादमिक रूप से किया गया प्रथम शोध कार्य है। इसलिए यह अकादमिक स्तर पर तसलीमा के साहित्य के दर्शन को समझने के लिए एक प्रवेश द्वार हो सकता है। दूसरा, यह तसलीमा के सम्बन्ध में कई पूर्वाग्रहों और हवा में तैरती बातों के आधार पर निर्मित तसलीमा की छवि को खंडित करता है। इसके अतिरिक्त अनुवाद से इतर तसलीमा के लेखन की स्त्री-विमर्श में आवश्यकता और महत्ता को पुष्ट करता है। हिंदी साहित्य में आत्मकथाओं पर शोध कार्य की कड़ी में यह एक सोपान कहा जा सकता है। मेरी दृष्टि में तसलीमा के साहित्य को आधार बनाकर अन्य कई शोध कार्य किये जा सकते हैं, विशेषकर तसलीमा की कविताओं पर केन्द्रित विषय पर बेहतरीन शोध कार्य की सम्भावना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधारग्रन्थ :

1. नसरीन, तसलीमा. उताल हवा. सुशील गुप्ता (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण-2003, आवृत्ति-2012.
2. नसरीन, तसलीमा. कुछ पल साथ रहो. सुशील गुप्ता (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2006.
3. नसरीन, तसलीमा. दो औरतों के पत्र. सुशील गुप्ता(अनु.).नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010.
4. नसरीन, तसलीमा. द्विखंडित. सुशील गुप्ता (अनु.).नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण-2004, आवृत्ति-2014.
5. नसरीन, तसलीमा. नष्ट लड़की : नष्ट गद्य. मुनमुन सरकार (अनु.).नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-1995, आवृत्ति-2010.
6. नसरीन, तसलीमा. फेरा. अमर गोस्वामी(अनु.).नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 1996, आवृत्ति-2013.
7. नसरीन, तसलीमा. फ्रांसीसी प्रेमी. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-2004, आवृत्ति-2010.
8. नसरीन, तसलीमा. बंदिनी सुशील. गुप्ता(अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण-2009, आवृत्ति-2014.
9. नसरीन, तसलीमा. मुझे देना और प्रेम. प्रयाग शुक्ल(अनु.).नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2012.
10. नसरीन, तसलीमा. मुझे मुक्ति दो.दिल्ली : पूज्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2014.
11. नसरीन, तसलीमा. लज्जा. मुनमुन सरकार(अनु.).नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, छब्बीसवीं आवृत्ति-2010.
12. नसरीन, तसलीमा. कुछ गद्य कुछ पद्य. महेंद्र मिश्र (अनु.).नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2016.
13. नसरीन, तसलीमा.छोटे-छोटे दुःख. सुशील गुप्ता (अनु.).नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण-2008.

14. नसरीन, तसलीमा. तसलीमा नसरीन की कवितायें. मुनमुन सरकार (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण-2002.
15. नसरीन, तसलीमा. दुखियारीलड़की. सुशील गुप्ता (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण-2005, आवृत्ति-2014.
16. नसरीन, तसलीमा. निमंत्रण. सुशील गुप्ता (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण-2010, आवृत्ति-2014.
17. नसरीन, तसलीमा. निर्वासन. अमृता बेरा (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2014.
18. नसरीन, तसलीमा. निषिद्ध. सांत्वना निगम (अनु.). विमलेश त्रिपाठी (सं), नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2017.
19. नसरीन, तसलीमा. ब्रह्मपुत्र के तट पर. सांत्वना निगम (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2015.
20. नसरीन, तसलीमा. मेरे बचपन के दिन. अमर गोस्वामी (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण-2004, आवृत्ति-2014.
21. नसरीन, तसलीमा. यह दुःख: यह जीवन. शम्पा भट्टाचार्या (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण-1996, आवृत्ति-2013.
22. नसरीन, तसलीमा. औरत का कोई देश नहीं. सुशील गुप्ता (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण-2009, आवृत्ति-2013.
23. नसरीन, तसलीमा. औरत के हक में. मुनमुन सरकार (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, उन्नीसवाँ संस्करण-2008.
24. नसरीन, तसलीमा. चार कन्या. मुनमुन सरकार (अनु.). नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लि., पांचवाँ संस्करण-2016.
25. नसरीन, तसलीमा. नहीं, कहीं कुछ भी नहीं. सुशील गुप्ता (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2012, आवृत्ति-2014.
26. नसरीन, तसलीमा. मुझे घर ले चलो. सुशील गुप्ता (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण-2010, आवृत्ति-2014.
27. नसरीन, तसलीमा. शोध. सुशील गुप्ता (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2006.
28. नसरीन, तसलीमा. वे अँधेरे दिन. सुशील गुप्ता (अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण-2004, आवृत्ति-2011.

सहायकग्रन्थ (हिंदी) :

1. अग्रवाल, रोहिणी.साहित्य की जमीन और स्त्री मन के उच्छ्वास. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2014.
2. अनामिका. स्त्रीत्व का मानचित्र.दिल्ली : सारांश प्रकाशन प्रा.लि., 2001.
3. अमरकांत. इन्ही हथियारों से.नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,2003.
4. अमरनाथ. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 2009.
5. अलफ़ोंस, के.जे. बदलाव के लिए. अभय किशोर(अनु.), नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1998.
6. अली इंजीनियर, असगर. धर्म और साम्प्रदायिकता.नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन,2010.
7. अवस्थी, नंद कुमार(सं).कुरान शरीफ. शेरवानी संस्करण, लखनऊ : किताबघर प्रकाशन, 1978.
8. असद, माजदा. गद्य के विविध रूप.नई दिल्ली : अकादमी प्रकाशन, 1990.
9. आज़ाद, सलाम (सं). 1971 मुक्तियुद्ध की कहानियाँ.सोमा बंदोपाध्याय (अनु.) नई दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2014.
- 10.आज़ाद, सलाम.बांग्लादेश में हिन्दू संहार. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन,प्रथम संस्करण-2005.
- 11.आबदीन, जैनुल.हजारों डूबते सूरज. व्हाइट फैल्कोन पब्लिशिंग, 2015.
- 12.ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद.श्रीमद्भागवद्गीता यथारूप.मुंबई : भक्तिवेदांत ट्रस्ट,1983.
- 13.एक अज्ञात हिन्दू औरत. सीमंतनी उपदेश. डॉ धर्मवीर (सं), नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2008.
- 14.कमलेश्वर(सं). गर्दिश के दिन.दिल्ली : परमेश्वरी प्रकाशन,2013.
- 15.कालिया,ममता. भविष्य का स्त्री विमर्श.नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2015.
- 16.कुमार, तरुण. निराला की विचारधारा और विवेकानंद.नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2008.
- 17.कुमार, राधा. स्त्री संघर्ष का इतिहास (1800-1990).नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन,संस्करण-2011, आवृत्ति-2014.
- 18.क्षीरसागर, सुनीता आगतराव (सं). आत्मकथाएँ और आत्मकथाकार: एक अध्ययन. सोलापुर : लक्ष्मी बुक पब्लिकेशन, 2015.
- 19.खेतान, प्रभा.बाज़ार के बीच : बाज़ार के खिलाफ. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2004.
- 20.गाँधी, महात्मा.सत्य के प्रयोग. काशीनाथ त्रिवेदी (अनु.), अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन.

21. गुप्त, गणपति चन्द्र. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2009.
22. गुप्त, मन्मथनाथ. स्त्री-पुरुष समबन्धों का रोमांचकारी इतिहास. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण-2005, आवृत्ति-2011.
23. गुप्ता, मोहनलाल. भारत में समाज एवं धर्म सुधार आन्दोलन. जोधपुर : सुभद्रा प्रकाशन, 2017.
24. गुप्ता, मोहनलाल. भारत में समाज एवं धर्म सुधार आन्दोलन. जोधपुर : सुभद्रा प्रकाशन, 2017.
25. गुप्ता, रमणिका. मेरे साक्षात्कार. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2007.
26. गोस्वामी, अमर (अनु.). प्रिय तसलीमा नसरीन. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2005.
27. गौड़, वीरेंद्र कुमार. यूँ जन्मा बांग्लादेश. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, 2015.
28. ग्रीयर, जर्मन. बधिया स्त्री. अनु. मधु बी. जोशी, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2001, आवृत्ति-2014.
29. चतुर्वेदी, जगदीश्वर. साम्प्रदायिकता, आतंकवाद और जनमाध्यम. नई दिल्ली : अनामिका पब्लिशर्स और डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि..
30. चतुर्वेदी, पंकज. आत्मकथा की संस्कृति. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2003.
31. चतुर्वेदी, पंकज. क्या मुसलमान ऐसे ही होते हैं. दिल्ली : शिल्पायन, 2010.
32. चतुर्वेदी, रामस्वरूप. शरत के नारी पात्र. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ.
33. चतुर्वेदी, सच्चिदानंद. मझधार. कानपुर : अमन प्रकाशन, 2017.
34. चौबे, कृपाशंकर. नजरबंद तसलीमा. दिल्ली : शिल्पायन प्रकाशन, 2008.
35. जावले, मालती. साठोत्तर हिंदी कहानी और अश्लीलता. कानपुर : विनय प्रकाशन, 1996.
36. झा, प्रदीप (अनु. एवं सं.). महिलायें और साम्यवाद. पटना : समकालीन प्रकाशन प्रा. लि., पटना, 1997.
37. ठाकुर, हरिनारायण. दलित साहित्य का समाजशास्त्र. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2009.
38. ठेंगडी, दत्तोपंत. पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन. खंड-1, दिल्ली : सुरुचि प्रकाशन, 2016.
39. तारकबागीश, प्रेमचंद (सं.). उत्तररामचरितम्. कोलकाता : बांग्ला प्रेस, 1862.
40. तिवारी, रामचंद्र. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2010.
41. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद. रचना के सरोकार. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, ISBN-81-7055-105-6

42. तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खंड, (विनयपत्रिका). काशी : नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संवत्-2031.
43. तुलसीदास. रामचरितमानस. गोरखपुर : गीता प्रेस, विक्रम संवत् 2065.
44. त्यागी, रवीन्द्रनाथ. गरीब होने के फायदे एवं अन्य व्यंग्य रचनाएं. डॉ कमल किशोर गोयनका(सं). दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, 2010.
45. त्रिपाठी, विश्वनाथ. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास. हैदराबाद : ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा. लि., प्रथम संस्करण-2007.
46. दास, कमला. मेरी कहानी. हिंदी पॉकेट बुक्स, 2012.
47. दास, श्यामसुंदरश्याम. मेरी आत्मकहानी. प्रयाग : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन) प्राइवेट लिमिटेड, 1957.
48. दुबे, अभय कुमार. फुटपाथ पर कामसूत्र. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2016.
49. देवी, स्फुरना. अबलाओं का इन्साफ. नैया (सं). नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2013.
50. धवन, मधु (सं). लेखन कला : एक परिचय. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2015.
51. नगेन्द्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. नोएडा : मयूर पेपर बैक्स, 2007.
52. नारायण, कुँवर. ना सीमायें, ना दूरियाँ 'कुँवर नारायण से रेनाता चेकाल्स्का की बातचीत'. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2017.
53. नेहरू, जवाहर लाल. मेरी कहानी. सस्ता साहित्य मंडल, 2011.
54. नैमिशराय, मोहन दास. अपने-अपने पिंजरे. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1996.
55. पवार, उर्मिला. आयदान. सौ. माधवी प्र. देशपांडे (अनु.), नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010.
56. पवार, दया. अछूत. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि, 2010.
57. पाण्डेय, मैनेजर. अनभै सांचा. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2012.
58. पाण्डेय, मैनेजर. आलोचना में सहमति-असहमति. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण -2013.
59. पुष्पा, मैत्रेयी. सुनो मालिक सुनो. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2006.
60. पोद्दार, हनुमान एवं चिम्मनलाल, गोस्वामी (सं). संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत. गोरखपुर : गीता प्रेस, संवत्-2046.
61. बच्चन, हरिवंश राय. बसेरे से दूर. दिल्ली : राजपाल एंड सन्ज, 2010.
62. बच्चन, हरिवंश राय. क्या भूलूँ, क्या याद करूँ. दिल्ली : राजपाल एंड संस, 2011.

63. बनारसीदास. अर्धकथानक. रोहिणी चौधरी (अनु.), नई दिल्ली : पेंगुइन बुक्स.
64. बाल्मिकी, ओम प्रकाश. जूठन. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 1999.
65. बोहरा, मोहन कृष्ण. तसलीमा संघर्ष और साहित्य. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2016.
66. मण्डलोई, लीलधार और अरविंद. जैन स्त्री मुक्ति का सपना. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2006.
67. मसीह, याकूब. तुलनात्मक धर्म-दर्शन. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, 1985.
68. महर्षि वेदव्यास. महाभारत. हनुमानप्रसाद पोद्दार (सं), पंडित रामनारायण शास्त्री पाण्डेय (अनु), गोरखपुर : गीता प्रेस.
69. माजी, महुआ. मैं बोरिशाइल्ला. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. प्रथमसंस्करण-2007, आवृत्ति-2013.
70. माधव, नीरजा. हिंदी साहित्य का ओझल नारी इतिहास (1857-1947). नई दिल्ली : सामयिक बुक्स, 2014.
71. मिश्र, दयानिधि (सं). लोक और साहित्य : अन्वय और समन्वय. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2015.
72. मिश्र, विद्यनिवास. हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, 2008.
73. मिश्र, अखिलेश. धर्म का मर्म. वंदना मिश्र(सं), नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 2003.
74. यादव, राजेंद्र (सं). देहरि भई विदेस. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 2013.
75. यादव, राजेंद्र. कथा जगत की बागी मुस्लिम औरतें. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2008.
76. रमेट्र. धर्म दर्शन सामान्य एवं तुलनात्मक. वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास, ISBN-81-208-3182-9.
77. रमेट्र. समाज एवं राजनीतिदर्शन एवं धर्म दर्शन. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, ISBN -81-208-2713-9.
78. राजकिशोर. धर्म और धर्मसत्ता. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015.
79. राजे, सुमन. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, तृतीय संस्करण - 2006.
80. राधाकृष्णन, सर्वपलल्ली. सत्य की खोज. डॉ एस. गोपाल (अनु). नई दिल्ली : राजकमल एंड संस, 2009.
81. वर्मा, महादेवी. श्रृंखला की कड़ियाँ. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2008.

82. वर्मा, लक्ष्मीकांत. आधुनिक हिंदी कहानी के संदर्भ में अश्लीलता : एक विवेचन. इलाहाबाद : साहित्य भवन.
83. वर्मा, वेद प्रकाश. धर्मदर्शन की मूल समस्याएं. दिल्ली : दिल्ली विश्वविद्यालय, 1991.
84. विपिनचंद्र. आधुनिक भारत का इतिहास. नई दिल्ली : ओरियंट ब्लैक स्वान, प्राइवेट लिमिटेड, 2016.
85. वेदव्यास. विष्णुपुराण. गोरखपुर : गीताप्रेस.
86. शम्भूनाथ. हिंदी उपन्यास : राष्ट्र और हाशिया. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2016.
87. शर्मा, अशोक कुमार. प्रारम्भिक समाज एवं राजनीति दर्शन. दिल्ली : मोतीलाल बनारसी दास, ISBN-81-208-3176-4.
88. शर्मा, गीतेश. धर्म के नाम पर. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., 2013.
89. शर्मा, जयदेव. अथर्ववेद संहिता भाष्य. अजमेर : श्री दुर्गा प्रिंटिंग प्रेस, 1958.
90. शर्मा, नसिरा. पारिजात. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2014.
91. शर्मा, रामविलास. परम्परा का मूल्यांकन. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1981.
92. शर्मा, श्रीराम आचार्य (सं). अथर्ववेद संहिता. शांतिकुंज हरिद्वार : ब्रह्मवर्चस, पंचम आवृत्ति, 2002.
93. शर्मा, श्रीराम आचार्य. ऋग्वेद संहिता. हरिद्वार : ब्रह्मवर्चस, चतुर्थ आवृत्ति-2001.
94. शर्मा, श्रीराम. समकालीन हिंदी साहित्य विविध विमर्श. 2009.
95. शर्मा, स्नेहलता. बच्चन की आत्मकथा : काव्यात्मक मूल्यांकन. दिल्ली : आर्य बुक डिपो, 1986.
96. शास्त्री, रामचंद्र वर्मा (टीकाकार). मनुस्मृति. नई दिल्ली : विद्या विहार, संस्करण-2007
97. शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, आवृत्ति-2015.
98. शुक्ल, रामचंद्र. चिंतामणि भाग-3. सं-नामवर सिंह. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1983.
99. श्रीमोहनदेवपंत (व्याख्याकार). हर्षचरितम्. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, 1984.
100. सचदेव, पद्मा. बूंद बावड़ी. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1992.
101. सत्येन्द्र. निबंध निलय. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2005.
102. सरन, शंकर. जिहादी आतंकवाद. नई दिल्ली : राजपाल एंड संस, ISBN-978-81-7028-818-3.
103. सांकृत्यायन, राहुल. वैज्ञानिक भौतिकवाद. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, ग्यारहवाँ संस्करण-2009.

- 104.सातवलेकर, दामोदर.कठोपनिषद.सूरत : भारत मुद्रणालय,1950.
- 105.सिंह, अरुण कुमार सिंहऔर आशीष कुमार सिंह (सं). व्यक्तित्व का मनोविज्ञान.दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
- 106.सिंह, कमलेश. हिंदी आत्मकथा स्वरूप और साहित्य, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, 1989.
- 107.सिंह, जगजीत.सरल गुरु ग्रन्थ साहिब एवं सिख धर्म.दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.
- 108.सिंह, जयदेव एवं वासुदेव सिंह(सं). कबीर साखी सुधा.वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1988.
- 109.सिंह, जसवंत.खतरे में भारत.नई दिल्ली : राजपाल एंड संस, 2013.
- 110.सिंह, नामवर (सं). कार्ल मार्क्स :कला और साहित्य चिंतन. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण- 1991, आवृत्ति-2011.
- 111.सिंह, नामवर. कविता के नये प्रतिमान.नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण -1990, आवृत्ति-2009.
- 112.सिंह, बच्चन. आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द.नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, ISBN-81-7055-362-8.
- 113.सोबती, कृष्णा. गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुतान.नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 2017.
- 114.स्वामी अङ्गडानन्द. अमृतवाणी-भाग-5, गूढ़ पदों के संदेश.मुंबई : श्री परमहंस स्वामी अङ्गडानन्द ट्रस्ट.
- 115.स्वामी ब्रह्मस्थानंद. स्वामी विवेकानंद साहित्य संचयन. रामकृष्ण मठ, 2006.
- 116.हुसैन, एम. एफ. एम.एफ.हुसैन की कहानी अपनी जुबानी. एम.एफ.हुसैन फाउंडेशन, मुंबई, 2002.

सहायकग्रन्थ (अंग्रेजी) :

1. Deen, Haneefa. The Crescent and The Pen.Westport : Praeger Publisher, 2006.
2. Engles, Friedrich. Origin of family. Private Property and The State, Penguin Group, 1884.

3. Hay, L.G. The Holy Bible in the Hindi Language, Vol-1. Allahabad : The Presbyterian Mission Press, 1851
4. John, Olive P., Richard W. Robins, and Lawrence A. Perwin (Ed.). Hnadbook of Personality: Theory and Research. New York : The Gulford Press, 2008.
5. Kropotkin, Peter. Mutual Aid: A Factor of Evolution. New York : Dover Publication Inc, ISBN -978-0875580241.
6. Linda R., Anderson. Autobiography: New Critical Idiom. New York: Routledge, 2001
7. Literature & Theology, Vol. 21. no.3, New Delhi : Oxford University Press, 2007
8. Masuzava, Tomoko. The Invetion of World Religions. London : The University Cicago Press Ltd, 2005.
9. Nasrin, Taslima. Bangladesh A Country Of Terrorism. ISBN-9781505997187.
10. Nasrin, Taslima. Exile : A memoir. New Delhi : Penguin publication, 2015.
11. Nayak, D. G. Art of Autobiography. Poona : Vidarbh Marathwad Book Company, 1962.
12. Schendel, Willem Van. A History of Bangladesh. Cmabridge : University Printing House, 2009.
13. Sree, S. Prasanna. Psycho Dynamics of Women in post modern Literature. New Delhi : Sarup and Sons, 2008.
14. Wadud, Amina. Inside the Gender Jihad : Women Reform in Islam. London : One World Publication, 2006.
15. Wells, H.G. Experiment in Autobiography. Read Books Ltd., 2016.

पत्र-पत्रिका :

1. इण्डिया टुडे. साहित्य वार्षिकी 2017-18, नोएडा : लिविंग मीडिया लिमिटेड, नोएडा.
2. कथादेश. हरिनारायण (सं), फ़रवरी : 2006, दिल्ली.
3. कथादेश. हरिनारायण (सं). अप्रैल : 2014, दिल्ली.
4. कथादेश. हरिनारायण (सं). सितम्बर : 2008, दिल्ली.
5. कथादेश. हरिनारायण(सं). अंक-1, मार्च : 2008, दिल्ली.
6. दक्षिण कोसल. उत्तम कुमार(सं). वर्ष-1, अंक-5, फ़रवरी : 2015, छत्तीसगढ़
7. बहुवचन. गिरीश्वर मिश्र (सं). अशोक मिश्र, अंक-44, जनवरी-मार्च : 2015, वर्धा, महाराष्ट्र.
8. वागर्थ. दिसंबर : 2004, कोलकाता : भारतीय भाषा परिषद.
9. वागर्थ. सितम्बर : 2006, कोलकाता : भारतीय भाषा परिषद,.
10. समकालीन भारतीय साहित्य. अंक-77, मई-जून : 1998, नई दिल्ली.
11. समयांतर. जून : 2015, दिल्ली.
12. हंस, अगस्त : 2011, नई दिल्ली : अक्षर प्रकाशन.
13. हंस. आत्मकथा अंक. प्रेमचंद(सं). प्रथम संस्करण, जनवरी-फ़रवरी : 1932, तृतीय आवृत्ति-2014, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.
14. हंस. जनवरी : 2011, नई दिल्ली : अक्षर प्रकाशन.
15. हंस. मुस्लिम विशेषांक. राजेन्द्र यादव(सं). पूर्णांक-203, वर्ष-18, अंक-1, अगस्त : 2003. नई दिल्ली : अक्षर प्रकाशन.
16. हंस. राजेन्द्र यादव (सं), वर्ष -14, अंक- 6-7, जनवरी-फरवरी: 2000, नई दिल्ली : अक्षर प्रकाशन.
17. हंस. संजय सहाय (सं). वर्ष-32, अंक-3, अक्टूबर : 2017, नई दिल्ली : अक्षर प्रकाशन.
18. हंस. संजय सहाय (सं). वर्ष-32, अंक-2, सितम्बर : 2017, नई दिल्ली : अक्षर प्रकाशन.
19. हंस. स्त्री-विशेषांक. राजेन्द्र यादव(सं). पूर्णांक -277, वर्ष-24, अंक-4, नवम्बर : 2009, नई दिल्ली : अक्षर प्रकाशन.
20. हंस. स्त्री-विशेषांक. राजेन्द्र यादव(सं). पूर्णांक-161, वर्ष-14, अंक-6-7, जनवरी-फ़रवरी : 2000, नई दिल्ली : अक्षर प्रकाशन.
21. हंस. मार्च : 2010. नई दिल्ली : अक्षर प्रकाशन.

शब्दकोश :

16. Adamec, Ludwig (2009). Historical Dictionary of Islam, 2nd Edition. Lanham: Scarecrow Press, Inc, Gibb, H. A. R. (editor) (1960).
1. Pathak, R. C., Bhargav (Ed), Dictionary Hindi-English. Varanasi : Bhargav Book Dipot, 2008.
2. Verma, S. K, Sahay, R. N (Ed). Oxford English Hindi Dictionary. New Delhi : Oxford University Press, 53rd Impression, 2013.
3. डॉ. नगेन्द्र (सं.). मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खंड). दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
4. दुबे, अभय कुमार (सं.). समाज विज्ञान विश्वकोश (खंड-1). दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013.
5. पाण्डेय, राजबली (सं.). हिन्दू धर्मकोश. आगरा : उ.प्र. हिंदी संस्थान.
6. बाहरी, हरदेव (सं.). संक्षिप्त हिंदी शब्दकोश. दिल्ली : राजपाल एंड संस.
7. वर्मा, रामचंद्र. मानक हिंदी कोश (खंड-1). प्रयाग : हिंदी साहित्य सम्मेलन.
8. वर्मा, रामचंद्र (सं.). उर्दू-हिंदीकोश. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, इक्कीसवाँ संस्करण-2011.
9. श्रीवास्तव, मुकंदीलाल (सं.). ज्ञान शब्दकोश. बनारस : ज्ञान मंडल लिमिटेड, 1965.

अंतर्जालिकस्रोत :

1. 'Autobiography'. Britannica.com. <https://www.britannica.com/art/autobiography-literature>, 26 August 2016.
2. 'Constitution of Bangladesh'. constituteproject.org, 20 August 2016.
3. 'कलावाद'. wikipedia. सितंबर. 2014, <https://hi.wikipedia.org/wiki/कलावाद>, (6 August 2016).
4. Autobiography. Cambridge Dictionary, <https://dictionary.cambridge.org/dictionary/english/autobiography>, 26 August 2016.
5. Autobiography. Wikipedia, Creative Commons Attribution. 25 August 2016, https://en.wikipedia.org/wiki/Autobiography#cite_ref-1, 26 August 2016.

6. Bacan, Candee. 'The Genre of Autobiography : Definition and Chrachterstics'. 11 may 2016, <https://letterpile.com/writing/TheGenreofAutobiography>, 27 September 2016.
7. bangladesh penal code article -292 -http://bdlaws.minlaw.gov.bd/print_sections_all.php?id=11, 26 November 2017.
8. <http://archive.thedailystar.net/forum/2006/december/taslima.htm>, 24 April 2016.
9. <http://aryamantavya.in/quran-ishwariya-vaani/>, 18 October 2017.
10. <http://bharatdiscovery.org/india>, 23 July 2017.
11. http://bharatdiscovery.org/india/सामाजिक-धार्मिक_सुधार_आन्दोलन, 18 October 2017.
12. <http://hindisamay.com/kahani/Ek%20pathak.htm>, अनु.-अनिल जनविजय, 18 July 2017.
13. http://kavitakosh.org/kk/आत्मकथ्य/_/_जयशंकर_प्रसाद, 20 February 2017.
14. http://kavitakosh.org/kk/चंदबरदाई/_/परिचय, 20 February 2017.
15. http://saahityaalochan.blogspot.in/2008/08/blog-post_2139.html, 19 November 2017.
16. http://sanskritbhasi.blogspot.in/2014/05/blog-post_17.html, 28 April 2017.
17. http://www.bbc.com/hindi/india/2012/02/120203_tasleema_politics_ss, 10 July 2016.
18. <http://www.bbc.com/hindi/india-41228101>, 10 November 2017.
19. http://www.bbc.com/hindi/news2012/08/120828_blasphemy_laws_qa_ss.shtml, 23 November 2017.
20. <http://www.hindisamay.com/content/1145/1/लेखक-दुखिनीबाला-की-आत्मकथा-सरला-एक-विधवा-की-आत्मजीवनी.cxls>, 28 February 2016.
21. <http://www.hindisamay.com/content/2056/1/हरिवंश-राय-बच्चन-की-कविताएँ-कवि-की-वासना.csp>, 20 April 2017.
22. <http://www.hindisamay.com/content/6136/1/लेखक-वैभव-सिंह-का-लेख-जादुई-यथार्थवाद-एवं-मार्खेज.csp>, 18 September 2016.

23. <http://www.hindisamay.com/content/7231/1/लेखक-ईमान-मर्सल-का-आत्मकथ्य-कुछ-पुर्जियां-कुछ-चिन्दियाँ.csp>, 17 November 2017.
24. <http://www.jagran.com/editorial/apnibaat-8828606.html>, 9 November 2017.
25. <http://www.joharkhabar.com/culture/interview-ramesh-bhagat-and-hansda-sowvendra-shekhar>, 12 January 2018.
26. <http://www.kalkajyotish.com/हिन्दू-धर्म>, 15 June 2017.
27. http://www.nationsonline.org/oneworld/map_of_southeast_asia.htm, 18 January 2018.
28. <http://www.ohchr.org/EN/NewsEvents/Pages/DisplayNews.aspx?NewsID=16401&LangID=E>, 28 September 2017.
29. <http://www.pewresearch.org/fact-tank/2017/10/03/key-facts-about-government-favored-religion-around-the-world/>, 12 January 2018.
30. <http://www.scotbuzz.org/2017/10/vyaktitv-evam-manav-vyavahar.html>, 12 October 2016.
31. <http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-national/tp-kerala/Taslimarsquo-slsquoShame-Againrsquo-in-Malayalamarticle16622293.ece>, 18 April 2017.
32. https://en.wikipedia.org/wiki/Constitution_of_Bangladesh, 16 July 2017.
33. https://en.wikipedia.org/wiki/Demographics_of_Bangladesh, 18 October 2017.
34. https://en.wikipedia.org/wiki/Devil's_advocate, 18 October 2017.
35. https://en.wikipedia.org/wiki/Eastern_Christianity, 25 July 2016.
36. <https://en.wikipedia.org/wiki/Feminism>, 12 January 2018.
37. https://en.wikipedia.org/wiki/Gordon_Allport, 30 April 2017.
38. https://en.wikipedia.org/wiki/History_of_Bangladesh, 20 October 2017.
39. https://en.wikipedia.org/wiki/Interfaith_dialogue, 28 September 2017.
40. https://en.wikipedia.org/wiki/Islam_and_blasphemy, 23 November 2017.
41. <https://en.wikipedia.org/wiki/Religion>, 15 May 2017.

42. <https://en.wikipedia.org/wiki/Shamanism>, 18 July 2017.
43. <https://en.wikipedia.org/wiki/Shinto>, 28 September 2017.
44. <https://hi.wikipedia.org/wiki>, 28 September 2017.
45. <https://hi.wikipedia.org/wiki/ओविद>, 30 November 2017.
46. https://hi.wikipedia.org/wiki/पारसी_धर्म, 28 May 2017.
47. https://hi.wikipedia.org/wiki/पृथ्वी_का_इतिहास, 18 October 2017.
48. https://hi.wikipedia.org/wiki/बहाई_धर्म, 16 May 2017.
49. https://hi.wikipedia.org/wiki/बोन_धर्म, 28 September 2017.
50. <https://hi.wikipedia.org/wiki/मानवतावाद>, 12 September 2017.
51. https://hi.wikipedia.org/wiki/यूरोपीय_धर्मसुधार, 18 October 2017.
52. https://hi.wikipedia.org/wiki/लाहौर_संकल्पना, 21 October 2017.
53. https://hi.wikipedia.org/wiki/संयुक्त_राज्य_अमेरिका_में_अमेरिकी_मूल_निवासी, 28 May 2017.
54. https://hi.wikipedia.org/wiki/हिन्दू_धर्म, 16 May 2017.
55. <https://kafila.online/2017/06/01>, 17 August 2016.
56. <https://khabar.ndtv.com/news/blogs/ravish-kumar-writes-about-the-relation-between-religion-and-politics-1451529>, 9 November 2017.
57. https://naidastak.wordpress.com/2013/07/07/criticism_of_religion, 18 October 2017.
58. <https://navbharattimes.indiatimes.com/world/pakistan/christian-man-sentenced-to-death-for-blasphemy-in-pakistan/articleshow/60703085>, (24 November 2017).
59. <https://omprakashkashyap.wordpress.com/category/प्लेटो-के-आदर्श-राज्य-की-शिक्षानीति>, 21 October 2017.
60. https://preachingsofbuddha.blogspot.in/2014/10/blog-post_21.html, 28 April 2017.
61. <https://pushpakprk.wordpress.com/2017/04/06/hindu-dharm-ka-itihashistory/>, 28 May 2017.

62. https://samadhanrps.wordpress.com/2016/05/14/मनुष्य_की_उत्पत्ति_कहाँ_क्यों_कैसे/, 18 October 2017.
63. <https://samaybuddha.wordpress.com/2015/02/18/dharm-ke-naam-par-har-galat-sahi-ho-jata-hai/>, 12 April 2016.
64. <https://www.ancestryofman.com/>, 31 October 2017.
65. https://www.bbc.com/hindi/india/2016/02/160210_islam_many_sects_pk, (18 August 2017).
66. https://www.bbc.com/hindi/india/2015/11/151123_taslima_nasrin_no_birth_women_revolution_du, 12 January 2018.
67. <https://www.brainyquote.com/quotes/keywords/exile.htm>, 12 December 2017.
68. <https://www.britannica.com/topic/classification-of-religions>, 3 November 2017.
69. <https://www.facebook.com/public/Badrul-Hasan>, 22 February 2016.
70. <https://www.hindujagruti.org/hindi/news/79249.html>, 18 October 2017.
71. <https://www.linkedin.com/pulse/women-rights-bangladesh-constitution-omar-faruk-stranger>, 12 December 2017.
72. <https://www.merriam-webster.com/dictionary/feminism>, 12 January 2018.
73. <https://www.thoughtco.com/current-world-population-1435270>, 18 October 2017.
74. https://www.uah.edu/woolf/feminism_kinds.htm, 16 April 2017.
75. literarism.blogspot.com, 16 July 2017.
76. Schuilenburg, Marc. 'Behave or be banned? Banning orders and selective exclusion from public space'. https://www.researchgate.net/profile/Marc_Schuilenburg/, 12 February 2018.
77. www.gyutenberg.org, 12 January 2018.
78. www.postcolonialweb.org/poldiscourse/exile.html, 31 October 2017.

79. अग्रवाल, रोहिणी. 'भारतीय उपमहाद्वीप का स्त्री लेखन : स्त्री सशक्तीकरण की अनुगुंजें'.
<http://www.streekaal.com/2017/12/women-writhing-in-Indian-sub-continent.html>, 16 January 2018.
80. गुप्ता, ज्योति. 'स्त्री आत्मकथा : आत्माभिव्यक्ति और मुक्तिप्रश्न'. स्त्री काल, 2016, <http://www.google.co.in/search?/=en&q=relatedeconomicstimes.indiatimes.com/articleshow/msid-3504762,flstny-1cm>), 6 August 2016.
81. चतुर्वेदी, जगदीश्वर. 'अस्मिता और आत्मकथा की चुनौतियाँ'. [http://gadyakosh.org/gk/अस्मिता_और_आत्मकथा_की_चुनौतियाँ_\(रश्मिरथी_के_प्रसंग_में\)_/_जगदीश्वर_चतुर्वेदी](http://gadyakosh.org/gk/अस्मिता_और_आत्मकथा_की_चुनौतियाँ_(रश्मिरथी_के_प्रसंग_में)_/_जगदीश्वर_चतुर्वेदी), 16 March 2016.
82. तलवार, वीर भारत. 'स्त्री विमर्श : इससे दयनीय कोई दूसरा विमर्श नहीं है हिंदी में'. <https://tirchhispeelling.wordpress.com/tag/स्त्री-विमर्श/>, 22 February 2017.
83. पाखी, फ़रवरी 2013, http://www.pakhi.in/feb-13/about_pakhi.php
 प्रसंग_में)_/_जगदीश्वर_चतुर्वेदी, 18 August 2017.
84. मसीवाल, भावना. 'जेंडर की अवधारणा और अन्या से अनन्या'. 'स्त्री काल', http://www.streekaal.com/2014/10/blog-post_29.html, 12 January 2018.
85. मीणा, जय सिंह. 'दलित साहित्य : शालीनता का प्रश्न'. <http://www.debateonline.in/301113/>, 18 November 2017.
86. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, google book.
87. हरिवंश राय बच्चन. 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ'. http://kavitakosh.org/क्या_भूलूँ_क्या_याद_करूँ_में/_/_हरिवंशराय_बच्चन, 16 October 2017.